

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

36059

क्रम संख्या

289.98 कृष्णा

काल नं०

मार्ग

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया विशम्भुष्यम्

स्कन्दपुराणम्

—:०:—

श्रीमन्महर्षि-कृष्णाद्वैपायनव्यासविरचितम्

तस्य

काशीखण्डम्

(पूर्वाधीतारार्धसहितम्)

चतुर्थो भागः

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धीधं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतोकर्ममण्डलम्(शाम्भवम्) ॥
वीरान्द्वयष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं चन्द्रे गुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता-१

चैक्रमाब्दः

प्रथमसंस्करणम्

ख्रीं स्ताब्दः

२०१८

५०००

१९६१



Gurumandal Series NO. XX

Skanda Puranam



Volume IV

KASHI KHAND

WITH POORVARDHA AND UTTARARDHA

BY

Shrimanmaharshi Krishna Dwaipayana Vedavyas.

PART IV

5, CLIVE ROW
CALCUTTA-1

Vikram Era
2018

First Edition
5000

Christian era
1961

मुद्रकः—

सारनमण्डलान्तर्गत गोरियाकोठी-
निवासि श्रीमत्स्वर्गतगोपालप्रसाद-
सुनुः श्रीभवधकिशोरसिंहः
स्वयन्त्रालये

गोपाल प्रिण्टिङ्ग वर्क

नामके मुद्रापितवान्

स्थानम् :—८७ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता—६

* श्रीगणेशायनमः *

स्कन्दपुराणस्थ चतुर्थ काशीखण्ड के विषय में

सिद्धि बुद्धि सहित श्री गणनाथकी परम कृपा से गुरुमण्डलग्रन्थमाला के बीसवें पुष्प स्कन्दपुराण का चतुर्थ खण्ड “काशीखण्ड” सहृदय पुराणप्रेमी विद्वद्गर्ग की सेवा में प्रस्तुत है। काशीकी विशेष विलक्षणता यही है कि यह सिद्धस्थान भगवान् विश्वनाथ एवं भगवती अन्नपूर्णा का महस्व मण्डित क्षेत्र है जहां सभी तीर्थों का अवगाहन सरलता से मिलता है। आज भी काशी की गरिमा उसके शिवानुग्रहत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

गङ्गा विश्वेश्वरः काशी जागर्ति त्रितयं यतः।

तत्र नैःश्रेयसीलक्ष्मीलभ्यते चित्रमत्र किम् ॥

स्कन्द पु० काशीखण्ड ३५ अ० श्लो० १०]

जहां गङ्गा, विश्वेश्वर और अन्नपूर्णाक्षेत्र काशीमें तीनोंका सन्निधान है वहां नैःश्रेयसी लक्ष्मी पारमार्थिक सिद्धि प्राप्त होती है इसमें आश्चर्य ही क्या है। जीवन को पतन से बचाकर चित्तको भगवदाकार वृत्ति कर उसे सतत विश्वहित में लगाना ही अपनी ओर से वास्तविक भगवदाज्ञा पालन मनुष्य का परमकर्तव्य है :—

“तस्माच्चेतो विशुद्ध्यर्थं काशीनाथं समाश्रयेत्।

तदाश्रयेण नियतं सङ्क्षीयन्ते मनोमलाः ॥”

काशीखण्ड सदाचारप्र० अ० ३४ श्लो० १४४]

चित्तकी शुद्धि के लिये काशीविश्वनाथ का आश्रयलिया जाय, उनकी शरण में जाने से निश्चय ही मनके मल नष्ट ही होते हैं। अस्तु,

(ख)

इस प्रस्तुत खण्ड की आदर्शप्रति नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित स्कन्दपुराण का “काशीखण्ड” है। नारदपुराण के पूर्वभागस्थ बृहदुपाख्यान के चतुर्थ पादकी १०४ अध्याय में वर्णित “काशीखण्ड” की विषयानुक्रमणिका नेवा में प्रस्तुत है।

इसके अनन्तर चतुर्थ अनुत्तम, सर्वातिश्रेष्ठ, काशीखण्ड है उसमें वर्ण्य विषयों की अनुक्रमणिका यह है इस में सर्व प्रथम विन्ध्य और नारद का सम्वाद वर्णित है।

सन्यलोक का प्रभाव तथा अगस्त्य के आश्रम में देवगण का समागम, प्रतिव्रता का चरित्र एवं तीर्थ चर्चा की प्रशंसा कही गई है। आगे सप्तपुरी की आख्या संयमिनीका निरूपण शिवशर्मा की सूर्य, इन्द्र और अग्निभोग की प्राप्ति। अग्नि का आविर्भाव क्रव्य से धरुण की उत्पत्ति गन्धवती अलकापुरी और ईश्वरी का उद्भव, चन्द्रलोक, नक्षत्रलोक, बुधलोक, मंगल लोक, सूर्यलोक भूलोक तथा सप्तर्षि, ध्रुवलोक तथा तपोलोक का वर्णन। ध्रुवलोक की पुण्यकथा,

चतुर्थ काशीखण्ड—

“अतः परंचतुर्थन्तुकाशीखण्डमनुत्तमम् । विन्ध्यनारदयोर्ब्रह्म सम्वादःपरिकीर्तितः
सत्यलोकप्रभावश्चागस्त्यावासेसुरागमः । प्रतिव्रताचरित्रञ्च तीर्थचर्चाप्रशंसा नम्

ततश्च सप्त पूर्याख्या संयमिन्या निरूपणम् ।

ब्रह्मस्य च तथेन्द्राग्न्योर्लोकान्तिः शिवशर्मणः ॥

अग्नेः समुद्भवश्चैव क्रव्याद्धारुणसम्भवः । गन्धवत्यलकापुर्व्योरीश्वर्याश्च समुद्भवः ॥

चन्द्रोद्भवुधलोकानां कुजेज्यार्कभुवां क्रमात् ।

सप्तर्षीणां ध्रुवस्यापि तपोलोकस्य वर्णनम् ॥

ध्रुवलोककथा पुण्या सत्यलोकनिरीक्षणम् ।

स्कन्दागस्त्यसमालापौ मणिकर्णोसमुद्भवः ॥

(ग)

सत्यलोक का निरीक्षण स्कन्द स्वामी (कार्तिकेय) और अगस्त्य का वार्ता-
लाप मणिकर्णिका की समुत्पत्ति, गङ्गा का प्रभाव एवं गङ्गा का सहस्र नाम
(हजार नाम) फिर वाराणसी की प्रशंसा एवं भैरव का आविर्भाव है । आगे
दण्डपाणि एवं ज्ञानवापी का उद्भव तब कलावती का आख्यान तथा सदाचार
का निरूपण आगे ब्रह्मचारी का आख्यान फिर स्त्रीके लक्षण कृत्य और अकृत्य
का निरूपण है । अविमुक्तेश्वरका वर्णन, गृहस्थ और योगिलोगों के धर्मकेअनन्तर
काल ज्ञान का प्रतिपादन है ।

दिवोदास राजा का पुण्य कथा एवं काशीका वर्णन, योगीचर्चा, लोलाक
के बाद साम्बार्क का कथा, द्रुपदारक, ताक्ष्यार्क अरुणार्क का उदय दशाश्वमेध
तीर्थ का वर्णन मन्दराचल से गणों का समागमन । पिशाचमोचनाख्यान के
बाद गणेश का प्रेषण (भिजवाना) पृथ्वी में माया गणपति का प्रादुर्भाव,
विष्णुमाया का प्रपञ्च और दिवोदास का मोक्ष । आगे पञ्चनदोत्पत्ति और
विन्दुमाधव का आविर्भाव फिर वैष्णव तीर्थ की आख्या शङ्कर भगवान् का
काशीमें समागमन, जैर्गापव्य मुनि के साथ सम्वाद । महेश का ज्यैष्ठेशाख्यान
और क्षेत्राख्यान, कन्दुकेश व्याघ्रेश्वर का उद्भव शैलेश, रत्नेश और कृत्तिवास का
आविर्भाव देवगण का अधिष्ठान । दुर्गासुर का पराक्रम (चीरता), दुर्गा की
विजय और ओङ्कारेश का वर्णन है फिर ओङ्कार का माहात्म्य तथा त्रिलोचन
समुद्भव वर्णन है ।

प्रभावश्चापि गङ्गाया गङ्गानामसहस्रकम् । वाराणसीप्रशंसा च भैरवाविर्भवस्ततः
दण्डपाणीज्ञानवाप्योरुद्भवः समनन्तरम् । ततःकलावत्याख्यानं सदाचारनिरूपणम्
ब्रह्मचारिसमाख्यानं ततः स्त्रीलक्षणानि च । कृत्याकृत्यविनिर्देशोऽहविमुक्तेश्वरवर्णनम्
गृहस्थयोगिनोर्धर्मार्ताः कालज्ञानं ततःपरम् । दिवोदासकथापुण्या काशीवर्णनमेव च
योगिचर्चा च लोलाकान्तरसाम्बार्कजा कथा ।

(४)

केदारेश्वर का आख्यान धर्मेशकथा विश्वभुजोद्भव कथा है । वारेश्वर का समाख्यान तथा गङ्गामाहात्म्य का विशिष्ट वर्णन है ।

विश्वकर्म्मेश की महिमा दक्षयज्ञ का उद्भव, सतीश और अमृतेशादि का वर्णन, पाराशर व्यासका भुजस्तम्भ । क्षेत्रतीर्थकदम्ब और मुक्तिमण्डप की कथा विश्वेश विभव तथा यात्रा का परिक्रमा प्रदक्षिणा का सविस्तर वर्णन है ।

इस महान् ग्रन्थ का अचिकल प्रकाशन दार्धकाल से प्रतीक्षित है इसमें भ्रम प्रमाद, अपाठवाकरणादि मानघ सुलभ दोषजनित त्रुटियों से एवं सीसकाक्षर योजना में व्यापृत कर्मकारी कर्तृवृन्द द्वारा अशुद्धियां रह गई हैं उन्हें पाठक वृन्द सहज नैसर्गिक कृपालव परवश हो शोधन करें । शीघ्र ही ५म अवन्ती खण्ड हाथ में प्रकाशनार्थ लिया है आगे अब तक मुद्रित ग्रन्थ (स्कन्द पुराण) में सहाद्रि खण्ड का निवेश का दुर्लभरहा है मैं भारतीय हस्तलिखित भाण्डागारोसे

द्रुपदारकस्य ताक्ष्याख्यारुणार्कस्योदयस्ततः ॥

दशाश्वमेधतीर्थाख्या मन्दराच्च गणागमः । पिशाचमोचनाख्यानं गणेशप्रेषणन्ततः ॥
मायागणपतेश्चाथभुविप्रादुर्भवस्ततः । विष्णुमायाप्रपञ्चोऽथदिषोदासविमोक्षणम्
ततः पञ्चनदोत्पत्तिर्विन्दुमाधवसम्भवः । ततोवैष्णवतीर्थाख्याशूलिनःकाशिकागमः
जैगीपव्येण सम्वादो ज्यैष्ठेशाख्यामहेशितुः ।

क्षेत्राख्यानं कन्दुकेशव्याघ्रेश्वरसमुद्भवः ॥

शैलेशरत्नेश्वरयोः कृत्तिवासस्य चोद्भवः । देवतानामधिष्ठानं दुर्गासुरपराक्रमः ॥
दुर्गाया विजयश्चाथ ओङ्कारेशस्यवर्णनम् । पुनरोङ्कारमाहात्म्यं त्रिलोचनसमुद्भवः
केदाराख्या च धर्मेश कथा विश्वभुजोद्भवा ।

वीरेश्वरसमाख्यानं गङ्गामाहात्म्यकीर्त्तनम् ॥

विश्वकर्म्मेशमहिमा दक्षयज्ञोद्भवस्तथा । सतीशस्यामृतेशादेर्भुजस्तम्भःपाराशरः
क्षेत्रतीर्थकदम्बश्च मुक्तिमण्डपसंकथा । विश्वेशविभवश्चाथ ततो यात्रा परिक्रमः

(४)

सर्वत्र ही सद्भाद्रि खण्ड के प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हूँ । कृपापूर्वक पुराण रसिक विद्वान् हमें इस ओर मार्गदर्शन करें तो लगे हाथ उस विलुप्त भाग का पुनरुद्धार शक्य हो ।

सदा की भांति गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के सम्पादकद्वय हमारी प्राच्य शोध संस्था के अन्यतमकार्यरत श्रीब्रह्मदत्तत्रिवेदी व्याकरणाचार्य एम० ए० तथा श्रीरामनाथ मिश्र दाधीच पुराण साङ्ख्य स्मृति तीर्थ महानुभाव ने सपरिश्रम सम्पादन किया है । इनको पुराणानुसन्धान सुलभ मर्मज्ञ दृष्टि भगवती पराम्बा प्रदान करे और आप महानुभावों की कृपा से उत्तरोत्तर इस महान् उद्योग में आशातीत सफलता मिले यही एक मात्र हार्दिक कामना है ।

पुनः पुनः सम्मान्य विद्वद्भर्ग से इस महती ज्ञान पिठक सामग्री का, सद्यः आप्यायन इन प्रक. शास्त्रम्भों की ज्योतिकी सृष्टिके उत्थान के लिये सर्वत्र सर्वभूत हितैरताः बन वि उल्लावना मैत्री और सत्ययुगीन पवित्र जीवन निर्वाह का मार्ग प्राणी मात्र लिये प्रशस्त करने की करबद्ध प्रार्थना है ।

इस विश्वविश्रुत पुराण के प्रकाशन में जो कुछ भूले हैं उनके लिये मैं दायी हूँ और जो अतीव सुन्दरतम विशिष्टरूप है वह आपलोगों की कृपा का फल है ।

“व. १. २ दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।”

शुभमिति कार्तिक कृष्णा
धनत्रयोदशी
२०१८ विक्रमसम्बत्

भवदीय
{ मनसुखराय मोर
५, क्लृाष रो,
कलकत्ता - १

* श्रीगणेशायनमः *

अथ स्कन्दपुराणान्तर्गतचतुर्थकाशीखण्डस्य विषयानुक्रमणिका

—:६:—

अध्यायः	विषयः	पृष्ठाङ्काः
१	विन्ध्यवर्धनवर्णनम्	१
	विन्ध्येन नारदपूजनवर्णनम्	३
	विन्ध्यचिन्तनवर्णनम्	५
२	सत्यलोकवर्णनम्	६
	सूर्यगत्यवरोधवर्णनम्	७
	ब्रह्मणा देवसान्त्वनवर्णनम्	६
	पुराणप्रशंसनवर्णनम्	११
३	अगस्त्याश्रमवर्णनम्	१२
	अगस्त्याश्रमे पशूनां परस्परमवैरत्ववर्णनम्	१५
	काशिवासफलवर्णनम्	१७
४	पतिव्रताख्यानवर्णनम्	१६
	नारीदोषवर्णनम्	२१
	विधवाकर्तव्यवर्णनम्	२३
	बृहस्पतिना विन्ध्यवृद्धिनिषेधायप्रार्थनकरणम्	२५

५	अगस्त्यप्रस्थानवर्णनम्	२६
	काशीमाहात्म्यवर्णनम्	२७
	अगस्त्येनमहालक्ष्मीदर्शनम्	३१
	लक्ष्मीस्तोत्रमाहात्म्यवर्णनम्	३३
६	तीर्थाध्यायवर्णनम्	३४
	अगस्त्येनतीर्थवर्णनम्	३५
	तीर्थे पापप्रशमनवर्णनम्	३७
७	सप्तपुरीवर्णने शिवशर्मविप्रकथानकवर्णनम्	३६
	विप्रेण प्रयागगमनवर्णनम्	४१
	विप्रेण काशीगमनवर्णनम्	४३
	विप्रेण मायापुरीगमनम्	४५
८	यमलोकवर्णनम्	४७
	शिवशर्मधर्मराजसम्वाद्द्वर्णनम्	४६
	नरकवर्णनम्	५१
	यमेनाष्टमोत्तरशतनाममाहात्म्यवर्णनम्	५३
९	अप्सरःसूर्यलोकवर्णनम्	५४
	अप्सरसां कृत्यवर्णनम्	५५
	गायत्रीमहस्ववर्णनम्	५७
	सूर्यलोकवर्णनम्	५६
१०	इन्द्राग्निलोकवर्णनम्	६०
	अग्न्युपासनवर्णनम्	६१
	शिखानरारूयानवर्णनम्	६३
	शिखानरेणकाशीस्थलिङ्गमहिमवर्णनम्	६५
	शिखानरकृताभिलाषाष्टकस्तोत्रवर्णनम्	६७

११	बह्ल्लोकवर्णनेचिश्वानरपुत्राख्यानवर्णनम्	६६
	नारदेनमातापित्रोर्महत्त्ववर्णनम्	७१
	शुचिस्मृत्या पुत्रविषये विन्ताकरणम्	७३
	गृहपतिनाकाशीगमनवर्णनम्	७५
	गृहपतिसमीपेशिवागमनवर्णनम्	७७
१२	निर्ऋतिवरुणलोकवर्णनेपिङ्गाक्षाख्यानवर्णनम्	७६
	वरुणलोकनिवासप्रदकर्मवर्णनम्	८१
	वरुणकथानकवर्णनम्	८३
१३	गन्धवत्यलकावर्णनम्	८५
	अलकाधिपपूर्वभववृत्तान्तवर्णनम्	८७
	दीक्षितेनपुत्रदुर्वृत्तश्रवणवर्णनम्	८९
	यज्ञदत्तपुत्रानयनायशिवपार्श्वगमनम्	९१
	कुबेरायशिववरदानवर्णनम्	९३
१४	सोमलोकवर्णनम्	९५
	चन्द्रेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्	९७
१५	नक्षत्रबुधलोकयोर्वर्णनम्	१००
	बुधेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्	१०३
१६	शुकलोकवर्णनम्	१०४
	शुक्रेणमृतसञ्जीवनीविद्याप्राप्तिवर्णनम्	१०५
	अन्धकेतदैत्यप्रोत्साहनवर्णनम्	१०७
	शुकस्यवाराणस्यांतपश्चर्यावर्णनम्	१०९
	शुकोदयेशुभकार्यकरणवर्णनम्	१११
१७	भौमगुरुशनिलोकवर्णनम्	११३
	आङ्गिरसकृताशिवस्तुतिवर्णनम्	११५

(४)

१७	शनिलोकाख्यानवर्णनम्	११७
	सञ्ज्ञाम्प्रतिसूर्योक्तिवर्णनम्	११६
१८	सप्तर्षिलोकवर्णनम्	१२१
१९	ध्रुवलोकवर्णनेध्रुवोपदेशवर्णनम्	१२३
	सुनीत्याध्रुवम्प्रतिराज्यप्राप्त्युपायवर्णनम्	१२५
	ध्रुवस्यतपोवनगमनवर्णनम्	१२७
	ध्रुवम्प्रतिसप्तर्षिवाक्वर्णनम्	१२६
२०	ध्रुवारव्यानेभगवद्दर्शनवर्णनम्	१३१
	इन्द्रेणध्रुवसमीपेभूतालिप्रेषणम्	१३३
	देवैर्ब्रह्मसमीपेध्रुवतपःप्रभाववर्णनम्	१३४
२१	ध्रुवकृताभगवत्स्तुतिवर्णनम्	१३७
	ध्रुवस्तुतिफलवर्णनम्	१४१
	ध्रुवेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्	१४३
२२	ब्रह्मकृतकाशीप्रशंसावर्णनम्	१४४
	शिवशर्मणास्त्यलोकगमनम्	१४५
	ब्रह्मणाप्रयागमहिमवर्णनम्	१४७
	वाराणसीपापकरणदोषवर्णनम्	१४६
२३	लोकपरिस्थितिवर्णनम्	१५१
	गणाभ्यांमहेशकृताभिषेकवर्णनम्	१५३
२४	शिवशर्मनिर्वाणप्रापणवर्णनम्	१५५
	शिवशर्मणोभाविजन्मवृत्तान्तवर्णनम्	१५७
	शिवशर्मणोनिर्वाणप्राप्तिवर्णनम्	१५६
२५	स्कन्दागस्त्यदर्शनवर्णनम्	१६०
	भगस्त्यकृतास्कन्दस्तुतिवर्णनम्	१६१

(ॐ)

२५	स्कन्देशिवकथितवाराणसीमाहात्म्यवर्णनम्	१६३
२६	मणिकर्णिकाख्यानवर्णनम्	१६५
	चक्रपुष्करिण्युत्पत्तिवर्णनम्	१६७
	आनन्दकाननमहस्ववर्णनम्	१६९
	मणिकर्ण्यस्नानादिमहस्ववर्णनम्	१७१
	वाराणसीगमनमाहात्म्यवर्णनम्	१७३
२७	गङ्गामहिमवर्णनपूर्वकं दशहरास्तोत्रकथनम्	१७४
	गङ्गास्मरणफलवर्णनम्	१७५
	गङ्गामहात्म्यवर्णनम्	१७७
	गङ्गातटे गोदानादिमाहात्म्यवर्णनम्	१७९
	गङ्गापूजनप्रकारवर्णनम्	१८१
	गौरीगङ्गयोः शिवविष्णोश्चाभेदवर्णनम्	१८३
२८	गङ्गामहिमवर्णनम्	१८४
	गङ्गातटे खण्डस्फुटितसंस्कारमहस्ववर्णनम्	१८५
	चित्रगुप्तेनवाहीचिप्रस्यकर्मवर्णनम्	१८७
	गङ्गाविषये श्रुत्युक्तिवर्णनम्	१८९
२९	गङ्गासहस्रनामस्तोत्रवर्णनम्	१९१
	गङ्गासहस्रनामस्तोत्रफलवर्णनम्	२०१
३०	वाराणसीमहिमवर्णनम्	२०३
	धनञ्जयवैश्याख्यानवर्णनम्	२०५
	विश्वेश्वराह्वयैव काशीप्राप्तिर्भवतीतिवर्णनम्	२०७
	काशीवासमहस्ववर्णनम्	२०९
	एतदध्यायफलवर्णनम्	२११
३१	भैरवप्रादुर्भाववर्णनम्	२१२

(४)

३१	ऋगादिचतुर्षेदानां वाक्यवर्णनम्	२१३
	भैरवेण विष्णुसमीपेगमनवर्णनम्	२१५
	विष्णुम्रतिब्रह्महृत्यया कथनम्	२१७
	कालभैरवमाहात्म्यवर्णनम्	२१६
३२	दण्डपाणिप्रादुर्भाववर्णनम्	२२१
	हरिकेशकृतशिवााराधनवर्णनम्	२२३
	आनन्दकाननदर्शनवर्णनम्	२२५
	न्यायार्जितधनोत्सर्गमहत्त्ववर्णनम्	२२७
	शिवेन यक्षायवरदानवर्णनम्	२२६
	यक्षराजाष्टकवर्णनम्	२३१
३३	ज्ञानवापीमाहात्म्यवर्णनम्	२३२
	ज्ञानवाप्यां श्राद्धतर्पणमहत्त्ववर्णनम्	२३३
	हरिस्वामिपुत्र्याख्यानवर्णनम्	२३५
	मणिकर्णिकामहत्त्ववर्णनम्	२३७
	नानाशिवलिङ्गानाम्बर्णनम्	२३६
	ज्ञानवापीसमीपेनानापीठानाम्बर्णनम्	२४१
३४	ज्ञानवापीप्रशंसनवर्णनम्	२४२
	मणिकर्णिकापरितस्तीर्थानाम्बर्णनम्	२४३
	कलावत्याःपूर्वजन्मवृत्तवर्णनम्	२४५
	कलावत्युपाख्यानवर्णनम्	२४७
३५	सदाचारवर्णनम्	२४६
	स्नानविधिवर्णनम्	२५५
	ब्राह्मस्नानमहत्त्ववर्णनम्	२५७
	तर्पणविधिवर्णनम्	२५६

(७)

३५	बलिषैश्वदेवविधिवर्णनम्	२६१
	सदाघारेनित्यविधिवर्णनम्	२६३
३६	ब्रह्मचारिसद्राचारवर्णनम्	२६४
	ब्रह्मचारिधर्मवर्णनम्	२६५
३७	स्त्रीलक्षणवर्णनम्	२७०
३८	सदाचारवर्णनेऽष्टविवाहवर्णनम्	२७६
३९	अचिमुक्तेशाविर्भाववर्णनम्	२८५
	दिवोदासाख्यानवर्णनम्	२८७
	अचिमुक्तप्रशंसाकथनम्	२८९
४०	गृहस्थधर्मवर्णनम्	२९१
	नारीणां मेध्यत्ववर्णनम्	२९३
	नवकार्याकार्यादीनां वर्णनम्	२९५
	यज्ञशिष्टभोजनमहस्त्ववर्णनम्	२९७
	क्षमादोषवर्णनम्	२९९
४१	योगाख्यानवर्णनम्	३०१
	योगाङ्गवर्णनम्	३०३
	योगेप्राणायामादिषडङ्गवर्णनम्	३०५
	समाधिमहस्त्ववर्णनम्	३०७
	योगसिद्धिवर्णनम्	३०९
४२	कालघञ्जनोपायवर्णनम्	३११
	शिषकाशीमहस्त्ववर्णनम्	३१३
४३	दिवोदासप्रतापवर्णनम्	३१५
	राज्यप्रजास्थितिवर्णनम्	३१७
	दिवोदासाख्यानेदेवागमनवर्णनम्	३१९

(ज)

४४	काशीवासवर्णनम्	३२१
	अचिमुक्तमाहात्म्यवर्णनम्	३२३
	देवदेवेनबोधनम्	३२५
४५	धनुःषष्टियोगिन्यागमनवर्णनम्	३२६
	योगिनीनां काशीप्रेमवर्णनम्	३२७
४६	लोलार्कवर्णनम्	३३०
	सूर्यविधिकित्सावर्णनम्	३३१
	काशीमहत्त्ववर्णनम्	३३३
४७	उत्तरार्कवर्णनम्	३३४
	सुलक्षणाकन्यातपोवर्णनम्	३३५
४८	साम्बादित्यमाहात्म्यवर्णनम्	३३८
	कृष्णद्रुष्टुं नारदागमनवर्णनम्	३३९
४९	द्रौपदादित्यमयूखादित्यमाहात्म्यवर्णनम्	३४२
	रचिकृतदेवीप्रार्थनवर्णनम्	३४५
५०	खखोलकादित्यगरुडेशयोर्वर्णनम्	३४८
	सर्पेभ्यः शापदानवर्णनम्	३४९
	चिन्तागरुडसम्बादवर्णनम्	३५१
	गरुडेनामृतप्राप्तिवर्णनम्	३५३
	खखोलकादित्यस्थापनवर्णनम्	३५५

उत्तरार्द्धम्

५१	अरुणवृद्धकेशवविमलगङ्गादित्यानाम्बवर्णनम्	३५७
	केशवादित्यमाहात्म्यवर्णनम्	३५९
	द्वादशादित्यवर्णनोपसंहारः	३६३

(क)

५२	दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णनम्	३६४
	ब्रह्मणःकाशीम्प्रतिगमनवर्णनम्	३६५
	दिवोदासेनब्रह्मणःसत्कारवर्णनम्	३६७
५३	सवाराणसीवर्णनं गणप्रेषणकथनम्	३७०
	घण्टाकर्णप्रेषणवर्णनम्	३७१
	लिङ्गाराधनमहस्ववर्णनम्	३७३
	गणप्रबोधनवर्णनम्	३७५
५४	पिशाचमोचनमहस्ववर्णनम्	३७७
	प्रेतानां वाराणसीप्रवेशनिषेधवर्णनम्	३७९
५५	काशीवर्णनेगणेशप्रेषणवर्णनम्	३८३
	काशीमाहात्म्यकथनम्	३८५
५६	गणेशमायाप्रपञ्चवर्णनम्	३८६
	गणकरूपगणेशेनभविष्यवर्णनम्	३८७
	राज्ञोगणकेनसम्वादवर्णनम्	३८९
५७	दुण्डिचिनायकप्रादुर्भाववर्णनम्	३९१
	दुण्डिस्तुतिवर्णनम्	३९३
	द्वितीयावरणचिनायकवर्णनम्	३९५
	पञ्चावरणगणेशानाम्बुवर्णनम्	३९७
५८	दिवोदासनिर्वाणप्राप्तिवर्णनम्	३९९
	महालक्ष्मीतीर्थमहिमवर्णनम्	४०१
	विष्णुनासौगतरूपधारणवर्णनम्	४०३
	विज्ञानकौमुद्याबौद्धधर्मवर्णनम्	४०५
	पुण्यकीर्तिम्प्रतिदिवोदासेनस्वकर्तव्यवर्णनम्	४०७
	श्रीविष्णुनादिवोदासायसाधुवाददानम्	४०९

(अ)

	दिवोदासेश्वरलिङ्गप्रतिष्ठापनवर्णनम्	४११
५६	पञ्चनदाचिर्मावर्णनम्	४१२
	वेदशिरामुनेराख्यानवर्णनम्	४१३
	धूतपापायाचरार्थतपकरणवर्णनम्	४१५
	धूतपापायाःशिलात्वप्राप्तिवर्णनम्	४१७
	पञ्चनदमहिमवर्णनम्	४१६
६०	विन्दुमाधवाचिर्मावर्णनम्	४२०
	अग्निविन्दुकृतभगवत्स्तवनवर्णनम्	४२१
	काशीभक्तिमाहात्म्यवर्णनम्	४२३
	कार्तिकान्तचातुर्मास्यवर्णनम्	४२५
	विश्वेश्वरनिन्दकनिन्दवर्णनम्	४२७
६१	विन्दुमाधवाचिर्मावर्णनम् विन्दुसम्वादेवैष्णवतीर्थ- माहात्म्यवर्णनञ्च	४२६
	मणिकर्णिकामहस्ववर्णनम्	४३१
	सकपुष्करिणीमाहात्म्यवर्णनम्	४३३
	स्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्	४३५
	नाभितीर्थमहस्ववर्णनम्	४३७
	नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम्	४३६
	विष्णवादिषट्कवर्णनम्	४४१
६२	वृषभध्वजप्रादुर्भाववर्णनम्	४४३
	धर्मवर्तमानुसारिणीदेवसभाकथनम्	४४५
	कपिलधारावर्णनम्	४४७
	वृषभध्वजमाहात्म्यफलवर्णनम्	४४६
६३	ज्यैष्ठेशाख्यानवर्णनम्	४५०

(८)

६३	ईश्वरेणजैगीषव्यसमीपेनन्दीप्रेषणम् ईश्वरेणजैगीषव्यायधरदानवर्णनम्	४५१ ४५३
६४	क्षेत्ररहस्यकथनम् काशीमाहात्म्यवर्णनम् काश्यांपापकरणाद्दुर्गतिवर्णनम् क्षेत्रमाहात्म्यमनु भगवतोऽन्तर्धानवर्णनम्	४५५ ४५७ ४५९ ४६१
६५	पराशरेश्वरादिकन्दुकेशव्याघ्रेश्वरादिलिङ्गसम्भववर्णनम् चिदलोत्पलनामभ्यांपार्वतीसन्दर्शनम् दैत्यदुर्वृत्तशमनायशिवाविर्भाववर्णनम्	४६२ ४६३ ४६५
६६	शैलेशादिलिङ्गनिर्णयवर्णनम् हिमालयद्वारोपायनवर्णनम् कार्पटिकहिमाचलसम्वाद्यवर्णनम् शिवनिर्माणमहत्त्ववर्णनम्	४६७ ४६९ ४७१ ४७३
६७	रत्नेश्वरप्रशंसनवर्णनम् रत्नावल्याःशिवभक्तिवर्णनम् रत्नावलीतापहारकोपायवर्णनम् रत्नावल्यादिसखीनांपरिरम्भणवर्णनम् नागराजकन्यानांसम्वाद्यवर्णनम् वसुभूतिगन्धर्वसमागमनवर्णनम् रत्नेश्वरमहिमश्रवणफलवर्णनम्	४७५ ४७७ ४७९ ४८१ ४८३ ४८५ ४८७
६८	कृत्तिवासःसमुद्भववर्णनम् गजासुरायधरप्रदानम् काश्यांनानालिङ्गस्थितिवर्णनम्	४८८ ४८९ ४९१
६९	अष्टषष्ठ्यायतनसमागमवर्णनम्	४९३

६६	पार्वतीश्वरमहिमवर्णनम्	४६५
	सहस्राक्षेश्वरान्तलिङ्गानाम्बर्णनम्	४६७
	अष्टषष्ठ्यायतनेलिङ्गानाम्बर्णनम्	४६६
	जललिङ्गान्तवर्णनम्	५०१
७०	देवताधिष्ठानवर्णनम्	५०३
	निगडभञ्जनीवर्णनम्	५०५
	चर्ममुण्डादीनाम्बर्णनम्	५०७
७१	दुर्गपराक्रमवर्णनम्	५०६
	कालरात्रिपराक्रमवर्णनम्	५११
	दैत्यानां दुर्गेणसहसम्बादवर्णनम्	५१३
७२	दुर्गवधमनुदेवैवञ्जपञ्जरस्तुतिवर्णनम्	५१६
	दुर्गवधवर्णनम्	५१७
	देवेभ्यो देव्यावरप्रदानवर्णनम्	५१६
	भैरवादीनांपूजनमहत्त्ववर्णनम्	५२१
७३	सक्षेत्रलिङ्गमहिमं उँकारमहिमवर्णनम्	५२३
	काश्यांनानामहालिङ्गस्थितिवर्णनम्	५२५
	उँकारेश्वरमहिमवर्णनम्	५२७
	ब्रह्मकृताशिवस्तुतिवर्णनम्	५२६
	उँकारदर्शनमहत्त्ववर्णनम्	५३१
७४	उँकारमाहात्म्यवर्णनम्	५३३
	शिवगणैः क्षेत्ररक्षावर्णनम्	५३५
	माधव्याः शिवलिङ्गे लयवर्णनम्	५३७
	उँकारेश्वराध्याय श्रवणफलवर्णनम्	५३६
७५	त्रिलोचनाचिर्माचवर्णनम्	५४०

७५	त्रिलोचनमाहात्म्यवर्णनम्	५४१
	त्रिविष्टपदर्शनवर्णनम्	५४३
७६	त्रिलोचनप्रभाववर्णनम्	५४५
	कलरघस्य पारावत्या सम्वाद्घर्णनम्	५४७
	पारावत्योद्वितीयजन्मवर्णनम्	५४९
	नागकन्यानां शिवेन सम्वाद्घर्णनम्	५५१
	विद्याधरस्योद्गाहवर्णनम्	५५३
७७	केदारमहिमाख्यानवर्णनम्	५५५
	वशिष्टेन केदारदर्शनप्रतिज्ञावर्णनम्	५५५
	केदारमहस्त्ववर्णनम्	५५७
७८	धर्मेशमहिमाख्यानवर्णनम्	५५९
	धर्मराज (यम) कृतशिवस्तघनवर्णनम्	५६१
७९	धर्मेशाख्यानवर्णनम्	५६३
	काश्यां मोक्षलक्ष्मीविलासप्रासादमहस्त्ववर्णनम्	५६५
	मणिकर्णिकामाहात्म्यवर्णनम्	५६७
	धर्मेशमहिमवर्णनम्	५६९
८०	विश्वभुजाशाधिनायकप्रशंसने मनोरथतृतीयाव्रताख्यानवर्णनम्	५७०
	पुलोमकन्यायै व्रतविधानवर्णनम्	५७१
	आशान्तिनायकव्रतविधानवर्णनम्	५७३
८१	धर्मशराख्यानवर्णनम्	५७५
	धर्मशराख्याने नानालिङ्गमहिमवर्णनम्	५७७
	धर्मपीठमहस्त्वश्रवणपठनफलवर्णनम्	५७९
८२	वीरेश्वरप्रादुर्भावमित्रजित्पराक्रमवर्णनम्	५८०
	अमित्रजिद्राजस्य राज्ये वैष्णवत्ववर्णनम्	५८१

८२	मलयगन्धिन्याराह्वासमावेशवर्णनम् ज्ञानवेनाऽमित्रजिद्राजस्ययुद्धवर्णनम्	५८३ ५८५
८३	अभीष्टतृतीयायात्रतविधानपुरस्सरंवीरेश्वराविर्भाववर्णनम् मूलनक्षत्रजन्मगतस्यबालस्यत्यागवर्णनम् हंसतीर्थान्तवर्णनम् काशीस्थनानातीर्थवर्णनम्	५८८ ५८९ ५९१ ५९३
८४	वीरेश्वराख्यानवर्णनम् भैरवतीर्थान्तवर्णनम् उमातीर्थवर्णनम्	५९५ ५९७ ५९९
८५	कामेशतीर्थवर्णनपुरस्सरंदुर्वाससेचरप्रदानवर्णनम् गणानांक्रोधवर्णनम्	६०२ ६०३
८६	सत्त्वाष्ट्रोपाख्यानंविश्वकर्मेश्वरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनम् तापसत्त्वाष्ट्रसम्वादावर्णनम् त्वाष्ट्रायशिवचरदानवर्णनम् आनन्दवनमहिमवर्णनम्	६०७ ६०९ ६११ ६१३
८७	दक्षयज्ञप्रादुर्भाववर्णनम् ब्रह्मशिवसम्वादावर्णनम् दक्षयज्ञे दधीचिसम्मन्त्रणवर्णनम् शिवसन्निधिमतृत्ववर्णनम्	६१४ ६१५ ६१७ ६१९
८८	दक्षयज्ञेसतीदेहविसर्जनवर्णनम् सतीशिवसम्वादावर्णनम् देव्यास्वपितृयज्ञगमनवर्णनम्	६२२ ६२३ ६२५
८९	दक्षेश्वरप्रादुर्भाववर्णनम् वीरभद्रवाक्यवर्णनम्	६२८ ६२९

(ण)

८६	विष्णुनामप्रमथगणविनाशवर्णनम्	६३१
	दक्षयज्ञविध्वंसवर्णनम्	६३३
	दक्षेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्	६३५
९०	पार्वतीशवर्णनम्	६३६
९१	गङ्गेश्वरमहिमवर्णनम्	६३८
९२	नर्मदेश्वराख्यानवर्णनम्	६३९
९३	सतीश्वरप्रादुर्भाववर्णनम्	६४१
९४	अमृतेशादिलिङ्गप्रादुर्भाववर्णनम्	६४३
	सिद्धयष्टकवर्णनम्	६४५
९५	व्यासभुजस्तम्भवर्णनम्	६४७
	व्यासकृतशिवस्तववर्णनम्	६४९
९६	व्यासशापविमोक्षणवर्णनम्	६५१
	आनन्दकाननमाहात्म्यवर्णनम्	६५३
	काशीसेवनमहस्ववर्णनम्	६५५
	वाराणसीनिवासिनाप्रशंसावर्णनम्	६५७
	गृहिणीव्याससम्वाद्वर्णनम्	६५९
	धर्मोपदेशवर्णनम्	६६१
	व्यासशापविमोक्षवर्णनम्	६६३
९७	क्षेत्रतीर्थवर्णनम्	६६४
	क्षेत्रे नानालिङ्गवर्णनम्	६६५
	तीर्थमहस्ववर्णनम्	६६७
	तीर्थक्षेत्रमहस्ववर्णनम्	६६९
	क्षेत्रलिङ्गमहस्ववर्णनम्	६७१
	क्षेत्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्	६७३

(त)

६७	क्षेत्रतीर्थाध्यायफलश्रुतिवर्णनम्	६७६
६८	मुक्तिमण्डपगमनवर्णनम्	६८०
	चिष्णवेशङ्करघरदानवर्णनम्	६८१
	महाचिप्रचाण्डालसम्वादावर्णनम्	६८३
	कुक्कुटमण्डपमहत्त्ववर्णनम्	६८५
६९	विश्वेश्वरलिङ्गमहिमाख्यानवर्णनम्	६८६
	विश्वेश्वरलिङ्गप्रशंसावर्णनम्	६८९
१००	समनुक्रमणिकाध्यायवर्णनम्	६९१
	यात्रापरिक्रमवर्णनम्	६९३
	क्षेत्रतीर्थनानापरिक्रमणवर्णनम्	६९५
	काशीखण्डश्रवणमाहात्म्यवर्णनम्	६९७

समाप्तये स्कन्दमहापुराणान्तर्गतस्य चतुर्थकाशीखण्डस्य पूर्वार्धोत्तरार्धयो-
र्विषयानुक्रमणिका

इति चिद्धञ्जनकृपामिलविणी लक्ष्मणदुर्गाभिजन (लक्ष्मणगढ़-स्त्रीकरनिवासि)
ब्रह्मदत्त त्रिवेदि नवलदुर्गवास्तव्य (नवलगढ़-त्रयपुर निवासि)
रामनाथमिश्रदाधीश्वौ
शुभमस्तु सताम्

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

स्कन्दपुराणम्

—:०:—

तस्येदं चतुर्थकाशीखण्डम्प्रारभ्यते

तस्य

पूर्वाद्धम्

प्रथमोऽध्यायः

विन्ध्यवर्धनवर्णनम्

तं मन्महेमहेशानं महेशानप्रियार्भकम् । गणेशानं करिगणेशानाननमनामयम् ॥ १ ॥

भूमिष्ठाऽपि न याऽत्रभृत्खिदिषतोऽप्युच्चैरधःस्थाऽपि या,

या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तवः ।

या नित्यं त्रिजगत्पद्मिन्नतटिनीतीरे सुरैः सेव्यते,

सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायाद्पायाज्जगत् ॥ २ ॥

नमस्तस्मै महेशाय यस्य सन्ध्यातत्रयच्छलात् ।

यातायात प्रकुर्वन्ति त्रिजगत्पतयोऽनिशम् ॥ ३ ॥

अष्टादशपुराणाना कत्तासत्यवतीसुत । सूताप्र कथयामास कथापापापनोदिनीम्

श्रीव्यास उवाच

कदाचिन्नारद श्रीमान् स्नात्वा श्रीनमदाम्भसि ।

श्रामदोङ्कारमभ्यच्य सवद सवदेहिनाम् ॥ ५ ॥

व्रजन् विलोकयाञ्चक्र पुरोविन्ध्यधराधरम् । ससारतापसहारिरेवाचारिपरिष्कृतम्

द्वैरूप्येणापिकुवन्तस्थावरेणचरेणच । साभिरयेनयथाथाख्यामुच्चवसुमतीमिमाम्

रसालय रसालस्तरशोक शोकहारिणम् ।

तालैस्तमालैर्हिन्ताल सालै सवत्र शालितम् ॥ ८ ॥

खपुरे खपुराकार श्रीफलश्राफल किल । गुरुश्रियत्वगुरुभि कपिपिङ्ग कपित्यकै

वन्तश्रिय कुचाकारलकुचश्चमनोहरम् । सुधाफलसमारम्भिरम्भामि परिभासितम्

सुरङ्गश्चापिनारङ्ग रङ्गमण्डपवच्छ्रिय । वानीरैश्चापि जम्बीरैर्बौजपूर प्रपूरितम् ॥

अनिलालोलकङ्कोलवल्लाहल्लीसकायितम् । लवलीलवलीलामिलास्यलीलालयकिल

मन्दान्दोलितकपूरकढलीदलसञ्ज्ञया । विश्रमायश्रमापन्ना नाह्वयन्तमिवाधगान्

पुन्नागमिषपुन्नागपलव करपल्लवै । कलयन्तमिवाऽलोलैर्मल्लिकास्तबकस्तनम् ॥

विदीणदाडिमै स्वान्त दशयन्तनुरागवत् । माधवी धवरूपेणशिल्प्यन्तमिषकानने

उदुम्बररम्बरगरन्तफलमालित । ब्रह्माण्डकोटीविभ्रन्तमन्तमिष सवत ॥ १६

पनसैघननासाभ शुकनास पलाशक । पलाशनाद्विरहिणापत्रत्यकरिवावृतम् ॥

कदम्बवादिनोनीपान् दृष्ट्वाकण्ठकितरिव । समन्ततोभ्राजमान कदम्बककदम्बकै ॥

नमेरुभिश्चमेरुश्चशिखररिचराजितम् । राजादनश्च मदन सदनैरिष कामिनाम् ॥ १९

तटेतटेपटुघ्नरुच्च पटकुटीवृतम् । कुटजस्तवकैभान्तमधिष्ठितबकैरिष ॥ २० ॥

करमदै करीरश्च करञ्जश्चकरम्बक । सहस्रकरवद्धान्तमर्थिप्रत्युद्गत कर ॥ २१ ॥

नीराजितमिषोदुदीप राजचम्पककोरक । सपुष्पशालमलीभिश्चजितपद्माकरश्रियम्

कश्चिच्चलदलेरुच्यैः कश्चित्काञ्चनकेतकैः । कृतमालैर्नकमालैः शोभमानं कश्चित्कश्चित्
कर्कन्धुबन्धुजीवैश्च पुत्रजीवैर्विराजितम् । सतिन्दुकेङ्गुदीमिश्रकरुणैः करुणालयम्
गलन्मधूककुसुमैर्धरारूपधरंहरम् । स्वहस्तमुक्तमुक्ताभिरर्षयन्तमिवाग्निशम् ॥ २५
सर्जाजुनाञ्जनैर्वीजैर्व्यजनैर्वीज्यमानवत् । नारिकेलैः सखजूरेर्धृतच्छत्रमिचाम्बरे
अमन्दैःपिचुमन्दैश्चमन्दारैःकोविदारकैः । पाटलातिन्तिणीघोषटाशाखोटैःकरहाटकैः
उद्वण्डैश्चापिशोहुण्डैरेरण्डैर्गुडपुष्पकैः । बकुलैस्तिलकैश्चैव तिलकाङ्कितमस्तकम्
अक्षैः प्लक्षैःशलुकीभिर्देवदारुहरिद्रुमैः । सदाफलसदापुष्पवृक्षवल्लीविराजितम् ॥
एलालवङ्गमरिचकुलुञ्जवननावृतम् । जम्बाम्रातकमल्लताशैलश्रीपर्णिवर्णितम् ॥
शाकशङ्खवनैर्मयं चन्दनैरकचन्दनैः । हरीतकी-कर्णिकार-धार्त्रीवन-विभूषणम् ॥
द्राक्षावर्लानागवल्लीकणावल्लीशतावृतम् । मल्लिकायूथिकाकुन्दमदयन्तीसुगन्धिन्म
भ्रमद्भ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलङ्कृतम् । अलिच्छलागतं कृष्णं गोपीरन्तुमनेकशः
नानामृगगणाकीर्णनानापक्षिचिनाद्रितम् । नानासरित्सर-स्रोत-पल्लवैःपरितोवृतम्
तुच्छश्रियःस्वर्गभूमीःपरिहायागतेरिव । नानासुरनिकायैश्चविष्वग्भोगेच्छयोषितम्
उत्सृजन्तमिवाध्वयं पत्रपुष्पैरितस्ततः । केकिकेकारखैर्दूरात्कुर्वन्तं स्वागतंकिल
अथसूर्यशताभासं नभसिद्योतिताम्बरम् । नारदं दृष्ट्वाऽश्लोदूरात्प्रत्युज्जगाम तम्
ब्रह्मसुनुवपुस्तेजोदूरीकृतदरीतमाः । तमागच्छन्तमालोक्य मानसं तमउज्जहो ॥
ब्रह्मतेजःसमुद्भूतसाध्वसःसाधुसत्क्रियः । कठिनोपिपरित्यज्यधत्सेमृदुलतांकिल
दृष्ट्वामृदुलतांतस्य द्वैरुप्येऽपि स नारदः । मुमुदे सुतरां सन्तः प्रथयन्ब्राह्मणानसाः ॥
गृहानायान्तमालोक्य गुहंवाऽगुरुमेववा । योऽगुरुनम्रतां धत्ते स गुरुनगुरुगुरुः ॥४१
तं प्रत्युच्यैः शिराः सोऽपि विनम्रतरकन्धरः ।

शैलस्त्विलामिलन्मौलिः प्रणनाम महामुनिम् ॥ ४२ ॥

तमुत्थाप्यकराभ्यामाशीभिरभिनन्द्य च । तदुद्दिष्टासनभेजे मनसोपिसमुच्छ्रितम्
सदध्नामधुनाज्येन नीराद्रार्क्षतदूर्ध्वया । तिलैः कुशैः प्रसूनैस्तमष्टाङ्गाध्यैरपूजयत् ॥
गृहीताध्यैकिलध्रान्तं पादसम्बाहनादिभिः । गतध्रममथालोक्यबभापेऽवनतोगिरिः

अद्यसद्यःपरिहृतं त्वदङ्घ्रिरजसारजः । त्वदङ्गसङ्गिमहसा सहसाऽप्यान्तरं तमः ॥
सफलधिरेहं चाद्य सुविवाद्यद्यमेमुने ! प्राक्कृतैः सुकृतैरद्य फलितं मेचिरार्जितं ॥ ४७

धराधरत्वं कुलिषु मान्यं मेऽद्य भविष्यति ।

इति श्रुत्वा तदा किञ्चिदुच्छ्वस्य स्थितवान्मुनिः ॥ ४८ ॥

पुनरुच्छ्वेलिषरः सम्भ्रमापन्नमानसः । उच्छ्वासकारणं ब्रह्म ब्रूहि सर्वार्थकोविद !
अदृष्टं तवनोदृष्टं यदिष्टं विष्टपत्रये । अनुक्रोशोऽत्रमयिचेदुच्यतां प्रणतोऽस्म्यहम्
त्वदागमनजानन्दसन्दोहैर्मेदुरारवः । अलंनवक्तुमसकृत्थाऽप्येक वदाम्यहम् ॥
धराधरणसामर्थ्यं मेवादीपूर्वपूरुषैः । वर्ण्यते समुदायात्तदहमेको दधे धराम् ॥ ५२ ॥

गौरीगुरुत्वाद्विमवानादिपत्याच्च भूभृताम् ।

सम्बन्धित्वात्पशुपतेः स एको मान्यभृत्सताम् ॥ ५३ ॥

नमेरुःस्वर्णपूर्णत्वाद्ब्रह्मसानुतयाधवा । सुरसङ्गतयावापि कापि मान्योमतो मम ॥
परंशतंनकिंशला इलाकलनकेलयः । इहसन्तिसतां मान्या मान्यास्ते तु स्वभूमिषु
मन्देहदेहसन्देहादुदयंकदयाश्रितः । निपधोनौपधिधरोऽप्यस्तोप्यस्तमितप्रभः ॥
नीलञ्चनीलीनिलयो मन्दरोमन्दलोघनः । सर्पालयःसमलयो रायं नार्वतिरैषतः ॥
हेमकूटत्रिकूटाद्याः कूटोत्तरपदास्तु ते ।

किष्किन्धक्रीञ्चसह्याद्या भारसह्या न ते भुवः ॥ ५८ ॥

इतिचिन्ध्यवचःश्रुत्वा नारदोऽचिन्तयद्भृदि । अखर्वगर्वसंसर्गो न महस्वाय कल्पते
श्रीशैलमुष्याःकिंशलानेहसन्त्यमलश्रियः । येषां शिखरमात्रादि दर्शनं मुक्तयेसताम्
अद्यास्य बलमालोक्य मितिध्यात्वाऽब्रवीन्मुनिः ।

सत्यमुक्तं हि भवता गिरिसारं विवृण्वता ॥ ६१ ॥

परंशैलेषु शैलेन्द्रो मेरुस्त्वाभवमन्यते । मयानिःश्वसितं वैतत्स्वयिचापि निवेदितम्
अथवा मद्विधानां हि केयं चिन्ता महात्मनाम् ।

स्वस्त्यस्तु तुभ्यमित्युक्त्वा ययौ स द्योभवर्त्मनि ॥ ६३ ॥

गतेमुनौतिनिन्दस्वमतीषोद्विग्रमानसः । चिन्तामवापमहतीं चिन्धोबन्धमनोरथः

विन्ध्य उवाच

धिग्जीवितं शास्त्रकलोऽभक्तस्य धिग्जीवितं चोद्यमवर्जितस्य ।

धिग्जीवितं ज्ञातिपराजितस्य धिग्जीवितं व्यर्थमनोरथस्य ॥ ६५ ॥

कथं भुनक्ति स दिवा कथं रात्रौस्वपित्यहो । रहःशर्मकथंतस्ययस्याभिभवन्नरिपोः
 अहोद्वाग्निदवथुस्तथामानसबाधते । बाधतेतुयथाचित्ते चिन्तासन्तापसन्ततिः
 युक्तमुक्तपुराविद्विश्चिन्तामूर्त्तिः सुदारुणा । नभेषर्जलङ्घनैवानचान्यैरुपशाम्यति ॥
 चिन्ताज्वरोमनुष्याणां क्षुधानिद्रांबलंहरेत् । रूपमुत्साहबुद्धिध्रीजीवितञ्जनसंशयः
 ज्वरोव्यतीतेपडहे जीर्णज्वरइहोच्यते । असौचिन्ताज्वरस्तीव्रःप्रत्यहंनचता व्रजेत्
 धन्योधन्वन्तरिर्नात्र चरकश्चरतीहन । नासत्यावपिनाऽसत्यावत्रचिन्ताज्वरे किल
 किंकरोमिहगच्छामिकथंमेरं जयाम्यहम् । उत्प्लुत्यतस्यशिरसिपतामिनपताम्यतः
 शक्रंकोपयतापूर्धमस्मद्गोत्रेण केनचित् । पक्षहीनः कृतोयत्र धिगपक्षस्य चेष्टितम्
 अथवासकथंमेरुस्तथोर्ध्वःस्पर्द्धंतेमया । भूमेभारभृतः प्रायो भवन्ति भ्रान्ति भूमयः
 अलीकवाक्त्वमथवासम्भाष्यंनारदेकथम् । ब्रह्मचारिणिवेदज्ञे सत्यलोकनिवासिनि
 युक्तायुक्तविचारोथ मादृशेनोपयुज्यते । पराक्रमेष्वशक्तानां विचारंगान्ने मनः ॥
 अथवाचिन्तनैरेतैः किद्व्यर्थंविश्वकारकम् । विश्वेशंशरणंयायां समेवुद्धि प्रदास्यति
 अनाथनाथःसर्वेषां विश्वनाथोहिगीयते । क्षणंमनसि सञ्चिन्त्यभवेदित्थमसंशयम्
 पतदेवकरिष्यामि नेष्टंकालविलम्बनम् । विचक्षणैरुपेक्ष्यौन वर्द्धमानौ परामयौ ॥
 मेरुप्रदक्षिणीकुर्यान्नित्यमेव दिवाकरः । सग्रहक्षंगणोनूनं मन्यमानो बलाधिकम् ॥
 इतिनिश्चित्यविन्ध्याद्रिवंबुधेसमृधेक्षणः । अनन्तगगनस्यान्तं कुर्वद्भिः शिखरंरिच
 कंश्चित्साधैविरोधो न कर्तव्यःकेनचित्कचित् । कर्तव्यश्चेत्प्रयत्नेनयथानोपहसेज्जनः

निरुद्धश्च ब्राध्नमध्वानं कृतकृत्य इषाद्रिराट् ।

स्वस्थोऽभवद्बुवाधीना प्राणिनां हि भविष्यता ॥ ८३ ॥

यमद्ययमकर्तासौ दक्षिणंप्रक्रमिष्यति । सकुलीनः सख श्रीमान्समहान्महितःस ख
 याघत्स्वशक्तिं शक्तोऽपि न दर्शयति कर्हिचित् ।

तावत्स लङ्कः संविधां ज्वलनो दारुगो यथा ॥ ८५ ॥

इति चिन्तामहामारं त्यक्त्वा तस्थौ स्थिरोद्यमः ।

आकाङ्क्षमाणस्तरणे रुद्रं ब्राह्मणो यथा ॥ ८६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
पूर्वार्धे चिन्ध्यवर्धनवर्णननाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

सत्यलोकवर्णनम्

व्यास उवाच

सूर्यभात्मास्यजगतस्तस्थुषस्तमसोरिपुः । उदियायोदयगिरौ शुचिः प्रसुमरैः करैः
सम्बर्धयन् सतां धर्मान्यक्कुर्वंस्तामसीं स्थितिम् ।
पद्मिनीं बोधयंस्त्विष्टां रात्रौ मुकुलिताननाम् ॥ २ ॥
हव्यं कव्यं भूतबलिदेवादीनां प्रवर्तयन् । प्राह्णापराह्णमध्याह्नक्रियाकालं विजृम्भयन्
असतां हृदि षक्त्रेषु निर्दिशंस्तमसः स्थितिम् ।
यामिनीकालकलितं जगदुज्जीवयन् पुनः ॥ ४ ॥
यस्मिन्नभ्युदिते जातः सम्यक्पुण्यजनोदयः । अहोपरोपकरणं सद्यःफलतिनेतिचेत्
सायमस्तमितः प्रातः कथं जीवेद्रविः पुनः ।
सानुरागकरस्पर्शैः प्राचीमाश्वस्य खण्डिताम् ॥ ६ ॥
यामंभुत्तवातथाग्नेर्यीं ज्वलन्ती विरहादिषु । लवङ्गैलामृगमदचन्द्रचन्दनचर्षिताम्
ताम्बूलीरागरकौष्टीं द्राक्षास्तबकसुस्तनीम् ।
लवलीवल्लिदोर्बल्लीं कङ्कोलीपल्लवाङ्गुलिम् ॥ ८ ॥
मलयानिलनिःश्वासां क्षीरोदकवराम्बराम् ।

त्रिकूटस्वर्णरत्नाङ्गीं सुबेलाद्रिनिम्बिनीम् ॥ ६ ॥

कावेरीगौतमीजङ्गां चोलचोलांशुकावृताम् ।

सह्यददुरवक्षोजां कान्तीकाञ्चीविभूषणाम् ॥ १० ॥

सुकोमलमहाराष्ट्रीबाग्विलासमनोहराम् ।

अद्यापि न महालक्ष्मीयां विमुञ्चति सद्गुणाम् ॥ ११ ॥

सुदक्षदक्षिणामाशामाशानाथःप्रतस्थिवान् । कमन्तःसर्वप्रवृत्तोहेलयाहेलिकस्यस्त्रम्
न शेकुरप्रतो गन्तुं ततोऽनूरुर्व्यजिज्ञपत् ॥ १३ ॥

अनूरुवाम्

भानो ! मानोन्नतो विन्ध्यो निरुद्धश्च गगनंस्थितः ।

स्पर्धते मेरुणा प्रेप्सुस्त्वद्दत्तान्तु प्रदक्षिणाम् ॥ १४ ॥

अनूरुवाक्यमाकर्ण्यसचिताहृद्यचिन्तयत् । अहोगगनमार्गोपिरुद्धश्चते चातिविस्मयः

व्यास उवाच

सूरःशूरोपिकिकुर्यात्प्रान्तरवर्त्मनिस्थितः । त्वरावानपिकोरुद्धंमार्गमेकोविलङ्घयेत्
राहुवाहुप्रह्वयप्रो यःक्षणनावतिष्ठति । शून्यमार्गे निरुद्धः स किकरोतु विधिर्बली
योजनानांसहस्रेद्वे द्वे शतेद्वे चयोजने । योजनस्यनिमेषार्धाद्यातिसोपिचिरं स्थितः
गतेबहुतिथेकाले प्राच्यौदीच्याभृशादताः । क्षण्डरश्मेःकरव्रातपातसन्तापतापिताः

पाश्चात्या दाक्षिणात्याश्च निद्रामुद्रितलोचनाः ।

शयिता एव वीक्षन्ते सतारग्रहमम्बरम् ॥ २० ॥

अहो नाऽहस्कराभावाग्निशानैवाऽनिशाकरात् ।

अस्तंगतर्क्षाभ्रमसः कः कालस्त्वेष नैक्ष्यते ॥ २१ ॥

ब्रह्माण्डंकिमकाण्डे वै लयमेध्यतितत्कथम् । परापतन्तिनाद्यापिपाराधाराइतस्ततः
स्वाहास्वधावपट्कारवर्जितेजगतीतले । पञ्चयज्ञक्रियालोपाच्चकम्पे भुवनत्रयम् ॥
सूर्योदयात्प्रवर्तन्ते यज्ञाद्याःसकलाःक्रियाः । तामिर्यज्ञभुजांर्तुभिःसचिततत्रकारणम्
चित्रगुप्तादयःसर्वे कालंजानन्तिसूर्यतः । स्थितिसर्गद्विसर्गाणांकारणं केवलं रविः

तत्सूर्यस्य गतिस्तद्भात् स्तम्भितं भुवनत्रयम् ।

यद्यत्र तत्स्थितं तत्र चित्रन्यस्तमिवाखिलम् ॥ २६ ॥

एकतस्तिमिराशैशादेकतस्तुदिवातपात् । बहूनांप्रलयोजातः कान्दिशीकमभूजगत्
इतिव्याकुलितेलोके सुरासुरनरोरगे । आःकिमेतदकाण्डेभृद्गुरुदुर्दुदुषुः प्रजाः ॥ २८
ततःसर्वेसमालोक्य ब्रह्माणंशरणंययुः । स्तुवन्तोविबिधैःस्तोत्रै रक्षरक्षेतिचाद्गुवन

देवा ऊचुः

नमोहिरण्यगर्भाय ब्रह्मणेब्रह्मरूपिणे । अविज्ञातस्वरूपाय कंषल्यायामृताय च ॥
यन्नदेवाविजानन्ति मनोयत्रापिकुण्ठितम् । न यत्रवाक्प्रसरति नमस्तस्मैचिदात्मने
योगिनोयंहृदाकाशे प्रणिधानेननिश्चलाः । ज्योतीरूपंप्रपश्यन्ति तस्मैश्रीब्रह्मणेनमः
कालात्परायकालाय स्वेच्छयापुरुषाय च । गुणत्रयस्वरूपाय! नमः प्रकृतिरूपिणे
विष्णवेसत्वरूपाय रजोरूपायवेधसे । तमसेन्द्ररूपाय स्थितिसर्गान्तकारिणे ॥
नमोबुद्धिस्वरूपाय त्रिधाहंकृतयेनमः । पञ्चतन्मात्ररूपाय पञ्चकर्मेन्द्रियात्मने ॥
नमोमनःस्वरूपाय पञ्चबुद्धीन्द्रियात्मने । क्षित्यादिपञ्चरूपाय नमस्ते विषयात्मने
नमोब्रह्माण्डरूपाय तदन्तर्वर्तिनेनमः । अर्वाचीनपराचीनविश्वरूपाय ते नमः ॥ ३७
अनित्यनित्यरूपाय सदसत्पतयेनमः । समस्तभक्तकृपयास्वेच्छाविष्कृतविग्रह ! ॥
तवनिःश्वसितंवेदास्तवस्वेदोखिलंजगत् । विश्वाभूतानितेपादःशीर्णोद्यौःसमवर्तन
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं लोमानि च वनस्पतिः ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोःसूर्यस्तव प्रभो ! ॥ ४० ॥

त्वमेव सर्वं त्वयि देव ! सर्वं स्तोता स्तुतिः स्तव्य इह त्वमेव ।

ईशात्वयावास्यमिदं हि सर्वं नमोस्तु भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ४१ ॥

इतिस्तुत्वाविधिं देवानिपेतुर्दण्डवत् क्षितौ । परितुष्टस्तदाब्रह्माप्रत्युवाच दिवोकसः

ब्रह्मोवाच

यथार्थयाऽनया स्तुत्या तुष्टोऽस्मि प्रणताः सुराः ।

उत्तिष्ठत प्रसन्नोऽस्मि वृणुध्वं वरमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

यःस्तोष्यत्यनया स्तुत्या भ्रद्धावान् प्रत्यहं शुचिः ।
 मां वा हरं वा विष्णुं वा तस्य तुष्टाः सदा वयम् ॥ ४४ ॥
 दास्यामः सकलान् कामान् पुत्रान्पौत्रान्पशून्वसु ।
 सौभाग्यमायुरारोग्यं निर्भरत्वं रणे जयम् ॥ ४५ ॥

पेहिकामुष्मिकान्भोगानपवर्गंतथाऽक्षयम् । यद्यदिष्टतमंतस्य तत्तत्सर्वं भविष्यति
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपठितव्यः स्तवोत्तमः । अभीष्टदृष्टिख्यातःस्तवोऽयंसर्वसिद्धिदः
 पुनःप्रोवाच तान्वेधाः प्रणिपत्योत्थितान्सुरान् ।
 स्वस्थास्तिष्ठति भो यूयं किमत्रापि समाकुलाः ॥ ४८ ॥

एतेवेदामूर्त्तिधराऽमाविद्यास्तथास्त्रिलाः । सदक्षिणा अमीयज्ञाःसत्यंधर्मस्तपोदमः
 ब्रह्मचर्यमिदंक्षेपाकरुणाभारती त्वियम् । श्रुतिस्मृतीतिहासार्थचरितार्थाअमीजनाः
 नेह क्रोधो न मात्सर्यं लोभः कामोऽधृतिर्भयम् ।
 हिंसा कुटिलता गर्वो निन्दासूयाऽशुचिःकच्चित् ॥ ५१ ॥
 ये ब्राह्मणा ब्रह्मरतास्नपोनिष्ठास्तपोधनाः ।
 मासोपवासपण्मासवानुर्मास्यादिसद्व्रताः ॥ ५२ ॥

पातिव्रत्यरतानार्यो ये चान्ये ब्रह्मचारिणः । ते चामीपश्यतसुरायेषण्डा.परयोपिति
 मातापित्रोरमी भक्ता अर्मागोग्रहणे हताः । व्रतेदानेजपेयज्ञे स्वाध्याये द्विजतर्पणे
 तीर्थतपस्युपकृतौ सदाचारदिकर्मणि । फलाभिलाषिणी बुद्धिर्न यैवान्तेजनाअमी
 गायत्रीजापनिरता अग्निहोत्रपरायणाः । द्विमुखीगोप्रदातारः कपिलादानतत्परः
 निःस्पृहा सोमपा ये वै द्विजपादोदपाश्चये । मृताःसारस्वतेतार्थद्विजशुश्रूपकाश्च ये
 प्रतिग्रहसमर्था हि ये प्रतिग्रहवर्जिताः । त एते मत्प्रिया विप्रास्त्यक्तीर्थप्रतिग्रहाः
 प्रयागे माघमासो यैरुषःस्नातोऽमलात्मभिः । मकरस्थे रवौशुद्धास्तस्मै सूर्यवर्धसः
 वाराणस्यां पाञ्चनदे ऽयहं स्नातास्तु कार्तिके ।
 अमी ते तु शुद्धवपुषः पुण्यभाजोतिनिर्मलाः ॥ ६० ॥
 स्नात्वा तु मणिकर्णिक्यां प्रीणिता ब्राह्मणा धनैः ।

त एते सर्वभोगाद्याः कल्पं स्थास्वन्ति-ऋतुरे ॥ ६१ ॥

ततःकाशीं समासाद्य तेनपुण्येननोदिताः । विश्वेश्वरप्रसादेन मोक्षमेष्यन्त्यसंशयम्
अविमुक्ते कृतं कर्म यदल्पमपि मानवैः । श्रेयोरूपं तद्विपाको मोक्षं जन्मान्तरेष्वपि
अहोवैश्वेश्वरे क्षेत्रे मरणादपि नो भयम् । यत्रसर्वेप्रतीक्षन्ते मृत्युं प्रियमिवातिथिम्
ब्राह्मणेभ्यःकुरुक्षेत्रे यैर्दत्तं वसुनिर्मलम् । निर्मलाङ्गास्तएतेषु तिष्ठन्ति मम सन्निधौ
पितामहं समासाद्य गयायां यःपितामहाः । तर्पिता ब्राह्मणमुखे तेषामेते पितामहाः
न स्नानेन न दानेन न जपेन न पूजया । मल्लोकःप्राप्यते देवाः प्राप्यतेद्विजतर्पणात्
सोपस्कराणि वेश्मानि मुसलोत्खलादिभिः ।

यैर्दत्तानि सशय्यानि तेषा हर्म्याण्यमूनि वै ॥ ६८ ॥

ब्रह्मशाला कारयन्ति वेदमध्यापयन्ति च । विद्यादानञ्चयेकुर्युः पुराणांश्रावयन्तिच
पुराणानि च ये दद्युःपुस्तकानि ददत्यपि । धर्मशास्त्राणियेदद्युस्तेषांवासोऽत्रमेपुरे
यज्ञार्थञ्च विवाहार्थं व्रतार्थं ब्राह्मणाय वै । अखण्डं वसु ये दद्युस्तेऽत्रस्युर्वसुवर्षसः
आरोग्यशालां यःकुर्याद्द्विद्यपोषणतत्परः । आकल्पमत्रचसति सर्वभोगसमन्वितः
मुक्तीकुर्वन्ति तीर्थानि ये चद्रुष्टावरोधतः । ममावरोधे ते मान्या औरसास्तनयादिव
विष्णोर्वा मम वा शम्भोर्ब्राह्मणा एव सुप्रियाः ।

तेषां मूर्त्या वयं साक्षाद्विचरामो महीतले ॥ ७४ ॥

ब्राह्मणाश्चैवगावश्च कुलमेकद्विधाकृतम् । एकत्रमन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरैकत्रतिष्ठति
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्मितं सार्वभौमिकम् ।

येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ७६ ॥

गावःपश्चिमतुलं गावोमङ्गलमुत्तमम् । यासां खुरोत्थितोरेणुर्गङ्गावारिसमो भवेत्
शृङ्गाग्रं सर्वतीर्थानि खुराग्रं सर्वपर्वताः । शृङ्गयोरन्तरे यस्याःसाक्षाद्गौरी महेश्वरी
दीयमानाञ्च गां दृष्ट्वा नृत्यन्तिप्रपितामहाः । प्रीयन्तेऋषयःसर्वे तुष्यामो देवतैः सह
रोरुयन्ते च पापानि दारिद्र्यं व्याधिभिः सह ।

धात्रयः सर्वस्य लोकस्य गावो मातेव सर्वथा ॥ ८० ॥

गवां स्तुत्वा नमस्कृत्य कृत्वा शैव प्रदक्षिणाम् ।

प्रदक्षिणीकृतातेन समद्वीपा वसुन्धरा ॥ ८१ ॥

या लक्ष्मीःसर्वभूतानां याद्वैवेषु व्यवस्थिता । धेनुरूपेणसादेवी मम पापं व्यपोहतु
विष्णोर्बक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा शैव विभावसोः ।

स्वधा या पितृमुख्यानां सा धेनुर्वरदा सदा ॥ ८२ ॥

गोमयंयमुनासाक्षाद्गोमूत्रं नमंदा शुभा । गङ्गाक्षीरंतुयासां वै किं पवित्रमतः परम्
गवामङ्गेषुतिष्ठन्ति भुवनानिचतुर्दश । यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिहलोके परत्र च
इतिमन्त्रंसमुच्चार्य धेनूचां धेनुमेववा । योदद्याद् द्विजवर्याय ससर्वेभ्यो विशिष्यते
मयाच विष्णुनासाद्धं शिवेनच महर्षिभिः । विधायंगोगुणान्नित्पं प्राथनेतिविधीयते
गावो मे पुरतःसन्तु गावो मेसन्तुपृष्ठतः । गावोमेहृदयेसन्तु गवां मध्ये घसाम्यहम्
नीराजयति योऽङ्गानि गवां पुच्छेन भाग्यवान् ।

अलक्ष्मीः कलहो रागास्तस्याङ्गाद्यान्ति दूरतः ॥ ८६ ॥

गोभिर्विप्रैश्चवेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः । अलुब्धैर्दानशीलैश्चसप्तभिर्धार्यतेमही
ममलोकात्परोलोकोवैकुण्ठइतिगीयते । तस्योपरिष्ठात्कौमार उमालोकस्ततःपरम्
शिवलोकस्तदुपरि गोलोकस्तत्समीपतः ।

गोमातरः सुशीलाद्यास्तत्र सन्ति शिवप्रियाः ॥ ६२ ॥

गवां शुश्रूषका ये च गोप्रदा ये च मानवाः । एषामन्यतमेलोकेते स्युःसर्वसमृद्धयः
यत्र क्षीरवहा नद्योयत्र पायसकर्दमाः । न जरय वाधते यत्र तत्र गच्छन्ति गोप्रदाः
श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा ब्राह्मणाः परिकीर्तिताः । तदुक्तास्वारस्वरा इतरे नामधारकाः
श्रुतिस्मृती तु नेत्रे द्वे पुराणं हृदयं स्मृतम् ।

श्रुतिस्मृतिभ्यां हीनोऽन्धः काणस्यादेकया घिना ॥ ६६ ॥

पुराणहीनाद्घृच्छ्रन्यात्काणान्धावपि तौघरौ ।

श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मपुराणे परिगीयते ॥ ६७ ॥

तद्ब्राह्मणायगौर्देयासर्वत्रसुखमिच्छता । न देयाद्विजमात्रायदातारं सोप्यधोनयेत्

यस्यधर्मेऽस्तिजिज्ञासायस्यपापाद्द्वयंमहत् । श्रोतव्यानि पुराणानिधर्ममूलानितेनवै
चतुर्दशसुविद्यासुपुराणंदीपउत्तमः । अन्धोऽपिनतदालोकात्संसाराब्धौकश्चित्पतेत्

श्रोतव्यानि पुराणानि वस्तव्यं जाह्नवीतटे ।

तर्पणीया द्विजा नित्यं ममलोकेऽसुभिःसदा ॥ १०१ ॥

इत्युद्देशान्मयाख्याता सत्यलोकव्यवस्थितिः ।

अभयं यद्गयातीर्तां न भेतव्यञ्च हेसुराः ! ॥ १०२ ॥

स्पर्धते मेरुणाविन्ध्यो ब्रधनाध्वपरिरोधकृत् । तदर्थमागतायूयं तदुपायं दिशामिवः

ब्रह्मोवाच

अस्त्यगस्त्यस्तप्यमानस्तपउग्रंमहातपाः । मैत्रावरुणिराधाय सिसंविश्वेश्वरेविभौ
अविमुक्ते महाश्रेत्रे सर्वेषां मुक्तिहेतुके । तारकस्योपदेशार्थंविश्वेशाऽधिष्ठितेस्वयम्
यावध्वं तत्र गत्वा तं स वः कार्यं विधास्यति ।

तेनैकदाऽचिता लोका घातापील्वलभक्षणान् ॥ १०६ ॥

अनिमित्रं तत्र तेजो मित्रावरुणजे मुनी । तदाप्रभृतिलोकेषु कोगस्त्याश्रं वभिम्यति
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे वेधास्तेऽपि प्रमुदिताननाः ।

देवाः परस्परं प्रोचुरहो धन्यतमा वयम् ॥ १०८ ॥

प्रसङ्गतोपिद्रष्टव्यौ काशीकाशीपतीशिवौ । अहोअहोभिर्बहुभिःफलितो नो मनोरथः
उत्फुल्लपद्मनयना निर्मिताः सुकृताथिनः । तावेवचरणौ धन्यौकाशीमभिप्रयायिनौ
येयं कथा श्रुताऽस्माभिर्वेधसा समुद्धारिता ।

तस्याः श्रवणजात्पुण्यात्प्राप्तुमस्मदद्य काशिकाम् ॥ १११ ॥

एका क्रियादुर्व्यर्थकरी प्राप्यते पुण्यगौरवात् ।

एवं वदन्तो हृष्टास्याः सुराः कार्शीं समाययुः ११२ ॥

व्यास उवाच

इदंपुण्यतमाख्यानं ये श्राप्यन्तीहमानवाः । विधूय सर्वपापानिपुत्रदारसमन्विताः
इह वंशं परिस्थाप्य भुक्त्वा सर्वसुखानि च ।

सत्यलोके चिरस्थित्वा ततो यास्यन्ति शाश्वतम् ॥ ११४ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां सतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वाद्धे सत्यलोकवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

अगस्त्याश्रमवर्णनम्

सूत उवाच

भगवन् ! भूतभव्येश! सर्वज्ञानमहानिधे ! । अवाप्यकाशीं गीर्वाणैः किमकारिवदाच्युत
अधीत्येमां कथां दिव्यां न तृप्तिमधियाम्यहम् ।
शेवधिस्तपसां देवैरगस्तिः प्रार्थितः कथम् ॥ २ ॥
कथं विन्ध्योप्यवाप स्वां प्रकृतिं तादृगुन्नतः ।
तव वागमृताम्भोधौ मनो मे स्नातुमुत्सुकम् ॥ ३ ॥
इति कृत्स्नं समाकर्ण्य ध्यासः पाराशरो मुनिः ।
श्रद्धावते स्वशिष्याय वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ४ ॥

पाराशर उवाच

शृणुसूत! महाबुद्धे! भक्तिश्रद्धासमन्वितः । शुक्लैशम्पायनाद्याः शृण्वन्त्वेते स्वबालकाः
ततो वाराणसीं प्राप्य गीर्वाणाः समहर्षयः । अचिलम्बं प्रथमतो मणिकर्ण्यम् विधानतः
सखेलमभिमज्ज्याथ कृतसन्ध्यादिसत्क्रियाः ।
सन्तर्प्यं तर्प्यां विपितुं कुशगन्धतिलोदकैः ॥ ७ ॥
तीर्थवासार्थिनः सर्वान् सन्तर्प्यं च पृथक् पृथक् ।
रत्नैर्हिरण्यवासोभिरभवाभरणधेनुभिः ॥ ८ ॥

विचित्रैश्च तथा पात्रैः स्वर्णरौप्यादिनिर्मितैः । अमृतस्वादुपकान्नाः पायसं च सशर्करैः

सगोरसैरन्यदानैर्धान्यदानैरनेकधा । गन्धचन्दनकपूर् रस्तामकूलैश्चारुधामरैः ॥ १० ॥
 सतूलैर्मृ दुपर्यङ्कैर्वीपिकादर्पणासनैः । शिबिकादासदासीभिर्विमानैः पशुभिर्गृहैः ॥
 विश्वध्वजपताकाभिरुलोचैश्चन्द्रचारुभिः । वर्षाशनप्रदानैश्च गृहोपस्करसंयुतैः ॥
 उपानत्पादुकाभिश्च यतिनश्च तपस्विनः । योग्यैःपटदुकूलैश्च विविधैश्चित्ररत्नैः ॥
 दण्डैःकमण्डलयुतैरजिनैर्मृगसम्भवं । कौपीनैरुद्यमञ्जैश्च परिवारककाञ्चनैः ॥ १४ ॥
 मठैर्विद्यार्थिनामन्नैरतिथ्यर्थमहाधनैः । महापुस्तकसम्भारैर्लेखकानाञ्च जीवनैः ॥ १५ ॥
 बहुधौवधदानैश्च सत्रदानैरनेकशः । प्रीप्तेप्रपाथद्रुषिणैर्हेमन्तेऽग्निष्ठिकेभ्यः ॥ १६ ॥
 छत्राच्छादनिकाद्यर्थे वर्षाकालेचितैर्वहु । रात्रौपाठप्रदीपैश्च पादाभ्यञ्जनकादिभिः ॥
 पुषाणपाठकांश्चापि प्रतिदेवालयं धनैः । देवालये नृत्यगीतकरणार्थैरनेकशः ॥ १८ ॥
 देवालयसुधाकार्यैर्जीर्णोद्धारैरनेकधा । चित्रलेखनमूल्यैश्च रङ्गमालादिमण्डनैः ॥
 नीराजनैर्गुग्गुलिभिर्दशाङ्गादिसुधूपकैः । कपूर्ववर्तिकाद्यैश्च देवाचार्यैरनेकशः ॥ २० ॥
 पञ्चामृतानां स्नपनैः सुगन्धस्नपनैरपि । देवार्थं मुखवासैश्च देवोद्यानैरनेकशः ॥
 महापूजार्थमाल्यादिगुम्फनार्थैस्त्रिकालतः । शङ्खभेरीमृदङ्गादिषाद्यनादैः शिवालये
 घण्टागडुककुम्भादिस्नानोपस्करभाजनैः । श्वेतमार्जनवस्त्रैश्च सुगन्धैर्यक्षकर्दमैः ॥
 जपहोमैः स्तोत्रपाठैः शिवनामोच्चभाषणैः । रासक्रीडादि संयुक्तैश्चलनैःस प्रदक्षिणैः
 एवमादिभिरुद्दण्डैः क्रियाकाण्डैरनेकशः ।

पञ्चरात्रमुपित्वा तु कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥ २५ ॥

दीनानाथांश्च सन्तर्प्यन्तवाचिश्वैश्वरंविभुम् । ब्रह्मचर्यादिनियमैस्तीर्थैःषंप्रसाध्यच
 पुनः पुनर्विश्वनाथं दृष्ट्वा स्तुत्वा प्रणम्य च । जग्मुःपरोपकारार्थमगस्तित्यत्र तिष्ठति
 स्वनाम्ना लिङ्गमास्थाप्य कुण्डं कृत्वा तदग्रतः ।

शतरुद्रियसूक्तेन जपन्नश्चलमानसः ॥ २८ ॥

तं दृष्ट्वा दूरतोदेवाद्वितीयमिवभास्करम् । ज्वलज्ज्वलनसङ्काशैरङ्गैःसर्वत्रसोज्ज्वलम्
 साक्षात्किम्बाडवाग्निर्वामूर्त्याचैतप्यतेतपः । स्थाणुषश्चिन्नलतरनिर्मलंसन्मनोयथा
 अथवा सर्वतैर्जांसि श्रित्वेमां ब्राह्मणीं तनुम् ।

शीलयन्ति परं धाम शान्तं शान्तपदास्तये ॥ ३१ ॥

तपभस्तप्यतेऽत्यर्थं दहनोपिहि दह्यते । यत्तीव्रतपसाद्यापि चपलाऽचपलाऽभवत् ॥

यस्याश्रमेऽत्र दृश्यन्ते हिंसा अपि समन्ततः ।

सत्त्वरूपा अमी सत्त्वास्त्यक्त्वा वैरं स्वभावजम् ॥ ३३ ॥

शुण्डादण्डेन करटिःसिंहं कण्डूयतेऽभयः । अष्टापदाङ्के स्वपितिकेसरीकेसरोद्धटः
सूकरः स्तब्धरोमापि विहायनिजयूथकम् । चरेद्वनशुनांमध्येमुस्तान्यस्तेक्षणोबली
भूदारोपिनभूदारंतथाकुर्याद्यथाऽन्यतः । सर्वाल्लिङ्गमयीकाशी यतस्तद्गीतियन्त्रितः
कोडीकृत्य क्रोडपोतंतरभुः क्रीडयत्यहो । शार्दूलबालानुत्सार्य शार्दूलीमेणपोतकः
चलत्पुच्छोद्य पिषति फेनिलेनाननेन वै । स्वपन्तं लोमशं भल्लं धानरश्चलदङ्गुलिः

यूकां सम्वीक्ष्य वीक्ष्यैव भक्षयेद्वन्तकोटिभिः ।

गोलाङ्गूला रक्तमुखा नीलाङ्गायूथनायकाः ॥ ३६ ॥

जातिस्वभावमात्सर्यं त्यक्तवैकरत्रमन्ति च । शशाःक्रीडन्तिचवृकैस्तैःपृष्ठलुण्ठनैर्मुहुः
आखुञ्चाखुभुजःकर्णं कण्डूयेतचलाननः । मयूरपुच्छपुटगो निद्रान्योतुःसुखाधिकम्
स्वकण्ठधर्यत्येव केकिकण्ठे भुजङ्गमः । भुजङ्गमफटापृष्टे नकुलः स्वकुलोचितम्
वैरं परित्यज्य लुटेदुत्प्लुत्योत्प्लुत्य लीलया ।

आलोक्य भूषकं सर्पश्चरन्तं वदनाप्रतः ॥ ४३ ॥

शुधान्धोऽपि न गृह्णाति सोऽपि तस्माद्बिभेति नो ।

प्रसूयमानां हरिणीं दृष्ट्वा कारुण्यपूर्णदृक् ॥ ४४ ॥

तद्दृष्टिपातंमुञ्चन्वैव्याग्रोदूरं व्रजत्यहो । व्याघ्रीव्याघ्रस्यचरितंमृगीमृगविचेष्टितम्

उभे कथयतोऽन्योन्यं सख्याधिच मुदान्विते ॥ ४५ ॥

दृष्ट्वाप्युद्दण्डकोदण्डं शबरं शम्बरोमृगः । धृष्टो न वर्त्मन्यजतिसोपिकण्डूयतेऽपितम्
रोहितोऽरण्यमहिषमुद्धर्षतिनिराकुलः । चमरी शबरीकेशैः संमिमीते स्वबालधिम
गवयः शल्यकश्चाऽयमुभावेकत्रतिष्ठतः । तीव्रमात्सर्यमुत्सृज्यमुनितैजोनियन्त्रितौ
हुण्डीचमुण्डयुद्धायनसज्जेतेजयैषिणी । एणशाब्धंशृगालोऽपि मृदुस्पृशतिपाणिना

तृण्वन्ति तृणगुल्मादीञ्छ्रापदास्त्वापदास्पदम् ।

लोकद्वये दुःखदं हि धिक्त्तन्मांसस्य भक्षणम् ॥ ५० ॥

यः स्वार्थं मांसपचनं कुरुते पापमोहितः । यावन्त्यस्य तुरोमाणि तावत्सनरकेषसेत्
परप्राणैस्तु ये प्राणान् स्वान्पुष्णन्ति हि दुर्धियः ।

आकल्पं नरकान् भुक्त्वा ते भुज्यन्तेऽत्रतैः पुनः ॥ ५२ ॥

जातुमांसं न भोक्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि । भोक्तव्यं तर्हि भोक्तव्यं स्वमांसं नेतरस्य च
वरमेते भ्वापदाद्यै मैत्रावरुणिसेवया । येषान्नाहि सने बुद्धिर्न तु हिंसापरा नराः ॥

यकोपि पल्वले मत्स्यान्नाश्नात्यग्रे चरानपि ।

न महान्तोऽप्यमहतो मत्स्यामत्स्यानदन्ति वै ॥ ५५ ॥

एकतः सर्वमांसानि मत्स्यमांसं तथैकतः ।

स्मृतिः स्मृतेति किन्त्वेभिरतो मत्स्याञ्जहत्यर्मा ॥ ५६ ॥

श्येनोपि घृतिकां द्रष्टुं भवत्येव पराङ्मुखः । चित्रमत्रापि मधुपाप्लमन्ति मलिनाः श्याः
सुचिरं नरकान् भुक्त्वामदिरापापलम्पटा । मधुपा एव जायन्ते भ्रान्तिभाजः पुनः पुनः
अतएव पुराणेषु गाथेति परिगीयते । स्फुटार्थात्र पुराणज्ञैर्ज्ञात्वा तत्त्वं पिनाकिनः
क मांसं क शिवे भक्तिः क मद्यं क शिवाचनम् । मद्यमांसरतानाञ्च दूरेतिष्ठति शङ्करः
विनाशिवप्रसादं हि भ्रान्तिः कापिन नश्यति । अतएव भ्रमन्त्येते भ्रमराः शिववर्जिताः
इत्याश्रमचरान् द्रष्टुं तिर्यञ्चोपि मुनीनिव । अबोधि विबुधैरित्थं प्रभाषक्षेत्रजस्त्वयम्
यतो विश्वेश्वरेणैते तिर्यञ्चोप्यत्र वासिनः । निधनावसरे मोच्यास्तारकस्योपदेशतः
ज्ञात्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं यो वसेत् कृतनिश्चयः ।

तं तारयति विश्वेशो जीवन्तमथवा मृतम् ॥ ६४ ॥

अचिमुक्तरहस्यज्ञामुच्यन्ते ज्ञानिनो नराः । अज्ञानिनोपि तिर्यञ्चोमुच्यन्तः गतकिल्बिषाः
इत्याश्चर्यपरादेवा यावद्यान्त्याश्रमं मुनेः । तावत्पक्षिकुलं द्रष्टुं भृशं मुमुदिरे पुनः ॥
सारसोलक्ष्मणाकण्ठे कण्ठम धाय निश्चलः । मन्यामहे न निद्राति ध्यायेद्विश्वेश्वरं किल
कण्डूयमानां वरटा स्वघञ्जुपुटकोटिभिः । हंसं कामयमानं तु वारयेत्पक्षधूननैः

निस्त्रयमानाचक्रेणचकीक्रेड्ढितभाषणैः । वदतीतिकमत्रापिकामिताकामिनाम्बर

कलकण्ठः किलोत्कण्ठं मञ्जु गुञ्जति कुञ्जगः ।

ध्यानस्थः श्रोष्यति मुनिः पारावत्येति वार्यते ॥ ७० ॥

केकी केकां परित्यज्य मौनं तिष्ठति तद्वयात् ।

चकोरश्चन्द्रिकामोका नक्तप्रतमिवास्थितः ॥ ७१ ॥

पठन्ती सारिकासारं शुकंसम्बोधयत्यहो । अपारावारसंसार सिन्धुपारप्रदः शिवः

कोकिलःकोमलालापैः कलयन् किल काकलीम् ।

कलिकालौ कलयतः काशिस्थाध्वेति भाषते ॥ ७३ ॥

मृगाणांपक्षिणामित्यंद्मृष्ट्रचेष्टांत्रिविष्टपम् । अकाण्डपातसंकष्टंनिनिन्दुस्त्रिदशाबहु

घरमेते पक्षिमृगाः पशवःकाशिवासिनः । येषां न पुनरावृत्तिर्नदेवा न पुनर्भवाः ॥

काशीस्थैः पतितैस्तुल्या न वयं स्वर्गिणःकश्चित् ।

काश्यां पाताद्द्वयं नास्ति स्वर्गे पाताद्द्वयं महत् ॥ ७६ ॥

घरं काशीपुरीवासो मासोपवसनादिभिः ।

विचित्रच्छत्रसञ्छायं राज्यं नान्यत्र नीरिपु ॥ ७७ ॥

शशकैर्मशकैःकाश्यांयत्पदंहेलयाप्यते । तत्पदं नाप्यतेऽन्यत्र योगयुक्त्यापियोगिभिः

घरं घाराणसीरङ्को निःशङ्को यो यमादपि । नवयंत्रिदशायेषांगिरितोऽपीदृशीदशा

ब्रह्मणोदिवसाष्टांशे पदमैन्द्रं चिनश्यति । सलोकपालं सार्कञ्च स चन्द्रग्रहतारकम्

परार्धद्वयनाशेऽपि काशीस्थो यो न नश्यति ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन काश्यां श्रेयः समाचरेत् ॥ ८१ ॥

यत्सुखंकाशिवासेऽन्नतद्ब्रह्माण्डमण्डपे । अस्तिचेत्तत्कथंसर्वेकाशीवासाभिलाषुकाः

जन्मान्तरसहस्रेषुयत्पुण्यंलमुपाजितम् । तत्पुण्यपरिवर्तेन काश्यांवासोऽत्रलभ्यते

लब्धोऽपि सिद्धिं नो यायाद्यदि क्रुद्धेष्टत्रिलोचनः ।

तस्माद्भिश्चेभ्वरं नित्यं शरण्यं शरणं ब्रजेत् ॥ ८४ ॥

धर्मार्थकाममोक्षार्थ्यंपुरुषार्थ्यंचतुष्टयम् । अखण्डंहियथाकाश्यांनतथान्यत्रकुत्रचित्

आलस्येनाऽपि यो यायाद् गृहाद्विश्वेश्वरालयम् ।

अश्वमेधाधिको धर्मस्तस्य स्याच्च पदे पदे ॥ ८६ ॥

यःस्नात्वोत्तरवाहिन्यांयातिविश्वेशदर्शने । श्रद्धयापरयातस्यश्रेयसोन्तो न विद्यते
स्वधुं नीदर्शनात्स्पर्शात्स्नानादाचमनादपि । सन्ध्योपासनतोऽज्यात्तर्पणादेवपूजनात्
पञ्चतीर्थावल्लोकाच्च ततोविश्वेश्वरेक्षणात् । श्रद्धास्पर्शनपूजाभ्यां धूपदीपादिदानतः
प्रदक्षिणैस्तोत्रजपैर्नमस्कारैस्तुनर्तनैः । देवदेवमहादेव! शम्भो! शिष्यशिवेति च ॥
धूर्जटे! नीलकण्ठेश! पिनाकिञ्छशिखरे! । त्रिशूलपाणे! विश्वेश! रक्षरक्षेतिभाषणैः
मुक्तिमण्डपिकायाञ्च मिमेषार्थोपवेशनात् । तत्रधर्मकथालापात् पुराणश्रवणादपि
नित्यादिकर्मकरणात्तथातिथिसमर्चनैः । परोपकरणाद्यैश्च धर्मस्त्याहुत्तरोत्तरः ॥
शुक्लपक्षे यथा चन्द्रः कलया कलयैष्यते । एवं काश्यां निषसतां धर्मराशिः पदेपदे

श्रद्धाधीजो विप्रपादाम्बुसिक्तः शाखाविद्यास्ताश्चतस्रो दशापि ।

पुष्पाप्यर्था द्वे फले स्थूलसूक्ष्मे मोक्षःकामो धर्मवृक्षोऽयमीड्यः ॥ ९५ ॥

सर्वार्थानामत्र दात्री भवानी सर्वान् कामान्पूरयेदत्र दुण्डिः ।

सर्वाञ्जन्तून् मोक्षयेदन्तकाले विश्वेशोऽत्रश्रोत्रमन्त्रोपदेशात् ॥ ९६ ॥

काश्यां धर्मस्तच्चतुष्पादरूपः काश्यामर्थः सोप्यनेकप्रकारः ।

काश्यांकामः सर्वसौख्यैकभूमिः काश्यां श्रेयस्तत्तु किं नात्र यच्च ॥ ९७ ॥

विश्वेश्वरो यत्र न तत्र चित्रं धर्माथंकामामृतरूपरूपः ।

स्वरूपरूपः स हि विश्वरूपस्तस्मान्न काशीसद्गुणी त्रिलोकी ॥ ९८ ॥

इतिब्रुवाणा गीर्वाणा ददृशुस्तूटजं मुनेः । होमधूपसुगन्धाढ्यं षट्पुत्रिंशद्भुविभुं तम्

श्यामाकाञ्जलियाञ्ज्रार्थमृषिकन्यानुयायिभिः ।

धृतोपग्रहदर्भास्यैर्मुं गशावैरलङ्कृतम् ॥ १०० ॥

साद्रं वल्कलकौपीनैर्वृक्षशाखावलम्बिभिः ।

बद्धुं विघ्नमृगान् दिक्षु वागुराभिरिवावृतम् ॥ १०१ ॥

पतिव्रताशिरोरत्नलोपासुद्राङ्घ्रिमुद्रया । मुद्रितं वीक्ष्य सन्नेसुःपर्णशालाऽङ्गणंसुराः

विसर्जितसमाधिञ्च धृतकर्णाक्षमालिकम् । अधिष्ठितवृसीपृष्ठं परमेष्ठिवदुत्कटम्
पुरोऽगस्त्यं समालोक्यसर्वे देवाः सवासवाः । प्रहृष्टवदनाः प्रोचुः प्रोच्चैर्जयजयेति च
मुनिरुत्थाय तान्सर्वांनुपावेश्य यथोचितम् ।

आशीर्भिरभिनन्द्याथ प्रपच्छाऽऽगमकारणम् ॥ १०५ ॥

व्यास उवाच

इदं पुण्यतमाख्यानं श्रुत्वाभक्तिसमन्वितः । पठित्वा पाठयित्वा च व्रतश्रद्धावताम्पुरः
विधूय सर्वपापानि ज्ञात्वाऽज्ञात्वा कृतान्यपि । हंसवर्णनयानेन गच्छेच्छिवपुरं ध्रुवम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया चतुर्थे काशीखण्डे

ऽगस्त्याश्रमवर्णननाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

पतिव्रताख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

मुनिपृष्ठास्तदा देवा भगवंस्ते किमब्रुवन् । सर्वलोकहितार्थाय तदा ख्याहि महामुने!

श्रीव्यास उवाच

अगस्निवचनं श्रुत्वा बहुमानपुरस्सरम् । धिपणाधिपतेरास्यं विबुधाव्यालुकिरे
वाक्पतिरुवाच

शृण्वगस्ते महाभाग देवा गमनकारणम् । धन्योसि कृतकृत्योसि मान्योसि महतामपि
प्रत्याश्रमं प्रतिनगं प्रत्यरण्यं तपोधनाः । किन्नरान्तिमुनिश्रेष्ठकाश्चिदन्यैव ते स्थितिः

तपोलक्ष्मीस्त्वयीहाऽस्ति ब्राह्मं तेजस्त्वयि स्थिरम् ।

पुण्यलक्ष्मीस्त्वयि परा त्वय्यौदार्यं मनस्त्वयि ॥ ५ ॥

पतिव्रतेयं कल्याणी लोपामुद्रासधर्मिणी ।

तवाङ्गच्छायया तुल्या यत्कथा पुण्यकारिणी ॥ ६ ॥

पतिव्रतास्वरुन्धत्या सावित्र्याऽप्यनसुयया ।

शाण्डिल्यया च सत्या च लक्ष्म्या च शतरूपया ॥ ७ ॥

मेनयाचसुनीत्याचसङ्गयास्वाहयातथा । यशंशा वर्ण्यनेश्रेष्ठानतथान्येति निश्चितम्
भुङ्क्तेभुङ्क्तेवयिमुनेतिष्ठतित्वयितिष्ठति । विनिद्रितेच निद्राति प्रथमं प्रतिबुध्यते
अनलङ्कृतमात्मानं तवनो दर्शयेत्कचित् । कार्याथं प्रोषितेकापि सर्वमण्डनवर्जिता
न च ते नामगृह्णीयात्तवायुष्यविवृद्धये । पुरुषान्तरनामापि न गृह्णाति कदाचन ॥
आकृष्टाऽपिनष्ठाकोशेताडितापिप्रसीदति । इदंकुरुकृतंस्वामिन्मन्यतामितिवक्तव्यं
आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छति सत्वरम् ।

किमर्थं व्याहृता नाथ! स प्रसादो विधीयताम् ॥ १३ ॥

नचिरं तिष्ठतिद्वारि न द्वारमुपसेवते । अद्रापितन्त्वयाकिञ्चित्कस्मैचिन्नददात्यपि
पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत्स्वयम् । नियमोदकवर्होपि पत्रपुष्पाक्षतादिकम्
प्रतीक्षमाणवावसरं यथाकालोचितं हि यत् । तदुपस्थापयेत्सर्वमनुद्विज्ञातिहृष्टवत्
सेवतेभर्तुं रुच्छिष्टमिष्टमन्नं फलादिकम् । महाप्रसादइत्युक्त्वा पतिदत्तं प्रतीच्छति
अविभज्य न चाश्रीयाद्देवपित्रतिथिष्वपि । परिचारकवर्गेषु गोषु भिक्षुकुलेषु च ॥
संयतोपस्करादक्षा हृष्टाव्ययपराङ्मुखी । कुर्यात्स्वयाननुज्ञाता नोपवासव्रतादिकम्
दूरतो वज्रयेदेवा समाजोत्सवदर्शनम् । न गच्छेत्सीर्थयात्रादिबिवाहप्रेक्षणादिषु ॥
सुखंसुप्तं सुखीसीनं रममाणंयद्गच्छया । आन्तरेष्वपिकार्येषुपतिनोत्थापयेत्कचित्
स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् ।

स्वचाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नाता न शुद्धितः ॥

सुस्नाता भर्तुष्वदनमीक्षतेऽन्यस्य न क्वचित् ।

अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं चिलोकयेत् ॥ २३ ॥

हरिद्रां कुङ्कुमश्लेषं सिन्दूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकञ्चनाम्बूलंमाङ्गल्याभरणं शुभम्
केशसंस्कारकशरीकरकर्णादिभूषणम् । भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता

नरजम्भानहैतुक्या तथाश्रमणया न च । न च दुर्भंगया कापि सखित्वं कुरुते सती
भर्तुं विद्वेषिणीं नारीं नैषा सम्भाषते क्वचित् ।

नैकाकिनी क्वचिद् भूयान्न नग्ना स्नाति च क्वचित् ॥ २७ ॥

नोलूखलेन मुसले न वर्द्धन्यां दूषद्यपि । न यन्त्रके न देहल्यांसतीचोपविशोत्कचित्
विना व्यवयसमयं प्रागल्भ्यं न क्वचिच्चरेत् । यत्र यत्र रुचिर्भर्तुस्तत्रप्रेमवती सदा
इदमेव व्रतं स्त्रीणामयमेव परो वृषः । इयमेका देवपूजाभर्तुर्वाक्यं न लङ्घयेत् ॥

क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव वा ।

सुस्थितं दुःखितं वापि पतिमेकं न लङ्घयेत् ॥ ३१ ॥

हृष्टा हृष्टे विषण्णास्या विषण्णास्ये प्रिये सदा ।

एकरूपा भवेत्पुण्या सम्पत्सु च विपत्सु च ॥ ३२ ॥

सर्पिलंबणतैलादिक्षयेऽपि च पतिव्रता । पतिं नास्तीतिनब्रूयादायासेषु न योजयेत्
तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ।

शङ्करादपि विष्णोर्वा पतिरेकोऽधिकः स्त्रियः ॥ ३४ ॥

व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्य या चरेत् । आयुष्यं हरतेभर्तुर्मृता निरयमृच्छति
उक्ता प्रत्युत्तरं दद्याद्या नारीक्रोधतत्परा । सरमाजायते ग्रामे शृंगाली निर्जने वने ॥
स्त्रीणां हि परमक्षेको नियमःसमुदाहृतः । अभ्यर्च्यं चरणौभर्तुर्भोक्तव्यंकृतनिश्चयम्
उच्चासनं न सेवेत न व्रजेत्परवेश्मसु । न त्रपाकरवाक्यानि वक्तव्यानि कदाचन ॥

अपवादो न वक्तव्यः कलहं दूरतस्त्यजेत् ।

गुरुणां सन्निधौ कापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वा हसेत् ॥ ३६ ॥

या भर्तारं परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः । उलूकी जायतेकूरा वृक्षकोटरशायिनी
ताडिता ताडितुं चेच्छेत्सा व्याघ्री वृषदंशिका ।

कटाक्षयति याऽन्यं वै केकराक्षी तु सा भवेत् ॥ ४१ ॥

याभर्तारंपरित्यज्यमिष्टमश्नातिकेवलम् । ग्रामेवासूकरीभूयाद्भ्रूलुर्धापिस्वधिद्भुजा
यात्वंकृत्वाप्रियं व्रते मूका सा जायते खलु । या सपत्नीं सदर्प्येतदुर्भंगासापुनःपुनः

दृष्टिं विलुप्यभर्तुर्याकञ्चिदन्यसमीक्षते । काणाच्च विमुखाचापिकुरूपाचापिजायते
 बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरिताच्चजलाशनैः । ताम्बूलैर्ध्वजनैश्चैवपादसंवाहनादिभिः
 तथैवचाटुषचनैः खेदसन्नोदनैः परैः । या प्रियं प्रीणयेत्प्रीतात्रिलोकी प्रीणिता तथा
 मितं ददाति हिपितामितंभ्रातामितं सुतः । अमितस्यहिदातारं भर्तारंपूजयेत्सदा
 भर्ता देवो गुरुभर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च । तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकसमर्चयेत्
 जीवहीनो यथा देहः क्षणादशुचिना व्रजेत् ।

भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिः सदा ॥ ४६ ॥

अमङ्गलेभ्यः सर्वेभ्यो विधवा त्यक्तमङ्गला ।

विधवा दर्शनात्सिद्धिः कापि जातु न जायते ॥ ५० ॥

विहायमातरम्बेकासर्वामङ्गलवर्जिताम् । तदाशियमपि प्राञ्जस्त्यजेदाशाविषोपमाम्
 कन्याविवाहसमयेवाश्वेयुरितिद्विजाः । भर्तुः सहचरीभूयाज्जीवतोऽजीवतोऽपिवा
 भर्ता सदाऽनुयातव्यो देहवच्छायया स्त्रिया ।

चन्द्रमाज्योत्सना यद्वद्विद्युत्बान् विद्युता यथा ॥ ५३ ॥

अनुव्रजति भर्तारं गृहात्पितृवनं मुदा । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्
 व्यालप्राही यथा व्यालं बलादुद्धरतेबिलात् ।

एषमुत्क्रम्य दूतेभ्यः पति स्वर्गं नयेत्सती ॥ ५५ ॥

यमदूताः पलायन्ते सतीमालोक्यदूरतः । अपिदुष्कृतकर्माणंसमुत्सृज्य च तत्पतिम्
 न तथाधिर्भामोषह्ने नंतथाविद्युतोयथा । आपतन्तीसमालोक्य वयं दूताःपतिव्रताम्
 तपनस्तप्यतेत्यन्तं दहनोपि च दह्यते । कम्पन्तेसर्वतेजांसि द्रष्टुं पातिव्रतं महः
 यावत्स्वलोमसङ्ख्याऽस्ति तावत्कोट्ययुतानि च ।

भर्त्रा स्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणा पतिव्रता ॥ ५६ ॥

धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः ।

धन्यःस च पतिः श्रीमान्येषां गेहे पतिव्रता ॥ ६० ॥

पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः ।

पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते ॥ ६१ ॥

शीलभङ्गेनदुर्वृत्ताः पातयन्तिकुलत्रयम् । पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रचदुःखिताः
पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम् । तत्रेतिभूमिर्मन्येत नात्रभारोस्ति पावनी
विभ्यत्पतिव्रतास्पृशं कुरुते भानुमानपि ।

सोमो गन्धवहश्चापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ॥ ६४ ॥

आपः पतिव्रतास्पृशंभिलप्यन्ति सर्वदा ।

अथ जाड्यविनाशो नो जातास्त्वद्याऽन्यपावनाः ॥ ६५ ॥

गृहेगृहे न किं नार्यो रूपलावण्यगर्विताः । परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यतेस्त्रीपतिव्रता
भार्यामूलंगृहस्थस्यभार्यामूलंसुखस्यच । भार्या धर्मफलावाप्त्यैभार्यासन्तानवृद्धये
परलोकास्त्वयंलोकोजीयतेभार्यया द्वयम् । देवपित्रतिथीज्यादिनाभार्यःकर्मषार्हति
गृहस्थः सहिविज्ञेयायस्यगेहे पतिव्रता । प्रसतेऽन्याप्रतिपदं राक्षस्या जरयाथवा
यथा गङ्गाऽवगाहेनशरीरंपावनं भवेत् । तथा पतिव्रता दृष्ट्याशुभया पावनं भवेत्
अनुयाति न भर्तारंयदिदेवात्कथञ्चन । तत्रापि शीलंसंरक्ष्यं शीलभङ्गात्पतत्यधः
तद्वैशुण्यादपिस्वर्गात्पतिःपतति नान्यथा । तस्याःपिताममातामभ्रातृषगंस्तथैधच
पत्योमृतेक्षयायोषिद्वैधव्यंपालयेत्कचित् । सापुनःप्राप्यभर्तारंस्वर्गभोगान्समश्नुते
विधवाकबरीबन्धो भर्तृबन्धाय जायते । शिरसोवपनं तस्मात्कार्यंविधवयासदा
एकाहारः सदाकार्यो नद्वितीयः कदाचन । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा पक्षव्रतमथापिवा
मासोपवासंचाकुर्याच्चान्द्रायणमथापिवा । षष्ठ्यंपराकं वा कुर्यात्सप्त षष्ठ्यमथापि वा
यवान्नैर्वाफलाहारैःशाकाहारैः पयोव्रतैः । प्राणयात्रांप्रकुर्वीतयावत्प्राणः स्वयं व्रजेत्
पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् ।

तस्माद्भूशयनं कार्यं पतिसौख्यसमीहया ॥ ७८ ॥

न चाङ्गोद्वर्तनंकार्यंस्त्रियाविधवया क्वचित् । गन्धद्रव्यस्यसंयोगोर्नैवकार्यंस्तथापुनः
तर्पणंप्रत्यहं कार्यंभर्तुः कुशतिलोदकैः । तत्पितुस्तत्पितृशुभापिनामगोत्रादिपूर्वकम्
विष्णोस्तु पूजनं कार्यं पतिबुद्ध्या न चान्यथा ।

पतिमेव सदा ध्यायेद्विष्णुरूपधरं हरिम् ॥ ८१ ॥

यद्यदिष्टतमलोके यच्चपत्युःसमीहितम् । तत्तद्गुणधतेदेयं पतिप्रीणनकाम्यया
वैशाखे कार्तिकेमाघेविशेषनियमांश्चरेत् । स्नानंदानं तीर्थयात्रां विष्णोर्नामग्रहंमुहुः
वैशाखेजलकुम्भाश्चकार्तिकेष्टुनदीपकाः । माघेप्रान्यतिलोत्सर्गःस्वर्गलोकेविशिष्यते
प्रपाकार्या चवैशाखे देवेदेयागलन्तिका । उपानद्व्यजनंछत्रं सूक्ष्मवासांसिचन्दनम्
सकपूरञ्जनाम्बूलं पुष्पदानं तथैव च । जलपात्राण्यनेकानितथा पुष्पगृहाणि च ॥

पानानि च विचित्राणि द्राक्षारम्भाफलानिच ।

देयानि द्विजमुख्येभ्यः पतिर्मे प्रीयतामिति ॥ ८७ ॥

ऊर्जे यवाभ्रमशनायादेकाभ्रमथवा पुनः । वृन्ताकं सूरणञ्चैव शुक्कशिम्बी च वर्जयेत्
कार्तिके वर्जयेत्तैलं कार्तिके वर्जयेन् मधु ।

कार्तिके वर्जयेत्कांस्यं कार्तिके चापि सन्धितम् ॥ ८९ ॥

कार्तिकेमौननियमे घण्टाञ्चक्रप्रदापयेत् । पत्रभोजीकांस्यपात्रं घृतपूर्णप्रयच्छति
भूमिशय्याव्रतेदेया शय्याश्लक्षणा सत्तुलिका । फलत्यागेफलदेयं रसत्यागेचतद्रसम्
धान्यत्यागे च तद्धान्यमथवा शालयः स्मृताः ।

धेनूर्दद्यात्प्रयत्नेन सालङ्काराः सकाञ्चनाः ॥ ९२ ॥

एकतः सर्वदानानिदीपदानं तथैकतः । कार्तिके दीपदानस्यबलां नार्हन्तिषोडशीम्
किञ्चिदभ्युदिते सूर्ये माघस्नानं समाचरेत् ।

यथाशक्त्या च नियमान् माघस्नार्थी समाचरेत् ॥ ९४ ॥

पकाभ्रंभोजयेद्विप्रान् यतिनोऽपि तपस्विनः ।

लड्डुकैः फेणिकाभिश्च घटकेण्डरिकादिभिः ॥ ९५ ॥

घृतपक्वैः समरिषैः शुष्कपूरुवासितैः । गर्मशर्करयापूर्णेर्नेत्रानन्दैः सुगन्धिभिः ॥
शुष्केन्धनानांभारांश्चदद्याच्छीतापनुत्तये । कञ्चुकन्तुलगर्मञ्चतुलिकांसूपधीतिकाम्
मञ्जिष्ठारक्तवासांसि तथातुलवनीपटीम् । जातीफललवङ्गैश्च ताम्बूलानिबहून्यपि
कम्बलानि विचित्राणि निर्वातानि गृहाणि च ।

मृदुलाः पादरक्षाश्च सुगन्ध्युद्धर्त्तनानि च ॥ ६६ ॥

घृतकम्बलपूजाभिर्महास्नानपुरः सरम् । कृष्णागुरुप्रभृतिभिर्गर्भागारे प्रधूपनैः ॥
स्थूलवर्तिप्रदीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा । भर्तृस्वरूपो भगवान् प्रीयतामिति चोच्चरेत्
एवंविधैश्च विधवा विविधैर्नियमैर्ब्रतैः । वैशाखान्कार्तिकान्माघानेवमेवातिवाहयेत्
नाधिरोहेदनड्वाहं प्राणैः कण्ठगतैरपि । कञ्चुकन्नपरीदध्याद्वासोनविकृतन्यसेत्
अपृष्ट्वा तु सुतान्किञ्चिन्नकुर्याद्भर्तृ तत्परा । एवं चर्यापरानित्यं विधवापि शुभा मता
एवंधर्मसमायुक्ता विधवापि पतिव्रता । पतिलोकानवाप्नोति न भवेत्कापि दुःखभाक्
न गङ्गाया तथा भेदो या नारी पतिदेवता । उमाशिवसमासाक्षात्तस्मात्तां पूजयेद्बुधः

बृहस्पतिरुवाच

गङ्गास्नानफलं त्वेतद्यज्ञातं तव दर्शनम् । लोपामुद्रे ! महामातर्भर्तृ पादाभुजेक्षणे !

इति स्तुत्वा महाभागां राजपुत्रीं पतिव्रताम् ।

प्रणम्य च गुरुः प्राह मुनिं सर्वार्थकोविदः १०८ ॥

प्रणवस्त्वं श्रुतिरियं क्षमैषात्वं स्वयंतपः । सत्क्रियेयं फलं त्वं हि धन्योसीति महामुने
इदं पातिव्रतं तेजो ब्रह्मनेजो भवान् परम् । तत्राप्येतत्पस्तेजः किमसाध्यतमं तव ॥
तव नाचिदितं किञ्चित्थापि च वदाम्यहम् । यदधमागता देवाऽस्तन्मुनेऽन्ननिशामय

अयं शतमखः श्रीमान् वृत्रहा कुलिशायुधः ।

सिद्धयष्टकं हि यद् द्वारि द्रुक्प्रसादं समीक्षते ॥ ११२ ॥

यस्य पुर्याः परिसरे कामधेनुव्रजश्चरेत् । यत्पौराः कल्पवृक्षाणां नित्यं छायासुशेरेते
यद्द्रव्यासु च तिष्ठन्ति ते चिन्तामणिकर्कराः । अयमग्निर्जगद्योनिर्धर्मराजस्त्वयं पुनः
निर्ऋतिर्वरुणो वायुः श्रीदरुद्रादयस्त्वमी । आराध्यन्ते च चारित्रैः सर्वकामार्थमीश्वराः

समभ्यर्थयितारोऽमी त्वं याच्यस्तु जगत्कृते ।

वाङ्मात्रोद्यमसाध्यन्तत् तव विश्वोपकारकम् ॥ ११६ ॥

कश्चिच्छैलो विन्ध्यनामा भानुमार्गात्परीधकेः ।

वर्धितः स्पर्धया मेरोस्तद्बृद्धिं त्वं विकरय ॥ ११७ ॥

ये च स्वभावकठिना ये च मार्गावरोधकाः ।

ये स्पर्धया वृद्धिमन्तस्तद्वृद्धिर्बधिताऽशुभा ॥ ११८ ॥

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यमविचार्यमहामुनिः । क्षणंमुनिःसमाधाय तथेतिप्रत्युवाच ह
साधयिष्यामि वः कार्यं विसर्जेति दिवोकसः ।

पुनश्चिन्तापरो भूत्वाऽगस्तिर्ध्यानपरोऽभवत् ॥ १२० ॥

वेदव्यास उवाच

इमंपतिव्रताऽध्यार्यश्रुत्वास्त्रीपुरुषोपिवा । पापकञ्चुकमुत्सृज्यशकलोकंप्रयास्यति
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पतिव्रताख्यानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

अगस्त्यप्रस्थानवर्णनम्

पाराशर उवाच

ततोऽध्यानेनविश्वेशमालोक्यसमुनीश्वरः । सूत प्रोवाचतां पुण्यांलोपामुद्रामिदंबधः
अयिपश्यवरारोहे किमेतत्समुपस्थितम् । क तत्कार्यं क चवयंमुनिमार्गानुसारिणः
येनगोत्रमिदागोत्रा विपक्षाहेलया कृताः । भवेत्कुण्ठितसामर्थ्यःसकथं गिरिमात्रके

कल्पवृक्षोऽङ्गणे यस्य कुलिशं यस्य चायुधम् ।

सिद्धचष्टकं हि यद् द्वारि स सिद्धं च प्रार्थयेद् द्विजम् ॥ ४ ॥

क्रियन्ते व्याकुलाःशैला अहो दावाग्निनाऽपि ये ।

तद्वृद्धिस्तम्भने शक्तिः क गता साऽऽशुशुक्षणेः ॥ ५ ॥

नियन्ता सर्वभूतानांयोसौदण्डधरःप्रभुः । स किं दण्डयितुं नालमेकंतं प्रावमात्रकम्
आद्रित्या वसवो रुद्रास्तुषिताः समरुद्रणाः ।

विश्वेदेवास्तथा दक्षौ ये चान्येपि दिवोकसः ॥ ७ ॥

येषां द्रुक्पात्रमात्रेण पतन्ति भुवनान्यपि । ते किं समर्थानोकान्ते!नगवृद्धिनिषेधने

आह्वातं कारणं तच्च स्मृतं वाक्यं सुभाषितम् ।

काशीमुद्दिश्य यद्रीतं मुनिभिस्तस्वदर्शिभिः ॥ ६ ॥

अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः ।

किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति काश्यांनिवसतां सताम् ॥ १० ॥

उपस्थितोऽयं कल्याणि! सोऽन्तरायो महानिह ।

न शक्यते ऽन्यथाकर्तुं विश्वेशो विमुखो यतः ॥ ११ ॥

काशीद्विजाशीर्भिरहो यदात्ता कस्तां मुमुक्षुर्यदिवा मुमुक्षुः ।

प्रासं करन्थं स विसृज्य हृद्यं स्वकूपरं लेढि विमूढचेताः ॥ १२ ॥

अहोजना यालिशवटिकमेतां काशीं त्यजेयुः सुकृतैकराशिम् ।

शाल्दककन्दः प्रतिमज्जनं किं लभेत तद्गुवत्सुलभा किमेषा ॥ १३ ॥

भवान्तरावर्जितपुण्यराशिं कृच्छ्रैर्ममहद्विर्हावगम्य काशीम् ।

प्राप्यापि किं मूढधियोऽन्यतो वै यियासवो दुर्गतिमुधियासवः ॥ १४ ॥

क काशिका विश्वपदप्रकाशिका क कार्यमन्यत्परितोऽतिदुःखम् ।

तत्पण्डितोन्यत्र कुतः प्रयाति किं जातिकूप्माण्डफलं ह्यजास्ये ॥ १५ ॥

काशीं प्रकाशीकृतपुण्यराशिं हा शीघ्रनाशी विसृजेन्नरः किम् ।

नूनं स्वनूनं सुकृतं तदीयं मदीयमेवं विवृणोति चेतः ॥ १६ ॥

नरो न रोगी यदिहाऽबिहाय सहायभूतां सकलस्य जन्तोः ।

काशीमनाशीः सुकृतैकराशिमन्यत्र यातुं यतता न चान्यः ॥ १७ ॥

चित्रस्तपापात्रिदशैर्दुरापां गङ्गा सदापां भवपाशशापााम् ।

शिवाविमुक्ताममृतैकशुक्तिं मुक्ता विमुक्तां न परित्यजति ॥ १८ ॥

हं होकिमंहोनिचिताः प्रलब्धा बंहीयसायासभरणेण काशीम् ॥ ।

प्रभूतपुण्यद्रविणैकपण्यां प्राप्याऽपि हित्वा क्व च गन्तुमुद्यताः ॥ १६ ॥

अहो जनानां जडता विहाय काशीं यदन्यत्र नयन्ति चेतः ।
 परिस्फुरद्वाङ्मज्जलाभिरामां कामारिशूलाग्रधृतां लयेपि ॥ २० ॥
 रेरे भवे शोकजलैकपूर्णं पापेस्मलोकाः पतिताब्धिमध्ये ।
 विद्राणनिद्राणविरोधिपापां काशीं परित्यज्य तरिं किमर्थम् ॥ २१ ॥
 न सत्पथेनापि न योगयुक्तया दानैर्न वा नैष तपोभिरुग्रैः ।
 काशीद्विजाशीभिर्हो सुलभ्या किं वा प्रसादेन च विश्वभर्तुः ॥ २२ ॥
 धर्मस्तु सम्पत्तिभरैः किलोह्यतेप्यर्थो हि कामैर्बहुदानभोगकैः ।
 अन्यत्र सर्वं स च मोक्ष एकः काश्यां न चान्यत्र तथा यथात्र ॥ २३ ॥
 क्षेत्रं पवित्रं हि यथाऽविमुक्तं नान्यस्तथा यच्छ्रुतिभिः प्रयुक्तम् ।
 न धर्मशास्त्रैर्न च तैः पुराणैस्तस्माच्छरण्यं हि सदाऽविमुक्तम् ॥ २४ ॥
 स होवाचेति जाबालिरारुणेऽसिरिडा मता ।

वरणा पिङ्गला नाडी तदन्तस्तच्चविमुक्तकम् ॥ २५ ॥

सासुषुम्णापरानाडी त्रयंवाराणसीत्वसौ । तदत्रोत्क्रमणेसर्वजन्तूनां हि श्रुतौहरः
 तारकं ब्रह्म व्याचष्टे तेन ब्रह्मभवन्ति हि । एवं ऋको भवत्येव आहुर्वेवेदवादिनः ॥
 भगवानन्तकालेऽत्र तारकस्योपदेशतः । अविमुक्तेस्थिताऽतून्मोचयेन्नात्र संशयः ॥
 नाविमुक्तसमं क्षेत्रं नाविमुक्तसमागतिः । नाविमुक्तसमंलिङ्गं सत्यं सत्यं पुनः पुनः
 अविमुक्तं परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुते रतिम् ।

मुक्तिं करतलान्मुक्तवा सोऽन्यां सिद्धिं गवेषयेत् ॥ २० ॥

इत्थं सुनिश्चित्य मुनिर्महात्मा क्षेत्रप्रभावं श्रुतितः पुराणात् ।
 श्रीविश्वनाथेन समं न लिङ्गं पुरी न काशीसदृशी त्रिकोट्याम् ॥ ३१ ॥
 आकालराजञ्च ततः प्रणम्य विज्ञापयामास मुनीशवर्यः ।
 आपृच्छनायाहमिहागतोस्मि धीकाशिपुर्यास्तु यतः प्रभुस्त्वम् ॥ ३२ ॥
 हा कालराजप्रतिभूतमत्र प्रत्यष्टमिप्रत्यवनीसुतार्कम् ।
 नाराधयेमूलफलप्रसूनैः किं मय्यनागस्यपराधदृक्स्याः ॥ ३३ ॥

हा कालभैरव! भवानमितोभयार्तान्मामेष्ट चेतिभणनेःस्वकरं प्रसार्य ।
 मूर्ति विधाय विकटां कटुपापभोक्त्रीं वाराणसीस्थितजनान्परिपातिकिं न
 हे यक्षराज! रजनीकरवारुमूर्ते! श्रीपूर्णभद्रसुतनायकदण्डपाणे !।
 त्वं वै तपोजनितदुःखमवैपि सर्वं किं मां बहिर्नयसिकाशिनिवासिरक्षिन् ॥
 त्वमन्नदस्त्वं किल जीवदाता त्वं ज्ञानदस्त्वं किलमोक्षदोऽपि ।
 त्वमन्त्यभूषांकुरूपे जनानां जटाकलापैरुदरगोन्द्रहारैः ॥ ३६ ॥
 गणौत्वदीयौ किल सम्भ्रमोद्भ्रमावत्रस्थवृत्तान्तविचारकोविदी ।
 सम्भ्रान्तिमुत्पाद्यपरामसाधून् क्षेत्रात्क्षणं दूरयतस्त्वमुमात् ॥ ३७ ॥
 शृणु प्रभो! दुण्डविनायकस्त्वं वाचं मदीयां तु रटाम्यनाथवत् ।
 त्वत्स्थाः समस्ताः किलविघ्नपूगाः किमत्र दुर्वृत्तवदास्थितोऽहम् ॥ ३८ ॥
 शृण्वन्त्वमी पञ्चविनायकाश्च चिन्तामणिश्चापि कर्पादिनामा ।
 आशागजाख्यौ च विनायकौ तौ शृणोत्वसौसिद्धिं विनायकश्च ॥ ३९ ॥
 परापवादो न मया किलोक्तः परापकारोपि मयाकृतो न ।
 परस्वबुद्धिः परदारबुद्धिः कृता मया नात्र क एष पाकः ॥ ४० ॥
 गङ्गात्रिकालंपरिसेविता मया श्रीचिश्वनाथोपि सदा विलोकितः ।
 यात्राः कृतास्ताः प्रतिपर्वं सर्वतः कोयं विपाको मम विघ्नहेतुः ॥ ४१ ॥
 मातर्विशालाक्षि! भवानि! मङ्गले! ज्येष्ठे! शिसौभाग्यविधानसुन्दरि! ।
 विश्वे! विधे! विश्वभुजे! नमोऽस्तुते श्रीचित्रघण्टे! विकटे! च दुर्गिके ! ॥ ४२ ॥
 साक्षिण्य एताः किल काशिदेवताः शृण्वन्तु नस्वार्थमहं व्रजाम्यतः ।
 अभ्यर्थितो देवगणैः करोमि किं परोपकाराय न किं विधीयते ॥ ४३ ॥
 दधीचिरस्थीनि न किं पुरा ददौ जगत्त्रयं किं न द्दोऽर्थिने बलिः ।
 दत्तः स्म किं नो मधुकैटमौ शिरो बभूव ताक्ष्योऽपि च विष्णुघाहनम् ॥ ४४ ॥
 आपृच्छन् सर्वान् समुनीन् मुनीश्वरः सबालवृद्धानपि तत्र वासिनः ।
 तृणानि वृक्षांश्च लताः समस्ताः पुरीं परिक्रम्य च निर्ययी च ॥ ४५ ॥

प्रोषितस्य परितोऽपि लक्षणैर्नीचवर्त्मपरिवर्तिनोपि वा ।

खन्द्रमौलिमवलोक्य यास्यतः कस्यसिद्धिरिह नो परिस्फुरेत् ॥ ४६ ॥

वरं हि काश्यां तृणवृक्षगुल्मकाञ्चरन्ति पापं न चरन्ति नान्यतः ।

वर्यचराणां प्रथमा धिगस्तु नो वाराणसीं हाऽद्य विहाय गच्छतः ॥ ४७ ॥

असि ह्यपस्पृश्य पुनः पुनर्मुनिः प्रासादमालाः परितोविलोकयन् ।

उवाच नेत्रे सरले प्रपश्यतं काशीं युवां क्व क्व पुरीत्वियं यत ॥ ४८ ॥

स्वैरं हसन्त्वद्य विधाय तालिका मिथःकरेणापि करं प्रगृह्य ।

सीमा चराभूतगणात्रजाम्यहं विहाय काशीं सुकृतैकराशिम् ॥ ४९ ॥

इत्थं विलप्य बहुशःस मुनिस्त्वगस्त्वस्तत्क्रीञ्चयुगमघदहो अवलासहायः ।

मूर्च्छामवापमहतीं चिरहीच जल्पन् हाकाशि!काशि! पुनरेहिचदेहिदृष्टिम्

स्थित्वा क्षणं शिवशिवेति शिवेतिचोत्त्वा,

यावःप्रियेति कठिनाहि दिवौकसस्ते ।

किं न स्मरेत्त्रिजगतीसुखदानदक्षं व्यक्षं प्रहित्यमदनं यदकारि तैस्तु ॥

यावद्द्वजैट्त्रिचतुराणिपदानिखेदात्स्वेदोद्विन्दुकणिकाञ्चितभालदेशः ।

प्रत्युद्गमाऽकरणतः किल मे विनाशस्तावद्वराभयभरादिवसं चुकोच्च ॥५२॥

तपोयानमिवाह्व्य निमेषार्धेन वै मुनिः । अग्रे ददर्श तं विन्ध्यं रुद्राम्बरमथोन्नतम्

चकम्पे चाचलस्तूर्णं दृष्ट्वाप्रस्थितं मुनिम् ।

तप्रगस्त्यं सपत्नीकं वातापीत्वलवैरिणम् ॥ ५४ ॥

तपःक्रोधसमुत्थान्यांकाशीविरहजन्मना । प्रलयानलवत्तीव्रज्वलन्तंत्रिभिरग्निभिः

गिरिःखर्बतरोभूत्वाविचिभुरवनीमिव । आज्ञाप्रसादःक्रियतांकिङ्करोस्मीतिचाब्रवीत्

अगस्त्य उवाच

विन्ध्य! साधुरसि प्राज्ञ! माञ्च जानासि तत्त्वतः ।

पुनरागमनं चेन्मे तावत् खर्बतरो भव ॥ ५७ ॥

इत्युत्त्वा दक्षिणामाशां सनाथामकरोन्मुनिः ।

निजेश्वरणविन्यासैस्तयासाध्व्या तपोनिधिः ॥ ५८ ॥

गते तस्मिन्मुनिवरेवेपमानस्तदागिरिः । पश्यत्युत्कण्ठमिषचगतश्चेत्साध्वभूस्ततः
अद्य जातःपुनरहं न शतो यदगस्तितना । न मया सदृशोधन्य इति मेने सचं गिरिः ॥

अरुणोऽपि च तत्काले कालज्ञोऽश्वानकालयत् ।

जगत्स्वास्थ्यमवापोच्चैः पूर्ववद्भानुसञ्चरैः ॥ ६१ ॥

अद्य श्वो वा परश्वो वाप्यागमिष्यति वै मुनिः ।

इति चिन्तामहाभारंगिरिराक्रान्तवत्स्थितः ॥ ६२ ॥

नाद्यापि मुनिरायाति नाद्यापिगिरिरेधते । यथा खलजनानां हि मनोरथमहीरुहः ॥
विवर्धिषतियो नीचःपरासूयांसमुद्ग्रहन् । दूरे तद्वृद्धिवातास्ताम्प्राग्बृद्धेरपि संशयः

मनोरथा न सिद्धध्येयुः सिद्धा नश्यन्त्यपि ध्रुवम् ।

खलानां तेन कुशलविश्वं विश्वेशरक्षितम् ॥ ६५ ॥

विधवानांस्तनायद्दृष्टुद्येवचिलयन्ति च । उन्नम्योन्नम्यतत्रोच्चैस्तद्वत्खलमनोरथाः
भवेत्कूलङ्कषायद्ददलपवर्षेण कन्नदी । खलधिरेलपवर्षेण तद्वत्स्यात्स्वकुलङ्कषा ॥
अविज्ञायान्यसामर्थ्यं स्वसामर्थ्यं प्रदर्शयेत् । उपहासमवाप्नोति तथैवायमिहाचलः

ध्यास उवाच

गोदावरीतटं रम्यं विचरन्नपि वै मुनिः । नतत्याज च तं तापं काशीचिरहजं परम्
उदीचीदिक् स्पृशमपि स मुनिर्मातरिभ्वनम् ।

प्रसार्य बाहुसंश्लिष्यः काश्याःपृच्छेदनामयम् ॥ ७० ॥

लोपामुद्रेन सामुद्राकापीह जगतीतले । धाराणस्याःप्रदृश्येत तत्कर्तानयतो विधिः

क्वचित्तिष्ठन् क्वचिज्जल्पन् क्वचिद्वावन् क्वचित्स्खलन् ।

क्वचिच्चोपविशंश्चेति बध्नामेतस्ततो मुनिः ॥ ७२ ॥

ततो ब्रजन् ददर्शाऽग्रे पुण्यराशिस्तपोधनः ।

चञ्चच्चन्द्रशताभासां भाग्यवानिव सुश्रियम् ॥ ७३ ॥

विजित्य भानुना भानुं दिवापि समुदित्वराम् ।

निर्वापयन्तीमिव तां स्वचेतस्तापसन्ततिम् ॥ ७४ ॥

तत्रागस्तयो महालक्ष्मीं दद्रुहो सुचिरं स्थिताम् ।

रात्रावञ्जेषुसङ्कोषोदर्शेष्वञ्जः कश्चिद्ब्रजेत् । क्षीरोदमन्दरत्रासात्तदत्राध्युषितामिव
यदारभ्यदधारैनां माधवो मानतः किल । तदारभ्य स्थितां नूनं सपत्नीर्ष्यावशादिव
त्रैलोक्यं कोलरूपेण त्रासयन्तं महासुरम् । विनिहत्यस्थितां तत्र रम्ये कोलापुरेपुरे
सम्प्राप्याथमहालक्ष्मीं मुनिवर्यः प्रणम्य च । तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिरिष्टदां हृष्टमानसः

अगस्तिरुवाच

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि! श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि! विश्वमातः ॥

क्षीरोदजे! कमलकोमलगर्भगौरि! लक्ष्मि! प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥ ८० ॥

त्वं श्रीरुपेन्द्रसदनेमदनैकमातज्योत्स्नासि चन्द्रमसिचन्द्रमनोहरास्ये ॥

सूर्यप्रभाऽसि च जगत्त्रितयेप्रभासि लक्ष्मि! प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥

त्वं जातवेदसि सदा दहनात्मशक्तिर्वेधास्त्वयाजगदिदं विविधं विदध्यात् ।

विश्वम्भरोऽपि विभ्र्यादखिलं भवत्या लक्ष्मि! प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥

त्वच्यक्तमेतदमले हरते हरोपि त्वं पासि हंसि विद्धासि परावरासि ।

ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या लक्ष्मि! प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥ ८३

शूरः स एष स गुणी स बुधः स धन्यो मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः ।

एकः शुचिः स हि पुमान् सकलेपि लोके यत्रापतेत्तव शुभे! करुणाकटाक्षः ॥ ८४ ॥

यस्मिन्वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे खेणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽग्रे ।

रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धरायां सश्रीकमेव सकले तदिहास्तिनान्यत् ॥ ८५ ॥

त्वत्स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत त्वच्यक्तमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मि !

त्वन्नाम यत्र च सुमङ्गलमेव तत्र श्रीविष्णुपत्नि! कमले! कमलालयेऽपि ॥ ८६ ॥

लक्ष्मीं ध्रियञ्च कमलां कमलालयाञ्च पद्मां रमां नलिनयुग्मकराञ्च माञ्च ।

क्षीरोदजामृतकुम्भकराभिराञ्च विष्णुप्रियामितिसदा जपतां क दुःखम् ॥ ८७ ॥

इतिस्तुत्वा भगवतीं महालक्ष्मीं हरिप्रियाम् ।

प्रणनाम सपत्नीकः साष्टाङ्गं दण्डवन्मुनिः ॥ ८८ ॥

श्रीरुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते मित्रावरुणसम्भव !। पतिव्रते! त्वमुत्तिष्ठ लोपामुद्रे! शुभव्रते!
स्तुत्यानया प्रसन्नाहं द्वियतां यद्वधृदीप्सितम् । राजपुत्रिमहाभागो त्वमिहोपविशामले

त्वदङ्गलक्षणैरेभिः सुपवित्रंश्च ते व्रतैः ।

निर्वापयितुमिच्छामि दैत्यास्त्रैस्तापितां तनुम् ॥ ९१ ॥

इत्युक्त्वा मुनिपत्नीं तां समालिङ्ग्य हरिप्रिया ।

अलञ्जकार च प्रीत्या बहुसौभाग्यमण्डनैः ॥ ९२ ॥

पुनराह मुने जाने तव हस्तापकारणम् । स चेतनं दुनोत्येव काशीविश्लेषजोऽनलः ॥

यदा सदेवो विश्वेशो मन्दरंगतवान् पुरा । तदा काशीचियोगेन जाता तस्यैदृशीदशा
तत्प्रवृत्तिं पुनर्जातुं ब्रह्माणं केशवं गणान् । गणेश्वरञ्च देवांश्च प्रेषयामास शूलधृक्

ते च काशीगुणान् सर्वे विचार्य च पुनः पुनः ।

व्रजन्त्यद्यापि न कापि तादृगस्ति क वा पुरी ॥ ९६ ॥

इति श्रुत्वाथ स मुनिः प्रत्युवाच श्रियं ततः । प्रणिपत्य महाभागो भक्तिगर्भमिदं वचः

यदि देवो धरो मह्यं धरयोग्योऽस्म्यहं यदि । तदा वाराणसीप्राप्तिः पुनरस्त्वेषमे धरः

ये पठिष्यन्ति च स्तोत्रं त्वद्गतया मत्कृतं सदा ।

तेषां कदाचित्सन्तापो माऽस्तु माऽस्तु दरिद्रता ॥ ९९ ॥

माऽस्तु चेष्टचियोगश्च माऽस्तु सम्पत्तिसंक्षयः ।

सर्वत्र विजयश्चाऽस्तु विच्छेदो माऽस्तु सन्ततेः ॥ १०० ॥

श्रीरुवाच

पवमस्तु मुने! सर्वं यत्त्वया परिभाषितम् । एतत्स्तोत्रस्य पठनं मसान्निध्यकारणम्

अलक्ष्मीः कालकर्णी च तद्गोहे न विशेत्कचित् ।

गजाश्वपशुशान्त्यर्थमेतत्स्तोत्रं सदा जपेत् ॥ १०२ ॥

बालग्रहाभिभूतानां बालाबांशान्तिहृत्परम् । भूर्जपत्रैलिखित्वा तु बध्नीयात्कण्ठदेशतः

इदं बीजरहस्यं मे रक्षणीयं प्रयत्नतः । अद्वाहीनि न दातव्यं न देयञ्चाशुषीं क्वचित्
अन्यच्च शृणुविप्रेन्द्रभविष्येद्वापरेभवान् । एकोनत्रिंशद्वेदब्रह्मन् सत्यं व्यासो भविष्यति
तदा वाराणसीं प्राप्य सिद्धिं प्राप्स्यस्यमीप्सिताम् ।

व्यस्य वेदान् पुराणानि धर्मान्समुपदिश्य च ॥ १०६ ॥

हितञ्च तेवदाम्येकं साम्प्रतंतत्समाधर । पश्य किञ्चिदितोगत्वा स्कन्दमग्रे स्थितं प्रभुम्
वाराणस्यारहस्यञ्च यथावच्छिद्य भाषितम् । तव तुष्टिकरं ब्रह्मन् कथयिष्यति षण्मुखः
इति लब्ध्वा चरं सोऽथ महालक्ष्मीं प्रणम्य च ।

ययावगस्तिर्यत्रास्ति कुमारः शिखिवाहनः ॥ १०६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे-
ऽगस्त्यप्रस्थानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

तीर्थाध्यायवर्णनम्

पाराशर्य उवाच

शृणुसुत महाभाग कथां श्रुतिसहोदराम् । यां वे हृदिनिधायैह पुरुषः पुरुषार्थभाक्
ततः श्रीदर्शनानन्दसुधाधाराधुनीं मुनिः । अवगाह्य सपत्नीकः परां मुदमवाप सः ॥
वह्निकुण्डसमुद्भूत! सूतनिर्मलमानस । शृणुष्वैकं पुराचिद्विर्भाषितं यत्सुभाषितम्
परोपकरणं येषां जागर्तिहृदये सताम् । नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे
तीर्थं न्नानैर्नसा शुद्धिर्बहुदानैर्न तत्फलम् । तपोभिरुग्रैस्तन्नाप्यमुपकृत्या यदाप्यते
परोपकृत्यायोधर्मो धर्मो दानादिसम्भवः । एकत्र तु लितौ धात्रा तत्र पूर्वोऽभवद्गुरुः ॥

परिनिर्मथ्य वाग्जालं निर्णीतमिदमेव हि ।

नोपकारात्परो धर्मो नापकारादद्यं परम् ॥ ७ ॥

उपकर्तुं रगस्त्यस्यजातमेतन्निदर्शनम् । कताद्रुकाशिजंदुःखं कताद्रुक्श्रीमुखेक्षणम्
करिकर्णाग्रचपलञ्जीवितविविधंधवसु । तस्मात्परोपकरणंकार्यमेकं विपश्चिता
यल्लक्ष्मीनाममात्राप्या नरो नो माति कुत्रचित् ।

साक्षात्समीक्ष्य तां लक्ष्मीं कृतकृत्योभयन्मुनिः ॥ १० ॥

गच्छन् यद्रुच्छयासोथदूराच्छीशैलमैक्षत । यत्रसाक्षान्निवसतिदेवः श्रीत्रिपुरान्तकः
उवाच वचनं पत्नीं तदाप्रीतमनामुनिः । इहस्थितैवपश्य त्वं कान्तेकान्ततरं परम्
श्रीशैलशिखरंश्रीमदिदन्तद्यद्विलोकनात् । पुनर्मघोमनुप्याणांभवेऽत्रनभवेत्कचित्
गिरिश्चतुरशीत्यायं योजनानां हि विस्तृतः ।

सर्वलिङ्गमयो यस्मादतः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ १४ ॥

लोपामुद्रोवाच

किञ्चिद्विह्वलमुमिच्छामि यद्याज्ञा स्वामिनो भवेत् ।

ब्रूते हि याऽननुज्ञाता पत्या सा पतिता भवेत् ॥ १५ ॥

अगस्त्य उवाच

किंवक्तुकामादेधित्वंब्रूहितस्वमशङ्किता । न त्वाद्रुशीनांवाक्यं हिपत्युः खेदायजायते
ततः पप्रच्छ सा देवी प्रणम्य मुनिमानता । सर्वेषाञ्च हितार्थाय स्वसन्देहापनुत्तये

लोपामुद्रोवाच

श्रीशैलशिखरंद्रष्टा पुनर्जन्मनविद्यते । इदमेव हि सत्यञ्चेत्किमर्थंकाशिरीष्यते ॥

अगस्तिरुवाच

आकर्णय वरारोहे! सत्यं पृष्ट्वयामले ! । निर्णीतमसकृच्चैतन्मुनिमिस्तस्वचिन्तकैः
मुक्तिस्थानान्यनेकानि कृतस्तत्रापि निर्णयः ।

तानि ते कथयाम्यत्र दत्तचित्ता भव क्षणम् ॥ २० ॥

प्रथमंतीर्थराजन्नुप्रयागाख्यं सुविश्रुतम् । कामिकंसर्वतीर्थानां धर्मकामार्थमोक्षदम्
नैमिषञ्च कुरुक्षेत्रं गङ्गाद्वारमघन्तिका । अयोध्या मथुरा चैव द्वारकाप्यमरावती
सरस्वतीसिन्धुसङ्गो गङ्गासागरसङ्गमः । कान्तीचत्र्यम्बकञ्चापिसतगोदावरीतटम्

कालञ्जरप्रभासश्च तथा बदरिकाश्रमः । महालयस्तथोङ्कारक्षेत्रं वैपौरुषोत्तमम्
गोकर्णोभृगुकच्छश्च भृगुतुङ्गश्चपुष्करम् । श्रीपर्वतादितीर्थानिधारातीर्थतथैव च
मानसान्यपितीर्थानिसत्यादीनिष्ववैप्रिये । एतानिमुक्तिदान्येवनात्रकार्याविचारणा
गयातीर्थञ्च यत्प्रोक्तं तत्पितृणां हि मुक्तिदम् ।

पितामहानामृणतो मुक्तास्तत्तनया अपि ॥ २७ ॥

सधर्मिण्युवाच

मानसान्यपितीर्थानियान्युक्तानिमहामने । कानिकानिचतानीहह्येतदाख्यातुमर्हसि
अगस्त्य उवाच

शृणुतीर्थानिगदतोमानसानिममानघे । येषुसभ्यङ्गरः स्नात्वाप्रयातिपरमांगतिम्
सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः । सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थमार्जवमेव च
दानंतीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते । ब्रह्मचर्यं परंतीर्थं तीर्थञ्चप्रियवादिता
ज्ञानंतीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् । तीर्थानामपि तर्त्तीयं विशुद्धिर्मनसः परा
न जलाप्लुतदेहस्यस्नानमित्यभिधीयते । सस्नातोयोदमस्नातःशुचिःशुद्धमनोमलः
यो लुब्धः पिशुनः क्रूरोदाम्बिकोविषयात्मकः ।

सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एवसः ॥ ३४ ॥

न शरीरमलत्यागान्नरो भवतिनिर्मलः । मानसे तु मले त्यक्तेभवत्यन्तः सुनिर्मलः
जायन्ते च भ्रियन्तेचजलैश्वेवजलौकसः । न च गच्छन्तितेस्वर्गमविशुद्धमनोमलाः
बिगयेष्वतिसंरागो मानसोमल उच्यते । तेष्वेव हि चिरागोस्यनेर्मल्यं समुदाहृतम्
चित्तमन्तर्गतं दुष्टंतीर्थस्नानान्न शुद्ध्यति । शतशोथजलैर्धीतंसुराभाण्डमिवाशुचिः
दानमिज्यातपः शौचंतीर्थसेवाश्रुतं तथा । सर्वाण्येतानितीर्थानिनियदिभावोननिर्मलः
निगृहीतेन्द्रियप्राप्तोयत्रैवचवसेन्नरः । तत्रतस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषंपुष्कराणि च ॥ ४० ॥
ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे । यः स्नाति मानसे तीर्थे स यातिपरमांगतिम्
एतत्ते कथितं देविमानसंतीर्थलक्षणम् । भौमानामपि तीर्थानांपुण्यत्वेकारणंशृणु
यथा शरीरस्थोद्वेषाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः ।

तथापृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः ॥ ४३ ॥

प्रभावाद्भुताद्भवेः सलिलस्य च तेजसा । परिग्रहान्मुनीनाञ्चतीर्थानांपुण्यतास्मृतां
तस्माद्भूमिषु तीर्थेषुमानसेषुचनित्यशः । उभयेष्वपियः स्नातिसयाति परमांगतिम्
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्य च । अदस्वा काञ्चनंगाश्चदरिद्रोनामजायते
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः । न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेनयत्
यस्यहस्तौ च पादौचमनश्चैव सुसंयतम् । विद्यातपश्चकीर्तिश्चसतीर्थफलमश्नुते
प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येनकेनचित् । अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥
अदम्भको निरारम्भोलघ्वाहारोजितेन्द्रियः । विमुक्तःसर्वसङ्केयैः सतीर्थफलमश्नुते
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादीद्रुहव्रतः । आत्मोपमश्चभूतेषु स तीर्थफलमश्नुते

तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्धधानः समाहितः ।

कृतपापो विशुद्ध्येत किंपुनः शुद्धकर्मकृत् ॥ ५२ ॥

तिर्यग्योनिं न वै गच्छेत्कुदेशे नैव जायते ।

न दुःखी स्यात्स्वर्गभाक्च मोक्षोपायञ्च विन्दति ॥ ५३ ॥

अश्रद्धधानः पापात्मानास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः । हेतुनिष्ठश्चपञ्चैतेनतीर्थफलभागिनः
तीर्थानिचयथोक्तेनविधिनासञ्चरन्तिथे । सर्वद्वन्द्वसहाधीरास्तेनराः स्वर्गभागिनः
तीर्थयात्राञ्चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे ।

गणेशञ्च पितृन्विप्रान्साधूञ्छक्त्या प्रपूज्य च ॥ ५६ ॥

कृतपारणकोहृष्टो गच्छेन्नियमभृत्पुनः । आगन्याभ्यर्च्यचपितृन्यथोक्तफलभागभवेत्
नपरीक्ष्योद्विज्जस्नीर्थेष्वन्नार्थीभोज्यएवच । सक्तुभिः पिण्डदानञ्च चरुणापायसेनच
कर्तव्यमृषिभिर्द्वैपिण्याकेन गुडेन च । श्राद्धंतत्र प्रकर्तव्यमर्घ्यांवाहनवर्जितम् ॥
अकालेप्यथवा काले तीर्थेश्राद्धञ्च तर्पणम् । अचिलभवेनकर्तव्यंनैवविघ्नं समाचरेत्
तीर्थंप्राप्य प्रसङ्गेन स्नानं तीर्थे समाचरेत् ।

स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राश्रितं न च ॥ ६१ ॥

नृणांपापकृतांतीर्थपापस्यशमनंभवेत् । यथोक्तफलदंतीर्थं भवेच्छ्रद्धात्मनांनृणाम्

बोडशांशंसलभतेयः परार्थेऽङ्गमच्छति । अर्धतर्थाङ्गकलंतस्ययः प्रसङ्गेन गच्छति ॥
 कुशप्रतिकृतिरुत्वा तीर्थकोटिणि मज्जयेत् । मज्जयेच्च यमुद्विश्य सोष्टमांशं लभेत वै
 तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसोमुण्डनंतथा । शिरोगतानिपापानियान्तिमुण्डनतोयतः
 यद्वितीर्थप्राप्तिः स्यात्ततोद्भववासरे । उपवासस्तु कर्तव्यः प्राप्ताह्नि श्राद्धदोभवेत्
 तीर्थप्रसङ्गास्तीर्थाङ्गमप्युक्तं त्वत्पुरो मया । स्वर्गसाधनमेवैतन्मोक्षोपायश्च वै भवेत्

काशी कान्ती च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि ।

मथुरावन्तिका खैताः सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदाः ॥ ६८ ॥

श्रीशैलो मोक्षदः सर्वः केदारोपि ततोऽधिकः ।

श्रीशैलाद्यापि केदारात्प्रयागं मोक्षदं परम् ॥ ६९ ॥

प्रयागादपि तीर्थाङ्गद्विमुक्तं विशिष्यते । यथा विमुक्तनिर्वाणंतथाक्वाप्यसंशयम्
 अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि च ।

काशीं प्राप्याऽपि मुच्येत नान्यथा तीर्थकोटिभिः ॥ ७१ ॥

अत्रार्थं कथयिष्येहमितिहासपुरातनम् । यथाविष्णुगणैरुक्तं द्विजाय शिवशर्मणे ॥
 तीर्थाध्यायमिमं श्रुत्वा नरोनियतमानसः ।

श्रावयित्वा द्विजांश्चापि श्रद्धामक्तिसमन्वितान् ॥ ७३ ॥

क्षत्रियान्धर्मनिरतान्वैश्यान्सन्मार्गवर्तिनः ।

शूद्रान्द्विजेषु भक्तांश्च निष्पापो जायते द्विजः ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

तीर्थाध्यायवर्णननाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

सप्तपुरीवर्णनेशिवशर्मविप्रकथानकवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

मथुरायां द्विजः कश्चिदभृद्भृदेषसत्तमः । तस्यपुत्रोमहातेजाः शिवशर्मेति विश्रुतः
अधीत्यवेदान्बिधिवदर्थं विज्ञायतस्वतः । पठित्वाधर्मशास्त्राणिपुराणान्यधिगम्य च

अज्ञान्यभ्यस्यतर्कांश्च परिलोड्य समन्ततः ।

मीमांसाद्वयमालोक्य धनुर्वेदंविगाह्य च ॥ ३ ॥

आयुर्वेदंविचार्यापि नाट्यवेदेकृतश्रमः । अर्थशास्त्राण्यनेकानिप्राप्याश्वगजचेष्टितम्
कलासु च कृताभ्यासो मन्त्रशास्त्रविचक्षणः ।

भाषाश्च नानादेशानां लिपीर्ज्ञात्वा विदेशजाः ॥ ५ ॥

अर्थानुपार्ज्यं धर्मेण भुक्तवा भोगान्यदृच्छया ।

उत्पाद्य पुत्रान्सुगुणांस्तेभ्यो ह्यर्थं विभज्य च ॥ ६ ॥

यौवनं गत्वरंज्ञात्वाजरांद्द्रष्टाश्रितांश्रुतिम् । चिन्तामवापमहतींशिवशर्मा द्विजोत्तमः
पठतोमेगतः कालस्तथोपाजंयतोधनम् । नाराधितो महेशानः कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥
न मयातोषितोविष्णुः सर्वपापहरोहरिः । सर्वकामप्रदोऽङ्गणां गणेशोनाचितोमया
तमस्तोमहरःसूर्यो नाचितोवै मयाकच्चिन् । महामायाजगद्धात्रीनध्याताभवबन्धहृत्
न प्रीणिता मया देवा यज्ञैःसर्वैसमृद्धिदाः । तुलसीचनशुश्रूषा न कृतापापशान्तये ॥
न मया तर्पिता विप्रा मृष्टाङ्गैर्मधुरैरसैः । इहापि च परत्रापि विपदामनुतारकाः ॥
बहुपुष्पफलोपेताः सुच्छायाःस्निग्धपल्लवाः । पथि नारोपिता वृक्षाइहामुत्रफलप्रदाः
दुकूलैःस्वानुकूलैश्च चोलैःप्रत्यङ्गभूषणैः । नालङ्कृताःसुवासिन्य इहामुत्रसुवासदाः
द्विजाय नोर्धरा दत्ता यमलोकनिवारिणी । सुवर्णं न सुवर्णांय दत्तं दुरितहृत्परम्

- - - नाऽलङ्कृता सवत्सा गौः पात्राय प्रतिपादिता ।

इह पापापहन्व्याशु सप्तजन्मसुखावहा ॥ १६ ॥

ऋणापनुत्तयेमातुःकारितोनजलाशयः । नातिथिस्तोयितः कापि स्वर्गमार्गप्रदर्शकः
छत्रोपानत्कुण्डिकाश्च नाध्वगाय समर्पिताः ।

यास्यतः संयमिन्यां हि स्वर्गमार्गसुखप्रदाः ॥ १८ ॥

न च कन्याचिवाहार्यं वसु क्वाऽपि मयापितम् ।

इह सौख्यसमृद्धयर्थं दिव्यकन्यार्पकं दिवि ॥ १९ ॥

न वाजपेयावभृथे ज्ञातो लोभवशादहम् । इह जन्मनि चान्यास्मन्बहुमृष्टान्नपानदे
न मया स्थापितं लिङ्गं कृत्वा देवालयं शुभम् ।

यस्मिन्संस्थापिते लिङ्गे विश्वं संस्थापितं भवेत् ॥ २१ ॥

विष्णोरायतनंनेव कृतं सर्वसमृद्धिदम् । न च सूर्यगणेशानां प्रतिमाः कारितामया
न गौरी न महालक्ष्मीश्चित्रेपि परिलेखिते । प्रतिमाकरणेषैर्षानंकुरूपो न दुर्भगः ॥

सुसूक्ष्माणि विचित्राणि नोज्ज्वलान्यम्बराण्यपि ।

समर्पितानि चिप्रेभ्यो दिव्याम्बरसमृद्धये ॥ २४ ॥

न तिलाश्च घृतेनाक्ताःसुसमिद्धे हुताशने । हुतावै मन्त्रपूताश्च सर्वपापापनुत्तये ॥
श्रीसूक्तं पावमानीच ब्राह्मणोमण्डलानिच । जप्तं पुरुषसूक्तञ्च पापाविशतरुद्रियम् ॥
अश्वत्थसेवानकृतात्यक्त्वाष्वाकं त्रयोदशीम् । सद्यःपापहरासाहिनरात्रौ न भृगोर्दिने
शयनीथं न चोत्सृष्टं मृदुलाच प्रतूलिका । दीपीदर्पणं संयुक्तं सर्वभोगसमृद्धिदम्
अजाश्वमहिषी मेरी दासीकृष्णाजिनं तिलाः ।

सकरम्भास्तोयकुम्भानाऽऽसनं मृदुपादुके ॥ २६ ॥

पादाभ्यङ्गं दीपदानं प्रपादानं विशेषतः । व्यजनं चक्रताम्बूलं तथान्यंमुरुक्षासकृत् ॥
नित्यश्राद्धंभूतबलिंतथाऽतिथिसमर्चनम् । विशन्त्यन्यानिदृशवाचप्रशस्त्यानियमालये
न यमं यमदृतांश्च नयामीरपियातनाः । पश्यन्ति ते पुण्यभाजो नैतच्चापि कृतंमया
कृच्छ्रवान्द्रायणादीनि तथा नक्तव्रतानि च ।

शरीरशुद्धिकारीणि न कृतानि क्वचिन्मया ॥ ३३ ॥

गवाहिकञ्च नोदत्तं गोकण्डूतिर्न वै कृता । नोद्भृतापङ्कमर्गागौर्गौलोकसुखदायिनी
नार्थिनःप्रार्थितैरथैकृतार्थाहिमचाकृताः । देहिदेहीतिजल्पकोभविष्याभ्यन्यजन्मनि
न वेदा न च शास्त्राणि नार्थी दारा न नो सुतः ।

न क्षेत्रं न च हर्म्यादि मा यान्तमनुयास्यति ॥ ३६ ॥

शिवशर्मैति सञ्चिन्त्य बुद्धिं सन्धायसर्वतः । निश्चिकायमनस्यैवंभवेत्क्षेमतरं मम
यावत्स्वस्थोऽस्तिमे देहो यावन्नेन्द्रियविक्रवः ।

तत्त्वत्स्वश्रेयसां हेतुं तीर्थयात्रां करोम्यहम् ॥ ३८ ॥

दिनानिपञ्चषण्येवमतिवाह्यगृहेद्विजः । शुभेतिथौ शुभेवारे शुभलग्नबले द्विजः ॥
उपोष्य रजनीमेकां प्रातःश्राद्धं विधाय च ।

गणेशान्ब्राह्मणाभ्रत्वा भुक्तवा प्रस्थितवान्सुधीः ॥ ४० ॥

इति निश्चित्य निर्वाणषदमिन्ध्रेणिकां पशाम् ।

सर्वेषामेव जन्तूनां तत्र संस्थितकारिणाम् ॥ ४१ ॥

अथ पन्थानमाक्रम्य कियन्तमपि स द्विजः ।

मुहूर्तं पथिविभ्रम्याऽस्चिन्तयत्प्राक् क्रयाम्यहम् ॥ ४२ ॥

भुवितीर्थान्यनेकानि लोलमायुश्चलंमनः । तत सप्तपुरीर्याथां सर्वतीर्थानि तत्र यत्
अयोध्याञ्च पुरीं गत्वा सरयूमवगाह्य च । तत्तत्तीर्थेषु सन्तर्प्य पितृन्पिण्डप्रदानतः

पञ्चरात्रमुषित्वा तु ब्राह्मणान्परिभोज्य च । प्रयागमगमद्विप्रस्तीर्थराजं सुहृष्टवत् ॥
सिताऽसितेसरिच्छ्रेयत्रास्तांसुरदुर्लभे । यत्राप्लुतानरःपापःपरम्ब्रह्माधिगच्छति

क्षेत्रं प्रजापतेः पुण्यं सर्वेषामेव दुर्लभम् । लभ्यते पुण्यसगभारैर्नान्यथाऽथं सराशिमिः
दमयन्तीं कलिकालं कलिन्दतनयां शुभाम् ।

आगत्य मिलिता यत्र पुण्या स्वर्गतरङ्गिणी ॥ ४८ ॥

प्रकृष्टं सर्वयागेभ्यः प्रयागमिति गीयते । यज्वनां पुनरावृत्तिर्न प्रयागार्द्रधर्मणाम् ॥
यत्रस्थितःस्वर्गसाक्षाच्छूलटङ्कोमहेश्वरः । तत्राप्लुतानां जन्तूनां मोक्षवर्त्मोपदेशकः

तत्राऽक्षय्यवटोऽप्यस्ति सप्तपातालमूलवान् । प्रलयेऽपियमारुह्य मृकण्डतनयोऽवसत्

हिरण्यगर्भो विज्ञेयः स साक्षाद्दृक्पृथक् ।

लक्ष्मणीये द्विजान्मत्तं वा सम्भोज्याक्षय्युण्यभाक् ॥ ५२ ॥

यत्रलक्ष्मीपतिःसाक्षाद्द्वैकुण्ठादेत्यमानवान् । श्रीमाधवस्वरूपेणनयेद्विष्णोःपरम्पदम्
श्रुतिभिःपरिपठ्ये तेसिताऽसितसरिद्वरे । तत्राप्लुताङ्गाह्यमृतंभवन्तीतिविनिश्चितम्
शिखलोकाद् ब्रह्मलोकादुमालोकवरात्पुनः ।

कुमारलोकाद्द्वैकुण्ठात्सत्यलोकात्समन्ततः ॥ ५५ ॥

तपोजनमहर्भ्यश्च सर्वे स्वर्लोकवासिनः ।

भुवोलोकाश्च भूर्लोकान्नागलोकात्तथाऽलिलात् ॥ ५६ ॥

अचलाहिभवन्मुख्याः कल्पवृक्षादयोनगाः । स्नातुंमाघे समायान्तिप्रयागमरणोदये
दिग्ङ्गनाः प्रार्थयन्तियत्रयागानिलानपि । तेषिनःपावयिष्यन्तिर्कुर्मःपङ्कवोषयम्
अश्वमेधादियागाश्च प्रयागस्य रजःपुनः । तुलितंब्रह्मणापूर्वं न ते तद्रजसासमाः ॥
मज्जागतानिपापानिवहुजन्माजितान्यपि । प्रयागनामश्रवणात्क्षीयन्तेऽतीवविह्वलम्
धर्मतीर्थमिदंसम्यगर्भतीर्थमिदं परम् । कामिक तीर्थमेतच्च मोक्षतीर्थमिदं ध्रुवम् ॥
ब्रह्महत्यादिपापानि तावद्दर्जन्ति देहिषु । यावन्मज्जन्ति नोमाघे प्रयागे पापहारिणि
तद्विष्णोःपरमंपदं सदा पश्यन्ति सूरयः । एतद्यत्पठ्यते वेदे तत्प्रयागं पुनः पुनः ॥
सरस्वतीरजोरूपा तमोरूपाकलिन्दजा । सस्वरूपा च गङ्गात्र नयन्तिब्रह्मनिर्गुणम्

इयं वेणी हि निःश्रेणी ब्रह्मणो वर्त्म यास्यतः ।

जन्तोर्विशुद्धदेहस्य श्रद्धाऽश्रद्धाप्लुतस्य च ॥ ६५ ॥

काशीति काश्चिदबला भुवनेषु रुढा लोलाकंशेषविलोलविलोचना च ।

तद्द्वेयुं गञ्ज वरणासिरियं तदीया वेणीतियाऽन्नगदिताऽक्षयशर्मभूमिः ॥ ६६ ॥

अगस्तिरुवाच

सुधामणि! गुणांस्तस्य कोऽत्र वर्णयितुं क्षमः ।

तीर्थराजप्रयागस्य तीर्थः संसेवितस्य च ॥ ६७ ॥

पापिनां यानि पापानि प्रसह्य क्षालितान्यहो ।

तच्छुद्धये सेव्यते तीर्थैः प्रयागमधिकं ततः ॥ ६८ ॥

प्रयागस्य गुणाऽह्वात्वा शिवश्चर्माद्विजः सुधीः ।

तत्र माघमुषित्वाऽथ प्राप वाराणसीं पुरीम् ॥ ६९ ॥

प्रवेशणवसम्भीक्ष्य सदेहलिचिनायकम् । अन्वलिम्पस्ततोभक्तयासाऽयसिन्दूरकर्मैः
निवेद्य मोदकान्पञ्चव्ययन्तं निजं जनम् । महोपसर्गवर्गभ्यस्ततोऽन्तःक्षेत्रमाविशत्

आगत्य द्रष्टुं मणिकर्णिकायामुदग्वहांस्वर्गतरङ्गिणीं सः ।

संक्षीणपुण्यैतरपुण्यकर्मणां नृणां गणैः स्थाणुगणैरिवावृताम् ॥ ७० ॥

सषैलमाप्लुत्यजलेऽमलेऽमलेऽविलम्बमालम्बितशुद्धबुद्धिः ।

सन्तर्प्य देवर्षिमुनुष्यदिव्यपितृन्पितृन्स्वान्स हि कर्मकाण्डवित् ॥ ७१ ॥

विधाय च द्राक् स हि पञ्चतीर्थिकां विश्वेशमाराध्य ततो यथास्वयम् ।

पुनःपुनर्वीक्ष्य पुरीं पुरारेरिदं मयाऽलोकि नवेति विस्मितः ॥ ७४ ॥

नन्वःपुरीसात्वनया पुरासमंसमञ्जसापिप्रतिसाम्यमावहेत् ।

प्रवन्धभेदद्वयतिरिक्तपुस्तकप्रतिर्यथासल्लिपिभेदभङ्गतः ॥ ७५ ॥

पयोपि यत्रत्यमच्चिन्त्यवैभवं दिविस्थितासाधुसुधाप्यते मुधा ।

तथाप्रसूतेस्तुपयोधरे पयो न पीयते पीतमिदं यदि क्वचित् ॥ ७६ ॥

अनामयाश्चिन्तनया नयेशितुर्जनामनाग्यत्र धिना पिनाकिना ।

न कर्मसत्कर्मकृतोपि कुर्वतेऽनुकुर्वते सर्वगणांश्च सर्वतः ॥ ७७ ॥

न वष्यते कः किल काशिकेयं जन्तोः स्थितस्यात्र यतोऽन्तकाले ।

पचेलिमैः प्राकृतपुण्यभारैरोङ्कारमोङ्कारयतीन्दुमौलिः ॥ ७८ ॥

संसारिचिन्तामणिरत्र यस्मात्तं तारकं सज्जनकर्णिकायाम् ।

शिवोभिधत्ते सहसान्तकाले तद्वीयतेऽसौ मणिकर्णिकेति ॥ ७९ ॥

मुक्तिलक्ष्मीमहापीठमणिस्तम्भरणाऽजयोः । कर्णिकेयंततः प्राहुर्याजनामणिकर्णिकाम्
जरायुजाण्डजोद्विज्जाः स्वेदजाह्यत्र घासिनः । नसमामोक्षभाजस्तेत्रिवशैर्मुक्तिदुर्दशैः
ममजन्मवृथाजातं दुर्वृत्तस्यजडात्मनः । नाद्यथावन्मयैश्छिद्यकाशिकामुक्तिः काशिका

पुनःपुनश्च तत्क्षेत्रमतिथीकृत्य नेत्रयोः । विचित्रं च पवित्रं च तृप्तिं नाधिजगाम ह
सप्तानां च पुरीणां हि धुरीणामवयाम्यहम् ।

वाराणसीं सुनिर्वाणविभ्राणनविचक्षणाम् ॥ ८४ ॥

तथापिनक्षत्रलोऽन्यामयाद्गमोचरीकृताः । तासांप्रभार्वचिह्नायाप्यागमिष्याम्यहंपुनः
तीर्थयात्रां प्रतिदिनं कुर्वन्नूनं सवत्सरम् ।

न प्राप सर्वतीर्थानि तीर्थं काश्यां तिले तिले ॥ ८६ ॥

अगस्तिरुवाच

जानन्नपि गुणान्देवि ! क्षेत्रस्याऽस्य परान्द्विजः ।

नानाप्रमाणैः प्रवणो निरगात्स तथाप्यहो ॥ ८७ ॥

किंकुर्वन्ति हि शाखाणि सप्रमाणानि सुन्दरि !

महामायां भवित्रीं तां को निवारयितुं क्षमः ॥ ८८ ॥

कः समुच्चलितञ्जेतस्तोयं वासं प्रतीपयेत् ।

प्रोच्चस्थानस्थितमपि स्वभावो यच्चलस्तयोः ॥ ८९ ॥

शिवशर्मात्रजन्तोऽथदेशाद्देशान्तरं क्रमान् । महाकालपुरींप्रापकलिकालविचर्जिताम्
कल्पे कल्पेऽखिलं विश्वं कालयेद्यः स्वलीलया ।

तं कालं कलयित्वा यो महाकालोऽभवत्किल ॥ ९१ ॥

पापादवन्ती सा विश्वमवन्तीतिनिगद्यते । युगेयुगेन्यनाम्नीसा कलाबुज्जयिनीतिच
विपन्नो यत्र वै जन्तुः प्राप्यापि शवतां स्फुटम् ।

न पूतिगन्धमाप्नोति समुच्छ्रयति न कश्चित् ॥ ९३ ॥

यमदूतानयस्यांहिप्रविशन्तिकदाचन । परः कोटीनिलिङ्गानितस्यां सन्ति पदेपदे
हाटकेशोमहाकालस्तारकेशस्तथैव च ।

एकं लिङ्गं त्रिधा भूत्वा त्रिलोकीं व्याप्य संस्थितम् ॥ ९५ ॥

ज्योतिः सिद्धवटे ज्योतिस्ते पश्यन्तीह ये द्विजाः ।

अथवा श्रीमहाकालद्रष्टारः पुण्यराशयः ॥ ९६ ॥

महाकालस्य तल्लिङ्गं यैर्दृष्टं कष्टिभिः क्वचित् ।

न स्पृष्टास्ते महापापैर्न दृष्टास्ते यमोद्घट्टैः ॥ १७ ॥

महाकालपताकाप्रैः स्पृष्टपृष्टास्तुरङ्गमाः । अरुणस्यकशाघातं क्षणंविश्रमयन्ति खे॥

महाकालमहाकालमहाकालेति सन्ततम् । स्मरतःस्मरतो नित्यं स्मरकर्तुं स्मरान्तकौ

एवमाराध्य भूतेशं महाकालं ततो द्विजः । जगाम नगरीं कान्तीं कान्तां त्रिभुवनादपि

लक्ष्मीकान्तः स्वयं साक्षाज्जन्तुं स्तत्र निवासिनः ।

श्रीकान्तानेव कुरुने परत्रेह च निश्चितम् ॥ १०१ ॥

दृष्ट्वा कान्तीं कान्तिमती कान्तिमद्विर्निषेचिताम् ।

कान्तिमानभवत्सोऽपि नाऽकान्तिस्तत्र कस्यचित् ॥ १०२ ॥

तत्रकृत्यञ्च यत्कृत्यं तत्कृत्वा सर्वकृत्यचित् । समरात्रमुषित्वा तु ययौ द्वारवतीं पुरीम्

चतुर्णामपि घर्गाणां यत्र द्वाराणिसर्वतः । अतो द्वारवतीत्युक्ता विद्वद्विस्तस्ववेदिभिः

अस्थीन्यपि च जन्तूनां यत्र चक्राङ्कितान्यहो । किञ्चित्तत्र यत्र स्युः शङ्खचक्राङ्कितैः करैः

अन्तकः शिक्षयत्येवं निजदूतान्मुहुर्मुहुः ।

ते त्याज्या यैर्द्वारवत्या नामापि परिगृह्यते ॥ १०६ ॥

श्रीखण्डे क्व स आमोदः स्वर्णे घर्णः क्व तादृशः ।

तत्पावित्र्यं क्व वै तीर्थे तद्गोपीचन्दने यथा ॥ १०७ ॥

दूताः शृण्वन्तु यद्दालंगोपीचन्दनलाञ्छितम् । ज्वलदिङ्गलघत्सोपि दूरेत्याज्यः प्रयत्नतः

तुलस्यलङ्कृता ये ये तुलसीनामजापकाः । तुलसीघनपालाये ते त्याज्यादूरतोभटाः

युगेयुगे द्वारवत्या रत्नानिपरितो मुपन् । अर्धीरत्नाकरोद्यापि लोकेषु परिगीयते ॥

द्वारवत्यां प्रियन्ते ये जन्तवः कालनोदिताः । चतुर्भुजाः स्युर्घुक्कुण्डे ते पीताम्बरधारिणः

तत्रापि सन्तर्प्य पितृन्ससदेवर्षिमानवान् । तत्र तेषु च तीर्थेषु सखीं सर्वेष्वतन्द्रितः

ततो मायापुरीं प्राप्नो दुष्प्रापां पापकारिभिः ।

यत्र सा वेषणघ्नी माया माया पाशैर्न पाशयेत् ॥ ११३ ॥

केचिदूर्ध्वरिद्वारं मोक्षद्वारं ततः परे । गङ्गाद्वारञ्च केप्याहुः केचिन्मायापुरीं पुनः ॥

यतोविनिर्गतागङ्गाख्याताभागीरथीभुवि । यन्नामोच्चारणात्पुंसांपापंयातिसहस्रधा
 वैकुण्ठस्यैकसोपानं हरिद्वारंजगुर्जनाः । अत्राप्लुतानरायान्गतद्विष्णोःपरमम्पदम्
 तीर्थापवासकंरुन्वानिशाजागरणंतथा । प्रातःस्नात्वाचगङ्गायां तर्प्यान्सन्तर्प्यंसर्षतः
 यावत्स पारणंकर्तुमिथेष द्विजसत्तमः । तावच्छीतज्वराक्रान्तश्चकम्पेऽत्यर्थमातुरः
 वैदेशिकस्तथैकाकी तथाऽतिज्वरपीडितः ।

चिन्तामवाप महतीं किमेतत्समुपस्थितम् ॥ ११६ ॥

चिन्तार्णवे निमग्नोभूत्यकाशोजीवितेधने । सांयात्रिकदृष्टवागाधे भिन्नप्रतोमहार्णवे
 क क्षेत्रं क कलत्रं मे क पुत्राः कचतद्वसु । कतद्विचित्रं वैहर्म्यं कसापुस्तकसम्भृतिः
 अद्यापिनायुः पर्याप्तं पलितं न तथा मयि । ज्वरोऽयंदारुणःप्रातःकालश्चातिदारुणः
 मृत्युमूर्ध्नि कृतावासो वासो दूरे व्यवस्थितः ।

अग्री गृहोपरि प्राप्ते कूपं तुखनयेदिह ॥ १२३ ॥

किमेभिश्चिन्तनैर्व्यर्थैरतितापकरैर्मम । चिन्तयामि हृषीकेशं शिवदं शिवमेव च ॥
 अथवामुक्त्युपायो वै मयैकः सदनुष्ठितः । मुक्तिपुयंस्तुसप्तैता स्वनेत्रविषयीकृताः
 स्वर्गापवर्गयोरेकः साध्यो हि विदुषाधुषम् । तयोरसाधनेपश्चात्सन्तापेनचतप्यते
 अथवा चिन्तया किं मे त्वनया दुरवस्थया । रणेवा मरणं श्रेयस्तार्थे घात्रयथामम
 किमहं मन्द्भागीव रथ्यां कापि म्रियेऽधुना ।

भागीरथ्यां म्रिये घाय का चिन्ता मम मृदवत् ॥ १२८ ॥

चर्मास्थिसञ्चये नाहमनेनघपुषाधुषम् । प्राप्स्यामिनिधनादत्रसिद्धिनैःश्रेयसीधुषम्
 एवंचिन्तयतस्तस्यपाडासीदृतिदारुणा । कोटिवृश्चिकदष्टस्ययावस्थातामवापसः
 स्मर्त्तव्यं विस्मृतं सर्वं काहं कोहंतवेत्तिषं । दिनानिसप्तसप्तैति स्थित्वापञ्चत्वमागतः
 तावद्वैकुण्ठभुवनद्विमानं समुपस्थितम् ।

तादृश्यापलक्षितो यत्र ऽध्वजश्चातिसमुच्छ्रितः ॥ १३२ ॥

अधिष्ठितं सुकन्यानां स्वर्णकौशेयवाससःम् ।

आमरव्यग्रहस्तानां स सहस्रेणातिविस्तृतम् ॥ १३३ ॥

पुण्यशालसुशीलाभ्यां गणाभ्यां च विराजितम् ।

चतुर्भुजाभ्यां स्वास्याभ्यां किङ्किणीजालमालितम् ॥ १३४ ॥

तद्विमानमधारुह्य पीतवासाश्चतुर्भुजः । अलञ्चके नभोवर्त्म सद्विजो दिव्यभूषणः

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

सप्तपुरीवर्णनेशिवशर्मविप्रकथानकवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

यमलोकवर्णनम्

लोपामुद्रोवाच

जीचितेश ! कथामेतां पुण्यां पुण्यपुरीश्रिताम् ।

न तृप्तिमधिगच्छामि श्रुत्वा त्वच्छ्रीमुखेरिताम् ॥ १ ॥

मायापुर्यामुक्तिपुर्यां शिवशर्माद्विजोत्तमः । मृतोपिमोक्षेनैवाप ब्रूहितत्कारणम्बिमो!

अगस्त्य उवाच

साक्षान्मोक्षोनघैतासुपुरीषु प्रियभाषिणि ! । पुरोद्विश्यामुमेवार्थमितिहासोमयाश्रुतः

शृणु कान्ते! विचित्रार्थां कथां पापप्रणाशिनीम् ।

पुण्यशीलसुशीलाभ्यां कथितां शिवशर्मणे ॥ ४ ॥

शिवशर्मोवाच

अयिविष्णुगणौ पुण्यौ पुण्डरीकदलेक्षणौ । किञ्चिद्विष्णुप्तुकामोऽहंप्रबद्धकरसम्पुटः

ननाम युवयोर्वेशि वेदुभ्याकृत्याचकिञ्चन । पुण्यशीलसुशीलारूपौयुवांभचितुमर्हयः

गणावृत्तुः

भगवद्भक्तियुक्तानां किमज्ञातं भवाद्भूषाम् । एतदेव हि नौ नाम यदुक्तं श्रीमता त्वया

यदन्यदपि ते धित्ते प्रष्टव्यं तदशङ्कितम् । सम्प्रच्छस्वमहाप्राज्ञ! प्रीत्यातत्प्रमुखावहे

इति श्रुत्वास वचनं भगवद्गणभाषितम् । अतिप्रीतिकरं हृद्यं ततस्तौप्रत्युवाचह ॥

दिव्यद्विज उवाच

क एष लोकोऽल्पश्रीकःस्वल्पपुण्यजनाकृतिः । कश्मेधिकृताकाराब्रूतमेतन्ममाप्रतः

गणावृचतुः

अयंपिशाचलोकोत्रवसन्तिपिशिताशनाः । दस्वानुतापभाजोयेनोनो कृत्वाददत्यपि

शिवं प्रसङ्गतोऽभ्यर्च्यं सकृत्स्वशुचिचेतसः ।

अल्पपुण्याल्पलक्ष्मीकाःपिशाचास्तश्मे सखे ॥ १२ ॥

ततो गच्छन्ददशभि हृष्टपुष्टजनावृतम् । पिचण्डिलैःस्थूलवक्त्रैर्द्वेघगम्भीरनिःस्वनैः

लोकैरध्युषितलोकं श्यामलाङ्गैश्च लोमशैः ।

गणौ कथयता केऽमी को लोकःपुण्यतःकुतः ॥ १४ ॥

गणावृचतुः

गुह्यकानामयंलोकस्त्वेतेषैर्गुह्यकास्मृताः । न्यायेनोपाज्यंघित्तानिगूह्यन्तिष्वयेभुवि

स्वमार्गगा धनाढ्याश्च शूद्रप्रायाःकुटुम्बिनः ।

संचिभज्य च भोक्तारः क्रोधासूयाविषजिताः ॥ १६ ॥

न तिथिष्वैववारञ्च संक्रान्त्या दिन पर्वष । नाधर्मं न च धर्मञ्चिदन्त्येतेसदासुखाः

एकमेव हि जानन्ति कुलपूज्यो हि यो द्विजः ।

तस्मै गाः सम्प्रयच्छन्ति मन्यन्ते तद्वचः स्फुटम् ॥ १८ ॥

समृद्धिभाजो ह्यत्रापि तेनपुण्येनगुह्यकाः । भुञ्जते स्वर्गसौख्यानिदेवव्याकुतोभयाः

ततो विलोकयामास लोकं लोचनशर्मदम् ।

केऽमी जनास्त्वसौ लोकः किनामावदतां गणौ ॥ २० ॥

गणावृचतुः

गान्धर्वस्त्वेष लोकोऽमी गन्धर्वाश्चशुभव्रताः ।

देवानां गायना ह्येते चारणाः स्तुतिपाठकाः ॥ २१ ॥

गीतह्याभतिगीतेनतोपयन्तिनराधिपान् । स्तुवन्तिचधनाढ्यांश्चधनलोभेनमोहिताः

राज्ञां प्रसादलब्धानि सुखासांसि धनान्यपि ।

द्रव्याण्यपि सुगन्धीनि कर्पूरादीन्यनैकशः ॥ २३ ॥

ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्ति गीतगायन्त्यहर्निशम् । श्रुतावेधमनस्तेषां नाट्यशास्त्रदृश्रमाः
तेन पुण्येन गान्धर्वो लोकस्त्वेषां विशिष्यते ।

ब्राह्मणास्तोषिता यद्वै गीतविद्यार्जितैर्धनैः ॥ २५ ॥

गीतविद्याप्रभावेन देवर्षिनारदो महान् । मान्यो वैष्णवलोके वै श्रीशम्भोश्चातिवल्लभः
तुम्बुरुनारदश्चोभौ देवानामतिदुर्लभौ । नादरूपी शिवः साक्षात्सादत्स्वविदौ हितौ
यदि गीतं क्विद्गीतं श्रीमद्भिरहरान्तिके । मोक्षस्तु तत्फलं प्राहुः सांनिध्यमथघातयोः
गीतज्ञो यदि गीतेन नाप्नोति परमम्पदम् । रुद्रस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते
अस्मिंल्लोके सदाकालं स्मृतिरेषा प्रगीयते । तद्गीतमालया पूज्यौ देवौ हरिहरौ सदा
इति श्रुत्वा नक्षणात्प्रापुनरन्यन्मनोहरम् । शिवशर्माथप्रच्छकिसञ्ज्ञं नगरन्विषदम्

गणावूचतुः

असौ वैद्याधरो लोको नानाविद्याविशारदाः । एते विद्यार्थिनामज्ञमुपानद्वृत्तकामवल्गु
औपधान्यपि यच्छन्ति तत्पीडाशमनानि हि ।

नानाकलाः शिक्षयन्ति विद्यागर्धविधजिताः ॥ ३३ ॥

शिष्यपुत्रेण पश्यन्ति वल्लताम्बूलभोजनैः । अलङ्कृताश्च सत्कन्याधर्मादुद्वाहयन्ति च
अभिलाषधिया नित्यं पूजयन्तीष्टदेवताः । एतैः पुष्यैर्वसन्तीह विद्याधरवराश्रमे ॥

यावदित्यं कथां चक्रुस्तावत्संयमिनीपतिः ।

धर्मराजोऽभिसम्प्राप्तो देवदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ३६ ॥

सौम्यमूर्तिर्विमानस्थो धर्मज्ञैः परिवारितः । सेवाकर्मसु चतुरैर्भूत्यैस्त्रिचतुरैः सह
धर्मराज उवाच

साधुसाधुमहाबुद्धे! शिवशर्मन! द्विजोत्तम !। कुलोचितं ब्राह्मणानां भवता प्रतिपादितम्
वेदान्यासः कृतः पूर्वं गुरवश्चापि तोषिताः । धर्मशास्त्रपुराणेषु द्रष्टो धर्मस्त्वयाऽऽदृतः
क्षालितं मुक्तिपुर्यद्विराशुगन्तुशरीरकम् । कोविदोऽस्ति भवानेव जीविते जीविते तदे

कलेवरंपूतिगन्धि सदैवाशुचिभाजनम् । सुतीर्थपुण्यपण्येन सम्यग्बनिमितं त्वया
 अतएवहिपाण्डित्यमाद्रियन्ते विघ्नक्षणाः । अहःक्षेपं क्षिपन्तिक्षणमेकंहिते बुधाः
 निमेषान्यञ्चपान् मर्त्ये प्राणन्ति प्राणिनो ध्रुवम् ।
 तत्राऽपि न प्रवर्तेयुरवकर्मणि गर्हिते ॥ ४३ ॥

स्थिरापयः सदाकायो नधनं निधनेऽवति । तन्मूढःप्रौढकार्ये किं नयतेतभवानिव
 सत्वरङ्गत्वरञ्चायुर्लोकः शोकसमाकुलः । तस्माद्धर्मेमतिःकार्या भवतेवसुधार्मिकैः
 सत्कर्मणोविपाकोऽयं तववन्द्यौममाप्यहो । यदेतौभगवद्भक्तौ सखित्वंभवतोगतौ
 ममाज्ञादीयतां तस्मात्साहाय्यंकरवाणिकिम् । यत्कर्तव्यंमादृशैस्तेतत्कृतंभवतैवहि
 अद्य धन्यतरोऽस्मीह यद्दृष्टौ भगवद्गणौ । सेवा सदैवमे ज्ञाप्याश्रीमच्चरणसन्निधौ
 ततः प्रस्थापितस्ताभ्यां प्राविशत्स्वपुरीं यमः ।
 अप्राक्षीच्च ततो चिप्रस्तौ गणौ प्रस्थिते यमे ॥ ४६ ॥

शिवशर्मोवाच

साक्षादयं धर्मराजो ननुसौम्यतराकृतिः । धर्माण्येववस्वांस्यस्यमनःप्रीतिकराणिच
 पुरी संयमनीसेयमतीच शुभलक्षणा । आकर्ण्ययस्यनामापिपापिनोऽतीचविभ्यति
 यमरूपं वर्णयन्ति मर्त्यलोकेऽन्यथाजनाः । अन्यथाऽयं मयादृष्टो ब्रूतंतत्कारणंगणौ
 के न पश्यन्त्यमुं लोकं निवसन्ति तथाऽत्र के ।
 इदमेवास्य किं रूपं किञ्चान्यच्च निवेद्यताम् ॥ ५३ ॥

गणाच्चतुः

शृणु सौम्य! सुसौम्योऽसौ दृश्यतेऽत्र भवादृशैः ।
 धर्ममूर्तिः प्रकृत्यैव निःशङ्कैः पुण्यराशिभिः ॥ ५४ ॥
 अयमेव हि पिङ्गाक्षः क्रोधरक्तान्तलोचनः । दंष्ट्राकरालघदनो विद्युल्ललनभीषणः ॥
 उर्ध्वकेशोऽतिकृष्णाङ्गः प्रलयाम्बुदनिःस्वनः ।
 कालदण्डोद्यतकरो भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ ५६ ॥
 आनयैनं पातयैनं वधानामुञ्चदुर्दमं । घातयेनं सुदुर्वृत्तं मूर्ध्नि तीव्रमयोधनैः ॥५७॥

आताडयैनं दुष्टं च घृत्वा पादौशिलातले । उत्पाट्यास्य नैत्रेत्वं निधायचरणंगले
एतस्यगल्लावृत्कुल्लौ भुरेणाशुविपाटय । पाशेन कण्ठं वद्वध्वास्य समुल्लम्बय भूरुहे
विदारयास्य मूर्धानंकरपात्रेणदारुवत् । पार्ष्णिघातैर्घ्नतास्यास्यंसमुल्लवर्णयदारुणैः
परदारप्रसृमरं करंछिन्ध्यस्य पापिनः । परदारगृहं यातुः पादौचास्यविक्षण्डय ॥
सूचीमी रोमकूपेषु तनुं व्यधिहि सर्वतः । दातुः परकलत्राङ्गे नखपङ्क्तीर्तुरात्मनः
परदारमुखाघ्रातुमुंवे निष्ठीवयास्य हि । वक्तुःपरापवादस्य कीलं तीक्ष्णंमुखैक्षिप
भर्जयेनञ्चणकवत्तबालुककर्परैः । भ्राष्ट्रे विकटवक्त्रत्वं परसन्तापकारिणम् ॥६४
दोषारोपं सदा कर्तुरदोषे क्रूरलोचन ! ।

निमज्जयास्य वदनं पूयशोणितकर्दमे ॥ ६५ ॥

अदत्तपरवस्तूनां गृह्यतः करपल्लवम् । आप्लुत्याप्लुत्य तैलेन तमाङ्गारे पचोत्कट ॥
अपवाद्दं गुरोर्वक्तुर्निन्दाकर्तुः सुपर्वणाम् । तमलोहशलाकाश्च मुखेमीषण ! निक्षिप
परममल्पशस्त्रास्य परच्छिद्रं प्रकाशितुः । सुतनायो मयाऽल्लङ्कून्सर्वसन्धिपुरोपय
अन्येन दीयमाने स्वे निषेद्भुः पापकारिणः ।

आच्छेत्तुः परवृत्तीनां जिह्वाच्छिन्ध्यस्य दुमुख ! ॥ ६६ ॥

देवस्वमोक्तुः क्रोडास्य ! ब्राह्मणस्वस्यभोजिनः ।

विदायौदरमस्याशु विट्कीटैः परिपूरय ॥ ७० ॥

न देवार्थे न चिप्रार्थेनातिथ्यर्थपचेत्कचिन् । तममुंस्वार्यपकारं कुम्भीपाकेपचान्धक
उग्रान्य शिशुहन्तारममुं विश्रम्भघातिनम् । कृतघ्नं नय वेगेन महारौरवशरौरवम् ॥
ब्रह्मघ्नं चान्धतामिस्त्रे सुरापं पूयशोणिते । कालसूत्रे हेमचौरमवीचौगुरुतल्पगम्
तत्संसर्गिणमावर्धमसिपत्रवने तथा । एतान्महापातकिनस्तप्ततैलकटाहके ॥ ७४ ॥

आप्लुत्याप्लुत्य दुर्दष्ट्र! काकोलैर्लोहतुण्डकैः ।

सन्तोद्यमानान्पापिष्ठान् नित्यं कल्पं निवासय ॥ ७५ ॥

स्त्रीघ्नं गोघ्नं च मित्रघ्नं कूटशाल्मलिपादपे । उल्लम्बयच्चिरं कालमुर्ध्वपादमधोमुखम्
त्वचमस्य च संदंशैस्त्रोडयत्वं महाभुज ! । आश्लेषितुर्मित्रपत्न्याभुजाघुत्पाटयाशुच

ज्वालाकीले महाधारे नरकेऽमुं निपातय । योषहिनादाहयति परक्षेत्रं परालयम् ॥
 कालकूटे च गरदं कूटसाक्ष्याभिवादिनम् । मानकूटं तुलाकूटं कण्ठमोटेन पातय
 लालापिवेच दुष्प्रेक्ष्य तीर्थाप्सुष्ठीचिर्ननय । आमपाकेष्वगर्मघ्नंशूलपाकेऽन्यतापिनम्
 रसचिक्रयिणं विप्रमिथुयन्त्रे प्रपीडय । प्रजापीडाकरं भूपमन्धकूपे निपातय ॥ ८१
 गोतिलांश्चतुरङ्गांश्च विक्रेतारं द्विजाधमम् । मानुलान्याःसुरायाश्च विक्रेतारं हलायुधं
 मुसलोत्खले वैश्यं कण्डयैनं पुनःपुनः । शूद्रं द्विजावमन्तारं द्विजाग्रे मञ्जसेविनम्
 अधोमुखे च नरके दीर्घग्रीवः प्रपीडय ॥ ८४ ॥

शूद्रं ब्राह्मणजेतारं वैश्यं ब्राह्मणमानिनम् । क्षत्रियं याजकञ्चापि विप्रवेदविवर्जितम्
 लाक्षालवणमांसानां सतलवियसर्पिषाम् । आयुधेषु विकाराणां विक्रेतारं द्विजाधमम्
 पाशपाणेकशापाणे बहुध्वैतांश्चरणेदृढम् । घातयन्तौ कशाघातर्तनयतं तप्रकर्दमे
 इमांस्त्रिय श्लेषयाशु पुंश्चर्लीकुलकल्मषाम् । तेनोपपतिना सार्धं तप्रायसमयेन च
 स्वर्ग्यगृहीत्वा नियमं यस्त्यजेदजितेन्द्रियः । तं प्रापय दुराधर्मं बहुभ्रमरदंशके ॥
 इत्यादिजल्पन्दुर्वृत्तैः श्रूयते दूरतोयमः । स्वकर्मशङ्कितः पापैर्दृश्यतेतिभयङ्करः ॥
 येप्रजाःपालयन्तीह पुत्रानेषनिजौरसान् । दण्डयन्तिचधर्मेणभूपास्तेऽस्यसभासदः

वर्णाश्रमाश्च यद्राष्ट्रेऽनुतिष्ठन्ति निजां क्रियाम् ।

कालेनापन्ननिधना भूपास्तेऽस्य रुभासदः ॥ ९१ ॥

नैव दीनो न दुर्वृत्तो नापद्रुस्तो न शोकभाक् ।

येषां राष्ट्रं प्रदूश्यन्तु भूपास्तेऽस्य सभासदः ॥ ९३ ॥

ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःस्वधर्मनिरताःसदा । अन्येपियेसंयमिनःसंयमिन्यांश्चसन्तिते
 उशीनरःसुधन्वा च वृषपर्वा जयद्रथः । रजिःसहस्रजित्कुक्षिर्दृढधन्वा रिपुञ्जयः
 युधनाम्बोदन्तवक्त्रो नाभागो रिपुमङ्गलः । करन्धमो धर्मसेन परमर्दः परान्तकः ॥
 एते चान्ये च बहवो राजानोनीतिवर्तिनः । धर्माधर्मविचारद्वाः सुधर्मायां समासते
 अन्यश्च ते प्रवक्ष्यामो ये न पश्यन्ति भास्करिम् ।

दण्डपाशोद्यतकरान् दूतानुप्राणनाम्कथित् ॥ ९८ ॥

गोविन्दमाधवमुकुन्दहरमुरारे! शम्भो! शिवेश! शशिशेखर! शूलपाणे !।
 दामोदराच्युत! जनार्दन! वासुदेव! त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥
 गङ्गाधरान्धकरिपो! हर ! नीलकण्ठ ! वैकुण्ठ ! कैटभरिपो ! कमठाब्जपाणे ! ।
 भूतेश!खण्डपरशो! मृड! चण्डिकेश ! त्याज्या भटा य इतिसन्ततमामनन्ति ॥
 विष्णो! नृसिंह! मधुसूदन! चक्रपाणे! गौरीपते! गिरिश! शङ्कर! चन्द्रचूड !।
 नारायणासुरनिबर्हण! शार्ङ्गपाणे! त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥ १०१ ॥
 मृत्युञ्जयोप्रविषमेक्षण! कामशन्नो! श्रीकान्त!पीतवसनाम्बुदनीलशौरै !।
 ईशान!कृत्तिसन! त्रिदशैकनाथ! त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥१०२
 लक्ष्मीपते! मधुरिपो! पुरुषोत्तमाद्य ! श्रीकण्ठ! दिग्वसन! शान्तपिनाकपाणे! ।
 आनन्दकन्द ! धरणीधर ! पद्मनाभ! त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥
 सर्वेश्वर! त्रिपुरसूदन! देवदेव! ब्रह्मण्यदेव! गरुडध्वज! शङ्खपाणे! ।
 त्र्यक्षोरगाभरणबालमृगाङ्कमौले! त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥
 श्रीरामराघवरमेश्वर! रावणारे! भूतेश!मन्मथरिपो! प्रमथाधिनाथ! ।
 चाणूरमर्दनहृषीकपते!मुरारे! त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥ १०५ ॥
 शूलिन! गिरीश! रजनीशकलावतंस! कंसप्रणाशन! सनातन! केशिनाश !।
 भर्ग! त्रिनेत्र! भव!भूतपते! पुरारे! त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति॥१०६
 गोपीपते! यदुपते! वसुदेवसूतो! कर्पूरगौर! वृषभध्वज! भालनेत्र! ।
 गोवर्द्धनोद्धरण!धर्मधुरीण ! गोप ! त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥
 स्थाणो! त्रिलोचन! पिनाकधर! स्मरारे! कृष्णानिरुद्ध! कमलाकर!कलमपारे !
 विश्वेश्वर! त्रिपथगार्द्रजटाकलाप! त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥
 अष्टोत्तराधिकशतेन सुखारुनाम्नां संदर्भितां ललितरत्नकदम्बकेन ।
 सन्नायकां दृढगुणां द्विजकण्ठगां यःकुर्यादिमां स्रजमहो स यमं न पश्येत् ॥
 इत्थं द्विजेन्द्रनिजभृत्यगणान् सदैवसंशिक्षयेद्वनिगान्सहि धर्मराजः ।
 अन्येऽपि ये हरिहराङ्कधराधरायां ते दूरतःपुनरहो परिधर्जनीयाः ॥ ११० ॥

अगस्तिरुवाच

यो धर्मराजरचितां ललितप्रबन्धां नामावलीं सकलकलमपवीजहन्त्रीम् ।
 धीरोऽत्र कौस्तुभभृतः शशिभूषणस्य नित्यं जपेत्स्तनरसं स पिवेन्न मातुः ॥
 इति शृण्वन्कथां रम्या शिवशर्मा प्रियेऽनघाम् ।
 प्रहृष्टवचनः पुरतो ददर्शाप्सरसां पुरीम् ॥ ११२ ॥
 इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
 पूर्वाद्धे यमलोकवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

अप्सरःसूर्यलोकवर्णनम्

शिवशर्मोवाच

का इमा रूपलावण्यसौभाग्यनिधयःस्त्रियः ।
 दिव्यालङ्कारधारिण्यो दिव्यभोगसमन्विताः ॥ १ ॥

गणावचतुः

एतावारविलासिन्यो यज्ञभाजां प्रियङ्कराः । गीतज्ञा नृत्यकुशलावाद्यविद्याविचक्षणाः
 कामकेलिकलाभिज्ञा धूतविद्याविशारदाः । रसज्ञा भाववेदिन्यश्चतुराश्चोचितोक्तिषु
 नानादेशविशेषज्ञा नानाभाषासु कोविदाः । सङ्केतोदन्तनिपुणानैकाः स्वैरचरामुदा
 लीलानर्मसु साभिज्ञाः सुप्रलापेषु पण्डिताः । यूनां मनांसि सततं स्वैर्हावैरमयन्त्यमूः
 निर्मध्यमानात्क्षीरोदात्पूर्वमप्सरसस्त्वमूः ।

निःसृतास्त्रिजगज्जेतुर्मोहनास्त्रं मनोभुवः ॥ ६ ॥

उर्ध्वशीमेनकारम्भाच्चन्द्रलैखातिलोत्तमा । वपुष्मतीकान्तिमती लीलाघट्युत्पलावती
 अलम्बुषागुणवती स्थूलकेशीकलावती । कलानिधिगुणनिधिः कर्पूरतिलकोर्धरा

अनङ्गलतिकाद्यापि तथा मदनमोहिनी । चकोराक्षी चन्द्रकला तथा मुनिमनोहरा
 प्रायद्राधातपोद्वेष्ट्रीषारुनासासुकर्णिका । दारुसञ्जीविनीसुश्रीः क्रतुशुल्काशुभानना
 तपःशुल्का तीर्थशुल्कादानशुल्काहिमावती । पञ्चभ्रमेधिकाशैवराजस्यार्थिनीतथा
 अष्टाग्निहोमिका तद्वद्वाजपेयशतोद्धवा । इत्याद्यप्सरसां श्रेष्ठसहस्रं षष्टिसम्मितम्

एतस्मिन्नप्सरो लोके वसन्त्यन्या अपि स्त्रियः ।

सदा स्खलितलावण्याः सदास्खलितयौवनाः ॥ १३ ॥

दिव्याम्बरा दिव्यमालया दिव्यगन्धानुलेपनाः ।

दिव्यभोगैः सुसम्पन्नाः स्वेच्छाचिधृतचिग्रहाः ॥ १४ ॥

कृत्वामासोपवासानिस्खलन्तिब्रह्मचर्यतः । सकृदेवद्विकृत्वोवात्रिकृत्वोदैवयोगतः

ता इमा दिव्यभोगिन्यो रूपलावण्यसम्पदः ।

निवसन्त्यप्सरोलोके सर्वकामसमन्विताः ॥ १६ ॥

कृत्वा व्रतानि साङ्गानि कामिकानि विधानतः ।

भवन्ति स्वैरचारिण्यो देवभोग्या इहागताः ॥ १७ ॥

पतिव्रतधृता नार्यो बलेनबलिना वृताः । भर्तृबुद्धयारमन्ते तं कदाचित्ताइमा द्विज

भर्तरिप्रोषिते याश्चब्रह्मचर्यं व्रताः सदा । चिप्लवन्ते सकृद्देवात्ता एता वामलोचनाः

कुसुमानि सुगन्धानि सुवासञ्चन्दनं तथा ।

सुगौरञ्चापि कर्पूरं सुसूक्ष्माण्यम्बराणि च ॥ २० ॥

पर्णानि ऋजुताराणि जीर्णानि कठिनानि च ।

साग्राणि स्वर्णवर्णानि स्थूलनीलशिराणि च ॥ २१ ॥

सुवासोपस्कराढ्यानि नागवल्ल्या द्विजोत्तम !

शय्याचित्राभरणारतिशालोचितानि च ॥ २२ ॥

बहुकौतुकवस्तुनि समर्च्यद्विजदम्पती । भोगदानमिदं काम्यं प्रतिसंक्रमणं रवेः ॥

किं वा प्रतिव्यतीपातमेकसंघत्सरावधि । कोटादिति च मन्त्रेणयादद्याद्वरघोषणी

कामरूपधरोद्देवः प्रीयतामितिवादिनी । सा श्रेष्ठाऽप्सरसांमध्येष्वेतत्कल्पमिहाङ्गना

कन्यारूपधराकाचिद्व्याभुक्ताकेनचित्कवित् । देवरूपेणतं कालमारभ्यब्रह्मचारिणी
तदेव वृत्तं ध्यायन्तीनिधनंयातिकालतः । दिव्यरूपधरा सेहजायतेदिव्यभोगभाक्
निदानमप्सरोलोकस्येति शृणवन्निद्वजाप्रणीः ।

सौरं लोकमथ प्राप्य क्षणेन सविमानगः ॥ २८ ॥

यथा कदम्बकुसुमं किञ्चलकैःसर्धतोवृतम् । देदीप्यमानंहि तथा समन्ताद्गानुभानुभिः
दूराद्रधि सविज्ञाय धृततामरसद्वयम् । नवभिर्योजनानां च सहस्रैःसम्मितेन ह ॥३०
विचित्रेणैकचक्रेण सप्तसप्तियुतेन च । अनूरुणाधिष्ठितेन पुरतोधृतरश्मिना ॥
अप्सरमुनिगन्धर्वसर्पप्रामिणैश्चैतैः । स्यन्दनेनातिजविना प्रणनाम कृताञ्जलिः
सत्य प्रणामदेवोपि भ्रूभङ्गेनानुमन्य च । अतिदूरं नभोवर्त्म व्यतिचक्रामसक्षणात्
प्रकान्ते द्युमणौ दूरं शिवशर्मातिशर्मवान् ।

प्रोवाच भगवद्ब्रह्मकौ! कथं लभ्यं रवेःपदम् ॥ ३४ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुमावक्षाथां ममाग्रतः । सतांसातपदीमैत्रीतन्मेमैश्याप्रणोदितौ
गणावूचतुः

शृणु द्विजमहाप्राज्ञत्वय्यकथ्यन्न किञ्चन । सत्सङ्गादेवसाधूनां सत्कथासम्प्रवर्तते
नियन्तासर्धभूतानां य एककारणं परम् । अनामागोत्ररहितो रूपादिपरिचर्जितः ॥
आविर्भावतिरोभावौ यद्भ्रून्नर्तनवर्तिनौ । स एवं वक्ति सततं सर्वात्मावेदपूरुषः ॥
योऽसावादित्यपुरुषः सोसावहमितिस्फुटम् ।

अन्धं तमः प्रविश्यन्ति ये सैवान्यमुपासते ॥ ३६ ॥

निश्चिन्तार्थां श्रुतिमिमां ब्राह्मणासोद्विजोत्तम! । तमेकमुपतिष्ठन्तेनिश्चित्येतिपुनःपुनः
उपलभ्यन्वसाधित्रीनोपतिष्ठेतयः पराम् । कालेत्रिकालं सप्ताहाहात्स पतेन्नात्र संख्यः
तावत्प्रातर्जपंस्तिष्ठेद्यावद्धोदयो रवेः । आसनस्थोजपेन्मैनी प्रत्यःशतारकोदयात्
सादित्यां मध्यमां सन्ध्याञ्जपेदादित्वसम्मुखः ।
काललोपो न कर्तव्यस्ततःकालं प्रतीक्षयेत् ॥ ४३ ॥
काले फलन्त्योषधयः काले पुष्पन्ति पादपाः ।

वर्षन्ति तोयदाः काले तस्मात्कालं न लङ्घयेत् ॥ ४४ ॥

मन्देहदेहनाशार्थमुदयास्तमये रविः । समीहते द्विजोत्सृष्टं मन्त्रतोयाञ्जलित्रयम्
गायत्रीमन्त्रतोयाद्य'दसंयेनाञ्जलित्रयम् । कालेसवित्त्रेकिनस्यात्तेनदत्तं जगत्त्रयम्
किंकिनसवितासूतेकालेसम्यगुपासितः । आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि स पशूनि च
मित्रपुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च ।

भोगानष्टविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम् ॥ ४८ ॥

अष्टादशसुविद्यासु मीमांसातिगरीयसी । ततोपितर्कशास्त्राणिपुराणे तेभ्य एव च
ततोपिधर्मशास्त्राणितेभ्योगुर्वीश्रुतिद्विज ! ततोप्युपनिषच्छ्रष्टागायत्रीचततोयिका
दुर्लभासर्वमन्त्रेषु गायत्रीप्रणवान्विता । न गायत्र्याधिकंकिञ्चित्त्रयीषु परिगीयते
नगायत्रीसमो मन्त्रोनकाशीसदृशीपुरी । नविश्वेशसमंलिङ्गं सत्यं सत्यं पुनः पुनः
गायत्री वेदजननी गायत्रीब्राह्मणप्रसूः । गातारं त्रायतेयस्माद्गायत्री ते न गीयते
वाच्यवाचकसम्बन्धोगायत्र्याः सवितुर्द्वयोः ।

वाच्योसौ सविता साक्षाद्गायत्री वाचिका परा ॥ ५४ ॥

प्रभावेणैवगायत्र्याःक्षत्रिय-कौशिकोवशी । राजर्षित्वंपरित्यज्यब्रह्मर्षिपदमीयिवान्
सामर्थ्यं प्राप चात्युच्चैरन्यद्बुवनसर्जने । किं किं न दद्याद्गायत्री सम्यगेवमुपासिता
न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्रपठनादपि ।

देव्यास्त्रिकालमभ्यासाद् ब्राह्मणः स्याद्धि नान्यथा ॥ ५७ ॥

गायत्र्येवपरंविष्णुर्गायत्र्येव परःशिवः । गायत्र्येवपरोब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी ततः
देवत्रयं सभगवानंशुमाली दिवाकरः । सर्वेषां महसाराशिः कालः कालप्रवर्तकः
अर्कमुद्दिश्य सततमस्मल्लोकनिवासिनः । श्रुतिह्यदाहरन्तीमां सारासारविवेकिनः
एषोहदेवः प्रदिशोनुसर्वाः पूर्वोह जातःस उ गर्भे अन्तः ।

स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ ६१ ॥

सदैवमुपतिष्ठेन् सौरैः सूक्तैरतन्द्रिता । येनमन्थ्यत्रते विप्रा विप्राभास्करसन्निभाः
पुष्यार्केऽथहस्तार्के मूलार्केऽथषाढ्याद्विज । उत्तरार्केऽथयत्कार्यं तत्फलत्येवनान्यथा

पीथेमात्स्यर्कद्विषेयः स्नात्वाभास्करोदये । दानं होमंजपंकुर्याद्वर्षार्कस्यसुव्रतः
श्रद्धाघानेकभक्तश्च कामक्रोधविचर्जितः । सहाप्सरोभिर्द्युतिमान्सवसेदत्रभोगवान्
अयनेविषुवेवापि षडशीतिमुखेषु वा । विष्णुपद्याञ्चये दधर्महादानानि सुव्रताः

तिलाञ्जुद्धति साज्यांश्च ब्राह्मणान् भोजयन्ति च ।

पितृनुद्दिश्य च श्राद्धं ये कुर्वन्ति विपश्चितः ॥ ६७ ॥

महापूजाञ्च ये कुर्युर्महामन्त्राञ्जपन्ति च । तेऽत्र वैकर्तने लोके विकर्तनसमप्रभाः ॥

न दरिद्रा न दुःखार्ता न व्याधिपरिपीडिताः ।

संक्रमेष्वर्कभक्ता ये नविरूपा न दुर्भंगाः ॥ ६६ ॥

संक्रमेषु न यैर्दत्तं न स्नातं नीर्थवारिषु । विशेषहोमो न कृतःकपिलाज्याप्लुतैस्तिलैः

ते दृश्यन्ते प्रतिद्वारं विहीननयनाननाः । देहिदेहीति जल्पन्तो देहिनः सपटच्चराः

समंकृष्णलकेनापि यो दद्यात्काञ्चनं कृती ।

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे सवसेदत्र पुण्यभाक् ॥ ७२ ॥

सर्वगङ्गासमन्तोयं सर्वेब्रह्मसमाद्विजाः । सर्वदेयं स्वर्णसमंराहुग्रस्ते दिवाकरे

दत्तं जप्तंहुतं स्नातं यत्किञ्चित्सदनुष्ठितम् । भानूपरागेश्राद्धादि तद्धेतुर्ब्रह्मसन्निधेः

रविचारे संक्रमश्चेदुपरागोऽथवा भवेत् । तदा यदर्जितं पुण्यं तदिहाक्षयमाप्यते ॥

भानुवारो यदा षष्ठ्यां सप्तम्यामथ जायते । तदायत्सुकृतं कर्म कृतन्तदिह भुज्यते

हंसो भानुः सहस्रांशुस्तपनस्तापनोरविः ।

विकर्तनो विषस्वांश्च विश्वकर्मा विभावसुः ॥ ७७ ॥

विश्वरूपो विश्वकर्ता मार्तण्डो मिहिरौऽशुमान् ।

आदित्यश्चोष्णगुः सूर्योऽर्यमा ब्रध्नोदिवाकरः ॥ ७८ ॥

द्वादशात्मा सप्तहयोभास्करोऽहस्करः खगः । सूरःप्रभाकरः श्रीमाल्लोकचक्रुर्ग्रहेश्वरः

त्रिलोकेशोऽलोकसाक्षी तमोरिः शाश्वतः शुचिः ।

गभस्तिहस्तस्तीव्रांशुस्तरणिः सुमहोरणिः ॥ ८० ॥

द्युमणिर्हरिद्वोर्कोभानुमान्भयनाशनः । छन्दोभोवेद्वेद्यश्चभास्वान्पूषा वृषाकपिः

एकचक्रग्यो मित्रो मन्देहारिस्तमिच्छहा । दैत्यहा पापहर्ता च धर्मो धर्मप्रकाशकः
हेलिकश्चित्रमानुश्चकलिघनस्ताक्षर्यवाहनः । दिक्पतिःपद्मिनीनाथःकुशेशयकरोहरिः
धर्मरशिमर्दुर्निरीक्ष्यश्चण्डांशुः कश्यपात्मजः ।

एभिः सप्ततिसंख्याकैः पुण्यैः सूर्यस्य नामभिः ॥ ८४ ॥

प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैनमस्कारसमन्वितैः । प्रत्येकमुच्चरन्नाम दृष्ट्वा दृष्ट्वा दिवाकरम्
विगृह्यपाणियुग्मेन ताम्रपात्रं सुनिर्मलम् । जानुभ्यामवनीं गत्वा परिपूर्यजलेन च
करवीरादिकुसुमैरकचन्दनमिश्रितैः । दूर्वाङ्कुरैरक्षतैश्चनिक्षिप्तैः पात्रमध्यतः ॥ ८७ ॥
दद्यादर्घ्यमनर्घ्यायसवित्रेऽयानपूर्वकम् । उपमौलि समानीय तत्पात्रं नान्यदृङ्मनतः
प्रतिमन्त्रं नमस्कुर्वाद्दुदयास्तमये रविम् । अनया नाम सप्तत्या महामन्त्ररहस्यया
एवं कुर्वन्नरो जानु न दरिद्रोऽनुःखमाक् । व्याधिभिर्मुच्यतेघोरैरपिजन्मान्तरार्जितैः
विनोषधैर्विनावैद्यैर्विना पथ्यपरिग्रहैः । कालेन निधनं प्राप्तःसूर्यलोके महीयते ॥
इत्येकदेशः कथितो भानुलोकस्य सत्तम । महानेजो निधेरस्य को विशेषमवैत्यहो
स्वकर्णविषयी कुर्वन्नितिपुण्यकथामिमाम् ।

क्षणालोकयाञ्चक्रे महेन्द्रस्य महापुरीम् ॥ ९३ ॥

अगस्तिरुवाच

श्रुत्वा सौरीं कथामेतामप्सरोलोकसंयुताम् । न दरिद्रोऽभवेत्कापि नाधर्मेषु प्रवर्तते
ब्राह्मणैः सततं श्राव्यमिद्रमाख्यानमुत्तमम् । वेदपाठेन यत्पुण्यं तत्पुण्यफलदायकम्
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शृण्वन्तोऽध्यायमुत्तमम् ।
पातकानि विसृज्यैह गतिं यास्यन्त्यनुत्तमाम् ॥ ९६ ॥

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वाद्धेऽप्सरःसूर्यलोकवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

इन्द्राशिलोकवर्णनम्

शिवशर्मोवाच

रमयन्तीमनोतीवकेयं कस्येयमीशितुः । नयनानन्दसन्दोहदायिनीपूरनुत्तमा ॥ १ ॥

गणाध्वचतुः

शिवशर्मन्महाभाग! सुतीर्थफलितद्रुम !। लोकोऽत्र रमते चिप्र सहस्राक्षपुरीत्वियम्

तपोबलेन महता विहिता विश्वकर्मणा ।

दिवापि कौमुदी यस्याः सौधश्रेणीश्रियं श्रयेत् ॥ ३ ॥

यदा कलानिधिः कापि दर्शे दृश्यत्वमावहेत् ।

तदा स्वप्रेयसीं ज्योत्स्नां सौधेष्वेषु निगूहयेत् ॥ ४ ॥

यदच्छभित्तौ वाक्ष्यस्वमन्ययोषिद्विशङ्किता ।

मुग्धानाशु विशेषित्रमपि स्वां चित्रशालिकाम् ॥ ५ ॥

हर्षेषु नीलमणिभिर्निर्मितेष्वन्ननिर्मयम् । स्वनीलिमानमाघायतमोहःस्वपितिष्ठति

चन्द्रकान्तशिलाजालस्रतमात्रामलञ्जलम् । तत्र आदायकलर्शनेच्छन्त्यन्यज्जलञ्जनाः

कुचिन्दा न च सन्त्यत्र न घनेपश्यतोहराः । चैलान्यलंकृतीरत्रयतःकल्पद्रुमोऽर्पयेत्

गणका नात्र चिद्यन्ते चिन्ताविद्याधिशारदाः ।

यतश्चिकेति सर्वेषां चिन्तां चिन्तामणिर्द्रुतम् ॥ ६ ॥

सूपकारा न सन्त्यत्र रसकर्मविचक्षणाः । दुग्धे सर्वरसानेका कामधेनुरतो यतः ॥

कीर्तिरुच्चैःश्रवायस्यसर्वतावाजिराजिषु । रत्नमुच्चैःश्रवाःसोत्रहयानां पौरुषाधिकः

पेरावतो दन्तिवरश्चतुर्दन्तोत्र राजते । द्वितीय इषकैलासो जङ्गमस्फटिकोऽज्जलः

तरुत्नं पारिजातः स्त्रीरत्नं सोर्वशीत्विवह । नन्दनं वनरत्नञ्च रत्नमन्दाकिनीह्यपाम्

त्रयस्त्रिंशत्सुराणांयाकोटिःश्रुतिसमीरिता । प्रतीक्षतेसाऽघसरं सेवायै प्रत्यहंत्विवह

स्वर्गेष्विन्द्रपदादन्यन्नविशिष्येत किञ्चन । यद्यत्त्रिलोक्यामैश्वर्यं न तत्तुल्यमनेन हि
अश्वमेघसहस्रस्यलभ्यं चिनिमयेन यत् । किन्तेन तुल्यमन्यत्स्यात्पवित्रमथवामहत्
अर्षिष्मती संयमिनी पुण्यवत्यमलावती । गन्धवत्यलकैशी च नैतत्तुल्यामहर्द्धिभिः
अयमेव सहस्राक्षस्त्वयमेघदिवस्पतिः । शतमन्युरयं देवो नामान्येतानि नामतः ॥
सत्तापिलोकपालाये तपनं समुपासते । नारदाद्यैर्मुनिवरैर्यमाशीभिरीड्यते ॥ १६ ॥

पतत्स्यैर्येण सर्वेषां लोकानां स्यैर्यमिष्यते ।

पराजयान्महेन्द्रस्य त्रैलोक्यं स्यात्पराजितम् ॥ २० ॥

दनुजा मनुजादैत्यास्तपस्यन्त्युग्रसंयमाः । गन्धर्वयक्षरक्षांसि महेन्द्रपदलिप्सवः
सगराद्या महोपाला वाजिमेधविधायकाः । कृतवन्तो महायत्नं शक्रैश्वर्यजिघृक्षव
निष्प्रत्यूहं क्रतुशतं यः कश्चित्कुरुतेऽघनौ ।

जितेन्द्रियोमरावत्यां स प्राप्नोति पुलोमजाम् ॥ २३ ॥

असमाप्तक्रतुशता वसन्त्यत्रमहीभुजः । ज्योतिष्टोमादिभिर्यागैर्येजन्त्यपितेद्विजाः
तुलापुरुषदानादिमहादानानिषोडश । ये यच्छन्त्यमलात्मानस्ते लभन्तेऽमरावतीम्
अकलीबवादिनो धीराः संग्रामेष्वपराङ्मुखाः ।

विक्रान्ता धीरशयने तेऽत्र तिष्ठन्ति भूभुजः ॥ २६ ॥

इत्युद्देशात्समाख्यातामहेन्द्रनगरीस्थितिः । यायजूकावसन्त्यत्रयज्ञविद्याविशारदाः
इमामर्षिष्मतीं पश्य धीतिहोत्रपुरीशुभाम् । जातवेदसियैभक्तास्तेष्वसन्त्यत्रसुव्रताः
अग्निप्रवेशेयुकुयुं द्रं ढमत्वाजितेन्द्रियाः । स्त्रियोवासस्वसम्पन्नास्तेसर्वेह्यग्नितेजसः
अग्निहोत्ररताधिप्रास्तथाग्निब्रह्मचारिणः । पञ्चाग्निव्रतिनोयेचैतेऽग्निलोकेऽग्नितेजसः
शीते शीतापनुस्यै यस्त्विधमभारान्प्रयच्छति ।

कुर्यादग्निष्टिकां वाऽथ स वसेदग्निसन्निधौ ॥ ३१ ॥

अनाथस्याग्निस्कार्यः कुर्याच्छ्रद्धयान्वितः । अशक्तः प्रेरयेदन्यसोऽग्निलोकेमहीयते
जठराग्निविवृद्धयै योदद्यादाग्नेयमौषधम् । मन्त्राग्नेयसपुण्यात्मावह्निलोकेवसेच्चिरम्
यज्ञोपस्करवस्तूनि यज्ञार्थं प्रविण्तु वा । यथाशक्तिप्रदद्याद्यो ह्यर्षिष्मत्यां वसेत्स

अग्निरेकोद्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः । गुरुर्देवोव्रतंतीर्थं सर्वमग्निर्विनिश्चितम्
 अपावनानिसर्वाणिवह्निसंसर्गतःक्षणात् । पावनानिभवन्त्येवतस्माद्यःपावकःस्मृतः
 अपिवेदंविदित्वायस्त्यत्त्वाचैजातवेदसम् । अन्यत्रबध्नातिरतिब्रह्मणोनसवेदचित्
 अन्तरात्मा ह्ययं साक्षान्निश्चितो ह्याशुशुक्षणिः ।

मांसप्रासान्पचेत्कुक्षौ स्त्रीणां नो मांसपेशिकाम् ॥ ३८ ॥

तैजसी शाम्भवीमूर्त्तिः प्रत्यक्षा दहनात्मिका ।

कर्त्री हन्त्री पालयित्री चिनेनां किं विलोक्यते ॥ ३९ ॥

त्रिचमामुरयं साक्षान्नेत्रं त्रिभुवनेशितुः । अन्धन्तमोमयेलोके चिनेनङ्कःप्रकाशकः
 धूपप्रदीपनैवेषपयोदधिवृतक्षवम् । एतद्भुक्तनिपेवन्ने सर्वे दिवि दिवीकसः ॥४१॥

शिवशर्मावाच

कोयं कृशानुः कस्यायं सूनुः कथमिदंपदम् । आग्नेयं लक्ष्ममेतेन ब्रूतमेतन्ममाग्रतः

गणावचतुः

आकर्णय महाप्राज्ञवर्णयावोयथातथम् । योयंयस्य यथाऽनेनप्रापिष्योतिष्मतीपुरी
 नर्मदायास्तटे रम्ये पुरे नर्मपुरेपुरा । पुरारिभक्तः पुण्यात्माऽभवद्विभ्वानरो मुनिः ॥
 ब्रह्मचर्याश्रमेनिष्ठो ब्रह्मयज्ञरतः सदा । शाण्डिल्यगोत्रः शुचिमान्ब्रह्मतेजोनिधिर्घंशी

विज्ञाताखिलशास्त्रार्थो लौकिकाचारचञ्चुरः ।

कदाचिच्चिन्तयामास हृदि ध्यात्वा महेश्वरम् ॥ ४६ ॥

चतुर्णामप्याश्रमाणां कोऽतीव श्रेयसे सताम् ।

यस्मिन् प्राप्नोति संश्रुण्णेपरत्रेहच वा सुखम् ॥ ४७ ॥

इदं श्रेयस्त्विदं श्रेयस्त्विदं तु सुकरं भवेत् । इत्थंसर्वसमालोक्यगार्हस्थ्यंप्रशाशंसह

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।

एषामाधारभूतोसौ गृहस्थो नाऽन्यथेति च ॥ ४९ ॥

देवैर्मनुष्यैः पितृभिस्तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते ।

गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥ ५० ॥

अज्ञात्वाचाप्यहुत्वावाऽदस्वावाशनातियोगृही । देवादीनामृष्णीभूत्वानरकंप्रतिपद्यते
अज्ञाताशी मलं भुङ्क्ते त्वजपी पूयशोणितम् ।

अहुताशी कृमीन्भुङ्क्तेऽप्यदस्वा विड्विभोजनः ॥ ५२ ॥

ब्रह्मचर्यं हि गार्हस्थ्ये यादृक्कल्पनयोऽभूत् । स्वभावचपलेचित्तेकृताद्ब्रह्मचारिणि
हठाद्वा लोकभीत्यावा स्वार्थाद्वा ब्रह्मचर्यभाक् । सङ्कल्पयतिचित्तेत्कृतमप्यकृतंतदा
परदारपरित्यागात्स्वदारपरिरुष्टितः । ऋतुकालाभिगामित्वाद्ब्रह्मचारी गृहीरितः
विमुक्तरागद्वेषो यः कामक्रोधविचर्जितः । साग्निःसदारःसगृहीवानप्रस्थाद्विशिष्यते
वैराग्याद्गृहमुत्सृज्य गृहधर्मान् हृदिस्मरेत् । सभवेदुभयघ्नोऽप्येवानप्रस्थो न वा गृही
अयाचितोपस्थितया यो वृष्याचर्तते गृही । येनकेनापिसन्तुष्टोभिभुक्तात्सविशिष्यते
प्रार्थयेद्यत्कश्चित्किञ्चिद् दुष्प्रापं वा भविष्यति ।

अशनेषु न सन्तुष्टः स यतिः पतितो भवेत् ॥ ५६ ॥

गुणागुणं चिचार्येत्यं सर्वं विश्वानरो द्विजः ।

उद्ववाह विधानेन स्वोच्चितां कुलकन्यकाम् ॥ ६० ॥

अग्निशुश्रूषणरतः पञ्चयज्ञपरायणः । पर्यङ्कमनिरतो नित्यं देवपित्रतिथिप्रियः ॥ ६१ ॥

धर्मार्थकामान् युक्तात्मा सोऽर्जयन् स्वस्वकालतः ।

परस्परमसङ्कोचं दम्पत्योरानुकूलयतः ॥ ६२ ॥

पूर्वाह्णे देविकं कर्म सोऽकरोत्कर्मकाण्डचिन् । मध्यंदिनेमनुष्याणां पितृणामपराह्णे
एवं बहुतिथिकाले गते तस्याप्रजन्मनः । भार्या शुचिष्मती नाम कामपत्नी वसुव्रता
अपश्यन्त्यङ्कुरमपि सन्ततेः स्वर्गसाधनम् । विज्ञायशङ्करं कान्तंप्रणिपत्यव्यजिज्ञपत्

शुचिष्मत्युवाच

आर्यपुत्रार्यधिषण! प्राणनाथ! प्रियव्रत ! । नदुर्लभं ममास्तीह किञ्चित्स्वस्वरणार्चनात्

ये वै भोगाः समुचिताः स्त्रीणां ते त्वत्प्रसादतः ।

अलङ्कृत्य मया भुक्ताः प्रसङ्गाद्विचिं तान्यपि ॥ ६७ ॥

सुबासांसि सुबासाश्च सुशय्या सुनितम्बिनी ।

स्वस्ताम्बूलाभ्रपानाश्च अष्टौ भोगाः स्वधर्मिणाम् ॥ ६८ ॥

एकं मे प्रार्थितनाथचिराय- हृदिसंस्थितम् । गृहस्थानांसमुच्चितंतत्त्वंदातुमिहार्हसि
विश्वानर उवाच

किमदेयं हि सुश्रोणि! तव प्रियहितैषिणि । तत्प्रार्थय महाभागे प्रयच्छाम्य विलम्बितम्
महेशितुः प्रसादेन मम किञ्चिन्न दुर्लभम् । इहामुत्र च कल्याणि! सर्वकल्याणकारिणः
इति श्रुत्वा वचः पत्युस्तस्य सापतिदेवता । उवाच हृष्टवदना यदि देयो वरो मम
वरयोग्यास्मिन्नेनाथ नान्यं वरमहंवृणे । महेशसद्रुशं पुत्रं देहि माहेश्वरानथ ॥ ७३

इति तस्या वचः श्रुत्वा शुचिभ्यः शुचिभ्यः ।

क्षणं समाधिमाधाय हृद्येतत्समच्चिन्तयत् ॥ ७४ ॥

अहोकिमेतया तन्व्या प्रार्थितं ह्यतिदुर्लभम् । मनोरथपथाद्दूरमस्तु वासहिसर्वकृत्
तेनैवास्या मुखे स्थित्वा वाक्स्वरूपेण शम्भुना ।

व्याहृतं कोऽन्यथाकर्तुमुत्सहेत भवेदिदम् ॥ ७६ ॥

ततः प्रोवाच तां पत्नीमेकपत्नीव ते स्थितः । विश्वानरमुनिः श्रीमानितिकान्ते भविष्यति
इत्थमाश्वस्य तां पत्नीं जगाम तपसे मुनिः ।

यत्र विश्वेश्वरः साक्षात्काशीनाथोऽधितिष्ठति ॥ ७८ ॥

प्राप्य वाराणसीं तूष्णं दृष्ट्वाथ मणिकर्णिकाम् । तत्याजतापत्रितयमपि जन्मशताजितम्
दृष्ट्वा सर्वाणि लिङ्गानि विश्वेशप्रमुखानि च । ज्ञात्वा सर्वेषु कुण्डेषु वापीकूपसरः सु च
नत्वा चिनायकान्सर्वान् गौरीः सर्वाः प्रणम्य च ।

सम्पूज्य कालराजं च भैरवं पापभक्षणम् ॥ ८१ ॥

दण्डनायकमुखांश्च गणान्स्तुत्वा प्रयत्नतः ।

आदिकेशवमुखांश्च केशवान् परितोष्य च ॥ ८२ ॥

लोलार्कमुख्यसूर्यांश्च प्रणम्य च पुनः पुनः । कृत्वापिण्डप्रदानानि सर्वतीर्थेषु तन्द्रितः
सहस्रभोजनाद्यैश्च यतीन् चिप्रान् प्रतर्प्य च । महापूजोपचारैश्च लिङ्गान्यभ्यर्च्य भक्तितः
असकृच्चिन्तयामास किं लिङ्गं क्षिप्रसिद्धिदम् । यत्र निश्चलतामेतितपस्तनयकाम्यया

श्रीमदोङ्कारनाथं वा कृत्तिवासेश्वरं किमु । कालेशं वृद्धकालेशं कलशेश्वरमेव च
केदारेशं तु कामेशं चन्द्रेशं वा त्रिलोचनम् । ज्येष्ठेशंजम्बुकेशं वा जैगीषव्येश्वरं तु वा
दशाश्वमेधमीशानं द्रुमिषण्डेशमेव च । द्रुक्केशं गरुडेशं च गोकर्णेशं गणेश्वरम् ॥
दुण्ड्याशागजसिद्धाख्यं धर्मेशं तारकेश्वरम् । नन्दिकेशनिवासेशंपत्रीशंप्रीतिकेश्वरम्
पर्वतेशं पशुपतिं ब्रह्मेशं मध्यमेश्वरम् । बृहस्पतीश्वरं वाथ विभाण्डेश्वरमेव च ॥
भारभूतेश्वरं किं वा महालक्ष्मीश्वरं तु वा । मरुत्तेशं तु मोक्षेशं गङ्गेशं नर्मदेश्वरम्
मार्कण्डंमणिकर्णेशं रत्नेश्वरमथापि वा । अथवायोगिनीपीठंसाधकस्यैवसिद्धिदम्
यामुनेशं लाङ्गलीशं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम् । अविमुक्तेश्वरं वाथ विशालाक्षीशमेव च
व्याघ्रेश्वरं वराहेशं व्यासेशं वृषभध्वजम् । वरुणेशं विधीशं वा घसिष्टेशं शनीश्वरम्
सोमेश्वरं किमिन्द्रेशं स्वर्लोकं सङ्गमेश्वरम् ।

हरिश्चन्द्रेश्वरं किंवा हरिकेशेश्वरं तु वा ॥ ६५ ॥

त्रिसन्ध्येशं महादेवमुपशान्तिं शिवं तथा । भवानीशंकपर्दीशंकन्दुकेशंमलेश्वरम् ॥
मित्रावरुणसञ्ज्ञं वाकिमेवामाशुपुत्रदम् । क्षणं विचार्य स मुनिरिति विभवानरः सुधी
आह्वातं विस्मितं तावत्फलितो मे मनोरथः ।

सिद्धैः संसेचितं लिङ्गं सर्वसिद्धिकरम्परम् ॥ ६८ ॥

दर्शनात्पर्शनाद्यस्य मनोनिवृत्तिभागभवेत् । उद्धाटितं सदैवास्तेस्वर्गद्वारं हि यत्र हे
दिवानिशं पूजनार्थं विज्ञाप्य त्रिदशेश्वरम् । पञ्चमुद्रे महापीठे सिद्धिदे सर्वजन्तुषु
यत्र सा विकटा देवी प्रकटा सिद्धिरूपिणी ।

यत्र स्थितानां भक्तानां साक्षात्सिद्धिविनायकः ॥ १०१ ॥

निधूय विघ्नजालानि सर्वाः सिद्धीः प्रयच्छति ।

अविमुक्ते महाक्षेत्रे सिद्धिक्षेत्रं हि तत्परम् ॥ १०३ ॥

यत्र धीरेश्वरं लिङ्गं महागुह्यतमम्मतम् ।

तिलान्तरापि नो काश्यां भूमिर्लिङ्गं विना क्वचित् ॥ १०३ ॥

परं धीरेशसदृशं न लिङ्गं त्वाशु सिद्धिदम् । धर्मदं चार्थदं सम्यक्कामदं मोक्षदं तथा

यथा वीरेश्वरं लिङ्गं काश्यां नान्यत्तथा ध्रुवम् ।

पञ्चस्वरोऽत्रगन्धर्वः परां सिद्धिमगात्पुरा ॥ १०५ ॥

विद्याधरः स्वच्छविद्यो वसुपूर्णश्चयश्चराट् । नृत्यन्तीनिजभावेनपुराह्यत्राप्यसरोवरा
सदेहाकोकिलालापा लिङ्गमध्येलयंगता । ऋषिर्वेदशिरा नाम जपन् वै शतरुद्रियम्
मन्त्रज्योतिर्मयैलिङ्गे सशरीरोऽविशत्पुरा । चन्द्रमौलिभरद्वाजाबुभौपाशुपतोत्तमौ
वीरेश्वरं समभ्यर्च्य गायमानो लयं गतौ ।

शङ्खचूडो हि नागेन्द्रः स्वफणामणिभिर्निशि ॥ १०६ ॥

वण्मासात्सिद्धिमगमद्बहुनीराजनैरिह । किन्नरी हंसपद्यत्र भर्त्राविणुप्रियेण वै ॥
गायन्ती सुस्वरं याता परानिर्वाणभूमिकाम् ।

असङ्ख्याताः सहस्राणि सिद्धाः सिद्धिमिहागताः ॥ १११ ॥

सिद्धलिङ्गमिहाख्यातं तस्माद्वीरेश्वरम्परम् ॥ ११२ ॥

वीरेश्वरं समाराध्य भ्रष्टराज्यो जयद्रथः । हन्वारिपूनस्वलितं राज्यंप्राप विदेहजः
चिदूरथोऽथ नृपतिरपुत्रः पुत्रवानभूत् । वीरेश्वरप्रसादेन मगधाधिपतिर्वशा ॥ ११४

वसुदत्तोऽत्र च वणिक् सुतां वसुसुतोपमाम् ।

अब्दमभ्यर्च्य वीरेशं रत्नदत्तोप्यघातवान् ॥ ११५ ॥

अहमप्यत्र वीरेशं समाराध्यत्रिकालतः । आशुपुत्रमवाप्स्यामियथाभिलषितस्त्रिया
इति कृत्वा मतिधीरो विप्रोविश्वानरःकृती । चन्द्रकूपजलैःस्नात्वाजग्राह नियमं व्रती
एकाहारो भवन्मांसं मासंनकाशनोऽभवत् । अयाचिताशनोमासंमासंत्यकाशनःपुनः
पयोव्रतोऽभवन्मांसं मासंशाकफलाशनः । मासंमुष्टितिलाहारोमासं पानीयभोजनः
पञ्चगव्याशनोमासं मासं चान्द्रायणव्रती । मासं कुशाग्रजलभुङ्क्त्वा मासं श्वसनभक्षणः
अथत्रयोदशेमासि स्नात्वात्रिपथगाम्भसि । प्रत्यूषएववीरेशं याचदायाति सद्भिजः
तावद्विलोकयाञ्चक्रे मध्येलिङ्गं तपोधनः । विभूतिमूपितं बालमष्टवर्षाकृति शुभम्
आकर्णपूर्णनेत्रञ्चसुरकदशनच्छदम् । चाठपिङ्गजटाटीलि नग्नं प्रहसिताननम् ॥
शैशवोचितनेपथ्यधारिणं चित्तहारिणम् । पठन्तंभृतिसुकानिहसन्तश्चस्वलीलया

तमालोक्यस्तुतिष्वक्रोमकञ्चुकितोमुदा । प्रोचरद्गद्गदालापोनमोऽस्त्विपुनःपुनः

विश्वानर उवाच

एकं ब्रह्मैवाऽद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानाऽस्ति किञ्चित् ।

एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥ १२६ ॥

एकः कर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो! नानारूपेष्वेकरूपोऽस्यरूपः ।

यद्वत्प्रत्यप्स्वर्क एकोप्यनेकस्तस्मान्नान्यं त्वा चिनेशं प्रपद्ये ॥ १२७ ॥

रज्जौ सर्पः शुक्तिकायाञ्च रूप्यं नैरःपूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ ।

यद्वत्तद्वद्विष्वगेपप्रपञ्चो यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ॥ १२८ ॥

तोये शंत्यं दाहकत्वञ्च बह्वौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः ।

पुष्पे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पिर्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वा प्रपद्ये ॥ १२९ ॥

शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रैघ्राणस्त्वं व्यङ्ग्विरायासि दूरात् ।

व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग्वेत्स्यतस्त्वा प्रपद्ये ॥ १३० ॥

नो वेदस्त्वामाश! साक्षाद्धि वेद नो वा विष्णुर्नो विधाताऽखिलस्य ।

नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये ॥ १३१ ॥

नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नाख्या नो वा रूपंनैव शीलं नदेशः ।

इत्थंभूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः सर्धान् कामान् पूरयेस्तद्वजे त्वाम् ॥

त्वत्तः सर्वंत्वंहिसर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वञ्च नग्नोऽतिशान्तः ।

त्वं वं वृद्धस्त्वंयुवा त्वञ्च बालस्त्वं यत्किन्नाऽस्यतस्त्वां नतोऽस्मि ॥

स्तुत्वेति भूमौ निपपातविप्रः सदण्डवद्यावदतीवहृष्टः ।

तावत्सबालोऽखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाच भूदेव! वरं वृणीहि ॥ १३४ ॥

तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती । प्रत्यब्रवीत्किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तवप्रभो!

सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वः सर्वप्रदो भवान् ।

याञ्ज्यां प्रतिनियुङ्क्ते मां किमीशो दैन्यकारिणीम् ॥ १३६ ॥

इति श्रुत्वा बन्धस्तस्य देवो विश्वानरस्य ह ।

शुचेः शुचिब्रतस्याशु शुचिस्मित्वाऽप्रचीच्छिशुः ॥ १३७ ॥

बाल उवाच

त्वया शुचे! शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि ।

अचिरेणैव कालेन सभविष्यत्यसंशयः ॥ १३८ ॥

तव पुत्रत्वमेप्यामिशुचिष्मत्यांमहामते । ख्यातो गृहपतिर्नाम्नाशुचिःसर्वांमरप्रियः
अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतस्त्वयेरितम् । अब्दत्रिकालपठनात्कामदंशिवसन्निधौ
एतत्स्तोत्रस्य पठनं पुत्रपौत्रधनप्रदम् । सर्वशान्तिकरं चापि सर्वापत्परिनाशनम्
स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकं नाऽत्र संशयः ।

प्रातरुत्थाय सुस्नातोऽलिङ्गमभ्यर्च्यं शाश्वतम् ॥ १४२ ॥

वर्षं जपन्निदं स्तोत्रमपुत्रः पुत्रवान्भवेत् । वैशान्ते कार्तिके माघे विशेषनियमैर्युतः
यः पठेत्स्नानसमये सलभेत्सकलं फलम् । कार्तिकस्यतुमासस्यप्रसादादहमव्ययः
तव पुत्रत्वमेप्यामि यस्त्वन्वस्तत्पठिष्यति ।

अभिलाषाष्टकमिदं न देयं यस्य कस्यचित् ॥ १४५ ॥

गोपनीयं प्रयत्नेन महाबन्ध्या प्रसूतिकृत् । स्त्रियावापुरुषेणापिनियमाल्लिङ्गसन्निधौ
अब्दं जप्तमिदंस्तोत्रं पुत्रदं नात्रसंशयः । इत्युत्त्वान्तर्दधेबालः । सोऽपिचिप्रोगृहंगतः

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

पूर्वाद्धे इन्द्राग्नि लोकवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

बहिलोकवर्णनेविश्वानरपुत्रारुयानवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

शृणु सुश्रोणि सुभगे ! वैश्वानरसमुद्भवम् । पुण्यशीलसुशीलाभ्यां यथोक्तं शिवशभणे
अथ कालेन तद्योषिदन्तर्वन्नीबभूव ह । विधिवद्विहिते तेन गर्भाधानारुयकर्मणि
ततःपुंसवन्तेनस्पन्दनात्प्राग्बिपश्चिता । गृह्योक्तविधिनासभ्यकृतं पुंस्त्वविबृद्धये
सीमन्तोथाष्टमे मासिगमंरूपसमृद्धिकृत् । सुखप्रसवसिद्धये च तेनाकारिक्रियाविदा
अथातः स सुतारासु ताराधिपवराननः । केन्द्रे गुरौशुभे लग्ने सुग्रहेष्वगुणेषु च ॥
अरिष्टं दीपयन् दीप्त्यासर्वारिष्टविनाशकृत् । तनयोनामतस्यां तु शुचिष्मत्यां बभूव ह

सद्यः समस्तसुखदो भूभुवः स्वर्निवासिनाम् ।

गन्धवाहा गन्धवाहा दिग्बधुमुखवासनाः ॥ ७ ॥

इष्टगन्धप्रसूनौघैर्ववर्षुस्ते घनाघनाः । देवदुन्दुभयोनेदुः प्रसेदुः सर्वतोदिशः ॥

परितः सरितः स्वच्छा भूतानां मानसैः सह ।

तमोऽताम्यत् नितरां रजोऽपि विरजोऽभवत् ॥ ६ ॥

सत्त्वाः सत्त्वसमा युक्ता वसुधाऽऽसीच्छुभा तदा ।

कल्याणी सर्वतो वाणी प्राणिनः प्रीणयन्त्यभूत् ॥ १०

तिलोत्तमोर्वशीरम्भाप्रभाविद्युत्प्रभाशभा । सुमङ्गलाशुभालापासुशीलाढ्यावराङ्गनाः
कणत्कङ्कणपात्राणि कृत्वा करतले मुदा । मुक्तमुक्ताफलाढ्यानि यक्षकर्मवन्ति च
वज्रवैदूर्यदीपानि हरिद्रालेपनानि च । गारुत्मतैकरूपाणि शङ्खशुक्तिदधीनि च ॥
पद्मरागप्रवालाख्यरत्नकुङ्कुमवन्ति च । गोमेवपुष्परामेन्द्रनीलसन्माल्यभाञ्जि च ॥
विद्याधर्यञ्चक्रिन्नर्यस्तथाऽमर्यः सहस्रशः । क्षामरव्यग्रहस्ताम्रमङ्गल्यद्रव्यपाणयः
गन्धर्वारगयक्षाणां सुवासिन्यः शुभस्वराः । गायन्त्योललितं गीतं तत्राज्जगुरनेकशः

मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ।

वसिष्ठः कश्यपश्चाहं विभाण्डो माण्डवीसुतः ॥ १७ ॥

लोमशो लोमघरणो भरद्वाजोऽथ गीतमः । भृगुस्तुगालवोगर्गो जातृकर्ण्यःपराशरः

आपस्तम्बो याज्ञवल्क्यदक्षवाल्मीकिमुद्गलाः ।

शाताक्षपञ्च लिखितः शिलादः शङ्ख उज्ज्वलभुक् ॥ १६ ॥

जमदग्निश्च संवर्तो मतङ्गो भरतोऽशुमान् ।

व्यासः कात्यायनः कुत्सः शौनकः सुश्रुतः शुकः ॥ २० ॥

ऋष्यशृङ्गोथ दुर्वासा रुचिनारदतुम्बुरू । उत्तङ्को वामदेवश्च च्यवनोऽसितदेवर्षी
शालङ्कयनहारीतौविश्वामित्रोथ भार्गवः । मृकण्डः सहपुत्रेणदाहभ्यदृढालकस्तथा

धौम्योपमन्युवत्साद्या मुनयो मुनिकन्यकाः ।

तच्छान्त्यर्थं समाजमुर्धन्यं विश्वानराश्रमम् ॥ २३ ॥

ब्रह्मा बृहस्पतियुतो देवो गरुडवाहनः । नन्दिभृङ्गिसमायुक्तो गौर्यासहवृषध्वजः
महेन्द्रमुष्यागीर्वाणा नागाः पातालवासिनः ।

रत्नान्यादाय बहुशः ससरित्का महाव्ययः ॥ २५ ॥

स्थावरराजङ्गमरूपंभृत्वायाताः सहस्रशः । महामहोत्सवेतस्मिन् बभूवाकालकौमुदी
जातकर्मस्वयं चक्रेतस्यदेवः पितामहः । श्रुतिविचार्य तद्रूपां नान्नागृहपतिस्त्वयम्
इतिनाम ददौतस्मै देयमेकादशेऽहनि । नामकर्मविधानेन तदर्थं श्रुतिमुच्चरन् ॥ २८

अयमग्निर्गृहपतिर्गाहंपत्यः प्रजाया वसुचित्तमः ।

अग्ने गृहपते भिक्षुस्रमभिसह आथच्छस्व ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपतेस्तुत्या परामपिनिदर्शयन् । चतुर्निगममन्त्रोक्तैराशीर्भिरभिनन्द्य च ॥
कृत्वा बालोच्चितां रक्षां हरेणहरिणा सह । निर्ययौ हंसमारुह्य सर्वेषां प्रपितामहः
अहोरूपमहोतेजस्त्वहोसर्वाङ्गलक्षणम् । अहोशुचिष्मतीभाग्यमाचिरासीत्स्वयंहरः
अथवा किमिदं विचित्रं शर्वभक्तजनेष्वहो । आचिर्भवेत्स्वयं रुद्रो यतो रुद्रास्तद्वर्षकाः
इति स्तुबन्तस्त्वन्योन्यं जग्मुः सर्वे यथागतम् ।

विश्वानरं समापृच्छन् संप्रहृष्टतनुरूहाः ॥ ३४ ॥

अतः पुत्रं समीहन्ने गृहस्थाश्रमवासिनः । पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी
अपुत्रस्य गृहं शून्यमपुत्रस्यार्जनंवृथा । अपुत्रस्यान्वयश्छिन्नो नापि चित्रं ह्यपुत्रतः
न पुत्रान्परमो लाभो नपुत्रात्परमं सुखम् । न पुत्रात्परमं मित्रं परत्रेह च कुत्रचित्
औरसः क्षेत्रजः क्रीतो दत्तः प्राप्तः सुतासुतः ।

आपत्सुरक्षितश्चान्यः पुत्राः सप्ताऽत्रकीर्तिताः ॥ ३८ ॥

एषामन्यतमः कार्योंगृहस्थेन विपश्चिता । पूर्वपूर्वः सुतः श्रेयान् हीनः स्यादुत्तरोत्तरः
गणावचतुः

निष्कमोऽथ चतुर्थोऽस्य मासि पित्रा कृतो गृहात् ।

अन्नप्राशनमब्दार्थं चूडाब्दे चार्थवत्कृता ॥ ४० ॥

कर्णवेधं ततः कृत्वा श्रवणक्षेपं स कर्मचित् । ब्रह्मतेजोमिवृद्धयर्थं पञ्चमेऽब्दे व्रतं ददौ
उपाकर्म ततः कृत्वा वेदानध्यापयत्सुधीः ।

त्र्यब्दं वेदान् सविधिनाऽध्यैष्ट साङ्गपदक्रमान् ॥ ४२ ॥

विद्याजातं समस्तञ्च साक्षिमात्राद् गुरोर्मुखात् ।

विनयाद्रिगुणानाचिक्कुर्वन् जग्राह शक्तिमान् ॥ ४३ ॥

ततोऽथ नवमे वर्षे पित्रोः शुश्रूषणे रतम् । वैश्वानरं गृहपतिं दृष्ट्वा कामचरो मुनिः ॥
विश्वानरोटजं प्राप्य देवर्षिनारदः सुधीः । पप्रच्छ कुशलं तत्र गृहीतार्घासनक्रमात्
नारद उवाच

विश्वानर! महाभाग! शुचिष्मति! शुभव्रते !। कुरुते युवयोर्वाक्यमयंगृहपतिः शिशुः
नान्यस्तीर्थं न वादेवोनगुरुर्न च सत्क्रिया । विहायपित्रोर्वचनं नान्यो धर्मः सुतरस्य हि

न पित्रोरधिकं किञ्चित्त्रिलोक्यां तनयस्य हि ।

गर्भधारणपोषाभ्यां पितुर्माता गरीयसी ॥ ४८ ॥

अम्भोमिरभिषिच्य स्वं जननीचरणच्युतैः ।

प्राप्नुयात्स्वेषु नीशुद्भूकवन्धाधिकशुद्धताम् ॥ ४९ ॥

संन्यस्ताखिलकर्मापि पितुर्बन्धोहिमस्करी । सर्वबन्धेन यतिनाप्रसूर्वन्धा प्रयत्नतः
इदमेव तपोत्युग्रमिदमेव परं व्रतम् । अयमेव परोधर्मो यत्पित्रोः परितोषणम् ॥

मन्ये मान्यो नाऽधमस्य तथाऽन्यस्य यथा युवाम् ।

सुखाकारैर्बिनीतस्य शिशोर्गृहपतेरहम् ॥ ५२ ॥

वैश्वानर!समभ्येहि ममोत्सङ्गेनिपीद भो ! लक्षणानिपरीक्षेऽहंपाणिदर्शयदक्षिणम्
इत्युक्तो मुनिना बालः पित्रोराज्ञामवाप्य सः ।

प्रणम्य नारदं श्रीमान् भक्त्या प्रह्व उपाचिशत् ॥ ५४ ॥

ततो दृष्ट्वाऽस्यं सर्वाङ्गं तालुजिह्वाद्विज्ञानपि । आनीयकुङ्कुमारकं सूत्रञ्चत्रिगुणीकृतम्
स्मृत्वा शिवौ गणाध्यक्षमूर्ध्वीभूतमुदङ्मुखम् ।

मुनिः परिममौ बालमापादतलमस्तकम् ॥ ५६ ॥

तिर्यगूर्ध्वंसमोमाने योऽष्टोत्तरशताङ्गुलः । सभवेत्पृथिवीपालो बालोऽयंतेयथाद्विज
पञ्चसूक्ष्मः पञ्चदीर्घः सप्तऋतः पटुन्नतः । त्रिपृथुर्लघुगम्भीरो द्वात्रिंशल्लक्षणस्त्विति
पञ्चदीर्घाणि शस्यानियथादीर्घायुषोस्यवै । भुजौनेत्रेहेतुर्जातुनासाऽस्यतनयस्यते
ग्रीवाजङ्गामेहनैश्च त्रिभिर्ह्रस्वोऽयमीडितः ।

स्वरेण सस्वनाभिभ्यां त्रिगम्भीरः शिशुः शुभः ॥ ६० ॥

त्वक्केशाङ्गुलिदर्शनाः पर्वाण्यङ्गुलिजान्यपि ।

तथाऽस्य पञ्चसूक्ष्माणि दिक्पालपदभाग्यथा ॥ ६१ ॥

वक्षः कुक्ष्यलकंसकन्धं करं वक्त्रं पटुन्नतम् । तथाऽत्रद्रश्यतेवाले महदैश्वर्यभाग्यथा
पाण्योस्तले च नेत्रान्ते तालुजिह्वाधरौष्ठकम् ।

सप्तराहणञ्च सनखमस्मिन् राज्यसुखप्रदम् ॥ ६३ ॥

ललाटकटिबक्षोभिस्त्रिविस्तीर्णो यथा ह्यसौ ।

सर्वतेजोऽतिगैश्वर्यं तथा प्राप्स्यति नान्यथा ॥ ६४ ॥

कमठोपृष्ठकठिनावकर्मकरणी करौ । राज्यहेतूशिशोरस्य पादौ धाध्वनिकोमलौ
अच्छिन्ना तर्जनीव्याप्यतथारेखास्यद्रश्यते । कनिष्ठापृष्ठनिर्यातादीर्घायुर्ध्वयथापर्यैत्

पादौ सुमांसलौ रक्तौ समौ सूक्ष्मौ सुशोभनौ ।

समगुल्फौ स्वेदहीनौ स्निग्धावैश्वर्यसूचकौ ॥ ६७ ॥

स्वल्पामिः कररेखाभिरारक्तामिःसदासुखी । लिङ्गेनकृशशस्त्रेण राजराजोभविष्यति
उत्कटासनगुल्फस्फिग्नाभिरस्यापि वर्तुला । दक्षिणावर्तमरुणं महदैश्वर्यसूचिका
धारैका मूत्रयत्यस्मिन्दक्षिणावर्तिनी यदि । गन्धश्च मीनमधुनोर्यदिवीर्यतदानृपः

विस्तीर्णौ मांसलौ स्निग्धौ स्फिक्वावस्य सुखोचितौ ।

वामावर्तौ सुप्रलम्बौ दोषौ दिग्प्रक्षणोचितौ ॥ ७१ ॥

श्रीवत्सवज्रचक्राब्जमत्स्यकोदण्डदण्डभृत् ।

तथाऽस्य करगा रेखा यथा स्यात्त्रिदिवस्पतिः ॥ ७२ ॥

द्वात्रिंशद्दशनश्चायं करकन्धुशिरोधरः । क्रीञ्चदुन्दुभिहंसाभ्रस्वरः सर्वेश्वराधिकः
मधुपिङ्गलनेत्रोऽसौनेन श्रीस्त्यजतिक्रचित् । पञ्चरेखललाटस्तु तथासिंहोदरःशुभः

ऊर्ध्वरेखाङ्कितपदो निःश्वसन् पद्मगन्धवान् ।

अच्छिद्रपाणिः सुनखो महालक्षणवानयम् ॥ ७५ ॥

किन्तु सर्वगुणोपेतं सर्वलक्षणलक्षितम् । सम्पूर्णनिर्मलकलं पातयेद्विधुवद्विधिः
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयम्वसौ शिशुः ।

गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विघातरि ॥ ७७ ॥

शङ्केऽस्य द्वादशे वर्षे प्रत्यूहो विद्यद्भ्रितः ।

इत्युत्था नारदो धीमान् सज्जगाम यथागतम् ॥ ७८ ॥

विश्वानरः सपत्नीकस्तच्छ्रुत्वा नारदेरितम् । तदैव मन्यमानोभृद्भ्रजपातं सुदारुणम्
हाहतोस्मीति वचसा हृदयं समताडयत् । मूर्च्छामिषाप महतीपुत्रशोकसमाकुलः

शुचिष्मत्यपि दुःखार्ता रुरोदातीव दुःसहम् ।

आर्तस्वरेण हारावैरत्यन्तव्याकुलेन्द्रिया ॥ ८१ ॥

हाशिशी! हागुणनिधे!हापितुर्वाक्यकारक ! हाकुतो मन्दभाग्यायाज्जडरेमेसमागतः
त्वदेकपुत्राहापुत्रकोऽत्रमात्रायते पुरा । त्वद्भूतेत्वद्गुणोभ्यांइयेपतितांशोकसागरे

हा बाल! हाचिमल! हाकमलायताक्ष! हालोकलोघनचकोरकुरङ्गलक्ष्मन् ।
 हा तात! तात! नयनाब्जमयूखमालिन् !हामातुस्तसवसहस्रसुखैकहेतो ! ८४॥
 हापूर्णचन्द्रमुख! हासुनखाङ्गुलीक! हाघाटुकारवचनामृतवीचिपूर ॥
 दुःखैः कियद्विरहहाङ्गमया त्वमाप्तः किंकितं गृहपते न मया त्वदाप्त्यै ॥८५॥
 नोप्तोवलिर्नवतकासु च देवतासु तीर्थानि कानि न मयाऽध्युषितानि वत्स !
 के के मया न नियमौषधमन्त्रयन्त्राः संसाधितास्तवकृते सुकृतैकलभ्यः ॥ ८६॥
 संसारसागरतरे हर दुःखभारं सारं मुखेन्दुमभिदर्शय सौख्यसिन्धो !
 पुञ्जामतीव्रनरकार्षणवाडवाग्ने सर्ज्जीवयस्व पितरं निजवाक्सुधोक्षैः ॥ ८७ ॥
 किं देवता अहह! जन्ममहोत्सवेऽस्य शान्तेति भावि मिलितायुगपत्समस्ताः
 एकस्थसर्वगुणशीलकलाकलापसौन्दर्यलक्षणपरीक्षणपूर्णहर्षाः ॥ ८८ ॥
 शम्भो! महेश! करुणाकर ! शूलपाणे! मृत्युञ्जयस्त्वमिति वेदविदो वदन्ति ।
 त्वद्भ्रूत्तबालतनये यदिकालकालः स्यादेवमत्र वद कस्य भवेन्न पातः ॥ ८९ ॥
 हा! हन्त! हन्त! भवता भवतापहारी कस्माद्विधेऽत्र बिदधे बहुभिः प्रयत्नैः ।
 बालो विशालगुणसिन्धुमगाधमध्यं सद्ब्रह्मसारमखिलं सविधं विधाय ॥ ९० ॥
 हा! काल! बालकवती किमुतेन राज्ञी त्वत्कालता न हतवाञ्छ सुताननेन्दुः ।
 बालेति कोमलमृणाललताङ्गुलीले दम्भोलिनिष्ठुरकठोरकुठारदंष्ट्रः ॥ ९१ ॥
 इत्थं विलप्य बहुशो नयनाम्बुधारासम्पातजाततटिनीशतमुत्तरङ्गम् ।
 सा तोकशोकजनितानलतापतप्ता प्रोच्छ्वस्य दीर्घविपुलोष्णमहो शुशोष ॥९२
 आकर्ण्य तत्करुणवत्परिदेवितानि तानिद्रुमाव्रततयःकुसुमाश्रुपातैः ।
 प्रायो रुदन्ति पततां विरुतार्तरावैरालोल्यमौलिमसकृत्पवनच्छलेन ॥ ९३ ॥
 रुणन्तया किल तथा बहुमुक्तकण्ठमार्तस्वरैः प्रतिरवच्छलतो यथोच्चैः ।
 तद्दुःखतो नुरुदुर्गिरिकन्दरास्याः सर्वादिशः स्थगितपत्त्रिमृगागमा ॥९४
 श्रुत्वाऽऽर्तनादमिति विभ्वनरोऽपि मोहं,
 हित्थोत्थितःकिमिति किं त्विति किं किमेतत् ।

। उच्चैर्षदन् गृहपतिः क स मे बहिस्थः प्राणोन्तरात्मनिलयः सकलेन्द्रियेशः ॥

अगस्त्य उवाच

ततो दृष्ट्वा स पितरौ बहुशोकसमावृतौ ।

स्मितवोवाच ततो 'मातस्त्रासस्त्वीदृक्कुतो हि वाम् ॥ ६६ ॥

नमाकृतवपुस्त्राणं भवच्चरणरेणुभिः । कालःकलयितुं शको वराकीचञ्चलालिपका
प्रतिज्ञा शृणुतंतातौ यदिवांतनयोह्यहम् । करिष्येऽहंतथातेन विद्युन्मत्तस्त्रसिष्यति
मृत्युञ्जयं समाराध्य सर्वज्ञं सर्वदं सताम् । कालकालं महाकालंकालकूटविषादिनम्
इतिश्रत्वा वचस्तस्य जरितौ द्विजदम्पती । अकालामृतवर्षावशात्ततापौतदोचतुः

अपयोदपयोवृष्टिरदुग्धाब्धिः सुधोदयः ।

अनिन्दुः कौमुदीकान्तिः कुतो नौ सुखयत्यलम् ॥ १०१ ॥

पुनर्ब्रं हि पुनर्ब्रं हि कीदृक्कीदृक्पुनःपुनः । कालःकलयितुं नालं वराकी चञ्चलालिपका
आवयोन्तापनाशाय महोपायस्त्वयेरितः । मृत्युञ्जयस्य देवस्य समाराधनलक्षणः
तद्गच्छशरणं तात! नातः परतरं हितम् । मनोरथपथातीतकारिणः कालहारिणः ॥
किं न श्रुतं त्वया तात! श्वेतकेतु यथा पुरा । पाशितं कालपाशेन ररक्षत्रिपुरान्तकः
शिलादतनयं मृत्युग्रस्तमष्टाब्दमर्भकम् । शिवोनिजजनं चक्रे नन्दिनं विश्वनन्दिनम्
क्षीरोदमथनोद्भूतं प्रलयानलसन्निभम् । पीत्वा हालाहलं घोरमरक्षद्भुवनत्रयम् ॥
जालन्धरं महादर्पं हतत्रैलोक्यसम्पदम् । चरणाङ्गुष्ठरेखोत्थचक्रेण निजघान यः ॥
य एकेषुनिपातोत्थज्वलनैस्त्रिपुरंपुरा । विधायपत्त्रिणंघिष्णुं ज्वालयामासधूर्जटिः
अन्धकं यस्त्रिशूलाग्रप्रोतंवर्षायुतं पुरा । त्रैलोक्यैश्वर्यसंमूढंशोषयामास भानुना ॥
कामं दृष्टिनिपातेन त्रैलोक्यमविजयोर्जितम् । निनायानङ्गुपदर्वी धीक्षमाणेष्वजादिषु
तं ब्रह्माद्येककर्तारं मेघवाहनमच्युतम् । प्रयाहि पुत्र! शरणं विश्वरक्षामणि शिवम्
पित्रोरनुज्ञां प्राप्येति प्रणम्यचरणौ तयोः । प्रदक्षिणमुपावृत्यबह्वाश्वस्यविनिर्ययौ

स प्राप्य काशीं दुष्प्रापां ब्रह्मनारायणादिभिः ।

महासम्बतंसम्भुत्तापाङ्घ्रिश्वेशपालिताम् ॥ ११४ ॥

स्वधुंन्याहारयष्ट्ये वराजिताकण्ठभूमिषु । विचित्रगुणशालिन्याहारनीहारगौरया
 बहुसंसारसन्तापसन्तमजनतोद्भवम् । वारयन्तीं वरण्या छिन्दन्तीमसिधारया ॥

यल्लभ्यते च कैवल्यं सुद्रुढाष्टाङ्गयोगतः ।

विकाशयन्तीं तत्सम्यक् काशिकायां जगुर्वुधाः ॥ ११७ ॥

संसारतापतप्ताभ्यां लोचनाभ्यां स दृष्टवान् ।

कर्णाकर्णप्रकीर्णाभ्यां प्राग्ययौ मणिकर्णिकाम् ॥ ११८ ॥

तत्र स्नात्वा विधानेन द्रुष्टा विश्वेश्वरं विभुम् ।

त्रैलोक्यप्राणिसन्त्राणकारिणं प्रणनाम ह ॥ ११९ ॥

आलोक्यालोक्य तल्लिङ्गं तुतोपहृदयेवहु । परमानन्दकन्दार्क्यस्फुटमेतन्न संशयः
 अहोनमसोधन्योस्ति त्रैलोक्येसच्चराचरे । यद्द्राक्षिषमद्याहं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम्
 त्रिलोकीसारसर्वस्वं पिण्डीभूतमिदं किल ।

किम्वा पीयूषपिण्डोऽयमुद्गतः क्षीरनीरधेः ॥ १२२ ॥

आत्मावबोधमहसः किमसौ प्रथमाङ्कुरः । ब्रह्मानन्दसुकन्दोवा किमुब्रह्मरसायनम्
 योगिहृत्पद्मनिलयं यदनाकारमुच्यते । तदाकारत्वमापेदे किमिदं लिङ्गकैतवात्
 ब्रह्माण्डभाण्डमथवा नानारत्नौघपूरितम् । अथवामोक्षवृक्षस्य फलमेतन्न संशयः

निर्घाणलक्ष्म्याः किमथ केशपाशःसुपुष्पयुक् ।

कैवल्यमह्लीवल्ल्याः किं स्तवकः स्तावकार्थदः ॥ १२६ ॥

निःश्रेयसश्रियः किवाऽऽनन्दक्रीडनकन्दुकः । अपवर्गोदयाद्रेः किमुदियायसुधाकरः
 संसारमोहनिमिरमिदुरः किमसौ रविः । किमुकल्याणरमणीरम्यशृङ्गारदर्पणः ॥
 आह्लातं न भवेदन्यत्सर्वेषां देहधारिणाम् । अनेककर्मबीजानां बीजपूरोऽयमद्भुतः ॥

विश्वेषां विश्वबीजानां कर्माख्यानां लयो गतः ।

अस्मिन्निर्घाणदे लिङ्गे विश्वलिङ्गमिदं ततः ॥ १३० ॥

मम भाग्योदयेनैव नारदेन महर्षिणा । तदागत्य तथोक्तं यत्कृतकृत्योऽस्म्यहं ततः ॥
 इत्यानन्दामृततरसैर्विधायसहिपारणम् । ततःशुभेऽङ्घ्रिसंस्थाप्य लिङ्गं सर्वहितप्रदम्

जप्राहनियमान् घोरान् बुष्करानकृतात्मनाम् । अष्टोत्तरशतैःकुम्भैः पूर्णैर्गङ्गामृतद्रवैः
संज्ञाप्य वाससापृतैः पूताद्भ्रमा प्रत्यहं शिवम् ।

नीलोत्पलमयीं मातङ्गं समर्पयति सोऽन्वहम् ॥ १३४ ॥

अष्टाधिकसहस्रेस्तु सुमनोभिर्विनिर्मिताम् । सपक्षार्धेन षण्मासं कन्दमूलफलाशनः
शीर्षपर्णाशनःपक्षे त्वाषण्मासं बभूव सः ।

षण्मासं वायुभक्षोऽभूत्षण्मासं जलविन्दुभुक् ॥ १३६ ॥

एवंवर्षद्वयं तस्य व्यतिक्रान्तं तथासतः । जन्मतोद्गादशेषैतद्वचो नारदेरितम् ॥
सत्यं करिष्यन्निव तमभ्यगात्कुलिशायुधः । उवाचचवरं ब्रूहिदग्धितमनसिस्थितम्
अहंशतकतुर्विप्र! प्रसन्नोऽस्मि शुभव्रतैः । इत्याकर्ण्य महेंद्रस्यवाक्यं मुनिकुमारकः
उवाच मधुरं धीरःकीरवन्मधुराक्षरम् । मधवन् वृत्रशत्रो! त्वांजानेकुलिशपाणिनम्
नाऽहं वृणे वरं त्वत्तः शङ्करो वरदोऽस्ति मे ॥ १४१ ॥

इन्द्र उवाच

न मत्तः शङ्करोऽस्त्यन्यो देवदेवोऽस्म्यहं शिशो !।

चिहाय बालिशत्वं त्वं वरं याचस्व मां वरम् ॥ १४२ ॥

ब्राह्मण उवाच

गच्छाहल्यापतेऽसाधोगोत्रारेपाकशासन । नप्रार्थये पशुपतेरन्यं देवान्तरं स्फुटम्
इति तस्यवचःश्रुत्वाक्रोधसंरक्तलोचनः । उद्यम्यकुलिशंघोरंभीषयामास बालकम्
स दृष्ट्वा बालको वज्रंविद्युज्ज्वालाशनाकुलम् । स्मरन्वारदवाक्यञ्जमुमूर्च्छभयविह्वलः
अथ गौरीपतिः शम्भुरापिरासीत्तमोनुदः । उत्तिष्ठोत्तिष्ठमद्रं ते स्पर्शैःसञ्जीवयन्निव
उन्मील्य नेत्रकमले सुप्ते इव दिवाक्षये । अपश्यदग्ने चोत्थाय शम्भुमर्कशताधिकम्
भालेलोचनमालोक्य कण्ठेकालंवृषध्वजम् । वामाङ्गसंनिविष्टाद्रितनयं चन्द्रशेखरम्
कपर्देन विराजन्तं त्रिशूलाजगवायुधम् । स्फुरत्कर्पूरगौराङ्गं परिणद्धगजाजिनम्
परिह्वाय महादेवं गुरुवाक्यत आगमात् ।

हर्षवाष्पाकुलःसन्नकण्ठो रोमाञ्चकञ्चुकः ॥ १५० ॥

क्षणं स्थगितवत्स्थौषित्रकृत्रिमपुत्रकः । यथातथासुसम्पन्नोषिस्मृत्यात्मानमेवच
न स्तोतुं न नमस्कर्तुंकिञ्चिद्विद्विक्लममेव च । यदासनशशाकालंतदास्मित्वाऽऽहशङ्करः

ईश्वर उवाच

शिशोगृहपते! शक्राद्वज्रोद्यतकरादहो । ज्ञातो भीतोऽसि माभैपीर्जिज्ञास्ताते कृतामया
ममभक्तस्य नोशक्रो न वज्र नान्तकोपि वा । प्रभवेदिन्द्ररूपेण मयैव त्वंहिभीषितः
वरं ददामिते भद्रं त्वमग्निपदभागभव । सर्वेषामेव देवानां वदनं त्वं भविष्यसि ॥
सर्वेषामेव भूतानां त्वमग्नेऽन्तश्चरोभव । धर्मराजेन्द्रयोर्मध्ये दिगीशो राज्यमाप्नुहि
त्वयेदं स्थापितं लिङ्गं तव नाम्ना भविष्यति ।

अग्नीश्वर इतिख्यातं सर्वतैजोभिवृंहणम् ॥ १५७ ॥

अग्नीश्वरस्य भक्तानां न भयं विद्युदग्निजम् । अग्निमान्द्यभयं नैवनाकालमरणंकचित्
अग्नीश्वरं समभ्यर्च्य काश्यांसर्वसमृद्धिदम् । अन्यत्रापिमृतो देवाद्दग्निलोकेमहीयते

ततः काशीं पुनः प्राप्य कल्पान्ते भोक्षमाप्नुयात् ।

वीरेश्वरस्य पूर्वेण गङ्गायाः पश्चिमे तटे ॥ १६० ॥

अग्नीश्वरं समाराध्यवह्निलोके वसेन्नरः । पितृभ्यां स्वजनैः सार्धमित्रबन्धुसमायुतः
विमानमिदमारुह्यप्रयाह्येव दिशःपते । इत्युत्त्वानीयतद्बन्धून् पित्रोश्च परिपश्यतोः
दिक्पतित्वेऽभिषिच्यग्नि तत्र लिङ्गे शिवोऽविशत् ॥ १६३ ॥

गणाधूचतुः

इत्थमग्निस्वरूपंते शिवशर्मन्प्रवर्णितम् । किमन्यच्छ्रोतुकामोसि कथयावस्तदीरय
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहिताया तृतीये काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे बह्निलोकवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

निर्ऋतिवरुणलोकवर्णनेपिङ्गाक्षाख्यानवर्णनम्

शिवशर्मोवाच

नेर्ऋतादीन् क्रमाल्लोकानाख्यातंपुरुषोत्तमो । पुरुषोत्तमपादात्त्रपरागोद्बुधूसरालको
गणावूचतुः

आकर्णय महाभाग! संयमिन्याः पुरीं पराम् ।

दिकपतेर्निर्ऋतस्याऽसौ पुण्या पुण्यजनोषिता ॥ २ ॥

राक्षसानिवसन्त्यस्यामपरद्रोहिणः सदा । जातिमात्रेण रक्षांसि वृत्तेः पुण्यजनाइमे
स्मृत्युक्तश्रुतिवर्तमानोजातावर्णावरेष्वपि । नाद्रियन्तेऽन्नपानानामस्मृत्युक्तं कदाचन
परदारपरद्रव्यपरद्रोहपराङ्मुखाः । जाताजातौनिकृष्टायामपि पुण्यानुसारिणः

द्विजातिभक्त्युत्पन्नार्थेरात्मानं पोषयन्ति ये ।

सदा सङ्कुचिताङ्गाश्च द्विजसम्भाषणादिषु ॥ ६ ॥

आहूता वस्त्रवदना वदन्ति द्विजसन्निधौ ।

जयर्जाव भगोनाथ स्वामिन्निति हि वादिनः ॥ ७ ॥

तार्थस्नानपरानित्यंनित्यं देवपरायणाः । द्विजेषु नित्यंप्रणताःस्वनामाख्यानपूर्वकम्
दमदानद्याक्षान्तिशीचेन्द्रियचिनिग्रहाः । अस्तेयसत्याहिंसाश्च सर्वेषां धर्महेतवः
आवश्येषु सदोद्युक्ता ये जातायत्रकुत्रचित् । सर्वभोगसमुद्धास्ते वसन्त्यत्र पुरोत्तमे
म्लेच्छा अपि सुतीर्थेषु ये मृतानात्मघातकाः ।

चिहाय काशीं निर्वाणविश्राणान्तेऽत्र भोगिनः ॥ ११ ॥

अन्धन्तमो विशेष्युस्ते ये घंवात्महनोजनाः । भुक्त्वानिरयसाहस्रंतेवस्युर्ग्रामसूकराः
आत्मघातो न कर्तव्यस्तस्मात्कापि विपश्चिता ।

इहापि च परत्रापि न शुभान्यात्मघातिनाम् ॥ १३ ॥

यथेष्टमरणं केचिदाहुस्तत्त्वावबोधकाः । प्रयागे सर्वतीर्थानां राक्षिसर्वाभिलाषदे ॥
अन्त्यजा अपिये केचिद्व्याधर्मानुसारिणः । परोपकृतिनिष्ठास्तेवसन्त्यत्र तुसस्तप्ताः
अस्य स्वरूपं वक्ष्यावो दिक्पतेः क्षणतः शृणु ।

मध्ये चिन्ध्याटवि पुरा पङ्कणस्थजनाग्रणीः ॥ १६ ॥

पल्लीपतिरभूद्रुमः पिङ्गाक्ष इति विश्रुतः । निर्विन्ध्यायास्तटे शूरः क्रूरकर्मपराङ्मुखः
घातयेद्दरसंस्थोऽपि यः पान्धपरिपन्थिनः ।

व्याघ्रादीन् दुष्टसत्त्वाश्च स हिनस्ति प्रयत्नतः ॥ १८ ॥

जावेन्मृगयुधर्मेण तत्रापिकरुणापरः । न विश्वस्तान् पक्षिमृगाञ्च सुप्ताञ्चव्यवायिनः
न तोयगृध्रञ्च शिशून्प्रान्तर्धत्स्वित्वलक्षणान् । स घातयति धर्मज्ञो जातिधर्मपराङ्मुखः
श्रमातुरेभ्यः पान्थेभ्यः सविश्रामंप्रयच्छति । हरेत्सुधा भ्रुधार्तानामुपानद्दोऽनुपानहे
मृगत्वचोतिमृदुलाविषखेभ्योतिसर्जति । अनुव्रजतिकान्तारेप्रान्तरे पथिकान्पथि
नजिह्वुक्षतितेभ्योऽर्थमभयं चेतियच्छति । आविन्ध्याटवि मेनाम ब्राह्मदुष्टभयापहम्
नित्यं कार्पटिकान् सर्वान् सपुत्रेण प्रपश्यति ।

तेऽपि च प्रतितीर्थं हि तमाशीर्वादयन्ति वै ॥ २४ ॥

इतितिष्ठतिपिङ्गाक्षेसाटवीनगरायिता । अध्वनीनेऽध्वगान्कोपिनरुणद्विससाध्वसः
कदाचित्तिपितृव्येण समीपग्रामवासिना ।

श्रुतः कार्पटिकानां हि सार्थः सार्थो महास्वनः ॥ २६ ॥

लुब्धकस्तद्वने लुब्धःभ्रुद्वस्तन्निधनोद्यतः । सरुरोध तमध्वानमग्रेगत्वाऽतिगूढचत्
तदायुष्यस्य शेषेणपिङ्गाक्षोमृगयांगतः । तस्मिन्नरुण्येतन्मार्गंनिकषाप्युचितोनिशि
परप्राणद्वहां पुंसां न सिद्ध्येयुर्मनोरथाः ।

विश्वं कुशलःतेनैतद्विश्वेशपरिरक्षितम् ॥ २९ ॥

न चिन्तयेदनिष्टानि तस्मात्कृष्टिः कदाचन ।

विधिदृष्टं यतोभाषि कलुषं भाषि केवलम् ॥ ३० ॥

तस्मादात्मसुखं प्रेप्तुरिष्टानिष्टं न चिन्तयेत् ।

चिन्तयेच्चेतदाऽचिन्त्यो मोक्षोपायो न चैतरः ॥ ३१ ॥

व्युष्टायामथ यामिन्यामभूत्कोलाहलो महान् । घातयध्वं पातयध्वंनग्रयध्वंद्रुतंभटाः
मा मारयध्वं त्रायध्वं भटाःकार्पटिकावयम् । अनायासंलुण्ठयध्वंनयध्वं चयदस्तिनः
वयंपान्थाअनाथाःस्मोचिध्वनाथपरायणाः । सनाथास्तेनदूरंसनाथतांपथिकोऽपरः

वयं पिङ्गाक्षविश्वासादस्मिन्मार्गेऽकुतोभयाः ।

यातायातं सदा कुर्मः स च दूर इतो वनात् ॥ ३५ ॥

इतिश्रुत्वाऽथपिङ्गाक्षो भटःकार्पटिकेरितम् । दूरान्माभैष्टमाभैष्ट ब्रुवन्निति समागतः
तत्कर्मसूत्रैराकृष्टो भिल्लःकार्पटिकप्रियः । तूर्णतदायुष्यमिषवत्त्रोपस्थितवानक्षणात्
कोयं कोयं दुराचारःपिङ्गाक्षे मयिजीवति ।

उल्लुलुण्ठयिषुः पान्थान् प्राणलिङ्गसमान्मम ॥ ३८ ॥

इतितद्वाक्यमाकर्ण्यताराक्षस्तत्पितृव्यकः । धनलोभेनपिङ्गाक्षेपापंपापोव्यचिन्तयत्
कुलधर्मं व्यपास्यैष वर्ततेकुलपांसनः । चिरं चिन्तितमद्यामुं घातयिष्याम्यसंशयम्
विचार्यति स दुष्टात्मा भृत्यानाङ्गापयत् क्रुधा ।

आदावेनं घातयन्तु ततः कार्पटिकानिमान् ॥ ४१ ॥

ततोऽयुध्यन् दुराचारास्तेनैकेन च तेऽखिलाः ।

यथाकथञ्चित्ताननयत्स च स्वावसथान्तिकम् ॥ ४२ ॥

आच्छिन्नं हि धनुर्बाणं छिन्नं सन्नहनंशरैः । असूदयिष्यमेतांस्तदभविष्यं यदीश्वरः
अभिलष्यन्निति प्राणानत्याक्षीत्स परार्थतः ।

तेपि कार्पटिकाः प्राप्तास्तत्पल्लीं गतसाध्वसाः ॥ ४४ ॥

या मतिस्त्वन्तकाले स्याद्गतिस्तदनु रूपतः ।

दिगीशत्वमतः प्राप्तो निर्मृत्त्यां नैर्मृतेश्वरः ॥ ४५ ॥

इत्थमस्यस्वरूपंते आवाभ्यांसमुदीरितम् । एतस्योत्तरतोलोकोवरुणस्यास्यमद्भुतः
कूपवापीतडागानां कर्तारो निर्मलैर्धनैः । इहलोके महीयन्तैवारुणे वरुणप्रभाः ॥४७
निर्जले जलदातारःपरसन्तापहारिणः । अर्थिभ्योयेप्रयच्छन्ति चित्रच्छत्रकमण्डलून्

पानीयशालिकाःकुर्युर्दानोपस्करसंयुताः । दद्युर्धर्मव्रतंश्चापि सुगन्धोदकपूरितान्
अश्वत्थसेकंयेकुर्युःपथिपादपरोपकाः । विश्रामशालाकर्तारःभ्रान्तसन्तापनोदकाः
प्रीण्मोघ्महन्तिमायूरपिच्छादिरचिताभ्यपि ।

चित्राणि तालं वृत्तानि चितरन्ति तपागमे ॥ ५१ ॥

रसवन्ति सुगन्धीनि हिमवन्ति तपर्तुषु । विश्राणयन्ति वा तृप्तिपानकानिप्रयत्नतः
शुभ्रक्षेत्राणि सङ्कुलप्य ब्राह्मणेभ्योददत्यपि । तथानानाप्रकारांश्चधिकारानैक्षवान्बहून्
गोरसानां प्रदातारस्तथा गोमहिषीप्रदाः । धारामण्डपकर्तारश्छायामण्डपकारिणः
देवालयेषु ये दद्युर्बहुधारागलन्तिकाः । तीर्थं वा करहर्तारस्तीर्थमार्गावनेजकाः ॥

अभयं ये प्रयच्छन्ति भयार्तोद्यतपाणयः ।

निर्भया वारुणे लोके ते वसन्ति लसन्ति च ॥ ५६ ॥

विपाशयन्ति ये पुण्या दुर्वृत्तैःकण्ठपाशितान् ।

ते पाशपाणेलोकेस्मिन्निवसन्त्यकुतोभयाः ॥ ५७ ॥

नीकाद्युपायैर्नद्यादौ पान्थान् ये तारयन्त्यपि ।

तारयन्त्यपि दुःखाब्धेस्तत्रनागरिका द्विज ! ॥ ५८ ॥

घटान् पुण्यतटिन्यावेर्बन्धयन्ति शिलादिभिः ।

तोयार्थिसुखसिद्धयर्थं ये नरास्तेऽत्र भोगिनः ॥ ५९ ॥

वितर्षयन्ति ये पुण्यास्तृपिताऽङ्गीतलैर्जलैः । तेऽत्रवैवारुणेलोकेसुखसन्ततिभागिनः
जलाशयानां सर्वेषामयमेकतमःपतिः । प्रवेता यादसानाथः साक्षीसर्वेषु कर्मसु
अस्योत्पत्तिश्रेणु पतेर्बहूणस्यमहात्मनः । आम्नीन्मुनिरमेयात्मा कर्दमस्य प्रजापतेः

शुचिष्मानिति विख्यातस्तनयो चिनयोचितः ।

स्थैर्यमाधुर्यधैयाद्यैर्गुणैरुपचितो हितः ॥ ६३ ॥

अच्छोदे सरसिन्नातुं सगतो बालकैःसह । जलक्रीडनसंसक्तं शिशुमारोऽहरच्च तम्
ततस्तस्मिन्मुनिसुते हृतेऽत्याहितशंसिभिः ।

तैः समागत्य शिशुभिः कथितं तत्पितुः पुरः ॥ ६५ ॥

हरार्चनोपविष्टस्य समाधौनिश्चलात्मनः । श्रुतबालविपत्तेश्च चचाल न मनो हरात्
अधिकशीलयामास ससर्वशं त्रिलोचनम् । पश्यच्छम्भोःसमीपेसभुवनानि चतुर्दश
नानाभूतानिभूतानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च । चन्द्रसूर्यक्षंताराश्चपर्वतान्सरितोद्गमान्
समुद्रानन्तरीयाणि ह्यरण्यानि सरांसि च । नानादेवनिकायांश्चबह्वीर्दिषिषदांपुरीः
वार्पाकूपतडागानि कुल्याःपुष्करिणीर्बहु ।

एकस्मिन्कापि सरसि जलकीडापरायणान् ॥ ७० ॥

बहन्मुनिकुमारांश्च मज्जानोमज्जनादिभिः । करयन्त्रविनिर्मुक्तोयधाराभिपेचनैः
करताडितपानीयशब्ददिङ्मुखनादिभिः । जलखेलनकर्कटित्थं संसक्तान्बहुबालकान्
तेषां मध्ये ददर्शाथ समाधिस्थः सकर्दमः ।

स्वं शिशुं शिशुमारेण नीयमानं सुचिह्नलम् ॥ ७३ ॥

कयाचिज्जलद्वैव्याथ तस्माच्चक्रूयादसः । प्रसह्य नीत्वोदधये दृष्टवांस्तं समर्पितम्
निर्मत्स्यं सरितानाथं केनचिद्गुद्रूपिणा । त्रिशूलपाणिनेत्युक्तं क्रोधताम्राननेन च
कुतोजलानामधिप शिवभक्तस्य बालकः । प्रजापतेःकर्दमस्य महाभागस्य धीमतः
अज्ञात्वा शिवसामर्थ्यं भवता चिरमासितः ।

भयत्रस्तेन तद्वाक्यश्रवणात्समुदन्वता ॥ ७७ ॥

चालं रत्नैरलङ्कृत्य बद्ध्वातंशिशुमारकम् । समर्पितसमानीयशम्भुपादाब्जसन्निधी
नत्वा विज्ञापयत्तञ्चनापराध्याभ्यहं विभो! । अनाथनाथचिश्वेश!भक्तापत्तिचिनाशन!
भक्तकल्पतरोशम्भोऽनेनायं दुष्टयादसा । अनाथि न मया नाथ! भवभक्तजनार्भकः ॥
गणेन तेन विज्ञाय शम्भोरथ मनोगतम् । पाशेनचद्ध्वातद्यादःशिशुहस्ते समर्पितम्
गृहागेमं स्वतनयं पार्षदे शङ्कराज्ञया । याहि स्वभवनं वत्स ! ब्रुवतीति सकर्दमः ॥
समाधिसमये सर्वमितिशृणुष्वन्नुदारधीः । उन्मील्यनयनेयावत्प्रणिधानं विसृज्यच
संपश्यते शिशुं तावत्पुरतःसमर्षक्षत । गृहीतशिशुमारञ्च पार्श्वेऽलङ्कृतकर्णिकम्
तोयार्द्रकाकपक्षाग्रं कषायनयनाञ्जलम् । किञ्चिद्विरुक्षंत्वक्क्षोभं सम्भ्रमापन्नमानसम्
कृतप्रणाममालिङ्ग्य जिघ्रंस्तन्मुखपङ्कजम् । पुनर्जातमिवामंस्त पश्यंश्चापिमुहुर्मुहुः-

शतानिपञ्चवर्षाणि प्रणिधानस्थितस्य हि । कर्दमस्यव्यतीतानिशम्भुमर्षयतस्तदा
 कर्दमोऽपि चतत्कालमहासीत्क्षणसङ्गतम् । यतोनप्रभवेत्कालोमहाकालस्यसन्निधौ
 ततस्तं तनयःपृष्ट्वा पितरं प्रणिपत्य च । जगामतूर्णं तपसे श्रीमद्वाराणसीं पुरीम्
 तत्र तप्त्वा तपोघोरं लिङ्गं संस्थाप्य शाम्भवम्
 पञ्चवर्षसहस्राणि स्थितःपाषाणनिश्चलः ॥ ६० ॥

आधिरासीन्महादेवस्तुष्टस्तत्तपसा ततः । उवाच कार्दमे! ब्रूहि कंददामि वरोत्तमम्
 कार्दमिरुवाच

यदि नाथ! प्रसन्नोसिद्भक्तानामनुकम्पक ! । सर्वासामाधिपत्यमे देहापां यादसामपि
 इतिश्रुत्वामहेशानः सर्वस्मिन्तितदः प्रभुः । अभ्यपिञ्चत तं तत्र वारुणे परमे पदे
 रत्नानामग्निजातानामग्नीनां सरितामपि ।

सरसां पल्लवानाञ्च वाप्यम्बुस्रोतसां पुनः ॥ ६४ ॥

जलाशयानांसर्वेषां प्रतीच्याश्चापिर्वैदिशः । अधीश्वरःपाशपाणिर्भवं सर्वाभरप्रियः
 ददामि वरमन्यञ्च सर्वेषां हितकारकम् । त्वयंतत्स्थापितंलिङ्गं तवनाम्नाभविष्यति
 वरुणेशमिति ख्यातं वाराणस्यां सुसिद्धिदम् ।

मणिकर्णेशलिङ्गस्य नैर्ऋत्यां दिशि संस्थितम् ॥ ६७ ॥

आराधितं सदापु'सां सर्वजाड्यविनाशहृत् । वरुणेशस्य यैभक्तान् तेषां मद्भयंकञ्चित्
 न सन्तापभयं तेषां नापायमरणं कञ्चित् । जलोदरभयं नैव न भयं वैतृषः कञ्चित्
 नीरसान्यन्नपानानि वरुणेश्वरसंस्मृतेः । सरसानि भविष्यन्ति नात्रकार्याधिचारणा
 इत्युत्कान्तर्द्धे शम्भुर्वरुणोपिस्वबन्धुभिः । इमंलोकमलंकुर्वंस्तदारभ्यस्थितोद्विजः

इदं वरुणलोकस्य स्वरूपन्ते निरूपितम् ।

यच्छ्रुत्वा न नरः कापि दुरपायैः प्रवाध्यते ॥ १०२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
 पूर्वाद्धे निरृतिवरुणलोकवर्णनं नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

गन्धवत्यलकावर्णनम्

गणावूचतुः

इमां गन्धवतीं पुण्यां पुरींवायोर्विलोकय । वारुण्याउत्तरे भागे महाभाग्यनिधेद्विज्ज!

अस्यां प्रभञ्जनो नाम जगत्प्राणो दिगीश्वरः ।

आराध्य श्रीमहादेवं दिक्पालत्वमवाप्तवान् ॥ २ ॥

पुरा कश्यपदायादः पूतात्मेति च विश्रुतः । धूर्जटे राजधान्यां सच्चचार विपुलंतपः
चाराणस्यां महाभागोवर्षाणामयुतं शतम् । स्थापयित्वामहालिङ्गं पावनंपवनेश्वरम्
यस्य दर्शनमात्रेण पूतात्मा जायतेनरः । पापकञ्चुकमुत्सृज्य स वसेत्पावने पुरे ॥

ततस्तस्योग्रतपसा तपसां फलदः शिवः ।

आचिरासीत्ततो लिङ्गाज्योतीरूपो महेश्वरः ॥ ६ ॥

उवाच च प्रसन्नात्मा करुणामृतसागरः । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ पूतात्मन् ! वरं वरय सुव्रत!
अनेन तपसोत्रेण लिङ्गस्याराधनेन च । तवादेयं न पूतात्मस्त्रैलोक्ये सच्चराचरे ॥ ८

पूतात्मोवाच

देवदेव! महादेव! देवानामभयप्रद ! । ब्रह्मनारापणेन्द्रादिसर्वदेवपदप्रद ! ॥ ६ ॥

वेदास्त्वानंचविन्दन्तिकिमात्मकइतिप्रभो ! । प्राप्ताःशतपथत्वञ्च नेतिनेतीतिष्वादिनः
ब्रह्मर्षिण्वोरपि गिरां गोचरो न चवाक्पतेः । प्रमथेशंकथंस्तोतुं मादृशःप्रभवेत्प्रभो!

प्रसह्य प्रमिमीतेश (?) भक्तिर्मां स्तुतिकर्मणि ।

करोमि किं जगन्नाथ! न वश्यानीन्द्रियाणि मे ॥ १२ ॥

विश्वन्त्वं नास्ति वै भेदस्त्वमेकःसर्वगोयतः ।

स्तुत्यं स्तोता स्तुतिस्त्वञ्च सगुणो निर्गुणो भ्रष्टान् ॥ १३ ॥

सर्गात्पुरा भवानेको रूपनामधिर्जितः । योगिनोपिन ते तस्त्वं चिन्दन्ति परमार्थतः

यदैकलो नशक्नोषि रन्तु' स्वैरश्चर प्रभो ! तद्विच्छा तवयोत्पन्ना सेव्या शक्तिरभूत्तव
त्वमेको द्वित्वमापन्नः शिवशक्तिप्रभेदतः ।

त्वं ज्ञानरूपो भगवान् स्वेच्छाशक्तिस्वरूपिणी ॥ १६ ॥

उभाभ्यां शिवशक्तिभ्यां गुचाभ्यां निजलीलया ।

उत्पादिता क्रिया शक्तिस्ततः सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥

ज्ञानशक्तिर्भवानीश इच्छाशक्तिरुमास्मृता । क्रियाशक्तिरिदं विश्वमस्यत्वंकारणततः
दक्षिणाङ्गं तव विधिर्वामाङ्गं तव चाच्युतः ।

चन्द्रसूर्याग्निनेत्रस्त्वं त्वक्षिःश्वासः श्रुतित्रयम् ॥ १८ ॥

त्वत्स्वेदादम्बुनिधयस्तवश्रोत्रं समीरणः । बाहवस्तेदशदिशो मुखन्ते ब्राह्मणाः स्मृताः
राजन्यवर्यास्ते बाहू वैश्या ऊरुसमुद्भवाः । पद्भ्यां शूद्रस्तवेशान! केशास्ते जलदाः प्रभो!
त्वं पुं प्रकृतिरूपेण ब्रह्माण्डमसृजःपुरा । मध्ये ब्रह्माण्डमखिलं विश्वमेतच्चराचरम्

अतस्त्वत्तो न मन्येऽहं किञ्चिद्विन्नं जगन्मय ।

त्वयि सर्वाणि भूतानि सर्वभूतमयो भवान् ॥ २३ ॥

नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः । अयमेव चरोनाथत्वयि मेऽस्तु स्थिरामतिः
इत्युक्तवति देवेशस्तस्मिन्पूतात्मनि प्रभुः । स्वमूर्तिवत्समारोप्य दिक्पालपदमादधे
सर्वगो ममरूपेण सर्वतस्त्वावबोधकः । सर्वेषामायुषो रूपं भवानेव भविष्यति ॥
तव लिङ्गमिदं दिव्यं येद्रश्म्यन्तीह मानवाः । सर्वभोगसमृद्धास्ते त्वल्लोकसुखभागिनः
पवमानेश्वरं लिङ्गं मध्येजन्म सकृन्नरः । यथोक्तविधिना पूज्यसुगन्धस्नपनादिभिः
सुगन्धचन्दनैः पुष्पैर्मम लोके महीयते ।

जेष्ठे शात्पञ्चमे भागे वायुकुण्डोत्तरेण तु ॥ २६ ॥

पाचमानं समाराध्य पूतो भवति तत्क्षणात् । इति दत्त्वा वरान् देवस्तां स्मल्लिङ्गे लयं ययौ
गणाच्चतुः

इति गन्धवतीपुर्याः स्वरूपं तेनिरूपितम् । तस्याः प्राच्यां कुबेरस्य श्रीमत्पैतालकापुरी
शम्भोः सखित्वमापेदे नाथोऽस्वा भक्तियोगतः ।

निधीनां पद्ममुख्यानां दाता भोक्ता हरार्चनात् ॥ ३२ ॥

शिवशर्मोवाच

कोऽसौ कल्प्यपुनःकीदृग्भक्तिरस्य सदाशिवे । ययासखित्वमापन्नोदेवदेवस्यधूर्जटेः
इति श्रोतुं मम मनः श्रुतिगोचरतांगतम् । युषयोर्वाक्सुधास्वादमेदुरोदरमन्धरम्

गणाध्वसुतः

शिवशर्मन्महाप्राज्ञ!परिशुद्धेन्द्रियेश्वर !। सुतीर्थक्षालिताशेषजन्मजातमहामल !॥ ३५

सुहृदि प्रेमसम्पन्ने त्वद्यनुद्यं न किञ्चन । साधुभिः सहसंवादः सर्वश्रेयोऽभिवृद्धये
आसीत्काम्पिल्यनगरेसोमयाजिकुलोद्भवः । दीक्षितोयज्ञदत्ताख्योयज्ञविद्याविशारदः
वेदवेदाङ्गवेदार्थान् वेदोक्ताचारचञ्चुरः । राजमान्योबहुधनो वदान्यःकीर्तिभाजनम्
अग्निशुश्रूषणरतो वेदाध्ययनतत्परः । तस्य पुत्रो गुणनिधिश्चन्द्रबिम्बसमाकृतिः ॥
कृतोपनयनः सोऽथ विद्यां जग्राह भूरिशः । अथ पित्रानभिज्ञातोद्यत्कर्मरतोऽभवत्
आदायादाय बहुशो धनं मातुः सकाशतः । ददाति द्यूतकारेभ्यो मैत्री तैश्चकारसः
सन्त्यक्तब्राह्मणाचारः सन्ध्यास्नानपराङ्मुखः ।

निन्दको वेदशास्त्राणां देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ ४२ ॥

स्मृत्याचारविहीनस्तु गीतवाद्यविनोदभाक् । नटपाखण्डिभण्डैश्च बद्धप्रेमपरम्परः ॥

प्रेरितोऽपि जनन्या स न याति पितुरन्तिकम् ।

गृहकार्यान्तरव्यग्रो दीक्षितो दीक्षितायिनीम् ॥ ४४ ॥

यदा यदैव तां पृच्छेद्यैः गुणनिधिः सुतः ।

न द्रुश्यते मया गेहे क्व याति विदधातिः किम् ॥ ४५ ॥

तदातदेति साब्रूयादिदानीं स बहिर्गतः । स्नात्वासमर्च्य वै देवानेतावन्तमनेहसम्
अधीत्याध्ययनार्थं स द्वित्रैर्मित्रैः समययौ । एकपुत्रेति तन्माताप्रतारयतिदीक्षितम्
न तत्कर्मच तद्गृत्तंकिञ्चिद्वेत्तिसदीक्षितः । सचकेशान्तकर्मास्यकृत्वावर्षेऽथपोडशे
गृह्योक्तेन विधानेन पाणिप्राहमकारयत् । प्रत्यहं तस्य जननी सुतं गुणनिधिंमृदु
शांस्ति स्नेहाद्ब्रह्मदया क्रोधनस्ते पितैत्यलम् ।

यदि ज्ञास्यति ते वृत्तं त्वां च मां ताडयिष्यति ॥ ५० ॥

आच्छादयामि ते नित्यं पितुरग्रे कुचेष्टितम् ।

लोकमान्योऽस्ति ते तातः सद्चारैर्न वै धनैः ॥ ५१ ॥

ब्राह्मणानां धनं पुत्र! सद्विद्या साधुसङ्गमः ।

सच्छ्रोत्रियास्त्वनूचाना दीक्षिताः सोमयाजिनः ॥ ५२ ॥

इति रुद्रिमिह प्राप्तास्तव पूर्वपितामहाः । त्यक्त्वा दुर्घृत्तसंसर्गं साधुसङ्गतोभव

सद्विद्यासु मनो धेहि ब्राह्मणाचारमाचर । तवानुरूपाकरेण वयसा कुलशीलतः ॥

ऊनविंशतिकोऽसित्वमेवा षोडशवार्षिकी । तवपत्नीगुणनिधे साध्वीमधुरभाषिणी

पतां संवृणु सद्रुत्तां पितृभक्तियुतो भव । श्वशुरोऽपिहितेमान्यःसर्वत्रगुणशीलतः

ततोऽपत्रपसे किं न त्यज दुर्घृत्तां शिशो !।

मातुलास्तेऽतुलाः पुत्र! विद्याशीलकुलादिभिः ॥ ५७ ॥

तेभ्योऽपि न बिभेपि त्वं शुद्धोऽस्युभयवंशतः ।

पश्यैतान् प्रतिवेश्मस्थान् ब्राह्मणानां कुमारकान् ॥ ५८ ॥

गृहेऽपि शिष्यान्पश्यैतान् पितुस्ते चिनयोचितान् ।

राजाऽपि श्रोष्यति यदा तव दुश्चेष्टितं सुत ! ॥ ५९ ॥

श्रद्धां विहाय ते ताते वृत्तिलोपंकरिष्यति । बालचेष्टितमेवैतद्दन्त्यद्यापि ते जनाः

अनन्तरं हस्तिष्वन्ति युक्तं दीक्षिततास्तिष्ठति ।

सर्वेऽप्याक्षारयिष्यन्ति तव चित्रं च मां च वै ॥ ६१ ॥

मातुश्चरित्रं तनयोधत्ते दुर्भाषणैरिति । पिताऽपितेनपापीयान्श्रुतिस्मृतिपथीनकम्

तदङ्घ्रिलीनमनसो मम साक्षी महेश्वरः । नचर्तुस्नातयाऽपीहमुखंदुष्टयधीक्षितम्

अहोबलीयान् सविधिर्येनजातोभवानिति । प्रतिक्षणंजनन्वैतिशिष्यमाणोतिदुर्मदः

न तत्याज च तद्धर्मं दुर्बोधो व्यसनीयतः । मृगयामद्यपैशुन्यवेश्याचीर्यदुरोदरैः ॥

स पारदारैर्व्यसनेरेभिःकोऽत्रनखण्डितः । यद्यन्मध्येगृहे पश्येत्सन्नीत्वा सुदुर्मतिः

अपयेद्दुष्टतकाराणां सकुप्यं वसनादिकम् । नवरत्नमयीमातुः करतः प्रितुर्कर्मिकाम्

स्वपन्त्यास्त्वेकदाऽऽदाय दुरोदरिकरेऽर्पयत् ।

एकदा गच्छता राजभवनाभिजमुद्रिका ॥ ६८ ॥

दीक्षितेनपरिहातादैवाद्द्यूतकृतः करे । उवाचदीक्षितस्तं च कुतोलब्धात्वयोर्मिका
पृष्टस्तेनाथ निर्बन्धादसकृत्प्रत्युवाच किम् ॥ ६९ ॥

ममाऽऽक्षिपसि विप्रोच्चैः किं मया धौर्यकर्मणा ।

लब्धा मुद्रा त्वदीयेन पुत्रेणैषा ममाऽपिता ॥ ७० ॥

मम मातुर्हि पूर्वद्युर्जित्वा नीतो हि शाटकः । न केवलं ममाप्येतद्भ्रूल्लीयं समर्पितम्
अन्येषां द्यूतकर्तॄणां भूरि तेनार्पितं वसु । रत्नकुप्यदुकूलानि भृङ्गादग्रभृतीनि च ॥

भाजनानि विशित्राणि कांस्यताम्रमयानि च ।

नग्रीकृत्य प्रतिदिनं बध्यते द्यूतकारिभिः ॥ ७३ ॥

न तेनसदृशः कश्चिदाक्षिको भूमिमण्डले । अद्य यावत्त्वया विप्र! दुरोदरशिरोमणिः
कथं नाज्ञायितनयोऽविनयानयकोविद् । इति श्रुत्वा त्रपाभारविनम्रतरकन्धरः ॥

प्रावृत्य वाससा मौलिं प्राविशभिजमन्दिरम् ।

महापतिव्रतामास्यपत्नीं प्रोवाच तामथ ॥ ७६ ॥

दीक्षितायिनि! कुत्रासि कतेगुणनिधिःसुतः । अथ तिष्ठतु किं तेनकसाममशुभार्मिका
अङ्गोद्धर्तनकाले या त्वया मेऽङ्गुलितो हता । नवरत्नमयी शीघ्रं तामानीयप्रयच्छमे
इति श्रुत्वाथ तद्वाक्यं भीता सा दीक्षितायिनी ।

प्रोवाच सा तु माध्याह्नीं क्रियां निष्पाद्यत्वथ ॥ ७९ ॥

व्यग्राऽस्मि देवपूजार्थमुपहाररादिकर्मणि । समयोयमतिक्रामेदतिथीनां प्रियातिथे
इदानीमेव पक्वान्नकरणव्यप्रयामया । स्थापिताभाजने कापिचिस्मृतेति नवेदुम्यहम्

दीक्षित उवाच

हं होसत्पुत्रजननिनिन्त्यं सत्यप्रभाषिणि! । यदायदात्वांसंपृच्छेतनयःकगतस्त्विति
तदा तद्वेति त्वं ब्रूया नाप्येदानींसनिर्गतः । अधीत्याध्ययनाथं च द्वित्रैर्मित्रैःसयुग्बहिः

कुतस्त्वच्छाटकः पत्नि! माञ्जिष्ठो यो मयाऽर्पितः ।

लम्बते बल्रधान्यां यस्तर्ह्यं ब्रूहि भयं न्यज ॥ ८४ ॥

साम्प्रतं नैक्ष्यते सोऽपि भृङ्गारुर्मणिमण्डितः । पट्टसूत्रमयीसापित्रिपटाकनृपापिता
क दाक्षिणात्यं तत्कांस्यं गौडी ताम्रघटी क सा ।

नागदन्तमयी सा क सुखकौतुकमञ्जिका ॥ ८६ ॥

कसापर्वतदेशीयाचन्द्रकान्तशिलोद्भवा । दीपिकाच्यग्रहस्ताग्रासालंकृच्छालभञ्जिका
किं बहुक्तेन कुलजे! तुभ्यं कुप्याम्यहं वृथा । तदाभ्यवहरिष्येहमुपयंस्याम्यहं यदा
अनपत्योऽस्मिन्तेनाहं दुष्टेन कुलदूषिणा । उत्तिष्ठानयदभाम्बु तस्मैदद्यात्तिलाञ्जलिम्
अपुत्रत्वं वरं नृणां कुपुत्रात्कुलपांसनात् ।

त्यजेद्रेकं कुलस्यार्थं नीतिरेषा सनातनी ॥ ९० ॥

स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तस्मिन्नेषाऽऽह्नि कस्यचित् ।

श्रोत्रियस्य सुतां प्राप्य पाणिं जग्राह दीक्षितः ॥ ९१ ॥

श्रुत्वा तथा सवृत्तान्तं प्राक्तनं स्वं विनिन्द्य च ।

काञ्चिद्विशं समालोच्य निर्ययौ दीक्षिताङ्गजः ॥ ९२ ॥

चिन्तामषाप महर्तुं क यामि करवाणि किम् ।

नाहमभ्यस्तविद्योऽस्मि न वैवास्तिधनोऽस्म्यहम् ॥ ९३ ॥

देशान्तरे ह्यस्तिधनःसद्विद्यःसुखमेधते । भयमस्ति धने शौरात्सविद्यःसर्वतोऽभयः
यायजूककुले! जन्म क्व क्व मे व्यसनं तथा ।

अहो बलीयान् स विधिर्भाषिकर्मानुसन्धयेत् ॥ ९५ ॥

भिक्षितुं नाधिगच्छामि न मे परिचितः क्वचित् ।

न च पार्श्वे धनं किञ्चित्किमत्र शरणं भवेत् ॥ ९६ ॥

सदानभ्युदिते भानौ प्रसूर्मेमृष्टभोजनम् । दद्यादद्यात्र कं याचे याचेह जननी न मे ॥
इति चिन्तयतस्तस्य भानुरस्ताचलं गतः । एतस्मिन्नेव समयेकश्चिन्माहेभ्वरो नरः
महोपहारानादाय नगराद् बहिरभ्यगात् । समभ्यर्चितुमीशानं शिवरात्रावुपोषितः
पक्वान्नागन्धमाप्राय भुषितःसतमन्वगात् । इवमक्षं मया ग्राह्यंशिवाबोपस्कृतंनिशि

इत्यांशामवलम्ब्याद्यद्वारि शम्भोरुपाविशत् । ददर्श च महापूजांतेन भक्तेननिर्मिताम्
विधाय नृत्यगीतादि भक्ताः सुभाःक्षणं यदा । नैवेद्यं स तदादातुं गर्भागारंविवेशह
दीपं मन्दप्रभं दृष्ट्वा पक्वान्नावेक्षणाथ सः । निजचैलाञ्जलाद्वृत्तिं दृष्ट्वा समुददीपयत्
ततः पक्वान्नामादाय त्वरितंगच्छतोबहिः । तस्यपादतलाघातात्प्रसुप्तःकोप्यबुध्यत
कोयं कोयं त्वरापन्नध्वरोऽयं गृह्यतामिति । यावद्ब्रूयात्समागत्यतावत्सपुररक्षकैः
पलायमानो निहतःक्षणात्पञ्चत्वमागतः । अभक्षयञ्च नैवेद्यं भाविपुण्यबलान्न सः ॥
अथ बद्धःसमागत्य पाशुमुद्गरपाणिभिः । निनीषुभिःसंयमिनीं यामैःसविकटैर्भटैः ॥

तावत्पारिषदाःप्राप्ताः किङ्किणीजालमालितम् ।

दिव्यं विमानमादाय तं नेतुं शूलपाणयः ॥ १०८ ॥

शम्भोर्गणान्समालोक्यभीतैस्तेर्यमकिङ्करैः । अवादिप्रणतैरित्थं दुर्वृत्तौयंगणाद्विजः
कुलाचारप्रतीपोयंपित्रोर्वाक्यपराङ्मुखः । सत्यशौचपरिभ्रष्टःसन्ध्यास्नानविर्वर्जितः
आस्ता दूरेऽस्य कर्माणि शिवनिर्माल्यहारकः ।

प्रत्यक्षतोऽत्र वीक्षध्वमस्पृश्योयं भवाद्दृशाम् ॥ १११ ॥

शिवनिर्माल्यभोक्तारः शिवनिर्माल्यलङ्घकाः ।

शिवनिर्माल्यदातारःस्पर्शस्तेषां ह्यपुण्यवृत् ॥ ११२ ॥

विषमालोड्य वा पेयं श्रेयोवाऽनशनं परम् । सेधितव्यंशिवस्त्वंनप्राणैःकण्ठगतैरपि
यूयं प्रमाणं धर्मेषु यथानन्तथावयम् । अस्तिचेद्दर्मलेशोस्य गणास्तच्छृणुमोवयम्
इत्थं तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रोचुः पारिषदास्ततः ।

किङ्कराः शिवधर्मा ये सूक्ष्मास्ते वै भवाद्दृशैः ॥ ११५ ॥

स्थूललक्ष्यैः कथंलक्ष्या लक्ष्यायेसूक्ष्मदृष्टिभिः । अनेनानेनसाकर्म यत्कृतंशृणुतेह तत्
पतन्तीलिङ्गशिरसिदीपच्छायानिवारिता । स्वचैलाञ्जलतोऽनेनदस्वादापेदशांनिशि
अपरोपि परोधर्मो जातस्तत्रास्य किङ्कराः । शृण्वताशिवनामानि प्रसङ्गादपिगृह्यता
भक्तेन विधिना पूजा क्रियमाणानिरीक्षता । उपोषितेनभूतायामनेन स्थिरचेतसा
कलिङ्गराजोभविताऽधुना विधुतकल्मषः । एषं द्विजवरो दूता यूयं यातयथागताः

पाषंदैर्यमदूतेभ्यो मोक्षितस्त्विति सद्भिजः । अरिन्दमस्यतनयःकलिङ्गाधिपतेर्दमः
कमाद्राज्यमवाप्याथ पितुयुं परते युषा । नान्यं धर्मं चिजानाति दुर्दमो भूपतिर्दमः

शिवालयेषु सर्वेषु दीपदानादूते द्विजः ।

ग्रामाधीशान् समाहूय सर्वान् स्वधिपयस्थितान् ॥ १२३ ॥

इत्थमाहापयामास स मे दण्ड्यो भविष्यति ।

यस्य यस्याभितो ग्रामं यावन्तश्च शिवालयाः ॥ १२४ ॥

तत्र तत्र सदा दीपो द्योतनीयोऽचिचारितम् ।

ममाहाभङ्गदोषेण शिरश्छेत्स्याम्यसंशयम् ॥ १२५ ॥

इतितद्भयतोदीप्ता दीपाः प्रतिशिवालयम् । अनेनैवसधर्मेण यावज्जीवं दमो नृपः
धर्मद्वि महतीं प्राप्यकालधर्मवशंगतः । सदीपवासनायोगाद्बहून् दीपान् प्रदीप्य वै
अलकायाः पतिरभूद्रत्नदीपशिखाश्रयः । एवं फलति कालेन शिवेऽल्पमपि यत्कृतम्
इतिज्ञात्वा शिवेकार्यभजनंस्वसुखार्थिभिः । कसदीक्षितदायादःसर्वधर्मपराङ्मुखः
स्वार्थदीपदशोद्योतलिङ्गमौलितमो हरः । कलिङ्गविषये राज्यं प्राप्तोधर्मरतिः सदा

शिवालये समुद्दीप्य दीपान् प्राग्वासनोदयात् ।

क्वेषा दिक्पालपदवी शिवशर्मन् ! विलोकय । मनुष्यधर्मणानेनसाम्प्रतं येहभुज्यते
गणावृक्षतुः

सर्वदेष शिवेनासौ सखित्वञ्च यथेयिवान् । तदप्येकमना विप्र संश्रुणुष्व ब्रवावहै
पाप्मेकल्पेपुराविप्र! ब्रह्मणोमानसात्सुतात् । पुलस्त्याद्विभ्रवाजशेतस्यवैश्रवणःसुतः
तेनेयमलका भुक्तापुरीविश्वकृताकृता । आराध्यत्र्यम्बकंदैवमत्युग्रतपसा पुरा ॥ १३४
व्यतीतेतत्र कल्पे वै प्रवृत्ते मेघवाहने । याज्ञदत्तिरसौ श्रीदस्तपस्तेपे सुदुःसहम्
भक्तिप्रभावं चिह्नाय शम्भोस्तद्दीपमात्रतः ।

पुरीं पुरारेःसम्प्राप्य काशिकाञ्चित्प्रकाशिकाम् ॥ १३६ ॥

शिवैकदशमुद्बोधयच्चिसरत्नप्रदीपकम् । अनन्यभक्तिस्नेहाद्यं तन्महोप्यानिश्चलम्
शिवैक्यसुमहापात्रं तपोनिपरिवृंहितम् । कामकोधमहाविघ्नपतङ्गघातवर्जितम्

प्राणसंरोधनिर्वातनिर्मलनिर्मलेक्षणात् । संस्थाप्यशास्त्रमर्घलिङ्गसद्भावकुसुमार्चितम्
तावत्तताप स तपस्त्वगस्थिपरिशेषितम् । यावद् बभूव तद्दर्भं वर्षाणामयुतंशतम्

ततः सह विशालाक्ष्या देवो विश्वेश्वरःस्वयम् ।

अलकापतिमालोक्य प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ १४१ ॥

लिङ्गे मनःसमाधाय स्थितं स्थाणुस्वरूपिणम् ।

उवाच वरदोऽस्मीति तप्तवाऽलमलकापते ! ॥ १४२ ॥

उन्मील्य नयने यावत्सपश्यति तपोधनः । तावदुद्यत्सहस्रांशुसहस्राधिकतेजसम्
पुरोददर्शं श्रीकण्ठं चन्द्रसूडमुमाधवम् । तत्तेजः परिभूताक्षितेजाःसंमील्य लोचने !
उवाच देवदेवेशं मनोरथपथातिगम् । निजाङ्घ्रिदर्शनेनाथद्रुकसामर्थ्यं प्रयच्छ मे
अयमेव वरो नाथ! यत्त्वं साक्षान्निरिक्ष्यसे ।

किमन्येन वरेणेश! नमस्ते शशिशेखर! ॥ १४६ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा देवदेव उमापतिः । ददौदर्शनसामर्थ्यं स्पृष्ट्वापाणितलेन तम् ॥
प्रसार्य नयने पूर्वमुमामेव व्यलोकयत् । शम्भोः समीपेकायोविदेया सर्वाङ्गसुन्दरी
अनया किन्नपस्तत्रं ममापि तपसोधिकम् ।

अहो रूपमहो प्रेम सौभाग्यश्रीरहो भृशम् ॥ १४६ ॥

क्रूरदृग्धीक्षते यावत्पुनःपुनरिदं वदन् । तावत्पुस्फोट तन्नेत्रं वामं वामविलोकनात्
अथ देव्यब्रवीद्वैवं किमसौ दुष्टतापसः ।

असकृद्दीक्ष्य मां वक्ति न्यक्कुर्वन्मे तपःप्रभाम् ॥ १५१ ॥

असकृद्दीक्षणेनाक्ष्णापुनर्मांमेव पश्यति । असूयमानो मे रूपंप्रेमसौभाग्यसम्पदः ॥
इतिदेवागिरं श्रुत्वा प्रहस्य प्राह तां प्रभुः । उमेत्त्वदीयःपुत्रोऽयंनचक्रूरं चभुषा
संपश्यते तपोलक्ष्मीं तव किन्त्वधिवर्णयेत् ।

इति देवीं समाभाष्य तमीशः पुनरब्रवीत् ॥ १५४ ॥

वरान्ददामिते वत्स! तपसाऽनेन तोषितः । निधीनामधिनाथस्त्वंगुह्यकानांभवेश्वरः
यक्षाणां किन्नराणां च राजा राज्ञश्च सुव्रत ! ।

पतिःपुण्यजनानाञ्च सर्वेषां धनदो भव ॥ १५६ ॥

मयासख्यञ्चतेनित्यं वत्स्यामिच तवान्तिके । अलकांनिकपामित्रतवप्रीतिविवृद्धये
आगच्छपादयोरस्याः पततेजननीत्वियम् । इतिदस्त्वावरान्देवः पुनराह शिवांशिवः
प्रसादं कुरु देवेशि! तपस्विन्यङ्गजेऽत्र वै ॥ १५८ ॥

देव्युवाच

वत्स! ते निश्चलाभक्तिर्भवे भवतु सर्वदा । भवैकपिङ्गोनेत्रेण धामेन स्फुटितेन ह
देवेन दत्ता ये तुभ्यं घराः सन्तु तथैव ते । कुबेरोभवनाम्नात्वं ममरूपेर्ष्यया सुत !
त्वयेदं स्थापितं लिङ्गं तवनाम्नाभविष्यति । सिद्धिदंसाधकानाञ्चसर्वपापहरंपरम्
न धनेन विद्युज्येत न सख्या न च बान्धवैः । कुबेरेश्वरलिङ्गस्य कुर्याद्यो दर्शनं नरः
विश्वेशाद्दक्षिणे भागे कुबेरेशं सप्रर्षयेत् । नरोलिप्येतनो पापैर्नदारिद्र्येणनोऽसुखैः
इतिदत्त्वा वरान्देवो देव्यासह महेश्वरः । धनदायाविवेशाय धामवैश्वेश्वरं पदम्

गणावृषतुः

इत्थं सखित्वं श्रीशम्भोः प्रापैत्र धनदःपरम् । अलकां निकपाचैपकलासः शङ्करालयः

पुर्यां यक्षेश्वराणान्ते स्वरूपमिति वर्णितम् ।

यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो नरो मुच्येदसंशयम् ॥ १६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां षतुर्थेकाशीखण्डे

पूर्वार्द्धे गन्धवत्यलकावर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

सौमलोकवर्णनम्

गणावूचतुः

अलकायाः पुरोभागे पूरेशानीमहोदया । अस्यां बसन्ति सततं रुद्रभक्तास्तपोधनाः
शिवस्मरणसंसक्ताः शिवव्रतपरायणाः । शिवसात्कृतकर्माणः शिवपूजारताः सदा
सामिलायास्तपस्यन्तिस्वर्गभोगोस्त्वितीह नः । तेऽत्र रुद्रपुरे रम्ये रुद्ररूपधरानराः
अजैकपादहिवुर्धन्यमुख्या एकादशापि वै । रुद्राः परिवृढाश्चात्र त्रिशूलोद्यतपाणयः
पुर्यष्टकञ्च दुष्टेभ्यो देवधुग्भ्यो ह्यवन्ति ते ।

प्रयच्छन्ति वरास्त्रित्यं शिवभक्तजने वराः ॥ ५ ॥

एतेरपि तपस्तमं प्राप्यवाराणसीं पुरीम् । ईशानेशंमहालिङ्गं परिस्थाप्य शुभप्रदम्
ईशानेशप्रसादेन दिश्यैश्यां हिदिगीश्वराः । एकादशाप्यैकचरा जटामुकुटमण्डिताः
भालनेत्रानीलगलाःशुद्धाङ्गावृषभध्वजाः । असङ्ख्याताःसहस्राणियेरुद्राअभिभूतलम्
तेऽस्यांपुखिवसन्त्यैश्यां सर्वभोगसमृद्धयः । ईशानेशंसमभ्यर्च्य काश्यांदेशान्तरेष्वपि
विपन्नास्तेन पुण्येन जायन्तेऽत्र पुरोहिताः ।

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामीशानेशं यजन्ति ये ॥ १० ॥

त एव रुद्रा विज्ञेया इहामुत्राप्यसंशयम् । कृत्वा जागरणं रात्रावीशानेश्वरसन्निधौ
उपोष्य भूता यां काञ्चिन्न नरो गमभाक् पुनः ।

स्वर्गमार्गे कथामित्थं शृण्वन् विष्णुगणोदिताम् ॥ १२ ॥

शिवशर्मादिवाप्युच्चैरपश्यच्चन्द्रचन्द्रिकाम् । आह्लादयन्तींबहुशः समं सर्वेन्द्रियैर्मनः
समत्कृत्यचमत्कृत्य कोयंलोकोहरेर्गणौ । प्रच्छशिवशर्मातीप्रोचतुस्तञ्चतौद्विजम्

गणावूचतुः

शिवशर्मन्महाभाग लोक एष कलानिधेः । पीयूषवर्षिभिर्वस्यकरैराप्याप्यते जगत्

पितासोमस्यभोविप्रजज्ञेऽत्रिभंगवानृषिः । ब्रह्मणोमानसात्पूर्वं प्रजासर्गविधित्सतः
अनुत्तरं नामतपोयेन तप्तं हि तत्पुरा । त्रीणि वर्णसहस्राणि दिव्यानीतीहनी श्रुतम्
ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य रेतः सोमत्वमीयिवत् ।

नेत्राभ्यां तच्च सुस्त्राव दशधा द्योतयद्विशः ॥ १८ ॥

तं गर्भं विधिनादिष्टा दशदेव्यो दधुस्ततः । समेत्य धारयाम्रासुर्नैवताः समशक्नुवन्
यदानधारणेशक्तास्तस्यगर्भस्यतादिशः । ततस्ताभिःसजूःसोमोनिपपातवसुन्धराम्
पतितंसोममालोक्य ब्रह्मालोकपितामहः । रथमारोपयामास लोकानांहितकाम्यया
स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुन्धराम् ।

त्रिः सप्तकृत्वो द्रुहिणश्चकारामुं प्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥

तस्ययत्प्लाचितंतेजःपृथिवीमन्वपद्यत । तथौषध्यःसमुद्रभूतायाभिःसन्धार्यंतेजगत्
स लब्धतेजा भगवान् ब्रह्मणा वर्धितः स्वयम् ।

तपस्तेपे महाभाग ! पद्मानां दशतीर्दश ॥ २४ ॥

अविमुक्तं समासाद्य क्षेत्रं परमपावनम् । संस्थाप्य लिङ्गममृतं चन्द्रेशाख्यंस्वनामतः
बीजौषधीनांतोयानां राजाभूदप्रजन्मनाम् । प्रसादाद्देवदेवस्यविश्वेशस्यपिनाकिनः
तत्र कूपं विधायैकममृतोदमिति स्मृतम् ।

यस्याम्बुपानस्नानाभ्यां नरोऽज्ञानात्प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

तुष्टेनदेवदेवेनस्वमीलौ योधुतःस्वयम् । आदाय तांकलामेकां जगत्सञ्जीवनींपराम्
पश्चाद्दक्षेण शक्तोऽपि मासोने क्षयमाप्य च । आप्याय्यतेऽसौकलयापुनरेवतयाशशी
सतत्प्राप्य महाराज्यं सोमः सोमवतां वरः । राजसूयं समाजहं सहस्रशतदक्षिणम्
दक्षिणामददत्सोमस्त्रीलं लोकानिति नौ श्रुतम् ।

तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भोद्विज ! ॥ ३१ ॥

हिरण्यगर्भोब्रह्माऽत्रिभूर्गुर्यत्रत्विजोऽभवन् । सदस्योभूद्धरिस्तत्र मुनिभिर्वहुभिर्वृतः
तंसिनीवकुह्रश्चैव द्युतिः पुष्टिःप्रभावसुः । कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नवदेव्यःसिषेवरे
उमया सहितंरुद्रं सन्तर्प्याध्वरकर्मणा । प्राप सोमइतिख्यातिं दत्तां सोमेन शम्भुना

तत्रैव तप्तवान् सोमस्तपः परमदुष्करम् ।

तत्रैव राजसूयञ्च चक्रे चन्द्रेश्वराप्रतः ॥ ३५ ॥

तत्रैव ब्राह्मणैः प्रीतरित्युक्तोऽसौ कलानिधिः ।

सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा त्रैलोक्यदक्षिणः ॥ ३६ ॥

तत्रैव देवदेवस्य विलोचनपदगतः । देवेन प्रीतमनसा त्रैलोक्याह्लादहेतवे ॥ ३७ ॥

त्वं ममास्यपरामूर्तिरित्युक्तस्तत्तपोबलात् । जगत्तवोदयंप्राप्यभविष्यतिसुखोदयम्

त्वत्पीयूषमयैर्हस्तैः स्पृष्टमेतच्चराचरम् । मानुतापपरीतञ्च परां ग्लानिं विहास्यति

एतदुत्तवा महेशानो वरानन्यानदान्मुदा । द्विजराज! तपस्तप्तं यदत्युग्रं त्वयात्र वै ॥

यच्च क्रतुक्रियोत्सर्गंस्त्वया मह्यं निवेदितः ।

स्थापितं यत्त्विदं लिङ्गं मम चन्द्रेश्वरामिधम् ॥ ४१ ॥

ततोऽत्रलिङ्गेत्वन्नाम्निसोमसोमार्धरूपधृक् । प्रतिमासंपञ्चदश्यांशुक्लायांसर्वगोप्यहम्

अहोरात्रं वसिष्यामि त्रैलोक्यैश्वर्यंसंयुतः ।

ततोऽत्र पूर्णिमायां तु कृता स्वल्पाऽपि सत्क्रिया ॥ ४३ ॥

जपहोमार्घनध्यानदानब्राह्मणभोजनम् । महापूजा च सा नूनं मम प्रीत्यै भविष्यति

जीर्णोद्धारादिकरणं नृत्यवाद्यादिकार्षणम् । ध्वजारोपणकर्मादितपस्विचयतितर्पणम्

चन्द्रेश्वरे कृतंसर्वं तदानन्त्याय जायते । अन्यञ्च ते प्रवक्ष्यामि शृणुगुह्यं कलानिधे!

अभक्ताय च नाऽऽख्येयं नास्तिकाय श्रुतिद्रुहे ।

अमावास्या यदा सोम! जायते सोमवासरे ॥ ४७ ॥

तदोपवासःकर्तव्यो भूतायांसद्विरादरात् । कृतनित्यक्रियः सोमत्रयोदश्यांनिशामय

शनिप्रदोषे संपूज्य लिङ्गं चन्द्रेश्वराह्वयम् । नक्तं कृत्वा त्रयोदश्यां नियमंपरिगृह्य च

उपोष्य च चतुर्दश्यां कृत्वा जागरणं निशि ।

प्रातः सोमकुह्ययोगे स्नात्वा चन्द्रोदधारिमिः ॥ ५० ॥

उपास्यसन्ध्यांविधिवत्कृतसर्वोदकक्रियः । उपचन्द्रोदतीर्थेषु श्राद्धंविधिवदाचरेत्

आषाहनाद्यर्थरहितं पिण्डान्दद्यात्प्रथमतः । वसुध्वादिति सुतस्वरूपपुरुषत्रयम् ॥

मातामहांस्तथोद्दिश्य तथाऽन्यानपि गोत्रजान् ।
 गुरुश्वशुरबन्धूनां नामान्युच्चार्य पिण्डदः ॥ ५३ ॥
 कुर्षञ्छ्राद्धञ्च तीर्थेऽस्मिन् श्रद्धयोद्धरतेऽखिलान् ।
 गयायां पिण्डदानेन यथा तुष्यन्ति पूर्वजाः ॥ ५४ ॥
 तथा चन्द्रोदकुण्डेऽत्र श्राद्धैस्तुष्यन्ति पूर्वजाः ।
 गयायाञ्च यथा मुच्येत्सर्वर्णात्पितृजाभरः ॥ ५५ ॥

तथाप्रमुच्यते चर्णाञ्चन्द्रोदेपिण्डदानतः । यदाचन्द्रे श्वरं द्रष्टुं यायात्कोपिनरोत्तमः
 तदा नृत्यन्ति मुदितास्तत्पूर्वप्रपितामहाः ।

अयं चन्द्रोदतीर्थेऽस्मिस्तर्पणं नः करिष्यति । ॥ ५७ ॥

अस्माकं मन्दभाग्यत्वाद्यदिनैव करिष्यति । तदा तत्तीर्थसंस्पर्शादस्मत्तृप्तिर्भविष्यति
 स्पृशेन्नपि यदा मन्दस्तदा द्रक्ष्यति तृप्तये । एवं श्राद्धं विधायथ स्पृष्ट्वा चन्द्रे श्वरं व्रती
 सन्तर्प्यं चिप्रांश्च यतीन् कुर्याद्वै पारणं ततः ॥ ५६ ॥

एवं व्रते कृते काश्यां सदृशं सोमवासरे । भवेद्वृणत्रयान्मुकोमृगाङ्कु! मदनुग्रहात् ॥
 अत्र यात्रा महाचैस्यांकार्या क्षेत्रनिवासिभिः । तारकज्ञानलाभाय क्षेत्रचिप्रनिवर्तिनी
 चन्द्रे श्वरं समभ्यर्च्य यद्यन्यत्रापि संस्थितः ।

अधौ च पटलीं भिस्त्वा सोमलोकमवाप्स्यति ॥ ६२ ॥

कलौ चन्द्रे शमहिमा नाभाग्यैरवगम्यते । अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि परं गुह्यं निशापते!
 सिद्धयोगीश्वरं पीठमेतत्साधकसिद्धिदम् । सुरासुरेषु गन्धर्वनागाधिपाधरेष्वपि
 रक्षोगुह्याकयक्षेषु किन्नरेषु नरेषु च । सप्तकोट्यस्तु सिद्धानामत्र सिद्धाममागतः ॥

पण्मासं नियताहारो ध्यायन् विश्वेश्वरीमिह ।

चन्द्रे श्वरार्चनायातान् सिद्धान् पश्यति सोऽग्रगान् ॥ ६६ ॥

सिद्धयोगीश्वरी साक्षाद्दरदा तस्य जायते ।

तत्रापि महती सिद्धिः सिद्धयोगीश्वरीक्षणात् ॥ ६७ ॥

सन्ति पीठान्यनेकानि क्षितौ साधकसिद्धये ।

परं योगीश्वरीपीठाद्भूपृष्ठेनाशु सिद्धिदम् ॥ ६८ ॥

यत्र चन्द्रेश्वरं लिङ्गं त्वयेद्स्थापितं शशिन् । इदमेवहि तत्पीठमदृश्यमकृतात्मभिः
जितकामा जितक्रोधा जितलोभस्पृहास्मिताः ।

योगीश्वरीं प्रपश्यन्ति मम शक्तिं परां हि ताम् ॥ ७० ॥

ये तुप्रत्यष्टमिजनास्तथाप्रतिचतुर्दश । सिद्धयोगीश्वरीपीठेपूजयिष्यन्तिभाचिताः
अदृष्टरूपां सुभगां पिङ्गलां सर्वसिद्धिदाम् ।

धूपनैवेद्यदीपाद्यै स्तेषामाचिर्भविष्यति ॥ ७२ ॥

इतिदत्त्वा चराञ्छम्भुस्तस्मै चन्द्रमसेद्विज ! अन्तर्हितो महेशानस्तत्रचंश्वेश्वरेपुरे
तदारभ्य चलोकेऽस्मिन् द्विजराजोधिपोभवत् ।

दिशो चितिमिराः कुर्वन्निजैः प्रसृमरैः करैः ॥ ७४ ॥

सोमवारव्रतकृतः सोमपानरता नराः । सोमप्रमेण यानेन सोमलोकं वसन्ति हि ॥
चन्द्रेश्वरसमुत्पत्तिं तथा चान्द्रमसं तपः ।

यः श्रोष्यति नरो भक्त्या चन्द्रलोके स इज्यते ॥ ७६ ॥

अगस्तिरुवाच

शिवशर्मणि शर्मकारिणीं पथि दिव्ये श्रमहारिणीं गणीं !

कथयन्तौ तु कथामिमां शुभामुडुलोकं परिजग्मतुस्ततः ॥ ७७ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणवकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

पूर्वार्द्धे सोमलोकवर्णनं नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

नक्षत्रबुधलोकयोर्वर्णनम्

अगस्तिरुवाच

शृणु पत्नि! महाभाग! लोपामुद्रे! सधर्मिणि !।

कथां विष्णुगणाभ्याञ्च कथितां शिवशर्मणे ॥ १ ॥

शिवशर्मोवाच

अहो! गणौ! विचित्रेयं श्रुता चान्द्रमसी कथा ।।

उडुलोककथां ख्यातं विष्वगाख्यानकोविदौ !। २ ॥

गणावसूनुः

पुरासिसृक्षतः सृष्टिं स्रष्टृरङ्गुष्ठपृष्ठतः । दक्षः प्रजाविनिर्माणे दक्षो जातः प्रजापतिः
षष्टिर्दुहितरस्तस्यतपोलावण्यभूषणाः । सर्वलावण्यरोहिण्योरोहिणीप्रमुखाःशुभाः

ताभिस्तप्त्वा तपस्तीव्रं प्राप्य वैश्वेश्वरीपुरीम् ।

आराधितो महादेवः सोमः सोमविभूषणः ॥ ५ ॥

यदा तुष्टोऽयमीशानोदातुं वरमथाययौ । उवाच च प्रसन्नात्मायाचध्वं वरमुत्तमम्
शम्भोर्वाक्यमथाकर्ण्य ऊचुस्ताश्च कुमारिकाः ।

यदि देयो वरोऽस्माकं वरयोग्याः स्म शङ्कर !। ७ ॥

भवतोपि महादेव भवतापहरो हि यः । रूपेण भवता तुल्यः स नो भर्ता भवत्विति
लिङ्गं संस्थाप्य सुमहन्नक्षत्रेश्वरसंज्ञितम् । वरणायास्तटे रम्ये सङ्गमेश्वरसन्निधौ
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु पुरुषायितसंज्ञितम् । तपस्तप्तं महत्ताभिः पुरुषैरपि दुष्करम् ॥
ततस्तुष्टो हि विश्वेशो व्यतरद्वरमुत्तमम् । सर्वासामेकपत्नीनामेकत्रस्थिरत्वेतसाम्

श्रीविश्वेश्वर उवाच

नक्षान्तं हि तपोऽत्युग्रमेतदन्याभिरीदृशम् । पुराऽबलाभिस्तस्माद्बोनामनक्षत्रमत्रवै

पुहशयिनसंज्ञेन तमं यत्तपसाऽधुना । भवतीमिस्तनःपुंस्त्वमिच्छया बोभविष्यति
ज्योतिश्चक्रे समस्तेऽस्मिन्नग्रगण्या भविष्यथ ।

मेवादीनाञ्च राशीनां योनयो यूयमुत्तमाः ॥ १४ ॥

ओपधीनांसुवायाश्चब्राह्मणानांच यः पतिः । पतिमत्योभवत्योपितेनपत्याशुभाननाः
भवतीनामिदं लिङ्गं नक्षत्रेश्वरसंज्ञितम् । पूजयित्वा नरो गन्ता भवतीलोकमुत्तमम्
उपरिष्ठान्मृगाङ्कस्य लोको वस्तु भविष्यति ।

सर्वासां तारकाणाञ्च मध्ये मान्या भविष्यथ ॥ १७ ॥

नक्षत्रपूजका ये च नक्षत्रव्रतधारिणः । ते वो लोके वसिष्यन्तिः नक्षत्रसदृशप्रभाः ॥
नक्षत्रप्रहराशीनांवाधास्तेषां कदाचन । न भविष्यन्निधे काश्यां नक्षत्रेश्वरवीक्षकाः

अगस्त्य उवाच

अतिथित्वमवाप नेत्रयोर्बुधलोकः शिवशर्मणस्त्वथ ।

गणयोर्भगणस्य संकथां कथयित्रोरिति चिष्णन्चेतसोः ॥ २० ॥

शिवशर्मोवाच

कस्यलोकोयमतुलो ब्रूतं श्राभगवद्गणौ । पीयूषभानोरिव मे मनः प्रीणयतेतराम् ॥

गणावूचतुः

शिवशर्मनशृणुकथामेतांपापापहारिणीम् । स्वर्गमार्गचिनोदायतापत्रयचिनाशिनीम्
योऽसौपूर्वमहाकान्तिरावाभ्यांपरिवर्णितः । साम्राज्यपदमापन्नोद्विजराजस्तवाग्रतः
दक्षिणाराजसूयस्य येनत्रिभुवनं कृता । तपस्तताप योऽत्युग्रं पश्यानां दशतीर्दश ॥

अत्रिनेत्रसमुद्रभूतःपीत्रो बंदुहिणस्य यः । नाथः सर्वोपधीनांचज्योतिषांपतिरेवच
निर्मलानां कलानां च शेषधिर्यश्च गीयते । उद्यन्परोपतापं यः स्वकरैर्गलहस्तयेत्
मुदं कुमुदिनीनां यस्तनोति जगता सह । दिग्बधूचारुशृङ्गारदर्शनादर्शमण्डलः ॥

किमन्यैर्गुणसम्भारैरतोपि न समं विधोः ।

निजोत्तमाङ्गे सर्वज्ञः कलां यस्यावतंसयेत् ॥ २८ ॥

बृहस्पतेः स वै भायमैश्वर्यमद्मोहितः । पुरोहितस्यापि गुरोर्नांतुराङ्गिरसस्य ३

अहार तरसातारां रूपवान् रूपशालिनीम् । वार्यमाणोपिगीर्वाणैर्बहुदेवर्षिभिः पुनः
नायंकलानिधेर्दोषो द्विजराजस्यतस्यचै । हित्वा त्रिनेत्रं कामेन कस्यनोखण्डितं मनः

ध्वान्तमेतदमितः प्रसारि यत्सच्छमाय विधिना विनिर्मितम् ।

दीपभास्करकरामहौषधं नाधिपत्यतमसस्तु किञ्चन ॥ ३२ ॥

आधिपत्यमदमोहितं हितं शंसितं स्पृशति नो हरेर्हितम् ।

दुर्जनं विहिततीर्थमज्जनैः शुद्धधीरिष विरुद्धमानसम् ॥ ३३ ॥

धिग्धिगेतदधिकर्द्धिचेष्टितं चङ्क्रमेक्षणचिलक्षितं यतः ।

वीक्षते क्षणमचारुचक्षुषा घातितेन विपदः पदेन च ॥ ३४ ॥

कः कामेन न निर्जितस्त्रिजगतां पुष्पायुधेनाप्यहो ।

कः क्रोधस्य वशङ्गतो न न च को लोभेन सम्मोहितः ॥

योषिल्लोचनभङ्गभिन्नहृदयः को नाप्तवानापदम् ।

को राज्यश्रियमाप्य नान्धपदवीं यातोऽपि सल्लोचनः ॥ ३५ ॥

आधिपत्यकमलातिचञ्चला प्राप्यतांश्वयदिहार्जितंकिल ।

निश्चलं सदसदुच्चकैर्हितं कार्यमार्यं चरितैः सदैव तत् ॥ ३६ ॥

न यदाङ्गिरसे तारां स व्यसर्जयदुल्बणः । रुद्रोथ पार्ष्णिण जग्राहगृहीत्वाजगवन्धनुः

तेन ब्रह्मशिरो नाम परमात्मं महात्मना । उत्सृष्टं देवदेवाय तेन तन्नाशितं ततः ॥

तयोस्तद्युद्धमभवद्दोरं चैतारकामयम् । ततस्त्वकाण्डब्रह्माण्डभङ्गाद्गीतोऽभवद्विधिः

निवार्य रुद्रं समरात्संवर्तानलवर्चंसम् । ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥

अथान्तर्गर्भमालोक्य तारां प्राह बृहस्पतिः ।

मदीयायां न ते योनीं गर्भो धार्यः कथञ्चन ॥ ४१ ॥

इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भसाचोत्ससर्जह । जातमात्रःसभगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः

ततः संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमाः । सत्यं ब्रूहि सुतः कस्यसोमस्याथ बृहस्पतेः

पृच्छन्मानायदादेवैर्नाहताराऽतिसत्रपा । तदा साशप्तुमारुधा कुमारैणाऽतितेजसा

तन्निवार्यतदा ब्रह्मातारां पप्रच्छ संशयम् । प्रोवाच प्राञ्जलिः सातंसोमस्यैतिपितामहम्

तदा स मूढ्युपाध्याय राजागर्भप्रजापतिः । बुध इत्यकरोन्नाम तस्यबालस्यधीमतः
ततश्च सर्वदेवेभ्यस्तेजोरूपबलाधिकः । बुधः सोमं समापृच्छथ तपसेकृतनिश्चयः
जगाम कार्शीं निर्वाणराशिं विश्वेशपालिताम् ।

तत्र लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य स स्वनाम्नां बुधेश्वरम् ॥ ४८ ॥

तपश्चचार चात्युग्रमुग्रं संशीलयन् हृदि । वर्षाणामयुतं बालो बालेन्दुतिलकं शिवम् ॥
तनो विश्वपतिः श्रीमान् विश्वेशो विश्वभावनः ।

बुधेश्वरान्महालिङ्गादाविरासीन्महोदयः ॥ ५० ॥

उवाच च प्रसन्नात्मा ज्योतीरूपो महेश्वरः । वरं ब्रूहि महाबुद्धे ! बुधान्यविबुधोत्तमः ॥
तवानेनातितपसा लिङ्गसंशीलनेन च । प्रसन्नोऽस्मि महसौम्य ! नादेयं त्वयि विद्यते
इति श्रुत्वा वचः सोऽथ मेघगम्भीनिःस्वनम् । अवग्रहपरिम्लानसस्य सञ्जीवनोपमम्
उन्मीलय लोचने यावत्पुरः पश्यति बालकः ।

तावलिङ्गे ददर्शाथ त्र्यम्बकं शशिशेखरम् ॥ ५४ ॥

बुध उवाच

नमः पूतात्मने तुभ्यं ज्योतीरूप ! नमोऽस्तुते । विश्वरूपनमस्तुभ्यं रूपातीताय ते नमः
नमः सर्वातिनाशाय प्रणतानां शिवात्मने । सर्वह्रायनमस्तुभ्यं सर्वकर्त्रे नमोऽस्तुते ॥
रूपालये नमस्तुभ्यं भक्तिगम्याय ते नमः । फलदात्रे च तपसां तपोरूपाय ते नमः
शम्भो ! शिव ! शिवाकान्त ! शान्तश्रीकण्ठशूलभृत् । शशिशेखर ! सर्वेशशङ्करेश्वरधूर्जटे !
पिनाकपाणे ! गिरिश ! शितिकण्ठ ! सदाशिव ! ! महादेव ! नमस्तुभ्यं देवदेव ! नमोऽस्तुते
स्तुतिं कर्तुं न जानामि स्तुतिप्रिय ! महेश्वर ! !

तव पादाम्बुजद्वन्द्वे निर्द्वन्द्वा भक्तिरस्तु मे ॥ ६० ॥

अयमेव वरोनाथ ! प्रसन्नोऽसि यदीश्वर ! ! नान्यं वरं वृणे त्वत्तः करुणामृतधारिणे !
ततः प्राह महेशानस्तत्स्तुत्यापरितोषितः । रौहिणेयमहाभाग ! सौम्यसौम्यवचोनिधे !
नक्षत्रलोकादुपरि तव लोकौ भविष्यति । मध्ये सर्वग्रहाणां च सपर्याल्लप्स्यसे पराम्
त्वयेदं स्थापितं लिङ्गं सर्वेषां बुद्धिदायकम् । दुर्बुद्धिहरणं सौम्यत्वह्लोकवसतिप्रदम्

इत्युक्त्वा भगवान् शम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत । बुधः स्वलोकमगमद्देवदेवप्रसादतः ॥

गणाधूचतुः

काश्यां बुधेश्वरसमर्चनलब्धबुद्धिः संसारसिन्धुमधिगम्य नरो ह्यगाधम् ।

मज्जेन्न सज्जनविलोचनचन्द्रकान्तिः कान्ताननस्त्वधिवसेच्च बुधेऽत्र लोके ॥

चन्द्रेश्वरात्पूर्वभागे दृष्ट्वा लिङ्गं बुधेश्वरम् ।

न बुद्ध्या हीयते जन्तुरन्तकालेऽपि जातुचित् ॥ ६७ ॥

गणौयावत्कथामित्थं चक्रातेबुधलोकगाम् । तावद्विमानं सम्प्राप्तंशुक्रलोकमनुत्तमम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

पूर्वाद्धे नक्षत्रबुधलोकयोर्वर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

शुक्रलोकवर्णनम्

गणाधूचतुः

शिवशर्मन् ! महाबुद्धे! शुक्रलोकोऽयमद्भुतः । दानवानां च दैत्यानां गुरुरत्रवसेत्कविः

पीत्वावर्षसहस्रं वै कणधर्मसुदुः सहम् । यः प्रातवान्महाविद्यां मृत्युसञ्जीवनीहरात्

इमां विद्यां न जानाति देवाचार्योऽतिदुष्कराम् ।

ऋते मृत्युञ्जयात्स्कन्दात्पार्षत्या गजवक्त्रतः ॥ ३ ॥

शिवशर्मोवाच

कोऽसौशुक्रइतिख्यातोयस्यायंलोकउत्तमः । कथंतेनचविद्यासामृत्युसञ्जीवनीहरात्

आचख्यातामिदं देवौ! यदि प्रीतिर्मयि प्रभू! ।

ततस्तीं स्माहतुर्देवौ शुक्रस्य परमां कथाम् ॥ ५ ॥

यां श्रुत्वा चापमृत्युभ्योहीयन्तेश्रद्धयायुताः । भूतप्रेतपिशाचेभ्यानभयं चापिजायते

आजौप्रवर्तमानायामन्धकान्धकवैरिणोः । अनिमद्यगिरिव्यूहवज्रव्यूहाधिनाथयोः ॥
अपस्त्य ततोयुद्धादन्धकःशुकसन्निधिम् । अधिगम्य वमापेदमवरुह्यरथात्ततः ॥ ८

भगवंस्त्वामुपाश्रित्य वयं देवांश्च सानुगान् ।

मन्यामहे तृणैस्तुल्यान् रुद्रोपेन्द्रादिकादपि ॥ ९ ॥

कुञ्जरा इव सिंहभ्यो गरुडेभ्य इवोरगाः । अस्मत्तोविभ्यतिसुरागुरोयुग्मदनुग्रहात्
वज्रव्यूहमनिर्भेद्यं विविशुर्दैत्यदानवाः । विधूयप्रमथानीकं हृदं तापादिता इव ॥११
वयं त्वच्छरणं भूत्वापर्वताइवनिश्चलाः । स्थित्वाच रामनिःशङ्काब्राह्मणेन्द्रमहाहवे
आप्तभावेन च वयंपादौ तवसुखप्रदौ । सदाराःससुताश्चैव शुश्रूषामो दिवानिशम्
अभिरक्षामितो विप्र! प्रसन्नःशरणागतान् । पश्यहुण्डंतुहुण्डं च कुजम्भंजम्भमेव च
पाकं कार्तस्वनं चैव विपाकं पाकहारिणम् । तं चन्द्रदमनशूरं शूरामरविदारणम् ॥

प्रमथैर्भीमविक्रान्तैःक्रान्तं मृत्युप्रमाथिभिः ।

सूदितान् पतिताश्चैव द्राविडैरिष चन्दनान् ॥ १६ ॥

या पीत्वा कणधूमं वै सहस्रंशरदां पुरा । वराविद्या त्वया प्राप्तातस्याकालोयमागतः
अथर्वविद्याफलं तत्ते दैत्यान् सञ्जीवयिष्यतः ।

पश्यन्तु प्रमथाः सर्वे त्वया सञ्जीवितानिमान् ॥ १८ ॥

इत्यन्धकवचःश्रुत्वा स्थिरधीर्भागवो मुनिः ।

किञ्चित्स्मितं तदाकृत्वा दानवाधिपमब्रवीत् ॥ १९ ॥

दानवाधिपते! सर्वं तथ्यंयद्वापितं त्वया । विद्योपाज्जनमेतद्धि दानवार्यं मया कृतम्
पीत्वा वयंसहस्रं वै कणधूमं सुदुःसहम् । एयाप्राप्तेश्वराद्विद्या बान्धवानांसुखावहा
एतयाविद्ययासोऽहंप्रमथैर्मथितान् रणे । उत्थापयिष्येग्लानानिधान्यान्यम्बुधरोयथा
निब्रंणालीरुजःस्वस्थान् सुप्त्वेव पुनरुत्थितान् ।

अस्मिन्मुहूर्ते द्रष्टासि दानवानुत्थितान् ॥ २३ ॥

इत्युक्त्वा दानवपतिं विद्यामाघर्तयत्कविः । एकैकं दैत्यमुद्दिश्यतउत्सस्थुर्धृत्सायुधाः
वेदाइव सदभ्यस्ताःसमये वा यथाभ्युदाः । । ब्राह्मणेभ्योयथादस्ताश्रद्धयार्थमहापदि

उज्जीवितांस्तुतान् दृष्ट्वा तुहुण्डाद्यान्महासुरान् ।
 विनेदुः पूर्वदेवास्ते जलपूर्णा इवाम्बुदाः ॥ २६ ॥
 शुक्रेणोज्जीवितान् दृष्ट्वा दानवांस्तान् गणेश्वराः ।
 विज्ञाप्यमेव देवेशे ह्येवं तेऽन्योन्यमब्रुवन् ॥ २७ ॥
 आश्चर्यरूपे प्रमथेश्वराणां तस्मिस्तथा वर्तति युद्धयन्ने ।
 अमर्षितो भार्गवकर्म दृष्ट्वा शिलादपुत्रोऽभ्यगमन्महेशम् ॥ २८ ॥
 जयेति चोत्तवा जय योनिमुप्रमुचाचनन्दी कनकाघदातम् ।
 गणेश्वराणां रणकर्म देवदेवैश्चसेन्द्रैरपिदुष्करं यत् ॥ २९ ॥
 तद्भागविषाद्य कृतं वृथा नः सज्जीव्य तानाजिमृतान्विपक्षान् ।
 आघर्त्य विद्यां मृतजीवदात्रीमेकैकमुद्दिश्य सहेलमीश ! ॥ ३० ॥
 तुहुण्डहुण्डादिकुजम्भजम्भविपाकापाकादिमहासुरेन्द्राः ।
 यमालयादथ पुनर्निवृत्ता विद्रावयन्यःप्रमथांश्चरन्ति ॥ ३१ ॥
 यदि ह्यसौ दैत्यवराग्निरस्तान्सज्जीवयेदत्र पुनः पुनस्तान् ।
 जयः कुतो नो भविता महेश!गणेश्वराणां कुत एव शान्तिः ॥ ३२ ॥
 इत्येवमुक्तः प्रमथेश्वरेण स नन्दिना वै प्रमथेश्वरेशः ।
 उवाच देवःप्रहसंस्तदानीं तं नन्दिनं सर्वगणेशराजम् ॥ ३३ ॥
 नन्दिन् ! प्रयाहि त्वरितोऽतिमात्रं द्विजेन्द्रवर्यं दितिनन्दनानाम् ।
 मध्यात्समुद्रधृत्य तथाऽऽनयाऽऽशु श्येनो यथा लावकमण्डजातम् ॥ ३४ ॥
 स एव मुक्तो वृषभध्वजेन ननाद नन्दी वृषसिहनादः ।
 जगाम तूर्णञ्च विगाह्य सेनां यत्राभवद्भार्गववंशशीपः ॥ ३५ ॥
 तं रक्ष्यमाणं दितिजैः समस्तैः पाशासिवृक्षोपलशैलहस्तैः ।
 विक्षोभ्य दैत्यान् बलवान् जहार काव्यं स नन्दी शरभो यथेमम् ॥ ३६ ॥
 स्रस्ताम्बरं विच्युतभूषणं च विमुक्तकेशं बलिना गृहीतम् ।
 विमोक्षयिष्यन्त इवानुजग्मुः सुरारयःसिहरवान् सृजन्तः ॥ ३७ ॥

दम्भोलिशूलासिपरश्वधानामुद्दण्डचक्रोपलक्ष्मणानाम् ।

नन्दीश्वरस्योपरि दानवेन्द्रा वर्षवचबुर्जलदा इषोग्रम् ॥ ३८ ॥

तं भागवं प्राप्य गणाधिराजो मुखाग्निना शस्त्रशतानि दग्ध्वा ।

आयात्प्रवृद्धेऽसुरदेवयुद्धे भवस्य पार्श्वं व्यधितारिसैन्यः ॥ ३९ ॥

अयं सशुक्रो भगवन्नितीदं निवेदयामास भवाय शीघ्रम् ।

जग्राह शुक्रं स च देवदेवो यथोपहारं शुचिना प्रदत्तम् ॥ ४० ॥

न किञ्चिदुक्त्वा सहिभूतगोप्ता चिक्षेप वक्त्रे फलवत्कधीन्द्रम् ।

हा हारवस्तेरसुरैः समस्तैरुच्चैर्विमुक्तोहहहेति भूरि ॥ ४१ ॥

काच्ये निगीर्णे गिरिजेश्वरेण दैत्या जयाशा रहिता बभूवुः ।

हस्तैर्विमुक्ता इव वारणेन्द्राः शृङ्गैर्विहीना इवगोवृषाश्च ॥ ४२ ॥

शरीरहीना इव जीवसङ्गाद्विजा यथा चाध्ययनेन हीनाः ।

निरुद्यमाः सस्वगुणा यथा वैयथोद्यमा भाग्यविचर्जिताश्च ॥ ४३ ॥

पत्याविहीनाश्च यथैव योषा यथा चिपक्षा इव मार्गणाद्याः ।

आयूर्ण्य हीनानि यथैव पुण्यैर्वृत्तेनहीनानि यथाश्रुतानि ॥ ४४ ॥

चिना यथा वैभवशक्तिमेका भवन्ति हीनाः स्वफलैः क्रियौघाः ।

तथा चिना तं द्विजवर्यमेकं दैत्या जयाशाचिमुखा बभूवुः ॥ ४५ ॥

नन्दिनापहृतेशुक्रेगिलिते च विष्वादिना । विषादमगमन् दैत्या हीयमानरणोत्सवाः

तान् वीक्ष्य विगतोत्साहानन्धकः प्रत्यभाषत ।

कवि विक्रम्य नयता नन्दिना वञ्चिता वयम् ॥ ४७ ॥

तनूर्विना हताः प्राणाःसर्वेषामद्य तेननः । धैर्यं वीर्यं गतिःकीर्तिःसत्त्वं तेजःपराक्रमः

युगपन्नोद्धतं सर्वमेकस्मिन्भागवे हृते । धिगस्मान् कुलपूज्यो यैरेकोपिकुलसत्तमः

गुरुः सर्वसमर्थश्च त्राता त्रातो न चापदि ॥ ४९ ॥

तद्धैर्यमवलम्ब्येह युध्यध्वमरिभिःसह । सुदयिष्याम्यहं सर्वान् प्रमथान्सहनन्दिना

अद्य तान् विवशान् हत्वा सह दैवैः सवासवैः ।

भार्गवं मोक्षयिष्यामि जीवं योगीव कर्मतः ॥ ५१ ॥

स चापि योगीयोगेनयदिनामस्वयंप्रभुः । शरीरात्सत्यनिर्गच्छेद्स्माकं शेषपालिता
इत्यन्धकवधः श्रुत्वा दानवा मेघनिःस्वनाः । प्रमथानर्दयामासुर्मर्तव्ये कृतनिश्चयाः
सत्यायुषि न नो जातु शक्ताः स्युः प्रमथाबलात् ।

असत्यायुषि किं गत्वात्यक्तवास्वामिनमाहवे ॥ ५४ ॥

येस्वामिनंविहायाजौघहुमानधनाजनाः । यान्तिनेयान्तिनियतमन्ध्रतामिन्द्रमालयम्
अयशस्तमसाख्यातिमलिनीकृत्यभूरिशः । इहामुत्रापिसुखिनोनस्युर्भ्रारणाजिरात्
किं दानैः किंतपोभिश्च कितीर्थपरिमज्जनैः । धरातीर्थे यदिस्नातुं पुनर्भवमलापहे
सम्प्रधार्येतितेऽन्योन्यं दैत्यास्तेदनुजास्तथा । ममन्थुःप्रमथानाजौरणभेरीर्निनाद्यच्च
तत्रबाणासिघञ्जौघैः कटङ्कटशिलामयैः । भुशुण्डीभिन्दिपालैश्च शक्तिमह्लपरश्वधैः
खट्वाङ्गैः पट्टिशैः शूलैर्लकुटेमुंसलैरलम् । परस्परमभिघ्नन्तः प्रचक्रुः कदन् महत्
कामुंकाणां विकृष्टानां पततां च पतत्रिणाम् ।

भिन्दिपालभुशुण्डीनां क्ष्वेडितानां रवोऽभवत् ॥ ६१ ॥

रणतूर्यनिनादैश्च गजानां बहुवृंहितैः । हेपारवैर्हयानाञ्च महान् कोलाहलोऽभवत्
प्रतिस्वनेरवापूरिद्यावाभूम्योर्यदन्तरम् । अर्भारूणाञ्चभीरूणां महारोभोद्गमोऽभवत्
गजवाजिमहारावस्फुटच्छब्दप्रहाणि च । भग्ध्वजपताकानि क्षीणप्रहरणानि च ॥
रुधिरोद्गारचित्राणि व्यश्वहस्तिरथानि च । पिपासितानिसैन्यानिमुमुक्षुं रुभयत्रवै
दृष्ट्वा सैन्यञ्च प्रमथैर्भज्यमानमितस्ततः । दुद्रावरथमास्थाय स्वयमेवान्धकोगणान्
शरवज्रप्रहारेस्तेर्वज्राघातेर्नगा इव । प्रमथा नेशिरेवातेर्निस्तोथा इव तोयदाः ॥ ६७ ॥

यान्तमायान्तमालोक्य दूरस्थं निकटस्थितम् ।

प्रत्येकं रोमसंख्याभिव्यधाद्वा बाणैस्तदान्धकः ॥ ६८ ॥

विनायकेनस्कन्देन नन्दिना सोमनन्दिना । नैगमे येनशाखेनविशाखेन बलीयसा ॥
इत्याद्यैस्तुगणैरन्धकोप्यन्धकीकृतः । त्रिशूलशक्तिबाणौघधारासम्पातपातिभिः
ततः कोलाहलो जातः प्रमथासुरसैन्ययोः । तेन शब्देन महता शुक्रःशम्भुदरेस्थितः

छिद्रान्वेषी भ्रमन् सोऽथ चिन्तिकेतो यथानिलः ।

सप्तलोकान् सपातालान् रुद्रदेहे व्यलोकयत् ॥ ७२ ॥

ब्रह्मनारायणेन्द्राणामादित्याप्सरसां तथा ।

भुवनानि चिच्चित्राणि युद्धञ्च प्रमथासुरम् ॥ ७३ ॥

सवर्षाणां शतं कुक्षौ भवन्थ परितो भ्रमन् । नतस्य दृष्टो रन्ध्रंशुचिरन्ध्रंखलोयथा
शांभवेनाथ योगेन शुक्ररूपेण भार्गवः । चक्रन्दाथननामापिततो देवेन भापितः
शुक्रवनिःसृतोयस्मात्सस्मात्स्वभृगुनन्दन ! । कर्मणानेन शुक्रस्त्वंममपुत्रोसिगम्यताम्
जठरान्निर्गतेशुके देवोऽपि मुमुदेतराम् । भ्रमन्ध्रेयो भवद्यन्मे न मृतो जठरेद्विजः ॥
इत्येवमुक्तो देवेन शुक्रोर्कसदृशद्युतिः । चिवेशदानवानीकं मेघमालां यथा शशी ॥
शुक्रोदयान्मुद्रं लेभे सदानवमहार्णवः । यथा चन्द्रोदये हर्म्यर्मिमाली महोदधिः ॥
अन्धकान्धकहन्त्रोर्वै वर्तमाने महाहवे । इत्थं नास्त्राभवच्छुक्रः सर्वै भार्गवनन्दनः ॥

यथा च विद्या ता प्राप मृतसञ्जीवनीं पराम् ।

शम्भोरनुग्रहात्काव्यस्तन्निशामय सुव्रत ! ॥ ८१ ॥

गणावचतुः

पुराऽसौ भृगुदायादो गत्वा वाराणसी पुरीम् ।

अण्डजस्वेदजोद्विज्जजरायुजगतिप्रदाम् ॥ ८२ ॥

संस्थाप्य लिङ्गं श्रीशम्भोः कूपं कृत्वा तदग्रतः ।

बहुकालं तपस्तेपे ध्यायन् विश्वेश्वरं प्रभुम् ॥ ८३ ॥

राजघम्पकधत्तूरकरवीरकुशेशयैः । मालतीकर्णिकारैश्चकदम्बैर्वकुलोत्पलैः ॥ ८४ ॥

मल्लिकाशतपत्रीभिः सिन्दुवारैःसकिशुकैः । अशोकैः करुणैःपुष्पैः पुन्नागैर्नागकेसरैः

क्षुद्राभिर्माधवीभिश्च पाटलाबिल्वचम्पकैः ।

नवमल्लीषिचिकिलैः कुन्दैः समुच्चुकुन्दकैः ॥ ८६ ॥

मन्दारैर्बिल्वपत्रैश्च द्रोणैर्मरुबकैर्बकैः । ग्रन्थिपर्णैर्दमनकैः सुरभृच्चूतपल्लवैः ॥ ८७ ॥

तुलसीदेवगन्धारीबृहत्पत्रीकुशाकुम्भैः । नन्द्यावर्तेरगस्त्यैश्च सशालैर्देवदारुभिः ॥

काञ्चनारैः कुरुषकैर्दूर्वाङ्कुरकुरण्टकैः । प्रत्येकमेभिः कुसुमैः पल्लवैरपरैरपि ॥ ८६ ॥
 पत्रैः शतसहस्रैश्च स समानर्षशङ्करम् । पञ्चामृतैर्द्रोणमितैर्लक्षकृत्वः प्रयत्नतः ॥ ९० ॥
 स्नापयामास देवेशं सुगन्धस्नपनैर्बहु । सहस्रकृत्वो देवेशं चन्दनैर्यक्षकर्दमैः ॥ ९१ ॥
 समालिलिम्पदेवेशं सुगन्धोद्धर्तनान्यनु । गीतनृत्योपहारैश्च श्रुत्युक्तस्तुतिभिर्बहु
 नाम्नां सहस्रैरन्यैश्च स्तोत्रैस्तुष्टावशङ्करम् । सहस्रं पञ्चशरदामित्थं शुक्रःसमर्षयन्
 यदादेवं नालुलोके मनागपि वरोन्मुखम् । तदान्यं नियमं घोरं जप्राहातीवदुःसहम्
 प्रक्षालय चेतसोऽत्यन्तं चाञ्चल्याख्यं महामलम् ।

भावनाषाभिंरसकृदिन्द्रियैः सहितस्य च ॥ ९५ ॥

निर्मलीकृत्य तच्छेतोरत्नं दत्त्वा पिनाकिने । प्रपपौ कण्ठमग्रां सहस्रं शरदांकविः
 प्रससादतदादेवो भार्गवायमहात्मने । तस्माल्लिङ्गाद्विनिर्गत्य सहस्रार्काधिकद्युतिः
 उवाच चविरूपाक्षः साक्षाद्वाक्षायणीपतिः । तपोनिधंप्रसन्नोऽस्मि वरं वरयभार्गव!
 निशम्यैतिवचः शम्भोरम्भोजनयनो द्विजः । उद्यदानन्दसन्दोहरोमाञ्चाञ्चितप्रिग्रहः
 तुष्टावाऽष्टतनुं तुष्टः प्रफुल्लनयनाञ्जलः । मौलावञ्जलिमाधाय वदञ्जयजेति च

भार्गव उवाच

त्वं भाभिराभिरभिभूय तमःसमस्तमस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम् ।
 देदीप्यसे दिनमणे गनने हिताय लोकत्रयस्य जगदीश्वर! त नमस्ते ॥ १०१ ॥
 लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभिर्निर्मासि कौमुदमुदञ्चसमुत्समुद्रम् ।
 विद्राचिताखिलतमाः सुतमोहिमाशोपीयूपपरिपूरित तं नमस्ते ॥ १०२ ॥
 त्वं पावने पथि सदागतिरस्युपास्यः कस्त्वां विनाभुवनजीवनजीवतीह ।
 स्तब्धप्रभञ्जनविधर्षितसर्षजन्तो सन्तोषिता हि कुलसर्षगतंनमस्ते ॥ १०३ ॥
 विश्वैकपावक! न तावकपावकैकशक्तेर्भृतेऽमृतवतामृतदिव्यकार्यम् ।
 प्राणित्यदोऽगदहो जगदन्तरात्मंस्तत्पावकप्रतिपदं शमदं नमस्ते ॥ १०४ ॥
 पानीयरूप! परमेश! जगत्पवित्र! चित्रंविचित्रसुचरित्रकरोपि नूनम् ।
 विश्वं पवित्रममलं किलविश्वनाथ ! पानावगाहनत पतदतो नतोऽस्मि ॥ १०५ ॥

आकाशरूप! बहिरन्तदतावकाशदानाद्विक्रमिहेश्वरविश्वमेतत् ।

त्वत्तःसदासदयसंश्वसितिस्वभावात्सङ्कोचमेतिभवतोस्मिनतस्ततस्त्वाम् ॥

विश्वम्भरात्मक! विभर्ति विभोऽत्रविश्वंकोविश्वनाथ! भवतोऽन्यतमस्तमोरे!

तत्त्वां चिना न शमिनां हिमजाहिभूयस्तव्योऽपरः परपरप्रणतस्ततस्त्वाम् ॥

आत्मस्वरूप! तव रूपपरंपराभिरामिस्ततं हर! चराचररूपमेतत् ।

सर्वान्तरात्मनिलय! प्रतिरूपरूप! नित्यं नतोस्मि परमात्मतनोऽष्टमूर्ते! ॥ १०८

इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरुमाभिवन्द्य वन्द्यातिवन्द्य! भव! विश्वजनीनमूर्ते !

एतत्ततं सुचिततंप्रणतप्रणीत सर्वार्थसार्थपरमार्थं ततो नतोस्मि ॥ १०९ ॥

अष्टमूर्त्यष्टकेनेष्टं परिष्ट्वेतिभार्गवः । भर्गं भूमिमिलन्मौलिः प्रणनाम पुनः पुनः
इतिस्तुतोमहादेवोभागवेणातितेजसा । उत्थाप्य भूमेर्बाहुभ्यां धृत्वातंप्रणतद्विजम्
उवाच दशनज्योत्स्ना प्रद्योतितदिगन्तरः । अनेनात्युग्रतपसा ह्यनन्या चरितेन च
लिङ्गस्थापनपुण्येन लिङ्गस्याराधनेन च । चित्तरत्नोपहारेण शुचिनानिश्चलेन च
अविमुक्तमहाक्षेत्रे पवित्राचरणेन च । त्वां सुताभ्यां प्रपश्यामि तवादेयं न किञ्चन
अनेनैव शरीरेण ममोदरदरीं गतः । मद्दरेन्द्रियमार्गेण पुत्रजन्मत्वमेप्यसि ॥ ११५ ॥

अन्यं चरं प्रयच्छामि दुष्प्रापं पार्यदैरपि ।

हरौ हिरण्यगर्भेऽपि प्रायशोऽहं जुगोप याम् ॥ ११६ ॥

मृतसञ्जीवनीनाम विद्या या ममनिर्मला । तपोबलेन महता मयैव परिनिर्मिता ॥

त्वां तां तु प्रापयाम्यद्य मन्त्ररूपां महाशुचे !

योग्यता तेऽस्ति विद्यायास्तस्याः शुचितपोनिधे ! ॥ ११८ ॥

यं यमुद्दिश्य नियतमेतामावर्तयिष्यसि । विद्यांविद्येश्वरश्रेष्ठ ससप्राणिष्यतिभू चम्
अत्यर्कमत्यग्निचतेतेजोव्योम्यतितारकम् । देदीप्यमानं भविता प्रहाणां प्रबरोभव
अभित्वां ये करिष्यन्ति यात्रां नार्यो नरोपि वा ।

तेषां त्वद्गृष्टिपातेन सर्वं कार्यं प्रणङ्क्ष्यति ॥ १२१ ॥

तद्योदये भविष्यन्ति विवाहादीनिसुव्रत । सर्वाणिधर्मकार्याणिफलवन्तिनृणामिह

सर्वाश्च तिथयोमन्दास्तव सयोगत शुभा ।

तव भक्ता भविष्यन्ति बहुशुक्ला बहुप्रजा ॥ १२३ ॥

त्वयेद स्थापित लिङ्गं शुक्र शमितिसञ्चितम् ।

येऽस्यविष्यन्ति मनुजास्तेषा सिद्धिर्भविष्यति ॥ १२४ ॥

आवर्षप्रतिशुक्र ये नक्तव्रतपरा नरा । त्वद्दिने शुक्रकूपे ये कृतसर्वोदकक्रिया ॥ १२५ ॥

शुक्रशमस्यविष्यन्ति शृणु तपा तु य फलम् ।

अबन्ध्यशुक्रास्त मत्या पुत्रवन्तोऽतिरतस । २६ ॥

पु स्त्वसौभाग्यसम्पन्ना भविष्यन्ति न सशय ।

व्यपेतावघ्नास्ते सर्वे जना स्यु सुखवासिन ॥

इति दत्त्वा वरान् देवस्तत्र लिङ्गं लय ययौ ॥ १२७ ॥

गणावचतु

शुक्रश्वरस्य ये भक्ता शुक्रलोके वसन्ति ते । विश्वेश्वराद्दक्षिणत शुक्रशोस्त परतप
तस्य दशनमात्रण शुक्रलोकेमहीयते । इ येषा शुक्रलोकस्यस्थितिरुक्तामहामते ॥

अगस्त्यउवाच

इत्थस र्मिणि कथाशुक्रलोकस्यसुव्रते । शृण्वन्नाद्गारकलोकमालुलोकेऽथसद्विज

इति श्रीस्काण्डे महापुराण एकाशातिसाहस्र्या सहिताया चतुर्थे काशीखण्ड

पूर्वार्द्धे शुक्रलोकवर्णननाम षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः भौमगुरुशनिलोकवर्णनम्

शिवशर्मोवाच

शुकसम्बन्धिनीदेवी! कथाऽश्राविमयाशुभा । यस्याः श्रवणमात्रेणप्रीणितेश्रवणेमम
कस्य पुण्यनिध्रेलोक.शोकहृत्स्वेष निर्मलः । एतद्राख्यातमुद्युक्तौ भवन्तौ भवतांमम
धयित्वा श्रोत्रपात्राभ्यां वाणीममृतरूपिणीम् ।

न तृप्तिमधिगच्छामि भवन्मुखसुखोद्गताम् ॥ ३ ॥

गणावृषतुः

लोहिताङ्गस्य लोकोऽयं शिवशर्मन्निबोध ह ।

उत्पत्तिं चास्य वक्ष्यावो भूसुतोऽयं यथाऽभवत् ॥ ४ ॥

पुरातपस्यतःशम्भोर्द्राक्षायण्यावियोगतः । भालस्थलात्पपातैकःस्वेदचिन्दुर्महीतले
ततः कुमारः सञ्जज्ञे लोहिताङ्गो महीतलात् ।

स्नेहसंवर्धितः सोऽथ धाव्या धात्रीस्वरूपया ॥ ६ ॥

माहेयइत्यतः ख्यार्तिं परामेषगतःसदा । ततस्तेपे तपोऽत्युग्रमुग्रपुर्यां पुरानव ! ॥ ७ ॥

असिश्च वरणाच्चापिसरितौयत्र शोभने । द्युनद्योत्तरघाहिन्या मिलितेऽत्र जगद्धिते
सर्वगोऽपि हि विश्वेशो यत्र नित्यं प्रकाशते ।

मुक्तये सर्वजन्तूनां कालोऽभिमतस्ववर्षणाम् ॥ ६ ॥

अमृतं हि भवन्त्येवमृतायत्र शरीरिणः । अनुग्रहं समासाद्य परं विश्वेश्वरस्य ह
अपुनर्भवदेहास्ते ये विमुक्ते तनुत्यजः । विनासाङ्ख्येनयोगेनविना नानाव्रतादिभिः

संस्थाप्य लिङ्गं विधिना स्वनाम्नाङ्गारकेश्वरम् ।

पाञ्चमुद्रे महास्थाने कम्बलाश्वतरोत्तरे ॥ १२ ॥

ज्वलद्ङ्गारवत्तेजो यावत्तस्यशरीरतः । विनिर्ययी तपस्तावत्तेनतप्तं महात्मना ॥

ततोऽङ्गारकनाम्ना स सर्वलोकेषु गीयते । १

तस्य तुष्टो महादेवो ददौ ग्रहपद महत् ॥ १४ ॥

अङ्गारकचतुर्थ्या येस्नात्वोत्तरवहाम्भसि । अन्यर्च्याङ्गारकेशाननमस्यन्तिनरोत्तमा
न तेषां ग्रहपीडा च कदाचित्कापिजायते । अङ्गारकेन सयुक्ता चतुर्थी लभ्यते यदि
उपरागसमपव तदुक्तकालवेदिमि । तस्या दत्तहृत जप्त सर्वं भवति चाक्षयम्
श्रद्धया श्राद्धदायेव चतुर्थ्यङ्गारयोगत । तेषापितृणाभचितात्सिद्धादशवार्षिकी ॥
अङ्गारकचतुर्थ्यां तु पुराजज्ञे गणेश्वर । अतएवतु तत्पर्वं प्रोक्त पुण्यसमृद्धये ॥ १६
एकभक्तव्रती तत्र सम्पूज्य गणनायकम् । किञ्चिद्भस्वा तमुद्दिश्येन विघ्नरभिभूयते
अङ्गारेश्वरभक्ता ये वाराणस्या नरोत्तमा । तेऽस्मिन्नङ्गारके लोकेवसन्ति परमद्वय
अगस्त्य उवाच

इत्थं कथयतोरेव रम्या पुण्यवती कथाम् । भगवद्गणयो प्राप नेत्रातिथ्यगुरो पुरी
नेत्रानन्दकरी दृष्ट्वा शिवशर्माऽथता पुरीम् । प्रपच्छाचार्यवयस्य कस्येय पूरनुत्तमा
गणावूचतु

सम्बे' सुख समाख्यावो नानाख्येय तवाऽग्रत ।

अखेदापनोदाय पुनरस्या पुर कथाम् ॥ २४ ॥

विधेर्विधित्सत पूर्वं त्रिलोकीरचना मुदा ।

आचिरासु सुता सप्त मानसा स्वस्य सन्निभा ॥ २५ ॥

मरीच्यत्र्यङ्गिरो मुख्या सर्वेसृष्टिप्रवतका । प्रजापतेरङ्गिरसस्तेष्वभूद्देवसत्तम ॥

सुतश्चाङ्गिरसो नाम बुद्ध्या चिबुधसत्तम ।

शान्तो दान्तो जितक्रोधो मृदुवाड निर्मलाशय ॥ २७ ॥

वेदवेदार्थतत्त्वज्ञ कलासुकुशलोऽमल । पारदृष्ट्वा तुसर्वेषां शास्त्राणां नीतिवित्तम
हितोपदेष्टा हितरुद्दहितात्यहित सदा ।

रूपवान् शीलसम्पन्नो गुणवान् देशकालचित् ॥ २६ ॥

सर्वलक्षणसम्भारसम्भृतो गुरुवत्सल । तताप तापसीवृत्तिकाश्या समहतीं दधत्

महल्लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य शास्त्रमर्धं भूरिभावनः । अयुतं शरदांविष्यं दिव्यतेजा महातपाः
ततः प्रसन्नो भगवान्विश्वेशो विश्वभावनः ।

आचिर्भूय ततो लिङ्गान्महसां राशिरप्रवीत् ॥ ३२ ॥

प्रसन्नोऽस्मि वरंब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते । इति शम्भुं समालोक्य तुष्टावेति सहृष्टवान्

आङ्गिरस उवाच

जय शङ्कर! शान्त! शशाङ्कचे! रुधिरार्थद! सर्वद! सर्वशुचे !।

शुचिदत्तगृहीतमहोपहृते! हृतभक्तजनोद्धततापतते !॥ ३४ ॥

ततसर्वहृदंवर! वरद! नते! नत! वृजिनमहाघनदाहकृते !।

कृतविधिधत्तत्रतनो! सुतनो! तनुविशिखचिशोषणधैर्यनिधे !॥ ३५ ॥

निधनादिविचर्जित! कृतनतिकृत् !कृतिविहितमनोरथपन्नगभृत् !।

नगभृत् सुतापितवामवपुः स्ववपुः परिपूरितसर्वजगत् ॥ ३६ ॥

त्रिजगन्मयरूप! विरूपमुद्रूक् द्रुगुदञ्जन कुञ्जनकृतहुतभुक् !।

भव! भूतपते! प्रमथैकपते! पतितेष्वपि दत्तकरप्रसृते !॥ ३७ ॥

प्रसृताखिलभूतलसंवरण! प्रणवध्वनिसीधसुधाशुधर !।

धरराजकुमारिकयापरयापरितः परितुष्ट नतोऽस्मि शिव !॥ ३८

शिव! देव! गिरीश! महेश! विभो! विभवप्रद! गिरिश! शिवेश! मृड !।

मृडयोडुपतिध्र! जगत्त्रितयं कृतयन्त्रणभक्तिविघातकृताम् ॥ ३९ ॥

न कृतान्तत एष विभेमि हर! प्रहराशु महावममोघमते !।

न मतान्तरमन्यदवैमि शिवं शिवपादनतेः प्रणतोऽस्मि ततः ॥ ४० ॥

विततेऽत्र जगत्यखिलेऽवहरं हरतोषणमेव परंगुणवत् ।

गुणहीनमहीनमहाबलयं प्रलयान्तकमीश! नतोऽस्मि ततः ॥ ४१ ॥

इति स्तुत्वा महादेवं विररामाङ्गिरःसुतः । व्यतरञ्च महेशानःस्तुत्या तुष्टो वरान्बहून्

श्रीमहादेव उवाच

बृहता तपसाऽनेन बृहतां पतिरेष्यहो । नाम्ना बृहत्पतिरिति प्रहेष्वर्च्यो भव द्विज

अस्माल्लिङ्गार्चनाभित्थं जीवभूतोऽसि मे यतः ।

अतो जीव इतिख्यातिं त्रिषु लोकेषु यास्यसि ॥ ४४ ॥

वाचां प्रपञ्चैश्चतुरैर्निष्प्रपञ्चो यतःस्तुतः । अतोवाचां प्रपञ्चस्य पतिर्वाचस्पतिर्भगव
अस्य स्तोत्रस्य पठनादपि वागुदियाच्च यम् ।

तस्य स्यात्संस्कृता वाणी त्रिभिर्वर्षैस्त्रिकालतः ॥ ४६ ॥

समुत्पन्ने महाकार्येनसबुद्ध्याप्रहीयते । यः पठिष्यत्यदःस्तोत्रंवायव्याख्यंदिनेदिने
अस्यस्तोत्रस्यपठनान्नियतं ममसन्निधौ । नदुर्वृत्तौप्रवृत्तिःस्यादविवेकचतानृणाम्

अदः स्तोत्रं पठन् जन्तुर्जातु पीडां ग्रहोद्ववाम् ।

न प्राप्स्यति ततो जप्यमिदं स्तोत्रं ममाऽप्रतः ॥ ४६ ॥

नित्यं प्रातः समुत्थाय यः पठिष्यति मानवः ।

इमां स्तुतिं हरिष्येऽहं तस्य बाधाः सुदारुणाः ॥ ५० ॥

त्वत्प्रनिष्ठितलिङ्गस्य पूजां कृत्वा प्रयत्नतः ।

इमांस्तुतिं मधीयानो मनोवाञ्छामवाप्स्यति ॥ ५१ ॥

इति दत्त्वा वरान् शम्भुः पुनर्ब्रह्माणमाह्वयत् ।

सेन्द्रान्देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगकिन्नरान् ॥ ५२ ॥

तानागतान् समालोक्य शिवो ब्रह्माणमब्रवीत् ।

विधे! विधेहि मद्वाक्यादमुं वाचस्पतिं मुनिम् ॥ ५३ ॥

गुरुं सर्वसुरेन्द्राणां परितः स्वगुणैर्गुरुम् । अभिषिञ्च विधानेनदेवाचार्यपदेमुदे
अतीवधिषणाधीशो मम प्रीतो भविष्यति ।

महाप्रसाद इत्याह्नां शिरस्याधाय तत्क्षणात् ॥ ५५ ॥

सुरज्येष्ठः सुराचार्यं चकाराङ्गिरसं तदा । देवदुन्दुभयोनेदुर्नृतुश्चाप्सरो गणाः ॥

गुरुपूजां व्यभुः सर्वेर्गीर्वाणामुदिताननाः । अभिषिक्तो वशिष्ठाद्यैर्मन्त्रपूतेनवारिणा

पुनरन्यं वरं प्रादाद्विरीशः पतये गिराम् । शृण्वाङ्गिरसधर्मात्मन् देवैज्यकुलनन्दन

भवतास्थापितं लिङ्गं सुबुद्धिपरिवर्धनम् । बृहस्पतीश्वर इति ख्यातं काश्यां भविष्यति

गुरुपुण्यसमायोगे लिङ्गमेतत्समर्च्यं च ।

यत्करिष्यन्ति मनुजास्तत्सिद्धिमधियास्यति ॥ ६० ॥

बृहस्पतीश्वरं लिङ्गं मयागोप्यं कलौयुगे । अस्य सन्दर्शनादेवप्रतिभा प्रतिलभ्यते
चन्द्रेश्वराद्दक्षिणतोवीरेशान्नैर्ऋते स्थितम् । आराध्यधिषणेशं वै गुरुलोके महीयते
गुर्वङ्गनागमनजं पापं षण्माससेवनात् । अवश्यं विलयं यातितमःसूर्योदयाद्यथा ॥
अतएव हिगोप्तव्यंमहापातकनाशनम् । बृहस्पतीश्वरंलिङ्गं नाख्येयंयस्यकस्यचित्
इति दत्त्वा वरान्देवस्तत्रैवान्तर्हितो भवत् ।

दुहिणो गुरुणा सादं सेन्द्रोपेन्द्रो बृहस्पतिम् ॥ ६५ ॥

अस्मिन्पुरेभिषिच्यथा विसृज्येन्द्रादिकान् सुरान् ।

अलञ्चकार स्वं लोकं विष्णुनाऽनुमतो द्विजः ॥ ६६ ॥

अगस्त्य उवाच

अतिक्रम्यगुरोर्लोकंलोपामुद्रेऽददर्श सः । शिवशर्मापुरीं सौरैःप्रभामण्डलमण्डिताम्
पृष्टौ तेन चनौतत्र तांपुरींप्रददर्शतुः । द्विजेनद्विजवर्याय गणवर्यां शुचिस्मिते !

गणावूचतुः

मारीचेः कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां द्विजोष्णगुः ।

तस्यभार्याऽभवत्संज्ञा पुत्री त्वष्टुः प्रजापतेः ॥ ६९ ॥

मर्तुरिष्टा ततस्तस्माद्रूपयौवनशालिनी । संज्ञाबभूव तपसा सुदीप्तेन समन्विता
आदित्यस्यहितद्रूपं मण्डलस्यतुतेजसा । गात्रेषुपरिदध्यौ वैनातिकान्तमिदामभवत्
नखस्त्वयं मृतोऽण्डस्थ इतिस्नेहादभाषत् । तदाप्रभृतिलोकेयंमार्तण्ड इतिचोच्यते

तेजस्त्वभ्यधिकं तस्य साऽसहिष्णुर्विचस्वतः ।

येनाऽतितापयामास त्रैलोक्यं तिग्मरश्मिभृत् ॥ ७३ ॥

त्रीण्यपत्यानि भो ब्रह्मन् !सञ्ज्ञायां महसां निधिः ।

आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥ ७४ ॥

वैषस्वतं मनुं ज्यैष्ठ्यमं च यमुनांततः । नातितेजो भयं रूपसोढुंसाऽलंविचस्वतः

मायामयीं ततश्छायां सवर्णां निर्ममे स्वतः ।

प्राञ्जलिःप्रणता भूत्वा सञ्ज्ञां छाया तदाऽब्रवीत् ॥ ७६ ॥

तवाह्लाकारिणीं देवि! शाधि मां करवाणि किम् ।

सञ्ज्ञोवाच ततश्छायां सवर्णे! शृणु सुन्दरि ! ॥ ७७ ॥

अहंयास्यामिसदनं त्वष्टृस्त्वं पुनरत्रमे । भवने वसकल्याणि! निर्विशङ्कं ममाज्ञया
मनुरेष यमावेतौ यमुनायमसंज्ञकौ । स्वापत्यदृष्ट्या द्रष्टव्य मेतद्बालत्रयं त्वया
अनाख्येयमिदं वृत्तं त्वया पत्यौ शुचिस्मिते !

इत्याकर्ण्याऽथ सा त्वार्ष्टीं देवीं छायां जगादह ॥ ८० ॥

आकचग्रहणात्नाहमाशापाञ्च कदाचन । आख्यास्यामि चरित्रंतेयाहिदेवियथासुखम्

इत्यादिश्य सवर्णां सा तथेत्युक्ता सवर्णया ।

पितुरन्तिकमासाद्य नत्वा त्वष्टारमब्रवीत् ॥ ८२ ॥

पितः सोढुं नशक्नोमि तेजस्तेजोनिधेरहम् । तीव्रतस्यार्यपुत्रस्यकाश्यपस्यमहात्मनः

निशम्योदीरितं तस्याः पित्रा निर्भर्त्सिता बहु ।

भर्तुः समीपं याहीति नियुक्ता सा पुनः पुनः ॥ ८४ ॥

चिन्तामवाप महतीं स्त्रीणां धिक् चेष्टितं त्विति ।

निनिन्द बहुधाऽऽत्मानं स्त्रीत्वं चाऽतिनिनिन्द सा ॥ ८५ ॥

स्वातन्त्र्यं न क्वचित्स्त्रीणां धिगस्वातन्त्र्यजीवितम् ।

शैशवे यौवने प्रान्ते पितृभर्तु सुताद्वयम् ॥ ८६ ॥

त्यक्तं भर्तु गृहं मौग्ध्याद्धन्तदुष्टं स्यामया । अविज्ञातापिबेधायामथ पत्युर्निकेतनम्
तत्रास्ति सा सवर्णावैपरिपूर्णमनोरथा । अथावतिष्ठे सात्रैवपित्रानिर्भर्त्सिताप्यहम्
ततोत्तिष्ठञ्चण्डांशुःपित्रोरतिभयङ्करः । अहो यदुच्यते लोकैरुपाख्यानमिदंहितत्
स्फुटं दृष्टं मयाद्येतिस्वकराङ्गारकर्षणम् । नष्टंभर्तु गृहंमौग्ध्याच्छेयोवानपितुर्गृहम्
धयश्च प्रथमं चारु रूपत्रैलोक्यकाङ्क्षितम् । सर्वाभिवचनंस्त्रीत्वं कुलंचातीवनिर्मलम्
पतिश्च तादृक्सर्वज्ञो लोकचक्षुस्तमोपहः । सर्वेषां कर्मणांसाक्षी सर्वःसर्वत्रसञ्चरः

मह्यंश्रेयः कथंवास्यादितिसापरिचिन्त्यच । अगच्छद्ब्रह्मवाभूत्वातपसेपर्यनिन्दिता
उत्तरांश्च कुरुन् प्राप चरन्तीनीरसं तृणम् । व्युत्सेपे च तपस्तीव्रंपतिमाधायचेतसि
तपोबलेन तत्पत्युः सहिष्ये तेज इत्यलम् ॥ ६४ ॥

मन्यमानोथ तां संज्ञां सवर्णायांतदा रविः । सावर्णिं जनयामासमनुमष्टममुत्तमम्
शनैश्चरं द्वितीयञ्च सुतां भद्रां तृतीयकाम् ।

सवर्णास्वेष्वपत्येषु सापत्यात्स्त्रीस्वभावतः ॥ ६६ ॥

घकाराभ्यधिकंस्नेहंनतथापूरुषजेष्वथ । मनुस्तत्क्षान्तवाऽज्येष्टोभक्ष्यालङ्कारलालने
कनिष्ठेष्वधिकं दृष्ट्वा सावर्ण्यादिषु नो यमः ।

कदाचिद्रोषतो बाल्याद्वाविनोऽर्थस्य गौरवात् ॥ ६८ ॥

पदा सन्नर्जयामासयमःसंज्ञासरूपिणीम् । तं शशाप च साक्रोधात्सावर्णेर्जननीतदा
जिघांसतात्वयापाप! मांयद्दृङ्घ्रिसमुद्यतः । अचिरात्तपतत्वेपतवेतिभृशदुःखिता
मातृशापपरित्रस्तो यमोऽपिपितुरग्रतः । शशंस सर्वं तद्बृत्तं रक्षरक्षेत्युवाच च ॥
मात्रा सुनेषु सर्वेषु वर्तनीर्यं समं यतः । तस्यां मयोद्यतः पादो न देहेपरिपातितः ॥
बाल्याद्वा यदिवामोहात्तद्ब्रह्मन्तुमर्हसि । गोपतेशापतोमातुर्मापतत्वद्घ्रिरेष मे

विवस्वानुवाच

अपराधसहस्रेपि जनना न शपेत्सुतम् ।

तस्मात्किमपि भो बाल! भविष्यत्यत्र कारणम् ॥ १०४ ॥

येन त्वां साऽशपत्क्रोधाद्धर्मसंत्यवार्दानम् ।

मातृशापोऽन्यथाकर्तुं न शक्यः केनचित्कश्चित् ॥ १०५ ॥

कृमयो मांसमादाय यास्यन्त्यस्मान्मर्हीतलम् ।

इत्थन्तुचरितार्थः स्याच्छापस्त्रातो भवानपि ॥ १०६ ॥

इति पुत्रसाम्प्रवास्य रविरन्तःपुरं ययौ । चिरमालोक्य तां भार्यामुवाचसवितावचः

अयि भामिनि! बालेषु समेष्वपि कुतस्त्वया ।

विधीयतेऽधिकःस्नेहः सावर्ण्यादिष्वनादिषु ॥ १०८ ॥

नाश्वक्षे यदा साऽथभास्वतेपरिपृच्छते । तदात्मानंसमाधायसोऽह्नासीत्सर्वमेवहि
 ततो भगवते शप्तुमुद्यते साशशंसह । यथावृत्तं तथा तथ्यं तुतोष भगवानपि ॥
 तथ्यभाषणतस्तां तुरविर्हात्वानिरागसम् । न शशापचसंकुद्धोययौचत्वष्टुरन्तिकम्
 त्वष्टापि च यथान्धार्यसान्वयंतिग्मतेजसम् । निर्दग्धुकामं कोपेन प्रागानर्धमुदातदा
 विज्ञाय तदभिप्रायं त्वष्टोवाष्वाऽऽशु तं रविम् ॥ ११२ ॥

त्वष्टोवाच

तवातितेजसो भीता प्राप्योत्तरकुरून् रवे ! । वडवारूपमास्थाय वने चरति शाद्वले
 दृष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्यामार्यचारिणीम् ।

अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसां नियमेन च ॥ ११४ ॥

त्वष्ट्रा यत्क्षितःसूर्यस्तस्यैवानुमतेनच । भ्रमिमारोप्ययत्नेनसोतिकान्ततरोऽभवत्
 लब्धाहोऽथसवितागत्वोत्तरकूरुनरम् । साक्षात्तपोमयींलक्ष्मींचरन्तीञ्चतपोमहत्
 ददर्शवडवारूपां वाडवानलतेजसम् । नीरसानि तृणान्येव वृष्वन्तीं योगमायया
 अनेनसंसविज्ञाय तां त्वाष्ट्रीमश्वरूपिणीम् । स हरिर्हरिरूपेण मुखेन समभावयत्
 त्वरमाणा च परितः परपूरुषशङ्कया । सातभिरवमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वतः
 देवी तस्मादजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ । स्वरूपमनुरूपञ्च धमणिस्तामदर्शयद्
 तुतोष सापि तं दृष्ट्वा मित्रनेत्रमुदावहम् । पतिपतिव्रताकान्तंस्वान्तसन्तापहारिणम्
 निवृत्तिं च परां प्राप दुष्प्रापं तपसाऽथ किम् । तप एव परं श्रेयस्तपएवपरं धनम्
 तप एव हि देवत्वे कारणं परमम्मतम् । शिवशर्मन् ! यदेतद्वै दृश्यते चातिर्दामिमत्
 ज्योतिश्चक्रस्वरूपञ्च व्योमन्युपर्यध एव च । तत्सर्वमिहजानीहिसुमहत्तापसगमहः
 एवं शनैश्चरोज्ज्वे सवर्णायांविवस्वतः । सोऽथवाराणसीगत्वासर्वत्रिदशवन्दिताम्
 तप्त्वातपोऽतिविपुल्लिलङ्गसंस्थाप्यशाङ्करम् । इमंलोकमवापोच्चैर्ब्रह्मवञ्जहरार्धनात्
 शनैश्चरेश्चरं दृष्ट्वा वाराणस्यां सुशोभनम् । शनिवाधा नजायेत शनिवारे तदर्चनात्
 विश्वेशाद्दक्षिणेभागे शुक्लेशादुत्तरेण हि । शनैश्चरेशमभ्यर्च्य लोकेऽत्र परिमोदते ॥
 श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं ब्रह्मपीडा न जायते ।

नोपसर्गभयं तस्य काश्यां निवसतःसतः ॥ १२६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे भीमगुरुशनिलोकवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

सप्तर्षिलोकवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

इति शृण्वन् कथां रम्यां शिवशर्माऽद्य माथुरः ।

मुक्तिपुर्यां सुसंज्ञातो मायापुर्यां गतासुकः ॥ १ ॥

नेत्रयोःप्राघुणीचक्रेततः सप्तर्षिमण्डलम् । ब्रजन्सवैष्णवंलोकमन्तेविष्णुपुरीक्षणात्
उवाचचप्रसन्नात्मास्तुतश्चारणमागर्धः । प्रार्थितोदेवकन्याभिस्तिष्ठतिष्ठेतिचक्षणम्

स्थितासु तासु निःश्वस्य मन्दभाग्या वयं त्विति ।

गतः पुण्यतमंल्लोकानसौ यत्पुण्यवत्तमः ॥ ४ ॥

इति शृण्वन्मुखात्तासां वचनानि विमानगः ।

देवैः कस्यायमतुलो,लोकस्तेजोमयःशुभः ॥ ५ ॥

इतिद्विजवचःश्रुत्वा प्रोचतुर्गणसत्तमौ । शिवशर्माञ्छिवमते सदा सप्तर्षयोमलाः
वसन्तीह प्रजाःस्रष्टुं विनियुक्ताःप्रजासृजा । मरीचिरत्रिपुलहःपुलस्त्यःक्रतुरङ्गिराः
वसिष्ठश्च महाभागोब्रह्मणोमानसाःसुताः । सप्तब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयङ्गताः ।
सम्भूतिरनसूया चक्षमाप्रीतिश्चसन्नतिः । स्मृतिरुर्जाकमादेशोपत्न्योलोकस्यमातरः
एतेषां तपसाघ्नैतर्दायंते भुवनत्रयम् । उत्पाद्य ब्रह्मणा पूर्वमेते प्रोक्ता महर्षयः ॥ १०
प्रजाःसृजतरै पुत्रा! नानारूपाःप्रयत्नतः । ततःप्रणम्यब्रह्माणं तपसे कृतनिश्चयाः ॥११
अविमुक्तं समासाद्य क्षेत्रंक्षेत्रह्यधिष्ठितम् । मुक्तये सर्वजन्तूनामविमुक्तं शिवेनयत् ॥

प्रतिष्ठाप्य च लिङ्गानि ते स्वनाम्नाङ्कितानि च ।

शिवेति परया भक्त्या तेषु रुद्रन्तपो भृशम् ॥ १३ ॥

तुष्टस्तत्तपसा शम्भुः प्राजापत्यपदं ददौ । लिङ्गान्यत्रीश्वरादीनि दृष्ट्वा काश्यां प्रयत्नतः
प्राजापत्येऽत्रनेलोके वसन्त्युज्ज्वलतेजसः । गोकर्णेशम्यसरसः प्रत्यवतीरे प्रतिष्ठितम्
लिङ्गमत्रीश्वरं दृष्ट्वा ब्रह्मतेजो भिवर्धते कर्कोटवाप्या ईशाने मरीचेः कुण्डमुत्तमम् ॥ १६

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या भ्राजते भास्करो यथा ।

मरीचीश्वरसञ्चान्तु तत्र लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥

तल्लिङ्गदर्शनाद्विप्र! मारोर्धलो कमाप्नुयात् । कान्त्यामरीचिमाली च शोभते पुरुषर्षभः
पुलहेशपुलस्त्येशौ स्वर्गद्वारस्य पश्चिमे । तौ दृष्ट्वा मनुजो लोके प्राजापत्ये मर्हायते
हरिकेशवने रम्ये दृष्ट्वा वाङ्मरसेश्वरम् । इह लोके वसेद्विप्र! तेजसां परितृप्तिः ॥ २०
वरणायास्तटे रम्ये दृष्ट्वा घासिष्ठमीश्वरम् । कर्त्वीश्वरञ्च तत्रैव लभते वसतिन्त्विह ॥

काश्यामेतानि लिङ्गानि सेवितानि शुभैः पिभिः ।

मनोऽभिवाञ्छितं दद्युरिह लोके परत्र च ॥ २२ ॥

गणावृक्षतुः

शिवशर्मन्महाभाग! तिष्ठते सात्रसुन्दरी । अरुन्धती महापुण्या पतिव्रतपरायणा
यस्याः स्मरणमात्रेण गङ्गास्नानफलं लभेत् । अन्तःपुरस्वरैर्द्वित्रैः पवित्रैः सहितो विभुः
सदानारायणो देवो यस्याश्चक्रे कथां मुदा । कमलायाः पुरोभागे पातिव्रत्यसुतो पितः
पतिव्रतास्वरुन्धत्याः कमले विमलाशयः ।

यथाऽस्ति न तथाऽन्यस्याः कस्याश्चित्कापि भामिनि ! ॥ २६ ॥

न तद्रूपं न तच्छीलं न तत्कौलीन्यमेव च । न तत्कलासुकौशल्यं पत्युः शुश्रूषणं न तत्
न माधुर्यं न गाम्भीर्यं न चार्यपरितोषणम् ।

अरुन्धत्या यथा देवि ! तथाऽन्यासां क्वचित्प्रिये ! ॥ २८ ॥

धन्यास्ता योषितो लोके सभाग्याः शुद्धबुद्धयः । अरुन्धत्याः प्रसङ्गे यानामपि परिगृह्यते
यदा पतिव्रतानां तु कथास्मद्भवने भवेत् । तदा प्राथमिकीरेखामेषाऽलङ्कुरुते सती ३०

एकोनविंशोऽध्यायः । * ध्रुवप्रतिसुरुच्याऽऽक्रोशावाक्यवर्णनम् * १२३

ब्रुवतोरिति संकथां तथा गणयोर्वैष्णवयोर्मुदावहाम् ।

ध्रुवलोक उपागतस्ततो नयनातिध्यमतध्यवर्जितः ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणवकाशीतिसाहस्र्या संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

पूषार्द्धे सप्तर्विलोकवर्णननामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

ध्रुवलोकवर्णनेध्रुवोपदेशवर्णनम्

शिवशर्मोवाच

तिष्ठन्नेकेन पादेन कोऽयंभ्रमतिस्मत्तमौ ! अनेकरशनाव्यग्रहस्ताप्रोव्यग्रलोचनः ॥ १
त्रिलोकीमण्डपस्तम्भसन्निभोभाभिरावृतः । अतुलंज्योतिषाराशितुलयातुलयन्निव
सूत्रधारइवव्योमव्यायामपरिमापकः । त्रैविक्रमोद्भिदण्डोवा प्रोदण्डो गगनाङ्गणे
अथवाम्बरकासारसारयूपस्वरूपधृक् । कोयं कथयतं त्रैवौकृपया परया मम ॥ ४ ॥
निशम्येति वसस्तस्यवयस्यस्यविमानगौ । प्रणयादाहतुस्तस्मैध्रुवाध्रुवकथांगणौ

गणावचतुः

मनोःस्वायम्भुवस्यासीदुत्तानचरणःसुतः । तस्यक्षितिपतेर्विप्रः द्वौसुतौसम्बभूवतुः
सुरुच्यामुत्तमोज्येष्ठः सुनीत्यांतु ध्रुवोऽपरः । मध्येसभं नरपतेरुपविष्टस्य चंकदा
सुनीत्या राजसेवायैनियुक्तोऽलङ्कृतोऽर्भकः । ध्रुवोधात्रेयिकापुत्रैःसमं चिनयतत्परः
सगतवोत्तानचरणं क्षोणीशं प्रणनामह । द्रष्टोत्तमं तदुत्सङ्गे निविष्टं जनकस्य वै ॥

प्रोच्चसिंहासनस्थस्य नृपतेर्बाल्यघापलात् ।

आरोदुकामस्त्वभवत्सौनीतेयस्तदा ध्रुवः ॥ १० ॥

आरुध्रुमवेक्ष्यामुं सुरचिध्रुवमब्रवीत् । दौर्भंगेय ! किमारोदुमिच्छेरङ्कं महीपतेः ॥
बालबालिशबुद्धित्वाद्भाग्याजठरोद्भव ! अस्मिन् सिंहासनेस्थातुं नत्वयासुकृतंकृतम्

यदि स्यात्सुकृतं तर्हि दुर्भंगोदरगोऽभवः ।

अनेनैवाऽनुमानेन बुध्यस्व स्वाऽल्पपुण्यताम् ॥ ४० ॥

भूत्वा राजकुमारोऽपि नालं कुर्यां ममोदरम् ।

सुकुक्षिजममुं पश्य त्वमुत्तममनुत्तमम् ॥ ४१ ॥

अधिजानुधरजानैर्मानेन परिवृंहितम् । प्रांशोः सिंहासनस्यास्य रुचिश्चेदधिरोहणे
कुक्षिंहित्वा किमवसः सुरवेक्षसुरोचिवम् । मध्येभूपसम्बालस्तयेतिपरिभर्त्सितः
पतन्निपीतबाष्पाभ्वुर्धैर्यात्किञ्चिन्न चोक्तवान् ।

उचिताऽनुचितं किञ्चिन्नोचिवान् सोऽपि पार्थिवः ॥ १७ ॥

नियन्त्रितो महिष्याश्च तस्याः सौभाग्यगौरवात् ।

विसृज्य च सभालोकं शोकं संमृज्य चेष्टितैः ॥ १८ ॥

शेशवैः शिशुर्नत्वा नृपंस्वसदनं ययौ । सुनीतिनीतिनिलयमवलोक्याथ बालकम्
मुखलक्ष्म्यैव चाऽन्नासीद्बुधं वं समवमानितम् ।

अभिसृत्य च तं बालं मूढन्युं पात्राय साऽसकृत् ॥ २० ॥

किञ्चित्परिभ्रानमिव ससान्त्वं परिष्वजे ।

अथ द्रष्टुं सुनीतिं स रहोन्तःपुरवासिनीम् ॥ २१ ॥

दीर्घं निःश्वस्यबहुशो मानुरग्रे रुरोद् ह । सान्त्वयित्वाश्रुनयना वदनं परिमाज्यं च
दुकूलाञ्चलसंपर्कैर्मुदुलैर्मुदुपाणिना । पप्रच्छ तनयं माता वद रोदनकारणम् ॥

विद्यमाने नरपतौ शिशो ! केनाऽपमानितः ॥ २३ ॥

अपोऽद्यसमुपस्पृश्य ताम्रूलं परिगृह्य च । मात्रापृष्टःसोपरोधं ध्रुवस्तां पर्यभाषत ॥
संपृच्छेजननित्वाहंसम्यकशंसममाप्रतः । भार्यात्वेपिचसामान्येकथंसासुरुचिःप्रिया
कथं न भवती मातः!प्रिया क्षितिपतेरसि । कथमुत्तमतांप्राप्त उत्तमः सुरवेः सुतः
कुमारत्वेऽपिसामान्येकथंत्वहमनुत्तमः । कथंत्वंमन्दभाग्यासिसुकुक्षिःसुरुचिःकथम्
कथं नृपासनं योग्यमुत्तमस्य कथंनमे । कथं मे सुकृतं तुच्छमुत्तमस्योत्तमं कथम् ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सुनीतिर्नीतिमच्छिशोः ।

किञ्चिदुच्छ्वस्य शनकैः शिशुकोपोपशान्तये ॥ २६ ॥

स्वभावमधुरां वाणीं वक्तुं समुपश्रुक्रमे । सापन्नं प्रतिघन्त्यत्स्वाराजनीतिविदां वरा
सुनीतिरुवाच

अयि तात महाबुद्धे! विशुद्धेनान्तरात्मना । निवेदयामि ते सर्वंमाऽपमाने मतिक्रथाः
तया यदुक्तं तत्सर्वं तध्यमेव न चान्यथा । सापत्युर्महिषी राज्ञो राज्ञीनामतिबलभा
तया जन्मान्तरे तात! यत्पुण्यं समुपाजितम् ।

तत्पुण्योपचयाद्राजा सुरुच्यां सुरुचिर्भृशम् ॥ ३३ ॥

मादृश्यो मन्दभाग्यायाः प्रमदासुप्रतिष्ठिताः । केवलं राजपत्नीत्ववादस्तासुनतद्बुधिः
महासुकृतसम्भारंरुत्तमश्चोत्तमोदरे । उवास तस्याः पुण्याया नृपसिंहासनोचितः॥
आतपत्रं च चन्द्रामं शुभेचापि चचामरे । भद्रासनंतथोच्छं च सिन्धुराश्चमदोद्गुराः
तुरङ्गमाश्च तुरगास्त्वनाधिव्याधिजीवितम् । निःसपन्नं शुभंराज्यं प्राञ्चंहरिहरार्धनम्
विपुलं चकलाज्ञानमधीतमपराजितम् । तथाजयोरिषड्वर्गंस्वभावात्सास्त्विकीमतिः

दृष्टिः कारुण्यसम्पूर्णा वाणी मधुरभाषिणी ।

अनालस्यं च कार्येषु तथा गुरुजने नतिः ॥ ३६ ॥

सर्वत्र शुचितातात्सा परोपकृतिःसदा । और्जस्वलामनोवृत्तिःसदैवाऽदीनवादिता
सदोर्जरे च पाण्डित्यं प्रागल्भ्यंचरणाङ्गणे । आर्जवं बन्धुवर्गेषु काठिन्यंकयविक्रये
मार्दवं स्त्रीप्रयोगेषु वत्सलत्वं प्रजासु च । ब्राह्मणेभ्यो भयंनित्यं वृद्धवृत्त्युपजीवनम्
वासोभागीरथीतीरे तीर्थचामरणरणे । अपराङ्मुखताऽर्थिभ्यःप्रत्यर्थिभ्योविशेषतः
भोगः परिजनैः साद्धं दानाबन्ध्यदिनागमः ।

विद्याव्यसनिता नित्यं पित्रोरुपस्थितिः ॥ ४४ ॥

यशसः सञ्चयो नित्यं नित्यं धर्मस्य सञ्चयः ।

स्वर्गापवर्गयोः सिद्धिः सदा शीलस्य मण्डनम् ॥ ४५ ॥

सद्विश्च सङ्गतिर्नित्यं मैत्रे च पितृमित्रकैः । इतिहासपुराणानामुत्कण्ठा श्रवणेसदा
चिपद्यपि परं धैर्यं स्थैर्यंसम्पत्समागमे । गार्भरीयं वाग्विलासेषुऔदार्यपात्रपाणिषु

देहे परैकाकृशता तपोभिर्नियमैर्यमैः । परैर्मनोरथफलैः फलन्त्येष तपोद्गमाः ॥४८

तस्मादल्पतपस्त्वाद्भै त्वं चाहं च महामते !।

प्राप्याऽपि राजसाम्निध्यं राजलक्ष्म्या न भाजनम् ॥ ४९ ॥

मानापमानयोस्तस्मात्स्वकृतं कारणंपरम् । स्रष्टापिनापमाष्टं तत्परीष्टेस्वकृतांकृतिम्

माशोचस्त्वमतःपुत्र!दिष्टमिष्टं समर्पयेत् ।

इत्याकर्ण्य सुनीत्यास्तन्महावाक्यं सुनीतिमत् ।

सौनीतियो ध्रुवोवाचमाददे वक्तुमुत्तरम् ॥ ५१ ॥

ध्रुव उवाच

जनयित्रि! सुनीते! मे शृणु वाक्यमनाकुलम् ।

मा बाल इति मत्वा मामधमंस्थास्तपस्विनि !॥ ५२ ॥

यद्यहं मानवे वंशे जातोऽस्म्यत्यन्तपावने । उत्तानपादतनयस्त्वदीयोदरसम्भवः ॥

तप एव हि चेन्मातः कारणं सर्वसम्पदाम् । तत्तदासादितंविद्धि पदमन्यैर्दुःरासदम्

एकमेवहि साहाय्यं कुरु मातरतन्द्रिता । अनुज्ञादानमात्रं च आशीर्भिरभिनन्द्य ॥

सापि ज्ञात्वा महावीर्यं कुमारं कुक्षिसम्भवम् ।

महत्योत्साहसम्पस्या राजमानमुवाच तम् ॥ ५६ ॥

अनुज्ञातुं न शक्ताऽहंत्वामुत्तानशयाङ्गज !। साष्टैकवर्षदेशीयं तथापि कथयाम्यहम् ॥

सपत्नीवाक्यभल्लीभिर्मिश्रेमहति मे हृदि ।

तव बाष्पौघवारीणि न तिष्ठन्ति करोमि किम् ॥ ५८ ॥

तानिमन्येऽत्रमार्गेणस्त्रवन्त्यविरतंशिशो । स्त्रवन्तीश्चचिकीर्षन्तिप्रतिकूलजलाःकिल

त्वदेकतनया तात!त्वदाधारैकजीविता । त्वमङ्गयष्टिरसिमे त्वन्मुखसकलोचना ॥

लब्धोऽसिकतिभिःकष्टैरिष्टाःसंप्रार्थ्यदेवताः । त्वन्मुखेन्दूदयेतात!मन्मनःक्षीरनीरधिः

आनन्दपयसापूर्य कुवाबुद्धेलितो भवेत् । त्वदङ्गसङ्गसम्भूतसुखसन्दोहशीतला ॥

सुखं शये सुशयने प्रावृत्य पुलकाम्बरम् । अपोऽथ समुस्पृश्य ताम्बूलं परिगृह्य च

त्वदास्यस्यौष्ठपुटकदुग्धवार्धिविबर्धिताम् । सुधांसुधांशुवदन!धयन्त्यपिधिनीमिन

त्वदीय शीतलालाप प्राप श्रुतिपथयदा । सपत्नीवाक्यदवथस्तदेव स्यत्सवेपथ ॥

यदङ्गं निद्रासि चिरं ध्यायन्त्यस्मि तदेत्यहम् ।

कदा निद्रादरिद्रोऽसौ भविताऽर्कोदयेऽञ्जवत् ॥ ६६ ॥

यदोपेया गृहानवत्सखेलित्वा बालखेलनै ।

तदाऽनर्घ्याद्यमुत्स्रष्टु स्तनौ स्यातामिवोन्मुखौ ॥ ६७ ॥

यदासौधाद्विनिर्याया पद्मरेखाङ्कितपदम् । प्राणाना ते यियासूनातदा तदवलम्बनम्

यदा यदा बहियासिपुत्र त्रिचतुर पदम् । तदा तदाममप्राण कण्ठप्राघणिकीभवंत्

चित्र पुत्र त्वरयति यातुमेमानसाण्डज । सुधापाराधर इववहिश्रियति त्वयि

अथ तिष्ठन्तु कठिना प्राणा कण्ठाटवीतटे ।

तपस्यन्तोतिसन्तप्तास्तपसेत्वयि यास्यति ॥ ७१ ॥

त्यनुज्ञामनुगम्य जननाचरणाम्बुजौ । क्षण मौलिकजम्बालजडौवृ वाध्रवो ययौ

नयापिधयस्रत्रण सुना या परिगुम्फय च । नेत्रन्दावरजा मालाध्रवस्योपायनीकृता

मात्रा तन्मागरक्षाध तदातदनुर्गीकृता । पररवायप्रसरा स्वाशीवादा परशता

स्वसौधात्सविनिगत्यवालोऽबालपराक्रम । अनुकूलेनमस्तादर्शिताध्वाऽविशद्वनम्

सुमरुत्तृशाखाप्रसारणमिषेणस । कृताहृतिरिव प्रेम्णा वनेन वनमाविशत् ॥

समातृदवतोऽभिज्ञ केवल राजवत्मनि । नवेदकाननाध्वान क्षणदध्यौनृपात्मज

यावदुन्मीलयनयने पुर पश्यतिसध्रुव । तावद्दश सप्तर्षीनतर्कितगतीन्वने ॥ ७८ ॥

बालिशेष्वसहायेषु भवेद्भाग्यसहायकृत् । अरण्यान्वारणगेहेततोभाग्य हि कारणम्

क राजतनयोबालो गहन क च तद्वनम् । बलात्स्वसात्प्रकृवत्यै नमस्तभवित्वयते

यत्रयस्यहियद्वाव्य शुभवाऽशुभमेवच । आकृष्यभाविनी रज्जुस्तत्रतस्यहिदापयेत्

अन्यथा विद्धात्येप मानघो बुद्धिधैभवात् ।

भगवत्या भवित्र्याऽसौ विदध्याद्विधिरन्यथा ॥ ८२ ॥

न वयो न च वचिष्य न चित्र विदधे हितम् ।

न बल नोद्यम पु सा कारण प्राकृत कृतम् ॥ ८३ ॥

अथ दृष्ट्वा ससप्तर्षीन् सप्तसप्त्यतितेजसः । भ्राम्यसूत्रैरिवाकृष्योपनीतान् प्रमुमोदह
तिलकाङ्कितसद्मालान् कुशोपप्रहिताङ्गुलीन् । कृष्णाजिनोपविष्टांश्चयज्ञसूत्रैरलंकृतान्
साक्षसूत्रकरान् किञ्चिद्विनिमीलितलोचनान् ।

सुधीनसूक्ष्मकाषायवासःप्राघरणान्वितान् ॥ ८६ ॥

अकाण्डेऽपि महाभागान् मिलितान् सप्तनीरधीन् ।

चित्रंविपद्विनिर्मग्नानुद्विधीषूनिव प्रजाः ॥ ८७ ॥

उपगम्य चिनम्रांसः प्रबद्धकरसम्पुटः । ध्रुवोविज्ञापयाञ्चक्रे प्रणम्यललितं वचः ॥

ध्रुव उवाच

अवेत मां मुनिवराः! सुनीत्युदरसम्भवम् । उत्तानपादतनयं ध्रुवंनिर्विण्णमानसम्
इदं वनमनुप्राप्तं सनाथं युष्मदङ्घ्रिभिः । प्रायोनभिन्नसर्वत्र महद्दुर्ध्युपितमानसम्
ते द्रष्टोर्जस्वलंबालं स्वभावमधुराकृतिम् । अनर्घ्यनयनेपथ्यं मृदुगम्भीरभाषिणम्
उपोपवेश्य शिशुकं प्रोचुर्वं विस्मिता भृशम् ।

अहो बाल! विशालाक्ष ! महाराजकुमारक ! ॥ ९२ ॥

विचार्यापि न जानीमो वदनिर्वेदकारणम् । अद्यतेह्यर्थचिन्तानो कापमानः प्रसूते
नीरुक्शरीरसम्पत्तिनिर्वेदे किन्नु कारणम् ।

अनघाप्ताभिलाषाणां वैराग्यं जायते नृणाम् ॥ ९४ ॥

सप्तद्वीपपतेराज्ञःकुमारस्त्वंतथा कथम् । स्वभावभिन्नप्रकृतौलोकेऽस्मिन्नमनोगतम्
अवगन्तुं हि शक्येत यूनोवृद्धस्यवाशिषोः । इतिध्रुत्वावचस्तेषां सहजप्रेमनिर्भरम्
वाचं जग्राह स तदा शिशुः प्रांशुमनोरथः ।

ध्रुव उवाच

प्रेषितो राजसेवार्थं जनन्याऽहं मुनीश्वराः ॥ ९७ ॥

राजाङ्कमारुरुक्षुर्हि सुरक्ष्या परिमत्सितः । उसमं स्रोत्तमीकृत्यमाञ्च प्रममातरं तथा
धिककृत्यप्रशशंसस्वनिर्वेदकारणं त्विदम् । निशम्येतिशिशोर्वाक्यंपरस्परमवेक्ष्यते
ज्ञात्रमेव शशंसुस्तदहोबालेऽपि न क्षमा ॥ १०० ॥

ऋषय ऊचुः

किमस्माभिरहो कार्यं कस्तवास्तिमनोरथः । ज्ञातोभवतुतावत्सनःश्रवणोचरीकुरु

ध्रुव उवाच

मुनयोमम योबन्धुरुत्तमश्चोत्तमोत्तमः । पित्रादत्तञ्च सोऽध्यास्तांतद्गद्रासनमुत्तमम्
भवत्कृतं हि साहाय्यमेतदिच्छामिसुवताः । प्रायोज्ञानेन बालत्वादुपदेशस्तदुच्यताम्
अनन्यनृपभुक्तं यद्यदन्येभ्यः समुच्छ्रितम् । इन्द्रादिदुरवापं यत्कथं लभ्यं दुरासदम्
पित्रोत्सृष्टं न काङ्क्षामिकाङ्क्षामिस्वभुजार्जितम् । मनोरथपथातीतं भवेद्यत्पितुरप्यहो
पितृसम्पत्तिभोक्तारः प्रायशो नयशोधनाः । नरोत्तमास्तुते ज्ञेयायेपित्राधिक्यदर्शिनः

उपार्जितं हि पित्रा ये नाशयन्ति यशःश्रुतम् ।

धनं निधनमेवास्तु तेषां दुर्वृत्तचेतसाम् ॥ १०७ ॥

इतिश्रुत्वावचस्तस्य मुनयःसुनयोजितम् । यथार्थमेवंप्रत्युचुर्मरीच्याद्यास्तथाध्रुवम्

मरीचिरुवाच

अन च्छिताच्युतपदः पदमापद्यते कथम् । यथातथात्वमात्थाङ्गु! नातर्ध्यांकथयाम्यहम्

अत्रिरुवाच

अनास्वादितगोविन्दपादाभ्रुज्जरोरसः । मनोरथपथातीतं स्फीतं नाकलयेत्पदम्

अङ्गिरा उवाच

अदवीयःपदं तस्यसर्वासं सम्पदामिह । कमलाकान्तकान्ताङ्घ्रिकमलेयःसुशीलयेत्

पुलस्त्य उवाच

यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसन्ततिः । परमान्तमवाप्नोतिसविष्णुःसर्वदो ध्रुवः

पुलह उवाच

यदाहुःपरमं ब्रह्म प्रधानपुरुषात्परम् । यन्मायया ततं सर्वं सर्वं दास्यति सोऽच्युतः

क्रतुरुवाच

यो यज्ञपुरुषो विष्णुर्वेदवेद्यो जनार्दनः । अन्नरात्माऽस्यजगतः सतुष्टःकिन्नयच्छति

वसिष्ठ उवाच

यद्भ्रून्तर्तनवर्तिन्यः सिद्धयोऽष्टौ नृपात्मजः । तमाराध्यहृषीकेशमपवर्गोऽप्यदूरतः

ध्रुव उवाच

सत्यमुक्तं मुनीशाना! विष्णोराराधनं प्रति ।

कथं वा भगवानिज्यः स विधिश्चोपदिश्यताम् ॥ ११६ ॥

मुनय ऊचुः

तिष्ठतागच्छतावापि स्वपता जाग्रता तथा । शयानेनोपविष्टेनजप्योनारायणः सदा
द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च । ध्यायंश्चतुर्भुजंविष्णुं जप्त्वासिद्धिनकोगतः

अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ।

क्षणं सर्वात्मकं पश्यन् को न सिद्ध्यति भूतले ॥ ११६ ॥

पुत्रान् कलत्रमित्राणि राज्यं स्वर्गापवर्गकम् ।

वासुदेवं जपन्मर्त्यः सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ १२० ॥

वासुदेवजपासक्तानपिपापकृतोजनान् । नोपस्पृशन्ति वैचिघ्ना यमदूताश्च दारुणाः
पितामहेन तेष्वेव महामन्त्रउपासितः । मनुनाराज्यकामेन वैष्णवेन महर्द्धिना ॥१२२
त्वमप्येतेन मन्त्रेण वासुदेवपरोभव । यथाभिलषितामृद्धिक्षिप्रमाप्नुहि सत्तम ! ॥

इत्युक्तवान्तर्हिताःसर्वे महात्मानोमुनीश्वराः । वासुदेवमनाभूत्वाध्रुवोऽपितपसंगतः

इति श्रीस्कान्देमहापुराणपकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशखण्डे

पूर्वार्द्धे ध्रुवलोकवर्णने ध्रुवोपदेशोनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

विंशोऽध्यायः

ध्रुवाख्यानेभगवद्दर्शनवर्णनम्

गणावूचतुः

औत्तानपादिर्निर्गत्य ततःकाननतोद्विज! । रम्यं मधुघनंप्राप यमुनायस्तटे महत् ॥

आद्यं भगवतः स्थानं तत्पुण्यं हरिमेधसः ।

पापोऽपि जन्तुस्तत्राप्य निष्पापो जायते ध्रुवम् ॥ २ ॥

जपन्स वासुदेवाख्यं परं ब्रह्म निरामयम् ।

अपश्यत्तन्मयं विश्वं ध्यानस्तिमितलोचनः ॥ ३ ॥

हरिर्हरित्सु सर्वासु हरिर्हरिमराखिषु । शिषामृगमृगेन्द्रादिरूपः काननगो हरिः ॥

जले शालूरकुर्मादिरूपेण भगवान् हरिः । हरिरश्वादिरूपेण मन्दुरास्वपि भूभुजाम्

अनन्तरूपः पाताले गगनेऽनन्तसञ्चकः ।

एकोप्यनन्ततां यातो रूपमेदैरनन्तकैः ॥ ६ ॥

देवेषु यो वसेन्नित्यं देवानां वसतिर्हियः । स वासुदेवःसर्वत्र दीव्येद्यद्वासनावशात्

विप्लव्याप्तावयं धातुर्यत्रसार्थकताङ्गतः । विष्णुनामस्वरूपेहि सर्वव्यापनशीलिनि

सर्वेषाञ्च हृषीकाणामीशनात्परमेश्वरः ।

हृषीकेश इति ख्यातो यः स सर्वत्र संस्थितः ॥ ६ ॥

नच्यवन्तेऽपि यद्भक्तमहतिप्रलयेसति । अतोऽच्युतोऽखिलेलोकेसएकःसर्वगोऽव्ययः

इदं चराचरं विश्वं यो बभार स्वलीलया ।

भृत्या स्वरूपसम्पत्त्या सोऽत्र चिश्चम्भरोऽखिलम् ॥ ११ ॥

तस्येक्षणेसमीक्षेतेनान्यद्विष्णुपदादृते । निरीक्ष्यः पुण्डरीकाक्षो नान्योनियमतो ह्यतः

नान्यशब्दग्रहौ तस्य जातौ शब्दग्रहावपि । विना मुकुन्दगोविन्द!शमोदरबतुर्भुज!

गोविन्दचरणार्थां तत्प्रियं कर्म वै विना । शङ्खचक्राङ्कितौ तस्य नान्यकर्मकरो करो

निर्हन्द्द्वचरणद्वन्द्वं तन्मनो मनुते हरैः । हित्वाऽन्यन्मननं सर्वं निश्चलत्वमघाप ह ॥
चरणौ विष्णुशरणौ हित्वानारायणाङ्गणम् । तस्य नोचरतोऽन्यत्रचरतो विपुलन्तपः
घाणी प्रमाणीक्रियते गोविन्दगुणघर्षने ।

जोधं समासता तेन महासारं तपस्यता ॥ १७ ॥

नितान्तकमलाकान्तनामधेयसुधारसम् । रसयन्ती न रसनातस्यान्यरससस्पृहा ॥
श्रीमुकुन्दपदद्वन्द्वपद्मामोदप्रमोदितम् । गन्धान्तरं न तद्घ्राणं परिजिघ्रत्यशीघ्रगम्
त्वगिन्द्रियं मधुरिपोः परिपृश्य पदद्वयम् ।

सर्वस्पर्शसुखं प्राप तस्य भूजानिजन्मनः ॥ २० ॥

शब्दादिविषयाधारं सारं दामोदरं परम् । ध्रुवेन्द्रियाणि संप्राप्यकृतार्थान्यभवंस्तदा
लुप्तानि सर्वतेजांसि तत्तपस्तपनोदये । चन्द्रसूर्यान्लक्षाणां प्रदीपितजगत्त्रये ॥
इन्द्रधन्द्राग्निवरुणसमीरणघनाधिपाः । यमनैर्ऋतमुष्याश्च जाताः स्वपदशङ्कितः

वैमानिकास्तथाऽन्येपि वसुमुष्या दिवोकसः ।

ततो ध्रुवात्समुत्त्रेसुः स्वाधिकारैर्धिताधयः ॥ २४ ॥

यत्र यत्र ध्रुवः पादं मिनोति पृथिवीतले । धरा तस्यभराकान्ता विनमेत्त्र तत्र वै
अहो तदङ्गसङ्गीनि त्यक्त्वा जाड्यं जलान्यपि ।

रसवन्ति पदस्थानि स्फुरन्त्यन्यत्र तद्वयात् ॥ २६ ॥

यावन्ति विष्वक्तेजांसि सिद्धरूपगुणानि च ।

नेत्रातिथीनि तावन्ति तत्तपस्तेजसाऽभवन् ॥ २७ ॥

अहो निजगुणस्पर्शः सततं मातरिश्वना । दूरदेशान्तरस्थोपितस्वचोचिषयीकृतः ॥
व्योम्नापि शब्दगुणिनाध्रुवाराधनद्विना । शब्दजातस्त्वशेषोपि तत्कर्णशरणीकृतः
आराधितोऽनुविषसं सभूतैरपि पञ्चभिः ।

तप एव परं मेने गोविन्दार्पितमानसः ॥ ३० ॥

कौस्तुभोद्वासितहृदः पीतकौशेयवाससः । ध्यानात्तेजोमयं विश्वंतेनैक्षि नृपसुनुना
महत्त्वतातिमहती चिन्तासा तत्तपोभयात् । मत्पदं चेदाकाङ्क्षिष्यदहरिष्यद्भुवंधुवः

समर्थस्त्वप्सरोवर्गो नियन्तुं यमिनां यमान् ।

स तु यूनि प्रभवति नाऽत्र बाले करोमि किम् ॥ ३३ ॥

तपस्विनान्तपोहन्तुं द्वी मत्साहाय्यकारिणौ ।

कामक्रोधौ न तावस्मिन् प्रभवेतां शिशौ ध्रुवे ॥ ३४ ॥

एकएव किलोपायो बाले मे प्रभविष्यति । भूतालीं भीषणाकारांप्रहिणोमीहतद्विष्ये

बालत्वाद्भीषितो भूतैस्तपस्त्यक्ष्यत्यसौ ध्रुवम् ।

इति निश्चित्य भूतालीं प्रेषयामास वासवः ॥ ३६ ॥

भल्लूकाकारसर्वाङ्ग उद्गलम्बशिरोधरः । कश्चिद्दुर्दर्शदशनस्त्वभ्यधावत्तमर्मकम् ॥

तंव्याघ्रवदनः कश्चिद्ब्रह्मादाय विकटाननम् । द्विपोच्छ्वेदहसंस्थानो मुहुर्गर्जनसमभ्यगात्

रयात्तुमांसकं भुञ्जन् कश्चिद्विकटदंष्ट्रकः । रोषात्तमभिदुद्राघ दृष्ट्वा सन्तर्जयन्निष ॥

अतितीक्ष्णैर्विषाणाप्रैस्तटानुच्चान्विदारयन् ।

खराग्रैर्दलयन् भूमिं महोक्षोऽभिजगर्ज तम् ॥ ४० ॥

कश्चिद्धि पन्नगीभूयफटाटोपभयानकः । अतिलोलद्विरसनः पुरुफूर्जं निकषा च तम्

कश्चिच्च महिषाकारः क्षिपञ्छङ्गाप्रतो गिरीन् ।

लाङ्गूलताडितधरः श्वसन् वेगात्तमाप्तवान् ॥ ४२ ॥

कश्चिद्रावानलालीढखर्जूरद्रुमसन्निभम् । विभ्रदूरुद्वयं भूतोव्यात्तास्यस्तमभीषयत्

मौलिजैरभ्रसङ्घर्षं कुर्वन् दीर्घकृशोदरः । निमग्नपिङ्गनयनः कश्चिद्भीषयति स्म तम् ॥

कृपाणपाणिर्भग्नास्यो वामहस्तकपालधृत् ।

प्रचण्डं क्ष्वेडयन्कश्चिदभ्यधावत्तमर्मकम् ॥ ४५ ॥

विशालशालमादाय कुर्वन्किलकिलारवम् । कश्चित्तमभितोयातिकालोदण्डधरोयथा

तमः सङ्केतसदनं व्याघ्रं वै वदनं महत् । कृतान्तकन्दराकारं विभ्रत्कश्चित्तमभ्यगात्

उल्लूकाकारतां कृत्वा फूत्कारैरतिदारुणैः ।

हृदयाकम्पनैः कश्चिद्भीषयामास तं ध्रुवम् ॥ ४८ ॥

यक्षिणी काचिदानीय रुदन्तं कस्यचिच्छिशुम् ।

अपिबद्गुधिरं कोष्ठाब्जलादास्थिमृणालवत् ॥ ४६ ॥
 पिपासिताऽद्य रुधिरं तेऽपि पास्याम्यहं ध्रुव !।
 यथास्य बालस्य तथा र्ध्वित्वाऽस्थीनि घादिनी ॥ ५० ॥
 आनीय तृणदारुणि परिस्तीर्य समन्ततः ।
 दावाग्निं ज्वालयायास काचिद्वात्याविधधितम् ॥ ५१ ॥
 वेतालीरूपमास्थाय भङ्क्त्वा काचिन्नरुन् गिरीन् ।
 हरोध गगनाध्वानं कम्पयन्ती च तं भृशम् ॥ ५२ ॥

अन्यासुनीतिरूपेणतममिप्रेक्ष्य दूरतः । हरोदातीघदुःखार्ता वक्षोघातं मुहुर्मुहुः ॥
 उवाच च वचश्चाटुबहुमायाविनिर्मितम् । कारुण्यपूर्णघात्सत्यमतीघातन्वतीसती
 त्वदेकशरणां वत्स! वतमृत्युजिघांसति । रक्ष रक्षगतासुं मां शरणागतवत्सल !॥
 प्रतिग्रामं प्रतिपुरं प्रत्यध्वं प्रत्तिकाननम् । प्रत्याश्रमं प्रतिगिरिं श्रान्तात्वद्दीक्षणातुरा
 यदाप्रभृति रेवाल! निरगात्तपसे भवान् ।

तदेव दिनमारभ्य निर्गताऽहं त्वदीक्षणे ॥ ५७ ॥

तैस्तैःसपत्नीदुर्वाक्यैर्दुनोषित्वंयथार्भक!। तथाऽहमपिदूनास्मिनितरांतद्वच्चोऽग्निना
 न निद्रामि न जागमि न श्नामि न पिबाम्यहम् ।

ध्यायामि केवलं त्वाऽहं योगिनीव चियोगिनी ॥ ५६ ॥

निद्रादरिद्रनयना स्वप्नेऽपि न तवाननम् । आनन्दिसर्वथा यन्मेमन्दभाग्याचिलोक्ये
 त्वदाननप्रतिनिधिर्विधुर्विधुरया मया । उदित्वरोपि नालोकि तापं वैत्यक्तुकामया
 त्वादालापसमालापं कलयन् किल काकलीम् ।

कोकिलोऽपि मयाऽऽकर्णं नालकाकीर्णकर्णया ॥ ६२ ॥

त्ववङ्गसङ्गमधुरो ध्रुव धूषितया मया । नानिलोपिमयालिङ्गि कचिद्विश्रान्तयाभृशम्
 केदेशाः काञ्चसरितःकैशैलास्त्वत्कृतेध्रुव !। मयाचरणचारिण्याराजपत्न्यानलङ्किताः
 अ ध्रुवं सर्वमेवैतत्पश्यन्त्यन्धीकृताऽस्म्यहम् ।

धार्त्रीं त्रायस्व मां पुत्र! प्राप्य त्वं मेऽन्धयष्टिताम् ॥ ६५ ॥

मृदुलानितवाङ्मनिक्वेमानि क तपस्त्विदम् । परुषं पुरुषैः साध्यंपरुषाङ्गैर्नरर्षभ ॥
अनेन तपसा वत्स! त्वयाऽऽप्यंकिमनेनसा । धराधीशतनूजत्वावधिकं तद्वदाधुना
अनेन वयसा बालखेलनीयंत्वयाऽनिशम् । बालकीडनकैरन्यैःसवयःशिशुभिःसमम्
ततः कौमारमासाद्यवयोऽभिव्यनशीलिना । भवतासर्वविद्यानांभाव्यं वै पारदृश्वना
वयोऽथ वतुरं प्राप्य योषास्त्रक्वन्दनादिकान् ।

निर्वेक्ष्यसि बहून् भोगानिन्द्रियार्थान्कृतार्थयन् ॥ ७० ॥

उत्पाद्याथ बहून्पुत्रान्गुणिनोधर्मवत्सलान् । परिसंक्रामितश्रीकस्तेष्वधोत्वंतपश्चर
इदानीमेव तपसिबाल्येवयसिकः ध्रमः । पादाङ्गुष्ठकरीषाग्निः कदामौलिमवाप्स्यति
विपक्षपरिभूतेन हृतमानेन केनचित् । परिभ्रष्टश्रिया वापितसव्यं तेषुकोभवान् ॥
हृतमानेन तप्तव्यं निशाम्येतिवचोऽधु वः । दीर्घमुष्णं हितिःश्वस्यपुनर्दध्यौहरिहृदि
जनयित्रीमनाभाष्य भूतभीर्तिविहाय च । ध्रुवोऽच्युतध्यानपरः पुनरेव बभूव ह ॥
सापिभूतावलीभीर्ति बहुभीषणभूषणा । दर्शयन्ती तममितोऽद्राक्षीच्चक्रंसुदर्शनम्
परितः परिवेषामं सूर्यस्योच्चैः स्फुरत्प्रभम् ।

रक्षणाय च रक्षोभ्यस्तस्याधोक्षजनिर्मितम् ॥ ७१ ॥

भूतावली तमालोक्य स्फुरच्चक्रंसुदर्शनम् । उवालामालाकुलं तीव्ररक्षन्तंपरितोऽध्वम्
अतीवनिष्कम्पहृदं गोविन्दार्पितचेतसम् । तपोङ्कुरमिधोद्विद्य मेदिनीं समुद्रिवरम्
सापिप्रत्युतभीता तं ध्रुवं ध्रुवविनिश्चयम् । नमस्कृत्य यथायातं यातान्यर्थमनोरथा
गर्जत्कादम्बिनीजालं व्योम्निवै व्याकुलं यथा ।

वृथा भवति संप्राप्य मनागनिललोलताम् ॥ ८१ ॥

अथ जम्भारिणासाध्वभीताःसर्वेदिवौकसः । संमन्थयत्वरिताजमुर्बह्याणंशरणंद्विज
नत्वा विज्ञापयामासुः परिष्टुत्यपितामहम् । वधोऽवसरमालोक्यपृष्टागमनकारणाः

देवा ऊचुः

धातरुत्तानपादस्य तनयेन सुवर्षसा । तपता तापिताः सर्वे त्रिलोकीतलवासिनः
सम्यक् संविद्यहे तात! ध्रुवस्य न मनीषितम् ।

पदं परिजिहीर्षुः स कस्याऽस्मासु महातपाः ॥ ८५ ॥

इति विज्ञापितोद्देशैर्विहस्य चतुराननः । प्रत्युवाचायतान्सर्धान्भ्रुवतो भीतमानसान्
ब्रह्मोवाच

नमेतव्यसुरास्तस्माद्भ्रुवाद्भ्रुवपदैविणः । व्रजन्तु विज्वराःसर्वेनसवः पदमिच्छति
नतस्माद्गवद्भ्रुकादुभेतव्यंकेनचित्कचित् । निश्चितंविष्णुभक्तायेनतेस्युःपरतापिनः
आराध्य विष्णुं देवेशं लब्ध्वा तस्मात्स्वकाङ्क्षितम् ।

भवतामपि सर्वेषां पदानि स्थिरयिष्यति ॥ ८६ ॥

निशम्येति च गीर्वाणाः प्रणीतं ब्रह्मणा वचः ।

प्रणिपत्य स्वधिष्ण्यानि प्रहृष्टाः परिव्रजुः ॥ ९० ॥

अथ नारायणोद्देशस्तं दृष्ट्वा दृढमानसम् । अनन्यशरणं बालं गत्वाताक्षर्यरथोऽब्रवीत्
श्रीविष्णुरुवाच

प्रसन्नोऽस्मिमहाभाग!वरंवरयसुव्रत !। तपसोऽस्मान्निवर्तस्वचिरंखिन्नोऽसिबालक
वचोऽमृतं समाकर्ण्य पर्युन्मील्यविलोचने ।

इन्द्रनीलमणिज्योतिः पटलीपर्यलोकयत् ॥ ९३ ॥

प्रत्यप्रचिकसन्नीलोत्पलानानिकुरम्बकैः । प्रोत्कुलितांसमन्ताश्च रोदसीसरसीमिव
लक्ष्मीदेवीकटाक्षौघैः कटाक्षितमिवाखिलम् ।

ध्रुवस्तदा निरक्षिष्ट द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ ९५ ॥

प्रोद्यत्कादम्बिनीमध्यविद्यद्ग्रामसमानरुक् ।

पुरः पीताम्बरःकृष्णस्तेन नेत्रातिथीकृतः ॥ ९६ ॥

नमोनिकषपाषाणोमेरुकाञ्चनरेखितः । यथातथाध्रुवेषैश्चि तदा गरुडवाहनः ॥ ९७

सुनीलगगनं यद्भद्रभूषितन्तु कलावता । पीतेन वाससायुकं स ददर्श हरितदा ॥

दण्डवत्प्रणिपत्याथ परितः परिलुठ्य च । करोद् दृष्ट्वेवचिरं पितरं दुःखितःशिशुः
नारदेन सनन्देन सनकेन सुसंस्तुतः । अन्यैः सनत्कुमाराद्यैर्योगिभिर्योगिनां वरः ॥

कारुण्यवाष्पनीरार्द्रपुण्डरीकविलोचनः । ध्रुवमुत्थापयाञ्चके चक्रीधृत्वा करेण तम्

हरिस्तु परिपस्पर्शं तदङ्गं धूलिभ्रसरम् । कराभ्यां सुकठोराभ्यां नित्यं शस्त्रपरिग्रहात्
स्पर्शनाद्देवदेवस्य सुसंस्कृतमयी शुभा ।

षार्णा प्रवृत्ता तस्याऽऽस्यात्पुष्टावाऽथ ध्रुवो हरिम् ॥ १०३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वाद्धे ध्रुवाख्याने भगवद्दर्शननामविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

ध्रुवकृताभगवत्स्तुतिवर्णनम्

ध्रुव उवाच

नमो हिरण्यगर्भाय सर्वसृष्टिविधायिने । हिरण्यरेतसे तुभ्यं सुहिरण्यप्रदायिने ॥
नमो हरस्वरूपाय भूतसंहारकारिणे । महाभूतात्मभूताय भूतानां पतये नमः ॥
नमः स्थितिकृते तुभ्यं विष्णवे प्रभविष्णवे । तृष्णाहराय कृष्णाय महाभारसहिष्णवे
नमो दैत्यमहारण्यदाघबह्विस्वरूपिणे । दैत्यद्रमकुठाराय नमस्ते शाङ्गपाणये ॥ ४ ॥
नमः कौमोदकीव्यग्रकराग्राय गदाधर ! । महादनुजनाशाय नमो नन्दकधारिणे
नमः श्रृापतये तुभ्यं नमश्चक्रधराय च । धराधराय चाराहरूपिणे परमात्मने ॥
नमः कमलहस्ताय कमलावल्लभाय ते । नमो मत्स्यादिरूपाय नमः कौस्तुभक्षसे
नमो वेदान्तवेद्याय नमः श्रीवत्सधारिणे । नमोगुणस्वरूपाय गुणिने गुणवर्जिते
नमस्ते पद्मनाभाय पाञ्चजन्यधराय च । वासुदेव! नमस्तुभ्यं देवकीनन्दनाय च ॥
प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः । नमः कंसचिनाशाय नमश्चाणूरमर्दिने ॥
दामोदरहृषीकेश! गोविन्दाच्युतमाधव ! । उपेन्द्रकैटभारते! मधुहन्तरधोक्षज ! ॥ ११
नारायणाय नरकहारिणे पापहारिणे । वामनाय नमस्तुभ्यं हरये शौरये नमः ॥ १२ ॥
अनन्ताय नमस्तुभ्यमनन्तशयनाय च । रुक्मिणीपतये तुभ्यं रुक्मिप्रमथनाय च

वैद्यहन्त्रे नमस्तुभ्यं दानवारं सुरारथे । मुकुन्दपरमानन्दनन्दगोपप्रियाय च ॥ १४
 नमस्ते पुण्डरीकाक्ष! दनुजेन्द्रनिवृद्धन !। नमोगोपालरूपाय श्रेणुवादनकारिणे ॥ १५
 गोपीप्रियाय केशिन्ने गोवर्धनधराय च । रामाय रघुनाथाय राघवाय नमो नमः ॥
 रावणारे! नमस्तुभ्यं विभीषणशरण्यद !।

भजाय जयरूपाय रणाङ्गणविचक्षण !॥ १७ ॥

क्षणादिकालरूपाय नानारूपाय शार्ङ्गिणे । गदिने चक्रिणे तुभ्यं दैत्यचक्रविमर्दिने
 बलाय बलभद्राय बलारातिप्रियाय च । बलियज्ञप्रमथन! नमोभक्तवरप्रद! ॥ १६ ॥
 हिरण्यकशिपोर्वक्षोविदारणरणप्रिय ! । नमोब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥
 नमस्तेधर्मरूपाय नमःसस्वगुणाय च । नमः सहस्रशिरसे पुरुषाय पराय च ॥ २१
 सहस्राक्ष! सहस्राङ्घ्रि! सहस्रकिरणाय च । सहस्रमूर्त्ते! श्रीकान्त ! नमस्तेयज्ञपूरुष!
 वेदवेद्यस्वरूपाय नमो वेदप्रियाय च । वेदाय वेदगदिने सदाचाराध्वगामिने ॥
 वैकुण्ठाय नमस्तुभ्यं नमो वैकुण्ठवासिने । विष्टरध्रवसे तुभ्यं नमो गरुडगामिने
 विष्वक्सेन! नमस्तुभ्यं जगन्मयजनार्दन !। त्रिविक्रमाय सत्याय नमःसत्यप्रियाय च
 केशवाय नमस्तुभ्यं मायिने ब्रह्मगामिने । तपोरूपाय तपसां नमस्ते फलदायिने
 स्तुत्याय स्तुतिरूपाय भक्तस्तुतिरताय च । नमस्ते श्रुतिरूपाय श्रुत्याचारप्रियाय च
 षण्डजाय नमस्तुभ्यं स्वेदजाय नमोऽस्तु ते । जरायुजस्वरूपाय नमउद्विज्जरूपिणे
 देवानामिन्द्ररूपोऽसि ग्रहाणामसि भानुमान् ।

लोकानां सत्यलोकोऽसि सिन्धुना क्षीरसागरः ॥ २६ ॥

सुरापगाऽसि सरितां सरसां मानसं सरः ।

हिमघानसि शैलानां धेनूना कामधुम्भवान् ॥ ३० ॥

धानूनां हाटकमसि स्फटिकक्षोपलेष्वसि । नीलोत्पलं प्रसूनेषु वृक्षेषु तुलसीभवान्
 सर्वपूज्यशिलानां वै शालग्रामशिला भवान् ।

मुक्तिक्षेत्रेषु काशी त्वं प्रयागस्तीर्थपङ्क्तिषु ॥ ३२ ॥

वर्णेषु श्वेतवर्णोऽसि द्विपदां ब्राह्मणो भवान् ।

गरुडोऽस्यण्डजेष्वीश ! व्यवहारेषु धाम्भवान् ॥ ३३ ॥

वेदेषूपनिषद्रूपो मन्त्राणां प्रणवोह्यसि । अक्षराणामकारोसि यज्वनां सोमरूपधृक्
प्रतापिनामग्निरसि क्षमाऽसि त्वं क्षमावताम् ।

दातृणामसि पर्जन्यः पवित्राणां परो ह्यसि ॥ ३५ ॥

घापोसिसर्वशस्त्राणांवातोवेगवतामसि । मनोऽसीन्द्रियवर्गेषु निर्भयाणां करोह्यसि
व्योम व्याप्तिमतां त्वं वै परमात्माऽसि चात्मनाम् ।

सन्ध्योपास्तिर्भवान् देव सर्वनित्येषु कर्मसु ॥ ३७ ॥

क्रतूनामश्वमेधोसि दानानामभयंभवान् । लाभानां पुत्रलाभोसिवसन्तस्त्वमृतुष्वहो
युगानां प्रथमोऽसि त्वं तिथीनान्त्वं कुह्यसि ।

पुण्योऽसि नक्षत्रगणे संक्रमः सर्वपर्वसु ॥ ३९ ॥

योगेषुव्यतिपातस्त्वं तृणेषुहिकुशोभवान् । उद्यमानां हि सर्वेषां निर्वाणं त्वमसि प्रभो !
सर्वांसामिह बुद्धीनां धर्मबुद्धिर्भवानज । अश्वत्थः सर्ववृक्षेषु सोमवल्लीलतासु च
प्राणायामोऽसि सर्वेषु साधनेषु शुचिष्वहो । सर्वदः सर्वलिङ्गेषु श्रीमान्विश्वेश्वरो भवान्
मित्राणां हि कलत्रन्त्वं धर्मस्त्वं सर्वबन्धुषु ।

त्वत्तो नान्यज्जगत्यस्मिन्नारायणधराधरे ॥ ४३ ॥

त्वमेवमातात्वंतातस्त्वंसुहृत्त्वंमहाधनम् । त्वमेवसौख्यसम्पत्तिस्त्वमायुर्जीवनेश्वरः
सा कथायत्रतेनामतन्मतो यस्त्वदर्पितम् । तत्कर्म यस्त्वदर्थं वै तत्तपो यद्वत्स्मृतितः
तद्धनंधनिनांशुद्धं यस्त्वदर्थेव्ययीकृतम् । स एवसकलःकालोयस्मिद्धिष्णोत्वमर्च्यंसे
तावच्चजीवितं श्रेयो यावत्स्वं हृदिधर्तसे । रोगाःप्रशममायान्ति त्वत्पादोदकसेवनात्
महापापानिगोचिन्द्बहुजन्माजितान्यपि । सद्योविलयमायान्तिवासुदेवैतिकीर्तनात्
अहो पुंसां महामोहस्त्वहो पुंसां प्रमादता । वासुदेवमनादृत्य यदन्यत्र कृतश्रमाः
इदमेव हि माङ्गल्यमिदमेव धनार्जनम् । जीवितस्य फलं चैतद्यद्दामोदरकीर्तनम् ॥
अधोक्षजात्परो धर्मानार्थो नारायणात्परः । न कामःकेशवादन्यो नापवर्गाहरिचिना
इयमेव पराहानिरुपसर्गायमेव हि । अभाग्यं परमं चैतद्वासुदेवं न यत्स्मरेत् ॥

हरेराराधनं पु सा किंकि न कुरुते बत । पुत्रमित्रकलत्रार्थराज्यस्वर्गापवर्गदम् ॥
 हरत्यर्घ्वं ध्वंसयति व्याधीनाधीभ्रियच्छति । धर्मविधर्घयेत्क्षिप्रं प्रयच्छतिमनोरथम्
 भगवत्करणद्वन्द्वनिद्वन्द्वध्यानमुत्तमम् । पापिनापि प्रसङ्गेन विहित स्वहित परम् ॥
 पापिनां यानि पापानि महोपपद्भाऽज्यपि ।

सुलीनध्यानसम्पन्नो नामोच्चारो हरेर्हरेत् ॥ ५८ ॥

प्रमादादपि सस्पृष्टो यथाऽनलकणो दहेत् । तथौष्ठपुटसस्पृष्ट हरिनामहरेदधम् ॥
 नितान्त कमलाकान्तेशान्तचित्त विधाय य । सशीलयेत्क्षणनूनकमलातत्रनिश्चला
 अयमेव परो धर्मस्त्वदमेव परन्तप ।

इदमेव पर तीर्थं विष्णुपादाम्बु यत्पिबेत् ॥ ५९ ॥

तद्योपहार भक्त्या य सेवते यन्नपूरुष । सेवितस्तेन नियत पुरोडाशो महाधिया ॥
 स चैवावभृथस्नान स च गङ्गाजलाप्लुत ।

विष्णुपादोदक कृत्वा शङ्खे य स्नाति मानव ॥ ६१ ॥

शालग्रामशिला येन पूजिता तुलसीदल । स पारिजातमालाभि पूज्यते सुरसद्मनि
 ब्राह्मण क्षत्रियवोवश्य शूद्रोवायदिवेतर । विष्णुभक्तिसलायुक्तोद्भेय सर्वोत्तमश्चस
 शङ्खकाङ्किततनु शिरसा मञ्जरीधर । गोपाषन्दनलिप्राङ्गो दृष्टश्चेत्तद्व कुत ॥
 प्रत्यहद्वादशशिला शालग्रामस्ययोऽषयेत् । द्वारवत्या शिलायुक्ता सवकुण्ठेमहीयते
 तुलसी यस्य भवने प्रत्यह परिपूज्यते । तद्गृह नोपसपन्ति कदाचिद्यमकिङ्करा-
 हरिनामाक्षरमुख भाले गोपीमृदाङ्कितम् । तुलसीमालितोरस्क स्पृशेयुर्नयमानुगा
 गोपीमृत्तुलसीशङ्ख शालग्राम सचक्रक । गृहेऽपि यस्यपञ्चते तस्यपापभय कुत-
 ये मुहूर्ता क्षणा ये च या काष्ठा ये निमेषका ।

ऋते विष्णुस्मृतेर्यातास्तेषु मुष्टो यमेन स ॥ ६६ ॥

क द्वयक्षरहरेर्नाम स्फुलिङ्गसदृश ज्वलत् । महतीपातकानाञ्च राशिस्तूलोपमा क्वच
 गोधिन्दं परमानन्द मुकुन्द मधुसूदनम् ।

त्यक्त्वाऽन्य नैव जानामि न भजामि स्मरामि न ॥ ७१ ॥

ननमामिनवस्तौमि नपश्यामीहचक्षुषा । नस्पृशामिनवायामि गायामिनहरिचिना
जलेस्थले च पातालेऽप्यनिले चानलेऽथले । विद्याधरासुरसुरे किन्नरे वानरे नरे ॥
तृणे खणे च पापापाणे तरुगुल्मलतासुच । सर्वत्रश्यामलतनु वीक्षे श्रीवत्सवक्षसम् ।
सर्वेषाहृदयावास साक्षात्साक्षीत्वमेवहि । बहिरन्तर्चिनात्वान्तु नह्यन्यवेदिसर्वगम्

इत्युक्त्वा विररामाऽसौ शिवशर्मन्ध्रुवस्तदा ।

देवोऽपि भगवान्विष्णुस्तमुवाच प्रसन्नदूक् ॥ ७६ ॥

श्रीभगवानुवाच

अयि बालविशालाक्ष! ध्रुव! ध्रुवमतेऽनघ । परिज्ञातो मयासम्यक्तवहृत्स्थोमनोरथ
अन्नाद्भवन्ति भूतानि वृष्टेरन्नसमुद्भव । तद्वृष्टे कारणं सूर्य आधारो ध्रुवेषु भो ॥
ज्योतिश्चक्रस्यसवस्यग्रहर्थादे समन्तत । गगनेभ्रमतो नित्यत्वमाधारो भविष्यसि
मेढीभूतस्तु वे सर्वान्वायुपाशैर्नियन्त्रितान् ।

आकल्प तत्पदं तिष्ठ भ्रामयञ्ज्योतिषाङ्गणान् ॥ ८० ॥

आराध्य श्रीमहादेवपुराणमिदं मया । आसादियत्तदेतत्ते तपसा प्रतिपादितम् ॥
केचिच्चतुयुगं यावत्केचिन्मन्वन्तरं ध्रुव! । तिष्ठन्तित्वन्तुवैकल्पपदमेतत्प्रशास्यति
मनुनाऽपिनयत्प्रापि किमन्यैर्मानवैर्ध्रुव! । तत्पदं विहितत्वत्साच्छक्राद्यैरपिदुर्लभम्
अन्यान्यवरात्प्रयच्छामिस्तवेनानेनतोयित । सुनीतिरपितेमातात्वत्समीपेष्वरिष्यति
इदं स्तोत्रं यस्तु पठिष्यति समाहित ।

त्रिसन्ध्यं मनुजस्तस्य पापं यास्यति सक्षयम् ॥ ८१ ॥

नतस्य सदनं लक्ष्मीं परित्यक्ष्यत्यसशयम् । नजनन्याचियोगश्च नबन्धुकलहोदयं
ध्रुवस्तुतिरियं पुण्यामहापातकनाशिनी । ब्रह्महापिचिशुद्धयेतं का कथेतरपापिनाम्
महापुण्यस्य जननी महासम्पत्तिदायिनी । महोपसर्गशमनी महाव्याधिचिनाशिनी
यस्याऽस्ति परमाभक्तिर्मयि निर्मलचेतसः ।

ध्रुवस्तुतिरियं तेन जप्या मत्प्रीतिकारिणी ॥ ८२ ॥

समस्ततीर्थस्नानेन यत्फलं लभते नरः । तत्फलं सम्यगाप्नोति जपन्स्तुत्यानयामुदा

सन्ति स्तोत्रापथनेकानि मम प्रीतिकराणि च ।

ध्रुवस्तुतेर्नचैतस्याः कलामर्हन्ति षोडशीम् ॥ ६१ ॥

ध्रुवार्षीमांस्तुतिं मर्त्यःश्रद्धयापरयामुदा । पातकैर्मुच्यतेसद्योमहत्पुण्यमवाप्नुयात्

अपुत्रःपुत्रमाप्नोति निर्धनो धनमाप्नुयात् ।

अभक्तो भक्तिमाप्नोति कीर्त्तनाच्च ध्रुवस्तुतेः ॥ ६३ ॥

दस्वादानान्यनेकानिकृत्वानानाव्रतानिच । यथालाभानवाप्नोतितथास्तुत्याऽन्यानरः

त्यक्त्वा सर्वाणि कार्याणि त्यक्त्वा जप्यान्यनेकशः ।

ध्रुवस्तुतिरियं जप्या सर्वकामप्रदायिनी ॥ ६५ ॥

श्रीभगवानुवाच

ध्रुवावधेहिचक्ष्यामि हितं तवमहामते !। येन ते निश्चलं सम्यक्पदमेतद्विष्यति ॥

अर्हंजिगमिषुस्त्वासंपुरीवाराणसीशुभाम् । साक्षाद्विश्वेश्वरोयत्रतिष्ठतेमोक्षकारणम्

विपन्नानाञ्च जन्तूनां यत्रविश्वेश्वरः स्वयम् । कर्णेजापं प्रकुरुते कर्मनिर्मूलनक्षमम्

अस्यससारदुःखस्य सर्वोपद्रवदायिनः । उपायएकएवास्ति काशिकानन्दभूमिका ॥

इदं रम्यमिदं नेति बीजंदुःखमहातरोः । तस्मिन्काश्यगिनादग्धे दुःखस्यावसरःकुतः

प्राप्यं संप्राप्यते येन नभूयोयेन शोच्यते । परायां निवृत्तेःस्थानं यत्तदानन्दकाननम्

अमृतायनमुत्सृज्यपुरुषोन्यत्र यो वसेत् । आनन्दकाननं शम्भोः कुतस्तस्यसुखोदयः

वरंशरावहस्तस्य चाण्डालागारर्षीथिषु । भिक्षार्थमटनंकाश्यां राज्यंनान्यत्रनीरिषु

वैकुण्ठनगरात्काशींनित्यं विश्वेशमर्चितुम् । अहमायामिनियमाज्जगदच्यन्तदर्शिताम्

मयि या परमा शक्तिस्त्रिलोक्यारक्षणक्षमा । तत्रहेतुर्महेशानः ससुदर्शनचक्रदः ॥

पुरा जालन्धरं दैत्यं ममापिपरिकम्पनम् । पादाङ्गुष्ठाप्ररेखोत्थं चक्रं सृष्टाहरोऽहरत्

तच्च चक्रं मया लब्धं नेत्रपद्मार्चनाद्विभोः । एतत्सुदर्नाख्यवै दैत्यचक्रप्रमर्दनम् ॥

तन्मया तव रक्षार्थं भूतविद्रावणं परम् । तावत्प्रणुन्नं पुरतस्ततश्चाहमिहागतः ॥

काशीमिदानीं यास्यामि विश्वेश्वरचिलोकने ।

अथ यात्राऽस्ति महती कार्तिक्यां बहुपुण्यदा ॥ १०६ ॥

कार्तिकस्य चतुर्दश्यां विश्वेशं यो विलोकयेत् ।

स्नात्वा चोत्तरघाहिन्यां न तस्य पुनरागतिः ॥ ११० ॥

इत्युक्त्वा ताक्षर्यमारोप्य ध्रुवमानन्दमेतुरम् । क्षणाद्वाराणसीं प्राप हरिः स्मरहरोषिताम्
पञ्चक्रोश्याश्च सीमानं प्राप्य देवो जनार्दनः । वैनतेयाद्वारुह्य करे धृत्वा ध्रुवं ततः ॥
मणिकर्ष्यां परिस्नाय विश्वेशमभिपूज्य च । ध्रुवं च भाषे भगवान् हितं तस्य कीर्षयन्
लिङ्गं स्थापयत्यनेन क्षेत्रेऽत्रैवाविमुक्तके । त्रैलोक्यस्थापनं पुण्यं यथा भवति तेऽक्षयम्
नियुतं यत्परिस्थाप्य लिङ्गानि फलमाप्यते । अन्यत्र तदिहैकेन लिङ्गेन परिलभ्यते ॥
कालेन भङ्गमापन्नं जीर्णोद्धारं करोति यः । इह तस्य फलस्यान्तः प्रलयेऽपि न जायते
चित्तशाठ्यं परित्यज्य प्रासादं योऽत्र कारयेत् । तेन दत्तो भवेत्सर्वमेहर्निर्युतयोजनः
कूपवापीतडानि शक्त्या योऽत्र तु कारयेत् ।

अन्यत्र करणात्तस्य पुण्यं कोटिगुणाधिकम् ॥ ११८ ॥

इज्यार्थमत्रयः कुर्यात्सुरभ्यां पुष्पवाटिकाम् । पुष्पे पुष्पे फलं तस्य सुवर्णकुसुमाधिकम्
अत्र ब्रह्मपुरीं कृत्वा यो विप्रेभ्यः प्रयच्छति । वर्षाशनेन संयुक्तां तस्य पुण्यफलं शृणु
क्षीयन्ते सलिलान्यब्धेर्मीमांशत्रसरेणवः । क्षयो न तस्य पुण्यस्य शिवलोके समासतः
मठानपि तपस्विभ्यः कारयित्वाऽत्र योऽर्पयेत् ।

जीवनोपायसंयुक्तान्सोऽपि पूर्वफलाश्रयः ॥ २२ ॥

कृत्वामहान्ति पुण्यानि योऽत्र विश्वेश्वरेऽर्पयेत् । न तस्य पुनरावृत्तिघरिसंसारसागरे
अनन्त इति वादोऽयं यिलोकेऽत्र गीयते । परं काशीगुणानां हि मयाप्यन्तो न लभ्यते ॥
तस्मात्प्रयत्नतः काश्यां ध्रुवश्रेयः समाश्रयेत् । काशीश्रेयः फलं पुं सामक्षया यो पजायते

गणावूचतुः

ध्रुवमित्युपदिश्याथ जगाम गरुडध्वजः । ध्रुवोपिलिङ्गं स्थाप्य वैद्यनाथसमीपतः
प्रसादं सुमहत्कृत्वा कृत्वा कुण्डं तदग्रतः । विश्वेश्वरं समभ्यर्च्य कृतकृत्यो गृहं ययौ
ध्रुवेश्वरं समभ्यर्च्य ध्रुवकुण्डे कृतोदकः । ध्रुवलोकमवाप्नोति नरो भोगसमन्वितः ॥
ध्रुवस्य परमाख्यानं यः पठेत्पाठयेदपि । स विष्णुलोकमासाद्य जायते विष्णुबलुभः

नरोध्र वस्य चरितं प्रसङ्गेन स्मरन्नपि । न पापैरभिभूयेत महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे-
पूर्वाद्ध्रुवस्तुतिवर्णननामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मकृतकाशीप्रशंसावर्णनम्

शिवशर्मोवाच

भवाख्यातमिदं रम्यं महापातकनाशनम् । महाश्रयं करं पुण्यं श्रुत्वा तृप्तोऽस्मिभो गणौ !

अगस्त्य उवाच

इत्थं यावद्द्विजो ब्रूते चिमानं वायुवेगगम् । तावत्प्रापमहर्लोकं स्वर्लोकं कात्परमाद्भुतम् ॥
द्विजोऽथ लोकं संवीक्ष्य सर्वतो महासावृतम् । तौ गणौ प्रत्युवाचे दंकोऽयं लोको मनोहरः
तावच्चतुस्ततो विप्रनिशामय महामते ! अयं सहि मण्डलोकः स्वर्लोकं कात्परमाद्भुतः ॥
कल्पायुषो वसन्त्यत्र तपसा धृतकल्मषाः । विष्णुस्मरणसंक्षीणसमस्तकृशसञ्चयाः
निर्व्याजप्रणिधानेन दृष्ट्वा तेजोमयं जगत् । महायोगसमायुक्ता वसन्त्यत्र सुरोत्तमाः
इत्थं कथा कथयतो भगवद्गणयोः प्रिये ! क्षणार्धेन चिमानं तज्जनलोकं निनाय तान् ॥
निवसन्त्यमला यत्र मानसा ब्रह्मणः सुताः । सनन्दनाद्या योगीन्द्राः सर्वे ते ह्यदुर्ध्वरैतसः

अन्ये तु योगिनो ये वै ह्यल्ललद्ब्रह्मचारिणः ।

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तास्ते वसन्त्यतिनिर्मलाः ॥ ६ ॥

जनलोकान्तपोलोकस्तेषां लोचनगोचरः । कृतस्तेन चिमानेन मनोवेगेन गच्छता
वैराजा यत्र ते देवा वसेयुर्दाहवर्जिताः । वासुदेवे मनो येषां वासुदेवापि तक्रियाः ॥

तपसा तोष्य गोविन्दममिलाषविषवर्जिताः ।

तपोलोकमिमं प्राप्य वसन्ति विजितेन्द्रियाः ॥ १२ ॥

शिलोऽखवृत्तयोयेचै दन्तोलूबलिकाश्च ये । अश्मकुट्टाश्च मुनयः शीर्षपर्णाशिनश्च ये
प्रीप्सेपञ्चाग्रितपसोवर्षासुस्यण्डिलेशयाः । हेमन्तशिशिरार्थेयैक्षपन्तिसलिलेक्षयाः

कुशाग्रनीरविप्रूषस्तृषिता यतयोऽपिबन् ।

वाताशिनोऽतिक्षुधिताः पादाप्राङ्गुष्ठभूसृशः ॥ १५ ॥

ऊर्ध्वदोषो रचिद्वशस्त्वेकाङ्घ्रिस्थानुनिश्चलाः ।

ये वै दिवा निरुच्छ्वासा मासोच्छ्वासाश्च ये पुनः ॥ १६ ॥

मासोपवासव्रतितनश्चातुर्मास्यव्रताश्च ये । ऋत्वन्ततोयपानाये येषमासोपवासकाः
ये च वर्षनिमेषा वै वर्षघोराम्बुतर्षकाः । येचस्थाणुपमां प्राप्ता मृगकण्डूतिसौख्यदाः
जटाटवीकोटरान्तः कृतनीडाण्डजाश्च ये । प्ररूढवामलूराङ्गाःस्नायुनद्धास्थिसञ्चयाः
लताप्रतानैः परितो वेष्टितावयवाश्च ये । सस्यानिच प्ररूढानि यदङ्गेषु चिरस्थिति
इत्यादिसुतपःक्लिष्टवर्ष्माणो ये तपोधनाः ।

ब्रह्मायुषस्तपोलोके ते वसन्त्यकुतोभयाः ॥ २१ ॥

यावदित्थं स पुण्यात्मा शृणाति गणयोर्मुखात् ।

तावन्नैत्रातिथीभूतः सत्यलोको महोऽज्ज्वलः ॥ २२ ॥

त्वरान्तौ गणौ तत्र विमानादधरुह्य तौ । स्रष्टारं सर्वलोकानां तेनसाद्धंप्रणेमतुः

ब्रह्मोवाच

गणावसौ द्विजो धीमान्वेदवेदाङ्गपारगः ।

स्मृत्युक्ताचारश्चञ्जुश्च प्रतीपः पापकर्मसु ॥ २४ ॥

अयिद्विज!महाप्राज्ञ!जानेत्वांशिवशर्मक !। साप्रकृतं त्वयावत्ससुतीर्थप्राणमोक्षणात्
सत्वरंगत्वरंसर्वं यच्चैतद्भवतेक्षितम् । दैनंदिनप्रलयतः सृजामि च पुनः पुनः ॥
भाचैराजं प्रतिपदमुपसंहरते हरः । का कथा मशकामानां नृणां मरणधर्मिणाम् ॥
चतुर्षु भूतप्रामेषु ह्येक एवगुणो नृणाम् । तस्मिन्चै भारतवर्षे कर्मभूमौ महीयसि
चपलानिविनिर्जित्येन्द्रियाणिमनसा सह । विहायवैरिणलोभंविष्वग्गुणगणस्यच
धर्मवंशहरं काममर्थसञ्चयहारिणम् । जरापलितकर्तारं विनिष्कृत्य विचारतः ॥

जित्वा क्रोधरिपुं धैर्यात्तपसो यशसः त्रियः ।

शरीरस्यापि हतारं नेतारं तामसीं गतिम् ॥ ३१ ॥

सदा मदं परित्यज्य प्रमादैकपदप्रदम् । प्रमादैकशरण्यं च सम्पदां चिन्वितकम्
सर्वत्र लघुताहेतुमहंकारं विहाय च । दूयणारोपणे यत्नं कुर्वाणं सज्जनैष्वपि ॥
हित्वा मोहं महाद्रोहरोपणं मतिघातिनम् । अत्यन्तमन्धीकरणमन्धतामिन्द्रदर्शकम्
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तंपरिश्रुण्णं महाजनैः । धर्मसोपानमारुह्य यदिहायान्ति हेलया
कर्मभूमिं समीहन्ते सर्वैस्वर्गोक्तसोद्विज ! यत्तत्रार्जितभोक्तारः पदेषुश्चावचेष्वमी
नार्यावर्तसमो देशो न काशीसदृशीपुरी । नविश्वेशसमं लिङ्गंकापि ब्रह्माण्डमण्डले
सन्ति स्वर्गा बहुविधाः सुखेतरविचर्जिताः ।

सुकृतैकफलाः सर्वे युक्ताः सर्वसमृद्धिभिः ॥ ३८ ॥

स्वर्लोकादधिकं रम्यं न हिब्रह्माण्डगोलके । सर्वैयतन्तेस्वर्गाय तपोदानव्रतादिभिः
स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारदः ।

प्राह स्वर्गसदां मध्येपातालेभ्यः समागतः ४० ॥

आह्लादकारिणः शुभ्रामणयो यत्रसुप्रभाः । नागाङ्गाभरणप्रोताः पातालं केनतत्समम्
देत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च शोभिते । पातालेकस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापिजायते
द्विचार्करश्मयस्तत्र प्रभां तन्वन्ति नाऽऽतपम् ।

शशिनश्च न शीताय निशिद्योताय केवलम् ॥ ४३ ॥

यत्र न क्षायते कालो गतोपि दनुजादिभिः ।

घनानि नद्यो रम्याणि सदम्भांसि सरांसि च ॥ ४४ ॥

कलाः पुंस्कोकिलालापाः सुचेलानि शुचीनि च ।

भूषणान्यतिरम्याणि गन्धाद्यमनुलेपनम् ॥ ४५ ॥

वीणावैणुमृदङ्गादिनिस्वनाः श्रुतिहारिणः । हाटकेशमहालिङ्गं यत्र वै सर्वकामदम्
एतान्यन्यानि रम्याणि भोगयोग्यानि दानवैः ।

देत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः

पातालेभ्योपि वै रम्यं द्विजवर्षमिलावृतम् ।

रत्नसानुं समाश्रित्य परितः परिसंस्थितम् ॥ ४८ ॥

सदा सुकृतिनो यत्र सर्वभोगभुजो द्विज ! नवयौवनसम्पत्ता नित्यं यत्र मृगीदृशः
भोगभूमिरियं प्रोक्ता श्रेयोविनिमयाजिता ।

भुजयते त्वद्विधैर्लोकैस्तीर्थाभित्यक्तदेहकैः ॥ ५० ॥

अङ्गीबभाषिभिश्चापि पुत्रक्षेत्राद्यहीनकैः । परोपकारसंक्षीणसुखायुर्धनसञ्चयैः ॥
सन्ति द्वीपा ह्यनेका वै पारावारान्तरस्थिताः ।

जम्बूद्वीपसमोद्वीपो न कापि जगतीतले ॥ ५२ ॥

तत्रापि नववर्षाणि भारतं तत्र चोत्तमम् । कर्मभूमिरियं प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा
अष्टौ किं पुरुषादानि देवभोग्यानि तानि तु ।

तेषु स्वर्गात्समागत्य रमन्ते त्रिदिश्वौकसः ॥ ५४ ॥

योजनाना सहस्राणिनवविस्तारतस्त्विदम् । भारतं प्रथमं वर्षमेरोर्दक्षिणतः स्थितम्
तत्रापि हिमविन्ध्याद्रेरन्तरं पुण्यदं परम् । गङ्गायमुनयोर्मध्ये ह्यन्तर्वेदी भुवः पराः ॥
कुरुक्षेत्रं हि सर्वेषां क्षेत्राणामधिकंततः । ततोऽपि नैमिषारण्यं स्वर्गसाधनमुत्तमम्
नैमिषारण्यतोऽपीह सर्वस्मिन् क्षितिमण्डले ।

सर्वेभ्योऽपि हि तीर्थेभ्यस्तीर्थराजो विशिष्यते ॥ ५८ ॥

स्वर्गदो मोक्षदश्चैव सर्वकामफलप्रदः । प्रयागस्तन्महत्क्षेत्रं तीर्थराज इति स्मृतः ॥
यामाः सर्वे मया पूर्वं तुलया विधुताद्विज ! तच्च तीर्थवरं रम्यं कामिकं कामपूरणात्
दृष्ट्वा प्रकृष्टं यागेभ्यः पुष्टेभ्योदक्षिणादिभिः । प्रयागमिति तन्नामकृतं हरिहरादिभिः
नाममात्रस्मृतेर्यस्य प्रयागस्वत्रिकालतः । स्मर्तुः शरीरे नोजातुपापंबसतिकुत्रचित्
सन्ति तीर्थान्यनेकानि पापत्राणकराणि च ।

न शक्तान्यधिकं दातुं कृतैः परिशुद्धितः ॥ ६३ ॥

जन्मान्तरेष्वसङ्ख्येषु यः कृतः पापसञ्चयः । दुष्प्रणोद्योहिनितरां प्रतैर्दानैस्तपोजपैः
सतीर्थराजगमनोद्यतस्य शुभजन्मनः । अङ्गेषु वेपतेऽत्स्वन्तं द्रुमो घातहतोयथा ॥

ततः क्रान्तार्थमार्गस्य प्रयागदृढचेतसः । पुंसः, शरीराभिर्यातुमपेक्षेत पदान्तरम् ॥
भाग्यान्नातिधीभूते तीर्थराजे महात्मनः । पलायते द्रुततरंतमः सूर्योदये यथा ॥

सप्तधानुमयीभूततनौ पापानि यानि वै ।

केशेषु तानि तिष्ठन्ति वपनाद्यान्ति तान्यपि ॥ ६८ ॥

एवं निष्कलुषीभूय ततः स्नायात्सितासिते ।

यं यं काममभिध्याय तं तमाप्नोति नान्यथा ॥ ६९ ॥

पुण्यराशि च विपुलं पुण्यान्भोगान्यथेप्सितान् ।

स्वर्गं प्राप्नोति तत्पुण्याभिष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ ७० ॥

स्नायाद्योऽभिलषन्मोक्षं कामानन्यान्विहाय च ।

सोऽपि मोक्षमवाप्नोति कामदात्तीर्थराजतः ॥ ७१ ॥

तीर्थराजं परित्यज्य योऽन्यस्मात्काममिच्छति ।

भारताख्ये महावर्षे स कामं नाप्नुयात्स्फुटम् ॥ ७२ ॥

सत्यलोके प्रयागे च नान्तरं वेदुम्यहं द्विज ! तत्रयेशुभकर्माणस्ते मल्लोकनिवासिनः
तीर्थाभिलाषिभिर्मर्त्यैस्सेव्य तीर्थान्तरं नहि । अन्यत्रभूमिवलयेतीर्थराजात्प्रयागतः
यथान्तरं द्विजश्रेष्ठ! भूपेत्वितरसेवके । दृष्टान्तमात्रं कथितं प्रयागेतरतीर्थयोः ॥ ७५ ॥

यथाकथञ्चित्तीर्थेऽस्मिन्प्राणत्यागं करोति यः ।

तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि ॥ ७६ ॥

यस्य भाग्यवतश्चात्र तिष्ठन्त्यस्थीन्यपि द्विज !

न तस्य दुःखलेशोऽपि काऽपि जन्मनि जायते ॥ ७७ ॥

ब्रह्महत्यादिपापानां प्रायश्चित्तं चिकीर्षुणा । प्रयागं विधिवत्सेव्यं द्विजवाक्यान्नसंशयः
किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र! महोदयमभीप्सुना । सेव्यं सितासितं तीर्थं प्रकृष्टं जगतीतले ॥
प्रयागतोपि तीर्थे शात्सर्वेषु भुषणेष्वपि । अनायासेन वै मुक्तिः काश्यां देहावसानतः
प्रयागादपि वै रम्यमविमुक्तं न संशयः । यत्र विश्वेश्वरः साक्षात्स्वर्यं समधितिष्ठति
अधिमुक्तान् महाक्षेत्राद्विश्वेशसमधिष्ठितात् । न च किञ्चित्कचिद्द्रम्यमिह श्रद्धाण्डगोलके

अचिमुक्तमिदं क्षेत्रमपि ब्रह्माण्डमध्यगम् । ब्रह्माण्डमध्ये न भवेत्पञ्चक्रोशप्रमाणतः ॥
यथायथाहि वर्धते जलमेकार्णवस्य च । तथा तथोन्नयेदीशस्तत्क्षेत्रं प्रलयादपि ॥
क्षेत्रमेतत्त्रिशूलश्रेणिलिनस्तिष्ठतिद्विज !। मन्तरिक्षे न भूमिष्ठं नेक्षन्ते मूढबुद्धयः ॥
सदाकृतयुगंचात्र महापर्वसदाऽत्र वै । न ग्रहास्तोदयकृतो दोषो विश्वेश्वराश्रमे ॥
सदा सौम्यायनं तत्र सदा तत्र महोदयः । सदैव मङ्गलं तत्र यत्र विश्वेश्वरस्थितिः
यथाभूमितलेविप्रपुर्यःसन्ति सहस्रशः । तथाकाशीन मन्तव्याक्कापिलोकोसरात्वियम्
मयासृष्टानिधिप्रेन्द्रभुवनानिचतुर्दश !। अस्याःपुर्या चिनिर्मातास्वयं विश्वेश्वरःप्रभुः

पुरा यमस्तपस्तप्त्वा बहुकालं सुदुष्करम् ।

त्रैलोक्याधिकृतिं प्राप्तस्त्यक्त्वा वाराणसीं पुरीम् ॥ ६० ॥

चराचरस्य सर्वस्ययानि कर्माणि तानि वै । गोचरे चित्रगुप्तस्यकाशीवासिकृतादृते
प्रवेशो यमदूतानानकदाचिद्विद्विजोत्तम । मध्येकाशीपुरींकापिरिक्षणस्तत्र तद्गणाः ॥
स्वयं नियन्ता विश्वेशस्तत्र काश्यां तनुत्यजाम् ।

तत्राऽपि कृतपापानां नियन्ता कालमैरवः ॥ ६३ ॥

तत्र पापं न कर्त्तव्यं दारुणा रुद्रयातना । अहो रुद्रपिशाचत्वं नरकेभ्योपि दुःसहम् ॥
पापमेव हिकर्त्तव्यं मतिरस्ति यदीदृशी । सुखेनान्यात्रकर्त्तव्यं महीह्यस्तिमहीयसी
अपिकामातुरोजन्तुरेकारक्षति मातरम् । अपि पापकृता काशीरक्ष्यामोक्षार्थिनैकिका
परापवाद्शीलेन परदारामिलाषिणा । तेन काशी न संसेव्याक काशीनिरयः कसः
अभिलष्यन्ति ये नित्यं धनंचात्रप्रतिग्रहैः । परस्त्वं कपटैर्वापि काशीसेव्या नतैर्नरैः
परपीडाकरं कर्म काश्यां नित्यं विवर्जयेत् ।

तदेव चेतिकमत्र स्यात्काशीवासो दुरात्मनाम् ६६ ॥

त्यक्त्वा वैश्वेश्वरीं भक्तिं येऽन्यदेवपरायणाः ।

सर्वथा तैर्नष्टस्तव्या राजधानी पिनाकिनः ॥ १०० ॥

अर्थार्थिनस्तु ये विप्र! ये च कामार्थिनोनराः । अचिमुक्तं नतैःसेव्यं मोक्षक्षेत्रमिदंयतः
शिवनिन्दापरा ये चवेदनिन्दापराश्च ये । वेदाचारप्रतीपा ये सेव्या वाराणसी नतैः

परद्रोहधियो ये च परेष्वङ्ककाधिपञ्च ये । परोपतापिनो ये वै तेषांकाशी न सिद्धये
मनसाऽपिनये काशीमभिनन्दन्तदुधियः । तेषांनिर्वाणवार्त्तापि दूरेदुर्वृत्तचेतसाम्
ज्ञानेन नचिनामोक्षःकश्चिदस्तीह भूतले । तज्ज्ञानं न व्रतैर्लभ्यमपिचान्द्रायणादिभिः
तुलापुरुषमुख्यैश्च दानैश्चश्रद्धयान्वितैः । देशे काले च विधिनापात्रेभ्यः प्रतिपादितैः
न यमैर्ब्रह्मचर्याद्यैर्नियमैर्नार्चनादिभिः । शरीरशोषणैरुग्रैर्नतपोभिर्द्विजोत्तम ॥ १०७

न महामन्त्रजप्यैश्च गुरुभिः प्रतिपादितैः ।

न स्वाध्यायैर्यथोक्तैश्च नाग्निशुश्रूषणैः परैः ॥ १०८ ॥

न सेवया गुरुणां च न श्राद्धैर्देवतार्चनैः । न नानातीर्थयात्राभिर्ज्ञानं समधिगम्यते
न योगेन चिना ज्ञानं योगस्तत्त्वार्थशीलनम् । गुरुपदिष्टमार्गेण सदाभ्यासवशेन च
तस्यान्तराया बहवःसुदूरश्रेष्ठणादयः । अतो न प्राप्यते ज्ञानं योगादिकेन जन्मना ॥
चिना तपोजापथैश्चचिनायोगेन सुव्रत ! । निःश्रेयो लभ्यते काश्यामिहैकेनैवजन्मना

त्वया शुद्धधिया काश्यां यच्छ्रेयःसमुपार्जितम् ।

तच्छ्रेयसोऽप्युदकस्ते महानस्ति द्विजोत्तम ! ॥ ११३ ॥

उक्त्वेति चिररामाऽजः शृण्वतोर्गणयोस्तयोः ।

सोऽपि प्रमुदितश्चाभूच्छिवशर्मा महामनाः ॥ ११४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां षतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वाद्धे ब्रह्मकृतकाशीप्रशंसावर्णननाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

लोकपरिस्थितिवर्णनम्

शिवशर्मोवाच

सत्यलोकेश्वरविधे! सर्वेषांप्रपितामह !। किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोऽस्मिन्नभयाद्भक्तमुत्सहे

ब्रह्मोवाच

यत्त्वंप्रष्टुमनाविप्र!ज्ञातंते तन्मनोगतम् । पिपृच्छिषुस्त्वंनिर्वाणंगणोतत्कथयिष्यतः
नैतयोर्विष्णुगणयोरगोचरमिहास्तिहि । सर्वमेतौविजानीतो यत्किञ्चिद्ब्रह्मगोलके
इत्युक्त्वासत्कृतास्तेवैब्रह्मणाभगवद्गणाः । प्रणम्यलोककर्तारंतेऽपिहृष्टाः प्रतस्थिरे
पुनःस्वयानमारुह्यवैकुण्ठमभितोययुः । गच्छतापिपुनस्तत्र द्विजेनाऽऽपृच्छितौगणौ

शिवशर्मोवाच

कियद्दूरं वयंप्राप्तागन्तव्यं च कियत्पुनः । पृच्छाम्यन्यच्चवांभद्रौव्रतंप्रीत्यातदप्यहो
काञ्च्यवन्तीद्वारवतीकाश्ययोध्याचपञ्चमी । मायापुरीचमथुरापुयः सतविमुक्तिदाः
विहायषट्पुरीश्चान्याःकाश्यामेवप्रतिष्ठिता । मुक्तिर्विश्वसृजातत्किमममुक्तिर्नसम्प्रति
इति सर्वं मम पुरः प्रसादाद्भक्तुमर्हतम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्यगणाव्धुस्तुरादरात् ॥

गणाव्धुस्तुः

यथार्थं कथयावस्ते यत्पृष्टं भवताऽनघ !। विष्णुप्रसादाज्जानीवो भूतं भाषिभवत्तथा
चिप्रावभासते यावत्किरणैः पुष्पवन्तयोः । तावती भूःसमुद्विष्टा ससमुद्राद्रिकानना
वियञ्च तावदुपरि विस्तारपरिमण्डलम् । योजनानाञ्च नियुते भूमेर्मानुर्व्यवस्थितः
भानोःसकाशादुपरि लक्षे लक्ष्यःक्षपाकरः । नक्षत्रमण्डलं सोमाल्लक्षयोजनमुच्छ्रितम्
उडुमण्डलतःसौम्य! उपरिष्ठाद्विलक्षतः । द्विलक्षे तु बुधाच्छुक्रःशुक्राद्भौमोद्विलक्षके
माहेयादुपरिष्ठाच्च सुरेज्यो नियुतद्वये । द्विलक्षयोजनोत्सेधः सौरिर्देवपुरोहितात् ॥
दशायुतसमुच्छ्रायंसौरैःसप्तर्षिमण्डलम् । सप्तर्षिभ्यःसहस्राणांशतादूर्ध्वध्रुवःस्थितः

पाद्गम्यं हि यत्किञ्चिद्वस्त्वस्ति धरणीतले ।

तद्भूलोक इति ख्यातः साग्निह्वीपाद्रिकाननम् ॥ १७ ॥

भूलोकाच्च भुवर्लोकोऽर्ध्नावधिरुदाहृतः । आदित्यादाध्रुवं विप्रस्वलोक इतिगीयते
महर्लोकःक्षितेरुर्ध्वमेककोटिप्रमाणतः । कोटिद्वये तु सङ्ख्यातो जनो भूलोकतोजनैः

चतुष्कोटिप्रमाणस्तु तपोलोकोऽस्ति भूतलात् ।

उपरिष्ठात्क्षितेरष्टौ कोटयःसत्यमीरितम् ॥ २० ॥

सत्यादुपरिचैकुण्ठयोजनानां प्रमाणतः । भूलोकात्परिसङ्ख्यातःकोटियोडशसम्मितः
यत्रास्तेश्रीपतिःसक्षात्सर्वेषामभयप्रदः । ततस्तुयोडशगुणःकैलासोऽस्तिशिवालयः

पार्वत्या सहितः शम्भुर्गजास्यस्कन्दनन्दिभिः ।

यत्र तिष्ठति विश्वेशः सकलः सपरः स्मृतः ॥ २३ ॥

तस्य देवस्य खेलोऽयं स्वलीलामूर्तिधारिणः ।

स विश्वेश इति ख्यातस्तस्याङ्गाकृदिदं जगत् ॥ २४ ॥

सर्वेषां शासकश्चासौ तस्य शास्ता न चापरः ।

स्वयं सृजति भूतानि स्वयं पाति तथाऽस्ति च ॥ २५ ॥

सर्वज्ञपकःसप्रोक्तः स्वेच्छाधीनविचेष्टितः । तस्यप्रवर्तकः कोपि नहि नैव निवर्तकः
अमूर्तं यत्परं ब्रह्म समूर्तं श्रुतिचोदितम् । सर्वव्यापिसदानित्यंसत्यं द्वैतविषर्जितम्

सर्वेभ्यः कारणेभ्यश्च परात्परतरं परम् । आनन्दं ब्रह्मणोरूपं श्रुतयो यत्प्रचक्षते ॥

संविदन्ते न यं वेदा विष्णुर्वेदनवैविधिः । यतोवाचोनिवर्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह

स्वयं वेद्यः परं ज्योतिः सर्वस्य हृदि संस्थितः ।

योगिगम्यस्त्वनाख्येयो यः प्रमाणैकगोचरः ॥ ३० ॥

नानारूपोऽप्यरूपो यःसर्वगोऽपि नगोचरः । अनन्तोप्यन्तकक्षपुःसर्ववित्कर्मवर्जितः
तस्येदमेश्वरं रूपं खण्डखण्ड्राघतंसकम् । तमालश्यामलगलं स्फुरद्दालविलोचनम्

लसद्दामार्धनारीकं कृतशेषशुभाङ्गदम् ।

गङ्गातरङ्गसत्सङ्गसदाधौतजटातटम् ॥ ३३ ॥

स्मराङ्गजरजःपुञ्जपूजितावयवोऽञ्चलम् । विचित्रगात्रविधृतमहाव्यालविभूषणम्
महोक्षस्यन्दनगमं विरुताजगवायुधम् । गजाजिनोत्तरासङ्गं दशार्धवदनं शुभम्
उत्त्रासितमहामृत्युमहाबलगणावृतम् । शरणार्थिकृतत्राणं नतनिर्वाणकारणम् ॥

मनोरथपथातीर्तं धरदानपरायणम् ॥ ३६ ॥

तस्य तत्तत्स्वरूपस्य रूपातीतस्य भोद्विज ! । परावरेरुद्ररूपे सर्वं व्याप्यावतिष्ठतः
निराकारोपिसाकारःशिव एव हिकारणम् । मुक्तयेभुक्तयेवापि नशिवात्मोक्षदोपरः
यथा तेनाखिलं ह्येतत्पार्वतीपतिसात्कृतम् । इदं चराचरं सर्वं दृश्यादृश्यमरूपिणा
तथा मृडानीकान्तेन विष्णुसादखिलं जगत् ।

विधाय क्रीड्यते विप्र! नित्यं स्वच्छन्दलीलया ॥ ४० ॥

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथाशिवः ।

अन्तरं शिवविष्णवोश्च मनागपि न विद्यते ॥ ४१ ॥

आहूय पूर्वब्रह्मादीन्समस्तानुद्देवतागणान् । विद्याधोरगादींश्च सिद्धगन्धर्वचारणान्
निजसिंहासनसमं कृत्वा सिंहासनं शुभम् । उपवेश्यहरिं तत्र च्छत्रं कृत्वामनोहरम्
श्लक्ष्णं कोटिशलाकं च विश्वकर्मविनिर्मितम् ।

पाण्डुरं रत्नदण्डं च स्थूलमुक्तावलम्बितम् ॥ ४४ ॥

कलशेन विचित्रेण ह्यपरिष्ठाद्विराजितम् । सहस्रयोजनायामं सर्वरत्नमयं शुभम् ॥
पट्टसूत्रमयै रम्यैश्चामरैश्च परिष्कृतम् । राजाभिपेकयोग्यैश्चद्रव्यैः सर्वौषधादिभिः
प्रत्यक्षतीर्थपाथोभिःपञ्चकुम्भैर्मनोहरैः । सिद्धार्थाक्षतदूर्वाभिर्मन्त्रैः स्वयमुपस्थितैः
देवानां च तथर्षीणां सिद्धानां फणिनामपि ।

आनीय मङ्गलकराः कन्याः षोडश षोडश ॥ ४८ ॥

धीणामृदङ्गाङ्गभेरीमरुडिण्डिमभर्भरैः । आनकैः कांस्यतालाद्यैर्बाद्यैर्ललितगायनैः
ब्रह्मवोषमहारावैरापूरितनभोङ्गणे । शुभे तिथौ शुभे लने ताराचन्द्रबलान्विते ॥
आबद्धमुकुटं रम्यं कृतकौतुकमङ्गलम् । मृडानीकृतशृङ्गारं सुश्रियासुश्रियायुतम् ॥
अभिषिच्य महेशेन स्वयं ब्रह्माण्डमण्डपे । दत्तं समस्तमैश्वर्यं यत्किञ्च नान्यगामि च

ततस्तुष्टाव देवेशः प्रमथैः सहशार्ङ्गिणम् । ब्रह्माणंलोककर्तारमुवाच च बधस्त्वदम्
मम बन्धस्त्वयंविष्णुःप्रणमत्वममुं हरिम् । इत्युत्वाद्यस्त्वयंरुद्रोनामगरुडध्वजम्
ततो गणेश्वरैः सर्वैर्ब्रह्मणा च मरुद्गणैः । योगिभिः सनकाद्यैश्च सिद्धैर्देवैर्षिमिस्तथा
विद्याधरैः सगन्धर्वैर्यक्षरक्षोप्सरोगणैः । गुह्यकैश्चारणैर्भूतैः शेषवासुकितक्षकैः
पतत्रिभिः किन्नरैश्च सर्वैः स्थावरजङ्गमैः ।

ततो जयजयेत्युत्वा नमोऽस्त्विति नमोऽस्त्विति ॥ ५७ ॥

ततो हरिर्महेशेन संसदि द्युसदां तदा । एतैर्महारचै रम्यैश्चानर्षि परमार्षिषा ॥
त्वं कर्ता सर्वभूतानां पाता हर्ता त्वमेव च । त्वमेव जगतां पूज्यस्त्वमेव जगदीश्वरः
दाता धर्मार्थकामानां शास्ता दुर्नयकारिणाम् ।

अजेयस्त्वञ्च संग्रामे ममापि हि भविष्यसि ॥ ६० ॥

इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्तथोत्तमा ।

शक्तित्रयमिदं विष्णो! गृहाण प्रापितं मया ॥ ६१ ॥

त्वद्ब्रह्मेष्टारोहरेर्नूनं मयाशास्याः प्रयत्नतः । त्वद्ब्रह्मकानामयाविष्णो देयंनिर्वाणमुत्तमम्
माया चापि गृहाणेमां दुष्प्रणोद्यां सुरासुरैः ।

यया सम्भोहितं विश्वमकिञ्चिज्ज्ञं भविष्यति ॥ ६३ ॥

वामबाहुर्मदीयस्त्वं दक्षिणोऽसौ पितामहः ।

अस्यापि हि विधेः पाता जनिताऽपि भविष्यसि ॥ ६४ ॥

वेकुण्ठेश्वर्यमासाद्यहरेरित्थंहरः स्वयम् । कैलासे प्रमथैः सार्धंस्वैरंकीडत्युमापतिः
तदाप्रभृतिद्वेषोशाङ्गधन्वागदाधरः । त्रैलोक्यमखिलं शास्ति दानवान्तकरोहरिः
इति ते कथिता विप्र! लोकानाञ्च परिस्थितिः ।

इदानीं कथयिष्यावस्तवनिर्वाणकारणम् ॥ ६७ ॥

इदन्तु परमाख्यानं शृणुयाद्यः समाहितः ।

स्वर्लोकमभिगम्याद्य काश्यां निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ६८ ॥

यज्ञोत्सवे विवाहे च मङ्गलेष्वखिलेष्वपि । राज्याभिषेकसमये देवस्थापनकर्मणि

चतुर्विंशोऽध्यायः] * गणाभ्यांशिवशर्मणोभाषिजन्मवृत्तान्तवर्णनम् * १५५

सर्वाधिकारदानेषु नखवेशमप्रवेशने ! पठितव्यं प्रयत्नेन तत्कार्यपरिसिद्धये ॥ ७० ॥

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनवान्भवेत् ।

व्याधितो मुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ७१ ॥

जप्यमेतत्प्रयत्नेन सततं मङ्ग्लार्थिना । अमङ्ग्लानां शमनं हरनारायणप्रियम् ॥ ७२ ॥

इति श्रीस्कन्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां सहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

पूर्वाद्धे लोकपरिस्थितिवर्णननाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

शिवशर्मनिर्वाणप्रापणवर्णनम्

गणावृक्षतुः

शिवशर्मन्नुदकन्तेकथयावोनिशामय । त्वमत्रवैष्णवेलोकेभुक्तवाभोगान्सुपुष्कलान्
ब्रह्मणो वत्सरं पूर्णं रममाणोऽप्सरोगणैः । सुतीर्थमरणोपात्तपुण्यशेषेण वै पुनः ॥
भविष्यसि महीपालो नगरे नन्दिवर्धने । राज्यं प्राप्यासपत्नञ्च समृद्धबलवाहनम्
कृष्टिमिहृष्टपुष्टैश्च रम्यहाटकभूषणैः । संजुष्टमिष्टापूर्तानां धर्माणां नित्यकर्तृभिः
सदासम्पन्नसस्यञ्च सर्वरक्षेत्रसंकुलम् । सुदेशं सुप्रजं सुस्थं सुत्वं बहुगोधनम् ॥
देवतायतनानाञ्चराजिभिः परिराजितम् । सुयूपायत्रवैप्रामाः सुवित्तद्विधिराजिताः
सुपुष्पकृत्रिमोद्यानाः ससदाफलपादपाः । सपद्मिनीककासारा यत्र राजन्तिभूमयः
सद्भ्रमानिन्नगाराजिनयत्रजनता क्वचित् । कुलान्यैषकुलीनानि न चान्यायधनानिच
विभ्रमोयत्रनारीषुनचिद्वत्सु च कर्हिचित् । नद्यःकुटिलगामिन्यो न यत्रविषयैप्रजाः
तमोयुक्ताः क्षपा यत्र बहुलेषु न मानवाः । रजोयुजः स्त्रियोयत्र न धर्मबहुलानराः ॥
धनैरनन्धो यत्रा स्तितमनो नैष च भोजनम् । अनयः स्यन्दनयत्र न च वैराजपूरुषः

दण्डः परशुकुडालबालव्यजनराजिषु । आतपत्रेषु नान्यत्र क्वचित्क्रोधापराधजः ॥
अन्यत्राक्षिकवृन्देभ्यः क्वचिन्नपरिदेवनम् । आक्षिका एव दृश्यन्ते यत्रपाशकपाणयः
जाड्यवार्ता जलेष्वेव स्त्रीमध्या एव दुर्बलाः ।

कठोरहृदया यत्र सीमन्तिन्यो न मानवाः ॥ १४ ॥

औषधेष्वेवयत्रास्ति कुष्ठयोगेनमानवे । वेधोप्यन्तःसुरत्नेषु शूलंमूर्तिकरेषु वै ॥ १५ ॥

कम्पः सारिक्कभावोत्थो न भयात्कापि कस्यचित् ।

सञ्चरः कामजो यत्र दारिद्र्यं कलुपस्यच्च ॥ १६ ॥

दुर्लभत्वं सदा कस्य सुकृतेन च वस्तुनः । इभा एव प्रमत्ता वै युद्धंवीचयोर्जलाशये
दानहानिर्गजेष्वेवद्रुमेष्वेवहिकण्टकाः । जनेष्वेवविहाराहिनकस्यच्चिदुरः स्थली ॥
बाणेषुगुणविश्लेषोबन्धोक्तिः पुस्ततेदृढा । स्नेहत्यागः सदैवास्तियत्रपाशुपतेजने
दण्डवार्तासदायत्र कृतसंन्यासकर्मणाम् । मार्गणाश्चापकेष्वेवभिभुक्ता ब्रह्मधारिणः
यत्र क्षपणका एव दृश्यन्ते मलधारिणः । प्रायो मधुव्रता एव यत्र चञ्चलवृत्तयः
इत्यादिगुणघट्टेशे त्वयिराज्यं प्रशासति । धर्मण राजधर्मज्ञशौण्डीर्यगुणशालिनि
सौभाग्यभाजि रूपाद्ये शौर्यौदार्यगुणान्विते ।

सीमन्तिनीनां रम्याणां लावण्यार्जितसुश्रियाम् ॥ २३ ॥

राज्ञीनामयुतं भाविकुमाराणा शतत्रयम् । वृद्धकालइति ख्यात उग्रः परपुरञ्जयः
धिजितानेकसमरः श्रीसन्तर्पितमार्गणः । अनेकगुणसम्पूर्णः पूर्णचन्द्रनिभद्युतिः ॥
सन्तताचभृथङ्गिन्नमूर्धजः क्षितिपर्बभः । प्रजापालनसम्पन्नः कोशप्रीणितभूसरः
पदारविन्दं गौविन्दं हृदिध्यायन्नतन्द्रितः । वासुदेवकथालापपरिक्षितदिनक्षपः ॥
कदाचिदुपविष्टःसन्मध्येराजसमं द्विज ! । दूरात्कार्पटिकैर्दृष्टोवाराणस्याः समागतैः
त्वत्कर्मभाविस्सदृशोस्तदा त्वमभिनन्दितः । तैः सर्वैराजशादूल स्वाशीर्षादैरनेकशः
श्रीमद्विश्वेश्वरो देवोविश्वेषांजगतांगुरुः । काशीनाथस्तु ते कुर्यात्कुमतेरपघर्जनम्
नेःश्रेयसीं च सम्पत्तिं यो देयात्स्मरणादपि ।

काशीनाथः स ते दिश्याज्ज्ञानं मलविचर्जितम् ॥ ३१ ॥

येन पुण्येन ते प्राप्तं राज्यं प्राज्यमकण्टकम् । तत्पुण्यशेषतो भूयाद्विभ्वनाथे मतिस्तव
यस्य प्रसादात्सुलभमायुःपुत्राम्बराङ्गनाः । समृद्धयःस्वर्गमोक्षीसविश्वेशःप्रसीदतु
नामश्रवणमात्रेणयस्यविश्वेशितुर्विभोः । महापातकविच्छेदःसविश्वेशोऽस्तुतेहृदि

त्वं वृद्धकालो भूपालःश्रुत्वेत्याशीः परम्पराम् ।

स्मरिष्यसीदं वृत्तान्तं पुलकाङ्कवपुस्तदा ॥ ३५ ॥

आकारगोपनं कृत्वा तेभ्यो दस्वा धनं बहु । सुमुहूर्तमनुप्राप्य सुतेराज्यं विधाय च
अनङ्गलेखया राक्ष्या ततः कार्शीं गमिष्यसि ।

दस्वा दानानि भूरीणि प्रीणयित्वाऽर्थिनो जनान् ॥ ३७ ॥

स्वनाम्ना तत्र संस्थाप्य लिङ्गं निर्वाणकारणम् ।

प्रासादं तत्र कृत्वोच्चैस्तदग्रे कूपमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

विधायविधिवत्तत्रकलशारोपणादिकम् । मणिमाणिक्यचाम्पेयदुकूलेभाभ्वगोधनम्
महाध्वजपताकाश्च च्छत्रचामरदर्पणम् । देवोपकरणं भूरि विश्राण्यश्रमवर्जितः ॥
व्रतोपवामनियमैःपरिक्षीणकलेवरः । मध्यह्ने निजने तत्र द्रक्ष्यस्येकं तपोधनम् ॥
अतीवजीर्णवपुषं परिपिङ्गजटान्वितम् । मूर्तिमन्तमिष प्रांशुधर्म जनमनोहरम्
भारं शरीरयष्टेश्चदृढयष्ट्यांसमर्प्य च । गर्भागाराद्विनिष्क्रम्याभ्यायान्तं रङ्गमण्डपे
उपविश्यसमीपेतेप्रक्ष्यत्येवमनुकमात् । कोसित्वंकिमिहासित्वंद्वितीयद्वयकस्त्वयम्
प्रासादः कारितःकेनजानास्येष ततोवद । अस्यलिङ्गस्यकिनामप्रायोजानेनवाधंकात्
पृष्टस्त्वमितितेनाथ तदावृद्धतपस्विना । कथयिष्यस्यहं राजा वृद्धकालइतिश्रुतः
दाक्षिणात्य इहप्राप्तस्त्वेतयासहकान्तया । ध्यायामिलिङ्गमेतच्चप्रार्थयामिनकिञ्चन

प्रासादस्यास्य जटिलः स्वयङ्कारयिता शिवः ।

विशेषतोऽस्य लिङ्गस्य नाम नो वेद्यि निश्चितम् ॥ ४८ ॥

इति श्रुत्वा नरपतेर्वाक्यं प्राहजटाधरः । सत्यमुक्तं त्वयैकं हिलिङ्गनामनवेत्सियत्
पश्येयन्त्वामहं नित्यमुपविष्टं सुनिश्चलम् । श्रुतोभविष्यतितवप्रासादो येनकारितः
ममाग्रे तत्समाश्वक्ष्वयदिजानासितस्वतः । आकर्ष्येति च्वस्तस्यपुनःप्राहभवानिति

कर्ता कारयिता शम्भुः किमतर्ष्यं ब्रवीम्यहम् ।

अथवा चिन्तया किं मे तपस्विन्नया विभो ! ॥ ५२ ॥

इतित्वयिस्थिते जोषं सपुनर्वृद्धतापसः । पिपासुरस्मि पानीयमानीयाशुप्रयच्छमे
इति तेनघनुन्नस्त्वं वार्यानीय च कूपतः । पाययिष्यसि तं वृद्धतापसंतत्क्षणाच्चसः
तदम्बुपानतो भूयात्सुपार्वणशशिप्रभः । तरुणो रूपसम्पन्नःकोशोन्मुक्तोरगो यथा
जाताश्चर्येण भवता पुनरेवाभ्यभायिसः । कः प्रभावोहि भगवन्नेप ये न भवान्पुनः
परित्यज्याऽत्रजरसं न बोभ्राजसिसाम्प्रतम् । अस्तित्चेदवकाशस्तेततो ब्रूहितपोधन
तपोधन उवाच

वृद्धकालक्षितिपते! जाने त्वां सुमहामने । इमामपि चज नेऽहं तव पत्नीपतिव्रताम्
जन्मनोऽस्मादियं राजन्नासीद्विप्रस्य कन्यका । तुवंसोर्वेदवपुषः शुभाचाराशुभानना
तेनदत्ता विवाहाय नैध्रवाय महात्मने । स च कालवशं प्राप्तो नैध्रुवोऽप्राप्तयौवनः
बंध्यं पालयन्त्येषा मृताऽवन्त्यांशुभव्रता । तेनपुण्येनसंजातापाण्ड्वव्यनृपतेःसुना
परिणीतात्वयाराजन्पतिव्रतरता सदा । त्वयासहेह संप्राप्तामुक्तिं प्राप्स्यत्यनुत्तमाम्
अयोध्यायामथाचन्त्यां मथुरायामथापि वा ।

द्वारवत्यां च कान्त्यां वा मायापुर्यामथो नृप ! ॥ ६३ ॥

अपिपातकिनो येचकालेननिधनंगताः । तेहिस्वर्गादिहागत्य काश्यामोक्षमवाप्नुयुः
अवैमित्त्वामपि नृप!द्विजोऽभूःपूर्वजन्मनि । माथर.शिवशर्माख्योमायापुर्यांभवान्मृतः
तत्पुण्यान्प्राप्य बैकुण्ठं भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।

तत्पुण्यशेषात्क्षितिपो जातस्त्वं नन्दिचधने ॥ ६६ ॥

वृद्धकालावनीपाल! तेनेव सुकृतेन च । मोक्षक्षेत्रमिदंप्राप्तोमुक्तिं प्राप्स्यस्यनुत्तमाम्
अन्यच्च शृणु राजेन्द्र! त्वया यत्समुदीरितम् ।

कर्ता कारयिता शम्भुः प्रासादस्येति तत्स्फुटम् ॥ ६८ ॥

सुकृतं नैव सततमाख्यातव्यं कदाचन । कृतं मयेति कथनात्पुण्यं क्षयतितत्क्षणात्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गोपनीयं निधानवत् । सुकृतं कीर्तनाद्व्यर्थं भवेद्ब्रह्मभुतं तथा ॥

निश्चितं विश्वनाथेन प्रेरितेन स्वयाऽनघ । कृतं हि कृतकृत्येन प्रासादादिहवैश्वानरम्
वृद्धकालेश्वरं नाम लिङ्गमेतन्महीपते ! जानीह्यनादिसंसिद्धं निमित्तं किन्तु वै भवान्
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य पूजानाच्छ्रवणाश्रितेः ।

वृद्धकालेशलिङ्गस्य सर्वं प्राप्नोति वाञ्छितम् ॥ ७३ ॥

कृपःकालोदको नाम जराव्याधिविघातकृत् । यदीयजलपानेनमातुस्तन्यमपानवान्
कृतकृपोदकस्नानः कृतैतलिङ्गपूजनः । वर्षेणसिद्धिमाप्नोति मनोभिलषितां नरः ॥
न कुष्ठं न च विस्फोटा न रङ्गा न विचर्षिका ।

पीतात्स्पृष्टात्प्रतिष्ठन्ति कफः कालदमोदकात् ॥ ७६ ॥

नाग्निमान्द्यं नैवशूलं नमेहोनप्रवाहिका । नमूत्रकृच्छ्रं नोपामापानीयस्यास्यसेवनात्
भूतज्वराश्च ये केचिद्ये केचिद्विषमज्वराः । तेक्षिप्रमुपशाम्यन्तिह्येतत्कृपोदसेवनात्
तथाग्रतो मम जरापलितं च यथाविधि । एतत्कृपोदपानेन क्षणान्नष्टं नवोऽभवम् ॥
वृद्धकालेश्वरेलिङ्गे सेविते न दरिद्रता । नोपसर्गा न वा रोगा न पापं नावजं फलम्
उत्तरे कृत्तिवासस्यवाराणस्या प्रयत्नतः । वृद्धकालेश्वरंलिङ्गं द्रष्टव्यंसिद्धिकामुकैः
इत्युक्त्वातंमहीपालं हस्तेधृन्वातपोधनः । सानङ्गलेखाराज्ञीकंतस्मिल्लिङ्गैर्लयययौ
महाकालमहाकालमहाकालेतिकीर्तनात् । शतधा मुच्यते पापैर्नात्रकार्याविचारणा ॥
इत्थंभवित्री ते मुक्तिःकैटभारतिदर्शनात् । भोगान्भुक्त्वाबहुविधान्वैकुण्ठनगरेशुभे
इति संहृष्टतनूरुहः स विप्रो भगवत्तद्गणघक्त्रतो निशम्य ।

स्वमुदर्कमथार्ककोटिरम्यं हरिलोकं परिलोकयाञ्चकार ॥ ८५ ॥

मैत्रावरुणिरुवाच

लोपासुद्रेऽसचिप्रेन्द्रोभोगान्भुक्त्वामनोरमान् । मायापुर्यांकृतप्राणत्यागपुण्यबलेनच
वैकुण्ठलोकादागत्य पत्तने नन्दिचर्धने ।

भौमानि भुक्तवा सौख्यानि पुत्रानुत्पाद्य सुन्दरान् ॥ ८७ ॥

तेषु राज्यं चिनिक्षिप्य प्राप्य वाराणसीं पुरीम् ।

विश्वेश्वरं समाराध्य निर्वाणपदमीयिवान् ॥ ८८ ॥

एतत्पुण्यतमाख्यानां विप्रस्य शिवशर्मणः । ध्रुत्वा पापधिनिर्मुक्तो ज्ञानंपरममृच्छति
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे शिवशर्मनिर्वाणप्रापणनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

स्कन्दागस्त्यदर्शनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणु सूतप्रवक्ष्यामि कथां कलशजन्मनः । यामाकर्ण्य नरो भूयाद्विरजाज्ञानभाजनम्
गिरिं प्रदक्षिणीकृत्य श्रीसङ्घं कलशोद्भवः । सपत्नीको ददर्शाथरम्यंस्कन्दवनममहत्
सर्वतुंकुसुमाढ्यं च रसवत्फलपादपम् । सुसेव्यकन्दमूलाढ्यं सुवलकलमहीरुहम् ॥

निधीतश्चापदगर्णं ससरित्पल्वलावृतम् ।

स्वच्छगम्भीरकासारं सारं सर्वभुवः परम् ॥ ४ ॥

नानापतत्रिसंघुष्टं नानामुनिजनोषितम् । तपःसङ्केतनिलयमिवैकं सम्पदां पदम् ॥
लोहितो नाम तत्रास्तिगिरिःस्वर्णगिरिप्रभः । सुकन्दरप्रखणःस्वसानुशिखरप्रभः
कैलासस्यैकशकलं कर्मभूमाचिहागतम् । तपस्तप्तुमिव प्रोच्चैर्नानाध्वर्यसमन्वितम्
तत्राऽद्राक्षीन्मुनिश्रेष्ठोऽगस्त्यःसाक्षात्पडाननम् ।

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ सपत्नीको महातपाः ॥ ८ ॥

तुष्टाव गिरिजासूनुं सूक्तैःश्रुतिसमुद्भवैः । तथा स्वकृतया स्तुत्या प्रबद्धकरसम्पुटः

अगस्तिरुवाच

नमोस्तु वृन्दारकवृन्दवन्यपादारविन्दाय सुधाकराय ।

पडाननायामितचिक्रमाय गौरीहृदानन्दसमुद्भवाय ॥ १० ॥

नमोऽस्तु तुभ्यं प्रणतार्त्सिहन्त्रे कर्त्रे समस्तस्य मनोरथानाम् ।
 दात्रे रथानां परतारकस्य हन्त्रे प्रबण्डासुरतारकस्य ॥ ११ ॥
 अमूर्तमूर्ताय सहस्रमूर्तये गुणाय गुण्याय परात्पराय ।
 अपारपाराय परापराय नमोऽस्तु तुभ्यं शिखिबाहनाय ॥ १२ ॥
 नमोऽस्तु ते ब्रह्मचिदां वराय दिगम्बरायाऽम्बरसंस्थिताय ।
 हिरण्यवर्णाय हिरण्यबाहवे नमोहिरण्याय हिरण्यरेतसे ॥ १३ ॥
 तपःस्वरूपाय तपोधनाय तपःफलानां प्रतिपादकाय ।
 सदा कुमाराय हि मारमारिणे तृणीकृतैश्वर्यचिरागिणे नमः ॥ १४ ॥
 नमोऽस्तु तुभ्यं शरजन्मने चिभो! प्रभातसूर्यारुणदन्तपङ्क्तये ।
 बालाय चाबालपराक्रमाय घाण्मातुरायालमनातुराय ॥ १५ ॥
 मीढुष्टमायोत्तरमीढुषे नमो नमोगणानां पतये गणाय ।
 नमोऽस्तु ते जन्मजरातिगाय नमोविशाखाय सुशक्तिपाणये ॥ १६ ॥
 सर्वस्य नाथस्य कुमारकाय क्रीञ्जारथे तारकमारकाय ।
 स्वाहेय! गाङ्गेय! च कार्तिकेय! शैवेय! तुभ्यं सततं नमोऽस्तु ॥ १७ ॥
 इत्थं परिष्ट्य सकार्तिकेयं नमोनमस्त्वित्यभिभाषमाणः ।
 द्वित्रिः परिक्रम्य पुरोचिवेश स्थितो मुनीशोपविशेति शोकः ॥ १८ ॥

कार्तिकेय उवाच

क्षेमोऽस्ति कुम्भजमुने! त्रिदशैकसहायकृत् ।
 जाने त्वामिह संप्राप्तं तथा चिन्ध्याच्चलोन्नतिम् ॥ १९ ॥
 अविमुक्तेमहाक्षेत्रेक्षेमन्त्र्यक्षेणरक्षिते । यत्रक्षीणायुषांसाक्षाद्विक्रुपाक्षोऽस्तिमोक्षदः
 भूर्भुवः स्वस्तले वाऽपि न पातालतले मलम् ।
 नोदुर्ध्वलोके मया दृष्टं तादृक् क्षेत्रं क्वचिन्मुने ! ॥ २१ ॥
 अहमेकखरोप्यत्र तत्क्षेत्रप्राप्तये मुने ! तप्ये तपांसि नाद्यापि फलैर्युर्मै मनोरथाः
 न तत्पुण्यैर्नतद्दानैर्नतपोभिर्नतजपैः । न लभ्यं चिचिधैर्यैर्लभ्यमैशादनुग्रहात् ॥

ईश्वरानुग्रहादेव काशीवासः सुदुर्लभः । सुलभः स्यान्मुने! नूनं नवैसुकृतकोटिभिः

अन्यैव काचित्सा सृष्टिर्विधातुर्याऽतिरेकिणी ।

न तत्क्षेत्रगुणान्वक्त्रमीश्वरोऽपीश्वरो यतः ॥ २५ ॥

अहो मतेः सुदौर्बल्यमहोभाग्यस्यदौर्बिधम् ।

अहो मोहस्य माहात्म्यं यत्काशीह न सेव्यते ॥ २६ ॥

शरीरं जीर्यते नित्यं संजीर्यन्तीन्द्रियाण्यपि ।

आयुर्मृगो मृगयुना कृतलक्ष्यो हि मृत्युना ॥ २७ ॥

सापदं सम्पदं ज्ञात्वा सापायंकायमुच्चकैः । अपलाचपलं चायुर्मत्वाकाशींसमाश्रयेत्

यावन्नैत्यायुषश्चान्तस्तावत्काशी न मुच्यते ।

कालः कलालवस्यापि सङ्ख्यातुं नैव विस्मरेत् ॥ २८ ॥

जरानिकटनिक्षिप्त्वाबाधन्तेव्याधयो भृशम् । तथापि देहो नानेहोनाहोकाशींसमीहते

तीर्थं स्नानेन जप्येन परोपकरणोक्तिभिः । विनाऽर्थं लभ्यते धर्मो धर्मादर्थः स्वयम्भवेत्

विनैवार्थाज्जनोपायं धर्मादर्थो भवेद्द्रुघ्नम् । अतोऽर्थचिन्तामुत्सृज्य धर्ममेकंसमाश्रयेत्

धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामात्सर्वसुखोदयः ।

स्वर्गोऽपि सुलभो धर्मात्काश्यैका दुर्लभा परम् ॥ ३३ ॥

उपायत्रयमेवात्र स्थाणुनिर्वाणकारणम् । शर्चाण्यग्नेवभाणाद्वा परिनिर्णीयसर्वतः

पूर्वं पाशुपतोद्योगस्ततस्तीर्थसितासितम् । ततोप्येकमनायासमधिमुक्तं चिमुक्तिदम्

श्रीशैलहिमशैलाद्यानानान्यायतनानि च । त्रिदण्डधारणं चापिसंन्यासः सर्वकर्मणाम्

तपसि नानारूपाणि व्रतानि नियमायमाः । सिन्धूनामपि सम्भेदाभरणानि बहून्यपि

मानसान्यपि भौमानि धारातीर्थ्यादिकानि च ।

ऊषराश्चापि पीठानि ह्यच्छिन्नास्त्राय पाठनम् ॥ ३८ ॥

जपश्चापिमनूनां च तथाऽग्निहवनानि च । दानानि नानाकृतवो देवतोपासनानि च

त्रिरात्रं पञ्चरात्राणिसाङ्ख्ययोगादयस्तथा । विष्णोराराधनं श्रेष्ठं मुक्तयेऽभिहितं किल

पुर्यश्चापि समाख्यातामृतजन्तुचिमुक्तिदाः । कैवल्यसाधनानीह भवन्त्येष विनिश्चितम्

एतानि यानि प्रोक्तानि काशीप्राप्तिकराणि च ।

प्राप्य काशीं भवेन्मुक्तो जन्तुर्नान्यत्र कुत्रचित् ॥ ४२ ॥

अत एवहितक्षेत्रंपवित्रमतिचित्रकृत् । विश्वेशितुःप्रियंनित्यंविष्वग्ब्रह्माण्डमण्डले
इदमेवहितक्षेत्रं कुशलप्रश्नकारणम् । एह्येहिदेहिमेस्पर्शं निजगात्रस्य सुव्रत ॥

अपि काश्याः समागच्छत्स्पर्शवत्स्पर्श इष्यते ।

मयाऽत्र तिष्ठता नित्यं किन्तु त्वं तत आगतः ॥ ४५ ॥

त्रिरात्रमपिये काश्यां वसन्तिनियतेन्द्रियाः । तेषांपुनन्तिनियतंस्पृष्टाश्चरणरेणवः
त्वन्तुतत्रकृतावासः कृतपुण्यमहोच्चयः । उत्तरप्रवहाज्ञानजातपिङ्गलमूर्धजः ॥ ४७ ॥
तवतत्रतुयत्कुण्डमगस्तीश्वरसन्निधौ । तत्रस्नात्वा च पीत्वा च कृतसर्वोदकक्रियः

पितृन् पिण्डैः समभ्यर्च्य श्रद्धाश्राद्धविधानतः ।

कृतकृत्यो भवेज्जन्तुर्वाराणस्याः फलं लभेत् ॥ ४९ ॥

इत्युक्त्वा सर्वगात्राणि स्पृष्ट्वा कुम्भोद्वचस्य च ।

स्कन्दोऽमृतसरोवारि विगाह्य सुखमामवान् ॥ ५० ॥

जयविश्वेश! नेत्राणि विनिमीलय वदन्नपि ।

ततः किञ्चित्क्षणं दध्यौ गुहः स्थाणुसुनिश्चलः ॥ ५१ ॥

स्कन्दे विसर्जितध्याने सुप्रसन्नमनोमुखे । प्रतीक्ष्य घागवसरं पप्रच्छाथ मुनिर्गुहम्
अगस्तिरुवाच

स्वामिन् यथा भगवता भगवत्यंपुराऽकथि । वाराणस्यास्तुमहिमाहिमशैलभुवेमुदा
त्वयायथा समाकर्णि तदुत्सङ्गनिवासिना । तथाकथयषड्वचनत्र! तक्षेत्रं मेऽतिरोचते

स्कन्द उवाच

शृणुष्व मैत्रावरुणे! यथा भगवताऽकथि । तत्क्षेत्रस्याविमुक्तस्य मममातुः पुरःपुरा
श्रुतञ्च यत्तदुत्सङ्गे स्थितेनस्थिरचेतसा । माहात्म्यं तच्छृणु मुनेकथ्यमानं मयाऽनघ!
गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तमिहेरितम् । तत्र संनिहितासिद्धि स्तत्रनित्यं स्थितो विभुः
भूर्लोकैर्नैव संलग्नं तत्क्षेत्रं त्वन्तरिक्षमम् । अयोगिनो न वीक्षन्ते पश्यन्त्येष्वयोगिनः

यस्तत्र निषेद्विप्रसंयतात्मासमाहितः । त्रिकालमपि भुञ्जानोवायुभक्षसमोभवेत्
निमेषमात्रमपि यो ह्यविमुक्तोऽतिभक्तिभाक् । ब्रह्मर्ष्यसमायुक्तं तेन तप्तं महत्तपः
यस्तु भासं वसेद्वीरो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।

सर्वं तेन व्रतं चीर्णं दिव्यं पाशुपतं भवेत् ॥ ६१ ॥

संवत्सरं वसंस्तत्रजितक्रोधो जितेन्द्रियः । अपरस्वविपुष्टाङ्गः पराभ्रपरिवर्जकः
परापवाद्रहितः किञ्चिद्दानपरायणः । समाः सहस्रमन्यत्र तेन तप्तं महत्तपः ॥ ६३ ॥
यावज्जीवं वसेद्यस्तुक्षेत्रमाहात्म्यविभ्ररः । जन्ममृत्युभयंहित्वा सयातिपरमाङ्गतिम्
मयोर्गौर्यागतिलभ्या जन्मान्तरशतैरपि । अन्यत्र हेलया साऽत्र लभ्यैशस्यप्रसादतः
ब्रह्महा योऽभिगच्छेद्वै देवाह्वाराणसीं पुरीम् ।

तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद् ब्रह्महत्या निवर्तते ॥ ६६ ॥

आदेहपतनं यावद्योविमुक्तं न मुञ्चति । न केवलं ब्रह्महत्या प्रकृतिश्च निवर्तते ॥

अनन्यमानसो भूत्वा तत्क्षेत्रं यो न मुञ्चति । समुञ्चतिजरामृत्युर्गर्भघासंसुदुःसहम्
अविमुक्तं निषेवेत देवर्षिगणसेवितम् । यदीच्छेन्मानवो धीमान्नपुनर्जननं भुवि ॥
अविमुक्तं नमुञ्चेत् संसारभयमोक्षनम् । प्राप्य विश्वेश्वरं देवं न स भूयोऽभिजायते
कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं रिषह ।

न तु क्रतुशतप्राप्यः स्वर्गः काशीपुरीं विना ॥ ७१ ॥

अन्तकाले मनुष्याणां मिद्यमानेषु मर्मसु । वातेनानुद्यमानानां स्मृतिर्नैवोपजायते
तत्रोत्क्रमणकाले तुसाक्षाद्विश्वेश्वरःस्वयम् । व्याघ्रघृतेारकंब्रह्मयेनासौयन्मयोभवेत्
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वामानुष्यं बहुकिल्बिषम् । अविमुक्तं निषेवेतसंसारभयनाशनम्
विघ्नैरालोड्यमानोऽपि योऽविमुक्तं न मुञ्चति ।

नैःश्रेयसीं श्रियं प्राप्य दुःखान्तं सोऽधिगच्छति ॥ ७५ ॥

महापापौघशमनीपुण्योपख्यकारिणीम् । मुक्तिमुक्तिप्रदामन्तेकोनकाशींस्तुधीःश्रयेत्
ध्वं ज्ञात्वा तु मेधावी नाविमुक्तत्यजेन्नरः । अविमुक्तप्रसादेन विमुक्तो जायते यतः
अविमुक्तस्य माहात्म्यं षडभिर्बकत्रैः कथं मया ।

वक्तुं शक्यं न शक्नोति सहस्रास्योऽपि यत्परम् ॥ ७८ ॥
इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां सतुर्येकाशीतमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

मणिकर्णिकाख्यानवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

प्रसन्नोऽसियद्विस्कन्द! मयिप्रीतिरनुत्तमा । तत्समाचक्ष्वभगवन्धिरयन्मेहृदिस्थितम्
अविमुक्तमिदंक्षेत्रं कदारभ्य भुवस्तले । परां प्रथितिमापन्नं मोक्षदञ्चाभवत्कथम्
कथमेषा त्रिलोकीड्या गीयते मणिकर्णिका ।

तत्राऽऽसीत्किम्पुरा स्वामिन्यदा नाऽमरनिम्नगा ॥ ३ ॥

चाराणसीतिकाशीति रुद्रावासइतिप्रभो ! अवाप नामधेयानि कथमेतानि सा पुरी
आनन्दकाननं रम्यमविमुक्तमनन्तरम् ॥ ४ ॥

महाशमशान इतिचकथं ख्यातंशिखिध्वज ! एतदिच्छान्यहं श्रोतुं सन्देहंमैऽपनोदय

स्कन्द उवाच

प्रश्नभारोयमनुलस्त्वया यः समुदाहृतः । कुम्भयोनेऽमुमेवार्यमप्राक्षीदम्बिकाहरम्
यथा च देवदेवेन सर्वज्ञेन निवेदितम् । जगन्मातुः पुरस्ताच्च तथैव कथयामि ते ॥
महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजङ्गमे । आसीत्समोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम् ॥
अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्यनिलभूतलम् । अप्रधानं धियच्छून्यमन्यतेजोधिषर्धितम्
द्रष्टृत्वादिषिहीनञ्च शब्दस्पर्शसमुज्जितम् । व्यपेतगन्धरूपञ्च रसत्यक्तमदिङ्मुखम्
इत्थं सत्यन्धतमसि सूचीभेद्ये निरन्तरे । तत्सद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्वासवैकं प्रतिपाद्यते
अमनोगोचरोवाचां धिष्यं न कथंचन । अनामरूपवर्णञ्च नस्थूलं नच यत्कृशम् ॥

अहस्वदीर्घमलघुगुरुत्वपरिवर्जितम् । न यत्रोपचयः कश्चिसथा चापचयोपिच ॥
अभिधत्ते सचकितं यदस्तीति श्रुतिःपुनः । सत्यं ज्ञानमनन्तञ्च यदानन्दं परं महः
अप्रमेयमनाधारमधिकारमनाकृति । निगुणं योगिगम्यञ्च सर्वव्याप्यैककारणम् ॥

निर्विकल्पं निरारम्भं निर्मायं निरुपद्रवम् ।

यस्यैतथं संचिकल्प्यन्ते संज्ञाः संज्ञोदितस्यवै ॥ १६ ॥

तस्यैकलस्य चरतोद्वितीयेच्छाभवत्किल । अमूर्त्तैस्त्वमूर्त्तिश्च तेनाकलिपस्वलीलया
सर्वैश्वर्यगुणोपेतासर्वज्ञानमयी शुभा । सर्वगा सर्वरूपा च सर्वद्रुक्सर्वकारिणी ॥

सर्वैकबन्धा सर्वाद्या सर्वदा सर्वसङ्कृतिः ।

परिकल्प्येति तां मूर्त्तिमीश्वरीं शुद्धरूपिणीम् ॥ १६ ॥

अन्तर्दधे पराख्यं यद् ब्रह्म सर्वगमव्ययम् ॥ २० ॥

अमूर्त्तं यत्पराख्यं वैतस्यमूर्त्तिरहं प्रिये !। अर्वाचीनपराचीना ईश्वरं मां जगुर्बुधाः॥
ततस्तदेकलेनापि स्वैरं विहरतामया । स्वधिग्रहात्स्वयं सृष्टास्वशरीरानपायिनी
प्रधानं प्रकृतित्वाञ्च मायां गुणवतीं पराम् । बुद्धितस्वस्यजननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम्
युगपच्च त्वयाशतयासाकं कालस्वरूपिणा । मयाऽद्यपुरणेणैतत्क्षेत्रं चापि विनिर्मितम्

स्कन्द उवाच

साशक्तिः प्रकृतिः प्रोक्ता सपुमानीश्वरः परः । ताभ्याञ्चरममाणाभ्यां तस्मिन्क्षेत्रे बटोद्भव
परमानन्दरूपाभ्यां परमानन्दरूपिणि । पञ्चकोशपरीमाणे स्वपादतलनिर्मिते ॥
मुने! प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रं कदाचन । चिमुक्तं हि शिवाभ्यां यदचिमुक्तंततोचिदुः
न यदा भूमिषल्यं न यदाऽपां समुद्भव !। तदा विहर्तुमीशेन क्षेत्रमेतद्विनिर्मितम्
इदं रहस्यं क्षेत्रस्य वेदकोऽपि न कुम्भज । नास्तिकाय न वक्तव्यं कदाचिच्चर्मचक्षुषे
श्रद्धालवे विनीताय त्रिकालज्ञानचक्षुषे । शिवभक्ताय शान्ताय वक्तव्यञ्चमुमुक्षुषे ॥
अचिमुक्तं तदारभ्य क्षेत्रमेतदुदीर्यते । पर्यङ्कभूतं शिवयोर्निरन्तरसुखारूपदम् ॥ ३१ ॥

अभावः कल्प्यते मूर्दैर्यदा च शिवयोस्तयोः ।

क्षेत्रस्यास्य तदाभावः कल्प्यो निर्वाणकारिणः ॥ ३२ ॥

अनाराध्यमहेशानमनवाप्यसकाशिकाम् । योगायुपायविज्ञोऽपिननिर्वाणमवाप्नुयात्
अस्यानन्दधनं नाम पुराऽकारिपिनाकिना । क्षेत्रस्यानन्दहेतुत्वाद्विमुक्तमनन्तरम्
आनन्दकन्दबीजानामङ्कुराणि यतस्ततः । ज्ञेयानि सर्वलिङ्गानि तस्मिन्नानन्दकानने ॥

अविमुक्तमिति ख्यातमासीदित्यं घटोद्भव !

तथा चाख्याम्यथ मुने ! यथाऽऽसीन्मणिकर्णिका ॥ ३६ ॥

प्रागानन्दधने तत्र शिवयोरममाणयोः । इच्छेत्यभूत्कलशज! सृज्यः कोप्यपरः किल
यस्मिन्न्यस्ते महामारे आवां स्वःस्वैरचारिणौ ।

निर्वाणध्राणनं कुर्वः केवलं काशिशायिनाम् ॥ ३८ ॥

स एष सर्वं कुरुते स एष परिपाति च । स एव संवृणोत्यन्ते सर्वैर्भयनिधिःसच
चेतःसमुद्रमाकुञ्चयन्ताकलोलदोलितम् । सचवरत्नं तमोग्राहंरजोविद्रुमबल्लितम्
यस्य प्रसादात्तिष्ठावः सुखमानन्दकानने । परिक्षिप्तमनोवृत्तौ क्वहिचिन्तातुरे सुखम्
संप्रार्थयित्स विभु सर्वतश्चित्स्वरूपया । तथा सहजगद्धात्र्याजगद्धाताऽथध्रजटिः
सव्ये व्यापारयाञ्चक्रे दृशमङ्गे सुधामुचम् । ततः पुमानाविरासीदेकस्त्रैलोक्यसुन्दरः
शान्तः सत्त्वगुणोद्रिक्तो गाम्भीर्यजितसागरः ।

तथा च क्षमयायुक्तो मुनेऽलब्धोपमोऽभवत् ॥ ४४ ॥

इन्द्रनीलघृतिःश्रीमान्पुण्डरीकोत्तमेक्षणः । सुवर्णाकृतिःसुच्छायदुकूलयुगलावृतः ॥
लसत्प्रचण्डदोर्दण्डयुगलद्वयराजितः । उल्लसत्परमामोदनाभीहृदकुशेशयः ॥ ४६ ॥

एकःसर्वगुणावासस्त्वेकःसर्वकलानिधिः । एकःसर्वोत्तमोयस्मात्ततोयःपुरुषोत्तमः
ततो महान्तं तं वीक्ष्य महामहिमभूषणम् । महादेव उवाचेर्दं महाविष्णुर्भवाच्युत
तव निःश्वसितं वेदास्तेभ्यः सर्वमवैष्यसि । वेददृष्टेन मार्गेण कुरु सर्वं यथोचितम्
इत्युक्त्वा तं महेशानो बुद्धितत्त्वस्वरूपिणम् ।

शिवया सहितो रुद्रो विवेशाऽऽनन्दकाननम् ॥ ५० ॥

ततःसभगवान्विष्णुर्मौलावाह्नां निधायच । क्षणंध्यानपरोभूत्वा तपस्यैवमनोदधौ
खनित्वा तत्रचक्रेणरम्यां पुष्करिणींहरिः । निजाङ्गस्वेदसन्दोहंसलिलैस्तामपूरयत्

समाःसहस्रं पञ्चाशत्तप उप्रञ्चवार सः । चक्रपुष्करिणीतीरे तत्र स्थाणुसमाकृतिः
ततःसभगवानीशो मृडान्यासहितोमृडः । द्रष्टृज्वलन्तंतपसा निश्चलंमीलितेक्षणम्
तमुवाच हृषीकेशं मौलिमान्दोलयन्मुहुः । अहो महत्त्वं तपसस्त्वहोर्धैर्यं च चेतसः

अहो अनिन्धनो षड्विज्वलत्येष निरन्तरम् ।

अलं तप्त्वा महाविष्णो! वरं वरय सत्तम ॥ ५६ ॥

मृडस्याऽऽग्नेडितमिदं प्रत्यभिज्ञाय भाषितम् ।

उन्मीलितद्रुगम्भोजः समुत्तस्थौ चतुर्भुजः ॥ ५७ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

यदि प्रसन्नो देवेश!देवदेवमहेश्वर ! भवान्या सहितं त्वान्तु द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा
सर्वकर्मसु सर्वत्र त्वामेव शशिशेखर ! पुरश्चरन्तं पश्यामि यथा तन्मे वरस्तथा ॥
त्वदीयवचरणाम्भोजमकरन्दमधूत्सुकः । मञ्चेतोन्नमरोन्नान्ति विहायास्तुसुनिश्चलः

श्रीशिव उवाच

एषमस्तु हृषीकेश! यस्त्वयोक्तं जनार्दन ! अन्यं वरं प्रयच्छामि तमाकर्णय सुव्रत ॥
त्वदीयस्यास्य तपसो महोपचयदर्शनात् । यन्मयांदोलितोमौलिरहिश्चवणभूषणः

तदान्दोलनतःकर्णात्पपात मणिकर्णिका ।

मणिभिः खचिता रम्या ततोऽस्तु मणिकर्णिका ॥ ६३ ॥

चक्रपुष्करिणीतीर्थं पुरारूपातमिदं शुभम् । त्वया चक्रेण खननाच्छङ्खकगदाधर
ममकर्णात्पपातेयं यदाद्यमणिकर्णिका । तदाप्रभृतिलोकेऽत्ररूपातास्तुमणिकर्णिका

श्रीविष्णुरुवाच

मुक्ताकुण्डलपातेन तवाद्रितनयाप्रिय ! तीर्थानां परमं तीर्थं मुक्तिक्षेत्रमिहास्तु वै ॥
काशतेऽत्रयतोऽथोतिस्तदनाख्येयमीश्वरः । अतोनामापरञ्चास्तुकाशीतिप्रथितंविभो
अन्यं वरं वरे देव! देयः सोऽप्यविचारितम् । स ते परोपकारार्थंजगद्भ्रामणे! शिव!

आमह्यस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चिज्जन्तुसञ्चितम् ।

चतुर्भु भूतप्रामेषु काश्यां तन्मुक्तिमाप्स्यतु ॥ ६६ ॥

अस्मिंस्तीर्थवरेशम्भो! मणिभ्रूषणभूषणे । सन्ध्यां स्नानंजपहोमवेदाध्ययनमुत्तमम्
तर्पणं पिण्डदानञ्च देवतानाञ्च पूजनम् ॥ ७० ॥

गोभूतिलहिरण्याश्वदीपाभ्रम्बरभूषणम् । कन्यादानं प्रयत्नेन सप्ततन्तूननेकशः ॥
व्रतोत्सर्गवृषोत्सर्गलिङ्गादिस्थापनंतथा । करोतियोमहाप्राज्ञोद्वात्वायुःक्षणगत्वरम्
धिपत्तिं विपुलां चापि सम्पत्तिमतिभङ्गराम् ।

अक्षया मुक्तिरेकास्तु विपाकस्तस्य कर्मणः ॥ ७३ ॥

अन्यथापि शुभं कर्म यदत्र भ्रद्भयायुतम् । विनात्मघातमीशान! त्यक्त्वा प्रायोपवेशनम्
नैःश्रेयस्याः श्रियो हेतुस्तदस्तु जगदीश्वर ! ।

नाऽनुशोचति नाऽऽख्याति कृत्वा कालान्तरेऽपि यत् ॥ ७५ ॥

तदिहाक्षयतामेतु तस्येशत्वदनुग्रहात् । तत्र प्रसादात्तस्येश सर्वमक्षयमस्तु तत् ॥
यदस्ति यद्विष्यच्चयदृभूतञ्च सदाशिव ! । तस्मादेतच्च सर्वस्मात्क्षेत्रमस्तु शुभोदयम्
तथा सदाशिव! त्वत्तो न किञ्चिदधिकं शिवम् ।

तथा नन्दघनादस्मात्किञ्चिन्मास्त्वधिकं क्वचित् ॥ ७८ ॥

विना साङ्ग्यं न योगेन विना स्वात्मावलोकनम् ।

विना व्रततपोदानैः श्रेयोऽस्तु प्राणिनामिह ॥ ७९ ॥

शशका मशकाः कीटाः पतङ्गास्तुरगोरगाः ।

पञ्चकोश्यां मृताः काश्यां सन्तु निर्वाणदीक्षिताः ॥ ८० ॥

नामाऽपि गृह्णतां काश्याः सदैवास्त्वेनसःक्षयः ॥ ८१ ॥

सदाकृतयुगंचास्तु सदावास्तुत्तरायणम् । सदा महोदयश्चास्तु काश्यां निवसतां सताम्
यानिकानिपवित्राणि श्रुत्युक्तानि सदाशिव । तेभ्योऽधिकतरं चास्तु क्षेत्रमेतत्त्रिलोचन
चतुर्णामपि वेदानां पुण्यमध्ययनाच्चयत् । तत्पुण्यं जायतां काश्यां गायत्रीलक्षजाप्यतः
अष्टाङ्गयोगाभ्यासेन यत्पुण्यमपि जायते । तत्पुण्यं साधिकं भूयाच्छ्रद्धाकाशीनिषेवणात्
कृच्छ्रान्द्रायणाद्यैश्च यच्छ्रेयः समुपाज्यते । तदेकेनोपवासेन भवत्वानन्दकानने
अन्यत्र यत्तपस्तपत्वा श्रेयः स्याच्छ्रदांशतम् ।

तदस्तु काश्यां वर्षेण भूमिशय्या व्रतेन हि ॥ ८७ ॥

आजन्ममौनव्रततोयदन्त्रफलंस्मृतम् । तदस्तुकाश्यां पक्षाहःसत्यवाक्परिभाषणात्
अन्यत्रदस्वासर्वस्वंसुकृतंयत्समीरितम् । सहस्रभोजनात्काश्यांतद्भूयाद्युताधिकम्
मुक्तिक्षेत्राणि सर्वाणि यत्संसेव्योदितंफलम् ।

पञ्चरात्रास्तदत्रास्तु निषेव्य मणिकर्णिकाम् ॥ ९० ॥

प्रयागस्नानपुण्येनयत्पुण्यंस्याच्छिवप्रदम् । काशीदर्शनमात्रेणतत्पुण्यंश्रद्धयास्त्वह
यत्पुण्यमश्वमेधेन यत्पुण्यं राजसूयतः । काश्यां तत्पुण्यमाप्नोत त्रिरात्रशयनाद्यमी
तुलापुरुषदानेन यत्पुण्यं सम्यगाप्यते । काशीदर्शनमात्रेण तत्पुण्यं श्रद्धयास्तु वै
इतिविष्णोर्धरंश्रुत्वा देवदेवोजगत्पतिः । उवाच च प्रसन्नात्मा तथाऽस्तु मधुसूदन

श्रीमहादेव उवाच

शृणुविष्णोमहाबाहोजगतःप्रभवाप्यय । विधेहिस्मृष्टिविधिध्यायथावस्वंश्रुतीरिताम्
पितेवसर्वभूतानां धर्मतः पालको भव । विध्वंसनीयाविविधा धर्मध्वंसविधायिनः
धर्मतरपथस्थानामुपसंहृतये हरे । हेतुमात्रं भवान्यस्मात्स्वकर्मनिहताहि ते ॥ ९७
यथा परिणतं सस्यंपतेत्प्रसवबन्धनात् । तेपरीणतपाप्मानःपतिष्यन्तितथास्वयम्
ये च त्वामवमन्यन्ते दर्पिताः स्वतपोबलैः । तेषांस्वैवोपसंहृत्यैप्रभविष्याम्यहं हरे !
उपपातकिनोयेच महापातकिनश्चये । तेऽपि काशीं समासाद्य भविष्यन्तिगतैःनसः
इदंममप्रियंक्षेत्रं पञ्चकोशीपरीमितम् । ममाज्ञाप्रभवेदत्र नाऽन्याज्ञा प्रभवेदिह ॥१०१
पुनर्विष्णुर्मया प्रोक्तो मृडानि! शुमलोचने ! । अत्युग्रतेजसातेजोभ्रमंस्त्रैलोक्यविभ्रमः
पापिनामपि जन्तूनामविमुक्तनिवासिनाम् ।

नान्यः शासयिता विष्णो! तेषां शास्ताऽहमेव हि ॥ १०३ ॥

योजनानांशतस्थोपियोऽविमुक्तंस्मरेद्दृष्टि । बहुपातकपूर्णोऽपि नसपापैःप्रभाव्यते
ममप्रियस्यक्षेत्रस्ययोऽविमुक्तस्यसंस्मरेत् । प्राणप्रयाणसमये दूरगोऽप्यघघानपि
सपापपूगमुत्सृज्यस्वर्गभोगान्समश्नुते । काशीस्मरणपुण्येनस्वर्गाद्भ्रष्टोहिजायते
पृथिव्यामेकराड् भूत्वा भुक्त्वा भोगाननैकशः ।

प्राप्याऽचिमुक्तं तत्पुण्याभिर्वाणपद्माम्भवेत् ॥ १०७ ॥

बहुकालमुपित्वाऽत्र नियतेन्द्रियमानसः । यद्यन्यत्रचिपद्येत देवयोगाच्छुचिस्मिते !
सोऽपि स्वर्गसुखं भुक्त्वा भूत्वा क्षितिपतीश्वरः ।

पुनः काशीमवाप्याथ चिन्देभैःश्रेयसीं श्रियम् ॥ १०६ ॥

चिष्णोऽचिमुक्तेसंवासःकर्मनिर्मूलनक्षमः । द्वित्राणां हि पवित्राणां निर्वाणायै हजायते
चिष्णुरुवाच

देवेशक्षेत्रमाहात्म्यं योनजानातितस्वतः । नश्रद्धघातिमिष्यते मृतै तस्यैह का गतिः
शिष उवाच

अन्यत्रकृत्वापापानि बहूनि सुमहान्ति च । अश्रद्धघानोऽतस्वज्ञो यद्यत्र च विपद्यते
महिमन्यनमिहोपिक्षेत्रस्यास्यजनार्दन ! । तस्ययागतिरद्विष्टा तां निशामय सुव्रत ! ॥
पञ्चकोशीं प्रविशतस्तस्य पातकसन्ततिः । बहिरेष प्रतिष्ठेत नान्तर्निर्विशते कश्चित्
भयाद् बहिः स्थितायाञ्च तस्य पातकसन्ततौ ।

त्रिशूलपाशपाणीनां गणानां सीमन्चारिणाम् ॥ ११५ ॥

प्रवेशमात्रादनवः सर्वैरेनोभिरुज्जितः । संस्नायमणिकर्णिकर्ण्यपुण्यंप्राप्तोत्यनुत्तमम्
सर्वतीर्थेषु संस्नानाद्यत्पुण्यंसमवाप्यते । तत्पुण्यमाप्यते सम्यङ्मणिकर्ण्येकमज्जनात्
विधिना तत्र संस्नायमृद्गोमयकुशादिभिः । स्वशाखावारुणैर्मन्त्रैर्दूर्वापामार्गदर्भकैः ॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यंसर्वदानेषु यत्फलम् । मणिकर्ण्यां विधिज्ञातः श्रद्धया तद्वाप्नुयात्
अश्रद्धयापि यः स्नातो मणिकर्ण्यां विधानतः । सोऽपि पुण्यमवाप्नोति स्वर्गं प्राप्तिकरं परम्
श्रद्धया विधिघत्स्नात्वा कृत्वा देवादितर्पणम् ।

तिलबर्हिर्घ्नैः सम्यक्सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ १२१ ॥

श्रद्धघानो विधिज्ञातः कृतसर्वोदकक्रियः । जपन्देवान्समभ्यर्च्य सर्वमन्त्रफलं लभेत्
स्नात्वामौनेन विश्वेशदर्शनाश्रियतेन्द्रियः । सर्वव्रतकृतं श्रेयो लभेद्वाच्यमः शिवे
स्नाने देवार्चने जप्ये मलमूत्रविसर्जने । मौनं कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनहोमयोः
विश्वेश्वरं समभ्यर्च्य सूपचारैर्विधानतः ।

याचञ्जीवं शिवास्त्रायाः फलमाप्नोति वै सकृत् ॥ १२५ ॥

दत्त्वाऽल्पमपि देवेशि!न्यायेनोपार्जितंधनम् । अधिमुक्तेममक्षेत्रे न दरिद्रोभवेत्कश्चित्
विविधंधनमावर्ज्ययोऽधिमुक्ते न यच्छति । संप्राप्यनिधनंमूढोऽन्यत्रशोचतिसर्वदा
रम्याणि यानि रत्नानि गोगजाश्वाम्बराण्यपि ।

कृतानि तानि श्रेयोर्थमधिमुक्तनिवासिनाम् ॥ १२८ ॥

विश्वेशप्रीणनार्थायधननिधनमेषवा । न्यायेनकाश्यांयःकुर्यात्सधन्यःसखधर्मधित्
योऽसौ विश्वेश्वरो देवः काशीपुर्यामुमे ! स्थितः ।

लिङ्गरूपधरः साक्षान्ममश्रेयारूपदं हितत् ॥ १३० ॥

अधिमुक्तं महश्चेत्रंपञ्चकोशपरीमितम् । ज्योतिर्लिङ्गं तदेकंहिज्ञेयंविश्वेश्वराभिधम्
एकदेशस्थितमपियथामार्तण्डमण्डलम् । दृश्यते सर्वगं सर्वैःकाश्यांविश्वेश्वरस्तथा
निष्प्रत्यूहेन योगेन नानाजन्मार्जितेन च ।

यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यां त्यजतस्तनुम् ॥ १३३ ॥

तप्त्वा तपांसि सर्वाणि बहुकालं जितेन्द्रियैः ।

यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यामेकरात्रतः ॥ १३४ ॥

अक्षेत्रमहिमज्ञोऽपि श्रद्धाहीनोऽपि कालतः । काशीप्रवेशादनघोऽमृतत्वं लभने मृतः
कृत्वाप्येनांसि चोप्राणि कालात्प्राप्याथ काशिकाम् ।

त्यक्तवा तनुं प्रसादान्मे मामेष प्रतिपद्यते ॥ १३६ ॥

विना मम प्रसादं वै कःकाशींप्रतिपद्यते । विना ब्रध्नंविशालाक्षिदिनकृत्कइहोच्यते
अप्राप्यकाशींकोदेवि!निरन्तरसुखंलभेत् । ब्रह्माद्याः प्राकृतेः पार्श्वतोबद्धानिरन्तरम्
चतुर्विंशतिभिः पार्श्वस्त्रिगुणैः क्रियया दृढैः ।

कण्ठे बद्धा विमुच्यन्ते कथं काशीं विना जनाः ॥ १३६ ॥

बहुपसर्गो योगोऽयं कृच्छसाध्यन्तपो हियत् ।

योगाद् ब्रह्मस्तपोभ्रष्टो गर्भंक्लेशसहः पुनः ॥ १४० ॥

कृत्वाऽपि काश्यां पापानि काश्यामेव स्त्रियेत चेत् ।

भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनर्मुक्तिमवाप्स्यति ॥ १४१ ॥

काश्यां मृतानां जन्तूनां वैवात्पापकृतामपि । न पातो न रक्तेषां तेषां शास्ताहमेवयत्
कार्यं चिन्नाय सापार्यं स्मृत्वा गर्भस्य वेदनाम् ।

त्यक्तवा राज्यमपि प्राज्यं सेव्या काशी निरन्तरम् ॥ १४२ ॥

अतर्कितं समभ्येत्य यमदूताः सुदारुणाः । बद्ध्वा पाशैर्हनिष्यन्ति क्षिप्रं कार्शितः श्रयेत्
न पापेभ्यो भयं यत्र न भयं यत्र वै यमात् । न गर्भवासभीर्यत्र तां कार्शीं को न संश्रयेत्
अद्य प्रातः परश्वो वा मरणं प्राप्य मेव च । यावत्कालविलम्बोऽस्ति तावत्कार्शीं समाश्रयेत्
प्राप्ते तु मरणे पुंसां पुनर्जन्म पुनर्मृतिः । अपुनर्भवभूमिं च तस्मात्कार्शीं श्रयेद्बुधः

पुत्रक्षेत्रकलत्राख्यां त्यक्त्वा मायां हि वैष्णवीम् ।

भवान्तरेऽनेकरूपाम्भवर्षीं काशिकां श्रयेत् ॥ १४८ ॥

स्कन्द उवाच

दूरं मे मरणं युवाहमधुना धार्यं न चित्ते त्विति,

श्रोतव्यो निभृतं कृतान्तमहिषप्रैवेयघण्टारवः ।

नैकट्यात्प्रकटोत्कटश्रमघटामप्राप्य हित्वा द्रुतं,

जीर्णां पर्णकुटीं ततः पटुमतिर्गच्छेत्पुरीं धूर्जटेः ॥ १४६ ॥

व्यास उवाच

अगस्त्यस्य पुरःसूत! कथयित्वा कथामिमाम् । सर्वपापप्रशमनीं पुनःस्कन्द उवाच ह
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे मणिकर्णिकाख्यानं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

गङ्गामहिमवर्णनपूर्वकंदशहरास्तोत्रकथनम्

स्कन्द उवाच

वाराणसीतीप्राथतं यथा चानन्दकाननम् । तथा च कथयामीहदेवदेवेन भाषितम्

ईश्वर उवाच

निशामयमहाबाहो! विष्णोत्रैलोक्यसुन्दर !। प्रातंवाराणसीत्याख्यामचिमुक्तं यथा तथा
निर्दग्धानसागराञ्छ्रुत्वा कपिलक्रोधवह्निना ।

अश्वमेधाश्वसंयुक्तान्पूर्वजान् स्वान् भगीरथः ॥ ३ ॥

सूर्यवंशे महातेजा राजा परमधार्मिकः । आरिराधयिषुर्गङ्गां तपसे कृतनिश्चयः ॥ ४ ॥
हिमवन्तं नगश्रेष्ठममात्यन्यस्तराज्यधुः । जगाम यशसां राशिरुद्विधीर्षुः पितामहान्
ब्रह्मशापाग्निनिर्दग्धान्महादुर्गतिगानपि ।

चिना त्रिमार्गगां विष्णो! कोजन्तुं स्त्रिदिवं नयेत् ॥ ६ ॥

ममैव सा परामूर्त्तिस्तोयरूपा शिवात्मिका । ब्रह्माण्डानामनेकानामाधारः प्रकृतिः परा
शुद्धविद्यास्वरूपा च त्रिशक्तिः करुणात्मिका । आनन्दामृतरूपा च शुद्धधर्मस्वरूपिणी
यामेतां जगतां धार्त्रीं धारयामि स्वलीलया । विश्वस्य रक्षणां धार्य परब्रह्मस्वरूपिणीम्
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि पुण्यक्षेत्राणियानि च । सर्वत्र सर्वे धर्माः सर्वे यज्ञाः सदक्षिणाः
तपांसि विष्णो! सर्वाणि श्रुतिः साङ्गा चतुर्विधा ।

अहं च त्वञ्च कश्चापि देवतानां गणाश्च ये ॥ ११ ॥

पुरुषार्थाश्च सर्वे वैशक्तयो विविधाश्च याः । गङ्गायां सर्वे एवैते सूक्ष्मरूपेण संस्थिताः
सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वक्रतुषु दीक्षितः । क्षीर्णसर्वव्रतः सोपि यस्तु गङ्गां निषेवते
तपांसि तेन तप्तानि सर्वदानप्रदः स च । स प्राप्तयोगनियमो यस्तु गङ्गां निषेवते ॥
सर्ववर्णाश्रमेभ्यश्च वेदविद्वज्च वै तथा । शास्त्रार्थपारगेभ्यश्च गङ्गास्नायी विशिष्यते

मनोघाकायजैर्दोषैर्दुष्टो बहुविधैरपि । वीक्ष्य गङ्गां भवेत्पूतःपुरुषो नात्र संशयः ॥
 कृते सर्वत्र तीर्थानि त्रेतायां पुष्करम्परम् । द्वापरेतुकुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गैवकेवलम् ॥
 पूर्वजन्मान्तराभ्यासवासनावशतो हरे । गङ्गातीरे निवासःस्यान्मदनुग्रहतः परात्
 ध्यानं कृते मोक्षहेतुस्त्रेतायां तच्च वै तपः । द्वापरे तद्द्वयं यज्ञाःकलौ गङ्गैव केवलम्
 यो देहपतनाद्यावद्गङ्गातीरं न मुञ्चति । स हि वेदान्तविद्योगी ब्रह्मचर्यव्रती सदा ॥
 कलौ कलुषचित्तानां परद्रव्यरतात्मनाम् । विधिहीनक्रियाणाञ्च गतिर्गङ्गांघिनानहि
 अलक्ष्मीः कालकर्णीच दुःस्वप्नो दुर्विचिन्तितम् ।

गङ्गागङ्गैतिजपनात्तानि नोपविशन्ति हि ॥ २२ ॥

गङ्गा हि सर्वभूतानामिहामुत्र फलप्रदा । भावानुरूपतो विष्णो सदा सर्वजगद्धिता
 यज्ञदानतपोयोगजपाः सनियमायमाः । गङ्गासेवासहस्रांशं न लभन्ते कलौ हरे ॥
 किमष्टाङ्गेन योगेन किं तपोभिःकिमध्वरैः । वासएवहिगङ्गायां ब्रह्मज्ञानस्य कारणम्
 अपि दूरस्थितस्यापि गङ्गामाहात्म्यवेदिनः ।

अयोग्यस्यापि गोविन्द! भक्त्या गङ्गा प्रसीदति ॥ २६ ॥

श्रद्धाधर्मः परःसूक्ष्मः श्रद्धाज्ञानम्परन्तपः । श्रद्धास्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धया साप्रसीदति
 अज्ञानरागलोभाद्यैःपुंसां सम्मूढचेतसाम् । श्रद्धा न जायते धर्मे गङ्गायां चविशेषतः
 बहिःस्थितंजलंयद्भ्रारिकेलान्तरे स्थितम् । तथाब्रह्माण्डबाह्यस्थंपरब्रह्माम्बु जाह्नवी
 गङ्गालाभात्परो लाभःकश्चिदन्योन विद्यते । तस्माद्गङ्गामुपासीत गङ्गैवपरमः पुमान्
 शक्तस्यपण्डितस्यापिगुणिनोदानशीलिनः । गङ्गास्नानविहीनस्यहरेर्जन्मनिरर्थकम्
 वृथाकुलं वृथाविद्यावृथायज्ञा वृथातपः । वृथादानानितस्येह कलौगङ्गां न यो भजेत्
 गुणवत्पात्रपूजायांन स्याद्धैतादृशं फलम् । यथागङ्गाजलस्नानपूजनेविधिना फलम्
 ममतेजोऽग्निगर्भे यं ममवीर्यातिसंवृता । दाहिका सर्वदोषाणां सर्वपापघिनाशिनी
 स्मरणादेव गङ्गायाः पापसङ्घातपञ्जरम् । शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥

गङ्गां गच्छति यस्त्वेको यस्तु भक्त्याऽनुमोदयेत् ।

तयोस्तुल्यं फलं प्राहुर्भक्तिरेवात्र कारणम् ॥ ३६ ॥

गच्छंस्तिष्ठञ्जपन् ध्यायन् भुञ्जन् जाग्रत् स्वपन् वदन् ।

यः स्मरेत्सततं गङ्गां स हि मुच्येत बन्धनात् ॥ ३७ ॥

पितृनुद्विश्रयोभक्त्यापायसंमधुसंयुतम् । गुडसर्पिस्तिलैःसाधंगङ्गाम्भसिविनिक्षिपेत्
तृप्ताभवन्तिपितरस्तस्यवर्षशतंहरे । यच्छन्ति विविधान्कामान्परितुष्टाः पितामहाः
लिङ्गे सम्पूजिते सर्वमर्चितस्याज्जगद्यथा । गङ्गास्नानेन लभते सर्वतीर्थफलं तथा
गङ्गायांतुनरः स्नात्वायोलिङ्गंनित्यमर्चति । एकेनजन्मनामुक्तिपरां प्राप्नोतिसधुबम्
अग्निहोत्रं च यन्नाश्चव्रतदानतपांसि च । गङ्गायांलिङ्गपूजायाःकोट्यंशेनापिनोसमाः

गङ्गां गन्तुं विनिश्चित्य कृत्वा धाढ्यादिकं गृहे ।

स्थिनस्य सम्यक्सङ्कल्पान्तस्य नन्दन्ति पूर्वजाः ॥ ४३ ॥

पापानिचरुदन्त्याशुहा क्रयास्यामइत्यलम् । लोभमोहादिभिःसाद्धमन्त्रयन्तिपुनःपुनः
यथानगङ्गांयान्येषतथाचिप्रं प्रकुर्महे । गङ्गागतोयथाक्षेत्रे न उच्छित्ति विधास्यति ॥
गृहाद्गङ्गावगाहार्थं गच्छतस्तु पदे पदे । निराशान्निव्रजन्त्येवपापान्यस्य शरीरतः ॥

पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैस्त्यक्त्वा लोभादिकं हरे !।

व्युदस्य सर्वविघ्नौघान् गङ्गां प्राप्नोति पुण्यवान् ॥ ४७ ॥

अनुशङ्गेन मौल्येन वाणिज्येनापि सेवया ।

कामासकोऽपि वा मर्त्यो गङ्गास्नातो दिवं व्रजेत् ॥ ४८ ॥

अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनोहियथादहेत् । अनिच्छयापिसंस्नातागङ्गापापंतथादहेत्
तावद्भ्रमति संसारे यावद्गङ्गां न सेवते । संसेव्य गङ्गांनो जन्तुर्भवकलेशं प्रपश्यति
योगङ्गाम्भसिनिस्नातो भक्त्या संत्यक्तसंशयः । मनुष्यधर्मणान्द्रःसदेवोनात्रसंशयः
गङ्गास्नानार्थमुद्युक्तोमध्येमार्गं मृतो यदि । गङ्गास्नानफलं सोऽपि तदाप्नोतिनसंशयः
माहात्म्यं ये च गङ्गायाः शृण्वन्ति च पठन्ति च ।

तेप्यशेषैर्महापापैर्मुच्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ ५३ ॥

दुर्बुद्धयोदुराचारा हैतुका बहुसंशयाः । पश्यन्ति मोहिताविष्णो गङ्गामन्यनदीमिव
जन्मान्तरकृतैर्दानैस्तपोभिर्नियमैर्व्रतैः । इह जन्मनिगङ्गायां नृणां भक्तिः प्रजायते

गङ्गामक्तिमतामर्थे महेन्द्रादिपुरेषु च । हर्म्याणि रम्यभोगानिनिर्मितानिस्वयम्मुखा
सिद्धयः सिद्धिलिङ्गानि स्पर्शलिङ्गान्यनेकशः ।
प्रासादा रत्नरचिताश्चिन्तामणिगणा अपि ॥ ५७ ॥
गङ्गाजलान्तस्तिष्ठन्ति कलिकल्मषभीतितः ।
अत एव हि संसेव्या कलौ गङ्गेष्टसिद्धिदा ॥ ५८ ॥

सूर्योदये तमांसाव वज्रपातभयान्नगाः । तार्क्ष्येक्षणाद्यथा सर्पा मेघा वाताहता इव
तस्त्रज्ञानाद्यथामोहःसिंहद्रुप्रायथामृगाः । तथासर्वाणिपापानियान्तिगङ्गेक्षणात्क्षयम्
दिव्यौषधैर्यथारोगालोभेनच यथागुणाः । यथाप्रीप्सोष्मसम्पत्तिरगाधहृदमज्जनात्
तूलशैलः स्फुलिङ्गेन यथा नश्यति तत्क्षणात् ।

तथा दोषाः प्रणश्यन्ति गङ्गाम्भःस्पर्शनाद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

क्रोधेन च तपोयद्वत्कामेन च यथा मतिः । अनयेन यथा लक्ष्मीर्विद्यामानेन वै यथा
दम्भकौटिल्यमायाभिर्यथा धर्मोचिनश्यति । तथा नश्यन्तिपापानिगङ्गाया दशनैनेतु
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्सम्पातचञ्चलम् । गङ्गां यः सेवतेसोऽत्रबुद्धेःपारंपरगतः
विधृतपापायेमर्त्याःपरंज्योतिःस्वरूपिणीम् । सहस्रसूर्यप्रतिमांगङ्गांपश्यन्तितेभुवि
साधारणाम्भसापूर्णां साधारणनदीमिव । पश्यन्निनास्तिकागङ्गांपापोपहतलोचनाः
संसारमोक्षकश्चाहं जनानामनुकम्पया । गङ्गातरङ्गरूपेण सोपानं निर्ममे दिवः ॥
सर्व एव शुभः कालः सर्वोदिशस्तथाशुभः । सर्वोजनो दानपात्रं श्रीमती जाह्नवीतटे
यथाऽध्वमेधो यज्ञानांनगानां हिमघान्यथा । व्रतानाञ्चयथा सत्यं दानानामभयंयथा
प्राणायामश्च तपसां मन्त्राणां प्रणवो यथा ।

धर्माणामप्यर्हिस्ता च काम्यानां श्रीर्यथा वरा ॥ ७१ ॥

यथात्मविद्याविद्यानां स्त्रीणां गौरीयथोत्तमा । सर्वदेवगणानाञ्चयथात्वं पुरुषोत्तम
सर्वेषामेव पात्राणां शिवभक्तो यथा वरः । तथा सर्वेषु तीर्थेषु गङ्गातीर्थंविशिष्यते
हरौ यश्चावयोर्भेदं न करोति महामतिः । शिवभक्तः सविज्ञेयो महापाशुपतश्च सः
पापपांसुमहाबाट्या पापद्रुमकुठारिका । पापेन्धनदवाग्निश्च गङ्गेयं पुण्यवाहिनी

नानारूपाश्च पितरां गाथा गायन्ति सर्वदा ।

अपि कश्चित्कुलेऽस्माकं गङ्गास्नायी भविष्यति ॥ ७६ ॥

देवर्षीन्परिसन्तर्प्य दीनानाथांश्च दुःखितान् ।

श्रद्धया विधिना स्नात्वा दास्यते सलिलाञ्जलिम् ॥ ७७ ॥

अपि नः स कुले भूयाच्छिवे विष्णौ च साम्यदृक् ।

तदालयकरोभक्त्या तस्य सम्मार्जनादिकृत् ॥ ७८ ॥

अकामोच्चासकामोवातिर्यग्योनिगतोऽपिवा । गङ्गायां यो मृतो मर्त्यां नरकं स न पश्यति तीर्थमन्यत्प्रशंसन्ति गङ्गातीरे स्थिताश्च ये । गङ्गानं बहुमन्यन्ते ते स्युर्निरयगामिनः मां सत्त्वां चैव यो द्वेष्टि गङ्गां च पुरुषाध्रमः । स्वकीयैः पुरुषैः सार्धं सद्यो नरकं व्रजेत् षष्टिं णसहस्राणि गङ्गां रक्षन्ति सर्वदा । अभक्तानाञ्च पापानां वासे विघ्नप्रकुर्वन्ते कामक्रोधमहामोहलोभादिनिशितैः शरैः । घ्नन्ति तेषां नस्तत्र स्थितिं चापनयन्ति च गङ्गां समाश्रयेद्यस्तु स मुनिः स च पण्डितः । कृतकृत्यः स विज्ञेयः पुरुषार्थचतुष्टये गङ्गायाञ्च सकृत्स्नातो ह्यमेधफलं लभेत् । तर्पयंश्च पितृस्तत्र तारयेन्नरकार्णवात् नैरन्तर्येण गङ्गायां मासं यः स्नाति पुण्यवान् । शक्रलोके स वसति यावच्छक्रः स पूर्वजः अब्दं यः स्नाति गङ्गायां नैरन्तर्येण पुण्यभाक् ।

विष्णोर्लोकं समासाद्य स सुखं संवसेन्नरः ॥ ८१ ॥

गङ्गायां स्नातियो मर्त्यां यावज्जीवन्दिने दिने । जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो देहान्ते मुक्त एव सः तिथिनक्षत्रपूर्वादिनापेक्ष्यं जाह्नवीजले । स्नानमात्रेण गङ्गायां सञ्चितां च निश्चयति पण्डितोऽपि स मूर्खः स्याच्छक्तियुक्तोऽप्यशक्तिकः ।

यस्तु भागीरथीतीरं सुखसेव्यं न संश्रयेत् ॥ ९० ॥

किं वाऽऽयुषाऽप्यरोगेण विक्रासिन्याऽथ किं श्रिया ।

किं वा बुद्ध्या बिम्बलया यदि गङ्गां न सेवते ॥ ९१ ॥

यः कारयेदायतनं गङ्गाप्रतिष्ठते नरः । भुक्त्वा सभोगान् प्रेत्यापियाति गङ्गासलोकताम् शृण्वन्ति महिमानं ये गङ्गायानित्यमादरात् । गङ्गास्नानफलं तेषां चाचक्षमीणवाङ्मनै

पितृनुद्दिश्यथोलिङ्गं स्नपयेद्गङ्गवारिणा । तृप्ताः स्युस्तस्यपितरोमहानिरयगाभपि
अष्टकृत्वो मन्त्रजतैर्वस्त्रपूतैःसुगन्धिभिः । प्रोचुर्गाङ्गजलैः स्नानंघृतस्नानाधिकंबुधाः
अष्टद्रव्यविमिश्रेण गङ्गातोयेन यः सकृत् । मागधप्रस्थमात्रेण ताम्रपात्रस्थितेन च
भानवेऽर्घं प्रदद्याच्चस्वकीयपितृभिः सह । सोतितेजो विमानेन सूर्यलोकेमहीयते
आपः क्षीरं कुशाप्राणि घृतं मधुगवां दधि । रक्तानि करवीराणिरक्तचन्दनमित्यपि
अष्टाङ्गार्घ्यमुद्दिष्टस्त्वतीव रचितोषणः ।

गाङ्गैर्वाभिः कोटिगुणो ज्ञेयो विष्णोऽन्यवारितः ॥ ६६ ॥

गङ्गातीरे स्वशक्त्या यः कुर्याद्देवालयं सुधीः ।

अन्यतीर्थप्रतिष्ठातो भवेत्कोटिगुणं फलम् ॥ १०० ॥

अश्वत्थवटचूतादिवृक्षारोपेण यत्फलम् । कूपवापीतडागादिप्रपासत्रादिभिस्तथा
अन्यत्र यद्भवेत्पुण्यं तद्गङ्गादर्शनाद्भवेत् ।

पुष्पवाट्यादिभिश्चापि गङ्गास्पर्शं ततोऽधिकम् ॥ १०२ ॥

कन्यादानेन यत्पुण्यं यत्पुण्यं गोऽन्नदानतः ।

तत्पुण्यं स्याच्छतगुणं गङ्गागण्डूषणतः ॥ १०३ ॥

सान्द्रायणसहस्रेणयत्पुण्यंस्याज्जनार्दनं । ततोऽधिकफलंगङ्गाऽमृतपानादवाप्नुयात्
भक्त्या गङ्गावगाहस्य किमन्यत्फलमुच्यते ।

अक्षयः स्वर्गवासोऽपि निर्वाणमथवा हरे ॥ १०५ ॥

गङ्गायाः पादुकायुग्मं नित्यमर्चति यो नरः ।

आयुः पुण्यं धनं पुत्रान्स्वर्गमोक्षौ च चिन्दति ॥ १०६ ॥

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं कलिकल्मषनाशनम् । नास्ति मुक्तिप्रदं क्षेत्रमधिकमुक्तसमंहरौ
गङ्गास्नानरतं मर्त्यं द्रष्टुं यमकिङ्कराः ।

दिशो दश पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा मृगाः ॥ १०८ ॥

गङ्गाभजनशीलस्य गङ्गातटनिवासिनः । अर्वा कृत्वायथान्यायमभ्वमेधफलंभवेत् ॥
गोभूहिरण्यदानेन भक्त्या गङ्गातटे शुभे । नरो न जायते भूयः संसारे दुःखसङ्कटे ॥

दीर्घायुष्यञ्जवासोभिर्ज्ञानपुस्तकदानतः । अन्नदानेन सम्पत्तिं कीर्त्तिं कन्याप्रदानतः
अन्यत्रयत्कृतकर्मव्रतं दानं जपस्तपः । गङ्गातटे तु तत्सर्वं हरे ! कोटिगुणं भवेत्
धेनुं सवत्सां यो दद्याद्भङ्गातीरे विधानतः ।

गोरोमसंभयथा विष्णो! युगान्सर्वसमृद्धिमान् ॥ ११३ ॥

गोलोकेममलोकेवाकामधेनुमजावृतः । भुञ्जानःसर्षकामांस्तु दिव्यान्नानाविधान्बहून्
देवानामप्यलभ्यांश्च भुक्तवानुसहबान्धवैः । पितृभिश्च सुहृद्भिश्च सर्षरत्नविभूषितः
जायते सत्कुलेपञ्चाङ्गनधान्यसमाकुले । रत्नकाञ्चनसम्पन्ने शीलविद्यासमन्विते
भुक्त्वा स विपुलान् भोगान् पुत्रपौत्रसमन्वितः ।

पुनर्गङ्गां समासाद्य काम्यामुत्तरवाहिनीम् ॥ ११७ ॥

विश्वेश्वरंसमाराध्य प्राग्जनुर्वासनावशात् । कालाद्देहान्तमासाद्यब्रह्मसम्पद्यते ततः
चिचर्तनद्वयमपिभूमेर्भागीरथीतटे । नरो ददाति यो भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु
तद्भूमित्रसरेणुनांसङ्ख्येययुगमानया । महेन्द्रचन्द्रलोकेपुभुक्तवाभोगान्मनःप्रियान्
सप्तद्वीपपतिभूत्वा महाधर्मपरायणः । नरकस्थान्पितृन्सर्वान् प्रापयेत्त्रिदिवं हरे !

स्वर्गस्थांश्च पितृन् सर्वान् मोचयित्वा महाद्युतिः ।

अन्ते ज्ञानासिना छित्त्वा ह्यविद्यां पाञ्चभोतिकीम् ॥ १२२ ॥

परं वैराग्यमापन्नो युञ्जानो योगमुत्तमम् । प्राप्याथवाचिमुक्तञ्च परं ब्रह्माधिगच्छति
सुवर्णमात्रमपि नः सुवर्णं संप्रयच्छति । सुवर्णाय सुवर्णञ्च हरे ! भागीरथीतटे ॥
सहैमरत्नखचिते विमाने सधंगे शुभे । सर्वेश्वर्यसमायुक्तः सर्वलोकेषु पूजितः ॥

ब्रह्माण्डान्तरसंस्थेषु भुञ्जन्भोगान्मनोरमान् ।

सर्वैः सम्पूजितो विष्णो ! यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १२६ ॥

एकराट् च ततोभूत्वाजम्बूद्वीपेप्रतापवान् । ततोऽविमुक्तमासाद्यपदनिर्षाणमृच्छति
जन्मर्क्षे तु कृते स्नाने गङ्गायां भक्तिपूर्वकम् ।

जन्मप्रभृतिपापौघात्सञ्चितान्मुच्यते क्षणात् ॥ १२८ ॥

वैशाखे कार्तिकेमाघेगङ्गास्नानंसुदुर्लभम् । दर्शे शतगुणपुण्यसंक्रान्तौ च सहस्रकम्

चन्द्रसूर्यग्रहेलक्षंन्यतीपाते त्वनन्तकम् । अयुतं चिपुषे खैव नियुतं त्वथनद्वये ॥
सोमग्रहः सोमदिने रविचारे रवेर्ग्रहः । तच्चूडामणिपर्वाख्यं तत्रस्नानमसङ्कल्पकम्
स्नानंदानंजपोहोमोयद्यच्चूडामणौकृतम् । तदक्षयं सर्वमिहविष्णो ! भागीरथीतटे
श्रद्धया भक्तियुक्तस्तु गङ्गां स्नात्वा विधानतः ।

ब्रह्महाऽपि विशुद्धयेत किं पुनस्त्वन्यपातकी ॥ १३३ ॥

कृमिकीटपतङ्गाद्या येमृताजाह्ववीतटे । कूलात्पतन्तिवैवृक्षास्तेपि यान्तिपरंगतिम्
ज्येष्ठेमासि सितेपक्षेदशम्यांहस्तसंयुते । गङ्गार्तारे तु पुरुषो नारी वा भक्तिभावतः
निशायां जागरं कुर्याद्गङ्गां दशविधैर्हरे ! । पुण्यैः सुगन्धैर्नैवेद्यैः फलेर्दशदशोन्मितैः
प्रदीपैर्दशभिर्धूपैर्दशाङ्गैर्गरुडध्वज ! । पूजयेच्छुद्धयाधीमान्दशकृत्वो विधानतः ॥ ३७

साज्यांस्तिलान्क्षिपेत्तोये गङ्गायाः प्रसृतीर्दश ।

गुडसक्तुमयान् पिण्डान्दद्याच्च दशमन्त्रतः ॥ १३८ ॥

नमःशिवायै प्रथमंनारायण्यै पदंततः । दशहरायै पदमिति गङ्गायै मन्त्र एष वै ॥
स्वाहान्तःप्रणवादिश्वभवेर्द्विशाक्षरो मनुः । पूजादानंजपोहोमोऽनेनैव मनुनास्मृतः
हेम्नारूप्येण वा शक्त्या गङ्गामूर्त्तिं विधाय च ।

बह्नाच्छादितवक्त्रस्य पूर्णकुम्भस्य चोपरि ॥ १४१ ॥

प्रतिष्ठाप्या यैद्वेषीपञ्चामृतविशोधिताम् । घतुभुजांत्रिनेत्राञ्च नदीनदनिषेचिताम्
लावण्यामृतनिषन्दंशीलद्रात्रयष्टिकाम् । पूर्णकुम्भसिताम्भोजषरदाभयसत्कराम्
ततो ध्यायेत्सुसौम्याञ्च चन्द्रायुतसमप्रभाम् ।

चामरैर्वीज्यमानाञ्च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम् ॥ १४४ ॥

सुधाप्लावितभूपृष्ठांदिव्यगन्धानुलेपनाम् । त्रैलोक्यपूजितपदां देवर्षिभिरभिष्टुताम्
ध्यात्वा समर्च्यमन्त्रेणधूपदीपोपहारतः । मां च त्वाञ्चविधिर्ब्रह्मन्हिमवन्तंभागीरथम्
प्रतिमाप्रे समभ्यर्च्यचन्द्रनाक्षतनिर्मिताम् । दशप्रस्थतिलान्दद्याद्दशविप्रेभ्यआदरात्
पलञ्चकुडवःप्रस्थआढकोद्रोणेष च । धान्यमानेन बोद्धव्याः क्रमशोऽमीचतुर्गुणाः
अत्स्यकच्छपमण्डकमकरादिजलेष्वरान् । हंसकारण्डवकचक्रट्टिभसारसान् ॥

यथाशक्तिस्वर्णरूप्यताम्रपृष्ठविनिर्मितान् । अभ्यर्च्यगन्धकुसुमैर्गङ्गायांप्रक्षिपेद्व्रती
 षण्ढृत्वाविधानेन विस्रशाठ्यविवर्जितः । उपवासी वक्ष्यमाणैर्दशापापैःप्रमुच्यते ॥
 अदत्तानामुपादानं हिंसाचैवाविधानतः । परदारोपसेवाचकायिकं त्रिविधंस्मृतम् ॥
 पाठ्यममृतं चैव पेशुन्यं चैव सर्वशः । असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥
 परद्रव्येष्वभिधानंनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्चमानसंत्रिविधंस्मृतम्
 एतैर्दशविधैः पापैर्दशजन्मसमुद्भवैः । मुच्यते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं गदाधर ! ॥
 उद्धरेन्नरकात्पूर्वान्दशधोरादृशावरान् । वक्ष्यमाणमिदं स्तोत्रं गङ्गाये श्रद्धया जपेत्
 र्छन्मःशिषायैर्गङ्गायैशिवदायैर्नमोनमः । नमस्तेविष्णुरूपिण्यैर्ब्रह्मस्यैर्नमोऽस्तुते
 नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शङ्कर्यै ते नमोनमः । सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्त्तये ॥

सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते ।

स्यास्तुजङ्गमसंभूतविषहन्त्र्यै नमोऽस्तु ते ॥ १५६ ॥

संसारविषनाशिन्यै जीवनायैर्नमोऽस्तुते । तापत्रितयसंहन्त्र्यै प्राणेश्यैते नमोनमः
 शान्तिस्तानकारिण्यैर्नमस्ते शुद्धमूर्त्तये । सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्त्तये ॥
 भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यैर्भद्रदायैर्नमोनमः । भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तुते
 मन्दाकिन्यैर्नमस्तेऽस्तुस्वर्गदायैर्नमोनमः । नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिपथायै नमोनमः ॥
 नमस्त्रिशुक्रसंस्थायै क्षमावत्यै नमोनमः । त्रिहुताशनसंस्थायै तेजोवत्यै नमोनमः
 नन्दायै लिङ्गधारिण्यै सुध्राधारात्मने नमः । नमस्ते विश्वमुखायै रेवत्यैतेनमोनमः
 बृहत्यैतेनमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यैर्नमोऽस्तुते । नमस्तेविश्वमित्रायैर्नन्दिन्यैतेनमोनमः
 पृथ्व्यैशिवामृतायै च सुवृषायै नमोनमः । परापरशताढ्यायै तारायै ते नमोनमः
 पाशाङ्गालनिहन्तिन्यै अभिन्नायैर्नमोऽस्तुते । शान्तायै चचरिष्ठायै वरदायै नमोनमः
 उग्रायै सुखजग्ध्यै चसञ्जीविन्यै नमोऽस्तुते । ब्रह्मिष्ठायैर्ब्रह्मदायैर्दुरितघ्न्यै नमोनमः
 प्रणतार्त्तिप्रमञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तुते । सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमोनमः ॥
 शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ! सर्वस्यार्तिहरे ! देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तुते ॥
 निर्लेपायैर्दुर्गाहन्त्र्यै दक्षायै तेनमोनमः । परापरपरायैश्च गङ्गे ! निर्वाणदायिनि ! ॥

सप्तविंशोऽध्यायः] * गौरीगङ्गयोःशिवविष्णोश्चामेदवर्णनम् *

१८३

गङ्गे!ममाऽप्रतोभूयागङ्गे!मेतिष्ठपृष्ठतः । गङ्गे!मेपाश्वयोरेधिगङ्गे! त्वव्यस्तुमेस्थितिः
आदौत्वमन्तेमध्येचसर्वत्वंगाङ्गते शिवे !। त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि

गङ्गे! त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमःशिवे !॥ १७४ ॥

यद्दंपठते स्तोत्रं शृणुयाच्छ्रद्धयाऽपियः । दशधामुच्यतेपापैःकायवाक्चित्तसम्भवेः

रोगस्थो रोगतो मुच्येद्विपद्भ्यश्च विपद्यतः ।

मुच्यते बन्धनाद् बद्धो भीतो भीतेः प्रमुच्यते ॥ १७६ ॥

सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य च त्रिदिवं व्रजेत् ।

दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीपरिर्वाजितः ॥ १७७ ॥

गृहेऽपिलिखितंयस्यसदातिष्ठतिधारितम् । नाग्निश्चौरभयंतस्यनसर्पादिभयंकञ्चित्

ज्येष्ठे मासे सितेपक्षे दशमीहस्तसंयुता । संहरेत्त्रिचिधं पापं बुधवारेण संयुता ॥

तस्या दशम्यामेतच्च स्तोत्रंगङ्गाजलेस्थितः । यःपठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रोवापिष्वाक्ष्म-

सोऽपि तत्फलमाप्नोतिगङ्गासंपूज्ययत्नतः । पूर्वोक्तेन विधानेनयत्फलसंप्रकीर्तितम्

यथागौरीतथागङ्गातस्माद्गौर्यास्तुपूजने । योविधिर्विहित सम्यक्सोपिगङ्गाप्रपूजने

यथाऽहं त्वंतथा विष्णोयथात्वन्तुतथाह्युमा । उमायथातथागङ्गाश्चतुरूपेण भिद्यते

विष्णुरुद्रान्तरं चैव श्रीगौर्योऽन्तरंतथा । गङ्गागौर्यन्तरं चैव योव्रूते मूढधीस्तु सः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां तृतीये काशीखण्डे

गङ्गामहिमवर्णनपूर्वकंदशहरास्तोत्रकथनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

गङ्गामहिमवर्णनम्

उमोवाच

किञ्चित्प्रष्टुमनानाथ!स्वसन्देहापनुत्तये । वद खेदो यदि न ते त्रिकालज्ञानकोविद॥
तथाभगीरथो राजाककभागीरथीतदा । यदाविष्णुस्तपस्तेपेचकपुष्करिणीतटे ॥

शिष उवाच

सन्देहोऽत्रनकर्तव्योविशालाक्षि!सदाऽमले ॥ श्रुतौ स्मृतौ पुराणेषुकालत्रयमुदीर्यते
भूतंभाविभवच्चापिसंशयंभाव्याकृथाः । इत्युक्त्वापुनरादेशो गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ॥

अगस्त्य उवाच

पाषंतीनन्दन! पुनर्द्युनद्याः परितो वद । महिमोक्तो हरी यद्वद्वेषदेवेन वैःतदा ॥५॥

स्कन्द उवाच

मुनेऽत्र मैत्रावरुणे!यथादेवेन भाषितम् । शृणुत्रिपथगामिन्यामाहात्म्यंपातकापहम्

त्रिस्त्रोतसं समासाद्य सकृत्पिण्डान्ददाति यः ।

उद्बधुताःपितरस्तेनभवाम्भोधेस्तिलोदकैः ॥ ७ ॥

याचन्तश्च तिलामर्त्यैर्गृहीताःपितृकर्मणि । तावद्वर्षसहस्राणि पितरः स्वर्गवासिनः
देवाःस पितरोयस्माद्गङ्गायांसर्वदास्थिताः । आवाहनं विसर्गश्चतेषां तत्र ततो नहि
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे तथैव च । गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः
अजातदन्ता येकेचिद्ये च गर्भेप्रपीडिताः । अग्निविद्युश्चोरहता व्याघ्रदंष्ट्रिभिरिव च ॥

उद्बन्धनमृता ये च पतिता आत्मघातकाः ।

आत्मचिक्रयिणश्चोरा ये तथाऽयाज्ययाजकाः ॥ १२ ॥

रसचिक्रयिणोयैश्चबैचान्ये पापरोगिणः । अग्निदागरदाश्चैवगोम्राश्चैव स्ववंशजाः
अस्तिपन्नघनेये च कुम्भीपाके च येगताः । रौरवेऽप्यन्धतामिस्त्रे कालसूत्रे च येगताः

अष्टाविंशोऽध्यायः] * गङ्गातटेखण्डस्फुटितसंस्कारमहस्ववर्णनम् * १८५

जात्यन्तरसहस्रेषुभ्राम्यन्ते येस्वकर्मभिः । येतुपक्षिमृगादीनांकीटवृक्षाद्विबीरुधाम्
योनिं गतास्त्वसङ्ख्याताः सङ्ख्याता नामशोभनाः ।

प्रापिता यमलोकं तु सुघोरैर्यमकिङ्करैः ॥ १६ ॥

येऽबान्धवाबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।

येऽपि चाऽज्ञातनामानो ये चाऽपुत्राः स्वगोत्रजाः ॥ १७ ॥

विषेण च मृता वै ये ये वैश्टङ्गिभिराहताः । कृतघ्नाश्च गुरुघ्नाश्च ये च मित्रद्रुहस्तथा
स्त्रीबालघातकाये च ये च विन्वासघातकाः । असत्यहिसानिरताः सदापापरताश्च ये
अश्वविक्रयिणो ये च परद्रव्यहराश्च ये । अनाथाःकृपणादीना मानुष्यं प्राप्तुमक्षमाः
तर्पिता जाह्नवीतोयैर्नरेण विधिना सकृन् ।

प्रयान्ति स्वर्गतिं तेऽपि स्वर्गिणो मुक्तिमाप्नुयुः ॥ २१ ॥

एतान्मन्त्रान्समुच्चार्यःकुर्यात्पितृतर्पणम् । श्राद्धं पिण्डप्रदानञ्च सविधिञ्च इहोच्यते
कामप्रदानि तीर्थानि त्रैलोक्ये यानि कानिचिन् ।

नानि सर्वाणि सेवन्ते काश्यामुत्तरवाहिनीम् ॥ २३ ॥

स्वःसिन्धुःसर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ।

काश्यां विशेषतो विष्णो यत्र स्रोत्तरवाहिनी ॥ २४ ॥

गायन्तिगाथामेतांवेदेवर्षिपितरोगणाः । अपिटृगोचरानः स्यात्काश्यामुत्तरवाहिनी
यत्रत्यामृतसंतृप्तास्तापत्रितयवर्जिताः । स्यामत्वमृतमेवाद्धा विभवनाथप्रसादतः
गङ्गैवकेवला मुक्त्यैर्निर्णीता परितोहरे । अविमुक्ते विशेषेणममाधिष्ठानगौरवात्
ज्ञान्वा कलियुगं धोरं गङ्गाभक्तिःसुगोपिता ।

न विन्दन्ति जना गङ्गां मुक्तिमार्गकदायिकाम् ॥ २८ ॥

अनेकजन्मनियुतंभ्राम्यमाणस्तुपोनिषु । निर्वृत्तिप्राप्नुयात्कोऽत्र जाह्नवीभजनंविना
नराणामल्पबुद्धीनामेनोविक्षिप्तचेतसाम् । गङ्गैव परमं विष्णो! भेषजं भवरोणिणाम्
खण्डस्फुटितसंस्कारंगङ्गातीरेकरोतियः । मम लोकेचिरंकालं तस्याऽक्षयसुखं हरे!
गन्तुमुद्दिश्ययोगङ्गां परार्थं स्वार्थमेववा । नगच्छतिपरं मोहात्स पतेत्पितृभिः सह

सर्वाणियेषां गङ्गैर्यैस्तोयैः कृत्यानिदेहिनाम् । भूमिस्था अपितेमर्त्या अमर्त्या एषवैहरे !
चरमेऽपि वयोभाग स्वःसिन्धुं योनिं वेधते ।

कृत्वाऽप्येनांसि बहुशः सोऽपि यायाच्छ्रमां गतिम् ॥ ३४ ॥

यावदस्थिमनुष्याणां गङ्गातोयेषु तिष्ठति । तावदब्दसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

विष्णुरुवाच

देवदेव जगन्नाथ ! जगतां हितकृत्प्रभो ! कीकसञ्चेत्पतेद्वैवाद्दुर्वृत्तस्य दुरात्मनः ॥
जलेद्यन्धानिष्पापेकथं तस्य परागतिः । अपमृत्युविषण्णस्य तदीश ! विनिवेद्यताम् ॥

महेश्वर उवाच

अत्रार्थं कथयिष्यामि पुरा वृत्तमधोक्षज ! शृणुष्वैकमनाविष्णो ! बाहीकस्य द्विजन्मनः
पुरा कलिङ्गविषये द्विजो लषणचिक्रयी । सन्ध्यास्नानविहीनश्च वेदाक्षरविवर्जितः
बाहीको नाम तोयज्ञसूत्रमात्रपरिग्रहः । परिग्रहश्च तस्यासीत्कौचिन्दीविधवा तवा ॥
दुर्मिक्षपीडितेनाऽथ वृषलीपतिना विना । प्राणाधारं तदा तेन देशादेशान्तरं ययौ
मध्येऽथ दण्डकारण्यं श्रुत्क्षामः सङ्गवर्जितः । व्याघ्रेण चातितस्तत्र नरमांसप्रियेण सः
तस्य वामपदं गृध्रो गृहीत्वोदपतत्ततः । मांसाशिनाऽन्यगृध्रेण तस्य युद्धमभूद्विधि ॥
गृध्रयोरामिषं गृध्रवोः परस्परजयैषिणोः । अवाप तत्पादगुल्फं कंकचञ्चुपुटासदा ॥
तस्य बाहीकविप्रस्य व्याघ्रव्यापादितस्य ह ।

मध्ये गङ्गं देवयोगादपतद्यद् द्वन्द्वकारिणोः ॥ ४५ ॥

यदैव हतवान् द्वीपीतं बाहीकमरण्यगम् । तस्मिन्नेव क्षणे बद्धः सपाशैः क्रूरकिङ्करीः
कशाभिर्घातितो त्यन्तमाराभिः परितोदितः । वमन् रुधिरमास्येन नीतस्तैः सयमाग्रतः
आपृच्छिधर्मराजेन चित्रगुप्तोऽथमापते ! । धर्माधर्मविचार्यास्य कथया शुद्धिजन्मनः ॥
वैवस्वतेन पृष्टोऽथ चित्रगुप्तो विचित्रधीः । सर्वदा सर्वजन्तूनां वेदिता सर्वकर्मणाम्
जगाद् यमुनाबन्धुं बाहीकस्य द्विजन्मनः । कर्मजन्मदिनारभ्य दुर्वृत्तस्य शुभेतरम्

चित्रगुप्त उवाच

गर्भाधानादिकं कर्म प्राक्कृतं नाऽस्य केनचित् ।

जातकर्मकृतं नाऽस्य पित्राऽज्ञानवता हरैः ।

गर्भेनः शमने हेतुः समस्तायुः सुखप्रदम् । एकादशेऽङ्कि नामास्यनकृतं विधिपूर्वकम्
ख्यातः स्याद्येन विधिना सर्वत्र विधिपावनम् ।

नाकार्षीन्निर्गमं चाऽस्य स्वतुर्ये मासि मन्दधीः ॥ ५३ ॥

जनकः शुभतिथ्यादौ विदेशगमनापहम् । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासिनकृतं विधिपूर्वकम्
सर्वदामिष्टमश्नातिकर्मणा येन भास्करे ! । न चूडाकरणं चास्य कृतमभ्येयथाकुलम्
कर्मणा येन केशाः स्युः स्निग्धाः कुसुमवर्षिणः ।

नाऽकारि कर्णवेधोऽस्य जनित्रा समये शुभे ॥ ५६ ॥

सुवर्णप्राहिणौयेन कर्णोऽस्याताञ्चसुश्रुती । मौञ्जीबन्धोप्यभूदस्यव्यतीतेऽदेऽष्टमेहरेः!

ब्रह्मचर्याभिवृद्धये यो ब्रह्मग्रहणहेतुकः ॥ ५७ ॥

मौञ्जीमोक्षणवार्ताऽपि कृता नास्य जनुः कृता ।

गार्हस्थ्यं प्राप्यते यस्मात्कर्मणोऽनन्तरं वरम् ॥ ५८ ॥

यथा कथञ्चिद्ब्रूदाऽथपत्नीत्यक्तकुलाध्वगा । वृषलीपतिना तेन परदारापहारिणा ॥
आरभ्यपञ्चमाहर्षात्परस्वस्यापहारकः । अभूदेश दुराचारो दुरोदरपरायणः ॥ ६० ॥
रुमायां वसताऽनेन हता गौरैकवार्षिकी । एकदा दृढदण्डेन लिहन्ती लवणं मृता
जननीं पादघातेन बहुशोऽसावताडयत् । कदाचिदपि नो वाक्यं पितुः कृतमनेन वै
चिपं भक्षितवानेष बहुशः कलहप्रियः । जनोपतापशीलोऽसौ कृतोदरविदारणः
धत्तूरकरवीरादि बहुधोपविषाणि च । क्रीडाकलहमात्रेण भक्षयच्चैष दुर्मतिः ॥
दग्धोऽसावग्निनासौरैःश्वभिश्चकवलीकृतः । शृङ्गिभिःपरितःप्रोत्रोविषाणाग्रैरसौबहु
दन्दशूकैर्भृशं दष्टो दुष्टः शिष्टैर्विगर्हितः । काष्ठेष्टलोष्टैः पापिष्टः कृतानिष्टःसदात्मनः
आस्फालितं शिरोऽनेनासकृन्वापि दुरात्मना । यदच्यतेसदासद्विरुत्तमाङ्गमनेकथा
असौ हि ब्राह्मणो मन्दो गायत्रीमपि वेद न ।

कामतो मत्स्यमांसानि जग्धान्येकेन दुर्धिया ॥ ६८ ॥

आत्मार्यं पायसमसौपर्यपाक्षीदनेकथा । लाक्षालवणमांसानां स पयोदधिसर्पिषाम्

विषलोहायुधानाञ्च दासीगोवाजिनामपि ।

विक्रैताऽसौ सदा मूढस्तथा वै केशचर्मणाम् ७० ॥

शूद्रान्नपरिपुष्टाङ्गः पर्वण्यहनि मैथुनी । पराङ्मुखो वैषपिष्यकर्मण्येष दुरात्मवान् ॥
पक्षिणो घातितानेन मृगाश्चापि परः शतम् । अकारणदुमच्छेदीसदा निर्दयमानसः
उद्वेगजनको नित्यं निजबन्धुजनेष्वपि । असत्यवादी सततं सदाहिसापरायणः ॥
अदत्तदानः पिशुनः शिशनोदरपरायणः । किं बहूक्तेन रविज! साक्षात्पातकमूर्त्तिमान्
रौरवेऽप्यन्यतामिच्छे कुम्भीपाकेऽतिरौरवे । कालसूत्रेकमिभुजि प्यशोणितकर्ममे
असिपत्रवने घोरे यन्त्रपीडे सुदंष्ट्रके । अधोमुखे पूनिगन्ध्रे विष्टागर्त्संभवोजने ॥
सूचीभेद्येऽप्यसदंशे लालापे भ्रुरधारके । प्रत्येकं नरके त्वेव पात्यतां कल्पसङ्घनया
धर्मराजः समाकर्ण्यचित्रगुप्तमुखादिति । निर्भर्त्स्य तं दुराचारं किङ्करानादिदेशह
भ्रूसङ्घनया हृतेनीतःसवद्भुवनिरयालयम् । आक्रन्दशवोयत्रोच्चैःपापिनारोमहर्षणः

ईश्वर उवाच

यातनास्वतिततीवासुवाहीकेसंस्थिते तदा । तत्कालपुण्यफलदे गाङ्गेयाम्भसिनिर्मले
पतिततद्वि गृध्रास्याद्वाहीकस्यद्विजन्मनः । हरे! विमानं तत्कालमापन्नं सुरसद्यतः
त्रण्टाबलम्बितं दिव्यं दिव्यस्त्रोशतसङ्कुलम् । आरुह्य देवयानं सदिव्यवेषधरोद्विजः
वीज्यमानोऽप्सरोवृन्दैर्दिव्यगन्धानुलेपनः । जगाम स्वर्गंभुवनं गङ्गास्थिपतनाद्धरे

स्कन्द उवाच

वस्तुशक्तिविधारोऽयमद्भुतःकोऽपिकुम्भज ! । द्रवरूपेणकाव्येषाशक्तिःसादाशिबीपरा
करुणामृतपूर्णं देवदेवेन शम्भुना । एषा प्रवर्तिता गङ्गा जगदुद्धरणाय वै ॥ ८५ ॥
यथान्याः सरितोलोकधारिपूर्णाःसहस्रशः । तथैवानुमन्तव्यासद्विस्त्रिपथगामिनी
श्रुत्यक्षराणिनिश्चात्य कारुण्याच्छम्भुना मुने । निर्मितातद्रुद्रवैरेपागङ्गागङ्गाधरेणचै
योगोपनिषदामेतंसारमारुष्य शङ्करः । रूपयासर्वजन्तूनांघकारसरिताम्बराम् ॥
अकलानिधयो रात्र्योषिपुष्पाक्षैव पादपाः । यथा तथैव तेश्यात्रनास्त्यमरापगा
अनयाः सम्पदो बह्वन्मखायद्रदक्षिणाः । तद्रदंशादिशः सर्वाहीनागङ्गाम्भसाहरे ! ॥

व्योमाङ्गणमनकञ्च नक्तेऽदीपं यथागृहम् । अवेदाब्राह्मणा यद्वद्रङ्गाहीनास्तथादिशः

चान्द्रायणसहस्रन्तु यः कुर्याद्विहशोधनम् ।

गङ्गामृतं पिबेद्यस्तु तथोर्गङ्गाम्बुपोऽधिकः ॥ ६२ ॥

पादेनेकेनयस्तिष्ठेत्सहस्रं शरदांशतम् । अब्दं गङ्गाम्बुपो यस्तुतयोर्गङ्गाम्बुपोऽधिकः

अवाक्शिराः प्रलम्बेद्यः शतसंवत्सराब्जः । भीष्मसूचालुकातल्पशयस्तस्माद्द्वरोहरे

पापतापामितप्तानां भूतानामिह जाह्नवी । पापतापहरायद्वद्रङ्गा नान्यत्तथाकली ॥

ताश्चर्यवीक्षणमात्रेण फणिनो निर्विषा यथा ।

निष्प्रभाणि तथैनांसि भागीरथ्यवलोकनात् ॥ ६६ ॥

गङ्गातटोद्भवां मृत्स्नां यो मौलौ विभृयाब्जः ।

विभर्ति सोऽर्कविम्बं वै तमोनाशायनिश्चितम् ॥ ६७ ॥

व्यसनैरभिभूतस्य धनहीनस्य पापिनः । गङ्गैव केवलं तस्य गतिरुक्ता नचान्यथा ॥

श्रुताऽभिलपिता दृष्टा स्पृष्टापीताऽवगाहिता । पुंसां वंशद्वयं गङ्गाताख्येऽत्रसंशयः

कीर्तनाद्दर्शनात्स्पर्शाद्गङ्गापानावगाहनात् । दशोत्तरगुणाज्ञेया पुण्यापुण्यधिनाशयोः

नसुतेन च वा विसर्तान्येनाऽपि सुकर्मणा ।

तत्फलं प्राप्यते मर्याो गङ्गामाप्य यदाप्यते ॥ १०१ ॥

जात्यन्धाः पङ्कवस्ते वै जीवन्तोप्यथ ते मृताः ।

समर्था अपि ये गङ्गां न स्नायुर्मोक्षगमिणाम् ॥ १०२ ॥

श्रुतिं निशामय हरे! गङ्गामाहात्म्यभाषिणीम् ।

विनिश्चितार्थां यां श्रुत्वा श्रयेद्गङ्गां नरोत्तमः ॥ १०३ ॥

इरावतीं मधुमतीं पयस्विनीममृतरूपामूर्जस्वतीम् ।

त्रिदिवप्रसूतां गङ्गां श्रितासस्त्रिदिवं व्रजन्ति ॥ १०४ ॥

ऋषिजुष्टां विष्णुपदीं पुराणां सुपुण्यधारां मनसा हि लोके ।

सर्वात्मना जाह्नवीं ये प्रपन्नास्ते ब्रह्मणःसदनं सम्प्रयान्ति ॥ १०५ ॥

लोकानिमाभ्रयति या जननीव पुत्रान्स्वर्गं सदा सर्वगुणोपपन्ना ।

स्थानमिष्टं ब्राह्मणभीष्ममनैर्गङ्गा सदैवाऽऽत्मवशैरुपास्या ॥ १०६ ॥

उच्चैर्जुष्टा मिषतीं विभ्वरूपाभिरावतीं जनयित्रीं गुहस्यशिशैः ।

सेव्याममृतानां ब्रह्मकान्तां गङ्गां श्रयेदात्मविशुद्धिकामः ॥ १०७ ॥

गङ्गायान्तुनरः स्नात्वा ब्रह्मचारीसमाहितः । विधूतपापोभवतिवाजपेयञ्च विन्दति
अशुभैः कर्मभिर्भ्रस्तान्मज्जमानान्महाहर्षि । पततो निरये गङ्गा संश्रितानुद्धरेत्सदा ॥
ब्रह्मलोकास्तु लोकानां सर्वेषामुत्तमो यथा । सरितांसरसांवापिवरिष्ठाजाह्ववी तथा
अन्यत्र सम्यक्सङ्कल्प्य तपः कृत्वा समाश्रयम् ।

यत्फलं तद्भवेद्भवत्या गङ्गायां घटिकाऽधंतः ॥ १११ ॥

स्वर्गस्थस्यनसाप्रीतिभुं जतःसुखमक्षयम् । यास्याद्गङ्गातटेपुंसांरात्रौचन्द्रोदयेसति
जरारोगाभिपन्नन्तु कुणपञ्जाह्ववीजले । धैर्येण तृणवस्यक्त्वा प्रविशेद्मरावताम्
वार्योविः सततं यस्याः प्लाव्यते शशिमण्डलम् ।

भूयोऽधिकतरां शोभां विभर्ति तदहःक्षये ॥ ११४ ॥

आप्लुतस्यजलेयस्याःसद्योनश्यतिपातकम् । महतःश्रेयसःप्राप्तिस्तत्क्षणादेवजायते
पितृभ्यःश्रद्धयायत्रदत्तास्त्वापःस्वर्बंशजैः । प्रयच्छन्तिपरां तृप्तिं शरदां त्रयमच्युत!
तारयेत्क्षितियान्मर्त्यान्धस्थांश्च सरीसृपान् ।

स्वर्गं स्वर्गं सद्यो विष्णो! गङ्गा त्रिपथगा ततः ॥ ११७ ॥

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं सरितामुत्तमासरित् । स्वर्गंदा सर्वजन्तूनां महापातकिनामपि
अध्युष्टाः कोटयो विष्णो सन्ति तीर्थानि सर्वतः ।

दिवि भुव्यन्तरिक्षे च जाह्वव्यां तानि कृत्स्नशः ॥ ११६ ॥

ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च गङ्गायांयःपञ्चत्वमवाप्नुयात् ।

अनात्मघाती स्वर्गो स्यान्नरकान्स न पश्यति ॥ १२० ॥

गङ्गैवसर्वतीर्थानि गङ्गैव च तपोवनम् । गङ्गैवसिद्धिक्षेत्रं हि नात्र कार्या विचारणा
यत्रकामफलावृक्षा महीयत्रहिरण्मयी । जाह्ववीस्नायिनस्तत्र निवसन्ति घटोद्भव!
धेनुं भागीरथीतीरे सुशीलाञ्जपयस्विनीम् । वासोरत्नैरलंकृत्वाब्राह्मणायद्दातियः

एकोनत्रिंशोऽध्यायः] * गङ्गास्नानादृतेऽपितत्फलप्राप्त्युपायवर्णनम् * १६१

यावन्ति तस्या लोमानिमुनेतत्सन्तरेपि । तावद्वर्षसहस्राणिसस्वर्गसुखभुग्भवेत्
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे गङ्गामहिमवर्णननामाऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

—:—:—

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

गङ्गासहस्रनामवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

विना स्नानेन गङ्गायां नृणा जन्म निरर्थकम् ।

उपायान्तरमस्त्यन्यद्येन स्नानफलं लभेत् ॥ १ ॥

अशकानाञ्च पङ्गूनामालस्योपहृतात्मनाम् ।

दूरदेशान्तरस्थानां गङ्गास्नानं कथं भवेत् ॥ २ ॥

दानं वाऽथत्रतंवाथमन्त्रःस्तोत्रंजपोऽथवा । तीर्थान्तराभिषेकोवादेवतोपासनन्तुवा
यद्यस्ति किञ्चित्पण्डित्त्वञ्च । गङ्गास्नानफलप्रदम् । विधानान्तरमात्रेण तद्वदप्रणतायमे
त्वत्तो न वेद् स्कन्दान्यो गङ्गागर्भसमुद्भव ! परं स्वर्गतरङ्गिण्या महिमानंमहाप्रते

स्कन्द उवाच

सन्ति पुण्यजलानीह सरासि सरितो मुने !

स्थाने स्थाने च तीर्थानि जितात्माध्युषितानि च ॥ ६ ॥

दृष्टप्रत्ययकारीणिमहामहिमभाञ्ज्यपि । परंस्वर्गतरङ्गिण्याःकोट्यंशोपि न तत्र वै
अनेनैवानुमानेन बुद्धयस्व कलशोद्भव ! दध्ने गङ्गोत्तमाङ्गेन देवदेवेन शम्भुना ॥ ८ ॥
स्नानकालेऽन्यतीर्थेषु जप्यतेजाह्वीजनैः । विनाविष्णुपदीं कान्यत्समर्थमघमोचने
गङ्गास्नाफलं ब्रह्मन्गङ्गायामेव लभ्यते । यथा द्राक्षाफलस्वादो द्राक्षायामेवनान्यतः
अस्त्युपायद्वयैकः स्याद्येनाधिकं फलम् । स्नानस्य देवसरितोमहागुह्यतमां मुने!

शिवभक्ताय शान्तायविष्णुभक्तिपराय च । श्रद्धालवेत्वास्तिकायगर्भवासमुमुक्षवे
कथनीयं न चान्यस्य कस्यचित्केनचित्कचित् ।

इदं रहस्यं परमं महापातकनाशनम् ॥ १३ ॥

महाश्रेयस्करं पुण्यं मनोरथकरं परम् । द्युनदीप्रीतिजनकं शिवसन्तोषसन्तति ॥
नाम्नां सहस्रं गङ्गायाःस्तवराजेपुशोभनम् । जप्यानां परमं जप्यं वेदोपनिषदासमम्
जपनीयं प्रयत्नेन मौनिना वाचकं विना । शुचिस्थानेषु शुचिना सुस्पृष्टाक्षरमेव च

स्कन्द उवाच

ॐ नमो गङ्गादेव्यै

ॐकाररूपिण्यजराऽतुलाऽनन्ताऽमृतस्रवा ।

अत्युदाराऽभयाऽशोकाऽलकनन्दाऽमृता १०ऽमला ॥ १७ ॥

अनाथवत्सलाऽमोघाऽपांयोनिरमृतप्रदा ।

अव्यकलक्षणाऽक्षोभ्याऽनवच्छिन्नाऽपराऽजिता २० ॥ १८ ॥

अनाथनाथाऽभीष्टार्थसिद्धिदाऽनङ्गवर्धिनी ।

अणिमादिगुणाधाराऽप्रगण्याऽलीकहारिणी ॥ १९ ॥

अचिन्त्यशक्तिरनवाऽद्भुतरूपा ३०ऽवहारिणी ।

अद्विराजसुताऽष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदाऽच्युता ॥ २० ॥

अद्भुण्णशक्तिरसुदाऽनन्ततीर्थाऽमृतोदका ।

अनन्तमहिमाऽपारा ४० ऽनन्तसौख्यप्रदाऽन्नदा ॥ २१ ॥

अशेषदेवतामूर्त्तिरघोराऽमृतरूपिणी । अविद्याजालशमनी ह्यप्रतर्क्यगतिप्रदा ॥ २२

अशेषविघ्नसंहर्त्री त्वशेषगुणगुम्फिता । अह्वानतिमिरज्योति ५०रनुग्रहपरायणा ॥

अभिरामाऽनवद्याङ्मयनन्तसाराऽकलङ्किनी ।

आरोग्यदाऽऽनन्दवह्नी त्वापन्नार्तिचिनाशिनी ॥ २४ ॥

आश्वर्यमूर्त्तिरायुष्याद् ६० ह्याढ्याऽऽद्याऽऽप्राऽऽर्यंसेचिता ।

आप्यायिन्याप्तविद्याऽऽख्या त्वानन्दाऽऽश्वासदायिनी ॥ २५ ॥

आलस्यघ्न्याऽ० पदांहन्त्री ह्याबन्दामृतवर्षिणी ।

इरावतीष्टदात्रीष्टा त्विष्टापूर्वफलप्रदा ॥ २६ ॥

इतिहासश्रुतीश्वरार्थात्विहामुत्रशुभप्रदा । इत्याशीलसमिज्येष्टात्विन्द्रादिपरिवन्दिता
इलालङ्कारमालेद्धा त्विन्द्रारम्यमन्दिरा । इदिन्द्रादिसंसेव्यात्वीश्वरीश्वरबल्लभा
ईतिमीतिहरेड्याचत्वीडनीयचरित्रभृत् ६० । उत्कृष्टशक्तिरुत्कृष्टोडुपमण्डलचारिणी
उदिताम्बरमार्गोन्नोरगलोकविहारिणी । उक्षोर्घरोत्पलोत्कुम्भा१००उपेन्द्रचरणद्रवा
उदन्वत्पूर्तिहेतुश्चोदारोत्साहप्रवर्धिनी । उद्वेगघ्न्युष्णशमनी उष्णरश्मिसुतप्रिया
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिण्युपरिचारिणी ।

ऊर्ज्वह११०न्त्यूर्जधरोर्जावती शोमिमालिनी ॥ ३२ ॥

ऊर्ध्वरेतःप्रियोर्ध्वाध्वाहूर्मिलोर्ध्वगतिप्रदा ।

ऋषिवृन्दस्तुतर्द्धिश्च ऋषात्रयचिनाशिनी १२० ॥ ३३ ॥

ऋतम्भरर्द्धिदात्री च ऋक्स्वरूपा ऋजुप्रिया । ऋक्षमार्गवहर्क्षाचिर्ऋजुमार्गप्रदर्शिनी
एधिताऽखिलधर्मार्था त्वेकैकामृतदायिनी १३० ।

एधनीयस्वभावैज्या त्वेजिताशेषपातका ॥ ३५ ॥

ऐश्वर्यदैश्वर्यरूपा ह्यैतिहां ह्यैन्दवीद्युतिः ।

ओजस्विनयोषधीक्षेत्रमोजोदौ १४० दनदायिनी ॥ ३६ ॥

ओष्ठामृताश्रत्यदात्री त्वौषधम्भरोगिणाम् ।

औदार्यचञ्चुरौपेन्द्री त्वौषी ह्यौमेयरूपिणी ॥ ३७ ॥

अम्बराध्ववहाऽम्बष्टा १५० म्बरमालाऽम्बुजेक्षणा ।

अम्बिकाऽम्बुमहायोनिरन्धोदाऽन्धकहारिणी ॥ ३८ ॥

अंशुमालाह्यंशुमतीत्वङ्गीकृतपदानना । अन्धताभिन्नहन्त्य १६० न्धुरञ्जनाह्यञ्जावती
कल्याणकारिणी काम्या कमलोत्पलगन्धिनी ।

कुमुद्रती कमलिनी कान्तिः कल्पितदायिनी १७० ॥ ४० ॥

काञ्चनाक्षी कामधेनुःकोत्तिकृतक्लेशनाशिनी । क्रतुश्रेष्ठाक्रतुफला कर्मबन्धविभेदिनी

कमलाक्षीकूमहराकृशानुतपनद्युतिः १८० । कठणार्द्राचकल्याणीकलिकल्मषनाशिनी
कामरूपा क्रियाशक्तिःकमलोत्पलमालिनी ।

कूटस्था कठणा कान्ता कूर्मयाना १६० कलावती ॥ ४३ ॥

कमलाकल्पलतिका कालीकलुषवैरिणी । कमनीयजला कम्पा कपर्दिसुकपर्दगा ॥
कालकूटप्रशमनीकदम्बकुसुमप्रिया२०० । कालिन्दीकेलिललिताकलकल्लोलमालिका
क्रान्तलोकत्रया कण्डूःकण्डूतनयघत्सला ।

खड्गिनी खड्गधाराभा खगा खण्डेन्दुधारिणी २१० ॥ ४५ ॥

खेखेलगामिनी खस्था खण्डेन्दुतिलकप्रिया ।

खेचरी खेचरीघन्धा ख्यातिः ख्यातिप्रदायिनी ॥ ४७ ॥

खण्डितप्रणताधौघा खलबुद्धिधिनाशिनी ।

खातैः कन्दसन्दोहा २२० खड्गखट्वाङ्गखेटिनी ॥ ४८ ॥

खरसन्तापशमनी खनिः पीयूषपाथसाम् । गङ्गा गन्धवती गौरी गन्धर्वनगरप्रिया
गम्भीराङ्गी गुणमयी गतातङ्का २३० गतिप्रिया ।

गणनाथाग्निबका गीता गद्यपद्यपरिच्छुता ॥ ५० ॥

गान्धारीगर्मशमनीगतिभ्रष्टगतिप्रदा । गोमतीगुह्याविद्यागौ२४० गौत्रीगगतगामिनी
गोत्रप्रवर्धिनी गुण्या गुणातीता गुणाग्रणीः ।

गुहाग्निबका गिरिसुता गोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा ॥ ५२ ॥

गुणनीयचरित्रा २५० सगायत्रीगिरिश्रिया । गूढरूपा गुणवती गुर्वी गौरववर्धिनी
ग्रहपीडाहरा गुन्द्रा गरुषी गानवत्सला २६० । घर्महन्त्री घृतवती घृततुष्टिप्रदायिनी
घण्टारवप्रियाघोराऽधौवधिध्वंसकारिणी । घ्राणतुष्टिकरी घोषा घनानन्दाघनप्रिया
घातुका २७० घूर्णितजला घृष्टपातकसन्ततिः । घटकोटिप्रपीतापा घटिताशेषमङ्गला
घृणावतीघृणनिधिर्वस्मरा घूकनायिनी । घुसृणापिञ्जरतनुर्वर्धरा २८० घर्धरस्वना

चन्द्रिका चन्द्रकान्ताम्बुध्रश्चदापा चलद्युतिः ।

चिन्मयी चितिरूपा च चन्द्रायुतशतानना ॥ ५८ ॥

चाम्पेयलोचना चारु २६० धार्वङ्गी चारुगामिनी ।
 चार्या चारित्रनिलया चित्रकृच्चित्ररूपिणी ॥ ५६ ॥
 चम्पूश्चन्दनशुच्यम्बुध्वर्धनीया चिरस्थिरा ३०० ।
 चारुचम्पकमालाढ्या चमिताशेषदुष्कृता ॥ ६० ॥

चिदाकाशवहाचिन्त्याचञ्चलामरवीजिता । चोरिताशेषवृजिना चरिताशेषमण्डला
 छेदिताखिलपापौघाच्छद्मघ्नी ३१० छलहारिणी । छन्नत्रिचिष्टपतलाछोटिताशेषवन्धना
 च्युरितामृतधाराघौघा छिन्ननाशच्छन्दगामिनी । छत्रीकूनमरालौघा छटीकृतनिजामृता
 जाह्नवी ज्या ३२० जगन्माता जप्या जङ्गलवीचिका ।
 जया जनार्दनप्रीता जुषणीया जगद्धिता ॥ ६४ ॥
 जीवनं जीवनप्राणा जग ३३० जयैष्टा जगन्मयी ।
 जीवजीवातुलतिका जन्मिजन्मनिबर्हिणी ॥ ६५ ॥

जाड्यबिध्वसनकरी जगद्योनिर्जलाविला । जगदानन्दजननी जलजा जलजैक्षणा
 जनलोचनपीयूषा जटातटविहारिणी । जयन्ती जञ्जपूकम्पी जनितज्ञानविग्रहा ॥
 भल्लरीवाद्यकुशलाभल्लञ्जालजलावृता । भिण्टीशवन्धाभाङ्गारकारिणी भर्भरावती
 दीकिताशेषपाताला टङ्किकनोद्विपाटने । टङ्गारनृत्यत्कल्लोला टीकनीयमहातटा ॥
 डम्बरप्रवहा डीनराजहंसकुलाकुला । डमडूमरुहस्ता च डामरोक्तमहाण्डका ॥७०॥

दौकिताशेषनिर्वाणा दक्कानादखलजला ३६० ।

दण्डिद्विघ्नेशजननी दण्डदुणितपातका ॥ ७१ ॥

तपणीतीर्थतीर्था चत्रिपथात्रिदशेश्वरी । त्रिलोकमोप्त्रीतोयैशीत्रैलोक्यपरिवन्दिता
 तापत्रितयसंहर्त्री ३७० तेजोबलविधार्थिनी । त्रिलक्षातारणीतारातारापतिकराचिता
 त्रैलोक्यपावनी बुण्या तुष्टिदा तुष्टिरूपिणी ।
 तुष्णाछेत्री तीर्थमाता ३८० त्रिविक्रमपदोद्भवा ॥ ७४ ॥
 तपोमयी तपोरूपा तपस्तोमफलप्रदा । त्रैलोक्यपावनी तृप्तिस्तृप्तिकृत्स्वरूपिणी ॥
 त्रैलोक्यसुन्दरी तुर्या ३६० तुर्यातीतपदप्रदा ।

त्रैलोक्यलक्ष्मीस्त्रिपदी तथ्या तिमिरखन्निद्रा ॥ ७६ ॥

तेजोगर्भा तपःसारा त्रिपुरारिशिरोमृहा ।

त्रयीस्वरूपिणी तन्वी ४०० तपनाङ्गजमीतिनुत् ॥ ७७ ॥

तरिस्तरणिजामित्रन्तर्पिताशेषपूर्वजा । तुलाधिरहिता तीव्रपापत्लतनूनपात् ॥

दारिद्र्यदमनी दक्षा दुष्प्रेक्षा दिव्यमण्डना ४१० ।

दीक्षाघती दुराधाप्या द्राक्षामधुरवारिभृत् ॥ ७९ ॥

दर्शितानेककुतुका दुष्टदुःखयदुःखहृत् । दैत्यहृद्दुरितघ्नी च दानवारिपदाब्जजा ॥

दन्दशूकविपद्गी चदारिताधीयसंततिः ४२० । द्रुतादेवद्रुमच्छन्नादुर्वाराघविघातिनी

दमप्राह्या देवमातादेवलोकप्रदर्शिनी । देवदेवप्रियादेवी दिक्पालपददायिनी ॥ ८२ ॥

दीर्घायुःकारिणी ४३० दीर्घा दोग्ध्री दूषणचर्जिता ।

दुग्धाम्बुवाहिनी दोह्या दिव्या दिव्यगतिप्रदा ॥ ८३ ॥

द्युनदीदीनशरणंदेहिदेहनिचारिणी ४४० । द्वाधीयसीदाघहन्त्रीदितपातकसन्ततिः ॥

दूरदेशान्तरचरी दुर्गमा देवचलभा । दुर्वृत्तघ्नी दुर्विगाह्या दयाधारा दयावती ४५०

दुरासदादानशीला द्राचिणीद्रुहिणस्तुता । दैत्यदानवसंशुद्धिकर्त्री दुबुद्धिहारिणी

दानसारादयासाराद्यावाभूमिचिगाहिनी । द्रष्टाद्रष्टफलप्राप्ति ४६० देवता वृन्दवन्दिता

दीर्घव्रता दीर्घद्रष्टिर्दीप्ततोया दुरालभा । दण्डयित्री दण्डनीतिदुष्टदण्डधराक्षिता

दुरोदरघ्नीदावाक्षि ४७० द्रवद्रव्यैकशेषधिः । दीनसंतापशमनी दात्रीदधधुधैरिणी

दरीविदारणपरादान्तादान्तजनप्रिया । दारिताद्रितटादुर्गा४८०दुर्गारण्यप्रचारिणी

धर्मद्रवा धर्मधुराधेनुर्धोराधृतिध्रुवा । धेनुदानफलरूपशा धर्मकामार्थमोक्षदा ॥ ६१ ॥

धर्मोर्मिवाहिनी ४९० धुर्या धात्रीधात्रीविभूषणम् ।

धर्मिणी धर्मशीला च धन्विकोटिकृतावना ॥ ६२ ॥

ध्यातृपापहराध्येयाधावनीधृतकल्मषा ५०० । धर्मधारा धर्मसारा धनदाधनवर्धिनी ॥

धर्माधर्मगुणच्छेत्री धन्तूरकुसुमप्रिया । धर्मेशी धर्मशास्त्रज्ञा धनधान्यसमुद्दिहृत् ॥

धर्मलभ्या ५१० धर्मजलाधर्मप्रसवधर्मिणी । ध्यानगम्यस्वरूपावधरणी धातृपूजिता

धूर्ध्रुर्जटिजटासंस्था घन्या धीर्धारणावती ५३० ।

नन्दा निर्घाणजननी नन्दिनी नुन्नपातका ॥ ६६ ॥

निषिद्धविघ्ननिचयानिजानन्दप्रकाशिनी । नभोङ्गणसरीनूतिर्नम्यानारायणी ५३०नुता
निर्मलानिर्मलारूपाबावाशिनीतापसंपदाम् । नियतानित्यसुखदानानाश्चर्बमहानिधिः
नदीनदसरोमातानायिका ५४०नाकदीर्घिका । नष्टोद्धरणधीराव नन्दानन्ददायिनी ॥

निर्णिकाशेषभुवना निःसङ्गा निरुपद्रवा ।

निरालम्बा निष्प्रपञ्चा निर्णाशितमहामला ५५० ॥ १०० ॥

निर्मलज्ञानजननी निःशेषप्राणितापहृत् । नित्योत्सवानित्यतृप्ता नमस्कार्यानिरञ्जना
निष्ठावतीनिरातङ्कानिर्लेपानिश्चलात्मिका ५६० । निरवद्यानिरिहासनीललोहितमूर्धगा
नन्दिभृङ्गिगणस्तुत्यानागानन्दानगात्मजा । निष्प्रत्यूहानाकनदी निरयार्णवदीर्घनीः
पुण्यप्रदापुण्यगर्भा पुण्यापुण्यतरेङ्गिणी । पृथुःपृथुफलापूर्णाप्रणतार्त्तिप्रभञ्जिनी
प्राणदा प्राणिजननी ५८० प्राणेशी प्राणरूपिणी ।

पद्मालया पराशक्तिः पुरजित्परमप्रिया ॥ १०५ ॥

परापरफलप्राप्तिः पावनी च पयस्विनी । परानन्दा ५६० प्रकृष्टार्थाप्रतिष्ठापालनीपरा
पुराणपठिता प्रीता प्रणवाक्षररूपिणी । पार्वती प्रेमसम्पन्ना पशुपाशचिमोचनी ६००
परमात्मस्वरूपा च परब्रह्मप्रकाशिनी । परमानन्दनिष्पन्दा प्रायश्चित्तस्वरूपिणी ॥
पानीयरूपनिर्वाणा परित्राणपरायणा । पापेन्धनदवञ्चाला पापारिः पापनामनुत् ॥
परमैश्वर्यजननी ६१० प्रज्ञा प्राज्ञा परापरा । प्रत्यक्षलक्ष्मीः पद्माक्षीपरव्योमामृतस्रवा
प्रसन्नरूपा प्रणिधिः पूता प्रत्यक्षदेवता ६२० ।

पिनाकिपरमप्रीता परमेष्ठिकमण्डलुः ॥ १११ ॥

पद्मनाभपदार्य्येण प्रसूता पद्ममालिनी । परर्धिदा पुष्टिकरी पथ्या पूर्तिः प्रभावती
पुनाना ६३० पीतगर्भेष्ठी पापपर्धतनाशिनी ।

फलिनी फलहस्ता च फुल्लाम्बुजविलोचना ॥ ११३ ॥

फालितैनोमहाक्षेत्रा फणिलोकविभूषणम् । फेनच्छलप्रणुञ्जैनाः फुल्लकैरवगन्धिनी

फेनिलाच्छाम्बुधाराभा ६४० कुडुञ्चाटितपातका ।

फाणितस्वादुसलिला फाण्टपथ्यजलाविला ॥ ११५ ॥

विश्वमाता च विश्वेशी विश्वा विश्वेश्वरप्रिया ।

ब्रह्मण्या ब्रह्मकृत् ब्राह्मो ६५० ब्रह्मिष्ठा विमलोदका ॥ ११६ ॥

विभावरी चविरजाचिक्रान्तानेकविष्टपा । विश्वमित्रंविष्णुपदीवैष्णवीवैष्णवप्रिया

विरूपाक्षप्रियकरी ६६० विभूतिविश्वतोमुखी । विपाशावेबुधीवेद्यावेदाक्षररसस्त्रवा

विद्या वेगवती वन्द्या वृंहणी ६७० ब्रह्मवादिनी ।

वरदा विप्रकृष्टा च वरिष्ठा च विशोघनी ॥ ११६ ॥

विद्याधरी विशोका च वयोवृन्दनिषेचिता ।

बहूदका बलवती ६८० व्योमस्या विबुधप्रिया ॥ १२० ॥

वाणी वेदवती वित्ताब्रह्मविद्यातरङ्गिणी । ब्रह्माण्डकोटिव्याप्ताम्बुब्रंहहत्यापहारिणी

ब्रह्मेशचिष्णुरूपा च बुद्धि ६९० विभववर्धिनी ।

विलासिसुखदा वंश्या व्यापिनी च वृषारणिः ॥ १२२ ॥

वृषाङ्कमौलिनिलया विपन्नार्तिप्रभञ्जिनी ।

चिनीता चिन्ता ब्रध्नतनया ७०० चिनयान्विता ॥ १२३ ॥

विपञ्ची वाद्यकुशला वेणुश्रुतिविचक्षणा । वर्चस्करी बलकरी बलोन्मूलितकल्मषा

विषाम्पा विगतातङ्का चिकल्पपरिवर्जिता ७१० ।

वृष्टिकर्त्री वृष्टिजला विधिर्विच्छिन्नबन्धना ॥ १२५ ॥

व्रतरूपा वित्तरूपा बहुविघ्नविनाशकृत् ।

वसुधारा वसुमती विचित्राङ्गी ७२० विभावसुः ॥ १२६ ॥

विजया विश्वबीजञ्जवामदेवी वरप्रदा । वृषाश्रिताविष्वी च विज्ञानोर्म्यंशुमालिनी

भव्या भोगवती ७३० भद्रा भवानी भूतमाचिनी ।

भूतधात्री भयहरा भक्तदारिद्र्यघातिनी ॥ १२८ ॥

भुक्तिमुक्तिप्रदा भेशी भक्तस्वर्गापवर्गदा !

भागीरथी ७४० भानुमती भाग्यं भोगघतीभृतिः ॥ १२६ ॥

भषप्रिया भषद्वेष्टी भूतिदा भूतिभूषणा ।

भाललोचनभाषज्ञा भूतमध्यभषत्प्रभुः ७५० ॥ १३० ॥

भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी भिन्नब्रह्माण्डमण्डपा । भूरिदा भक्तिसुलभाभाग्यवद्दृष्टिगोचरी
भञ्जितोपप्लवकुला भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा ।

भिक्षणीया भिक्षुमाता भाषा ७६० भावस्वरूपिणी ॥ १३२ ॥

मन्दाकिनी महानन्दा मातामुक्तिरङ्गिणी । महोदया मधुमती महापुण्या मुदाकरी
मुनिस्तुता ७७० मोहहन्त्री महातीर्था मधुस्रवा ।

माधवी मानिनी मान्या मनोरथपथातिगा ॥ १३४ ॥

मोक्षदा मतिदा मुख्या ७८० महाभाग्यजनाश्रिता ।

महावेगघती मेध्या महामहिमभूषणा ॥ १३५ ॥

महाप्रभामामहतीमीनचञ्चललोचना । महाकारुण्यसम्पूर्णा महर्द्धि ७९० श्रमहोत्पला
मूर्तिमन्मुक्तिरमणी मणिमणिक्वभूषणा । मुक्ताकलापनेपथ्या मनोनयननन्दिनी
महापातकराशिघ्नीमहादेवार्धहारिणी । महोर्मिमालिनीमुक्ता ८०० महादेवामनोन्मनी
महापुण्योदयप्राप्यामायातिमिरचन्द्रिका । महाविद्या महामाया महामेधामहौषधम्
मालाधरी महोपाया ८१० महोरगविभूषणा । महामोहप्रशमनी महामङ्गलमङ्गलम्
मार्तण्डमण्डलचरी महालक्ष्मीर्मदोज्ज्वला ।

यशस्विनी यशोदा च योग्या युक्तात्मसेविता ८२० ॥ १४१ ॥

योगसिद्धिप्रदा याज्या यज्ञेशपरिपूरिता । यज्ञेशी यज्ञफलदा यजनीया यशस्करी
यमिसेव्या योगयोनिर्योगिनी ८३० युक्तबुद्धिदा ।

योगज्ञानप्रदा युक्ता यमाद्यष्टाङ्गयोगयुक् ॥ १४३ ॥

यन्त्रितायीघसञ्चारा यमलोकनिवारिणी । यातायातप्रशमनी यातनानामकन्तनी
यामिनीशहिमाच्छोदा युगधर्मविजिता ८४० रेवतीरतिकृद्म्यारक्षगर्भारमारतिः
रत्नाकरप्रेमपात्रं रसज्ञारसरूपिणी । रत्नप्रासादगर्भा च ८५० रमणीयतरङ्गिणी ॥

रत्नाबीरुद्ररमणी रामद्वेषचिनाशिनी । रमा रामा रम्यरूपा रोगिणीवानुकरिणी ॥

रुचिकुद्रोचनी ८६० रम्या रुचिरा रोगहारिणी ।

राजहंसा रत्नवती राजत्कल्लोरराजिका ॥ १४८ ॥

रामणीयकरेखा च रुजारी रोगरोचिणी ।

राका ८७० रङ्गार्तिशमनी रम्या रोलम्बराचिणी ॥ १४९ ॥

रागिणीरञ्जितशिषारूपलावण्यशेषधिः । लोकप्रसूलोकवन्द्यालोलत्कल्लोलमालिनी

लीलावती ८८० लोकभूमिलोकलोचनचन्द्रिका ।

लेखस्त्रवन्ती लटभा लघुवेगालघृत्वहृत् ॥ १५१ ॥

लास्यस्तरङ्गहस्ता च ललिता लयमङ्गिणा ।

लोकवन्द्यु ८९० लौकधारी लोकोत्तरगुणोजिता ॥ १५२ ॥

लोकत्रयहिता लोका लक्ष्मीर्लक्षणलक्षिता ।

लीलालक्षितनिर्वाणा लावण्याऽमृतवर्षिणी ॥ १५३ ॥

वंशानरी ९०० वासवेड्या वन्द्यत्वपरिहारिणी ।

वासुदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नी वज्रिघञ्जनिवारिणी ॥ १५४ ॥

शुभावती शुभफला शान्तिः शान्तनुचल्लभा ।

शुलिनी शैशवधयाः ९१० शीतलाऽमृतवाहिनी ॥ १५५ ॥

शोभावतीशीलवतीशोषिताशेषकिल्बिषा । शरण्याशिषदाशिष्टा शरजन्मप्रसूःशिवा

शक्तिः ९२० शशाङ्कविमलाशमनस्वस्वम्मता । शमाशमनमार्गघ्नीशितिकण्ठमहाप्रिया

शुचिः शुचिकरी शेषा शेषशायिपदोद्भवा ।

श्रीनिवासश्रुतिः ९३० श्रद्धा श्रीमती श्रीः शुभमता ॥ १५८ ॥

शुद्धविद्या शुभावर्ता श्रुनानन्दा श्रुतिस्तुतिः ।

शिवेतरघ्नी शबरी ९४० शाम्बरीरूपधारिणी ॥ १५९ ॥

शमशानशोधनी शान्ता शम्बच्छतश्रुतिप्लुता ।

शालिनी शालिशोभाढ्या शिखिबाहनगर्मभृत् ॥ १६० ॥

शंसनीयश्चरित्राश्चशतितशेषपातका ६५० । षड्गुणैश्वर्यसम्पन्ना षडङ्गश्रुतिकृपिणी
पण्डताहारिसलिला पृथ्वायन्नदनीशता । सरिद्धरा च सुरसा सुप्रभा सुरवीरिणिका ॥

स्वःसिन्धुःसर्वदुःखघ्नी ६६० सर्वध्याधिमहौषधम् ।

सेव्या सिद्धिः सती सूक्तिः स्कन्दसूक्ष्म सरस्वती ॥ १६३ ॥

सम्पत्तरङ्गिणी स्तुत्या स्थाणुमौलिकृतालया ६७०

स्थैर्यदा सुभगा सौख्या स्त्रीषु सौभाग्यदायिनी ॥ १६४ ॥

स्वर्गनिःश्रेणिका सूक्ष्मा स्वधा स्वाहा सुधाजला ।

समुद्ररूपिणी ६८० स्वर्गा सर्वपातकवैरिणी ॥ १६५ ॥

स्मृताघहारिणी सीता संसाराब्धितरण्डिका ।

सौभाग्यसुन्दरी सन्ध्या सर्वसारसमन्विता ॥ १६६ ॥

हरप्रियाहृषीकेशी ६९० हंसरूपा हिरण्यमयी । हृत्तत्रसङ्ग्रहितकृन्देला हेलाघर्षहृत्
क्षेमदा क्षालिताश्रीघा क्षुद्रविद्राघिणी क्षमा १००० ।

इति नामसहस्रं हि गङ्गायाःकलशोद्धव !। कीर्तयित्वा नरःसम्यग्गङ्गास्नानफलंलभेत्
सर्वपापप्रशमनं सर्वविघ्नविनाशनम् । सर्वस्तोत्रजपाच्छ्रेष्ठं सर्वपावनपावनम् ॥
श्रद्धयाऽभीष्टफलदञ्चतुर्वर्गसमृद्धिदृत् । सकृज्जपावधानोर्नित ह्येककृतुफलं मुने !॥
सर्वतीर्थेषु यः स्नातः सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । तस्य यत्फलमुद्दिष्टं त्रिकालपठनाच्चतत्
सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सम्यक्कीर्णेषुवाडव । तत्फलंसमवाप्नोति त्रिसन्ध्यश्रियतःपठन्
स्नानकाले पठेद्यस्तु यत्र कुत्र जलाशये । तत्र सन्निहिता नूनं गङ्गात्रिपथगा मुने!
श्रेयोर्थी लभते श्रेयो धनार्थी लभते धनम् ।

कामी कामानवाप्नोति मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ १७४ ॥

वर्षं त्रिकालपठनाच्छ्रद्धया शुचिमानसः । ऋतुकालाभिगमनादपुत्रःपुत्रदान्भवेत् ॥
नाकालमरणंतस्यनाग्निश्चोराहिसाध्वसम् । नाम्नांसहस्रं गङ्गायायोजपेच्छ्रद्धयासुने
गङ्गानामसहस्रन्तुजपत्वाप्रामान्तरं व्रजेत् । कार्यसिद्धिमवाप्नोतिनिर्बिघ्नोमेहमाधिशेत्
तिथिवाचक्ष्णोयानां नदोषः प्रमवेत्सदा । यदा जपत्वा व्रजेदेतत्स्तोत्रं प्रायान्तरमनरः

आयुरारोग्यजननं सर्वोपद्रवनाशनम् । सर्वसिद्धिकरं पुंसांगङ्गानामसहस्रकम् ॥
 जन्मान्तरसङ्घोषेषु यत्पापं सम्यगर्जितम् । गङ्गानामसहस्रस्य जपनात्तत्क्षयं व्रजेत्
 ब्रह्मघ्नो मद्यपःस्वर्णस्तेयीच गुरुतल्पगः । तत्संयोगीभ्रूणहन्ता मातृहा पितृहा मुने!
 विभ्वासघाती गरवः कृतघ्नोमित्रघातकः । अग्निदो गोवधकरो गुरुद्रव्यापहारकः
 महापातकयुक्तोपि संयुक्तोऽप्युपपातकैः । मुच्यतेश्रद्धयाजप्त्वा गङ्गानामसहस्रकम्
 आधिव्याधिपरिक्षिप्तो घोरतापपरिलुतः ।

मुच्यते सर्वदुःखेभ्यः स्तवस्यास्यानुकीर्तनात् ॥ १८४ ॥

सम्बत्सरेणयुक्तात्मा पठन्भक्तिपरायणः । अमीप्सितांलभेत्सिद्धिसर्वैःपापैःप्रमुच्यते
 संशयाविष्टचित्तस्यधर्मविद्वेषिणोपिष्व । दाम्भिकस्यापिहिंस्रस्यचेतोधर्मपरम्भवेत्
 वर्णाश्रमपथीनस्तु कामक्रोधविषर्जितः । यत्फलं लभतेज्ञानीतदाप्रोत्यस्यकीर्तनात्
 गायत्र्ययुतजप्येन यत्फलं समुपार्जितम् । सकृत्पठनतःसम्यक् तदशेषमवाप्नुयात्
 गां दस्वा वेदविदुषे यत्फलं लभतेकृती । तत्पुण्यंसम्यगाख्यातंस्तवराजसकृज्जपात्
 गुरुशुश्रूषणं कुर्वन्यावज्जीवं नरोत्तमः । यत्पुण्यमर्जयेत्तद्वाग्वधं त्रिपवणञ्जपन् ॥१६०
 वेदपारायणात्पुण्यं यदत्र परिपठ्यते । तत्पणमासेन लभते त्रिसन्ध्यं परिकीर्तनात्
 गङ्गायाः स्तवराज्यस्य प्रत्यहं परिशीलनात्

शिष्यभक्तिमवाप्नोति विष्णुभक्तोऽथवा भवेत् ॥ १६२ ॥

यः कीर्तयेदनुदिनं गङ्गानामसहस्रकम् । तत्समीपेसहस्री गङ्गादेवी सदाभवेत् ॥
 सर्वत्रपूज्योभवति सर्वत्रविजयी भवेत् । सर्वत्र सुखमाप्नोति जाह्नवीस्तोत्रपाठतः
 सदाचारी स विज्ञेयः स शुचिस्तु सदैव हि

कृतसर्वसुरार्चः स कीर्तयेद्य इमां स्तुतिम् ॥ १६५ ॥

तस्मिन्स्तुत्रे भवेत्कृता जाह्नवी नात्रसंशयः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गङ्गाभक्तंसमर्चयेत्
 स्तवराजमिमंगङ्गं शृणुयाद्यश्च वै पठत् । श्रावयेद्यत्तद्द्वकान्दम्भलोभविषर्जितः ॥
 मुच्यतेत्रिविधैःपापैर्मनोवाक्कायसम्भवेः । क्षणाच्छिष्यापतामेतिपितृणाञ्चप्रियोभवेत्
 सर्वद्वेषप्रियश्चापि सर्वार्थिगणसम्मतः । अन्ते विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीशतसम्भृतः

दिव्याभरणसम्पन्नो दिव्यभोगसमन्वितः । नन्दनादिवने स्वैरं देववत्स ! प्रमोदते
भुज्यमानेषु विप्रेषु श्राद्धकाले विशेषतः । जपस्त्रिदंमहास्तोत्रं पितृणांतृप्तिकारकम्

यावन्ति तत्र सिक्त्यानि यावन्तोऽम्बुक्षणाःस्थिताः ।

तावन्त्येव हि वर्षाणि मोदन्ते स्वः पितामहाः ॥ २०२ ॥

यथा प्रीणन्ति पितरो गङ्गायां पिण्डदानतः ।

तथैव तृप्नुयुः श्राद्धे स्तवस्यास्याऽनुसंभवात् ॥ २०३ ॥

एतत्स्तोत्रं गृहेयस्य लिखितं परिपूज्यते । तत्र पापभयं नास्ति शुचिद्वन्द्वनं सदा
अगस्ते! किम्बहूकेन शृणुमेनिश्चितं वचः । संशयो नात्रकर्तव्यः संदेग्धरि फलश्रुहि

यावन्ति मर्त्ये स्तोत्राणि मन्त्रजालान्यनेकशः ।

तावन्ति स्तवराजस्य गाङ्गेयस्य समानि न ॥ २०६ ॥

यावज्जन्म जपेद्यस्तु नाम्नामेतत्सहस्रकम् । सकीकटेष्वपि मृतो न पुनर्गभमाविशेत्
नित्यं नियमवानेतद्योजपेत्स्तोत्रमुत्तमम् । अन्यत्रापि विपन्नःसगङ्गातीरे मृतोभवेत्

एतत्स्तोत्रचरंरम्यं पुराप्रोक्तं पिनाकिना । विष्णवेनिजभकायमुक्तित्रीजाक्षरास्पदम्

गङ्गास्नानप्रतिनिधिः स्तोत्रमेतन्मयेरितम् ।

सिस्नासुर्जाह्वीं तस्मादेतत्स्तोत्रं जपेत्सुधीः ॥ २१० ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणपकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे

पूर्वार्धे गङ्गासहस्रनामकथनं नामैकोनविंशत्तमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

त्रिंशोऽध्यायः वाराणसीमहिमवर्णनम्

स्कन्द उवाच

शृण्वन्महाभागसखराजाम्भीरथः । आराध्यश्रीमहादेवमुद्विधीषुः पितामहान्
ब्रह्मशापघ्निर्दग्धान्सर्वान् राजर्षिसत्तमः । महतातपसाभूमिमानिनाय त्रिवर्त्मगाम्
त्रयाणामपिलोकानां हिताय महते नृपः । समानैर्वीर्यतोगङ्गायत्राऽऽसीन्मणिकर्णिका
आनन्दकाननं शम्भोश्चक्रपुष्करिणीहरैः । परब्रह्मैकसुक्षेत्रं लीलामोक्षसमर्पकम् ॥
प्रापयामास तांगङ्गा देवीपिः पुरतश्चरन् । निर्वाणकाशनाद्यत्र काशीति प्रथितापुरी
अधिमुक्तं महाक्षेत्रं न मुक्तं शम्भुना क्वचित् । प्रागेव हि मुनेऽनर्घ्यं जात्यं जायन् नदं स्वयम्
पुनर्धारितरेणापि हीरेण यदिसङ्गतम् । चक्रपुष्करिणीतीर्थं प्रागेव श्रेयसापदम् ॥
ततः श्रेष्ठतरं शम्भोर्मणिध्रुवणभूषणात् । आनन्दकानने तस्मिन्नधिमुक्ते शिवालये ॥
प्रागेव मुक्तिः संसिद्धा गङ्गासङ्गात्ततो धिका । यदा प्रभृति सा गङ्गा मणिकर्णया समागता
तदा प्रभृति तत्क्षेत्रं दुष्प्रापन्निद्रशौरपि । कृत्वा कर्माण्यनेकानि कल्याणानीतराणि वा

तानि क्षणात्समुत्क्षिप्य काशीसंस्थोऽमृतो भवेत् ।

तस्या वेदान्तवेद्यस्य निदिध्यासनतो विना ॥ ११ ॥

विना साङ्ख्येन योगेन काश्या संस्थोऽमृतो भवेत् ।

कर्मनिर्मूलनवता विना ज्ञानेन कुम्भज ॥ १२ ॥

शशिमौलिप्रसादेन काशीसंस्थोऽमृतो भवेत् ।

यत्नतोऽयत्नतो वापि कालास्यक्त्वा कलेवरम् ॥ १३ ॥

तारकस्योपदेशेन काशीसंस्थोऽमृतो भवेत् । अनेकजन्मसंसिद्धैर्बन्धोऽपि प्राकृतैर्गुणैः

असिसम्भेदयोगेन काशीसंस्थोऽमृतो भवेत् । देहत्यागोऽत्र वैदानं देहत्यागोऽत्र वैतपः

देहत्यागोऽत्र वै योगः काश्यां निर्वाणसौख्यकृत् ।

प्राप्योत्तरवहां काश्यपमतिबुद्धतवावपि ॥ १६ ॥

यायात्स्वंहैलया/ त्यक्त्वा तद्विष्णोःपरममदम् ।

यमेन्द्राग्निमुखा देवा दृष्ट्वा मुक्तिपथोन्मुखान् ॥ १७ ॥

सर्वान्सर्वसमालोक्य रक्षाञ्जकःपुरापुरः । असिमहासिरूपाञ्चप्राप्यसन्मतिखण्डनीम्
दुष्टप्रवेशन्धुन्वानान्धुनीन्देवा विनिर्ममुः । वरणाञ्च व्यधुस्तत्रक्षेत्रविघ्ननिवारिणीम्
दुर्वृत्तसुप्रवृत्तेश्च निर्वृत्तिकरणीसुराः । दक्षिणोत्तरदिग्भागेकृत्वासि वरणां सुराः
क्षेत्रत्रयमोक्षनिक्षेपरक्षांनिर्वृत्तिमाप्नुयुः । क्षेत्रस्यपश्चाद्विदिग्भागेतं देहलिघिनायकम्
स्वयं व्यापारयात्रास रक्षार्थं शशिशेखरः । अनुज्ञातप्रवेशानां चिश्वेशेन रूपावता ॥
ते प्रवेशमप्रयच्छन्ति नान्येषां हि कदाचन । इत्यर्थेकथयिष्येऽहमितिहासपुरातनम्
आश्चर्यकारिपरमं काशीभक्तिप्रवर्धनम् ॥ २३ ॥

स्कन्द उवाच

दक्षिणाब्धितटे कश्चित्सेतुबन्धसमीपतः । वणिग्धनञ्जयोनाममातृभक्तिसमन्वितः
पुण्यमार्गाजितधनो धनतोषितमार्गणः । मार्गणस्फारितयशा यशोदातनयार्षकः
समुन्नतोऽपिसम्पत्स्याधिनयानतकन्धरः । आकरोपिशुणानां हिगुणिष्वाकारगोपकः
रूपसम्पदुदारोपि परदारपराङ्मुखः । स सम्पूर्णकलोऽप्यासीन्निष्कलङ्कोदयः सदा
ससत्यानृतवृत्तिश्च प्रायः सत्यप्रियो मुने ! । वर्णेतरोऽप्यभूद्धोके सुवर्णकृतवर्णनः ॥
सदाचरणगोऽप्येव सुखयानचरःकृती । अदरिद्रोऽपि मेधाधी सोऽभूत्पापदरिद्रधीः
तस्यैवंवर्तमानस्यकदाचित्कालपर्ययात् । जननीनिधनमप्राप्ता व्याधितातिजरातुरा
तया च यौधनमप्राप्यमेघच्छायातिचञ्चलम् । प्रावृणनदीपूरसमं स्वपतिः परिवञ्चितः

दिनत्रिचतुरस्थायि या नारी प्राप्य यौघनम् ।

भर्तारं वञ्चयेन्मोहात्साऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥ ३२ ॥

शीलमङ्गलं नारीणां भर्ता धर्मपरोऽपि हि ।

पतेद्दुःखार्जितात्स्वर्गाच्छीलं रक्ष्यन्ततःस्त्रियाः ॥ ३३ ॥

विद्यागते च निरये स्वयम्पतति दुर्मतिः । अभूत्संप्लवंधावस्ततःस्याद्ग्रामसूकरी

वाराणसीतिबिख्याता तदाश्वत्थमहामुने !। असेकावरणायाश्च सङ्गमं प्राप्यकाशिका
 वाराणसीह करुणामयदिव्यमूर्तिरुत्सृज्य यत्र तु तनुं तनुभृत्सुखेन ।
 विश्वेशदिकुम्हसि यत्सहसा प्रविश्य रूपेण तां चितनुताम्पदर्शा दधाति ॥
 जातो मृतो बहुषु तीर्थवरेषु रत्नं जन्तो! न जातु तव शान्तिरभूश्चिमञ्ज्य ।
 वाराणसी निगदतीह मृतोऽमृतत्वं प्राप्याऽधुना मम बलात्स्मरशासनःस्याः ॥
 अन्यत्र तीर्थसलिले पतितो द्विजन्मा देवादिभावमयते न तथा तु काश्याम् ।
 चित्रं यदत्र पतितःपुनरुत्थितिं न प्राप्नोति पुष्कसज्जोऽपिकिमग्रजन्मा ॥ ७३॥
 सैषा पुरी संसृतिरूपपारावारस्वपारम्पुरहापुरारिः ।
 यस्यां परं पौरुषमर्थमिच्छन्सिद्धिञ्जयेत्पौरपरम्परां सः ॥ ७४ ॥
 तीर्थान्तराणि मनुजःपरितोऽवगाह्य हित्वा तनुं कलुषितां दिवि दैवतं स्यात्
 वाराणसीपरिसरे तु विसृज्य देहं सन्देहभाग्भवति देहदशाप्तयेऽपि ॥ ७५ ॥
 वाराणसीसमरसीकरणादूतेऽपि योगादयोगिजनतां जनतापहन्त्री ।
 तत्तारकं श्रवणगोचरतां नयन्ती तद्ब्रह्म दर्शयति येन पुनर्भवो न ॥ ७६ ॥
 वाराणसीपरिसरे तनुमिष्टधार्त्री धर्माथं कामनिलयामहहा विसृज्य ।
 इष्टं पदं किमपि हृष्टरोऽभिलष्य लाभोऽस्तु मूलमपि नो यदवाप शून्यम् ७७
 आः काशिवासिजनता ननु वञ्चिताऽभूद्बाले घिलोघनवता वनितार्थभाजा ।
 आदाय यत्सुकृतभाजनमिष्टदेहं निर्वाणमात्रमपवर्जयता पुनर्भु ॥ ७८ ॥
 वाराणसीस्फुरदसीमगुणैकभूमियंत्र स्थितास्तनुभृतःशशिभृत्प्रभावात् ।
 सर्वे गले गरलिनोऽक्षियुजो ललाटे वामार्धवामतनवोऽतनवस्ततोऽन्ते ॥ ७९ ॥
 आनन्दकाननमिदं सुखदं पुरेव तत्रापि चक्रसरसीमणिकर्णिकाऽथ ।
 स्वःसिन्धुसंगतिरथोपरमास्पदश्च विश्वेशितुः किमिह तन्नघिमुक्तये यत् ८० ॥
 वाराणसीह वरणासिसिद्धिरिष्टा सम्भेदखेदजननी धुमदी लसच्छ्रीः ।
 विश्रामभूमिरखलमलमोक्षलक्ष्म्या हैनां विहाय किमु सीदति मूढजन्तुः ८१ ॥
 किं विसृते त्वहह गर्भजमामनस्यं कार्तान्तदूतकृतबन्धनताडनञ्च ।

शम्भोरनुग्रहपरिग्रहलभ्य, काशीं मूढो विहाय किमु याति करस्वमुक्तिम् ॥
 तीर्थान्तराणि कलुषाणि हरन्ति सद्यःश्रेयो ददत्यपि बहु भिदिषं नयन्ति ।
 पानावगाहनविधानतनुप्रहाणैर्बाराणसी तु कुरुते शत मूलनाशम् ॥ ८३ ॥
 काशीपुरीपरिसरे मणिकर्णिकायां त्यक्त्वा तनुन्तनुभृतस्तनुमाप्नुवन्ति ।
 भाले विलोचनवतीं गलनीललक्ष्मीं धामार्धबन्धुरवधूं विधुराचरोधाः ॥ ८४ ॥
 ज्ञात्वा प्रभावमतुलं मणिकर्णिकायां यःपुद्गलन्त्यजति चाशुधि पूयगन्धि ।
 स्वात्मावबोधमहसा सहसा मिलित्वा कल्पान्तरेष्वपि स नैव पृथक्त्वमेति
 रागादिदोषपरिदूरमनोहृथीकाः काशीपुरीमतुलदिव्यमहाप्रभावाम् ।
 ये कल्पयन्त्यपरतीर्थसमां समन्तात्ते पापिनो न सहतैःपरिभाषणीयम् ॥ ८६ ॥
 वाराणसीं स्मरहरप्रियराजधानीं त्यक्त्वा कुतो ब्रजसि मूढ! दिगन्तरेषु ।
 प्राप्याप्यजाद्यसुलभां स्थिरमोक्षलक्ष्मीं लक्ष्मीं स्वभावचपलाकिमु कामयैधाः
 विद्याधनानि सदनानि गजाश्वभृत्याः स्रक्चन्दनानि वनिताश्च नितान्तरम्याः ।
 स्वर्गोऽप्यगम्य इह नोद्यमभाजि पुंसि वाराणसी त्वसुलभा शलभादिमुक्तिः ॥
 धात्रा धृतानि तुलया तुलनामघैतुं वैकुण्ठमुख्यभुवनानि च काशिका च ।
 तान्युद्युलंघुतयान्यगियं गुरुत्वात्तस्थौ पुरीह पुरुषार्थचतुष्टयस्य ॥ ८६ ॥
 काशीपुरीमधिवसन्नि नरो नरोऽपि ह्यारोप्यमाण इह मान्य इवैकरुद्रः ।
 नानोपसर्गजनिसर्गजदुःखभारः कर्मापनुद्य स विशेषरमेशधाम्नि ॥ ९० ॥
 स्थिरापायंकायञ्जननरणक्लेशनिलयंविहायास्यांकाश्यामहहपरिगृहीतनकुतः

वपुस्तेजोरूपं स्थिरतरपरानन्दसदनं,

विमूढोऽसौ जन्तुः स्फुटितमिव कांस्यं विनिमयन् ॥ ९१ ॥

अहो! लोकःशोकं किमिह सङ्गते हन्त हतधीर्विपद्धारैःसारैर्नियतनिधनैर्ध्वंसितधनैः

क्षितौ सत्यां काश्यां कथयति शिवो यत्र निधने ।

श्रुतौ किञ्चिद् भूयः प्रविशति न येनोदरदरीम् ॥ ९२ ॥

काशिवासिनि जने वनेचरे द्वित्रिभुजपि समीरभोजने ।

स्वैरस्वारिणि जितेन्द्रियेप्यहोकाशिषासिनि जने विशिष्टता ।

नाऽस्तीह दुष्कृतकृतां सुकृतात्मनां वा काचिद्विशेषगतिरन्तकृतां हि काश्याम्
बीजानि कर्मजनितानि यदूपरायां नाङ्कूरयन्ति हरद्रुग्ज्वलितानि तेषाम् ॥ ६४ ॥

शशका मशका वकाः शुकाः कलचिङ्काश्च वृकाः सजम्बुकाः ।

तुरगोरगधानरा नरा गिरिजे! काशिस्मृताः परामृतम् ॥ ६५ ॥

अरुद्ररुद्राक्षफणीन्द्रभूषणास्त्रिपुण्ड्रचन्द्रार्धधरा धरां गताः ।

निरन्तरं काशिनिवासिनो जना गिरीन्द्रजे! पारिषदा मता मम ॥ ६६ ॥

यावन्त एव निवसन्ति च जन्तवोऽत्र काश्याञ्जलस्थलधरा ऋषजम्बुकाद्याः ।

तावन्त एवमदनुग्रहरुद्रदेहादेहावसानमधिगम्य मयि प्रविष्टाः ॥ ६७ ॥

ये तुवर्षेषवो रुद्रा दिवि देवप्रकीर्तिताः । घातेषवोऽन्तरिक्षे ये ये भुव्यन्नेषवः प्रिये!

रुद्रा दशदशप्राच्यघाचीप्रत्यगुदक्स्थिताः ।

ऊर्ध्वदिक्स्थाश्च ये रुद्राःपठ्यन्ते वेदवादिभिः ॥ ६६ ॥

असङ्ख्याताःसहस्राणि ये रुद्रा अधिभूतले ।

तत्सर्वेभ्योऽधिकाःकाश्यां जन्तवो रुद्ररूपिणः ॥ १०० ॥

रुद्रावासस्ततःप्रोक्तमविमुक्तं घटोद्भव !

यस्मात्समर्च्य काशिस्थान्वर्णान्वर्णैतराश्रमान् ॥ १०१ ॥

ध्रुव्यैश्वर्यबुद्ध्या च रुद्रार्चाफलभाङ्गरः । ॥ १०२ ॥

श्मशब्देनशवः प्रोक्तःशानं शयनमुच्यते । निर्वचन्ति श्मशानार्थमुने!शब्दार्थकोविदाः

महान्त्यपि च भूतानि प्रलयैसमुपस्थिते । शरतेऽत्र शवा भूत्वा श्मशानंतुततोमहत्

अप्सु भूरिह लये लयं ब्रजेदाप और्वचदनोप्रकन्दरे ।

मातरिश्वनि महातनूनपाद्भ्योस्त्रि संक्षयति वै सदागतिः ॥ १०५ ॥

व्योम चापि लयमेत्यहंकृतौ साऽपि षोडशधिकारसंयुता ।

लीयते महति बुद्धिसञ्ज्ञके हा! महान्प्रकृतिमध्यगो भवेत् ॥ १०६ ॥

सा गुणत्रयमयी च निर्गुणान्तं पुमांसमवगुह्य तिष्ठति ।

पञ्चविंशतिः तमः परः पुमान्देहगेहपतिरेषजीवकः ॥ १०७ ॥

प्राकृतः प्रलय एष उच्यते हंसयानहरिरुद्रवर्जितः ।

कालमूर्त्तिरथ तञ्च पूरुषं हेलया कलयतीश्वरः परः ॥ १०८ ॥

स वै महाविष्णुरितीयते बुधैस्तं वै महादेवमुदाहरन्ति ।

सोऽन्तादिमध्यैः परिवर्जितः शिवः स श्रीपतिः सोऽपिहि पार्वतीपतिः

देनन्दिनेऽथ प्रलये त्रिशूलकोटौ समुत्क्षिप्य पुरीं हरः स्वाम् ।

विभर्त्ति संवर्तमहास्थिभूषणस्ततो हि काशी कलिकालवर्जिता ॥ ११०

स्कन्द उवाच

वाराणसीति काशीति रुद्रावास इति द्विज !।

महाश्मशानमित्येवं प्रोक्तमानन्दकाननम् ॥ १११ ॥

इति देवीपुरः प्रोक्तं देवदेवेन शम्भुना । यथाविष्णोः पुराख्यातं तथैव च मयाश्रुतम्
तच्च त्वदग्रे कथितं रहस्यं काशिजं महत् ।

जप्त्वाऽध्यायमिमं पुण्यं महापातकनाशनम् ॥ ११३ ॥

श्रावयित्वा द्विजान्सम्यक् शिषलोकेमहीयते । अतःपरं कलशज! किशुश्रूपसितद्वद
काशीकथा कथ्यमाना ममाऽपि परितोषकृत् ॥ ११५ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे-
पूर्वाधे वाराणसीमहिमवर्णननामत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

भैरवप्रादुर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

सर्वं ब्रह्मदयानन्दस्कन्द! स्कन्दि तारक !। न तन्मिमधिगच्छामि शृण्वन्वारणसीकथाम्
अनुग्रहो यदि मयि योग्योऽस्मि श्रवणे यदि । तदा कथय मे नाथ काश्यां भैरवसंकथाम्
कोऽसौ भैरवनामात्रकाशिपुर्यां व्यवस्थितः । किं रूपमस्य किं कर्म कानि नामानि चास्य वै
कथमाराधितश्चैव सिद्धिदः साधकस्य वै । आराधितः कुत्र काले क्षिप्रं सिध्यति भैरवः

स्कन्द उवाच

वाराणस्यां महाभाग! यथा ते प्रेमवर्तते । तथा न कस्यचिन्मन्ये ततो वक्ष्याम्यशेषतः
प्रादुर्भावं भैरवस्य महापातकनाशनम् । यच्छ्रुत्वा काशिवासस्य फलं निर्विघ्नमाप्नुयात्

पाणिभ्यां परितः प्रपीड्य सुदृढं निश्चो न्य निश्चोत्य च ।

ब्रह्माण्डं सकलं पचेलिमरसालोचनैः फलाभं मुहुः ॥

पायं पायमपायतस्त्रिजगतीमुन्मत्तवत्तैरसै-

नृत्यं स्ताण्डवडम्बरेण विधिना पायान्महाभैरवः ॥ ७ ॥

कुम्भयोने! न वेत्स्येवमहिमानं महेशितुः । स तु भुजोऽपि वैकुण्ठश्चतुर्ध्वजोऽपि विश्वकृत्
न चित्रमत्र भूदेव! भवमाया दुरत्यया । तथा संमोहिताः सर्वे नावयन्त्यपितं परम्
वेदयेद्यदि चात्मानं स एव परमेश्वरः । तदा विदन्ति ब्रह्माद्याः स्वेच्छयैव न तं विदुः
स सर्वगोऽपि नैक्ष्येत् स्वात्मारामो महेश्वरः । देववद् बुध्यते मूढैरतीतो यो मनो गिराम्
पुरापितामहं विप्रमैरुभृङ्गे महर्षयः । प्रोषुः प्रणम्य लोकेशं किमेकन्तस्त्वमव्ययम्
समायया महेशस्य मोहितो लोकसम्भवः । अविज्ञाय परम्भावमात्मानं ग्राह्यपिणम्
जगद्योनिरहंघाता स्वयम्भुरेक ईश्वरः । अनादिमद्ब्रह्म मामनर्च्यं न मुच्यते
प्रवर्तको हि जगतामहमेको निवर्तकः । नान्यो यदधिकः सत्यं कश्चित्कोऽपि सुरोत्तमाः

तस्यैवम्बुवतो धातुः क्रतुर्नारायणांशजः । प्रोवाच प्रहसन्वाक्यं रोषताम्रचिलोचनः
अविज्ञाय परंतत्त्वं किमेतत्प्रतिपाद्यते । अज्ञानं योगयुक्तस्य नर्षेतदुचितन्तव ॥
अहंकर्ता हिलोकानां यज्ञो नारायणःपरः । न मामनादृत्य विधे ! जीवनज्जगतामज
अहमेव परञ्ज्योतिरहमेव परा गतिः । मत्प्रेरितेन भवता सृष्टिरेषा विधीयते
एवं विप्रकृती मोहात्परस्परजर्येषिणी । पप्रच्छतुः प्रमाणज्ञानागमांश्चतुरोपि तौ
विधिकत् ऊचतुः

वेदाः प्रमाणं सर्वत्र प्रतिष्ठापरमामिताः । यूयमेव न सन्देहः किन्तत्त्वमप्रति तिष्ठत
श्रुतय ऊचुः

यदि मान्यावयन्देवोसृष्टिस्यतिकरौविभू । तदा प्रमाणवक्ष्यामोभवत्सन्देहभेदकम्
श्रुत्युक्तमिदमाकर्ण्य प्रोचतुस्तौ श्रुतीः प्रति ।

युष्मदुक्तप्रमाणं नौ किन्तत्त्वं सम्यगुच्यताम् ॥ २३ ॥

ऋगुवाच

यदन्तःस्थानि भूतानि यतः सर्वं प्रवर्तते । यद्बाहुस्तत्परन्तत्त्वं स रुद्रस्त्वेक एवहि
यजुरुवाच

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेनचसमिज्यते । येन प्रमाणं हि वयं स एकः सर्वदृक् शिषः
साम उवाच

येनेदमभ्राम्यते विश्वं योगिमिर्यो विचिन्त्यते ।

यद्वासा भासते विश्वं स एकस्त्र्यम्बकः परः ॥ २६ ॥

अथर्व उवाच

यमप्रपश्यन्ति देवेशमभक्त्यानुग्रहिणो जनाः । तमाहुरेकैवैवल्यं शङ्करं दुःखतस्करम्
श्रुतीरितं निशम्येत्यन्तावतीष विमोहितौ ।

स्मित्वाऽऽहतुः क्रतुविधी मोहान्ध्येनाङ्कितौ मुने ॥ २८ ॥

कथमप्रमथनाथोऽसौ रममाणो निरन्तरम् । दिगम्बरःपितृवने शिषया धूलिभूसरः
चिटङ्कुवेशो जटिलोवृषगोव्यालभूषणः । परं ब्रह्मत्वमापन्नः क्वचित्सत्सङ्गवर्जितम्

सदुदीरितमाकर्ण्य प्रणवात्मनां सनातनः । अमूर्त्तो मूर्त्तिमान्भूत्वाहसमान उवाच तौ
प्रणव उवाच

नह्येष भगवाञ्छक्त्या स्वात्मनोऽव्यतिरिक्त्या । कदाचिद्रमते रुद्रो लीलारूपधरोहरः

असौ हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः ।

आनन्दरूपा तस्यैषा शक्तिर्नागन्तुकी शिवा ॥ ३३ ॥

इत्येषमुक्तेऽपि तदा मल्लमूर्तेरजस्य हि । नाज्ञानमगमन्नाशं श्रीकण्ठस्यैव मायया
प्रादुरासीत्ततोऽज्योतिरुभयोरन्तरे महत् । पूरयन्निजयाभासा द्यावाभूम्योर्यदन्तरम्
ज्योतिर्मण्डलमध्यस्थो दद्रुशे पुरुषाकृतिः । प्रजज्वालाथ कोपेन ब्रह्मणःपञ्चमं शिरः
आवयोरन्तरं कोऽसौ विभ्रयात्पुरुषाकृतिम् ।

विधिःसम्भावयेद्यावत्तावत्सहि विलोकितः ॥ ३७ ॥

स्रष्ट्राक्षणेन चमहान्पुरुषो नीललोहितः । त्रिशूलपाणिर्भालाक्षो नागोडुपविभूषणः
हिरण्यगर्भस्तम्प्राह जाने त्वाञ्चन्द्रशेखरम् । भालस्थलान्ममपुरा रुद्रःप्रादुरभृद्भवान्
रोदनाद्गुह्रनाम्नापि योजितोऽसिमया पुरा । मामेव शरणं याहि पुत्र! रक्षां करोमि ते
अथेभ्वरः पश्योनेः श्रुत्वागर्षवर्तीगिरम् । सकोपतः समुत्पाद्य पुरुषं भैरवाकृतिम्
प्राहपङ्कजजन्मासौशास्यस्तेकालभैरव ! । कालवद्राजसेसाक्षात्कालराजस्ततोभवान्
विश्वम्भर्तुंसमर्थोऽसिभरणाद्वैरवःस्मृतः । त्वत्तोभेष्यतिकालोपिततस्त्वंकालभैरवः
आमर्दयिष्यति भवांस्तुष्टोदुष्टात्मनोयतः । आमर्दक इतिह्यति ततःसर्वत्रयास्यति
यतःपापानि भक्तानांभक्षयिष्यतितत्क्षणात् । पापभक्षण इत्येव तव नामभविष्यति
यामेमुक्तिपुरी काशीसर्वाभ्योपिगरीयसी । आधिपत्यञ्चतस्यास्तेकालराजसदैवहि
तत्रये पापकर्तारस्तेषांशास्ता त्वमेवहि । शुभाशुभंन तत्कर्म चित्रगुप्तो लिखिष्यति
पतान्बरान्प्रगृह्याऽथतत्क्षणात्कालभैरवः । वामाङ्गुलिनस्त्वग्रंण सकर्त्तं चशिरोविधेः
यद्भ्रमपराधनोति कार्यन्तस्यैव शासनम् । अतो येनकृतानिन्दातच्छिन्नपञ्चमंशिरः
यद्भ्रमूर्त्तिधरो विष्णुस्ततस्तुष्टाव शङ्करम् । भीतोहिरण्यगर्भोपिजजाप शतरुद्रियम्
आश्वास्यतौ महादेवः प्रीतःप्रणतवत्सलः । प्राह स्वाम्मूर्तिमपराम्भैरवं तं कपदिनम्

मान्योऽध्वरोसौभवतातथाशतधृतिस्त्वयम् । कपालवैधसञ्चापिनाललौहितधारय
ब्रह्महत्यापनोदाय व्रतं लोकाय दर्शयन् । खर त्वं सततम्भिक्षांकपालव्रतमास्थितः
इत्युक्तवाऽन्तर्हितो देवस्तेजोरूपस्तदाशिवः ॥ ५३ ॥

उत्पाद्य कन्यामेकांतु ब्रह्महत्येति विश्रुताम् । रक्ताम्बरधरारक्तारक्तस्रग्गन्धलेपनाम्
दंष्ट्राकरालघटनां ललज्जिह्वातिभीषणाम् । अन्तरिक्षैकपादाभ्राम्पिबन्तीं रुधिरम्बहु
कर्त्रोर्कपर्हस्ताभ्रां स्फुरत्पिङ्गोभ्रतारकाम् ।

गर्जयन्तीम्महावेगाम्भैरवस्यापि भीषणाम् ॥ ५६ ॥

यावद्वाराणसीन्दिव्याम्पुरीमेषगमिष्यति । तावस्वम्भीषणेकालमनुगच्छोभ्ररूपिण
सर्वत्र ते प्रवेशोऽस्ति त्यक्त्वा वाराणसीम्पुरीम् ।

नियोज्यतामिति शिवोऽप्यन्तर्धानं गतस्ततः ॥ ५८ ॥

तत्सान्निध्याद् भैरवोऽपि कालोऽभूत्कालकालतः ।

स देवदेववाक्येन विभ्रत्कपालिकं व्रतम् ॥ ५९ ॥

कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम् । नात्याक्षीञ्चापि तन्देवंब्रह्महत्यासुदारुणा
सत्यलोकेऽपिघैकुण्ठे महेन्द्रादिपुरीष्वपि । त्रिजगत्पतिरुग्रोपिव्रती त्रिजगतीश्वरः
प्रतितीर्थम्भ्रमन्नापि विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥ ६२ ॥

अनेनैवानुमानेन महिमा त्वचगम्यताम् । ब्रह्महत्यापनोद्विद्याः काश्या.कलशसम्भव!
सन्ति तीर्थान्यनेकानि बहून्यायतनानि च ।

अधित्रिलोकिनो काश्याः कलामर्हन्ति षोडशीम् ॥ ६४ ॥

ताषट्कर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यलम् ।

यावन्न्याम न शृण्वन्ति काश्याः पापाचलाशनेः ॥ ६५ ॥

प्रमथैः सेव्यमानोऽयन्त्रिलोकीं चिचरन्हरः ।

कापालिको ययौ देवो नारायणनिकेतनम् ॥ ६६ ॥

अधायान्तम्महाकालन्त्रिनेत्रं सर्पकुण्डलम् । महादेवांशसंभूतं भैरवं भीषणाकृतिम्
पपात दण्डघट्टुभूमौ दृष्ट्वा तं गरुडध्वजः । देवाश्च मुनयश्चैव देवनार्यः समंततः ॥

निपेतुः प्रणिपत्येनंप्रणतःकमलापतिः । शिरस्यञ्जलिमारोप्य स्तुत्वाबहुविधैःस्तवैः
क्षीरोदमथनोद्भूतां प्राहपद्मालयांहरिः । प्रिये!पश्याऽब्जनयनेधन्याऽसिसुभगेऽनघे
धन्योऽहं देवि! सुभ्रोजि! यत्पश्यावो जगत्पतिम् ।

अयं धाता विधाता च लोकानां प्रभुरीश्वरः ॥ ७१ ॥

अनादिः शरणः शान्तः परः पङ्विशसंमितः । सर्वज्ञः सर्वयोगीशःसर्वभूतैकनायकः ।
सर्वभूतान्तरात्मा यं सर्वेषां सर्वदः सदा ।

यं विनिद्रा विनिःश्वासाः शान्ता ध्यानपरायणाः ॥ ७२ ॥

धिधा पश्यन्तिहृदयेसोऽयमयसमीक्ष्यताम् । यंचिदुर्वेदतत्त्वज्ञायोगिनोयतमानसाः
अरूपो रूपवान्भूत्वा सोयमायाति सर्वगः । अहोविचित्रं देवस्य चेष्टितं परमेष्ठिनः
यस्याख्याम्ब्रुवतान्त्रित्येनदेहः सोऽपि देहधृक् । यं दृष्ट्वा नपुनर्जन्मलभ्यतेमानवैर्भुवि
सोयमायाति भगवांस्त्र्यम्बकःशशिभूषणः । पुण्डरीकदलयामे धन्येमेऽद्यविलोचने
धिग्धिकपदन्तु देवानां परं दृष्ट्वात्रशङ्करम् । लभ्यतेयन्ननिर्वाणं सर्वदुःखान्तकृत्तुयत्
देवत्वादशुर्भक्तिञ्चिद्वेवलोके न विद्यते । दृष्ट्वाऽपि सर्वदेवेशं यन्मुक्तिं न लभामहे ॥

एवमुक्त्वाहृषीकेशःसम्प्रहृष्टतनूरुहः । प्रणिपत्यमहादेवमिदमाह वृषध्वजम् ॥ ८० ॥
किमिदं देवदेवेन सर्वज्ञेन त्वया विभो । क्रियते जगतांधात्रा सर्वपापहराऽव्यय
कीडेयं तव देवेश! त्रिलोचन! महामने !। किं कारणं विरूपाक्ष! चेष्टितन्तेस्मरार्दन
किमर्थम्भगवच्छम्भो! भिक्षां चरसि शक्तिप !।

संशयो मे जगन्नाथ! नतत्रैलोक्तराज्यद !। ८३ ॥

एवमुक्तस्ततः शम्भुर्धिष्णुमेतदुदाहरत् । ब्रह्मणस्तु शिरश्छिन्नमङ्गुल्यग्रनखेन ह ॥
तद्व्यप्रतिघं धिष्णो! चराम्येतद् व्रतं शुभम् । एवमुक्तो महेशेन पुण्डरीकविलोचनः
स्मित्वा किञ्चिन्नतशिराः पुनरेवंव्यजिह्वपत् । यथेच्छसि तथाक्कीडसर्वधिष्टपनायक
मायया मांप्रहादेव न च्छादयितुमर्हसि । नाभीकमलकोशात्तु कोटिशःकमलासनान्
कल्पे कल्पे सृजामीशत्वभियोगबलाद्धिभो ।

त्यज मायामिमां देव ! दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ८८ ॥

मदादयो महादेव! मायया तव मोहिताः । यथावद्वगच्छामि चेष्टितन्तेशिवापते !
संहारकालेसम्प्राप्तेस देवानखिलान्मुनीन् । लोकान्वर्णाश्रमवतो हरिष्यसि यदाहर
तदा क ते महादेव पापं ब्रह्मवधादिकम् । पारतन्त्र्यं न तेशम्भो! स्वैरंकीडेत्ततोभवान्
अतीतब्रह्मणामस्थनां स्रक्कण्ठे तव भासते । तदा तदा कनु गता ब्रह्महत्या तवानघ

कृत्वाऽपि सुमहत्पापं त्वां यः स्मरति भावतः ।

आधारं जगतामीशं तस्य पापं विलीयते ॥ ६३ ॥

यथा तमो न तिष्ठेत् सन्निधावंशुमालिनः । तथा न भवभक्तस्य पापं तस्य ब्रजेत्क्षयम्
यश्चिन्तयति पुण्यात्मा तव पादाभ्युज्ज्वयम् ।

ब्रह्महत्यादिकमपि पापं तस्य ब्रजेत्क्षयम् ॥ ६५ ॥

तव नामानुरक्तावाग्यस्य पुंसो जगत्पते । अप्यद्रिकूटतुलितं नैनस्तमनुवाधते ॥

रजसा तमसा विवर्धितं क नु पापं परितापदायकम् ।

क च ते शिवनाममङ्गलं जनजीघातुजगद्रुजापहम् ॥ ६७ ॥

यदि जातुचिदन्धकद्विपस्तव नामोष्टपुटाद्विनिःसृतम् ।

शिव ! शङ्कर ! चन्द्रशेखरेत्यसकृत्तस्य न संसृतिः पुनः ॥ ६८ ॥

परमात्मन्परन्धाम स्वेच्छाविधृतविग्रह । कुतूहलं तवेशेदं क परार्धीनतेश्वरे ॥ ६९ ॥

अद्य धन्योऽस्मिन्देशे ! यन्नपश्यन्ति योगिनः । पश्यामितं जगन्मूलम्परमेश्वरमक्षयम्

अद्य मे परमोलाभस्त्वद्य मे मङ्गलम्परम् । त्वद्दृष्ट्यमृतमृतस्य तृणं स्वर्गापवर्गदम्

इत्थं वदतिगोविन्दे विमला पद्मया तथा । मनोरथवती नाम भिक्षापात्रे समर्पिता

भिक्षाटनाय देवोऽपि निरगात्परया मुदा । दृष्ट्वाऽनुयायिनीतां तु समाह्वय जनार्दनः

सम्प्रार्थयद् ब्रह्महत्यां विमुञ्च त्वं त्रिशूलिनम् ।

ब्रह्महृत्योवाच

अनेन निमिषेणाऽहं संसेव्याऽमुं वृषध्वजम् ।

आत्मानं पावयिष्यामि क पुनर्भक्षदर्शनम् ॥ १०४ ॥

सा तत्याज न तत्पाश्वं व्याहृताऽपि मुरारिणा ।

तमूचेऽथ हरिं शम्भुः स्मेरास्यो बध्नं शुभम् ॥ १०५ ॥

त्वद्वाक्पीयूषपानेन तप्तोऽस्मि बहुमानद । वरंवृणीष्व गोविन्दवरदोऽस्मितधानध
न माद्यन्ति तथामैक्षैर्भिक्षवोप्यतिसंस्कृतैः । यथामानसुधापानैर्नु ब्रभिक्षाटनज्वराः

महाविष्णुरुवाच

एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं देवताधिपम् । पश्यामि त्वान्देवदेवंमनोरथपथातिगम्
अनभ्रेयं सुधावृष्टिरनायासो महोत्सवः । अयत्नोनिधिलाभोयद्वीक्षणं हरते सताम्
अवियोगोऽस्तुमे देवत्वदङ्घ्रियुगलेनवै । एष एव वरः शम्भो! नान्यं कञ्चिद्वरंवृणे

श्रीईश्वर उवाच

एषम्भवतु तेऽनन्त यस्वयोक्तम्महामते !। सर्वेषामपि देवानांवरदस्त्वम्भविष्यसि ॥

अनुगृह्येति दैत्यारिं केन्द्रादिभुवने चरन् ।

भेजे विमुक्तिजननीं नाम्ना वाराणसीं पुरीम् ॥ ११२ ॥

यत्र स्थितानां जन्तूनां कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

अपि ब्रह्मादिदेवानां पदानि विपदास्पदम् ॥ ११३ ॥

वरं वाराणसीवासी जटो मुण्डीदिगम्बरः । नान्यत्रच्छत्रसंछन्नवसुधामण्डलेश्वरः

वरं वाराणसीभिक्षा न लक्षाधिपताऽन्यतः ।

लक्षार्थीशो विशेद्रुभं तद्विश्वाशी न गर्भभाक् ॥ ११५ ॥

भिक्षाऽपि यत्र मिश्रुभ्यो दत्ताऽऽमलकसम्मिता ।

सुमेरुणाऽपि तुलिता वाराणस्यां गुरुर्भवेत् ॥ ११६ ॥

वर्षाशनं हि यो दद्यात्काश्यां सीदत्कुटुम्बिने ।

यावन्त्यब्दानि तावन्ति युगानि स दिवीज्यते ॥ ११७ ॥

वाराणस्यां वर्षभोज्यंयोदद्यान्निरुपायिने । सकदाचित्तुष्टुधुधानोदुःखंभुङ्क्तेनरर्षभः

वाराणस्यां निवसतां यन्पुण्यमुपजायते । तदेव संवासयितुः फलंत्वधिकलंभवेत्

ब्रह्महत्यादिपापानि यस्या नाम्नोऽपि कीर्तनात् ।

त्यजन्ति पापिनं काशा सा केनेहोपमीयते ॥ १२० ॥

क्षेत्रे प्रचिष्टमात्रेऽथ भैरवे भीषणाकृतौ । हाहेत्युक्त्वा ब्रह्महत्यापातालतलमाचिशत्
कपालं ब्रह्मणोरुद्रः सर्वधामेष पश्यताम् । हस्तात् पतितमालोक्य ननर्तपरयामुद्रा
विधेः कपालं नाऽमुञ्चत्करमत्यन्तदुःसहम् ।

हरस्य भ्रमतः कापि तत्काश्यां क्षणतोऽपतत् ॥ १२३ ॥

शूलिनो ब्रह्मणो हत्यानापैति स्म खया कञ्चित् । साकाश्यां क्षणतो नष्टा कथं काशीनदुर्लभा
अतः प्रदक्षिणीकार्या पूजनीया पुरी त्वियम् ॥ १२५ ॥

वाराणसीतिकाशीतिमहामन्त्रमिमं जपन् । यावज्जीवं त्रिसन्ध्यन्तु जन्तुर्जातुन जायते
अचिमुक्तं महाक्षेत्रं स्मरन् प्राणांस्तु यस्त्यजेत् । दूरदेशान्तरस्थोऽपि सोऽपि जातुन जायते
आनन्दकानने यस्य चित्तं संस्मरते सदा । तत्क्षेत्रनामध्रवणाज्ञ स भूयोऽभिजायते
रुद्रावासे वसेन्नित्यं नरो नियतमानसः । एतस्मिन् समभारं कृत्वा कालाद्विमुच्यते
महाश्मशानमासाद्य यदि देवाद्विपद्यते । पुनः श्मशानशयनं न कापिलभते पुमान्
कपालमोचनं काश्यां ये स्मरिष्यन्ति मानवाः ।

तेषां चिन्तयति क्षिप्रमिहान्यत्रापि पातकम् ॥ १२३ ॥

आगत्य तीर्थं प्रवरे स्नानं कृत्वा चिन्तयन्तः । तर्पयित्वाऽपि तृन्देवान् मुच्यते ब्रह्महत्याया
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वा वाराणस्यां वसन्ति ये । देहान्ते तत्परं ज्ञानं तेषां दास्यति शङ्करः
इयं काशीपुरी चिप्रसाक्षाद्द्रुद्रतनुः परा । अनिर्वाच्या परानन्दादुष्प्राप्येशविरोधिभिः
अस्यास्तत्स्वमहं ज्ञाने शिवभक्तिपरोऽपि वा । मुच्यन्ते जन्तवोऽत्रैव यथायोगेन योगिनः
परम्पदमियं काशी परानन्द इयम्पुरी । इयमेव परं ज्ञानं सेव्याऽसौ मौक्षकाङ्क्षिभिः
अत्रोषित्वाऽपीशभक्तान्विरुणद्धितुयः कुधीः । पुयं द्रुह्यति वामूढस्तस्यान्यत्राऽत्रनोगतिः
कपालमोचनं तीर्थं पुरस्कृत्वा तु भैरवः । तत्रैव तस्थौ भक्तानां भक्षयन्नघसन्ततिम्
पापभक्षणमासाद्य कृत्वा पापशतान्यपि । कुतोऽबिभेति पापेभ्यः कालभैरवसेवकः
आमर्दयति पापानि दुष्टानाञ्च मनोरथान् । आमर्दक इति ख्यातस्ततोऽसौ कालभैरवः

कलिं कालं कलयति सदा काशीनिवासिनाम् ।

अतः ख्यातिं पराम्प्राप्तः कालभैरवसञ्ज्ञिताम् ॥ १४१ ॥

सदैवयस्यभक्तेभ्योयमदूताःसुदारुणाः । परमाम्भीरुताग्राप्तास्ततोऽसौभैरवःस्मृतः
मार्गशीर्षाऽसिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ । उपोष्य जागरन्कुर्वन्महापापैः प्रमुच्यते
यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धितः । तत्सर्वविलयं याति कालभैरवदर्शनात्
अनेकजन्मनियुतैर्यत्कृतं जन्तुमिस्त्वघम् । तत्सर्वं विलयत्याशु कालभैरवदर्शनात्
कृत्वा च विविधां पूजां महासम्भारविस्तरैः ।

नरो मार्गासिताष्टम्यां वार्षिकं विघ्नमुत्सृजेत् ॥ १४६ ॥

अष्टम्याञ्च क्षतुर्दश्यां रविभूमिजवासरे । यात्राञ्च भैरवीं कृत्वा कृतं पापैः प्रमुच्यते
कालभैरवभक्तानां सदा काशीनिवासिनाम् । विघ्नं यः कुरुते मूढः सदुर्गतिमवाप्नुयात्
विश्वेश्वरेऽपि ये भक्तानोभक्ताः कालभैरवे । काश्यान्तेविघ्नसङ्घातं लभन्ते तु पदे पदे
तीर्थे कालोदकेऽनात्वा कृत्वा तर्पणमत्वरः । विलोक्य कालराजं च निरयादुद्धरेत्पितृन्
अष्टौ प्रदक्षिणीकृत्य प्रत्यहं पापभक्षणम् । नरो न पापं लिप्येत मनोवाकायसम्भवेः
तस्मिन्नामर्शके पीठे जप्त्वा स्वामीष्टदेवताम् ।

पणमासं सिद्धिमाप्नोति साधको भैरवाज्ञया ॥ १५२ ॥

चाराणस्यामुषित्वा यो भैरवं न भजेन्नरः । तस्य पापानि वर्धन्ते शुक्लपक्षे यथा शशी
यं यं सञ्चिन्तयेत्कामं पापभक्षणसेवया । बलिपूजोपहारैश्च तं तं स समवाप्नुयात्
कालराजं नयःकाश्यां प्रतिभूताष्टमीकुजम् । भजेत्तस्यक्षयेत्पुण्यं कृष्णपक्षे यथाशशी
श्रुत्वाऽध्यायमिमम्पुण्यं ब्रह्महत्यापनोदकम् । भैरवोत्पत्तिसङ्घं च सर्वपापैः प्रमुच्यते
बन्धनागारसंस्थोऽपि प्राप्नोति विपदम्पराम् ।

प्रादुर्भाषभैरवस्य श्रुत्वा मुच्येत सङ्कटात् ॥ १५७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकशीतिसाहस्र्यां संहितायां क्षतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे भैरवप्रादुर्भाषवर्णननामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

दण्डपाणिप्रादुर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

बर्हियान!समाचक्ष्वहरिकेशसमुद्भवम् । कोऽसौकस्यसुतःश्रीमान्कीदृगस्यतपोमहत्
कथञ्च देवदेवस्यप्रियतृषं समुपेयिषान् । काशीवासिजनीनोऽभूत्कथं वादण्डनायकः
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुम्रसादंकुरुमे विभो !। अन्नदत्वञ्च सम्प्राप्तः कथमेव महामतिः
सम्भ्रमो विभ्रमश्चोभौ कथंतदनुगामिनौ ।

विभ्रान्तिकारिणौ क्षेत्रवैरिणां सर्वदा नृणाम् ॥ ४ ॥

स्कन्द उवाच

सम्यगापृच्छ भवता काशीवासिसमाहितम् ।
कुम्भसम्भव ! विप्रर्षे ! दण्डपाणिकथानकम् ॥ ५ ॥
यदाकर्ण्य नरः प्राज्ञ! काशीवासस्य यत्फलम् ।
निष्प्रत्यूहन्तदाप्नोति विश्वभर्तुं रनुग्रहात् ॥ ६ ॥

रत्नभद्र इतिख्यातः पर्वते गन्धमादने । यक्षः सुकृतलक्ष्मिः पुरापरमधार्मिकः
पूर्णभद्रं सुतमप्राप्य सोऽभूत्पूर्णमनोरथः । वयश्चरममासाद्य भुक्त्वा भोगाननेकशः
शाम्भवेनाथयोगेनदेहमुत्सृज्य पार्थिवम् । आससादशिवंशान्तंशान्तसर्वेन्द्रियार्थकः
पितयुं परते सोऽथ पूणभद्रो महायशः । सुकृतोपात्तविभवभवसम्भोगभुक्तिभाक्
सर्वान्मनोरथाल्लेभेविनास्वर्गैकसाधनम् । गार्हस्थ्यध्रमनेपथ्यंपथ्यम्पैतामहं महत्
संसारतापसंतमावयवामृतशीकरम् । अपत्यं पतताम्पोतं बहुक्लेशमहार्णवे
पूर्णभद्रोऽथसंवीक्ष्य मन्दिरं सर्वसुन्दरम् । तद्बालकोमलालापविकलं त्यक्तमङ्गलम्
शून्यं दरिद्रदृष्टिष्वजीर्णारण्यमिवाथवा । पान्थवत्प्रान्तरमिषखिन्नोऽतीवानपत्यवान्
आहूय गृहिणीं सोऽथ यक्षः कनककुण्डलाम् ।

उवाच यक्षिणीं श्रेष्ठां पूर्णमद्रो घटोद्भव ! १५ ॥

नहर्म्यं सुखदं कान्ते! दर्पणोदरसुन्दरम् । मुक्तागवाक्षसुभगं चन्द्रकान्तशिलाजिरम्
पद्मरागेन्द्रनीलाक्षिरर्चिताद्दालकं कणत् ।

चिद्रुमस्तम्भशोभाढ्यं स्फुरत्स्फटिककुण्डलवत् ॥ १७ ॥

प्रेङ्खत्पताकानिकरं मणिमाणिक्यमालितम् । कृष्णागुरुमहाधूपवहुलामोदमोदितम्
अनर्घ्यासनसंयुक्तं चारुपर्यङ्कभूषितम् । रम्यार्गलकपाटाढ्यं दुकूलच्छन्नमण्डपम्
सुरम्यरतिशालाढ्यं वाजिराजिचिराजितम् ।

दासीदासशताकीर्णं किङ्किणीनादनादितम् ॥ २० ॥

नूपुरारावसोत्कण्ठकेकिकेकारवाकुलम् । कूजत्पारावतकुलं गुरुसारीकथावरम्
खेलन्मरालयुगलं जीवञ्जीवककान्तिमत् । मालयाद्भृत्द्विरेफाणांमञ्जुगुञ्जारवावृतम्
कपूर्रेणमदामोदसोदरानिलबीजितम् । क्रीडामर्कटदंष्ट्राश्रीकृतमाणिक्यदाडिमम्
दाडिमीबीजसम्भ्रान्तशुकुतुण्डासमौक्तिकम् । धनधान्यसमृद्धञ्चपद्यालयमिवापरम्
कमलामोदगर्भं च गर्भरूपं विनाप्रिये । गर्भरूपमुखम्प्रेक्ष्ये कथं कनककुण्डले
यद्युपायोऽस्ति तदब्रूहि धिगपुत्रस्य जीवितम् । सर्वशून्यमिवाभातिगृहमेतदनङ्गजम्
धिगेतत्सौधसौन्दर्यं धिगेतद्धनसञ्चयम् । विनापत्यं प्रियतमे! जीवितञ्चधिगावयोः
प्रलपन्तमिव प्रोच्येः प्रियं कनककुण्डला ।

बभापेऽन्तर्विनिःश्वस्य यक्षिणी सा पतिव्रता ॥ २८ ॥

कनककुण्डलोवाच

किमर्थं खिद्यसे कान्त! ज्ञानवानसि यद्भवान् ।

अत्रोपायोऽस्त्यपत्यापत्यै विस्मरधमघधारय ॥ २६ ॥

किमुद्यमघताम्पुंसां दुर्लभं हि चराचरे । ईश्वरार्पितबुद्धीनां स्फुरन्त्यग्रे मनोरथाः
दैवं हेतुं घदन्त्येवंभृशंकापुरुषाः पते ! स्वयम्पुराकृतं कर्मदैवं तच्च नहीतरत् ॥ ३१ ॥
ततः पौरुषमालम्ब्य तत्कर्म परिशान्तये । ईश्वरं शरणं ध्यायात्सर्वकारणकारणम्
अपत्यं द्रधिषिणं दाराहाराहर्म्यं ह्या गजाः । सुखानिस्वर्गमोक्षी च न दूरे शिवभक्तिः

विधातुः शास्त्रभर्षीभक्तिप्रियः सर्वमनोरथाः ! सिद्धयोऽष्टौगृहद्वारंसेचन्तेनात्रसंशयः
नारायणोऽपि भगवानन्तरात्मा जगत्पतिः । खराचराणामविताजातःश्रीकण्ठसेचया
ब्रह्मणः सृष्टिकर्तृत्वं दत्तं तेनैव शम्भुना । इन्द्रादयोऽलोकापालाजाताःशम्भोरनुग्रहात्
मृत्युञ्जयं सुतं लेभे शिलादोऽप्यनपत्यवान् । श्वेतकेतुरपि प्रापजीवितंकालपाशितः
क्षीरार्णवाधिपतितामुपमन्युरवाप्तवान् । अन्धकोऽप्यभवद्भृङ्गीगाणपत्यपदोर्जितः
जिगाय शार्ङ्गिणं सङ्ख्ये दधीचिः शम्भुसेचया ।

प्राजापत्यपदं प्राप दक्षः संशील्य शङ्करम् ॥ ३६ ॥

मनोरथपथातीतं यच्च वाचामगोचरम् । गोचरो गोचरीकुर्यात्तत्पदं क्षणतोमृदः
अनाराध्य महेशानं सर्वदं सर्वदेहिनाम् ।

कोऽपि काऽपि किमप्यत्र न लभेतेति निश्चितम् ॥ ४१ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शङ्करं शरणं ब्रज । यदिच्छसिप्रियं पुत्रं प्रियःसर्वजनीनकम्
इति श्रुत्वा वचःपत्न्याःपूर्णभद्रस्यक्षरात् । आराध्यश्रीमहादेवंगीतज्ञोगीतविद्यया
दिनैः कतिपर्यैरेव परिपूर्णमनोरथः । पुत्रकाममवापोर्ध्वस्तस्यां पत्न्यां दृढव्रतः
नादेश्वरं समभ्यर्च्य कैः कैर्नापि स्वचिन्तितम् ।

तस्मात्काश्यां प्रयत्नेन सेव्यो नादेश्वरो नृभिः ॥ ४५ ॥

अन्तर्घटन्यथ कालेन तत्पत्नी सुपुत्रे सुतम् । तस्यनामपिता चक्रे हरिकेश इतिद्विजः
प्रीतिदायं ददौ चाथ भूरि पुत्राननेक्षणात् । पूर्णभद्रस्तथाऽगस्त्यःहृष्टाकनककुण्डला
बालोऽपि पूर्णचन्द्राभवदनो मदनोपमः । वृद्धिप्रतिक्षणं प्राप शुक्लपक्षरवोडुराट्
यदाष्टवर्षदेशीयो हरिकेशोऽभवच्छिशुः । नित्यं तदाप्रभृत्येवं शिषमेकममन्यत
पांसुकीडनसक्तोऽपि कुर्यात्त्रिङ्गुरजोमयम् । शाबलैःकोमलतृणैःपूजयेच्चसकौतुकम्
आकारयतिमित्राणिशिवनाम्नाऽखिलानिसः । चन्द्रशेखरभूतेशःमृत्युञ्जयःमृडेश्वरः
धूर्जटे! खण्डपरशो! मृडानीश! त्रिलोचन !। भगशम्भो! पशुपते! पिनाकिलुप्रशङ्कर
श्रीकण्ठ! नीलकण्ठेश! स्मरारे! पार्वतीपते !। कपालिन्ममलनयन! शूलपाणे! महेश्वर!
अजिनाम्बर! दिग्वासः! स्वधुनीक्लिन्नमौलिज !।

विरूपाक्षाऽह्निनेपथ्य! गृणन्नामावलीमिमाम् ॥ ५४ ॥

स वयस्कानिति मुहुः समाह्वयति लालयन् ।

शब्दग्रहौ न गृह्णीतस्तस्यान्याख्यां हरादृते ॥ ५५ ॥

पङ्क्त्यां न पद्यते धान्यदृते भूतेश्वराजिरात् । द्रष्टुं रूपान्तरंतस्यधीक्षणेनविचक्षणे
रसयेत्तस्य रसना हरनामाक्षरामृतम् । शिवाङ्घ्रिकमलामोद्राद्गघ्राणं नैव जिघृक्षति
करौतत्कौतुककरौ मनो मनति नापरम् । शिवसात्कृत्यपेयानि पीयन्तेतेनसद्विया
भक्ष्यन्ते सर्वभक्ष्याणि त्र्यक्षप्रत्यक्षगान्यपि ।

सर्वावस्थासु सर्वत्र न स पश्येच्छिवं विना ॥ ५६ ॥

गच्छन् गायन्स्वपस्तिष्ठञ्छयानोऽदन्पिबन्नपि ।

परितस्यक्षमैक्षिष्ट नान्यं भाषं चिकेति सः ॥ ६० ॥

क्षणदासु प्रसुप्तोऽपिकयासीतिवदन्मुहुः । क्षणत्र्यक्ष!प्रतीक्षस्वबुध्यतीतिसवालकः
स्पष्टां चेष्टां विलोक्येतिहरिकेशस्यतत्पिता । अशिक्षयत्सुतंसोऽद्यगृहकर्मरतोभव
एते तुरङ्गमा वत्स! तर्चेतेऽश्वकिशोरकाः ।

चित्राणीमानि वासांसि सुदुकूलान्यमूनि च ॥ ६३ ॥

रत्नान्याकरशुद्धानि नानाजातान्यनेकशः । कुप्यं बहुविधंचैतद्गोधनानि महान्ति च
अमत्राणि महार्हाणि रौप्यकांस्यमयानि च ।

पणनीयानि वस्तूनि नानादेशोद्भवान्यपि ॥ ६५ ॥

सामराणि विचित्राणि गन्धद्रव्याण्यनेकशः ।

एतान्यन्यानि बहुशस्त्वनेके धान्यराशयः ॥ ६६ ॥

एतस्वदीयं सकलं वस्तुजातं समन्ततः । अर्थोपार्जनविद्याश्च सर्वाः शिक्षस्वपुत्रक!
चेष्टास्त्यज द्रिद्राणां धूलिधूसरिणाममूः ।

अभ्यस्य विद्याः सकला भोगान्निर्विश्य चोत्तमान् ॥ ६८ ॥

तां दशाञ्चरमां प्राप्य भक्तियोगं ततश्चर । असकृच्छिक्षितःपित्रेत्यवमन्यगुरोर्गिरम्
रुष्टदृष्टिञ्च जनकं कदाचिदवलोक्य सः । निर्जगाम गृहद्वीतो हरिकेशउदारधीः

ततश्चिन्तामघापोऽर्धैर्दिग्भ्रान्तिमपि स्वात्तवान् ।

अहो बालिशबुद्धित्वात्कुतस्त्यक्तं गृहं मया ॥ ७१ ॥

क यामि क स्थिते शम्भो! मम श्रेयो भविष्यति

पित्रानिर्वासितश्चाऽहं न च वेद्यव्यथ किञ्चन ॥ ७२ ॥

इति श्रुतं मया पूर्वापितुरुत्सङ्गवर्तिना । गदतस्तात पुरतः कस्यचिद्भ्रमं स्फुटम्
मात्रा पित्रा परित्यक्ता ये त्यक्ता निजबन्धुभिः ।

येषां काऽपि गतिर्नास्ति तेषां चाराणसीगतिः ॥ ७४ ॥

जरया परिभूता ये ये व्याधिचिकलीकृताः ।

येषां काऽपि गतिर्नास्ति तेषां चाराणसीगतिः ॥ ७५ ॥

पदेपदेसमाक्रान्तायेषिपद्भिरहर्निशम् । येषां काऽपि गतिर्नास्ति तेषां चाराणसीगतिः
पापराशिभिराक्रान्ता ये दारिद्र्यपराजिताः ।

येषां काऽपि गतिर्नास्ति तेषां चाराणसीगतिः ॥ ७७ ॥

संसारभयभीता ये ये बद्धाः कर्मबन्धनैः । येषां काऽपि गतिर्नास्ति तेषां चाराणसीगतिः
श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचारविजिताः ।

येषां काऽपि गतिर्नास्ति तेषां चाराणसीगतिः ॥ ७९ ॥

ये च योगपरिभ्रष्टास्तपोदानविजिताः । येषां काऽपि गतिर्नास्ति तेषां चाराणसीगतिः
मध्ये बन्धुजने येषामपमानं पदे पदे । तेषामानन्दं चैकं शम्भोरानन्दकाननम् ॥ ८१ ॥

आनन्दकाननं येषां रुचिर्वैषसतां सताम् । विश्वेशानुगृहीतानान्तेषामानन्दजोदयः
भर्ज्यन्ते कर्मबीजानि यत्र विश्वेशवह्निना । अतो महाशमशानं तद्गतीनां परा गतिः

हरिकेशोऽविचार्यति यातो चाराणसीं पुरीम् ।

यत्राऽविमुक्ते जन्तूनां त्यजतां पार्थिवीं तनुम् ॥ ८४ ॥

पुनर्नोतनुसम्बन्धस्तनुद्वेषप्रसादतः । आनन्दबनमासाद्य स तपः शरणां गतः ॥

अथ कालान्तरे शम्भुः प्रविश्यान्न्दकाननम् । पार्थिव्यैर्दशंयामास निजमः क्रीडकाननम्
अमन्दामोदमन्दारं कौचिदारपरिष्कृतम् । चारुचम्पकभूताढ्यं प्रोत्कुल्लनवमल्लिकम्

घिकसन्मालतीजालं करवीरविराजितम् । प्रस्फुटकेतकिवनं प्रोद्यत्कुरवकोजितम्
 जृम्भद्विचकिलामोदं लसत्कङ्कलिपल्लवम् । नवमल्लीपरिमलारुष्टपदपदनादितम् ॥
 पुष्प्यपुष्पागनिकरं बकुलामोदमोदितम् । मेदस्विपाटलामोदसदामोदितदिडुमुखम्
 बहुशो लम्बिरोलम्बमालामालितभूतलम् । चलच्चन्दनशाखाप्ररममाणपिकाकुलम्
 गुरुणाऽगुरुणामत्तभद्रजातिघिहङ्गमम् । नागकेसरशाखास्थशालभञ्जिचिनोदितम्
 मेरुतुङ्गनमेरुस्थच्छायाक्रीडितकिन्नरम् । किन्नरीमिथुनोद्रीतंगानवच्छुक्किशुकम् ॥
 कदम्बानां कदम्बेषु गुञ्जद्रोलम्बयुग्मकम् । जिनसौषर्षणवर्षांश्चकारिणकारविगजितम्
 लसन्सतच्छदामोदं खजूरीराजिराजतम् । नारिकेलतरुच्छन्नं नारङ्गीरागरजितम्
 फलिजम्बीरनिकरं मधूकमधुपाकुलम् । शालमलीशीतलच्छायं पिचुमन्दमहावनम्
 मथुरामोददमनच्छन्नं मरुवनोदितम् । लवलीलोललीलाभृन्मन्दमारुतदोलितम् ॥

मिह्रीहल्लीसकप्रतिभिह्रीरावचिराविणम् ।

कचित्सरःपरिसरक्रीडत्कोडकदम्बकम् ॥ ६८ ॥

मरालीगलनालीस्थबिसासकसितच्छदम् ।

विशोककोकमिथुनक्रीडाक्रोडारसुन्दरम् ॥ ६९ ॥

वकशावकसञ्चारं लक्ष्मणासक्तसारसम् । मत्तबर्हिणसंघुष्टं कपिञ्जलकुलाकुलम् ॥

जीवञ्जीवलसञ्जीवं कणत्कारण्डवोत्कटम् ।

दीर्घिकावारिसञ्चारिशीतमारुतवीजितम् ॥ १०१ ॥

मन्दान्दोलितकङ्कारपरागपरिपिङ्गलम् । उल्लसत्पङ्कजमुखं नीलेन्दीवरलोचनम् ॥

तमालकयरीभारं विलसद्वाडिमीरदम् । भ्रमरालीलसदुभ्रकं शुक्नासाविगजितम्

महान्धुध्रवणन्दूर्वाशमश्रुभिः परिशोभितम् ।

कमलामोदनिःश्वासां बिम्बीफलरदच्छदम् ॥ १०४ ॥

सुपद्मपत्रचसनं कर्णिकारविभूषणम् । कप्रकम्बुलसत्कण्ठं शङ्करस्कन्धवन्धुरम् ॥

गन्धसारसमासक्ताहीनदोर्दण्डमण्डितम् । अशोकपल्लवाङ्कुकेतकीनखरोज्ज्वलम्

लसत्कण्ठीरवोरस्कंगण्डशैलपृथुर्दरम् । जलाघर्तलसन्नाभितरुञ्जयुगान्वितम्

स्थलभाक्पञ्चवरणं मत्समातङ्गगामिनम् । लसत्कदलिकेदारदलक्षीनांशुकावृतम् ॥
 नानाकुसुममालाभिर्मालितञ्जसमन्ततः । अकण्टकितरुच्छन्नम्महिषभ्वापदावृतम् ॥
 चन्द्रकान्तशिलासुप्तकृष्णैणहरितोडुपम् । तरुप्रकीर्णकुसुमजितस्वर्लोकतारकम्
 दर्शयन्नित्थमाकीडन्देव्यै देवोऽविशद्वनम् ॥ ११० ॥

देवदेव उवाच

यथा प्रियतमादेवि ! ममत्वं सर्वसुन्दरि । तथा प्रियतरञ्चैतन्मे सदानन्दकाननम् ॥
 अत्रानन्दधने देवि ! मृतानां मदनुग्रहात् । वपुस्त्वमृततां प्राप्तमपुनर्भविनस्तु ते ॥

भविनो ये चिपद्यन्ते वाराणस्यां ममाह्वया ।

नेपा बीजानि दग्धानि श्मशानज्वलदग्निना ॥ ११३ ॥

महाश्मशाने ये प्राप्ता दीर्घनिद्रागिरीन्द्रजे ! । न पुनर्गर्भशयने ते स्वपन्ति कदाचन
 ब्रह्मज्ञानेन मुच्यन्ते नाऽन्यथा जन्तवः कश्चित् ।

ब्रह्मज्ञानमये क्षेत्रे प्रयागे वा तनुत्यजः ॥ ११५ ॥

ब्रह्मज्ञानं तदेवाहं काशीसंस्थितिभागिनाम् ।

दिक्षामि तारकं प्रान्ते मुच्यन्ते ते तु तत्क्षणात् ॥ ११६ ॥

गृह्णीयुः पापकर्माणि काशीमृतचिनिन्दकाः ।

सुकृतानि स्तुतिकृतो मुच्यन्ते तेऽत्र जन्तवः ॥ ११७ ॥

ब्रह्मज्ञानंकुतोदेविकलिनोपहतात्मनाम् । स्वभावचञ्चललाक्षाणांतद्ब्रह्म हदिशाम्यहम्
 योगिनो योगविप्रपुत्रः पतन्त्यैश्वर्यमोहिताः ।

काश्यां पतित्वा न पुनः पतन्त्यपि महालये ॥ ११९ ॥

ब्रह्मज्ञानं न विन्दन्ति योगैरेकेन जन्मना । जन्मनैकेनमुच्यन्तेकाश्यामन्तकृतो जनाः
 यथेहमुच्यते जन्तुर्गिरिजे मदनुग्रहात् । अविमुक्ते महाक्षेत्रे न तथाऽन्यत्र कुत्रचित्

बहुजन्मसमभ्यासाद्योगी मुच्येत वा न वा । मृतमात्रोधिमुच्येतकाश्यामेकेनजन्मना
 न सिध्यति कलौ योगो न सिध्यति कलौ तपः ।

न्यायार्जितधनोत्सर्गः सर्गः सिध्यैत्कलौ नरः ॥ १२३ ॥

न व्रतं न तपो नेजया न जपो न सुरार्चनम् । दानमेव कलौमुक्तयैकाशीदानैरवाप्यते
 कलौविश्वेश्वरोद्देवः कलौधाराणसीपुरी । कलौभागीरथीगङ्गाकलौदानंविशिष्यते
 शङ्कोत्तरवहाकाश्यां लिङ्गं विश्वेश्वरं मम । उभेचिमुक्तिदेपुंसां प्राप्येदानबलात्कलौ
 पुण्यवानितरो षाऽपि ममक्षेत्रस्य सेवया । मुक्तोभवति देवेशि!नात्रकार्याविचारणा
 अचिमुक्तस्य माहात्म्यात्पुण्यपापेन कर्मणा । देवि!प्रभवतःपुंसामपिजन्मशतार्जिते
 अचिमुक्तं न मोक्तव्यं तस्माद्देवि! मुमुक्षुणा । हन्यमानेन बहुधा ह्यपसर्गशतैरपि
 विधाय क्षेत्रसंन्यासं ये वसन्तीह मानवाः ।

जीवन्मुक्तास्तु ते देवि! तेषां विघ्नं हराम्यहम् ॥ १३० ॥

न योगिना हृदाकाशे न कैलाशे न मन्दरे । तथावासरनिर्मंऽस्तियथाकाश्यांरतिर्मम
 काशीवासिजनो देवि!ममगर्भे वसेत्सदा । अतस्तं मोक्षयाम्यन्तेप्रतिज्ञेयं यतो मम
 तामसीं प्रकृतिं प्राप्य कालौ भूत्वा घराचरम् ।

प्रसामि लीलया देवि! काशी रक्षामि यत्नतः ॥ १३३ ॥

प्रेमपात्रद्वयं देवि! नितरा नेतरन्मम । त्वं वा तपोधने! गौरि! काशीवानन्दभूमिका
 विना काशीं न मे स्थानं विना काशी न मे रतिः ।

विना काशीं न निर्वाणं सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ १३५ ॥

ब्रह्माण्डगोलके यद्गन्मुक्तिः काश्या व्यवस्थिता ।

अष्टाङ्गयोगयुक्त्या वा न तथा हेलयाऽन्यतः ॥ १३६ ॥

इतिश्रुवाणो देवेशो हरिकेशमवैक्षत । मध्ये वनं तपस्यन्तमशोकतरुमूलगम् ॥
 शुष्कस्नायुपिनद्धास्थिसञ्चयं निश्चलाकृतिम् ।

वल्मीककीटकाकोटिशोपितासृगसृग्धरम् ॥ १३८ ॥

निर्मासकीकसचयंस्फटिकोपलनिश्चलम् । शङ्कुन्देन्दुतुहिनमहाशङ्खलसञ्चियम्
 सस्वावलम्बितप्राणमायुःशेषेण रक्षितम् ।

निःश्वासोच्छ्वासपवनवृत्तिसूक्ष्मितजीवितम् ॥ १४० ॥

निमेषोन्मेषसञ्चारपिशुनीकृतजन्तुकम् । पिङ्गतारस्फुरद्रश्मिनेत्रदीपितदिङ्मुखम्

तत्तपोभिश्शिखादावचुम्बितम्लानकाननम् ।

तत्सौम्यदृक्सुधावर्षसंसिक्ताऽखिलभूरुहम् ॥ १४२ ॥

साक्षात्तपस्यन्तमिध तपो धृत्वा नराकृतिम् ।

निराकृतिं निराकाङ्क्षं कृत्वा भक्तिञ्च काञ्चन ॥ १४३ ॥

कुरङ्गशावैर्गणशोभ्रमद्विः परिवारितम् । नितान्तभीषणास्यैश्चपञ्चास्यैःपरिरक्षितम्
तं तथाभूतमालोक्य देवीदेवं व्यजिज्ञपत् । वरेणच्छन्द्येशामुं निजभक्तंतपस्विनम्

त्वदैकचित्तं त्वदधीनजीवितं त्वदैककर्माणममुं त्वदाश्रयम् ।

तीव्रैस्तपोभिः परिशुष्कविग्रहं कुरुष्व यक्षस्य वरैरनुग्रहम् ॥ १४६ ॥

देवो वृषेन्द्रादवरुह्य देव्या शैलादिनादसकरावलम्बः ।

समाधिसङ्कोचितनेत्रपत्रं पस्पृशं हस्तेन दयाद्रचेताः ॥ १४७ ॥

नतः स यक्षो विनिमील्य चक्षुषीं त्र्यक्षं पुरो वीक्ष्य समक्षमात्मनः ।

उद्यत्सहस्रांशुसहस्रतेजसं जगादहर्षाकुलगद्गदाक्षरम् ॥ १४८ ॥

जयेश! शम्भो! गिरिजेश! शङ्कर! त्रिशूलपाणे! शशिखण्डशेखर! ।

स्पर्शत्कपालो! तव पाणिपङ्कजं प्राप्याऽमृतीभूततनूलतोऽभवम् ॥ १४९ ॥

श्रुत्वोदितां तस्य महेश्वरो गिरं मृद्धीकया साम्यमुपेयुषीं मृदु ।

भक्तस्य धीरस्य महातपोनिधे! ददौ वराणां निकरन्तदा मुदा ॥ १५० ॥

क्षेत्रस्य यक्षाऽस्य मम प्रियस्य भो भवाऽधुना दण्डधरोवरान्मम ।

स्थिरस्त्वमद्यादितुरात्मदण्डकः सुपालकः पुण्यकृताञ्च मत्प्रियः ॥ १५१ ॥

त्वं दण्डपाणिर्भवनामतोऽधुना सर्वान्गणाञ्छाधि ममाक्षयोत्कटात् ।

गणाचिमौ त्वामनुयायिनौ सदा नाम्ना यथार्थौ नृषु संभ्रमोद्भ्रमौ ॥ १५२ ॥

त्वमन्त्यभूपां कुरु काशिवासितां गलेसुनीलाम्भुजगेन्द्रकङ्कणाम् ।

भाले सुनेत्रां करिकृत्तिवाससं वामेक्षणांलक्षितवामभागाम् ॥ १५३ ॥

मौलौ लसत्पङ्ककपर्दभारिणीं विभूतिसंक्षालितपुण्यविग्रहाम् ।

अहो हिमांशोः कलयालसच्छ्रियं वृषेन्द्रलीलागतमन्दगामिनीम् ॥ १५४ ॥

त्वमन्नदःकाशिनिवासिनां सदा त्वं प्राणदो ज्ञानद एक एव हि ।
 त्वं मोक्षदो मन्मुखसुपदेशस्त्वं निश्चलां सद्भवसतिं विधास्यसि ॥ १५५ ॥
 त्वं चिद्रूपमैःपरिपीड्यपापिनः सम्भ्रान्तिमुत्पाद्य विनेष्यसे बहिः ।
 आनीय भक्तान् क्षणतोपि दूरतो मुक्तिं परां दापयितासि पिङ्गल ! ॥ १५६ ॥
 त्वत्सात्कृते क्षेत्रधरे हि यक्षराट् कस्त्वामनाराध्य विमुक्तिभाजनम् ।
 स भाजनं पूर्वंत एव ते चरेत्ततःसमर्था मम भक्त आवरेत् ॥ १५७ ॥
 त्वं ग्रामवासप्रद एव मे पुरेऽध्यक्षस्त्वमेधीह च दण्डनायकः ।
 दुष्टान्समुञ्जाटय काशिवैरिणःकाशीपुरीं रक्ष सदा मुदान्वितः ॥ १५८ ॥
 पूर्णभद्रसुत! दण्डनायक! त्र्यक्ष! यक्ष! हरिकेश! पिङ्गल !
 काशिवासवसतां सदाऽन्नद ! ज्ञानमोक्षद ! गणाग्रणीर्भव ॥ १५९ ॥
 मद्भक्तियुक्तोऽपि विना त्वदीयां भक्तिं न काशीं वसति लभेत ।
 गणेषु देवेषु हि मानवेषु तदग्रमान्यो भव दण्डपाणे ! ॥ १६० ॥
 ज्ञानोदतीर्थे विहितोदकक्रियो यस्त्वां समाराधयिता गणेशम् ।
 स एव लोके कृतकृत्यतामगान्ममातुलानुग्रहतोऽत्रपुण्यवान् ॥ १६१ ॥
 त्वं दक्षिणस्यां दिशि दण्डपाणे! सदैव मे नेत्रसमक्षमत्र ।
 त्वं दण्डयन्प्राणभृतो दुरीहानिहास्वनृन्स्वानभयं दिशन्वै ॥ १६२ ॥

स्कन्द उवाच

इति दस्वावरान्विप्र गिरीशोदण्डपाणये । वृषेन्द्रमधिरुह्याथ विवेशानन्दकाननम्
 कुम्भोद्भव! तदारभ्य यक्षराट्दण्डनायकः । पुरीघाराणसौंसम्यगनुशास्तिं निदेशतः
 अहमप्यत्रवसतिं चक्रे तदनुसूयया । वसन्नपि मयाकाश्या यतः सम्भवितो न सः
 मुने! क्षेत्रं यदत्याक्षीस्त्वमप्येवंविधो वशी ।
 शङ्के तत्राऽहमेवाह्वा कामं तस्यैव विक्रियाम् ॥ १६६ ॥
 मनाग्विरुद्धाचरणं यदि द्विज! विलक्षयेत् ।
 हरिकेशस्तदा काश्यां क स्थितिः क च निवृत्तिः ॥ १६७ ॥

दण्डपाणिमनाराध्य कःकाश्यां सुखमाप्नुयात् ।

प्रक्षिप्सुरहं काशीं दूरगोऽपि भजामि तम् ॥ १६८ ॥

रत्नभद्राङ्गजोद्भूत! पूर्णभद्रसुतोत्तम !। निर्विघ्नं कुरु मे यक्ष! काशीवासं शिवाभये
घन्योयक्षःपूर्णभद्रो घन्याकाञ्चनकुण्डला । ययोर्जठरपीठेऽभूर्दण्डपाणे! महामते !।
जययक्षपते ! धीर जयपिङ्गललोचन !। जयपिङ्ग! जटाभार ! जयदण्ड! महायुध!
अविमुक्तमहाक्षेत्रसुत्रधारोग्रतापस !। दण्डनायक! भीमास्य! जयविश्वेश्वरप्रिय !।
सौम्यानां सौम्यवदनभीषणानां भयानक !। क्षेत्रपापधियांकालमहाकालमहाप्रिय!
जय प्राणद! यक्षेन्द्र! काशीवासाञ्जमोक्षद! । महारत्नस्फुरद्रश्मिचयचर्चितविग्रह!
महासम्भ्रान्तिजनक! महोद्भ्रान्तिप्रदायक !।

अभक्तानां च भक्तानां षसम्भ्रान्त्युद्भ्रान्तिनाशक !। १७० ॥

प्रान्तनेपथ्यचतुर! जयज्ञाननिधिप्रद !। जय गौरीपदाब्जाले! मोक्षेक्षणविचक्षण
यक्षराजाष्टकं पुण्यमिदं नित्यं त्रिकालतः । जपामिमैत्रावरुणे! वाराणस्यासिकारणम्
दण्डपाण्यष्टकंधीमान् जपन्विघ्नैर्न जातुचित् । श्रद्धयापरिभूयेतकाशीवासफलंलभेत्
प्रादुर्भावं दण्डपाणेः शृण्वन् स्तोत्रमिदं गृणन् ।

विपत्तिमन्यतः प्राप्य काशी जन्मान्तरे लभेत् ॥ १७१ ॥

श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यं दण्डपाणिसमुद्भवम् । पठित्वापाठयित्वाऽपि न विघ्नैरभिभूयते
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे दण्डपाणिप्रादुर्भावो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ज्ञानवापीमाहात्म्यवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

स्कन्द! ज्ञानोदतीर्थस्य माहात्म्यं वद साम्प्रतम् ।

ज्ञानवापीं प्रशंसन्ति यतः स्वर्गोक्तसोप्यलम् ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच

घटोद्भवमहाप्राज्ञ! ऋणुपापप्रणोदिनीम् । ज्ञानवाप्याः समुत्पत्तिकथ्यमानां मयाधुना
अनाद्रिसिद्धे संसारेपुरा देवयुगे मुने ! । प्राप्तः कुतश्चिदीशानक्षरन्स्वैरमितस्ततः
नवर्षन्तियदाग्निप्रवाहवर्तन्त निह्नगाः । जलामिलाषो न यदास्नानपानादिष्मणि
क्षारस्वाददूदयोरेव यदासीज्जलदर्शनम् । पृथिव्यां नरसंचारे वर्तमाने क्वचित् क्वचिन्
निर्वाणकमलाक्षेत्रं श्रीमदानन्दकाननम् ! महाश्मशानं सर्वेषां बीजानां परम्परम्
महाशयनसुप्तानां जन्तूनांप्रतिबोधकम् । संसारसागरावर्तपतज्जन्तुतरण्डकम्
यातायातातिसंखिन्नजन्तुविभ्राममण्डपम् । अनेकजन्मगुणितकमसूत्रच्छिदाश्रुरम्
सखिदानन्दनिलयस्परब्रह्मरसायनम् । सुखसन्तानजनकम्भोक्षसाधनसिद्धिदम्
प्रविश्य क्षेत्रमेतत्स ईशानो जटिलस्तदा । लसत्त्रिशूलघिमलरश्मिजालसमाकुलः
आलुलोके महालिङ्गं वैकुण्ठपरमेष्ठिनोः । महाहमहमिकायां प्रादुरास यदादितः
ज्योतिर्मयीभिर्मालाभिःपरितःपरिवेष्टितम् । वृन्देवृन्दारकर्षोणांगणानाञ्चनिरन्तरम्
सिद्धानां योगिनांस्तोमैरर्च्यमानंनिरन्तरम् । गीयमानं चगन्धर्वैःस्तूयमानंचचारणैः
अङ्गहारैरुत्सरोभिः सेव्यमानमनेकधा । नीराज्यमानं सततप्रागीभिर्मणिदीपकैः
विद्याधरीकिन्नरीभिस्त्रिकालंकृतमण्डनम् । अमरीचमरीराजिषीज्यमानमितस्ततः
अस्यैशानस्य तल्लिङ्गं दृष्ट्वाच्छेत्यभवत्तदा । स्नपयामि महलिङ्गं कलशैः शीतलैर्जलैः
चक्षान चत्रिशूलेन दक्षिणाशोपकण्ठतः । कुण्डं प्रषण्डं वेगेन रुद्रोरुद्रघुर्धरः

पृथिव्यावरणाम्भासि निष्कान्तानि तदा मुने ! भूप्रमाणाद्दशगुणैर्यैरियं वसुधावृता
तैर्जलैःस्नापयाञ्चक्रे त्वस्पृष्टैरन्यदेहिभिः । तुषारैर्जाड्यविधुरैर्जञ्जपूकौघहारिभिः
सन्मनोभिरिषात्यच्छैरनच्छैर्व्योमवर्त्मवत् ।

ज्योत्स्नावदुज्ज्वलच्छायैः पावनैः शम्भुनामवत् ॥ २० ॥

पीयूषवत्स्वादुतरैः सुखस्पर्शैर्गन्धाङ्गवत् । निष्पापधीवद्गम्भीरंस्तरलैःपापिशर्मवत्
विजिताब्जमहागन्धैःपाटलामोदमोदिभिः । अद्भुष्टपूर्वलोकानां मनोनयनहारिभिः
अज्ञानतापसं तप्तप्राणिप्राणैकरक्षिभिः । पञ्चामृतानां कलशैः स्नपनाति फलप्रदैः
श्रद्धोपस्पर्शि हृदयलिङ्गत्रितयहेतुभिः । अज्ञानतिमिरार्काभैर्ज्ञानदाननिदायकैः २४ ॥
विश्वभक्तुं रुमास्पर्शसुखातिसुखकारिभिः । महावभृथसुस्नानमहाशुद्धिविधायिभिः
सहस्रधारैः कलशैः स ईशानोघटोद्भव ! सहस्रकृत्वैः स्नपयामास संहृष्टमानसः
ततः प्रसन्नो भगवान् विश्वात्माविश्वलोचनः । तमुवाच तदेशानंरुद्रंरुद्रवपुर्धरम्
तव प्रसन्नोऽस्मीशान कर्मणाऽनेन सुव्रत ! गुरुणानन्यपूर्वेण ममाति प्रीतिकारिणा
ततस्त्वं जटिलेशनान् वरं ब्रूहि तपोधन ! अद्वेयं न तवास्त्यद्य महोद्यमपरायण !

ईशान उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश! वरयोग्योऽस्म्यहं यदि । तदेतदतुलं तीर्थं तव नाम्नास्तु शङ्कर!

विश्वेश्वर उवाच

त्रिलोकां यानि तीर्थानि भूर्भुवःस्वःस्थितान्यपि ।

तेभ्यो खिलेभ्यस्तीर्थेभ्यः शिवतीर्थमिदं परम् ॥ ३१ ॥

शिवंज्ञानमिति ब्रयुः शिवशब्दार्थंघ्नन्तकाः । तच्च ज्ञानन्दर्शाभूतमिहमे महिमोदयान्
अतो ज्ञानोदनामैतत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । अस्य स्पर्शनमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते
ज्ञानोदतीर्थसंस्पर्शादश्वमेधफलं लभेत् । स्पर्शनाद्यमनाभ्याञ्च राजसुयाश्वमेधयोः
फलगुनीर्थे नरः स्नात्वासन्तर्प्येषपितामहान् । यत्फलं समवाप्नोतितदत्रश्राद्धकर्मणा
गुरुपुण्यासिताष्टम्यां व्यतीपातोयदाभवेत् । तदात्र श्राद्धकरणाद्गयाकोटिगुणंभवेत्
यत्फलं समवाप्नोतिपितृन्सन्तर्प्यपुष्करे । तत्फलं कोटिगुणितंज्ञानतीर्थेतिलोदकैः

सन्नहत्यां कुरुक्षेत्रे तमोप्रस्ते चिबस्वति । यत्फलं पिण्डदानेन तज्ज्ञानोदेदिनेदिने
पिण्डनिर्वपणं येषांज्ञानतीर्थं सुतैः कृतम् । मोदन्ते शिवलोके ते यावदाभूतसंप्लवम्
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामुपवासी नरोत्तमः ।

प्रातः स्नात्वाऽथ पीताम्भस्त्वन्तर्लिङ्गमयो भवेत् ॥ ४० ॥

एकादश्यामुपोष्यान्नप्राश्नातिचुलुकत्रयम् । हृदयेतस्यजायन्तेत्रीणिलिङ्गान्यसंशयम्
ईशानतीर्थेयःस्नात्वाविशेषात्सोमवासरे । संतर्प्यदेवर्षिपितृन्दस्वादानं स्वशक्तितः
ततः समर्च्यश्रीलिङ्गमहासंभारविस्तरैः । अत्रापि दस्वा नानार्थान्कृतकृत्योभवेन्नरः
उपास्य सन्ध्यांज्ञानोदेयत्पापं काललोपजम् । क्षणेनतदपाकृत्यज्ञानवानजायतेद्विजः
शिवतीर्थमिदं प्रोक्तंज्ञानतीर्थमिदंशुभम् । तारकाख्यमिदं तीर्थं मोक्षतीर्थमिदं ध्रुवम्
स्मरणादपि पापौघो ज्ञानोदस्य क्षयेद् ध्रुवम् ।

दर्शनात्स्पर्शानात्स्नानात्पानाद्धर्मादिसम्भवः ॥ ४१ ॥

डाकिनीशाकिनीभूतप्रेतवेतालराक्षसाः ।

प्रहाः कुश्माण्डभोटिङ्गाः कालकर्णो शिशुप्रहाः ॥ ४२ ॥

ज्वरापस्मारविस्फोटद्वितीयकचतुथंकाः । सर्वे प्रशममायान्तिशिवतीर्थजलेक्षणात्
ज्ञानोदतीर्थपानीयंलिङ्गयः स्नापयेत्सुधीः । सर्वतीर्थोदकंस्तेनध्रुवं संस्नापितम्भवेत्
ज्ञानरूपोऽहमेवात्रद्रवमूर्तिविधाय च । जाड्यविध्वंसनंकुर्यां कुर्यां ज्ञानोपदेशनम् ॥
इति दस्वावराञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत । कृतकृत्यमिधात्मानंसोप्यमंस्तत्रिशूलभृत्
ईशानो जटिलोरुद्रस्तत्राप्य परमोदकम् । अवाप्तवान् परंज्ञानं येन निवृत्तिमाप्तवान्

स्कन्द उवाच

कलशोद्भव! चित्रार्थमितिहासं पुरातनम् ।

ज्ञानचाप्यां हि यद्बृहत्तन्तदाख्यामि निशामय ॥ ५३ ॥

हरिस्वामीति विख्यातः काश्यामासीद् द्विजः पुरा ।

तस्यैका तनया जाता रूपेणाऽप्रतिमा भुवि ॥ ५४ ॥

न समा शीलसम्पत्त्या तस्याःकाञ्चन भूतले ।

कलाकलापकुशला स्वरेण जितकोकिला ॥ ५५ ॥

न नारी तादृगस्तीह नाऽमरीकिकरिण च । विद्याधरीननो नागागन्धर्वीनासुरीनच
सर्वसौन्दर्यनिलया सर्वलक्षणसत्त्वनिः ।

अधिशेते ध्रुवं ध्वान्तन्तन्मौलि ब्रध्नसाध्वसात् ॥ ५७ ॥

तदास्यंशरणंयातोमन्येदशंभयाच्छर्शा । दिवापि नत्यजेत्तान्तुत्रस्तश्चण्डमरीचिनः
तद्भ्रूभ्रं मरराजीवगण्डपत्रलतान्तरे । उदञ्चन्न्यञ्चदुङ्कीनगतेरभ्यासभाजिनी ॥
तञ्चारुलोचनक्षेत्रे विचरन्ती च खञ्जनी । सदैव शारदी प्रीति निर्विशेते निजेच्छया
सुदत्या रदनश्रेणीछदेषु विषमेषुणा । विहिता काञ्चनी रेखा क्वेन्दावेतावतीकला
प्रायो मदनभूपालहर्म्यरत्नान्तरेशुमे । जितप्रवालसुच्छाये तस्यारदनवाससी
स्वर्गे मर्त्येषपातालेनैषारेखा क्वचित्त्रियाम् । तत्कण्ठरेखात्रितयव्याजेनशपतेस्मरः
शङ्के चित्तभुवो राज्ञो लसत्पटकुटीद्वयम् । अनर्घ्यरत्नकोशाद्व्यन्तस्यावक्षोरुहद्वयम्
अनङ्गभ्रनियमतोऽदृश्येमध्ये नतभ्रवः । रोमालीलक्षिकामध्वामिवयष्टिविधिव्यंघ्रात्
तस्या नाभीदरीं प्राप्य कन्दर्पोऽनङ्गताङ्गतः । पुनः प्राम्मिवाङ्गानि तप्यते परमंतपः
गुरुणैतन्नितम्बेन महामन्मथदीक्षया । भुविकेकेयुवानो न स्वाधीनाःप्रापितादृशाम्
ऊहस्तम्बेन चैतस्याः स्तम्भवत्कस्यनोमनः । तस्तम्बेनमुनेर्वापिसुवृत्तेनसुघर्तनम्
पादाङ्गुष्ठनखज्योतिःप्रमयाकस्यनप्रभा । चिवेकजनिताऽध्वंसि मुने! तस्यामृगीदृशः
मा प्रत्यहं ज्ञानवाप्यां स्नायं स्नायं शिवालये ।

संमार्जनादिकर्माणि कुरुतेऽनन्यमानसा ॥ ७० ॥

तत्पादप्रतिचिम्बेषु रेखाशष्पाङ्कुरञ्चरत् । नान्यद्वनान्तरंयाति काश्यांयूनांमनोमृगः
तदान्यपङ्कजं हित्वा यूनां नेत्रालिमालया । नलतान्तरमासेचिअप्यामोदप्रसूनयुक
सुलोचनाऽपि सा कन्या प्रेक्षेताऽऽस्यं न कस्यचित् ।

सुश्रवा अपि सा बाला नाऽऽदस्ते कस्यचिद्वचः ॥ ७३ ॥

सुशीला शीलसम्पन्नारहस्तद्विरहातुरं । प्रार्थितापि सुरूपाद्यैर्नाभिलाषम्बबन्धसा
धनैस्तस्या जनैतापि युषभिः प्रार्थितो बहु ।

नाऽशकसां सुशीलां स दातुं शीलोजितश्रियम् ॥ ७५ ॥

ज्ञानोदतीर्थभजनात्सासुशीलाकुमारिका । बहिरन्तस्तदाऽद्राक्षीत्सर्षलिङ्गमयंजगत्
कदाचिद्देकदातां तु प्रसुप्तांसदनाङ्गणे । मोहितोरूपसम्पत्त्या कश्चिद्विद्याधरोऽहरत्
व्योमवर्त्मनितां रात्रौ याधन्मलयपर्वतम् । सनिनीपतितावच्चविद्युन्मालीसमागतः
राक्षसो मीषणवपुः कपालकृतकुण्डलः । वसारुधिरलिप्ताङ्गः श्मश्रुलः पिङ्गलोचनः

राक्षस उवाच

मम दृग्गोचरं यातो विद्याधरकुमारक ! अद्य त्वामेतया सार्धं प्रेषयामियमालयम्
इति श्रुत्वाऽथ सा वाक्यं व्याघ्राघ्राता मृगी यथा ।

चकम्पेऽतीव संभीता कदलीदलवन्मुहुः ॥ ८१ ॥

निजघान त्रिशूलेन रक्षोविद्याधरं च तम् । विद्याधरकुमारोऽपि नितरांमधुराकृतिः
तद्भीषणत्रिशूलेन भिन्नोरस्कमोहाबलः । जघान मुष्टिघातेन वज्रपातोपमेन तम् ॥ ८३
नरमांसवसामसत् विद्युन्मालिनमाहवे । चूर्णितोमुष्टिघातेन सोऽपतद्भसुधातले
राक्षसो मृत्युवशातो वज्रेणैव महीधरः । विद्याधरोपि तच्छूलघातेन विकलीकृतः
उवाच गद्रुद्रं वाक्यं विधूर्णितविलोचनः । प्रिये मुधासमानीतासुशित्यधोकिमुञ्चरन्

जहौ प्राणान् रणे धीरस्तां प्रियां परितः स्मरन् ॥ ८७ ॥

अनन्यपूर्वसंस्पर्शसुखं समनुभूय सा । तमेव च पतिं मत्त्वा चक्रेशोकाग्निसात्तनुम्
लिङ्गत्रयशरीरिण्यास्तस्याः सान्निध्यतः स हि ।

दिव्यं वपुः समासाद्य राक्षसस्त्रिदिवं ययौ ॥ ८९ ॥

रणेपणीकृतप्राणो विद्याधरसुतोऽपि सः । अग्ने प्रियां स्मरन्प्राप जनुर्मलयकेतुतः
ध्यायन्ती साऽपि तं बाला विद्याधरकुमारकम् ।

विरहाग्नौ विसृष्टासुः कर्णाटे जन्मभागभृत् ॥ ९१ ॥

सुतो मलयकेतोस्तां कालेन परिणीतवान् ।

माल्यकेतुरनङ्गश्रीः पित्रा दत्तां कलावतीम् ॥ ९२ ॥

सापि प्राग्वासनायोगाल्लिङ्गाचर्नरता सती । हित्वा मलयजक्षोदं विभूर्तिवद्भ्रमंस्तवै

मुक्तावैदूर्यमाणिक्यपुष्परामेभ्य एष सा । मेने रुद्राक्षनेपथ्यमनर्घ्यं गर्भसुन्दरी
कलावती माल्यकेतुं पतिं प्राप्य पतिव्रता । अपत्यत्रितयंलेभेदिव्यभोगसमृद्धिभाक्
एकदा कश्चिदौदीच्यो माल्यकेतुं नरेभ्वरम् ।

चित्रकृच्चित्रपटिकां चित्रां दर्शितवानथ ॥ ६६ ॥

तांतु चित्रपटीं राजा कलावत्यै समापयत् । साथ चित्रपटीरम्यां संप्रहृष्टतनूरुहा
मुहुर्मुहुः प्रपश्यन्ती रहसि प्राणदेवताम् ।

विसस्मार स्वमपि च समाधिस्थेव योगिनी ॥ ६८ ॥

क्षणमुन्मील्य नयने कृत्वा नेत्रातिथिं पटीम् ।

तर्जन्यग्रमथोत्क्षिप्य स्वात्मानं समबोधयत् ॥ ६९ ॥

संभेदोऽयमसे! रम्यउपलोकार्कमप्रतः । उपश्रीकेशवपदं वरणैषा सरिद्वरा ॥ १०० ॥

स्वर्गे प्रार्थितसंपर्शासैषास्वर्गतरङ्गिणी । उदग्बहाभिलष्यन्तियांदिबोधसदःसदा
अलक्ष्या मोक्षलक्ष्मीर्या वेदान्ते परिपठ्यते ।

विमुक्तये सतां सैषा श्रीमती मणिकर्णिका ॥ १०२ ॥

मरणं मङ्गलं यत्र सफलं यत्र जीवितम् । स्वर्गस्तृणायते यत्र सैषाश्रीमणिकर्णिका
यत्र सम्पत्तिसम्भारान्विश्राण्यनिधनेच्छया ।

यतिव्रतं समालम्ब्य तिष्ठते मूलकन्दभुक् ॥ १०४ ॥

यत्र त्रिमार्गां गङ्गांमार्गमाणोमृतान् हरः । स्वमौलिबालचन्द्रेणमुक्तिमार्गप्रदर्शयन्
संसारं यत्र दुर्वारं प्रतारयति शङ्करः । मृता अप्यमृतायन्ते कर्णधाराद्यतो नराः
संसारसारपदवी यत्र स्याददधीयसी । कर्णे जपान्महेशानात्करुणाघरुणालयात्
अनेकभवसम्भूतप्रभूतसुकृतैर्नराः । कर्णेजपं भवं यत्र लभन्ते ते भवापहम् ॥ १०८ ॥

स्वीकृत्य क्षेत्रसंन्यासंयदुबलेनमहाधियः । तृणं कृतान्तंमन्यन्तेसेयंश्रीमणिकर्णिका
तृणीकृत्य निजं देहं यत्र राजर्षिसत्तमः ।

हरिश्चन्द्रः सपत्नीको व्यक्रीणाद् भूरियं हिसा ११० ॥

अभिलष्यन्ति यत्रत्यमपि बैकुण्ठवासिनः । सैकतंमृदुलं तल्पसैषाश्रीमणिकर्णिका

अनेकजन्मजनितकर्मसूत्रनियन्त्रणम् । उन्मुच्य यत्रमुक्ताःस्युः सैवाश्रीमणिकर्णिका
सत्यलोकेऽपि ये लोकास्तेऽर्थयन्ति निरन्तरम् ।

यामहोदीर्घनिद्रायै सेयं श्रीमणिकर्णिका ॥ ११३ ॥

अयं हिसकुलस्तम्भो यत्रश्रीकालभैरवः । क्षेत्रपापकृतःशास्ति दर्शयंस्तीव्रयातनाम्
अन्यत्र विहितम्पापं नश्येत्काशीनिरीक्षणात् ।

काश्यां कृतानां पापानां दारुणेयन्तु यातना ॥ ११५ ॥

कपालमोचनंतीर्थमेतत्तदपि पावनम् । कपालं पतितं यत्र चिधेभैरवपाणितः ॥
ऋणत्रयाद्विमुच्यन्ते यत्र स्नाता नरोत्तमाः । तीर्थविशुद्धिजनकं तदेतद्रूपमोचनम्
प्रणवाख्यं परंब्रह्म यत्र नित्यं प्रकाशते । स पञ्चायतनोपेत उँङ्कारेशोऽयमद्भुतः ॥
अक्ष उक्षमकारक्ष नादो बिन्दुश्च पञ्चमः । पञ्चात्मकं परं ब्रह्म यत्र नित्यं प्रकाशते
एषा मत्स्योदरी रम्या यत्स्नातो मानवोत्तमः ।

मानुजातूदरदरीं न विशोदेष निश्चयः ॥ १२० ॥

त्रिलोचनोयंभगवान्कुर्याद्देवत्रिलोचनम् । निजभक्तंकृपायुक्तस्त्वपिदेशान्तरस्थितम्
असौ कामेश्वरो देवोयःकामान्पूरयेत्सताम् । दुर्वासाअपियत्रापनिजवाममहोदयम्
स्वयंलीनो महेशोत्रभक्तकामसमृद्धये । तस्मात्स्वलनिसञ्ज्ञास्यदेवदेवस्यशूलिनः
वाराणस्यां महादेवो यः घुराणेषुपठ्यते । क्षेत्राभिमानीभगवांस्तत्प्रासादोऽयमद्भुतः
असौस्कन्देश्वरोदेवः श्रद्धयायद्विलोकनात् । आजन्मब्रह्मचर्यस्य फलमाप्नोतिमानवः
चिनायकेश्वरश्चायं सर्वसिद्धिप्रदायकः । यत्सेवया प्रणस्यन्तिनृणा सर्वेचिनायकाः
इयं वाराणसी देवी साक्षान्मूर्तिमयी शुभा ।

यस्याविलोकनात्पुंसां भूयो नो गर्भसम्भवः ॥ १२७ ॥

पाचर्नीश्वरलिङ्गस्य महदायतनंत्विदम् । यत्रनित्यं महेशानो गौर्यांसह विमुक्तिदः
एष भृङ्गीश्वरः श्रीमान्महापातकनाशनः ।

जीवनमुक्तोऽभवद् भृङ्गी यस्य लिङ्गस्य सेवया ॥ १२६ ॥

अनुर्वेदेश्वरश्चैव अनुर्वेदधरो विधिः । लभेद्यद्वीक्षणाद्विप्रो वेदाध्ययनजं फलम् ॥

यज्ञैः संस्थापितञ्चैतलिङ्गं यज्ञेश्वराभिधम् । यदचंनाल्लभेन्मर्त्यः सर्वयामफलं महत्
पुराणेश्वरनामैतलिङ्गमष्टादशाङ्गुलम् । अष्टादशानां विद्यानांस्यादाधारोयदीक्षणात्
धर्मशास्त्रेश्वरश्चायं स्मृतिभिश्च प्रतिष्ठितः ।

स्मृत्यध्ययनजम्पुण्यं यद्विलोकनतोभवेत् ॥ १३३ ॥

सारस्वतमिदं लिङ्गं सर्वजाड्यविनाशकृत् । सर्वतीर्थेश्वरंलिङ्गमेतत्सद्योविशुद्धिदम्
शंलभ्वरस्यलिङ्गस्य मण्डपोऽयंमहाद्भुतः । सर्वपांरत्नजाताना योभिभर्तिपरां श्रियम्
सप्तसागरसंज्ञं वै लिङ्गमेतन्मनोहरम् । यद्दीक्षणात्लभेन्मर्त्यःसप्ताब्धिस्नानजं फलम्
असौमन्त्रेश्वरःश्रीमान्मन्त्रजाप्यफलप्रदः । सप्तकोटिमहामन्त्रैः स्थापितोयःपुरायुगे
त्रिपुरेशस्य लिङ्गस्यपुरः कुण्डमिदंमहत् । त्रिपुरैः खानितम्पूर्वं त्रिपुरारिप्रियम्परम्
इदं बाणेश्वरं लिङ्गं सहस्रभुजपूजितम् । द्विभुजस्यापि बाणस्य सहस्रभुजहेतुकम्
वेरोचनेश्वरश्चैव पुरः प्रह्लादकेशवात् । बलिकेशवनामासावेप नारदकेशवः ॥ १४० ॥
आदिकेशवपूर्वेण त्वयमादित्यकेशवः । भीष्मकेशवनामासौ दत्तात्रेयेश्वरस्त्वयम्
दत्तात्रेयेश्वरात्पूर्वमेव आदिगदाधरः । भृगुकेशवनामासावेप वामनकेशवः ॥ १४२ ॥
नरनारायणावेतौ यज्ञवाराहकेशवः । विदारनारसिंहोऽयं गोपीगोविन्द एव ह ॥ १४३ ॥
एव लक्ष्मीनृसिंहस्य प्रासादो रत्नकेतनः । यस्य प्रसादात्प्रह्लादः पद्मैन्द्रमघातवान्
अर्जुर्वसिद्धिदःपुंसांमेव खर्वविनायकः । शेषमाधवनामासौ शेषेण स्थापितः पुरा
यस्य भक्ता न दहन्ते त्वपि संवर्तघह्निना ।

शङ्खमाधवनामाऽसौ शङ्खं हत्वाऽत्रसंस्थितः ॥ १४६ ॥

इदं सारस्वतंस्तोतः परं ब्रह्म रसायनम् । सरस्वत्या महानद्या सङ्गमो यत्र गङ्गया
यत्राप्लुतानरा भूयःसम्भवनितनभूतले । श्रीविन्दुमाधवस्त्वेषसाक्षात्क्ष्मीपतिःपरः
श्रद्धया यं नमन्मर्त्यो न वसेद्गर्भवेश्मनि । नदारिद्र्यमघात्नोतिव्याधिर्नाऽभिभूयते
विन्दुमाधवभक्तो यस्तं यमोऽपि नमस्यति ।

प्रणवात्मा य एकोऽस्ति नादविन्दुस्वरूपधृक् ॥ १५० ॥

अमूर्त्तं यत्परंब्रह्मविन्दुमाधव एवसः । पतत्पञ्चनदन्तीर्थं पञ्चब्रह्मात्मसञ्ज्ञकम् ॥ १५१ ॥

यत्र स्नातो न गृह्णीयाच्छरीरं पाञ्चभौतिकम् ।

एषा सा मङ्गलागौरीकाश्यां परममङ्गलम् ॥ १५२ ॥

यत्प्रसादाद्वाप्नोति नरोऽत्र क्षपरत्र च । मयूखादित्यसङ्गोऽयंरश्मिमालीतमोपहः
गमस्तीशो महालिङ्गमेतद्विन्यमहःप्रदम् ।

मृकण्डुसूनुनाऽप्यत्र तपस्तप्तं पुरा महत् ॥ १५४ ॥

लिङ्गं संस्थाप्य परमं स्वनाम्नायुःप्रदम्परम् ।

किरणेश्वरनामैतलिङ्गं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १५५ ॥

सकृन्नतमिदं लोकं नयेत्किरणमालिनः । धौतपापेश्वरं लिङ्गमेतत्पातकधावनम्
निर्वाणनरसिंहोऽयं भक्तनिर्वाणकारणम् । मणिप्रदीपनागोऽयं महामणिविभूषणः
यदर्चनामनरो जातु न नागैः परिभूयते । कपिलेशमिदं लिङ्गं कपिलेन प्रतिष्ठितम्
मुच्यन्ते कपयोऽप्यस्य दर्शनातिकमु मानवाः । प्रियव्रतेश्वरं लिङ्गं महदेतत्प्रकाशते
यस्यार्चनाह्यमेजन्तुः प्रियत्वं सर्वजन्तुषु । इदमायतनं श्रेष्ठंमणिमाणिक्यनिर्मितम्
श्रीमतः कालराजस्य कलिकालात्तिहारिणः ।

निजभक्तं जनं पाति यः पापात्पापभक्षणः ॥ १६१ ॥

क्षेत्रविघ्नकरान्पापान्यातयन्यातनाशतैः । इयं मन्दाकिनी रम्या तपस्तप्तुमिहागता
काशीवाससुखं प्राप्य नाद्याऽपि दिवर्माहते ।

स्नात्वाऽत्र सन्तर्प्य पितृञ्छ्लाढं कृत्वा विधानतः ॥ १६३ ॥

नरो न नरकपश्येदपि दुष्कृतकर्महृत् ।

यानि कानि च लिङ्गानि काश्यां सन्ति सहस्रशः ॥ १६४ ॥

रत्नभूतमिदंतेषु लिङ्गं रत्नेश्वरमिधम् । रत्नेश्वरप्रसादेन भुक्त्वा रत्नान्यनेकशः
पुरुषार्थमहारत्नं निर्वाणं को न लभ्यवान् । कृत्तिवासेश्वरस्यैषामहाप्रासादनिर्मितः

यां दृष्ट्वाऽपि नरो दूरात्कृत्तिवासःपदं लभेत् ।

सर्वेषामपि लिङ्गानां मौलित्वं कृत्तिवाससः ॥ १६७ ॥

उञ्कारेशः शिखा ज्ञेया लोचनानि त्रिलोचनः ।

गोकर्णभारभूतेशौ तत्कर्णां परिकीर्तितौ ॥ १६८ ॥

विश्वेश्वराचिमुक्तौ च द्वावेतौदक्षिणौ करौ । धर्मशामणिकर्णेशौद्वौकरौदक्षिणेतरी
कालेश्वरकपर्दीशौचरणावतिनिर्मली । ज्येष्ठेश्वरौ नितम्बश्च नामिर्धर्मध्यमेश्वरः
कपर्दोऽस्य महादेवः शिरोभूषा श्रुतीश्वरः । चन्द्रेशोहृदयन्तस्य आत्मावीरेश्वरःपरः
लिङ्गन्तस्यतु केदारःशुक्रंशुक्रेश्वरं चिदुः । अन्यानियानिलिङ्गानिपरःकोटिशतानि च
ज्ञेयानिनखलोमानिचपुषोभूषणान्यपि । यावेतौदक्षिणौहस्तौनित्यनिर्बाणदौहितौ
जन्तूनामभयं द्रवा पतताम्मोहसागरे । इयं दुर्गाभगवती पितृलिङ्गमिदम्परम्
इयं हि चित्रघण्टेशी घण्टाकर्णहृदस्त्वयम् ।

इयं सा ललिता गौरी विशालाक्षीयमद्भुता ॥ १७५ ॥

आशाचिन्तायकस्त्वेषधर्मकूपोऽयमद्भुतः । यत्रपिण्डान्नरो द्रवा पितृन्ब्रह्मपदं नयेत्
एषा विश्वभुजादेवीविश्वैकजननीपरा । असौ चन्दीमहादेवीनित्यन्त्रैलोक्यवन्दिता
निगडस्थानपि जनान् पाशान्मोचयति स्मृता ।

दशाश्वमेधिकं तीर्थमेतत्त्रैलोक्यवन्दितम् ॥ १७८ ॥

यत्राहुतित्रयेणाऽपिअग्निहोत्रफलंलभेत् । प्रयागारुणमिदंस्तोतःसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्
अशोकारुणमिदं तीर्थं गङ्गाकेशव एष वै । मोक्षद्वारमिदं श्रेष्ठं स्वर्गद्वारमिदं चिदुः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे

पूर्वार्धे ज्ञानवापीषर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ज्ञानवापीप्रशंसनवर्णनम्

स्कन्द उवाच

पुनर्ददर्श तन्वद्गी चित्रपट्याघटोद्भव !। स्वर्गद्वारात्पुरोभागे श्रीमतीं मणिकर्णिकाम्
संसारसर्पदष्टानां जन्तूनां यत्र शङ्करः । अपसव्येन हस्तेन ब्रूते ब्रह्मरूपशङ्कुतिम्
न कापिलेन योगेन न साङ्ख्येन न च व्रतेः ।

या गतिः प्राप्यते पुग्मिस्तां दद्यान्मोक्षभूरियम् ॥ ३ ॥

वैकुण्ठेविष्णुभवनेविष्णुभक्तिपरायणाः । जपेयुःसततंमुक्तयैश्रीमतींमणिकर्णिकाम्
हुन्वाऽग्निहोत्रमपि च यावज्जीवन्निजोत्तमाः ।

अन्ते श्रयन्ते मुक्तयै यां सेयं श्रीमणिकर्णिका ॥ ५ ॥

वेदान्पठित्वा विधिवद् ब्रह्मयज्ञरता भुवि ।

यां श्रयन्ति द्विजा मुक्तयै सेयं श्रीमणिकर्णिका ॥ ६ ॥

इष्ट्वा क्रनूनपिनृपावहृन्पर्याप्तदक्षिणान् । श्रयन्ते श्रेयसेधन्याःप्रान्तेऽधिमणिकर्णिकाम्
सीमन्तिन्योपिसततंपतिव्रतपरायणाः । मुक्तयैपतिमनुब्रज्यश्रयन्तिमणिकर्णिकाम्
वैश्या अपि च सेवन्ते न्यायोपाजितसम्पदः ।

धनानि साधुसात्कृत्वा प्रान्ते श्रीमणिकर्णिकाम् ॥ ६ ॥

त्यक्त्वापुत्रकलत्रादिसच्छूद्रान्यायमार्गगाः । निर्वाणप्राप्तयेर्चनांभजेयुर्मणिकर्णिकाम्
यावज्जीवञ्चरन्तोऽपि ब्रह्मचर्यञ्जितेन्द्रियाः ।

निःश्रेयसे श्रयन्त्येनां श्रामतीं मणिकर्णिकाम् ॥ ११ ॥

अतिथीनपि सन्तर्प्य पञ्चयज्ञरता अपि ।

गृहस्थाश्रमिणो नैमां त्यजेयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ १२ ॥

वानप्रस्थाश्रमयुजोह्वात्वानिर्वाणसाधनम् । सन्नियम्येन्द्रियग्रामंमणिकर्णीमुपासते

अनन्यसाधनां मुक्तिं ज्ञात्वा शास्त्रैरनेकधा ।
 मुमुक्षुभिस्त्वेकदण्डैः सेव्यते मणिकर्णिका ॥ १४ ॥
 दण्डयित्वा मनो वाचं कार्यं नित्यन्त्रिण्डिनः ।
 नैःश्रेयसीं श्रियम्प्राप्तुं श्रयन्ते मणिकर्णिकाम् ॥ १५ ॥
 संन्यस्ताखिलकर्माणो दण्डयित्वाऽचलं मनः ।
 एकदण्डव्रता मुक्तयै भजेयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ १६ ॥
 शिखी मुण्डी जटी वार्पा कौपीनी वा दिग्म्बरः ।
 मुमुक्षुः को न सेवेत मुक्तिदां मणिकर्णिकाम् ॥ १७ ॥

तपः कर्तुं न शक्ता ये दानं वादातुमक्षमाः । योगाभ्यासविहीनायेतेषामेषाविमुक्तिदा
 सन्त्युपायाः सहस्रन्तुमुक्तये नतथामुने । हेलयैषा यथाद्यान्निर्वाणं मणिकर्णिकाम्
 अनशनव्रतभूतेत्रिकालाभ्यवहारिणे । प्रान्तेद्यात्समांमुक्तिमुभाभ्यांमणिकर्णिकाम्
 यथोक्तमाचरेद्रेको निष्ठा पाशुपतं व्रतम् । निरन्तरं स्मरेद्रेको हृद्येनांमणिकर्णिकाम्
 दृष्टात्र वपुषः पातेद्वयोश्च सदृशी गतिः । तस्मात्सर्वं विहायाशुसेव्यैषामणिकर्णिका
 स्वर्गद्वारे विशेष्युर्ये विगाह्यमणिकर्णिकाम् । तेषांविधृतपापानां कापिस्वर्गोनदूरतः
 स्वर्गद्वारःस्वर्गभूरेषा मोक्षभूर्मणिकर्णिका । स्वर्गापवर्गावत्रैधनोपरिष्ठात्र चाप्यधः
 दस्वादानान्यनेकानिचिगाह्यमणिकर्णिकाम् । स्वर्गद्वारम्प्रविष्टा येन तेनिरयगामिनः
 स्वर्गापवर्गायोरर्थः कोचिदैश्च निरूपितः । स्वर्गः सुखं समुद्विष्टमपवर्गो महासुखम्
 मणिकर्ण्युं पविष्टस्ययत्सुखं जायते सतः । सिंहासनोपविष्टस्यतत्सुखं कशतक्रतोः
 महासुखं यदुद्विष्टंसमाधौ विस्मृतात्मनाम् । श्रीमत्यांमणिकर्ण्यन्तत्सहजेनैवजायते
 स्वर्गद्वारात्पुरोभागेदेवनद्याश्चपश्चिमे । सौभाग्यभाग्यैकनिधिःकाचिदेका महास्थली
 यावन्तो भास्वतः स्पर्शाद्वासन्ते सैकताः कणाः ।
 तावन्तो द्रुहिषा जग्मुन्त्येषा मणिकर्णिका ॥ ३० ॥
 सन्ति तीर्थानि तावन्ति परितो मणिकर्णिकाम् ।
 यावद्विस्तिलमात्राऽपि न भूमिर्धिरलीकृता ॥ ३१ ॥

यदन्वये कोऽपि मुक्तःसम्प्राप्य मणिकर्णिकाम् ।

तद्वंश्यस्तत्प्रभावेण मान्याः स्वर्गाकसामपि ॥ ३२ ॥

तर्पिताःपितरो येनसम्प्राप्य मणिकर्णिकाम् । सप्तसप्ततथासप्तपूर्वजास्तेन तारिताः
आमध्याद्वेषसरित आहरिञ्चन्द्रमण्डपात् । आगङ्गाकेशवादाचस्वर्दारान्मणिकर्णिका
एतद्रजःकणतुलान्त्रिलोक्यपि न गच्छति ।

एतत्प्राप्त्यै प्रयतते त्रिलोकस्थोऽखिलो भवी ॥ ३५ ॥

कलावती चित्रपटीम्पश्यन्तीत्थं मुहुर्मुहुः । ज्ञानवापीददर्शाथ श्रीविश्वेश्वरदक्षिणे
यदम्बुसनतं रक्षेद्दुवृत्ताद्गण्डनायकः । सम्भ्रमोविभ्रमश्चासौदस्वाभ्रान्तिगरीयसीम्
योऽष्टमूर्त्तिर्महादेवः पुराणेपरिपठ्यते । तस्यैवाम्बुमयी मूर्तिर्ज्ञानदा ज्ञानवापिका
नेत्रयोरतिथीकृत्य ज्ञानवापीं कलावतीम् । कद्रम्बकुसुमाकारां बभार क्षणतस्तनुम्
अङ्गानि वेपथुम्प्रापुः स्वित्ना भालस्थली भृशम् ।

हर्षवाष्पाम्बुकलिले जाते तस्य विलोचने ॥ ४० ॥

तस्तम्भ गात्रलतिकामुखंघैवर्ण्यमापच । स्वरोऽथ गद्गदोजातोऽव्यभ्रंशस्तत्करात्पटी
साक्षणांस्वं विसस्मारकाहंकाहं नवेत्तिच । सौपुमायां दशयाञ्च परमात्मेवनिश्चला
अथ तत्परिचारिण्यस्त्वरमाणा इतस्ततः ।

किं किं किमेतदेतत्किं पृच्छन्ति स्म परस्परम् ॥ ४३ ॥

तदवस्थां समालोक्य तां ताश्चतुरचेतसः । विज्ञाय सास्विकैर्भावैरिदमूषुःपरस्परम्
भवान्तरे प्रेमपात्रमेतयैश्चि तु किञ्चन । चिरात्तेन च सङ्गत्यसुखमूर्च्छामवाप ह
अथनेत्थं कथमियमकाण्डात्पर्यमूमुहत् । प्रेक्षमाणा रहश्चित्रपटीमतिपटीयसीम्
तन्मोहस्य निदानन्ताः सम्यगेव विचार्य च । उपचेरुर्महाशान्तैरुपचारैरनाकुलम्
काचित्तां धीजयाञ्चक्रे कदलीतालवृन्तकैः । बिसिनीबलयैरन्या धन्यांतापर्यभूययत्
अमन्दैश्चन्दनरसैरन्यथिञ्चदमुम्परा । अशोकपल्लवैरन्याः काचिच्छोकमनीनशत्
धारामण्डपधाराम्बुशीकरैस्तत्तनूलताम् । इष्टार्थचिरहृग्लानां सिञ्चयामास काचन
जलाद्र्द्रवाससा काचिदेतस्यास्तनुमावृणोत् । कर्पूरक्षोदजालैरन्यास्तामन्बलेपयन्

पद्मिनीदलशय्याञ्च काश्चिद्वररक्षयन्मृदुम् । काचित्कुलिशनेपथ्यंदूरीकृत्य तदङ्गतः
मुकाकलापं रक्षयां चक्रवक्षोजमण्डले । काचिच्छशिमुखीतान्तुबन्द्राकान्तशिलातले
स्वापयामासतन्वर्द्धीस्रवच्छीताम्बुशीतले द्वष्ट्रोपचार्यमाणान्तामित्थम्बुद्धिशरीरिणी
अतितापपरीताङ्गी ताःसखीःप्रत्यभाषत । एतस्यास्तापशान्त्यर्थं जानेहमपरमौषधम्
उपधारानिमान्सर्वान्दूरीकुरुत माचिरम् । अपतापां करोम्येनांसद्यः पश्यतकौतुकम्
दृष्ट्वाचित्रपटीमेवा सद्योविह्वलतामगात् । अत्रैव काश्चिदेतस्याःप्रेमभूरस्ति निश्चितम्
अतश्चित्रपटीरूपशाल्पेरितापं विहास्यति ।

वाक्याद् बुद्धिशरीरिण्यास्ततस्तत्परिचारिकाः ॥ ४६ ॥

निधाय तत्पुरः प्रोचुःपटीम्पश्य कलावति ! तवानन्दकरी यत्र काश्चिदस्तीष्टदेवता
सापीष्टदेवता नास्ति तत्पटीदर्शनेन च । सुधासेकमिवप्राप्यमूर्च्छांहित्वोत्थिताद्रुतम्
अवग्रहपरिम्लानावर्षासारैरिवौषधीः । पुनरालोकयाञ्चक्रे ज्ञानदां ज्ञानवापिकाम्
स्पृष्ट्वाकलावतीतान्तु वापीञ्चित्रगतामपि । लेभेभवान्तरज्ञानं यथाऽऽसीत्पूर्वजन्मनि
पुनर्विचारयाञ्चक्रे वापीमाहात्म्यमुत्तमम् । अहोचित्रगतापीयं संस्पृष्टा ज्ञानवापिका
ज्ञानमेजनयामास भवान्तरसमुद्भवम् । अथ तासामपुरो हृष्टा कथयामास सुन्दरी
निजम्प्राग्भववृत्तान्तं ज्ञानवापीप्रभावजम् ।

कलावत्युवाच

एतस्माज्जननः पूर्वमहं ब्राह्मणकन्यका ॥ ६५ ॥

उपविश्वेश्वरं काश्यां ज्ञानवाप्यां रमेमुदा । जनको मे हरिस्वामी जनयित्रीप्रियंवदा
आख्याममसुशीलेतिमाञ्चविद्याधरोऽहरत् । मध्येमार्गनिशीथेऽथतदोपमलयाचलम्
रक्षसा स हतो धीरो राक्षसं स जघानह । रक्षोपिमुक्तं शापात्तु दिव्यं वपुरवाप ह
अवाप जन्मगन्धर्वस्त्वसौ मलयकेतुतः । कर्णाटनृपतेः कन्या बभूवाहं कलावती
इति ज्ञानं ममोद्भूतं ज्ञानवापीक्षणात्क्षणात् ।

इति तस्या वचः श्रुत्वा साऽपि बुद्धिशरीरिणी ॥ ७० ॥

ताश्च तत्परिचारिण्यः प्रहृष्टास्यास्तदाऽभवन् ।

प्रोक्षस्ताम्रणिपत्याथ पुण्यशीलां कलावतीम् ॥ ७१ ॥

अहो! कथं हि सा लभ्या यत्प्रभाषोऽयमीदृशः ।

धिग्जन्म तेषां मर्त्येऽस्मिन्यनैर्नक्षि ज्ञानवापिका ॥ ७२ ॥

कलावति! नमस्तुभ्यं कुरुनोपिसमीहितम् । 'जनिंसफलयस्माकं नयनः प्रार्थ्यं भूपतिम्
अयञ्च नि यमोस्माकमद्यारभ्य कलावति । निर्वेक्ष्यामो महाभोगान् दृष्ट्वा तां ज्ञानवापिकाम्
अवश्यं ज्ञानवापीसानाम्ना भवितुमर्हति । चित्रञ्चित्रगतापीह यातव ज्ञानदायिनी
ॐ कृत्य तासां वाक्यं सा स्वाकारम्परिगोप्य च ।

प्रियाणि कृत्वा भूभर्तुः प्रस्तावज्ञा व्यजिज्ञपत् ॥ ७६ ॥

कलावत्युवाच

जीवितेश! न मे त्वत्तः किञ्चित्प्रियतरं क्वचित् ।

त्वामासाद्य पति राजन् प्राप्ताः सर्वे मनोरथाः ॥ ७७ ॥

एको मनोरथः प्रार्थ्यामिमास्त्यत्रार्यपुत्रक ! । विचारपथमापन्नस्तवापि स महाहिनः

मम तु त्वदधीनायाः सुदुष्प्रापतरो महान् ।

तव स्वाधीनवृत्तैस्तु सिद्धप्रायो मनोरथः ॥ ७८ ॥

प्राणेश! किम्बहुक्तेन यदि प्राणैः प्रयोजनम् ।

तदाभिलषितन्देहि प्राणा यास्यन्त्यथाऽन्यथा ॥ ८० ॥

प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यास्तस्या वाक्यं निशम्य सः ।

उवाच बध्नं राजा तस्याः स्वस्यापि च प्रियम् ॥ ८१ ॥

राजोवाच

नाहंप्रिये! तदादेयमिह पश्यामि भामिनि ! । प्राणा अपि मम क्रीतास्त्वयाशीलकलागुणैः

अखिलम्बितमाचक्ष्व कृतं विद्धि कलावति ! ।

भवद्विधानां साध्वीनां मन्येऽप्राप्यं न किञ्चन ॥ ८३ ॥

कः प्रार्थ्यः प्रार्थनीर्यं किं कोषाप्रार्थयिता प्रिये ! । नपृथग्जनवत्किञ्चिद्वर्तनं नौ कलावति!

देशः कोशो बलं दुर्गं यदन्यदपि भामिनि ! ।

तस्त्वदीयं न मे किञ्चित्स्वाम्यमात्रमिहास्ति मे ॥ ८५ ॥

तच्च स्वाम्यं ममान्यत्र त्वदृते जीचितेश्वरि !

राज्यन्त्यजेयन्त्वद्वाक्यात्तृणीकृत्याऽपि मानिनि ! ॥ ८६ ॥

माल्यकेतोर्महीजानेरिति वाक्यं निशम्य सा ।

प्राह गम्भीरया वाचा वचश्चारु कलावती ॥ ८७ ॥

कलावत्युवाच

नाथ! प्रजासृजा पूर्वं सृष्टा नानाविधाः प्रजाः । प्रजाहिताय संसृष्टम्पुरुषार्थंचतुष्टयम्
तद्विहीनाजनिरपि जलबुद्बुदवधन्मुधा । तस्मादेकोपि संसाध्यः परत्रेह च शर्मणे
यत्रानुकूल्यन्दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वधन्ते । यदुच्यते पुराविद्विरिति तत्तथ्यमीक्षितम्
मद्विधानानुदासीनां शतन्तेऽस्तीहमन्दिरं । तथापिनितराम्प्रेमस्वामिनोमयिदृश्यते
तव दास्यपि भोगाढ्या किमुताङ्कर्मधलीचरी ।

तत्राऽप्यनन्यसम्पत्तिस्तत्र स्वाधीनभर्तृता ॥ ९२ ॥

विपश्चित्सञ्जयेदर्थानिष्टापूर्ताय कर्मणे । तपोर्धमायुर्निर्विघ्नं दारांश्चापन्यलब्धये ॥
तच्चैतत्सर्वमस्तीहविश्वेशानुग्रहान्प्रिय । पूरणीयोऽभिलाषो मे यदि तद्वचम्यहंशृणु
तूर्णंप्रहिणु मानाथविश्वनाथपुरीम्प्रति । प्राणाःप्रयाताःप्रागेववपुःशेषास्मि केवलम्

माल्यकेतुः कलावत्या इत्याकर्ण्य वचः स्फुटम् ।

क्षणं विचार्य स्वहृदि राजा प्रोवाच ताभिप्रियाम् ॥ ९६ ॥

प्रियेकलावतियदि तवगन्तव्यमेवहि । राज्यलक्ष्म्यानाया किम्मेवलया त्वद्विहीनया
नराज्यंराज्यमित्याहुराज्यश्रीः प्रियसीधुवम् । सप्ताङ्गमपितद्राज्यन्तयाहीनन्तुणायते
निःसपत्नं कृतं राज्यं भुक्त्वा भोगाभिरन्तरम् ।

हृषीकार्थाः कृतार्थाश्च विधृता आधृतिः प्रिये ! ॥ ९९ ॥

अपत्यान्यपि जातानि किं कर्तव्यमिहास्ति मे ।

अवश्यमेव गन्तव्याऽऽस्वाम्यां वाराणसीपुरी ॥ १०० ॥

माल्यकेतुः प्रियामित्थमाश्वास्यकृतनिश्चयः । समाह्वय च वैवज्ञान्प्रकृतीःपरिपूज्यच

पुत्रेराज्यनिधायथ राजाकाशीम्प्रतस्थिवान् । रत्नजातंकियदपिपुत्रादर्थमग्रगृह्यत्
 दृष्ट्वा विश्वेश्वरपुरीं हृष्टरोमा नरेश्वरः । मेने कृतार्थमात्मानं संसाराम्बुधिपारगम् ॥
 प्राग्जन्मवासनायोगात्सापिराहीकलावती । प्रामान्तरादागतेवपुरीमार्गानवैत्स्वयम्
 मणिकर्ण्यामथ स्नात्वा भूरिदस्वाततो वसु । विश्वेशमर्घयित्वाऽधरत्नजातैरनेकशः
 दस्वातत्रापिरत्नानिगजानश्वान् गवांश्चजम् । दुकूलानिषिचित्राणिपूजोपकरणानिच
 सुवर्णरूप्यकलशान्दीपीदर्पणामरान् ।

ध्वजस्तम्भपताकाश्च विचित्रोल्लोचकानि च ॥ १०७ ॥

अथप्रदक्षिणीकृत्य मुक्तिमण्डपमाविशत् । तत्रधर्मकथां श्रुत्वादस्वातत्रापि सद्जनम्
 सायन्तनीम्महापूजास्पुनः कृत्वाक्षितीश्वरः । तत्रजागरणंकृत्वा तीर्थत्रिकमहोत्सवैः
 अथप्रातःसमुन्थायकृत्वाशौचाच्चमक्रियाम् । राश्याविनिर्दिष्टपथाज्ञानवापीं नृपोययौ
 नृपः सार्धं कलावत्या तत्र सस्नौ प्रहृष्टवत् ।

अथ पिण्डान्सनिर्वाप्य सन्तर्प्य श्रद्धया पितॄन् ॥ १११ ॥

तत्र रूप्यसुवर्णादि पात्रेभ्यः प्रतिपाद्य च । दीनान्धकृपणानाथान् महार्हैरत्नजातकः
 प्रीणयित्वा नरपतिः पारणां कृतवांस्ततः । संस्कार्यरत्नसोपानैर्हानवापीं कलावती
 आबन्ध रतिं तत्र सह भर्त्रा तपस्विनी । एकान्तरोपवासैश्च कदाचिच्च त्र्यहोव्रतैः
 षडहोभोजनैश्चापि पक्षार्थनियमैरथ । पक्षान्तरोपवासैश्च मासोपवसनादिभिः ॥
 चान्द्रायणव्रतैः कृच्छ्रैर्भर्तुः शुभ्रूषणैरपि । निनाय क्षणवत्कालमायुःशेषस्यसाऽनघाः
 एकदा ज्ञानचाप्यान्तु प्रातः स्नात्वोपरिष्टयोः ।

आगत्य जटिलः कश्चिद्विभूतिं दत्तवान्करे ॥ ११७ ॥

उवाच च प्रसन्नास्य आशीर्भिरभिनन्द्य च । उत्तिष्ठतमप्रकुरुतं महानेपथ्यमद्य वै ॥
 तारकोदयसम्प्राप्तिर्भवित्री वां क्षणादिह । यावदित्यंसमावष्ट जटिलोऽग्रे तयोर्ध्वजः
 तावद्विमानमापन्नं स क्णत्किङ्किणीगणम् ।

पश्यतां सर्वलोकानाञ्चन्द्रमौलिरथोरथात् ॥ १२० ॥

उसीर्यतच्छ्रुतिपुटेकिमपिन्धयमादिशात् । अनाख्यंयत्परंज्योतिरुच्चक्रामषत्तत्क्षणात्

उद्योतयन्नभोवर्त्म देवोऽपि स्वालयंययौ ।

स्कन्द उवाच

तदाप्रभृति लोकेऽत्र ज्ञानवापी विशिष्यते ॥ १२२ ॥

सर्वेभ्यस्तीर्थमुख्येभ्यः प्रत्यक्षज्ञानदा मुने । सर्वज्ञानमयी घैषा सर्वलिङ्गमयी शुभा
साक्षाच्छिवमयी मूर्त्तिर्ज्ञानकृज्ज्ञानवापिका ।

सन्ति तीर्थान्मनेकानि सद्यः शुचिकराण्यपि ॥ १२४ ॥

परन्तु ज्ञानवाप्या हि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

ज्ञानवाप्याः समुत्पत्तिं यः श्रोष्यति समाहितः ॥

न तस्य ज्ञानविभ्रंशो मरणे जायते कश्चित् ॥ १२५ ॥

महाख्यानमिदम्पुण्यम्महापातकनाशनम् । महादेवस्य गौर्याश्च महाप्रीतिविवर्धनम्
पठित्वा पाठयित्वा वा श्रुत्वा वा श्रद्धयाऽन्वितः ।

ज्ञानवाप्याः शुभाख्यानं शिवलोके महीयते ॥ १२७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे ज्ञानवापीप्रशंसनवर्णनं नामचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

सदाचारवर्णनम्

कुम्भयोनिरुवाच

अविमुक्तं महाक्षेत्रं परं निर्वाणकारणम् । क्षेत्राणाम्परमं क्षेत्रं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्
श्मशानानाञ्च सर्वेषां श्मशानम्परमं महत् । पीठानाम्परमम्पीठमूषराणां महोपरम्
धर्माभिलाषिबुद्धीनां धर्मराशिकरम्परम् ।

अर्थार्थिनां शिखिरय! परमार्थप्रकाशकम् ॥ ३ ॥

कामिनां कामजननं मुमुक्षुणाञ्च मोक्षदम् । श्रूयते यत्र यत्रैतत्तत्र तत्र परामृतम्
क्षेत्रैकदेशवर्तिन्या ज्ञानवाप्याः कथाम्पराम् । श्रुत्वेमामितिमन्येऽहं गौरीहृदयनन्दन

अणुप्रमाणमपि या मध्ये काशिविकाशिनी ।

महीं महीयसी ज्ञेया सा सिद्धयै न मुधा क्वचित् ॥ ६ ॥

कियन्ति सन्ति तीर्थानि नेह क्षोणीतलेऽखिले ।

परं काशीरजोमात्रतुलासाम्यं क्व तेष्वपि ॥ ७ ॥

कियन्त्यो न स्रवन्त्योऽत्र रत्नाकरमुदावहाः ।

परं स्वर्गतरङ्गिण्याः काश्यां का साम्यमुद्धरैत् ॥ ८ ॥

कियन्ति सन्ति नो भूम्यां मोक्षक्षेत्राणि वणमुख ! ।

परं मन्येऽचिमुक्तस्य कोट्यंशोपि न तेष्वहो ॥ ९ ॥

गङ्गाविश्वेश्वरः काशीजागर्तित्रितयंयतः । तत्रनैःश्रेयस्मीलक्ष्मीर्लभ्यतेचित्रमत्रकिम्
कथमेवा त्रयीस्कन्द! प्राप्यते नियतं नरैः । तिष्ये युगेविशेषेणनितरांचञ्जलेन्द्रियैः

तपस्ताद्रूक् क्व वा तिष्ये तिष्ये योगः कृतादृशः ।

क्व वा व्रतं क्व वा दानंतिष्ये मोक्षस्त्वतः कुतः ॥ १२ ॥

चिनाऽपि तपसा स्कन्द! चिना योगेन वणमुख ! ।

चिना व्रतेर्विनादानैः काश्यां मोक्षस्त्वथैरितः ॥ १३ ॥

किंकिमाचरता स्कन्द काशीप्राप्येत तद्वद । मन्येचिनासदाचारंनसिद्धयेयुर्मनोरथाः
आचारः परमो धर्म आचारः परमं तपः । आचाराद्ब्रध्ने ह्यायुराचारात्पापसंक्षयः
आचारमेव प्रथमं तस्मादाचक्ष्व वणमुख ! । देवदेवो यथा प्राह तवाग्रे त्वं तथावद

स्कन्द उवाच

मित्रावरुणजाख्यामि सदाचारं सतां हितम् ।

यदाचरन्नरो नित्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १७ ॥

स्थावराः क्रमयोऽढजाश्च पक्षिणः पशवो नराः ।

क्रमेण धार्मिकास्त्वेत एतेभ्यो धार्मिकाः सुराः ॥ १८ ॥

सहस्रभागः प्रथमाद्द्वितीयोनुकमान्तथा । सर्व एतेमहाभागायावन्मुक्तिसमाश्रयाः

खतुर्णामपि भूतानां प्राणिनोऽतीव चोत्तमाः ।

प्राणिभ्योऽपि मुने!श्रेष्ठाः सर्वे बुद्धयुपजीविनः ॥ २० ॥

मतिमद्भवो नराः श्रेष्ठास्तेभ्यः श्रेष्ठास्तुघाडवाः ।

विप्रेभ्योऽपि च विद्वांसो विद्वद्भ्यः कृतबुद्धयः ॥ २१ ॥

कृतर्थाभ्योपि कर्तारः कर्तृभ्योब्रह्मतत्पराः । नतेषामर्चनीयोऽन्यस्त्रिषुलोकेषुकुम्भज

अन्योन्यमर्चकास्तेवै तपोविद्याऽविशेषतः । ब्राह्मणोब्रह्मणासृष्टः सर्वभूतेश्वरोयतः

अतो जगत्स्थितं सर्वं ब्राह्मणोऽर्हतिनापरः । सदाचारो हि सर्वाहोनाचाराद्विच्युतः पुनः

तस्माद्विप्रेण सनतं भाव्यमाचारशीलिना ॥ २४ ॥

विद्वेषरागरहिता अनुतिष्ठन्तियमुने ! विद्वांसस्तं सदाचारधर्ममूलं विदुर्बुधाः

लक्षणैः परिहीनोपि सम्प्रयाचारतत्परः । श्रद्धालुरनसूयुश्च नरोजीवेत्समाः शतम्

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं स्वेषु च कर्मसु । सदाचारं निषेधैत धर्ममूलमतन्द्रितः ॥

दुराचाररतोलोकैर्गर्हणीयः पुमान् भवेत् । व्याधिभिश्चाभिभूयेत्सदालपायुः सुदुःखभाक्

त्याज्यं कर्म परार्थिनं कार्यमात्मवशं सदा ।

दुःखीयतः परार्थिनः सदैवात्मवशः सुखी ॥ २६ ॥

यस्मिन्कर्मण्यन्तरात्मा क्रियमाणे प्रसीदति । तदेव कर्मकर्तव्यं विपरीतं न चकश्चित्

प्रथमं धर्मसर्वस्वं प्रोक्ता यन्नियमायमाः । अतस्तेष्वेव वै यत्नः कर्तव्यो धर्ममिच्छता

सत्यं क्षमार्जवं ध्यानमाशुशंस्यमहिसनम् ।

दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुनेति यमा दश ॥ ३२ ॥

शौचं स्नानन्तपोदानं मौनेज्याध्ययनं व्रतम् ।

उपोषणोपस्थदण्डौ दशैतेनियमाः स्मृताः ॥ ३३ ॥

कामं क्रोधं मदं मोहं मात्सर्यं लोभमेव च ।

अमूनं षड्वैरिणो जित्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ३४ ॥

शनैः शनैः सञ्चिनुपाद्धर्मबलमीकभृङ्गवत् । परपीडामकुर्वाणः परलोकसहायिनम्

धर्म एव सहायी स्याद्भुव्र न परिच्छदः । पितृमातृसुतभ्रातृयोषिदुषन्धुजनादिकः
जायते शैकल प्राणी प्रस्रियेततथैकलः । एकलः सुकृतम्भुङ्क्ते भुङ्क्तेदुष्कृतमेकलः
देहं पञ्चत्वमापन्नं त्यक्त्वा कौ काष्ठलोष्टवत् ।

बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मो यान्तमनुव्रजेत् ॥ ३८ ॥

कृती सञ्चिनुयाद्धर्मं ततोऽमुत्रसहायिनम् । धर्मसहायिनंलब्ध्वासन्तरेद्दुस्तरंतमः
सम्बन्धानाशरेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमैःसुधीः । अधमानधर्मांस्त्यक्तवाकुलमुत्कर्षतां नयेत्
उत्तमानुत्तमानेव गच्छन् हीनांश्च वर्जयन् । ब्राह्मणःश्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम्
अनध्ययनशीलञ्च सदाचारविलङ्घिनम् । सालसञ्च दुरन्नादं ब्राह्मणम्बाधतेऽन्तकः
ततोऽभ्यसेत्प्रयत्नेन सदाचारं सदा द्विजः ।

तीर्थान्यप्यभिलष्यन्ति सदाचारिरामागमम् ॥ ४३ ॥

रजतीप्रान्तयामार्धं ब्राह्मःसमयउच्यते । स्वहितञ्चिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिंश्चोत्थायसर्वदा
गजास्यंसंस्मरेदादीं ततर्दशंसहाम्बवा । श्रीरङ्गं श्रीसमेतन्तु ब्रह्माण्या कमलोद्भवम्
इन्द्रादीन्सकलान्देवान्बसिष्ठादीन्मुनीनपि ।

गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः श्रीशैलाद्यखिलांगिरीन् ॥ ४६ ॥

क्षीरोदादीन्समुद्रांश्चमानसादिसरासि च । वनान्तिनन्दनादीनिधेनूःकामदुघादिकाः
कल्पवृक्षादिवृक्षाश्चधातून्काञ्चनमुक्यतः । दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्यागरुडादीन्पतत्रिणः
नागांश्च शेषप्रमुखान् गजानैरावतादिकान् ।

अश्वानुच्चैःश्रवोमुख्यान् कौस्तुभादीन्मणीञ्छुमान् ॥ ४६ ॥

स्मरेदरुन्धतीमुख्याःपतिव्रतवतीवधुः । नैमिषादीन्यरण्यानि पुरीः काशीपुरीमुखाः
विश्वेशादीनि लिङ्गानि वेदानृक्प्रमुखानपि ।

गायत्रीप्रमुखान्मन्त्रान्योगिनःसनकादिकान् ॥ ५१ ॥

प्रणवादिमहाबीजनारवादींश्चवैष्णवान् । शिवभर्काश्चबाणादीन्प्रहादादीन् दृढव्रतान्
वदान्यांश्च दधीच्यादीन्हरिश्चन्द्राविभूपतीन् ।

जननीशरणौ स्मृत्वा सर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ ॥ ५३ ॥

पितरश्च गुरुंश्चापि हृदि ध्यात्वा प्रसन्नधीः । ततश्चावश्यकं कर्तुं नैश्वर्तीं दिशमाश्रयेत्
 प्रामद्वलुःशर्तगच्छेन्नगराश्च क्षतगुणम् । तृणैराच्छाद्य वसुधां शिरः प्रावृत्य वासस्ता
 कर्णोपवीत्युदगवक्त्रो दिवसे सन्ध्ययोरपि ।

विष्मूत्रे विसृजेन्मौनी निशायां दक्षिणामुखः ॥ ५६ ॥

नतिष्ठन्नाप्सुनो विप्रगोवह्वयनिलसम्मुखः । न फालकृष्टे भूभागेन रथ्यासेव्यभूतले
 नालोकयेद्दिशोभागाञ्ज्योतिश्चक्रं नभोमलम् ।

वामेन पाणिना शिश्रं धृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान् ॥ ५८ ॥

अथो मृदं समादाय जन्तुकर्करवर्जिताम् ।

विहाय मूषकोत्खातां शौचोच्छिष्टाञ्च नाकुलाम् ॥ ५९ ॥

गुह्ये दद्यान्मृदञ्चैकम्पायौपञ्चाम्बुसान्तराः । दश वामकरे चापि सप्तपाणिद्वये मृदः
 एकैकाम्पादयोर्दद्यात्तिस्रः पाण्योर्मृदस्तथा । इत्थं शौचं गृहीकुर्याद्बन्धलेपक्षयावधि
 कमाद्द्वैगुण्यमेतस्माद्ब्रह्मत्रयादिषु त्रिषु । दिवाविहितशौचस्य रात्रावर्धं समाचरेत्
 रुज्यर्धञ्च तर्धञ्च पथिवीरादिबाधिने । तर्धयोपिताञ्चापि सुस्थे न्यूनं न कारयेत्
 अपिसर्वं नदीतोयं मृत्कूटेश्चापि गोमयैः । आपादमाचरञ्छौचं भावदुष्टो न शुद्धिभाक्
 आर्द्रधात्रीफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिताः ।

सर्वाश्चाहुतयोऽप्येव प्रासाश्चान्द्रायणेऽपि च ॥ ६५ ॥

प्रागास्य उदगास्यो वा सूपविष्टः शुभौ भुवि ।

उपस्पृशेद्विहीनायान्तुषाङ्गारास्थिभस्मभिः ॥ ६६ ॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्विहं द्वाभिरत्वरः । ब्राह्मणो ब्राह्मतीर्थेन दृष्टिपूताभिराचमेत्
 कण्ठगामिर्नृपः शुद्धयेत्तालुगामिस्तथोरुजः ।

स्त्रीशूद्रावास्यसंस्पर्शमात्रेणापि विशुद्ध्यतः ॥ ६८ ॥

शिरःप्रावृत्यकण्ठं बाजलेमुकशिखोऽपि च । अक्षालितपदद्वन्द्वआवाप्तोप्यशुचिर्मतः

त्रिः पीत्वाम्बुविशुद्ध्यर्थन्ततः खानि विशोधयेत् ।

अङ्गुष्ठमूलदेशेन द्विर्द्विरोष्ठाधरौ स्पृशेत् ॥ ७० ॥

अङ्गुलीभिस्त्रिभिःपञ्चात्पुनरास्यंस्पृशेत्सुधीः । तर्जन्यङ्गुष्ठकोट्याचघ्राणरन्ध्रेपुनःपुनः
अङ्गुष्ठानामिकाप्राभ्यां चक्षुः श्रोत्रेपुनः पुनः । कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेननाभिरन्ध्रमुपस्पृशेत्
स्पृष्ट्वा तलेन हृदयं समस्ताभिः शिरः स्पृशेत् ।

अङ्गुल्यग्रैस्तथा स्कन्धौ साम्बु सर्वत्र संस्पृशेत् ॥ ७३ ॥

आचान्तःपुनराचामित्कृनेरधयोपसर्पणे । स्नात्वामुक्तवापयःपीत्वाप्रारम्भेशुभकर्मणाम्
सुप्त्वावास परीधायतथादृष्टाप्यमङ्गलम् । प्रमादादशुचिस्पृष्ट्वाद्विराचान्तः शुचिर्भवेत्
अथो मुखविशुद्धयर्थं गृह्णीयाद्वन्तधावनम् ।

आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम् ॥ ७६ ॥

प्रतिपद्दर्शगृष्टाषु नवमयां रविवासरे । दन्तानां काष्ठसंयोगो दहेदासममं कुलम्
अलाभे दन्तकाष्ठानां निपिद्धेवाऽथ घासरे । गण्डूषा द्वादशप्राह्या मुखस्यपरिशुद्धये
कनिष्ठाप्रपरीमाणं सन्ध्वंनिर्वणञ्जुम् । द्वादशाङ्गुलमानञ्च सार्धं स्याद्वन्तधावनम्
एकैकाङ्गुलहासेनवर्णेष्वन्येषुकीर्तितम् । आम्राघ्रातकधात्रीणा कङ्कोलखदिरोद्धवम्
शम्यपामार्गखजूरीशेलुश्रीपर्णिपीलुजम् । राजादनञ्च नारङ्गं कपायकटुकण्टकम्
श्रीरवृक्षोद्वंवापिप्रशस्तंदन्तधावनम् । जिह्वोल्लेखनिकाष्वापिकुर्याच्चापाकृतिशुभाम्
अन्नाद्यायव्यूहध्वंसो सोमोराजायमागतम् । समंमुखमप्रमाक्ष्यते यशसाच भगेन च
आयुर्वलं यशोवर्धः प्रजाः पशुवसूनिच । ब्रह्मप्रह्लाञ्च मेधाञ्च त्वन्नो देहि वनस्पते
मन्त्रावेतौ समुच्चार्ययःकुर्याद्वन्तधावनम् । वनस्पतिगतःसोमस्तस्यनित्यमप्रसीदति
मुखेपयुंषिने यस्माद्भवेदशुचिभाङ्गरः । ततः कुर्यात्प्रयन्नेनशुद्धयर्थं दन्तधावनम्
उपवासेऽपिनो दुष्येद्वन्तधावनमञ्जनम् । गन्धालङ्कारसद्वस्त्रपुष्पमालानुलेपनम् ८७
प्रातःसन्ध्यां ततःकुर्याद्वन्तधावनपूर्विकाम् । प्रातःस्नानञ्चरित्वाघशुद्धेतीर्थेविशेषतः

प्रातः स्नानाद्यतः शुद्धयेत्कायोऽयं मलिनः सदा ।

छिद्रितोनवभिश्छिद्रैः खवत्येव दिवानिशम् ॥ ८६ ॥

उदसाहमेधासौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्त्सकम् । मनः प्रसन्नताहेतुः प्रातः स्नानमप्रशस्यते
प्रस्वेदलालाद्याङ्गिन्नो निद्राधीनो यतो नरः ।

प्रातः स्नानान्ततोऽर्हः स्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिषु ॥ ६१ ॥

प्रातःप्रातस्तुयत्स्नानं सञ्जातेषारुणोदये । प्राजापत्यसमम्प्राहुस्तन्महाघविघातकृत्

प्रातः स्नानं हरेत्पापमलक्ष्मीं ग्लानिमेघ च ।

अशुचित्वञ्च दुःस्वप्नं तुष्टिप्रपुष्टिप्रयच्छति ॥ ६३ ॥

नोपसर्पन्तिवै दुष्टाःप्रातःस्नायिजनंकचित् । दृष्टादृष्टफलंयस्मात्प्रातःस्नानंसमाचरेत्

प्रसङ्गतः स्नानविधिं वश्यामि कलशोद्वह ! ।

विधिस्नानं यतः प्राहुः स्नानाच्छतशुणोत्तरम् ॥ ६५ ॥

विशुद्धां मृदमादाय बर्हीं पि तिलगोमयम् ।

शुषीं देशे परिस्थाप्य त्वाचम्य स्नानमाचरेत् ॥ ६६ ॥

उपग्रही बद्धशिखो जलमध्ये समाविशेत् । उरुच्छ्रहीति मन्त्रेण तोयमावर्त्यसृष्टितः

येते शतन्ततो जप्त्वा तोयस्यामन्त्रणाय च ।

सुमित्रियानो मन्त्रेण पूर्वं कृत्वा जलाञ्जलिम् ।

क्षिपेद् द्वेष्यं समुद्दिश्य जपन् दुर्मित्रिया इति ॥ ६८ ॥

इदं विष्णुरिमञ्जत्वा लिम्पेदङ्गानि मृत्स्नया ।

मृदंकया शिरः क्षाल्य द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि ॥ ६९ ॥

नामेरधस्तु तिसृभिः पादौ षड्भिर्विशोधयेत् ।

मउज्रेत्प्रवाहाभिमुख आपो अस्मानिमं जपन् ॥ १०० ॥

उदिदान्यः शुचिरिति मन्त्र उन्मज्जने मतः ।

मानस्तोक इमं जप्त्वा लिम्पेद्वात्राणि गोमयैः ॥ १०१ ॥

इमम्मेवरुणेत्यादिमन्त्रैः स्वात्माभिषेचनम् ।

तस्वायामि तथा त्वन्नः सत्वं नश्चाप्युदुस्तमम् ॥ १०२ ॥

धास्यो धास्यस्तथा मापोमौषधीरिति संजपेत् ।

यदाहुरध्न्या मुञ्चन्तु मेति चाबभूयेति च ॥ १०३ ॥

अब्दैवता इमे मन्त्राः प्रोक्ताः स्वात्माभिषेचने ।

प्रणवेन ततो विप्रो महाव्याहृतिभिस्ततः ॥ १०४ ॥

आत्मानम्पाचयेद्विद्वान् गायत्र्या च ततः कृती ।

आपोहिष्टेति तिसृभिः प्रत्यृचंपाचनं स्मृतम् ॥ १०५ ॥

एतेऽपिपाचना मन्त्रा इदमापो हविष्मतीः । देवीराप अपो देवा द्रुपदादिच संज्ञकाः
शन्नोदेवीरपो देवीरपाश्चरसमित्यपि । पुनन्तु मेति च नच पाचमान्यः प्रकीर्तिताः
ततोऽधमर्षणं जप्त्वा द्रुपदाञ्च ततो जपेत् । प्राणायामञ्चविधिचदथवान्तर्जलेजपेत्
प्रणवं त्रिजंषेद्वापि विष्णुं वा संस्मरेत्सुधीः ।

स्नात्वेत्थं वस्त्रमापीड्य गृह्णीयाद्द्वौतर्षांससी ॥ १०६ ॥

आधम्य च ततःकुर्यान्प्रातःसन्ध्यां कुशान्विताम् ।

यो न सन्ध्यामुपासीत ब्राह्मणो हि विशेषतः ॥ ११० ॥

स जीवन्नेव शूद्रस्तु मृतःश्वाजायते ध्रुवम् । सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हःसर्वकर्मसु
यदन्यत्कुरुतेकर्मनतस्यफलभागभवेत् । प्रणवमप्राग्दिशस्मृत्वाततोदस्वाकुशासनम्
चतुःशक्तिरिमं मन्त्रं पठित्वा नान्यदृद्धनाः ॥ ११३ ॥

प्राङ्मुखोबद्धञ्जूडोवाप्युपविष्टदङ्कमुखः । प्रदक्षिणंस्वमभ्युक्ष्यप्राणायामंसमाचरेत्
गायत्रीशिरसासार्धसप्तव्याहृतिपूर्विकाम् । त्रिजंषेत्सदशोङ्कारःप्राणायामोयमुच्यते
प्राणायामांश्चरन्विप्रो नियतेन्द्रियमानसः । अहोरात्रकृतैः पापैमुक्तोभवतितत्क्षणात्
दश द्वादशसंख्या वा प्राणायामाः कृता यदि । नियम्य मानसं तेन तदातप्रमहत्तपः
सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तुषोडश । अपिभ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः
यथा पार्थिवधातूनां दहन्ते धमनान्मलाः ।

तथेन्द्रियैः कृता दोषा ज्वाल्यन्ते प्राणसंयमात् ॥ ११६ ॥

एकं सम्भोज्य विधिषद् ब्राह्मणं यत्फलं लभेत् ।

प्राणायामैर्द्वादशभिस्तत्फलं श्रद्धयाऽऽप्यते ॥ १२० ॥

वेदादिवाङ्मयं सर्वं प्रणवे यत्प्रतिष्ठितम् । ततः प्रणवमभ्यस्येद्वेदादिं वेदजापकः
प्रणवेनित्ययुक्तसप्तसुव्याहृतिष्वपि । त्रिपदायान्तुगायत्र्यां न भयंज्ञायतेकश्चित्

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः । गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं कलशोद्भव
कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्रौ कुरुते त्वघम् ।

उत्तिष्ठन्पूर्वसन्ध्यायां प्राणायामैर्विशोधयेत् ॥ १२४ ॥

यद्वा कुरुतेपापमनोवाकायकर्मभिः । आसीनः पश्चिमांसन्ध्यांतत्प्राणायामतोहरेत्
पूर्वा सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।

पश्चिमान्तु समासीनः सम्यगर्क्षविभावनात् ॥ १२६ ॥

पूर्वा सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।

पश्चिमान्तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ १२७ ॥

नोपतिष्ठेन्नयः पूर्वा नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।

स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ १२८ ॥

अपांसमीपमासाद्य नित्यकर्मसमाचरेत् । गायत्रीमप्यर्धार्थात् गत्वारण्यंसमाहितः
गृहाद् बहुगुणा यस्मात्सन्ध्याबहिरुपासिता ।

गायत्र्यभ्यासमात्रोऽपि वरं विप्रो जितेन्द्रियः ॥ १३० ॥

त्रिवेद्यपि चनोमान्यः सर्वभुक्तसर्वचिक्रयी । सवितादेवतायस्यामुखमग्निस्त्रिपाक्षयो
विश्वामित्रोऽपिश्छन्दो गायत्री सा विशिष्यते ।

गायत्रीमुषसि ध्यायेद्दोहितां ब्रह्मदैवताम् ॥ १३२ ॥

हंसाऽऽरूढामष्टवर्षा रक्तस्रगनुलेपनाम् । ऋक्स्वरूपामभयदामक्षमालावलम्बिनीम्
व्यासर्षिणास्तूयमानाछन्दसानुष्टुभायुताम् । एतद्व्यानादुषर्देव्यानैशमेनोव्यपोहति
सूर्यश्चेति च मन्त्रेण स्यादाचमनमुत्तमम् । आपोहिष्ठेति तिसृभिर्माजंनन्तु ततश्चरेत्
भूमौ शिरसि चाऽऽकाशे आकाशे बुधि मस्तके ।

मस्तके च तथाऽऽकाशे भूमौ च नवधा क्षिपेत् ॥ १३६ ॥

भूमिशब्देन चरणावाकाशं हृदयंस्मृतम् । शिरस्यैवशिरः शब्दो मार्जनहैरुदाहृतः ॥
वाहणादपिचानेयाद्वायव्याद्विष्वेन्द्रतः । मन्त्रस्नानादपि परं ब्राह्मं स्नावमिदं परम्

ब्राह्मस्नानेन यः स्नातः स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ।

सर्वत्र चार्हतामेति वैषपूजादिकर्मणि ॥ १३६ ॥

नकन्दिनं निमज्ज्याप्सु कैवर्ताः किमु पावनाः ।

शतशोऽपि तथा स्नाता न शुद्धा भावदूषिताः ॥ १४० ॥

अन्तःकरणशुद्धा येतान्विभूतिःपवित्रयेत् । किपावनाःप्रकीर्त्यन्तेरासभाभस्मधूसराः
स स्नातः सर्वतीर्थेषु ससर्वमलवर्जितः । तेन क्रतुशतैरिष्टं चेतो यस्यैहनिर्मलम् ॥

तदेष निर्मलञ्चेतो यथा स्यात्तन्मुने! शृणु ।

विश्वेशश्चेत्प्रद्वजः स्यात्तदास्यान्नान्यथा क्वचित् ॥ १४३ ॥

तस्माच्चेतोविशुद्ध्यर्थंकाशीनाथंसमाश्रयेत् । तदाश्रयेणनियतंसंक्षीयन्तेमनोमलाः
संक्षीणमानसमलो विश्वेशानुग्रहात्परात् । इदं शरीरमुत्सृज्य परम्ब्रह्माधिगच्छति
विश्वेशानुग्रहेहेतुःसदाचारोमतो नृणाम् । ध्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं तस्मात्तन्मुसंश्रयेत्
द्रुपदान्तु ततो जप्त्वा जलमादायपाणिना । कुर्याद्भूतञ्चमन्त्रेण विधिज्ञस्त्वघमर्षणम्
निमज्ज्याप्सु च यो विद्वाञ्जपेत्त्रिरघमर्षणम् ।

यथाश्वमेधाघभृथस्तस्य स्यात्तत्तथा ध्रुषम् ॥ १४८ ॥

जलेषाऽपि स्थलेषाऽपियःकुर्यादघमर्षणम् । तस्याघौघोविनश्येतयथासूर्योदयेतमः
इमंमन्त्रन्ततश्चोक्त्वा कुर्यादाघमर्षणम् । आचार्याःकेचिदिच्छन्तिशास्त्रामेदेनघापरे
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां चिष्वतोमुखः ।

त्वं यज्ञस्त्वं घण्टृकार आपो ज्योतीरसोऽमृतम् ॥ १५१ ॥

गायत्रीं शिरसा हीनां महाव्याहृतिपूर्विकाम् ।

प्रणवाद्यां जपंस्तिष्ठन् क्षिपेदम्भोज्जलित्रयम् ॥ १५२ ॥

तेन वज्रोदकेनाशुमन्देहानाम राक्षसाः । सूर्यारयः प्रलीयन्ते शैला घञ्जहताइव ॥
विष्वसतःसहायार्थंयोद्विजोनाञ्जलित्रयम् । क्षिपेन्मन्देहनाशायसापिमन्देहतां व्रजेत्
प्रातस्तावज्जपंस्तिष्ठेद्यावरसूर्यस्य दर्शनम् ।

उपविष्टो जपेत्सायम्बुक्षाणामाविलोकनात् ॥ १५५ ॥

काललोपोनकर्तव्योद्विजेनस्वहितेऽसुना । अर्द्धोदयास्तसमयेतस्माद्ब्रह्मोदकं क्षिपेत्

विधिनापि कृता सन्ध्या कालातीताऽफलाभवेत् ।

अयमेव हि दृष्टान्तो सन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ॥ १५७ ॥

जलं वामकरे कृत्वा वा सन्ध्याच्चरिताद्विजैः । वृषली सा परिह्वेयारक्षोगणमुदाचहा
उह्वयन्तमुदुत्यञ्च चित्रन्देवेतितत्परम् । तच्च भुरित्युपस्थानमन्त्राब्रध्नस्य सिद्धिदाः
सहस्रकृत्वो गायत्र्याः शतकृत्वोऽथवा पुनः ।

दशकृत्वोऽथ देव्यैव कुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् ॥ १६० ॥

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यान्दशावराम् । गयत्रीं यो जपेद्विप्रो न स पापैः प्रलिप्यते
विभ्राडित्यनुवाकं वा सूक्तंवापौरुषं जपेत् । शिवसङ्कल्पमथवा ब्राह्मणं मण्डलन्नुवा
एतानि षोपस्थानानि रविप्रीतिकराणि च । रक्तचन्दनमिश्राद्विरक्षतैः कुसुमैःकुशैः
वेदोक्तैरागमोक्तैर्वा मन्त्रैरर्घ्यप्रदापयेत् । अर्चितः सचितायेन तेन त्रंलोक्यमर्चितम्
अर्चितः सचितासूत्रेसुतान् पशुवसूनिष । व्याधीन्हरेद्ददात्यायुः पूर्येद्वाञ्छितान्यपि
अयं हि रुद्र आदित्यो हरिरेव दिवाकरः । रविर्हिरण्यगर्भोऽसौ त्रयीरूपोऽयमर्घ्यमा
रवेस्तु तोषणात्तुष्टा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । इन्द्रादयोऽखिला देवा मरीच्याद्यामहर्षयः
मानवा मनुमुल्याश्च सोमपाद्याःपितामहाः । रवेरर्चां विधायैत्थं ततस्तर्पणमारभेत्
दर्भानगर्भानादायनव सप्तचपञ्चवा । साप्रान्सम्लानच्छिन्नान् द्विजोदक्षिणपाणिना
अन्वारब्धेन सव्येन तर्पयेत् पङ्क्तिनायकान् ।

ब्रह्मादीनखिलान्देवान् मरीच्यादींस्तथा मुनीन् ॥ १७० ॥

चन्दनागुरुकस्नूरीगन्धवत्कुसुमैरपि । तर्पयेच्छुचिभिस्तोयैस्तुप्यन्त्विति समुच्चरन्
सनकादीन्मनुष्यांश्च निर्वीती तर्पयेद्यवैः । अङ्गुष्ठद्वयमध्ये तु कृत्वा दर्भानृज्जुन्द्विजः
कव्यवाडनलादींश्च पितृन्द्रव्यान्प्रतर्पयेत् ।

प्राचीनावीतिको दर्भेद्विगुणंस्तिलमिश्रितैः ॥ १७३ ॥

रवीं शुके त्रयोदश्यां सप्तम्यां निशि सन्ध्ययोः ।

श्रेयोऽर्थी ब्राह्मणो जातु न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ १७४ ॥

यदि कुर्यात्ततः कुर्याच्छुक्लैरेवतिलैःकृती । चतुर्दश यमान्पञ्चात्तर्पयेन्नाम उच्चरन् ॥

ततःस्वगोत्रमुच्चार्य तर्पयेत्स्वपितृन्मुदा । स्वयजानुनिपातेन पितृतीर्थेन धाम्यतः
एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादिकाः ।

पितरस्त्रीन्प्रवाञ्छन्ति स्त्रिय एकैकमञ्जलिम् ॥ १७७ ॥

अङ्गुल्यग्रे भवेद्द्वैषमार्गमङ्गुलिमूलगम् । ब्राह्ममङ्गुष्टमूले तु पाणिमध्ये प्रजापतेः ॥ १७८
मध्येऽङ्गुष्ठप्रदेशिन्योःपितृयन्तीर्थं प्रचक्षते । नवर्षं मुञ्चरन्विद्वान्विदध्यात्पितृतर्पणम्
उदीरतामङ्गिरस आयन्तु न इतीष्यते । ऊर्ज्वहन्तीपितृभ्यःस्वधायिभ्यस्ततःपठेत्
ये चेहपितरस्तद्वन्मधुवाना इति शृचम् । नमोवः पितरश्चोत्तवापठन्सिञ्चेज्जलभुवि
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः । तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥
अतीतकुलकोटीनां सतर्हीपनिवासिनाम् । आब्रह्मभुवनाल्लोकाद्विदमस्तुतिलोदकम्
ये चाऽस्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणोमृताः ।

सर्वे ते तृप्तिमायान्तु घस्त्रनिर्णीडनोदकैः ॥ १८४ ॥

अग्निकार्यन्ततः कृत्वा वेदाभ्यासन्ततश्चरेत् ।

श्रुत्यभ्यासःपञ्चधा स्यात् स्वीकारोऽर्थविचारणम् ॥ १८५ ॥

अभ्यासश्च जपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम् ।

लब्धस्य प्रतिपालार्थमलब्धस्य च लब्धये ॥ १८६ ॥

दातारं समुपेयाद्वै स्वगुरुत्वञ्च वर्धयेत् । प्रातःकृत्यमिदम्रोक्तं द्विजातीनां द्विजोत्तम!
अथवाप्रातरुत्थाय कृत्वाऽऽवश्यकमेव च । शौचाचमनमादाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥

विशोधय सर्वगात्राणि प्रातः सन्ध्यां समाचरेत् ।

वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधान्यपि ॥ १८९ ॥

अध्यापयेच्छुचींश्छिष्यान्हितान्मेधासमन्वितान् ।

उपेयादीभ्वरञ्चैषयोगक्षेमादिसिद्धये ॥ १९० ॥

ततोमध्याह्नसिद्धयर्थं पूर्वोक्तं स्नानमाचरेत् ।

स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यामुपासीत विषक्षणः ॥ १९१ ॥

नवयौवनमिन्द्राङ्गीं शुद्धस्फटिकनिर्मलाम् ।

त्रिष्टुप्छन्दःसमायुक्तां सावित्रीं रुद्रदैवताम् ॥ १६२ ॥

कश्यपसिसमायुक्तां युजुर्वेदस्वरूपिणीम् । उपक्षरावृषभारूढां भक्ताभयकाराम्पराम्
देवताम्परिपूज्याऽथनैत्यिकंविधिमाचरेत् । पक्षनाग्निसमुज्ज्वाल्यचैश्वदेवसमाचरेत्

निष्पावान्कोद्रवान्माषान् कलायांश्चणकांस्त्यजेत् ।

तैलपकञ्च पक्कानं सर्वं लघणयुक्त्यजेत् ॥ १६५ ॥

आढकीश्च मसूरांश्च वर्तुलान्वरटांस्तथा । भुक्तशयं पर्युपितं वैश्वदेवे विवर्जयेत्
दर्भपाणिः समाचम्यप्राणायामं विधायच । पृष्ठोदीचीतिमन्त्रेण पर्युक्षणमथाचरेत्
प्रदक्षिणञ्चपर्युक्ष्य त्रिपरिस्तीर्यवेकुशान् । एषोहदेवमन्त्रेण कुर्याद्ब्रह्मि सुसम्मुखम्
वैश्वानरं समभ्यर्च्य साज्यपुष्पाक्षतैरथ ।

भूराद्याश्चाहुतीस्तिस्रः स्वाहान्ताः प्रणवादिकाः ॥ १६६ ॥

ॐभूर्भुवःस्वःस्वाहेतिविप्रोदद्यात्तथाहुतिम् । तथादेवकृतस्याद्याहुत्याश्चपडाहूतीः
यमाय तूर्णामेकाश्च तथा स्विष्टकृतीद्वयम् ।

विश्वेभ्यश्चापि देवेभ्यो भूमौ दद्यात्ततो बलिम् ॥ २०१ ॥

सर्पेभ्यश्चापि भूतेभ्योनमोदद्यात्तदुत्तरे । तद्दक्षिणेपितृभ्यश्च प्राचीनावीतिको ददेत्
निर्णेजनोदकाब्रह्मैशान्यां वै यश्मणेऽर्पयेत् । ततोब्रह्मादिदेवेभ्यो नमोदद्यात्तदुत्तरे
निर्वाती सनकादिभ्यः पितृभ्यस्त्वपसव्यवान् ।

हन्तः षोडशभिर्प्रासैश्चतुर्भिः पुष्कलं स्मृतम् ॥ २०४ ॥

प्रासमात्राभवेद्विक्षा गृहस्थसुकृतप्रदा । अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः
यनिश्चब्रह्मचारीचपदेते धर्मभिन्नुकाः । अतिथिः पथिको ज्ञेयोऽनूचानः धृतिपारगः
मान्यावेतौ गृहस्थानां ब्रह्मलोकममीप्सताम् ।

अपि श्वपाके शुनि वा नैवाञ्च निष्फलमभवेत् ॥ २०७ ॥

अन्नार्थिनिसमायातेपात्रापात्रं नञ्चिन्तयेत् । शुनाञ्चपतितानाञ्चश्वपथाम्पापरोगिणाम्
काकानाञ्चहृमीणाञ्चवहिरञ्चकिरेद्भुवि । पेन्द्रवारुणवायव्याःसौम्या वै नैर्ऋताश्च ये
प्रतिगृह्णन्तिवर्मपिण्डंकाकाभूमौमर्यापितम् । द्वौश्वानीश्यामशबलीवैषस्वतकुलोद्भवी

ताभ्याम्पिण्डम्प्रदास्यामि स्यातामेतावर्हिस्की ।

देवा मनुष्याः पशवो रक्षोयक्षोरगाः खगाः ॥ २११ ॥

दैत्याःसिद्धाःपिशाचाश्चप्रेताभूताश्चदानवाः । तृणानितरवश्चापिमद्गन्नाभिलाषुकाः
कृमिकीटपतङ्गाद्याः कर्मबद्धावुभुक्षिताः । तृप्त्यर्थमन्नं हि मयादत्तन्तेषां मुदेऽस्तुचै
इत्थम्भूतबलिन्दत्वा कालंगोदोहमात्रकम् ।

प्रतीक्षयातिथिमायान्तं विशेद्वोज्यगृहन्ततः ॥ २१४ ॥

अदस्वावायसबलिनित्यश्नाद्धंसमाचरेत् नित्यश्नाद्धेस्वसामर्थ्यात्त्रीन्द्वावेकमथापिवा
भोजयेत्पितृयज्ञार्थं दद्यादुद्गृह्यत्यदुर्बलः । नित्यश्नाद्धं दैवहीनं नियमादिविर्जितम्
दक्षिणारहितंत्वेतद्वातुभोकृत्रतोऽभितम् । पितृयज्ञं विधायेत्यं स्वस्थबुद्धिरनातुरः

अदुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभिः सह ।

सुगन्धिः सुमनाः स्रग्वी शुचिवासोद्वयान्वितः ॥ २१८ ॥

प्रागास्य उदगास्यो वा भुञ्जीतपितृसेवितम् ॥ २१९ ॥

विधायान्नमनघ्नन्तदुपरिष्ठादधस्तथा । आपोशानविधानेन कृत्वाऽश्रीयात्सुधीद्विजः
प्रदद्याद्बुधः पतये भुवनपतये तथा । भूतानाम्पतये स्याहेत्युक्त्वा भूमौ बलित्रयम्
सकृच्छापउपस्पृश्य प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् । दद्याज्जरकुण्डाग्नौ दर्भपाणिः प्रसन्नधीः
दर्भपाणिस्तु यो भुङ्क्ते तस्य दोषो न विद्यते ।

केशकीटादिसम्भूतस्तदश्रीयात्सदर्भकः ॥ २२३ ॥

यावद्बुध्यभ्रमश्रीयान्नत्रयान्तद्गुणागुणान् । भुञ्जते पितरस्तावद्यावन्नोक्तागुणागुणाः
अतो मौनन यो भुङ्क्ते सभुङ्क्तेकेवलामृतम् । अनुपीयततःक्षीरन्तकम्पानीयमेववा
अमृतापिधानमसीत्येवं प्राश्योदकं सकृत् । पीतशेषंक्षिपेद्भूमौतोयमन्त्रमिमम्पठन्
अप्रक्षालितहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः । रौरवेऽपुण्यनिलये पशार्बुदनिवासिनाम्
उच्छिष्टोदकमिच्छन्नामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ २२८ ॥

पुनराचम्य मेधावी शुभ्रं त्वा प्रयत्नतः । हस्तेनोदकमादाय मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥
अङ्गुष्ठमात्रःपुरुषस्त्वंगुणैश्चसमाभितः । ईशःसर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणातिविश्वभुक्

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः] * सदाचारेनित्यविधिवर्णनम् *

२६३

इत्यन्नं परिसङ्कल्प्य प्रक्षाल्य चरणौ करौ । ततोऽन्नपरिणामार्थं मन्त्रानेतानुदीरयेत्
अग्निराप्याययन्घ्रातून्पार्थिवान्पवनेरितः । दत्तावकाशोनभसा जरयत्वस्तुमे सुखम्
प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ।

अन्नम्पुष्टिकरञ्चास्तु ममाऽस्त्वव्याहृतं सुखम् ॥ २३३ ॥

समुद्रोचडवाग्निश्च ब्रध्नोब्रध्नस्य नन्दनः । मयाऽभ्यवहृतं यस्तदशेषं जरयन्त्वमे ॥
मुखशुद्धिततःकृत्वा पुराणश्रवणादिभिः । अतिवाह्यदिवाशेषंततः सन्ध्यां समारभेत्
गृहेगोष्ठे नदीतीरे सन्ध्या दशगुणा क्रमात् ।

सम्भेदे स्याच्छतगुणा ह्यनन्ताशिवसन्निधौ ॥ २३६ ॥

उपासिता बहिःसन्ध्या दिवामैथुनपातकम् । शमयेदनृतोक्तायं मद्यगन्धजमेव च ॥
सामवेदस्वरूपाञ्च वसिष्ठर्षिसमायुताम् ।

कृष्णाङ्गीं कृष्णवसनां मनाक् स्वलितयौवनाम् ॥ २३८ ॥

सरस्वतीं ताड्ययानां चित्रघ्नीं विष्णुदैवताम् ।

जगतीच्छन्दसायुक्तां ध्यायेदेकाक्षराम्पराम् ॥ २३९ ॥

अग्निश्चेति च मन्त्रेण विधायास्वप्नसुधीः । पश्चिमास्योजपेत्तावद्याचरुक्षत्रदर्शनम्
अतिथि सायमायान्तमपिवाग्भृतृणोदकैः ।

सम्भाव्य परिकल्प्येत्यं निशः प्राक् प्रहरं सुधीः ॥ २४१ ॥

इत्थंदिवाकर्मकृत्वाश्रुतेःपठनपाठनैः । एककाष्ठमर्थीशय्यां नातितृणोऽथ संविशेत्
उद्देशतःसमाख्यातोह्येनित्यतमोविधिः । इत्थंसमाचरन्विप्रोनावसीदतिकर्हचित्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

पूर्वार्धे सदाचारवर्णनं नामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मचारिसदाचारवर्णनम्

स्कन्द उवाच

पुनर्विशेषं वक्ष्यामि सदाचारस्य कुम्भज ! । यं श्रुत्वापिनरोधीमात्राज्ञानतिमिरं विशेत्

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयोवर्णा द्विजाः स्मृताः ।

प्रथमं मातृतो जाताद् द्वितीयं चोपनायनात् ॥ २ ॥

एषां क्रियानिषेकादिशमशानान्ताचर्बंदिका । आदधीतसुधीर्गंभृतीमूलं मघां त्यजेत्

स्पन्दनात्प्राक् पुंसवनं सर्गमन्तोन्नयनं ततः । मासिपष्टेऽष्टमेवापिजातेथोजातकर्मघ

नामाह्वये कादशे गेहाच्छतुर्थे मासि निष्क्रमः । मासेऽन्नप्राशनं पष्टेष्ण्डाब्दे वा यथाकुलम्

शममेनो ब्रजेदेवं वैजंगभं जमेव च । स्त्रीणामेताः क्रियास्तृष्णीम्पाणिग्राहस्तुमन्त्रवान्

सप्तमेऽथाष्टमेवाब्देसाचित्रां ब्राह्मणोऽर्हति । नृपन्त्वेकादशे वैश्योद्वादशेवायथाकुलम्

ब्रह्मतेजोऽभिवृद्ध्यर्थं विप्रोऽब्दे पञ्चमेऽर्हति ।

पष्टे बलार्थं नृपतिर्मौञ्जी वैश्योऽष्टमे ध्रियेत् ॥ ८ ॥

महान्वाहृतिपूर्वञ्च वेदमध्यापयेद्गुरुः । उपनीय च तं शिष्यं शौचाचारं च योजयेत्

पूर्वोक्तविधिना शौचं कुर्यादाचमनन्तथा ।

दन्ताञ्जिह्वां विशोध्याथ कृत्वा मलविशोधनम् ॥ १० ॥

स्नात्वाम्बुदैघतैर्मन्त्रैः प्राणानायम्य यत्नतः । उपस्थानं रवेः कृत्वा सन्ध्ययोरुभयोरपि

अग्निकार्यं ततः कृत्वा ब्राह्मणानभिवादयेत् । ब्रह्मसुकगोत्रोहमभिवादय इत्यपि

अभिवादनशीलस्य बृद्धसेवारतस्य च । आयुर्यशोबलम्बुद्धिर्घर्षतेऽहरहोऽधिकम्

अधीते गुरुणाहृतः प्राप्तं तस्मै निवेदयेत् । कर्मणामनसावाचा हितं तस्याचरेत्सदा

अध्याप्या धर्मतो नार्थात्साध्वामहानचित्तदाः ।

शकाः कृतज्ञाः शुचयोऽद्रोहकाश्चानसूयकाः ॥ १५ ॥

धारयेन्मेखलादण्डोपवीताजिनमेव च । अनिन्देषु खरेदुर्मैक्ष्यं ब्राह्मणेष्वात्मवृत्तये ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशामादिमध्यावसानतः । भैक्ष्यस्वर्याक्रमेणस्याद्भवच्छब्दोपलक्षिता
वाग्यतो गुर्वनुज्ञातो भुञ्जीताश्रमकुत्सयन् ।

एकाग्रं न समश्रीयाच्छ्राद्धेऽश्रीयात्तथापि ॥ १८ ॥

अनारोग्यमनायुष्यमश्वग्यञ्जातिभोजनम् । अपुण्यंलोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिचर्जयेत्
न द्विभुञ्जीत चैकस्मिन्दवा कापि द्विजोत्तमः ।

सायम्प्रातर्द्विजोऽश्रीयाद्ग्नहोत्रविधानवित् ॥ २० ॥

मधुमांसम्प्राणिहिंसाभास्करालोकनाञ्जने । स्त्रियंपर्युपितोच्छिष्टंपरिषादं विचर्जयेत्
ओपनायनिकः कालो ब्रह्मक्षत्रविशाम्परः । आपोऽशदाद्वाविशदाच्चतुर्विशाद्दत्तः
इतोऽप्यूर्ध्वं न संस्कार्याः पतिता धर्मवर्जिताः ।

ब्राह्म्यस्तोमेन यज्ञेन तत्पातित्यम्परिव्रजेत् ॥ २३ ॥

सावित्रीपतितैः सार्द्धं सम्बन्धनं समाचरेत् । षण्श्वरोरखंवास्तंक्रमाश्रमद्विजन्मनाम्
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षीमाविकानिच । द्विजस्यमेखलामौञ्जीमौर्वीचभुजजन्मनः
भवेत्त्रिवृत्समा श्लक्षणा विशस्तु शणतान्तयी ।

मुञ्जाभावे विधातव्या कुशाश्मन्तकवल्बजैः । ग्रन्थिनंकेनसंयुक्तात्रिभिः पञ्चभिरेववा
उपवीतं क्रमेण स्यात्कार्पासंशाणमाविकम् । त्रिवृदूर्ध्ववृत्तन्तश्च भवेदायुर्विवृद्धये
विल्वपालाशयोर्दण्डो ब्राह्मणस्य नृपस्य तु । न्यग्रोधवालदलयोः पीलू दुम्बरयोर्विशः

आमौलि वाऽऽललाटं वाऽऽनासमूर्ध्वप्रमाणतः ।

ब्रह्मक्षत्रविशां दण्डस्त्वगाढयो नाग्निदूपितः ॥ २६ ॥

प्रदक्षिणं परीत्याऽग्निमुपस्थाय दिवाकरम् ।

दण्डाजिनोपवीताढ्यश्चरेद्भैक्ष्यं यथोदितम् ॥ ३० ॥

मातृमातृष्वसृष्वपितृष्वसृषुराः सराः । प्रथमं भिक्षणीयाः स्युरेतायाश्चननोवदेत्
यावद्देदमधीने च चरन्वेदव्रतानि च । ब्रह्मचारीभवेत्साधदूर्ध्वं स्नातो गृहीभवेत्
प्रोकोऽसावुपकुर्वाणो द्वितीयस्तत्र नैष्ठिकः ।

तिष्ठेत्तावद् गुरुकुले यावत्स्यादायुषः क्षयः ॥ ३३ ॥

गृहाश्रमं समाश्रित्य यः पुनर्ब्रह्मचर्यभाक् ।

नाऽसौ यतिर्वनस्थो वा स्यात्सर्वाश्रमवर्जितः ॥ ३४ ॥

अनाश्रमी न तिष्ठेन्नदिनमेकमपिद्विजः । आश्रमन्तु विनातिष्ठन्प्रायश्चित्तीयतोहिसः

जपं होमं व्रतं दानं स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ।

कुर्वाणोऽथाऽऽश्रमन्नष्टो नासौ तत्फलमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

मेखलाजिनदण्डाश्च लिङ्गं स्याद्ब्रह्मचारिणः । गृहिणोवेदयज्ञादिनखलोमबनस्थितेः

त्रिदण्डादियतेरुक्तमुपलक्षणमत्र वै । एतल्लक्षणहीनस्तु प्रायश्चित्ती दिने दिने

जीर्णं कमण्डलुदण्डमुपवीताजिने अपि ।

अप्स्वेव तानि निक्षिप्य गृह्णीतान्यच्च मन्त्रवन् ॥ ३६ ॥

विदध्यात्पोडशे वर्षे केशान्तंकर्मसक्रमात् । द्वाविंशे च चतुर्विंशेगार्हस्थ्यप्रतिपत्तये

तपोयज्ञव्रतेभ्यश्च सर्वस्माच्छुभकर्मणः । द्विजातीनाश्रुतिहोकाहेतुर्निःश्रयसश्रियः

वेदारभ्ये विसर्गे च विदध्यात्प्रणवं सदा ।

अफलोऽनोङ्कृतो यस्मात्पठितोऽपि न सिद्धये ॥ ४२ ॥

वेदस्य वदनम्प्रोक्तं गायत्रां त्रिपदा परा । तिसृभिःप्रणवाद्याभिर्महाव्याहृतिभिःसह

सहस्रं साधिकंकिञ्चित्त्रिकमेतज्जपन्यमी । मासम्बहिः प्रतिदिनंमहाघादपिमुच्यते

अत्यद्भूमिति योऽभ्यस्येत्प्रतिघस्रमनन्यधीः ।

स व्योममूर्तिः शुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ४५ ॥

त्रिवर्णमयमोङ्कारं भूर्भुवः स्वरितित्रयम् । पादत्रयञ्चासविध्यास्त्रयोवेदा अदूदुहन्

एतदक्षरमेनाञ्च जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम् । सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते

विधिक्रतोर्दशगुणं जपस्य फलमश्नुते । विधिक्रतोर्दशगुणो जपक्रतुरुदीरितः

उपांशुस्तच्छतगुणः सहस्रो मानसस्ततः ॥ ४६ ॥

अधीत्य वेदान्वेदौ वा वेदं वा शक्तितो द्विजः ।

सुवर्णपूर्णधरणीदानस्य फलमश्नुते ॥ ५० ॥

श्रुतिमेवसदाभ्यस्येत्पस्तत् द्विजोत्तमः । श्रुत्यभ्यासोहिधिप्रस्य परमंतपउच्यते
हित्वा धृतैरध्ययनं योऽन्यत्पठितुमिच्छति ।

स दोग्ध्रीं धेनुमुत्सृज्य ग्रामकोडीं दुधुक्षति ॥ ५२ ॥

उपनीय सर्वैशिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः । सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यं वितुर्बुधाः
योऽध्यापयेदेकदेशं श्रुतेरङ्गान्यथापि वा । वृत्त्यर्थं स उपाध्यायो विद्वद्विः परिगीयते
यथाधिनिषेकादियः कर्मकुरुते द्विजः । सम्भाषयेत्तथास्त्रेण गुरुः स इह कीर्त्यते
अग्न्याधेयम्पाक्यज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ।

यः करोति वृत्तो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥ ५६ ॥

उपाध्यायाद्दशाचार्यं आचार्यान्तु शतम्पिता । सहस्रं तु पितुर्मातागौरवेणातिरिच्यते
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं बाहुजानान्तु वीर्यतः ।

वैश्यानां धान्यधनतः पञ्जातानां तु जन्मतः ॥ ५८ ॥

यथा दारुमयो हस्ती यथा कृत्तिमयो मृगः ।

तथा विप्रोऽनधीयानस्त्रयोऽमी नामधारिणः ॥ ५९ ॥

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।

स्नात्वाऽकर्मर्षयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचञ्जपेत् ॥ ६० ॥

स्वधर्मनिरतानाञ्च वेदयज्ञक्रियावताम् । ब्रह्मचारी खरेद्वैश्वं वैश्वसुप्रयतोऽन्वहम् ॥

अकृत्वाभैक्ष्यघरणमसमिध्यहुताशनम् । अनानुरः समरात्रमवकीर्णिव्रतञ्चरेत् ॥ ६२

यथेष्टचेष्टो न भवेद्गुरोर्नयनगोचरे । न नाम परिगृह्णीयात्परोक्षेप्यविशेषणम्

गुरुनिन्दाभवेद्यत्र परिचादस्तुयत्र च । श्रुती पिधायवास्थेयं यातव्यं वाततोऽन्यतः

खरो गुरोः परीवादाच्छ्रवा भवेद्गुरुनिन्दकः ।

मत्सरी क्षुद्रकीटः स्यात्परिभोक्ता भवेत् कृमिः ॥ ६५ ॥

नाभिवाद्या गुरोः पत्नी स्पृष्ट्वाङ्घ्री युवती सती ।

कापि विंशति वर्षेण ज्ञातृणा गुणदोषयोः ॥ ६६ ॥

स्वभावश्चञ्चलः स्त्रीणां दोषः पुं सामतः स्मृतः । प्रमदासुप्रमाद्यन्तिकचिन्नैवचिपश्चितः

विद्वांसमप्यविद्वांसं यतस्ताधर्षयन्त्यलम् । स्ववशंवापिकुर्वन्तिसूत्रबद्धशकुन्तघत्
न मात्रा न दुहित्रा वा न स्वस्त्रैकान्तशीलता ।

बलवन्तीन्द्रियाण्यत्र मोहयन्त्यपि कोविदान् ॥ ६६ ॥

प्रयत्नैर्बलन्यद्ब्रह्मभूमेर्धार्यधिगच्छति । शुश्रूषयागुरोस्तद्ब्रह्मद्विद्यांशिष्योऽधिगच्छति
शयानमभ्युदयते ब्रह्मन्ब्रह्मचारिणम् । प्रमादादथ निम्लोचेज्जपश्रुपषसेद्विनम्
सुतस्य सम्भवे क्लेशःसहेते पितरौ च यत् ।

शक्या वर्षशनेनापि नो कर्तुं तस्य निष्कृतिः ॥ ७२ ॥

अतस्तयोः प्रियं कुर्याद् गुरोरपि चसर्वदा । त्रिषु तेषु सुतुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते । तानतिक्रम्य यत्कुर्यात्तत्रसिद्ध्येतकदाचन
त्रैनेवाम्रन्समाराध्य त्रींल्लोकान्स जयेत्सुधीः ।

देववद्विचि दीव्येत तेषां तोषं विवर्धयन् ॥ ७५ ॥

मूर्लोकज्ञननीभक्त्या भुवर्लोकन्तथापितुः । गुरोःशुश्रूषणात्तद्वन्स्वर्लोकञ्चजयेत्कृती
एतदेव नृणाम्प्रोक्तमपुरुषार्थंवनुष्टयम् । यदेतेषां हि सन्तोष उपधर्मोऽन्य उच्यते
अर्धान्य वेदान्वेदौवा वेदवापिक्रमाद्द्विजः । अप्रस्खलद्ब्रह्मचर्योगृहाश्रममथाश्रयेत्
अचिप्लुतब्रह्मचर्योविश्वेशानुग्रहाद्भवेत् । अनुग्रहश्च वेश्वेशः काशीप्रामिकरः परः
काशीप्राप्त्या भवेज्ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति ।

निर्वाणार्थंप्रयत्नो हि सदाचारस्य धीमताम् ॥ ८० ॥

सदाचारो गृहे यद्ब्रह्म तथाऽस्त्याऽऽश्रमान्तरे ।

विद्याज्ञानम्पठित्वाऽन्ते गृहस्थाश्रममाश्रयेत् ॥ ८१ ॥

गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि पत्नीवशंभवा । आनुकूल्यं हि दम्पत्योस्त्रिचर्गाद्यहेतवे
आनुकूल्यं कलत्रं चेत्त्रिदिवेनाऽपि किं ततः ।

प्रातिकूल्यं कलत्रं चेश्वरकेणाऽपि किततः ॥ ८३ ॥

गृहाश्रमःसुखार्थायभार्यामूलं चतत्सुखम् । साश्वभार्याविनीतायात्रिचर्गांविनयोधुषम्
जलौक्योपमीयन्ते प्रमदामन्दबुद्धिभिः । मृगीदृशां जलौकानां विचारान्महदन्तरम्

जलीकाकेवलं रक्तमादानातपस्विनी । प्रमदा सर्वदादत्ते खिलं खिलं बलं सुखम्

दक्षा प्रजावती साध्वी प्रियवाक्च वशंवदा ।

गुणैरमीभिः संयुक्ता सा श्रीःस्त्रीरूपधारिणी ॥ ८७ ॥

गुरोरनुज्ञयास्नात्वाव्रतं वेदं समाप्यच । उद्वहेत ततो भार्या सवर्णा साधुलक्षणाम्

जनेतुरसगोत्राया मातुर्याप्यसपिण्डका । दारकर्मणियोग्या साद्विजानां धर्मवृद्धये

स्त्रीसम्बन्धेऽप्यपस्मारिक्षयिष्वित्रिकुलं त्यजेत् ।

अभिशस्तिसमायुक्तं तथा कन्याप्रसूं त्यजेत् ॥ ९० ॥

रोगहीनां भ्रातृमतीं स्वस्मात्किञ्चिद्धीयसीम् ।

उद्वहेत द्विजो भार्यां सौम्यास्यां मृदुभाषिणीम् ॥ ९१ ॥

नपर्वतर्क्षवृक्षाह्वा न नदीसर्पनामिकाम् । नपश्यहिप्रेष्यनास्त्रीं सौम्याख्यामुद्वहेत्सुधीः

न चाऽतिरिक्तहीनाङ्गी नातिदीर्घां न वा कृशाम् ।

नाऽलोमिकां नाऽतिलोमां नाऽस्निग्धस्थूलमौलिजाम् ॥ ९३ ॥

मोहात्समुपयच्छेतकुलहीनानकन्यकाम् । हीनोपयमनाद्याति सन्तानमपि हीनताम्

लक्षणानिपरीक्ष्यादौततःकन्या समुद्वहेत् । सुलक्षणा सदाचारा पत्युरायुर्विधर्धयेत्

ब्रह्मचारिसदाचार इति ते समुदीरितः । घटोद्वव! प्रसङ्गेन स्त्रीलक्षणमथ ब्रूवे ॥ ९६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

पूर्वार्धे ब्रह्मचारिसदाचारवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणवर्णनम्

स्कन्द उवाच

सदागृहीसुखंभुङ्क्तेस्त्रीलक्षणवतीयदि । अतः सुखसमृद्धयर्थमादौ लक्षणमीक्षयेत्
चपुरावर्तगन्धाश्च छायासस्वं स्वरोगतिः । वर्णश्चेत्यष्टधा प्रोक्ता बुधैर्लक्षणभूमिका
आपादतलमारभ्ययावन्मौलिरुहंक्रमात् । शुभाशुभानिषध्यामि लक्षणानिमुने! शृणु
आदौपादतलरेखास्ततोऽङ्गुष्ठाङ्गुलीनखाः । पृष्ठगुल्फद्वयंपाष्णोजङ्घेरोमाणिजानुनी
ऊरुकटीनितम्बस्त्रिभगोजघनवस्तिके । नाभिःकुक्षिद्वयं पाश्वोदरमध्यबलित्रयम्
रोमालीहृदयं वक्षोवक्षोजद्वयचूचुकम् । जश्रुकन्धांसकक्षादोर्मणिवन्धकरद्वयम् ॥
पाणिपृष्ठम्पाणितलरेखाङ्गुष्ठाङ्गुलीनखाः । पृष्ठिः कृकाटिका कण्ठेचिबुकञ्चहनुद्वयम्
कपोलोकत्रमधरोत्सरोष्ठौ द्विजजिह्विकाः । घण्टिकातालुहसितनासिकाध्रुतमक्षिणी
पद्मभ्रूकर्णमालानिमौलिसीमन्तमौलिजाः । षष्टिः पडुत्तरायोपिदङ्गलक्षणसन्धनिः
स्त्रीणांपादतलंस्निग्धमांसलंमृदुलंसमम् । अस्वेदमुष्णमरुणंबहुभोगोचित स्मृतम्
रुक्षंविषवर्णंमपरुंखण्डितप्रतिविम्बकम् । शूर्पाकारं विशुष्कञ्च दुःखदौर्भाग्यसूचकम्
चक्रत्वस्तिकशङ्खाङ्गध्वजमीनातपत्रवत् । यस्याःपादतलरेखासामवेत्क्षितिपाङ्गना

भवेदखण्डभोगायोर्ध्वामध्याङ्गुलिसङ्गता ।

रेखाऽऽस्त्रसर्पकाकाभा दुःखदारिद्र्यसूचिका ॥ १३ ॥

उन्नतोमांसलोऽङ्गुष्ठोवत्तुलोऽतुलभोगदः । वक्रोहस्त्वक्षविपिटःसुखसौभाग्यभङ्गकः
विषधाविपुलेनस्याद्दीर्घाङ्गुष्ठेनदुर्भगा । मृदवोऽङ्गुलयः शस्या घनावृत्ताः समुन्नताः
दीर्घाङ्गुलीभिःकुलटाकृशाभिरतिनिर्धना ह्रस्वायुष्याचह्रस्वाभिर्भुं प्राभिर्भुं गनवर्त्तिनी
बिपिटाभिर्भवेद्वासी विरलाभिर्द्विरिणी । परस्परंसमारूढाःपादाङ्गुल्योभवन्तिहि
हत्वाबह्वनपिपतीन्परप्रेष्यातदाभवेत् । यस्याःपथिसमायान्त्यारजोभूमेःसमुच्छलेत्

सा पांसुला प्रजायेत कुलत्रयधिनाशिनी ।

यस्याः कनिष्ठिका भूमिं न गच्छन्त्याः परिस्पृशेत् ॥ १६ ॥

सानिहत्यपतिथोषाद्वितीयंकुरुतेपतिम् । अनामिकाचमध्याचयस्याभूमिनसंस्पृशेत्
पतिद्वयंनिहन्त्याद्या द्वितीयाचपतित्रयम् । पतिहीनत्वकारिण्यौहीने ते द्वे इमे यदि
प्रदेशिनीभवेद्यस्याअङ्गुष्ठव्यतिरेकिणी । कन्यैचकुलटा सा स्यादेष एष विविध्वयः

स्निग्धा समुन्नतास्ताम्रा वृत्ताः पादनखाः शुभाः । ॥ २३ ॥

राक्षीत्वसूचकं स्त्रीणांपापदृष्टं समुन्नतम् । अस्वेदमशिराढ्यञ्च मसृणं मृदुमांसलम्
दरिद्रामध्यनन्नेण शिरालेन सदाध्वगा । रोमाढ्येन भवेद्दासी निर्मासेन च दुर्भंगा
गूढा गुल्फौ शिवायोक्तावशिरालौ सुवर्तुलौ ।

स्थपटौ शिथिलौ दृश्यौ स्यातां दौर्भाग्यसूचकौ ॥ २६ ॥

समपार्ष्णिः शुभा नारी पृथुपार्ष्णिश्च दुर्भंगा ।

कुलटोन्नतपार्ष्णिः स्याद्दीर्घपार्ष्णिश्च दुःखभाक् ॥ २७ ॥

रोमहीने समे स्निग्धे यज्जङ्घे कमवत्ले । सा राजपत्नी भवति विशिरे सुमनोहरे
एकरोमा राजपत्नी द्विरोमा च सुखावहा । त्रिरोमारोमकूपेषु भवेद्द्वैधव्यदुःखभाक्
वृत्तं पिशितसंलग्नंजानुयुग्मप्रशस्यते । निर्मांसंस्वैरचारिण्यादरिद्रायाश्चविश्लथम्
विशिरैः करभाकारैरूहभिर्मसृणवर्नैः । सुवृत्तैरोमरहितैर्भवेयुभू पबलभा ॥ ३१ ॥

वैधव्यंरोमशैरुकं दौर्भाग्यञ्चिपिटैरपि । मध्यच्छिद्रैर्महादुःखं दारिद्र्यं कठिनत्वचैः
चतुर्भिरङ्गलैः शस्ता कटिर्विशतिसंयुतैः । समुन्नतनितम्बाढ्या चतुरस्रा मृगीदृशाम्
विनताचिपिटादीर्घानिर्मासासङ्कटाकटिः । हस्वारोमयुतानार्यादुःखवैधव्यसूचिका
नितम्बविम्बोनारीणामुन्नतोमांसलःपृथुः । महाभोगायसम्प्रोक्तस्तदन्योऽशर्मणेमतः

कपित्थफलवद् वृत्तौ मृदुलौ मांसलौ धनौ ।

स्फिचौ बलिबिनिमुं कौ रतिसौख्यविवर्धनौ ॥ ३६ ॥

शुभः कमठपृष्ठाभो गजस्कन्धोपमोभगः । वामोन्नतस्तु कन्याजःपुत्रजोदक्षिणोन्नतः
आम्बुरोमा गूढमणिः सुश्लिष्टः संहतः पृथुः । तुङ्गःकमलपर्णाभःशुभोभवत्यदलाकृतिः

कुरङ्गखुररूपो यश्चुल्लिकोदरसन्निभः ।

रोमशो विवृतास्यश्च दृश्यनासोऽतिदुर्भगः ॥ ३६ ॥

शङ्खावर्तो भगोयस्याःसागर्भमिहनेच्छति । चिपिटः खर्पराकारः किङ्करीपददोभगः
वंशवेतसपत्राभो गजरोमोञ्चनासिकः । विकटः कुटिलाकारो लम्बगह्वस्तथाऽशुभः
भगस्य भालञ्जघनंविस्तीर्णन्तुङ्गमांसलम् । मृदुलंदुलोमाढ्यं दक्षिणावर्तमांडितम्
वामावर्तञ्च निर्मांसं भुग्नं वैधव्यसूचकम् । सङ्कटस्थपुटं रुक्षं जघनं दुःखदं सदा
वस्तिःप्रशस्ताविपुलामृद्धी स्तोकसमुन्नता । रोमशावशिरालाघ रेखाङ्गानैवशोभना
गम्भीरा दक्षिणावर्ता नाभी स्यात्सुखसम्पदे ।

वामावर्ता समुत्ताना व्यक्तग्रन्थिनं शोभना ॥ ४५ ॥

सूनेसुतान्बह्वभारीपृथुकुक्षिः सुखारूपदम् । क्षितीशञ्जनयेत्पुत्रमण्डूकाभेन 'कुक्षिणा
उन्नतेन बलीभाजासावर्तेनापि कुक्षिणा । बन्ध्याप्रव्रजिता दासीक्रमाद्योपा भवेद्विह
समैः समांसंमृदुभिर्योपिन्मग्नास्थिमिशुर्भः ।

पाश्वैः सौभाग्यसुखयोर्निधानं स्यादसंशयम् ॥ ४८ ॥

यस्या दृश्यशिरेपाश्वेउन्नते रोमसंयुते । निरपत्या च दुःशीलासाभवेदुदुःखशेवधिः
उदरेणातितुच्छेन विशिरेणमृदुत्वचा । योषिद्वधति भोगाढ्यानित्यमिष्टान्नसेविनी
कुम्भाकारं द्रिद्रिया जठरञ्च मृदङ्गवत् ।

कृष्माण्डामं यवाभञ्च दुष्पूरञ्जायते स्त्रियाः ॥ ५१ ॥

सुविशालोदरी नारी निरपत्या च दुर्भगा । प्रलम्बजठरा हन्ति श्वशुरञ्चापिदेवरम्
मधमक्षामा च सुभगा भोगाढ्या सबलित्रया ।

श्रुज्वी तन्वी च रोमाली यस्याः सा शर्मनर्मभूः ॥ ५३ ॥

कपिला कुटिला स्थूला विच्छिन्ना रोमराजिका ।

चौरवैधव्यदौर्भाग्यं चिदध्यादिह योषिताम् ॥ ५४ ॥

निर्लोमहृदयं यस्याः समं निन्नत्ववर्जितम् । ऐश्वर्यञ्चाप्यवैधव्यं प्रियप्रेमच्छालभेत्
विस्तीर्णहृदया योषापुंश्चलीनिर्दयातथा । उद्विन्नरोमहृदयापतिहन्तिचिधिचिञ्चितम्

अष्टादशाङ्गुलततमुरःपीचरमुन्नतम् । सुखाय दुःखाय भवेद्रोमशं विषमं पृथु ॥

घनौ वृत्तौ दृढौ पीनौ समौ शस्तौ पयोधरौ ।

स्थूलाग्रौ विरलौ शुष्कौ वामोरूणां न शर्मदौ ॥ ५८ ॥

दक्षिणोन्नतवक्षोज्ञा पुत्रिणी त्वप्रणीभता ।

वामोन्नतकुचा सूते कन्यां सौभाग्यसुन्दरीम् ॥ ५९ ॥

अरघट्टघदीतुल्यौ कुर्वा दौःशील्यसूचकौ ।

पीचरास्यौ सान्तरालौ पृथूपान्तौ न शोभनौ ॥ ६० ॥

मूले स्थूलौकमकृशावप्रे तीक्ष्णौपयोधरौ । सुखदौपूर्वकाले तु पश्चादत्यन्तदुःखदौ
सुदृढं चूचुकयुगं शस्तं श्यामं सुवर्तुलम् । अन्तर्मग्नञ्च दीर्घञ्च कृशं क्लेशाय जायते

पीचराभ्याञ्च जन्तुभ्यां धनधान्यनिधिर्वधूः ।

श्लथास्थिभ्याञ्च निम्नाभ्यां विषमाभ्यां दरिद्रिणी ॥ ६३ ॥

अबद्धावनतौ स्कन्धावक्षीर्घावकृशौ शुभौ ।

स्रक्नौ स्थूलौ च रोमाढ्यौ प्रेष्यवैधव्यसूचकौ ॥ ६४ ॥

निगूढसन्धी स्रस्ताग्रौ शुभावंसौ सुसंहतौ ।

वैधव्यदौ समुच्चाग्रौ निर्मासावतिदुःखदौ ॥ ६५ ॥

कक्षेसुसूक्ष्मरोमे तु तुङ्गेस्निग्धं च मांसले । शस्तेन शस्तेगम्भीरेशिराले स्वेदमेदुरे

स्याता दोषौ सुनिर्दोषी गूढाऽस्थिप्रन्थिकोमलौ ।

विशिरौ च विरोमाणौ सरलौ हरिणीदृशाम् ॥ ६७ ॥

वैधव्यं स्थूलरोमाणौ ह्रस्वौ दौर्भाग्यसूचकौ ।

परिक्लेशाय नारीणां परिदृश्याशरौभुजौ ॥ ६८ ॥

अम्भोजमुकुलाकारमङ्गुष्ठाङ्गुलिसम्मुखम् । हस्तद्वयं मृगाक्षीणां बहुभोगाय जायते
मृदुमध्योन्नतं रक्तं तलं पाण्योररन्ध्रकम् । प्रशस्तं शस्तरैखाढ्यमल्परेखं शुभध्रियम्
विधवा बहुरेखेण विरेखेण दरिद्रिणी । भिक्षुकी सुशिराढ्येन नारीकरतलेन वै ॥

विरोमविशिरं शस्तं पाणिपृष्ठं समुन्नतम् ।

वैधव्यहेतुरोमाढ्यं निर्मांसं स्नायुमस्यजेत् । ७२ ॥

रक्ताव्यक्तागभीरावस्त्रिधापूर्णावर्तुला । कररेखाङ्गनायाःस्याच्छुभाभाग्यानुसारतः
मत्स्येन सुभगा नारी स्वस्तिकेन वसुप्रदा । पद्मेन भूपतेः पत्नी जनयेद्भूपर्तिसुतम्
चक्रवर्तिस्त्रियाः पाणौनन्द्यावर्तः प्रदक्षिणः । शङ्कतपत्रकमठा नृपमातृत्वसूचकाः
तुलामानाकृती रेखे घणिक्पत्नीत्वहेतुके । गजवाजिवृषाकाराः करे वामे मृगीदृशाम्
रेखाःप्रासादवज्राभात्रयुस्तीर्थकरं सुतम् । कृषीबलस्य पत्नीस्याच्छकटेन युगेन वा
वामरांकुशकोदण्डैराजपत्नी भवेद्भ्रुवम् । अङ्गुष्ठमूलाभिर्गत्यरेखायाति कनिष्ठिकाम्
यदि सा पतिहन्त्री स्याद् दूरतस्तां त्यजेत्सुधीः ।

त्रिशूलासिगदाशक्तिदुन्दुभ्याकृतिरेखया ।

नितम्बिनी कीर्तिमती त्यागेन पृथिवीतले ॥ ७६ ॥

कङ्कजम्बूकमण्डूकवृक्षकभोगिनः । रासभोष्ट्रविडालाःस्युःकरस्थादुःखदाःस्त्रियाः
शुभदः सरलोऽङ्गुष्ठो वृत्तो वृत्तनखो मृदुः ॥ ८१

अङ्गुल्यश्चसुपर्वाणोदीर्घावृत्ताःकमात्कृशाः चिपिटाःस्थपुटाकृष्णाःपृष्ठरोमयुजोऽशुभाः
वतिहस्वाः कृशावकाविरलारोगहेतुकाः । दुःखायाङ्गुलयः स्त्रीणां बहुपर्वसमन्विताः
अरुणाः सशिखास्तुङ्गाः करजाः सदृशांशुभाः ।

निम्ना विघर्णाः शुक्त्याभाः पीता दारिद्र्यदायकाः ॥ ८४ ॥

नखेषु बिन्दवः श्वेताः प्रायः स्युः स्वैरिणीस्त्रियाः ।

पुरुषा अपि जायन्ते दुःखिनः पुष्पितेनैखैः ॥ ८५ ॥

अन्तर्निम्नवंशास्थिः पृष्ठिः स्यान्मांसलाशुभा । पृष्ठेनरोमयुक्तेन वैधव्यं लभतेध्रुवम्
भुग्नेनचिनतेनापिभशिरेणापिदुःखिता । ऋज्वीकृकाटिकाश्रेष्ठासमांसावसमुन्नता
शुष्काशिरालारोमाढ्याविशालाकुटिलाशुभा । मांसलोवर्तुलःकण्ठःप्रशस्तश्चतुरङ्गुलः
शस्ता प्रीषा त्रिरेखाङ्गा त्वव्यक्ताऽस्थिःसुसंहता ।

निर्मांसा चिपिटा दीर्घा स्थपुटा न शुभप्रदा ॥ ८६ ॥

स्थूलप्रीषावविषवावकप्रीषावकिङ्करी । बन्ध्याहिचिपिटप्रीषावस्वप्रीषावचनिःसुता

चिबुकं द्वयङ्गुलं शस्तं वृत्तं पीनं सुकोमलम् । स्थूलं द्विधासं विभक्तमायतं रोमशं त्वजेत्
हनुश्चिबुकसंलग्ना निर्मासुघना शुभा । वकास्थूला कृशा ह्रस्वा रोमशा न शुभप्रदा

शस्तौ कपोलौ वामाश्याः पीनी वृत्तौ समुन्नतौ ।

रोमशौ परुषौ निम्नौ निर्मासौ परिवर्जयेत् ॥ ६३ ॥

समं समासं सुस्निग्धं स्वामोदं वर्तुलम् मुखम् ।

जनेतुषदनच्छायं धन्यानामिह जायते ॥ ६४ ॥

पाटलो वर्तुलः स्निग्धो लेखाभूषितमध्यभूः । सीमन्तिनीनामधरोधराजानिप्रियो भवेत्

कृशः प्रलम्बः स्फुटितो रूक्षो दीर्भाग्यसूचकः ।

श्यावः स्थूलोऽधरोष्ठः स्याद्द्वेधव्यकलहप्रदः ॥ ६६ ॥

मन्मूणो मत्तकाशिन्याश्चोत्तरोष्ठः सुभोगदः ।

किञ्चिन्मध्योन्नतोऽरोमा विपरीतो विरुद्धकृत् ॥ ६७ ॥

गोक्षीरसन्निभाः स्निग्धा द्वान्त्रिशदृशनाः शुभाः ।

अधस्तादुपरिष्ठाच्च समाः स्तोकसमुन्नताः ॥ ६८ ॥

पीताः श्यावाश्च दशनाः स्थूला दीर्घा द्विपङ्क्तयः ।

शुक्त्याकाराश्च विरला दुःखदीर्भाग्यकारणम् ॥ ६९ ॥

अधस्तादधिकैर्दन्तैर्मातरं भक्षयेत्स्फुटम् । पतिहीना च विकटैः कुलटाविरले भवेत्

जिह्वेष्टमिष्टभोक्त्री स्याच्छोणा मृद्धी तथासिता ।

दुःखाय मध्यसङ्कीर्णा पुरोभागसविस्तरा ॥ १०१ ॥

सितयातोयमरणं श्यामयाकलहप्रिया । दरिद्रिणी मासलयालम्बयाऽभक्ष्यभक्षिणी

विशालया रसनया प्रमदातिप्रमादमाक् । स्निग्धं कोकनदामासं प्रशस्तं तालुकोमलम्

सिते तालुनि वैधव्यं पीते प्रव्रजिता भवेत् ।

कृष्णेऽपत्यवियोगार्ता रूक्षे भूरि कुटुम्बिनी ॥ १०४ ॥

कण्ठे स्थूला सुवृत्ता च क्रमतीक्ष्णा सुलोहिता ।

अप्रलम्बा शुभा घण्टी स्थूला कृष्णा च दुःखदा ॥ १०५ ॥

अलक्षितद्विजं किञ्चित्किञ्चित्फुल्लकपोलकम् ।

स्मितं प्रशस्तं सुदृशामनिमीलितलोचनम् ॥ १०६ ॥

समवृत्तपुटानासा लघुच्छिद्रा शुभावहा । स्थूलाग्रामध्यनम्रा च तप्रशस्तासमुन्नता
आकुञ्चितारुणाप्रा च वैधव्यकलेशदायिनी ।

परप्रेष्या च चिपिट्टा ह्रस्वा दीर्घा कलिप्रिया ॥ १०८ ॥

दीर्घायुः कृत्क्षुतदीर्घं युगपद्द्वित्रिपिण्डितम् ।

ललनालोचने शस्ते रक्तान्ते कृष्णतारके ॥ १०९ ॥

गोक्षीरवर्णविशदे सुस्निग्धेकृष्णपद्मणी । उन्नताक्षी नदीर्घायुर्वृत्ताक्षीकुलटाभवेत्
मेवाक्षी महिषाक्षी च केकराक्षीनशोभना । कामगृहीलानितरां गोपिङ्गाक्षीसुदुर्वृता
पारावताक्षी दुःशीला रक्ताक्षी भर्तृघातिनी । कोटरानयनादुष्टा गजनेत्रा न शोभना
पुंक्षली वामकाणाक्षी बन्ध्या दक्षिणकाणिका ।

मधुपिङ्गाक्षी रमणी धनधान्यसमृद्धिभाक् ॥ ११३ ॥

पद्ममिः सुघनैः स्निग्धैः कृष्णैः सूक्ष्मैः सुभाग्यभाक् ।

कपिलैर्विरलैः स्थूलैर्निन्द्या भवति भामिनी ॥ ११४ ॥

भ्रुवौ सुवर्तुलेतन्व्याःस्निग्धेकृष्णे असंहते । प्रशस्तेमृदुरोमाणौ सुभ्रुवःकामुंकाकृती
खररोमा च पृथुला चिकीर्णा सरला स्त्रियाः ।

न भ्रुः प्रशस्ता मिलिता दीर्घरोमा च पिङ्गला ॥ ११६ ॥

लम्बौ कर्णौ शुभावर्तौ सुखदौ च शुभप्रदौ ।

शङ्कुलीरहितौ निन्द्यौ शिरालौ कुटिलौ कृशौ ॥ ११७ ॥

भालः शिराधिरहितो निर्लोमार्धन्दुसन्निभः ।

अनिन्नस्त्र्यङ्गुलो नार्याः सौभाग्यारोग्यकारणम् ॥ ११८ ॥

व्यक्तस्वस्तिकरेखञ्ज ललाटंराज्यसम्पदे । प्रलम्बम्मस्तकंयस्यादेधरंहन्तिसाधुष्वम्
रोमशेन शिरालेन प्रांशुनाऽरोगिणी मता ॥ १२० ॥

सीमन्तः सरलः शस्तो मौलिः शस्तः समुन्नतः ।

गजकुम्भनिभो वृत्तः सौभाग्यैश्वर्यसूचकः ॥ १२१ ॥

स्थूलमूर्धा च विधवा दीर्घशीर्षा च बन्धकी ।

विशालेनाऽपि शिरसा भवेद्द्वौभाग्यभाजनम् ॥ १२२ ॥

केशा भलिकुलच्छायाः सूक्ष्माः स्निघाः सुकोमलाः ।

किञ्चिदाकुञ्चिताप्राश्च कुटिलाश्चातिशोभनाः ॥ १२३ ॥

परुषाःस्फुटिताप्राश्च विरलाश्च शिरोरुहाः । पिङ्गलालघवोरुक्षादुःखदारिद्र्यबन्धदाः
भ्रूवोरन्तर्ललाटे वा मशकोराज्यसूचकः । वामेकपोलेमशकःशोणोमिट्टाजदःस्त्रियाः

तिलकं लाञ्छनं वापि हृदिसौभाग्यकारणम् ।

यस्या दक्षिणवक्षोजे शोणो तिलकलाञ्छने ॥ १२६ ॥

कन्याचतुष्टयं सूते सूतेसा च सुतत्रयम् । तिलकंलाञ्छनं शोणं यस्यावामेकुचेभवेत्
एकं पुत्रं प्रसूयादी ततः साविधवाभवेत् । गुह्यस्य दक्षिणे भागेतिलकंयदियोषितः
तदाक्षितिपतेः पत्नीसूतेवाक्षितिपं सुतम् । नासाग्रेमशकःशोणोमहिष्याएवजायते
कृष्णः स एव भर्तृघ्न्याः पुंश्चल्याश्च प्रकीर्तितः ।

नाभेरधस्तात्तिलकं मशको लाञ्छनं शुभम् ॥ १३० ॥

मशकस्तिलकं चिह्नं गुल्फदेशे दरिद्रकृत् । करे कर्णेकपोले वा कण्ठे वामेभवेद्यदि
एषां त्रयाणामेकं तुप्रागर्भे पुत्रदम्भवेत् । भालगेन त्रिशूलेन निर्मितेन स्वयम्भुषा
निनम्बिनी सहस्राणां स्वामित्वं योषिदाप्नुयात् ।

सुप्ता परस्परं यातु दन्तान् किटिकिटायते ॥ १३३ ॥

सुलक्ष्मापि न सा शस्ता या किञ्चित्प्रलपेत्तथा ।

पाणौप्रदक्षिणावर्त्तो धर्म्यो वामो न शोभनः ॥ १३४ ॥

नाभौ श्रुतावुरसि वादक्षिणावर्तईडितः । सुस्त्राय दक्षिणावर्तः पृष्ठवंशस्यदक्षिणे
अन्तःपृष्ठं नामिसमो वहायुः पुत्रवर्धनः । राजपत्न्याः प्रदृश्येत भगमीलीप्रदक्षिणः
सचेच्छकटभङ्गः स्याद्बहुपत्यसुखप्रदः । कटिगो गुह्यवेधेन पत्यपत्यनिपातनः
स्यातामुदरवेधेन पृष्ठावर्त्तो न शोभनौ । एकेन हन्ति भर्तारं भवेदन्येन पुंश्चली

कण्ठगो दक्षिणावर्तोदुःखधैष्यहेतुकः । सीमन्तेऽथललाटेवात्याज्योदूरात्प्रयत्नतः

सा पतिं हन्ति वर्षेण यस्या मध्ये कृकाटिकम् ।

प्रदक्षिणो वा वामो वा रोम्णामावर्त्तकः स्त्रियाः ॥ १४० ॥

एको वा मूर्धनि द्वौ वा वामे वामगती यदि ।

आदशाहस्पतिर्ग्री तौ त्याज्यौ दूरात्सुबुद्धिना ॥ १४१ ॥

कट्यावर्ता च कुलटा नाभ्यावर्ता पतिव्रता । पृष्ठावर्त्ता च भर्तृग्रीकुलटावाधजायते

स्कन्द उवाच

सुलक्षणाऽपि दुःशीला कुलक्षणशिरोमणिः ।

अलक्षणाऽपि सा साध्वी सर्वलक्षणभूस्तु सा ॥ १४३ ॥

सुलक्षणा सुचारित्रा स्वाधीना पतिदेवता । विश्वेशानुग्रहादेव गृहेयोषिदवाप्यते

अलङ्कृताःस्ववासिन्योयाभिःप्राक्तनजन्मनि नानाविधैरलङ्कारैस्ताःसुरूपाभवन्तिहि

सुतीर्थेषु वपुर्याभिः क्षयितं वा विहायितम् ।

ता लाघण्यतरङ्गिण्यो भवन्तीह सुलक्षणाः ॥ १४६ ॥

अर्चिता जगताम्माता याभिर्मृडवध्रिच ।

ता भवन्ति सुचारित्रा योषाः स्वाधीनभर्तृकाः ॥ १४७ ॥

स्वाधीनपतिकानाञ्च सुशीलानांमृगीदृशाम् । स्वर्गापवर्गावत्रैवसुलक्षणफलंहितत्

सुलक्षणैः सुचरितैरपि मन्दायुषस्पतिम् । दीर्घायुषप्रकुर्वन्ति प्रमदाःप्रमदास्पदम्

अतः सुलक्षणायोषापरिणेशाच्चक्षणैः । लक्षणानिपरीक्ष्यादीहित्वादुर्लक्षणान्यपि

लक्षणानिमयोक्तानि सुखाय गृहमेधिनाम् । विवाहानपिवक्ष्यामितन्निबोधघटोद्भव!

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे

स्त्रीलक्षणवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

सदाचारवर्णनेऽष्टविवाहवर्णनम्

स्कन्द उवाच

विवाहा ब्राह्मदैवार्वाः प्राजापत्यासुरीतथा । गान्धर्वोराक्षसश्चापि पेशाचोऽष्टमउच्यते
सब्राह्मोचरमाह्वययत्रकन्या स्वलङ्कृता । दीयते तत्सुतः पूयात् पुरुषानेकविंशतिम्
यज्ञस्थायत्विजैर्देवस्तज्जः पातिचतुर्दश । वरादादाय गोद्वन्द्वमार्पस्तज्जःपुनातिषट्
सहोमौचरतां धर्ममित्युक्त्वा दीयतेऽर्थिने ।

यत्र कन्या प्राजापत्यस्तज्जो वंशान्पुनाति षट् ॥ ४ ॥

चत्वार एते विप्राणां धर्म्याः पाणिग्रहाः स्मृताः ।

आसुरः क्रयणाद् द्रव्यैर्गान्धर्वोऽन्योन्यमैत्रतः ॥ ५ ॥

प्रसह्यकन्याहरणाद्राक्षसोनिन्दितःसताम् । छलेनकन्याहरणात्पेशाचोर्गर्हितोऽष्टमः
प्रायःक्षत्रविशोरुक्तागान्धर्वोसुरराक्षसाः । अष्टमस्त्वेषपापिष्टःपापिष्ठानाञ्चसम्भवेत्
सवर्णयाकरोप्राहो धार्यःक्षत्रिययाशरः । प्रतोदोवैश्ययाधार्योवासोन्तः पञ्जयातथा
असवर्णस्त्वेषविधिः स्मृतो द्रष्टव्यवेदने ।

मवर्णामिस्तु सर्वाभिः पाणिप्राहास्त्वयं विधिः ॥ ६ ॥

धर्म्यं विवाहैर्जायन्ते धर्म्या एव शतायुषः । अधर्म्यैर्धर्मरहिता मन्दभायधनायुषः ॥
ऋतुकालाभिगमनंधर्मोऽयंगृहिणः परः । स्त्रीणां वरमनुस्मृत्य यथाकाम्यथवाभवेत्
दिवाभिगमनंपुंसामनायुष्यं परं मतम् । श्राद्धाहःसर्वपवाणियत्नात्याजयानिर्धामता
तत्र गच्छन् स्त्रियं मोहाद्दर्मात्प्रच्यवनेपरात् ॥ १३ ॥

ऋतुकालाभिगामीयःस्वदारनिरतश्चयः । ससदाब्रह्मचारी च विज्ञेयः सहृष्टुहाश्रमी
ऋतुषोडशयामिन्यश्चतस्रस्तासु गर्हिताः ।

पुत्रास्तास्वपि या युग्मा अयुग्माः कन्यकाप्रजाः ॥ १५ ॥

त्यक्त्वा चन्द्रमसं दुःस्थं मघां पौष्णं विहाय च ।

शुचिःसन्निविशेत्पत्नीपुत्रामर्क्षे विशेषतः । शुचिं पुत्रं प्रसूयेत पुरुषार्थप्रसाधकम्
 आर्षेविवाहे गोद्वन्द्वं यदुक्तं तन्न शस्यते । शुलकमण्वपिकन्यायाः कन्याधिक्रयपापकृत्
 अपत्यविक्रयीकल्पवसेद्विद्वृकमिभोजने । अतोनाण्वपिकन्याया उपजीवेति पताधनम्
 स्त्रीधनान्युपजीवन्ति ये मोहादिह वान्धवाः । न केवलं निरयगास्तेषामपि हि पूर्वजाः
 पत्यानुप्यति यत्र स्त्री तुष्येद्यत्र स्त्रिया पतिः । तत्र तुष्टामहालक्ष्मीर्निवसेद्वानवारिणा
 षाणिज्यं नृपतेः सेवावेदानध्यापनं तथा । कुविवाहः क्रियालोपः कुले पतनहेतवः
 कुर्याद्वैवाहिके वह्नी गृह्यं कर्मान्वहं गृही । पञ्चयज्ञक्रियां चाऽपि पक्तिं दैनन्दिनीमपि
 गृहस्थाश्रमिणः पञ्चसूनाकर्म दिने दिने । कण्डनी पेवर्णीचुली ह्यदकुम्भस्तुमार्जनी
 तासां च पञ्चसूनानां निराकरणहेतवः । क्रतवः पञ्चनिर्दिष्टा गृहश्रेयोऽभिवर्धनाः
 पाठनं ब्रह्मयज्ञः स्यात्तर्पणञ्च पितृक्रतुः । होमोदैवो बलिर्भौतोऽतिथ्यर्चा नृक्रतुः क्रमात्
 पितृप्रीतिमप्रकुर्वाणः कुर्वीत श्राद्धमन्वहम् । अन्नोदकपयोमूलेः फलैर्वापि गृहाश्रमी
 गोदानेन च यत्पुण्यं पात्राय विधिपूर्वकम् ।

सकृत्य भिक्षवे भिक्षां दत्त्वा तत्फलमाप्नुयात् ॥ २७ ॥

तपोविद्यासमिद्धानिदुतं चिप्रास्यपाषके । तारयेद्विघ्नसङ्घेभ्यः पापाब्धेरपिदुस्तरात्
 अनर्चितोऽतिथिर्गोहाद्वग्नाशो यस्य गच्छति ।

आजन्मसञ्चितात्पुण्यात्क्षणात्स हि बहिर्भवेत् ॥ २८ ॥

सान्त्वपूर्वाणिवाक्यानिशुच्यार्थभूस्तृणोदके । एतान्यपि प्रदेयानिसदाऽभ्यागततृष्टये
 गृहस्थः परपाकादी प्रेत्य तत्पशुतां व्रजेत् । श्रेयः परान्नपुष्टस्य गृह्णीयादन्नदो यतः

आदित्योदोऽतिथिः सायं सत्कर्तव्यः प्रयत्नतः ।

असत्कृतोऽन्यतो गच्छन्दुष्कृतं भूरि यच्छति ॥ ३२ ॥

भुञ्जानोऽतिथिशोषान्नमिहायुर्धनभागमवेत् ।

प्राणोद्यातिथिमन्नाशी किल्बिषी च गृहाश्रमी ॥ ३३ ॥

वेश्वदेवान्तसम्प्राप्तः सूर्योदोवातिथिः स्मृतः । न पूर्वकालायातो न च दृष्टचरः क्वचित्

बलिपात्रकरेधिरे यद्यन्योतिथिरागतः । अदस्वातम्बलिं तस्मै यथाशक्त्यान्नमर्पयेत्
कुमाराश्च सुवासिन्यो गर्भिण्योऽतिरुजान्विताः ।

अतिथेरादितोप्येते भोज्या नाऽत्र विचारणा ॥ ३६ ॥

पितृदेवमनुष्येभ्योदस्वाऽश्रात्यमृतंगृही । स्वार्थम्पन्नघम्भुङ्क्तेकेवलंस्वोदरम्भरिः
माध्याह्निकं वैश्वदेवं गृहस्थः स्वयमाचरेत् ।

पत्नी सायम्बलिं दद्यात्सिद्धाक्षैर्मन्त्रघर्जितम् ॥ ३८ ॥

एतत्सायन्तननाम वैश्वदेवं गृहाश्रमे । सायम्प्रातर्भवेदेवं वैश्वदेवं प्रयत्नतः ॥ ३६ ॥
वैश्वदेवेन ये हीना आतिथ्येन विवर्जिताः । सर्वे ते वृषला ज्ञेयाःप्रातवेदाभपिद्विजाः
अकृत्वावैश्वदेवंतु भुञ्जते ये द्विजाधमाः । इहलोकेऽन्नहीनाःस्युःकाकयोनिव्रजन्त्यथ
वेदोदितंस्वकं कर्मनित्यं कुर्यादतन्द्रितः । तद्विकुर्वन्त्यथाशक्तिप्राप्नुयात्सद्गतिम्पराम्
षष्ठ्यष्टम्योर्वसेत्पापं तंले मासे सदैव हि । पञ्चदश्याञ्चतुर्दश्यां तथैव च भगे भुरे
उदयन्तं न चेक्षेत नास्तं यान्तं न मध्यगम् ।

न राहुणोपस्पृञ्च नाऽम्बुसंस्थं दिवाकरम् ॥ ४४ ॥

नवीक्षेतात्मनो रूपमाशुधावेन्नवर्षति । नोल्लङ्घयेद्भ्रतस्तन्त्रीं न नग्नो जलमाविशेत्
देवतायतनं विप्रं धेनुं मधुमृदं घृतम् । जातिवृद्धं वयोवृद्धं विद्यावृद्धं तपस्विनम्
अश्वत्थञ्चैत्यवृक्षञ्च गुरुं जलभृतं घटम् ।

सिद्धान्नन्दधिसिद्धार्थं गच्छन्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ४७ ॥

रजस्वलां न सेवेत नाश्रीयात्सह भार्यया । एकवासान भुञ्जीत न भुञ्जीतोत्कटासने
नाश्रन्तीं स्त्रीं समीक्षेत तेजस्कामो द्विजोत्तमः ।

असन्तर्प्यं पितृन्देवान्नाद्यादन्ननघं क्वचित् ॥ ४६ ॥

पक्वान्नञ्चापि नोमांसं दीर्घकालञ्जिजीविषुः । नमूत्रगोत्रजेकुर्यान्नवलमीकेनभस्मनि
न गर्त्तेषु ससस्त्रेषुनतिष्ठन्नत्रन्नपि । गोविप्रसूर्यवाप्वग्निचन्द्रार्क्षाऽम्बुगुरुनपि ॥
अभिपश्यन्नकुर्वीत मलमूत्रविसर्जनम् । तिरस्कृत्यावर्निलोष्टकाष्टपर्णतृणादिभिः
प्रावृत्य वाससा मौलिं मौनोचिण्मूत्रमुत्सृजेत् ।

यथासुखमुखो रात्रौ दिने छायाऽन्धकारयोः ॥ ५३ ॥

भीतिषु प्राणबाधायां कुर्यान्मलविसर्जनम् । मुखेनोपथमेन्नाग्निनग्नांनैक्षेनयोषितम्
नाङ्घ्री प्रतापयेदग्नौ न वस्त्वशुचि निक्षिपेत् ।

प्राणिहिसां न कुर्वीत नाश्रीयात्सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ ५५ ॥

न संविशेत् सन्ध्यायां प्रत्यक्सौम्यशिरा अपि ।

विष्मूत्रछीवननाप्सु कुर्याद्दीर्घं जिजीविषुः ॥ ५६ ॥

नाचक्षीत् धयन्तींगानेन्द्रचापं प्रदर्शयेत् । नैकःसुप्यात्कच्चिच्छन्येनशयानप्रथोधयेत्
पन्थाननैकलो यायान्नवार्यञ्जलिनापिवेत् । नदिषोद्भूतसारञ्च भक्षयेद्दधि नो निशि
स्त्रीधर्मिण्या नामिषदेशाद्यादानृत्तिरात्रिषु ।

तौर्यंत्रिकप्रियो न स्यात्कांस्ये पादौ न धावयेत् ॥ ५६ ॥

श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे योऽश्नीयाज्ज्ञानवर्जितः ।

दातुः श्राद्धफलंनस्ति भोक्ता किन्चिद्यभुग्भवेत् ॥ ६० ॥

न धारयेदन्यभुक्तवासश्चोपानहावपि । न भिन्नभाजनेऽश्नीयान्नासीताग्न्यादिदूषिते
आरोहणं गवां पृष्ठेप्रेतधर्मं सरित्तरम् । बालातपदिषा स्वापं त्यजेद्दीर्घजिजीविषुः
स्नात्वानमार्जयेद्रात्रं विसृजेन्न शिखांपथि । हस्तौशिशो न धुनुयान्नाकर्षेदासनम्पदा
नोत्पाटयेल्लोमनखं दशनेन कदाचन । करजैः करजच्छेदं तृणच्छेदं चिवर्जयेत्
शुभाय न यदायत्यां त्यजेत्तत्कर्मयत्नतः । अद्वारेण न गन्तव्यं स्ववेश्मपरवेश्मनोः
क्रीडेन्नाक्षैःसहासीत नधर्मघ्नेनरोगिभिः । नशयीत् क्वचिन्नग्नः पाणौ भुञ्जीत नैव च
भार्द्रपादकरास्योऽश्नन्दीर्घकालञ्चजीवति । संविशेन्नाद्रं चरणो नोच्छिष्टः क्वचिदाव्रजेत्
शयनस्थाने चाश्नीयान्नपिबेन्नजपेद्द्विजः । सोपानत्कञ्चनाचामेन्नतिष्ठन्धारया पिवेत्
सर्वं तिलमयंनान्धात्सायं शर्माभिलाषुकः ।

न निरीक्षेत् चिष्मूत्रे नोच्छिष्टः संस्पृशेच्छिरः ॥ ६६ ॥

नाधितिष्ठेत्तुषाङ्गारमस्मकेशकपालिकाः । पतितैः सह संघासः पतनायैव जायते
श्रावयेद्द्वैदिकं मन्त्रं नशूद्राय कदाचन । ब्राह्मण्याङ्गीयते विप्रः शूद्रो धर्माच्च हीयते

धर्मोपदेशःशूद्राणांस्वश्रेयः प्रतिघातयेत् । द्विजशुभ्रूषणं धर्मः शूद्राणां हि परो मतः
कण्डूयनंहिशिरसःपाणिभ्यां नशुभ्रममृतम् । आताडनकराभ्याञ्चक्रोशनंकेशलुञ्चनम्
अशास्त्रवर्तिनो भूपाल्लुब्धात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ।

ब्राह्मणः सान्त्वयो याति नरकानेकविंशतिम् ॥ ७५ ॥

अकालविद्युत्स्तनिते वर्षर्तौपांसुवर्षणे । महाघातध्वनौरात्रावनध्यायाः प्रकीर्तिताः
उल्कापातेषु भूकम्पेदिग्दाहेमध्यरात्रिषु । सन्ध्ययोर्वृषलोपान्ते रात्रोरहोश्च सूतके
दर्शाष्टकासुभूतायांश्चाद्विकम्प्रतिगृह्यन्व । प्रतिपद्यपिपूर्णायांगजोष्ट्राभ्यां कृतान्तरे
खरोष्ट्रकोष्टृचिरुते समवाये रुदत्यपि । उपाकर्मणि स्रोतसर्गे नाधिमार्गं तरौ जले
आरण्यकमधीत्यापिबाणसाम्नोरपिध्वनौ । अनध्यायेषुसंतेषुनाधीयीतद्विजः कश्चित्
कृतान्तरायोनपठेद्वेकाख्वाहिवभ्रमिभिः । भूताष्टम्योः पञ्चदशोर्ब्रह्मचारी सदा भवेत्
अनायुष्यकरञ्जवपरदारोपसर्पणम् । तस्मात्तद्दूरस्तस्याज्यं वैरिणाञ्चोपसेवनम्
पूर्वधिभिःपरित्यक्तमात्मानं नावमानयेत् । सद्योद्यमवनायस्मान्छिद्योविद्यानदुर्लभाः
सत्यम्ब्रयात्प्रियम्ब्रयात्प्रियात्सत्यमप्रियम् । प्रियञ्चानृतम्ब्रयादेष धर्मोघटोद्भवः
भद्रमेव घटेत्रित्यं भद्रमेव विचिन्तयेत् । भद्रंरेवेह संसर्गो नाभद्रंश्च कदाचन
रूपवित्तकुलैर्हीनान्सुधीनांधिक्षिपेत्रान् । पुष्पवन्तौनचेक्षेतवशुचिर्ज्योतिषाङ्गणम्
वाचोवेगं मनोवेगं जिह्वावेगं च घर्जयेत् । उत्कोचयूतदौत्यास्तद्द्रव्यं दूरात्परित्यजेत्
गोब्राह्मणानीनुच्छिष्टपाणिना नैव संस्पृशत् ।

न स्पृशेदनिमित्तेन खानि स्वानि त्वनातुरः ॥ ८७ ॥

गुह्यजान्यपिलोमानितत्स्पर्शाद्दशुचिर्भवेत् । पादधौतोदकंमूत्रमुच्छिष्टास्रोदकानिच
निष्टीवनञ्चश्लेष्माणंगृहाद्दूरंचिनिक्षिपेत् । अहर्निशभ्रतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणात्

अद्रोहवत्या बुद्ध्या च पूर्वञ्जन्म स्मरेद् द्विजः ॥ ८६ ॥

वृद्धानप्रयत्नाद्भन्देत्तदघातेषांस्वमासनम् । चिनम्रधमनिस्तस्मादनुयायात्ततश्च तान्
श्रुतिभूदेवदेवानांनृपसाधुतपस्विनाम् । पतिव्रतानानारीणानिन्दांकुर्यान्नकहिंश्चित्
नमनुष्यस्तुतिकुर्यान्नात्मानमपमानयेत् । अभ्युद्यतं न प्रणुदेत्परममार्गि नोच्चरेत्

अधमदिधतेपूर्वंबिद्वेष्टुनपिसञ्जयेत् । सर्वतोभद्रमाप्यापि ततो नश्येच्च सान्धव्यः
उद्धृत्य पञ्चमृत्पिण्डान्स्नायात्परजलाशये ।

अनुद्धृत्य च तत्कर्तुरेनसः स्यात्सूरीयभाक् ॥ ६४ ॥

श्रद्धयापात्रमासाद्यत्किञ्चिद्दीयतेषु । देशे काले च विधिना तदानन्त्याय कल्पते
भूप्रदोमण्डलाधीशः सर्वत्रसुखिनोऽन्नदाः । तोयदातासदातृत्तोरूपवान् रूप्यदो भवेत्
प्रदीपदो निर्मलाक्षो गोदाताऽयंमलोकभाक ।

स्वर्णदाता च दीर्घायुस्तिलदः स्यात्तु सुप्रजाः ॥ ६७ ॥

वेश्मदोऽत्युच्चमौधेशोवत्खदध्नद्रलोकभाक् । हयप्रदोदिव्ययानोलश्मीवान्वृषभप्रदः
सुभार्यः शिथिकादाता सुपर्यङ्कप्रदोऽपि च । धान्यैः समृद्धिमान्निन्वमभयप्रदर्शिता
ब्रह्मदोब्रह्मलोकैज्योब्रह्मदः सध्वदो मतः । उपायेनापि यो ब्रह्म दापयेत्सोऽपि तत्समः
श्रद्धया प्रतिगृह्णाति श्रद्धया यः प्रयच्छति ।

स्वर्गिणौ तावुभौ स्याता पततोऽश्रद्धयात्यधः ॥ १०१ ॥

अनृतेनक्षरेद्यज्ञस्तपोविस्मयतः क्षरेत् । क्षरेत्कर्तनतो दानमायुर्विप्रापवादतः
गन्धपुष्पकुशाञ्छुष्या शाकं मासम्पयोदधि ।

मणिमत्स्यगृहं धान्यं ग्राह्यमेतदुपस्थितम् ॥ १०३ ॥

मध्वर्कफलं मूलमेधास्यभयदक्षिणा । अभ्युद्यतानि ग्राह्याणि त्वेतान्यपि निकृष्टतः
दासनापितगोपालकुलमित्रार्थस्रीरिणः । भोज्यान्नाःशूद्रघर्णेऽर्मीतथात्मविनिवेदकः
इत्थमानृण्यमासाद्यदेवर्षिपितृजादृणात् । माध्यस्थ्यमाश्रयेद्गृहेसुतेविष्वग्घिसृज्यच्च
गृहेऽपि ज्ञानमभ्यस्येत्काशी वाथ समाश्रयेत् ।

सम्यग्ज्ञानेन वा मुक्तिः किंवा विश्वेशवेश्मनि ॥ १०७ ॥

सम्यग्ज्ञानम्भवेत्पुंसा कुतश्चक्रेनजन्मना । चाराणस्यां ध्रुवामुक्तिःशरीरत्यागमात्रतः
अद्यश्वोवापरश्वोवाकालाद्वाद्यपरःशतात् । सत्वरोगत्वरीदेहःकाश्याञ्च दमृतीभवेत्
साचवाराणसीलभ्यासदाचारवतासदा । मनसापि सदाचारमतो विद्वाञ्छ लङ्घयेत्
आकर्ष्येत्तिततोऽगस्त्यःपुनःप्राहपदाननम् । पुनः काशींसमाचक्ष्वसदाचारेण याप्यते

नानिकानिचलिङ्गानिस्कन्द!ज्ञानप्रदानिच । धाराणस्याम्परिब्रूहितानिमेपरिपृच्छतः
 विना काशींनमेप्रीतिर्विना काशींनमेरतिः । चित्रपुत्रकवच्चास्मि विनाकाशींषडानन!
 ननिद्रामिनजागर्मिनाश्चामिनपिबाम्यपः । काशीद्वयक्षरपीयूषं पिबामि हि चकेवलम्
 इति श्रुत्वा वचः स्कन्दो मैत्रावरुणिभाषितम् ।

अविमुक्तस्य माहात्म्यं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ११५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां सहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
 पूर्वार्धे सदाचारवर्णनंनानामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

अविमुक्तेशाविर्भाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

शृण्वगस्त्य महाभाग! कथाभ्यापप्रणाशिनीम् ।

नैःश्रेयस्याः श्रियोहेतुमविमुक्तसमाश्रयाम् ॥ १ ॥

परंब्रह्म यदान्नातं निष्प्रपञ्चंनिरात्मकम् । निर्विकल्पंनिराकारमव्यक्तं स्थूलसूक्ष्मवत्
 तदेतत्क्षेत्रमापूर्यस्थितंसर्वंगमप्यहो । किमन्यत्र नशक्तोऽसौजन्तून्मोक्षयितुम्भवात्
 भवो ध्रुवं यदत्रैवमोक्षयेत्तं निशामय । महत्या योगयुक्त्या वामहादानैरकामिकैः
 सुमहद्विस्तपोभिर्वाशिवोऽन्यत्रविमोक्षयेत् । योगयुक्तिनमहतीं नदानानिमहान्ति च
 न तपांस्यति दीर्घाणि काश्याम्मुत्तयैशिवोऽर्थयेत् ।

वियुनक्ति न यत्काश्या उपसर्गे महत्यपि ॥ ६ ॥

अयमेव महायोग उपयोगस्त्विहापरः । नियमेन तुषिर्वेशे पुष्पम्पत्रं फलं जलम्
 यद्वत्सुमनोवृत्त्या महादानं तदत्र वै । मुक्तिमण्डपिकायां च क्षणं यत्स्थिरमास्यते
 स्नात्वागङ्गामृते शुद्धेतपत्तदिहोत्तमम् । सत्कृत्यभिक्षवेभिक्षायत्काश्याम्परिदीयते

तुलापुरुष एतस्याः कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ६ ॥

हृदि सञ्चिन्त्यविश्वेशंक्षणंयद्विनिमीलयते । देवस्यदक्षिणे भागे महायोगोऽयमुत्तमः
इदमेवतपोऽत्युग्रंयद्विन्द्रियविलोलताम् । निषिध्यस्थीयतेकाश्यांक्षत्तापाद्यवमन्यच
मासि मासि यदाप्येत व्रताच्चान्द्रायणात्फलम् ।

अन्यत्र तदिहाप्येत भूतायां नक्तभोजनात् ॥ १२ ॥

मासोपवासादन्यत्र यत्फलंसमुपाज्यते । श्रद्धयैकोपवासेनतत्काश्यांस्यादसंशयम्
चानुर्मास्यव्रतात्प्रोक्यदन्यत्रमहाफलम् । एकादश्युपवासेनतत्काश्यांस्यादसंशयम्
षण्मासान्परित्यागाद्यदन्यत्रफलंलभेत् । शिवरात्र्युपवासेनतत्काश्याञ्जायते ध्रुवम्
वर्षंकृत्वोपवासानिलभेदन्यत्र यद्व्रती । तत्फलं स्यात्त्रिरात्रेणकाश्यामविकलं मुने
मासि मासि कुशाग्राम्बुपानादन्यत्रयत्फलम् । काश्यामुत्तरवाहिन्यामेकेनघुकेनतत्
अनन्तो महिमा काश्याः कस्तं वर्षयितुमप्रभुः ।

विपत्तिमिच्छतो जन्तोर्यत्रकर्णेजपः शिवः ॥ १८ ॥

शम्भुस्तत्किञ्चिदाद्यष्टे म्रियमाणस्य जन्मिनः ।

कर्णेऽक्षरं यदाकर्ण्यं मृतोऽप्यमृततां व्रजेत् ॥ १९ ॥

स्मारं स्मारं स्मररिपोःपुरींत्वमिषशङ्करः । अदुनोन्मन्दरं यातो बहुशस्तदवाप्तये
अगस्त्य उवाच

स्वकार्यनिपुणैः स्वामिन्! गीर्वाणैरतिदारुणैः ।

त्याजितोऽहम्युरीकाशीं हरोऽत्याक्षीत्कुतः प्रभुः ॥ २१ ॥

पराधीनोऽहमिष किं देवदेवः पिनाकवान् ।

काशिकां सोऽत्यजत्कस्मान्निषाणमणिराशिकाम् ॥ २२ ॥

स्कन्द उवाच

मित्रावरुणसम्भूत! कथयामि कथामिमाम् ।

तत्याज च यथा स्थाणुः काशीं विदुष्युपरोधतः ॥ २३ ॥

प्रार्थितस्त्वं यथा लेखैः परोपकृतये मुने !। दुहिणेन तथा रुद्रः स्वरक्षणचिचक्षणः

अगस्त्य उवाच

कथं स भगवान् रुद्रोद्गृहिणेन कृपाम्बुधिः । प्रार्थितोऽभूत्कमर्थञ्च तन्मे ब्रूहि षडानन
स्कन्द उवाच

पात्रेकल्पेपुरा वृत्तेमनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे । अनावृष्टिरभूद्विप्र सर्वभूतप्रकरिणी ॥
तयातुषष्टिहायिन्यापीडिताः प्राणिनोऽखिलाः । केचिदम्बुधितीरेषु गिरिद्रोणीषु केचन
महानिम्नेषु कच्छेषु मुनिवृत्त्याजनाः स्थिताः । अरण्यान्यवनिर्जाताः प्राणसर्वटवर्जिता
क्रव्यादा एव सर्वेषु नगरेषु पुरेषु च । आसन्नभ्रंलिहोवृक्षाः सर्वत्र क्षोणिमण्डले
शौराएव महाशौरैरुल्लुठ्यन्त इतस्ततः । मांसवृत्स्योपजीवन्ति प्राणिनः प्राणरक्षिणः
अराजके समुत्पन्ने लोकेऽत्याहितशंसिनि । प्रयत्नो विफलस्तत्वासीत्सृष्टेः सृष्टिकृतस्तदा
चिन्तामवाप महतीं जगद्योनिः प्रजाक्षयात् ।

प्रजासु क्षीयमाणासु क्षीणा यद्वादिकाः क्रियाः ॥ ३२ ॥

तासु क्षीणासु संक्षीणाः सर्वे यद्भुजोऽभवन् । ततश्चिन्तयता रुद्रा दृष्टो राजर्षिसत्तमः
अचिमुक्ते महाक्षेत्रे तपस्यन्निश्चलेन्द्रियः । मनोरन्वयजो धीरः क्षात्रो धर्म इवोदितः
रिपुञ्जय इति कथातो राजा परपुरञ्जयः । अथ ब्रह्मा तमासाद्य बहुगौरवपूर्वकम्
उवाच वचनं राजन् रिपुञ्जय महामते ! इलां पालय भूपाल! ससमुद्राद्रिकाननाम्
नागकन्यां नागराजः पत्न्यर्थं ते प्रदास्यति ।

अनङ्गमोहिनीं नाम्ना वासुकिः शीलभूषणाम् ॥ ३७ ॥

दिवोपि देवा दास्यन्ति रत्नानि कुसुमानि च । प्रजापालनसन्तुष्टा महाराजप्रतिक्षणम्
दिवोदास इति ख्यातमतो नाम त्वमाप्स्यसि । मत्प्रभावाच्च नृपते दिव्यं सामर्थ्यमस्तु ते
परमेष्ठिवचः श्रुत्वा ततोऽसौराजसत्तमः । वेधसं बहुशः स्तुत्वा वाक्यं चेदमुवाच ह
राजोवाच

पितामहमहाप्राह! जनाकीर्णं महीतले । कथं नान्ये च राजानो मां कथं कथ्यते त्वया
ब्रह्मोवाच

त्वयिराज्यं प्रकुर्वाणे देवो वृष्टिचिधास्यति । पापनिष्ठेष्वैराङ्घ्रिं न देवो वर्धते पुनः

राजोवाच

पितामहमहामान्य! त्रिलोकीकरणक्षम !। महाप्रसाद इत्याज्ञां त्वदीयां मूढ्युपाददे
किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोऽहं तन्मदर्थकरोविचेत् । ततःकरोम्यहं राज्यं पृथिव्यामसपत्नवत्

ब्रह्मोवाच

अविलम्बेन तद्ब्रूहि कृतं मन्यस्व पार्थिव !। यत्सेहृदि महाबाहो तवादेयं किञ्चन

राजोवाच

यद्यहंपृथिवीनाथः सर्वलोकपितामह !। तदा दिविषदो देवा दिवि तिष्ठन्तु मा भुवि
देवेषु दिवितिष्ठत्सु मयितिष्ठति भूतले । असपत्नेन राज्येन प्रजासौख्यमेषाप्स्यति
तथेतिष्विष्वत्प्रोक्तो दिवोदासो नरेश्वरः । पटहंघोपयाञ्चके दिवदेवा ब्रजन्त्विति

मागच्छन्त्वह वै नागा नराः स्वस्था भवन्त्वितः ।

मयि प्रशासति क्षोणीं सुराः स्वस्था भवन्त्विति ॥ ४६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्माविश्वेशमणिपत्यह । यावद्विज्ञप्तुकामोऽभूत्तावदीशोऽब्रवीद्विधिम्
लोकेश्वरसमायाहि मन्दरो नाम भूधरः । कुशद्वीपादिहागत्य तपस्तप्येत दुष्करम्
यावत्सस्मै वरं दातुं बहुकालं तपस्यते । इत्युक्त्वा पार्वतीनाथो नन्दिभृङ्गिपुरोगमः
जमाम वृषमारुह्य मन्दरो यत्र तिष्ठति । उवाच च प्रसन्नात्मा देवदेवो वृषध्वजः
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते वरम्ब्रूहि धरोत्तम !। सोऽथ श्रुत्वामहेशानं देवदेवं त्रिलोचनम्
प्रणम्य बहुशो भूमावद्विरेत द्वयजिह्वपत् । लीलाविप्रहभृच्छम्भो प्रणतैककृपानिधे!
सर्वज्ञोऽपि कथं नाम न वेत्थ मम वाञ्छितम् । शरणागतसन्त्राणसर्ववृत्तान्तकोविद!
सर्वेषां हृदयानन्द! शर्वसर्वगसर्वकृत् । यदि देवो वरो मह्यं स्वभावाद् दूषदात्मने ॥

याचकायाऽतिशोच्याय प्रणतार्त्तिप्रभञ्जक !।

ततोऽचिमुक्तक्षेत्रस्य साम्यं ह्यभिलषाम्यहम् ॥ ५८ ॥

कुशद्वीपउमासाधं नाथाद्यसपरिच्छदः । मन्मौलौ विहितावासः प्रयात्वेप वरोमम
सर्वेषां सर्वदः शम्भुः क्षणं यावद्विचिन्तयेत् ।

विज्ञातावसरो ब्रह्मा तावच्छम्भुं व्यजिह्वपत् ।

प्रणम्याऽप्रेसरो भूत्वा मौलौ बद्धकरद्वयः ॥ ६० ॥

ब्रह्मोवाच

विश्वेश जगता नाथ! पत्या व्यापारितोऽस्म्यहम् ।

कृतप्रसादेन विभो! सृष्टिं कर्तुं चतुर्विधाम् ॥ ६१ ॥

प्रयत्नेन मयासृष्टा सासृष्टिस्त्वदनुज्ञया । अवृष्ट्यापष्टिहायिन्या तत्रनष्टाऽप्रजाभुवि
अराजकं महश्चासीद् दुरवस्थमभुञ्जगत् । ततो रिपुञ्जयो नाम राजपिर्मनुचंशजः
मयाभिपिकोराजर्षिःप्रजाः पातुं नरेभ्यः । चकारसमर्थसोऽपि महावीर्यो महातपाः

तथाऽऽज्ञया चेत्स्थास्यन्ति सर्वे दिक्षिपदो दिक्षि ।

नागलोके तथा नागास्ततो राज्यं करोम्यहम् ॥ ६५ ॥

तथेति च मया प्रोक्तं प्रमाणीक्रियतां तु तत् ।

मन्दराय धरो दत्तो भवेदेवं कृपानिधे ! ॥ ६६ ॥

तस्य राजः प्रजाह्वातुभूयाञ्छ्वेप मनोरथः । ममनाडीद्वयराज्यंतस्यापिच शतक्रतोः
मर्त्यानागणनाकवेहनिमेषार्धनिमेषिणाम् । देवोऽपिनिर्गलं मत्त्वामन्दरंछाहकन्दरम्
विधेश्चगौरवंगक्षंस्तथोरीकृतवान्हरः । जम्बूद्वीपे यथा काशी निर्वाणपद्दासदा
तथा बहुतिथं कालं द्वीपोभूत्सोऽपि मन्दरः । यियासुनाघदेवेन मन्दरंछित्रकन्दरम्
निजमूर्त्तिमयंलिङ्गमविज्ञातं विधेरपि । स्थापितसर्वसिद्धीनांस्थापकेभ्यःसमर्पितुम्
चिपन्नानाञ्चजन्तूजांदातुनैःश्रेयसीश्रियम् । सर्वेगामिहसंस्थानांक्षेत्रंशैवाभिरक्षितुम्
मन्दराद्रिगतेनापि क्षेत्रंनेतत्पिनाकिना । चिमुक्तंलिङ्गरूपेण अविमुक्तमतः स्मृतम्
पुराऽऽनन्दचनंनामक्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम् । अविमुक्तं तदारभ्यनामाऽस्य प्रथितम्भुवि
नामाविमुक्तमभवदुभयोः क्षेत्रलिङ्गयोः । एतद् द्वयंसमासाद्य न भूयो गर्भभागभवेत्
अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं द्रष्टृक्षेत्रेऽविमुक्तके । विमुक्त एव भवतिसर्वस्मात्कर्मबन्धनात्

अचन्ति विश्वे विश्वेश विश्वेशोऽर्षति विश्वकृत् ।

अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं भुविमुक्तिप्रदायकम् ॥ ७७ ॥

पुरा न स्थापितं लिङ्गं कस्यचित्कैलधित्कवित् ।

किमाकृति भवेल्लिङ्गं नैतद्वेस्यपि कश्चन ॥ ७८ ॥

आकारमविमुक्तस्य दृष्टाब्रह्मच्युतादयः । लिङ्गं संस्थापयामासुर्बसिष्ठाद्यास्तथर्षयः
आदिलिङ्गमिदं प्रोक्तमविमुक्तेश्वरम्महत् । ततो लिङ्गान्तरारण्यत्रजातानिक्षितिमण्डले
अविमुक्तेशानामाऽपि श्रुत्वा जन्मार्जितादघात् ।

क्षणान्मुक्तो भवेन्मर्त्यो नात्र कार्या चिन्धारणा ॥ ८१ ॥

अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं स्मृत्वा दूरगतोऽपि च । जन्मद्वयकृतात्पापात्क्षणादेव चिमुच्यते
अविमुक्तं महाक्षेत्रेऽविमुक्तमवलोक्य च । त्रिजन्मजनित पापं हित्वा पुण्यमयो भवेत्
यत्कृतं ज्ञानविभ्रंशादेनः पञ्चजन्मसु । अविमुक्तेशसंस्पर्शात्तत्क्षये देव नाऽन्यथा
अर्चयित्वा महालिङ्गमविमुक्तेश्वरं नरः । कृतकृत्यो भवेदत्र न च स्याज्जन्मभावकुतः
स्तुत्वा नत्वाऽर्चयित्वा च यथाशक्ति यथामति ।

अविमुक्ते विमुक्तेशं स्तूयते नम्यतेऽर्च्यते ॥ ८६ ॥

अनादिमदिदं लिङ्गं स्वयं विश्वेश्वरार्चितम् । काश्यामप्रयत्नतः सेव्यमविमुक्तं विमुक्तये
सन्ति लिङ्गान्यनेकानि पुण्येष्वायतनेषु च ।

आयान्ति तानिलिङ्गानि मार्गं प्राप्य चतुर्दशीम् ॥ ८८ ॥

कृष्णायां माघभूतायामविमुक्तेशजागरात् ।

सदाचिगतनिद्रस्य योगिनो गतिभाग भवेत् ॥ ८९ ॥

नानायतनलिङ्गानि चतुर्वर्गप्रदान्यपि । माघकृष्णचतुर्दश्यामविमुक्तमुपासते ॥ ९०
किञ्चिमेति नरोधीरः कृतादधशिलोच्चयात् । अविमुक्तेशलिङ्गस्य भक्तिवज्रभरोयदि
काविमुक्तं महालिङ्गं चतुर्वर्गफलोदयम् ।

क्व पापिपापशैलोऽल्पो यः क्षयेन्नान्नि संस्मृते ॥ ९२ ॥

अविमुक्तं महाक्षेत्रे विश्वेशसमधिष्ठिते । यैर्न द्रष्टुं विमूढास्तेऽविमुक्तं लिङ्गमुत्तमम्
द्रष्टारमविमुक्तस्य दृष्टादण्डधरो यमः । दूरादेव प्रणमतिप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ९४ ॥
धन्यतन्नेत्रनिर्माणं कृतकृत्यौ तु तौ करौ । अविमुक्तेश्वर्येन यान्यामैक्षिष्यः स्पृशेत्
त्रिसन्ध्यमविमुक्तेशं योजयेन्नियतः शुचिः । दूरदेशविपन्नोऽपि काशीमृतफलं लभेत्

अविमुक्तं महालिङ्गं दृष्ट्वा प्रामान्तरं व्रजेत् । लब्ध्वाऽऽशुकार्यं संसिद्धिक्षेमेण प्रविशेद्गृहम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे-
पूर्वार्धेऽविमुक्तेशाचिर्भाववर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

गृहस्थधर्मवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अविमुक्तेशमाहात्म्यं वर्णितं तेऽप्रतो मया । अथो किमसि शुश्रुः कथयिष्यामि तत्पुनः
अगस्त्य उवाच

अविमुक्तेशमाहात्म्यं श्रावं श्रावं श्रुतीमम । अतीव सुश्रुते जाते तथापि न धिनोम्यहम्
अविमुक्तेभ्वरं लिङ्गं क्षेत्रं चाप्यविमुक्तकम् । एतयोस्तु कथं प्राप्तिर्भवेत्पण्डित तद्वद
स्कन्द उवाच

ऋणु कुम्भज! वक्ष्यामि यथा प्राप्तिर्भवेदिह । स्वश्रेयो दातुरेतस्याविमुक्तस्य महामते
समीहितार्थं संसिद्धिर्लभ्यते पुण्यभारतः । तच्च पुण्यम् भवेद्विप्र! श्रुतिवर्त्मं सभाजनात्
श्रुतिवर्त्मं ज्ञुः पुंसः संस्पर्शात्प्रश्रयतो मुने । कलिकालावपि सदा छिद्रं प्राप्य जिघांसतः
वर्जितस्य विधानेन प्रोक्तस्याकरणेन च । कलिकालावपि हतो ब्राह्मणं रन्ध्रदर्शनात्
विपिद्धाच्चरणं तस्मात्कथयिष्ये तवाप्रतः । तद्गुरतः परित्यज्य नरो न निरयी भवेत्
पलाण्डुं विड्वराहञ्च शेलुं लशुनगृञ्जने । गोपीयूषं तण्डुलीयं वज्र्यञ्च कवकं सदा
व्रश्चनान् वृक्षनिर्यासान् पायसापूपशङ्कुलीः । अदेवपित्र्यं पल्लमवत्सागोपयस्त्यजेत्
पय ऐकशफं हेयं तथा क्रामेलकाविकम् ।

रात्रौ न दधि भोक्तव्यं दिवा न नघनीतकम् ॥ ११ ॥

टिट्टिमं कलचिङ्कुञ्च हंसं चक्रं प्लवम्बकम् ।

त्यजैन्मांसाशिलः सर्वाङ् सारसं कुक्कुटं शुक्रम् ॥ १२ ॥

जालपादान्खञ्जरीटान् बुद्धित्वा मत्स्यमक्षकान् ।

मत्स्याशी सर्वमांसाशी तन्मत्स्यान् सर्वथा त्यजेत् ॥ १३ ॥

हृष्यकव्यानि युक्तौ तु भक्ष्यौ पाठीनरोहितौ ।

मांसाशिमिस्त्वमी भक्ष्याः शशशल्लकच्छपाः ॥ १४ ॥

श्वविद्रोधे प्रशस्ते च ज्ञाताश्च मृगपक्षिणः ।

आयुष्कामैः स्वर्गकामैस्त्याज्यं मांसप्रयत्नतः ॥ १५ ॥

यज्ञार्थं पशुहिंसाया म्मास्वर्ग्यानेतराकञ्चित् । त्यजेत्पयुषितं सर्वमखण्डस्नेहवर्जितम्
प्राणान्त्ययेक्रनौश्राद्धेभेषजेविप्रकाम्यया । अलौक्यमित्थं पल्लभभक्ष्यञ्चैव दोषभाक्
न ताद्रुशम्भवेत्पाप मृगयावृत्तिकाङ्क्षिणः ।

याद्रुशम्भवति प्रेत्य लील्यान्मांसोपसेचिनः ॥ १८ ॥

मन्त्रार्थम्ब्रह्मणा सृष्टाःपशुद्रुममृगौषधीः । निम्नग्रहिंसको विप्रमन्तासामपि शुभागतिः
पितृदेवक्रतुकृते मधुपर्कार्थमेव च । तत्र हिंसाप्यहिंसा स्याद्विसान्यत्र सुदुस्तरा
योजन्तान्मपुष्टार्थं हिनस्तिज्ञानवर्लः । दुराखारस्यतस्येहनामुत्रापि सुखं कञ्चित्
भोक्ताऽनुमन्ता संस्कर्ता क्रयिविक्रयिहिंसकाः ।

उपहर्ता घातयिता हिंसकाश्चाऽष्टधा स्मृताः ॥ २२ ॥

प्रत्यब्दम्भवेधेन शतवर्षाणि यो यजेत् । अमांसभक्षको यश्च तयोरन्व्योविशिष्यते
यथैवात्मापरस्तद्बुद्धद्रष्टव्यः सुखमिच्छता । सुखदुःखानितुल्यानि यथात्मनि तथापरे
सुखंवायदिवाचान्यद्यत्किञ्चित्क्रियतेपरे । तत्कृतंहिपुनःपश्चात्सर्वमात्मनिसम्भवेत्
नकलेशेनचिनाद्रव्यमर्थहीनेःकुतःक्रियाः । क्रियाहीने कुतो धर्मो धर्महीने कुतःसुखम्
सुखंहिस्वर्षराकाङ्क्ष्यं तच्च धर्मसमुद्भवम् । तस्माद्दमोऽत्र कर्तव्यश्चातुर्वर्ण्येन यत्नतः
न्यायागतेनद्रव्येणकर्तव्यम्पारलौकिकम् । दानञ्च विधिना देयंकाले पात्रे च भावतः
विधिहीनन्तयाऽपात्रे यो ददातिप्रतिग्रहम् । नकेषलंहितद्यातिशेषं तस्य च नश्यति
व्यसनार्थं कुटुम्बार्थं यद्गुणार्थं च दीयते । तदक्षयंभवेदत्र परत्रच न संशयः

मातापित्रिचिहीनं यो मौञ्जीपाणिप्रहादिभिः ।

संस्कारयेन्निरर्थस्तस्य श्रेयस्त्वन्नन्तकम् ॥ ३१ ॥

अग्निहोत्रेनतच्छ्रेयोनाग्निष्टोमादिभिर्मखैः । यच्छ्रेयः प्राप्यते मर्त्यैर्द्विजैश्चैकेप्रतिष्ठिते

यो ह्यनाथस्य विप्रस्य पाणिं ग्राहयते कृती ।

इह सौख्यमवाप्नोति सोऽक्षयं स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥

पितृगेहे तु या कन्या रजःपश्येदसंस्कृता । भ्रूणहाततिपात्रेयो वृषलीसापिकन्यका

यस्तां परिणयेन्मोहात्सभवेद्ब्रुवलीपतिः । तेन सम्भाषणंत्याज्यमापङ्क्तयेनसर्वदा

विज्ञायदोपमुभयोः कन्यायाश्चवरस्यश्च । सम्बन्धंरघयेत्पश्चादन्यथादोपभाक्पिता

स्त्रियःपवित्राः सततं नेता दुष्यन्ति केनचित् ।

मासि मासि रजस्तासा दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ ३७ ॥

पूर्वस्त्रियः सुरैर्भुक्ताःसोमगन्धर्ववह्निभिः । भुञ्जतेमानुषाःपश्चात्त्रैतादुष्यन्तिकेनचित्

स्त्रीणां शौचं ददौ सोमः पावकः सर्वमेध्यताम् ।

कल्याणवाणी गन्धर्वास्तेन मेध्याः सदा स्त्रियः ॥ ३६ ॥

कन्याम्भुङ्क्तेरजःकालेऽग्निःशशीलोमदर्शने । स्तनोद्भेदेपुगन्धर्वास्तत्रागोवप्रदीयते

दृश्यरोमा त्वपत्यग्नी कुलघ्न्युद्गतथीचना ।

पितृघ्न्याविष्कृतरजास्ततस्ताः परिवर्जयेत् ॥ ४१ ॥

कन्यादानफलप्रेप्सुस्तस्माद्दद्यादनग्निकाम् । अन्यथा न फलंदातुः प्रतिग्राहीपतेदधः

कन्यामभुक्ता सोमाद्येर्दद्वानफलंमेत् । देवभुक्तादद्वदाता न स्वर्गमधिगच्छति ॥

शयनाशनयानानिकुणपंखीमुखं कुशाः । यज्ञपात्राणिसर्वाणिन दुष्यन्तिबुधाकश्चित्

वत्सः प्रस्त्रवणेमेध्यः शकुनिःफलपातने । नाथौरतिप्रयोगेषु भ्वामृगप्रहणे शुचिः ॥

अजाश्वयोर्मुखाम्मेध्यं गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः ।

पादतो ब्राह्मणामेध्याः स्त्रियामेध्यास्तु सर्वतः ॥ ४६ ॥

बलात्कारोपभुक्ता वा क्षोरहस्तगह्वापि वा ।

न त्याज्या दयिता नारी नास्यास्तकामो जिभीबले ॥ ४७ ॥

अम्लेन ताम्रशुद्धिः स्याच्छुद्धिः कांस्यस्य भस्मना ।

संशुद्धीरजसा नार्यास्तटिन्या वेगतः शुचिः ॥ ४८ ॥

मनसाऽपि हि या नेह चिन्तयेत्पुरुषान्तरम् ।

सोमया सह सौख्यानि भुङ्क्ते चात्राऽपि कीर्तिभाक् ॥ ४९ ॥

पितापितामहोभ्रातासकुल्योजननीतथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः

अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्या मृतावृत्तौ ।

स्वयं त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात्स्वयं धरम् ॥ ५१ ॥

हृताधिकारं मलिना पिण्डमात्रोपजीविनीम् ।

परिभूतामधः शय्यां वासयेद् व्यभिचारिणीम् ॥ ५२ ॥

व्यभिचारादृत्तौ शुद्धिर्गर्भेत्यागो विधीयते । गर्भभर्तृवधादौ तु महत्यपि च कल्मषे

शूद्रस्य भार्या शूद्रैव सा च स्वा च विशः स्मृतेः ।

ने च स्वा वैव राजस्तु ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥ ५४ ॥

आरोप्य शूद्राशयने चिप्रोगच्छेदधोगतिम् । उत्पाद्यपुत्रंशूद्रायां ब्राह्मण्यादेव हीयते

दैवपित्र्यातिथे यानि तत्प्रधानानि यस्य तु ।

देवाद्यास्तत्र चाश्नन्ति स च स्वर्गं न गच्छति ॥ ५६ ॥

जामयो यानिगेहानिशपन्त्यप्रतिपूजिताः । कृत्याभिर्निहतानीघनश्येयुस्तान्यसंशयम्

तदभ्यर्च्यः सुवासिन्यो भूषणाच्छादनाशनैः । भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च

यत्र नार्यः प्रमुदिता भूषणाच्छादनाशनैः । रमन्ते देवतास्तत्रस्युस्तत्रसफलाः क्रियाः

यत्र तुष्यति भर्त्रा स्त्री स्त्रिया भर्ता च तुष्यति ।

तत्र वेश्मनि कल्याणं सम्पद्येत पदे पदे ॥ ६० ॥

अहुतञ्च हुतञ्चैव प्रहुतम्प्राशितं तथा । ब्राह्मं हुतम्पञ्चमं च पञ्चयज्ञा इमे शुभाः ॥

जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ।

प्राशितम्पितृसंतृप्तिर्हुतं ब्राह्मं द्विजार्चनम् ॥ ६२ ॥

पञ्चयज्ञानिमान् कुर्वन् ब्राह्मणो नावसीदति । एतेषामननुष्ठानात्पञ्चसूना अवाप्नुयात्

ब्राह्मणं कुशलम्पृच्छेद् बाहुजातमनामयम् । वैश्यं सुखं समागम्य शूद्रं सन्तोषमेव च
जातमात्रः शिशुस्त्वावघावदष्टौ समाः स्मृताः ।

भक्ष्यामक्ष्येषु नो दुष्येद्यावन्नैषोपनीयते ॥ ६५ ॥

भरणम्पोष्यवर्गस्य दृष्टाद्दृष्टफलोदयम् । प्रत्यघायो ह्यभरणे भर्तव्यस्तत्प्रयत्नतः
माता पिता गुरुः पत्नी त्वपत्यानि समाश्रिताः ।

अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्गा अमी नव ॥ ६७ ॥

सजीवतिपुमान्योऽत्रबहुभिश्चोपजीव्यते । जीवन्मृतोऽथविज्ञेय पुरुषःस्वोदरम्भरिः
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यम्भूतिकाम्यया । अदत्तदाना जायन्तेपरभाग्योपजीविनः
विभागशीलसंयुक्तोदयावाश्चभ्रमायुतः । देवतातिथिभक्तस्तुगृहस्थोधार्मिकःस्मृतः
शर्वरीमध्ययामौ यौ हुतशेषञ्च यद्विचिः । तत्र स्वपस्तदन्नं च ब्राह्मणो नावसीदति
नवतानि गृहस्थस्य कार्याण्यभ्यागने सदा ।

सुधाव्ययानि यत्सौम्यं वाक्पञ्चक्षर्मनोमुखम् ॥ ७२ ॥

अभ्युत्थानमिहायातसन्नेहम्पूर्वभाषणम् । उपासनमनुब्रज्या गृहस्थोऽतिहेतवे
तथेयद्वन्वययुक्तानिकार्याण्येतानि च नव । आसनम्पादशौचञ्चयथाशक्त्याशनक्षितिः
शय्यातृणजलाम्बुद्गदीपागार्हस्थ्यसिद्धिदाः ।

तथा नव विकर्माणि त्याज्यानि गृहमेधिनम् ॥ ७५ ॥

पैशून्यम्परदारश्चद्रोहः क्रोधानृताप्रियम् । द्वेषोदम्भश्चमायाश्चस्वर्गमार्गार्गलानि हि
नवावश्यककर्माणि कार्याणि प्रतिवासरम् ।

स्नानं सन्ध्या जपोहोमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ॥ ७७ ॥

वेभ्वदेवंतथाऽऽतिथ्यं नवमं पितृनर्पणम् । नव गोप्यानि यान्यत्रमुने तानि निशामय
जन्मक्षमैथुनं मन्त्रो गृहच्छिद्रञ्च वञ्चनम् । आयुर्धनापमानंस्त्री न प्रकाश्यानि सर्वथा
नवैतानिप्रकाश्यानि रहः पापमकुन्तिसतम् । प्रायोग्यमृणशुद्धिश्चसान्वयःक्रयविक्रयौ
कन्यादानं गुणोत्कर्षो नान्यत्केनापि कुत्रचित् ॥ ८० ॥

पात्रमित्रविनीतेषु दीनानाथोपकारिषु । मातापितृगुरुष्वेतन्नवकं दत्तमक्षयम्

निष्कलं नवसुतसृष्टं चाटचारणतस्करे । कुर्वन्धे कितवे धूर्ते शठे मल्ले च वन्दिनि
 आपत्स्वपि नदेयानि नववस्तूनि सर्षथा । अन्यथे सतिसर्षस्वंधं दारांश्च शरणागतान्
 न्यासाधीकुलवृत्तिं च निक्षेपस्त्रीधनं सुतम् । योददाति समुद्रात्मा प्रायश्चित्तैर्विशुध्यति
 पतन्नवानां नवकं ज्ञात्वा प्रियमवाप्नुयात् । अन्यच्च नवकं वच्मि सर्वेषां स्वर्गमार्गदम्

सत्यं शौचमर्हिसा च क्षान्तिर्दानं दया दमः ।

अस्तेयमिन्द्रियाकोषः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥ ८६ ॥

अभ्यस्य नवतिज्ज्ञैतां स्वर्गमार्गप्रदीपिकाम् ।

सतामभिमताम्पुण्यां गृहस्थो नावसीर्दात ॥ ८७ ॥

जिह्वाभार्यासुतोभ्रातामित्रदाससमाश्रिताः । यस्यैतेनियच्छाश्चतस्यसर्वत्र गौरवम्
 पानंदुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽनम् । स्वप्नोऽन्यगृहवासश्च नारीणाद्रूपणानि यद्
 समर्धधान्यमुद्रधृत्यमहर्षयः प्रयच्छति । सहिवाधुपिको नाम तस्यान्नं न च भक्षयेत्
 अग्नेमाहिषिकं द्रुद्रु मध्येष्ववृषलीपतिम् । अन्ते चार्धुपिकञ्च विनिराशाः पितरोगताः
 महिषीत्युच्यते नारी या च स्याद्भवभिवारिणा ।

तां दुष्टा कामयेद्यस्तु सर्वे माहिषिकः स्मृतः ॥ ८८ ॥

स्ववृषं या परित्यज्य परवृषे वृषायते । वृषली सा हि विज्ञेया न शूद्री वृषली भवेत्
 यावदुष्णम्भवत्यन्नं यावन्मौनेन भुज्यते । तावदश्नन्ति पितरो यावन्नोक्ताहविर्गुणाः
 चिद्याचिनयसम्पन्नं श्रोत्रिये गृहमागते । क्रीडन्त्योपधयः सर्वायास्यामः परमांगतिम्
 भ्रष्टशौचव्रताच्चारे विप्रे वेदविजिते । रोदित्यन्नदीयमानं किं मया दुःकृतं कृतम्
 यस्यकोष्ठगतं खात्रं वेदाभ्यासेन जीर्यति । स तारयति दातारं दशपूर्वाब्दशापरान्
 नस्त्रीणां वपनं कार्यं नचगाः समनुव्रजेत् । न च रात्रौ वसेद्गोष्ठे न कुर्याद्वैदिकीं श्रुतिम्
 सर्वान्केशान्समुद्रधृत्य च्छेदयेद्गुलद्वयम् । एषमेवतु नारीणां शिरसो मुण्डनम्भवेत्
 राजाचारजपुत्रो ब्राह्मणो ब्राह्मभुतः । अकारयित्वा वपनम्यायश्चित्तं चिनिर्दिशेत्
 केशानां रक्षणायां द्विगुणं व्रतमादिशेत् । द्विगुणा दक्षिणा देया ब्राह्मणे वेदपारणे
 यो गृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते ।

अन्नन्तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥ १०२ ॥

दाराग्निहोत्रदीक्षाञ्चकुरुतेयोऽप्रजेस्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः
परिवित्तिः परिवेत्तायया च परिविद्यते । सर्वते नरकं यान्तिदातृयाजकपञ्चमाः
कृषिदेशान्तरस्थे च मूके प्रव्रजिते जडे । कुञ्जे खर्वे च पतिते न दोषः परिवेदने
वेदाक्षराणि यावन्ति नियुञ्ज्यादर्धकारणे । तावतीर्षं भ्रूणहत्या वेदविक्रयकृद्भूमेत्
यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा सेवते मैथुनम्पुनः । षष्टिर्धनं सहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः
शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण च सहासनम् । शूद्राद्विद्यागमः कश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत्
शूद्रादाहृत्यनिर्वापं ये पचन्त्यवुधाद्विजाः । ते यान्ति नरकं घोरम्ब्रह्मतेजो विवर्जिताः
माक्षिकं फणितं शाकंगोरसं लवणं घृतम् । हस्तदत्तानि भुक्तानि दिनमेकमभोजनम्
हस्तदत्ताश्च ये स्नेहा लवणं व्यञ्जनानि च । दातारं नोपतिष्ठन्ते भोक्ता भुङ्क्ते तु किल्बिषम्
आयसेनैव पात्रेण यदन्नमुपदीयते । भोक्ता तद्विद्मं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत्
अङ्गुल्यादन्तकाष्ठञ्च प्रत्यक्षं लवणञ्च यत् । मृत्तिकाभक्षणं यच्च समं गोमासभक्षणैः
पानीयम्पायसम्भक्षं घृतं लवणमेव च । हस्तदत्तं न गृह्णीयात्तुल्यं गोमासभक्षणैः
अग्रतो निवसेन्मुखं दूरतश्च गुणान्वितः । गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मुखे व्यतिक्रमः
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते । उवलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि ह्यने
सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् । भोजने चैव दाने च दहेदासतमं कुलम्

गोरक्षकान् घाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान्

प्रेथ्यान्वाधुं पिकांश्चैव विप्राञ्छद्रवदाचरेत् ॥ १८ ॥

देवद्रव्यविभागेन ब्रह्मस्वहरणेन च । कुलान्याशु चिनश्यन्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च
मादेहीति च यो ब्रूयाद्ब्रह्मि ब्राह्मणेषु च । तिर्यग्योनि शतं गत्वा घाण्डालेष्वभिजायते
घाचा यच्च प्रतिहातं कर्मणानोपपादितम् । ऋणं तद्धमसंयुक्तमिह लोके परत्र च
विवसाशी भवेन्नित्यं नित्यञ्चामृतभोजनः । यज्ञशेषोऽमृतम्भुङ्क्ते शेषन्तु विधसं विदुः
सव्यादंसात्परिब्रूयन्नाभिदेशेऽन्ववस्थिते । अन्वस्य कवासास्तं देवेपित्र्ये च वर्जयेत्

यदेव तपंयत्यग्निः धिक्कुम्भत्वा क्षिणोत्तमः ।

तेनैव सर्वमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ १२४ ॥

हस्तौ ब्रह्माख्य गण्डूयं यःपिबेद्भोजनोत्तरम् । देवं पिश्र्यं तथात्मानं त्रयंसउपघातयेत्
गणार्धं गणिकात्रयद्वयं प्राप्रयाजके । स्त्रीणांप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा खान्द्रायणञ्चरेत्
पक्षे वा यदि वा मासे यस्य गेहेऽस्ति न द्विजः ।

भुक्त्वा दुरान्मनस्तस्य खरेखान्द्रायणव्रतम् ॥ १२७ ॥

सत्रिणां दीक्षितानाञ्च यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।

एतेषां सूतकं नास्ति ऋत्विजां कर्म कुर्वताम् ॥ १२८ ॥

अजीर्णोऽभ्युदिते घान्ते श्मश्रुकर्मणिमैथुने । दुःस्वप्नेदुर्जनस्पर्शोऽस्नानमेवविधीयते
शैत्यवृक्षं चितिं यूपं शिवनिर्माल्यभोजनम् ।

वेदविक्रयिणं स्पृष्ट्वा सखेलो जलमाविशेत् ॥ १३० ॥

अन्यगारेगवांगोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ । स्वाध्याये भोजने पानेपादुकेवैचिसर्जयेत्
खलक्षेत्रगतं धान्यं कुपवापीषु यज्जलम् । अग्राह्यादपितद्वराहं यश्चगोष्ठगतमप्यः

यद्वेष्टितशिराभुङ्क्ते यद् भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।

सोपानत्कक्ष यद् भुङ्क्ते तद्वै रक्षामि भुञ्जते ॥ १३३ ॥

यातुधानाः पिशाचाश्च राक्षसाः क्रकर्मिणः ।

हरन्ति रसमन्नस्य मण्डलेन विवर्जितम् ॥ १३४ ॥

ब्रह्माद्याश्चसुराः सर्वेवसिष्ठाद्यामहर्षयः । मण्डलञ्चोपजीवन्ति ततः कुर्वीत मण्डलम्
ब्राह्मणे चतुरस्रं स्यात् त्रयस्रं वै बाहुजन्मनः ।

वर्तुलञ्च विशः प्रोक्तं शूद्रस्याभ्युक्षणं स्मृतम् ॥ १३६ ॥

नोत्सङ्गे भोजनं कृत्वा नोपाणौ नैव कर्पटे । नासनेनचशय्यायाम्भुञ्जीतनमलार्दितः
धर्मशास्त्ररथारूढावेदब्रह्मधरा द्विजाः । क्रीडार्थमपियदुब्रयुः सधर्मः परमः स्मृतः
रात्रौ धाना दधियुतं धर्मकामो न भक्षयेत् ।

अन्नतो धर्मदानिःस्याद्दद्याद्विभिक्षोपपीड्यते ॥ १३६ ॥

फाणितं गोरसं तोयं लवणमधुकाञ्जिकम् ।

हस्तेन ब्राह्मणो दस्त्वा कृच्छ्रं खान्द्रायणञ्चरेत् ॥ १४० ॥

गन्धाभरणमाल्यानि यः प्रयच्छतिधर्मवित् । ससुगन्धिः सदाहृद्योयत्रयत्रोपजायते
नीलीरक्तं तु यद्वस्त्रं दूरतः परिषर्जयेत् । स्त्रीणांकीडार्थसंयोगे शयनीये न दुष्यति
पालनाद्विक्रयाच्चैव तद्वृत्तेरुपजीवनात् । अपचित्रोभवेद्विप्रस्त्रिभिःकृच्छ्रंविशुध्यति
स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।

वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवासो विभर्ति यः ॥ १४४ ॥

नीलीरक्तंयदा वस्त्रं विप्रः स्वाङ्गेषुधारयेत् । तन्तुसन्ततिसंख्याकेनरकेसवसेद्ब्रुवम्
अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ १४६ ॥

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपकल्पयेत् । भोक्ताविष्टासमम्भुङ्क्ते दाता चनरकं व्रजेत्
अमृतम्ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नम्पयः स्मृतम् ।

वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥ १४८ ॥

वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्चनंर्जपैः । अमृतन्तेनविद्यान्नमृग्यजुःसामसंसृष्टतम्
व्यवहारानुरूपेण न्यायेन तु यदर्जनम् । क्षत्रियस्य पयस्तेन प्रजापालनतो भवेत्
प्रहरानद्भवाहाद्यदन्नमुत्पाद्य यच्छति । सीतायज्ञविधानेन वैश्यान्नन्तेन संसृष्टतम्
अज्ञानतिमिरान्धस्य मद्यपानरतस्य च । रुधिरं तेन शूद्रान्नं वेदमन्त्रविवर्जितम्
न वृथाशपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरोत्तमः । वृथा हि शपथंकुर्वन्प्रेत्यवेहविनश्यति
कामिनीषु विवाहे च गवाम्भुक्तो धनक्षये ।

ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथैर्नास्ति पातकम् ॥ १५४ ॥

सत्येनशापयेद्विप्रंक्षत्रियंवाहनायुधैः । गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यंशूद्रं सर्वैस्तुपातकैः
अग्निवाहाहारयेदेनमप्सुचैनं निमज्जयेत् । स्पशयेत्पुत्रदाराणां शिरांस्थेनञ्चवापृथक्
नयमंयममित्याहुःशतमाचैयमउच्यते । आत्मासंयमितोयेन तं यमः किंकरिष्यति
न निखिंशस्तथा तीक्ष्णः फणी वा दुरतिक्रमः ।

रिपुर्वां नित्यसंक्रुद्धो यथात्मा दुरधिष्ठितः ॥ १५८ ॥

एकः क्षमावतां दोषोनद्वितीयः कथञ्चन । यदेनं क्षमया युक्तमशकं मन्यतेजनः ॥१५९

न शब्दशास्त्रामिरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ।
 न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकविस्रग्रहणे रतस्य ॥ १६० ॥
 एकान्तशीलस्य सर्वैव तस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ।
 स्वाध्याययोगे गतमानसस्य मोक्षो भ्रुवं नित्यग्रहिसकस्य ॥ १६१ ॥
 क्वैकान्तशीलत्वमिहास्ति पुंसः कचेन्द्रियप्रीतिनिवृत्तिरस्ति ।
 क योगयुक्तिः कश्चदैवतेज्याकाश्याधिर्नमिः सहजेन मुक्तिः ॥ १६२ ॥
 विश्वेशमंशीलनमेष योगस्तपश्च विश्वेशपुरीनिवांसः ।
 व्रतानि दानं नियमा यमाश्च स्नानं द्युनद्या यदुद्वहायाम् ॥ १६३ ॥

स्कन्द उवाच

न्यायागतधनस्तस्वज्ञाननिष्ठोतिथिप्रियः । श्राद्धकृतसत्यवादीष्वगृहस्थोर्पाहमुच्यते
 दीनान्धकृपणार्थिभ्योदस्वान्नानिविशेषतः ।
 कृत्वा गार्ह्याणि कर्माणि गृहस्थः श्रेय आप्नुयात् ॥ १६५ ॥
 इत्थमाचरताम्पुंसा काशीनाथः प्रसीदति ।
 काशीनाथप्रसादेन काशीप्राप्तिस्तु मोक्षकृत् ॥ १६६ ॥
 स सर्वतीर्थसुस्नातः स सर्वक्रतुर्दीक्षितः । सवत्सर्वदानस्तुकाशीयेननिषेविता
 इति श्रीस्कन्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्रान्यासहिताया पूर्वार्धे काशीखण्डे
 गृहस्थधर्माख्यानं नाम अष्टवारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

योगारूयानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

उषित्वेचंगृहे विप्रोद्वितीयादाश्रमात्परम् । बलीपलितसंयुक्तस्तृतीयाश्रममाचिशेत्
अपत्यापत्यमालोक्य ग्राम्याहारान्विसृज्य च ।

पत्नी पुत्रेषु सन्त्यज्य पत्न्या वा वनमाचिशेत् ॥ २ ॥

वसानश्रमवृत्तराणिसाग्निमुन्यन्नवर्तनः । जटी सायम्प्रगेस्नार्याश्रमश्रुलोनखलामभृत्
शाकमूलफलवापिपञ्चयज्ञाश्च हापयेत् । अम्मूलफलमिक्षामिरक्षयेद्विभुकातिधीन्
अनादाता च दाताचदान्त म्वाध्यायतत्परः । वैतानिकञ्जुहुयाद्ग्निस्रोत्रयथाविधि
मुन्यन्नेः स्वयमानीत.पुरोडाशाश्चनिर्वपेत् । न्ययकृतञ्जलवणखादेत्स्नेहंफलोद्वषम्
वर्जयेच्छेलुशिप्रचकवकम्पललम्भु । मुन्यन्नमाश्विने मासि त्यजेत्पृथ्वसञ्चितम्
ग्राम्याणि फलमूलानि फालजाशञ्च सन्त्यजेत् ।

दन्तोत्खलको वा स्यादशमकुट्टोऽथ वा भवेत् ॥ ८ ॥

सद्य प्रक्षालको वास्याद्यवा माससञ्चयी । त्रिपङ्क्तादशमासान्फलमूलादिसंग्रही
नकाश्येकान्तराशी वा पष्टकालाशनोऽपि वा ।

चान्द्रायणव्रती वा स्यात्पक्षभुग्वाऽथ मासभुक् ॥ १० ॥

वैखानसमतस्थस्तु फलमूलाशनोऽपि वा । तपसा शोषयेद्देहं पितृन्देवांश्च तर्पयेत्
अग्निमातृमनि चाधाय विचरेदतिकेतनः । भिक्षयेत्प्राणयार्त्रार्थं तापसान्बनवासिनः
ग्रामादानीय वाश्रीयादष्टौ प्रासान्बसन्बने । इत्थं वनाश्रमीविप्रोब्रह्मलोके महीयते
अतिवाह्यायुषो भागंतृतीयमितिकानने । आयुषस्तुतुरीयांशेत्यन्नवासङ्गान्परिव्रजेत्
ऋणत्रयमसंशोध्यत्बनुत्पाद्य सुतानपि । तथा यज्ञाननिष्ठा च मोक्षमिच्छन्ब्रजत्यधः
मनागपि न भूतानां यस्मादुत्पद्यतेभयम् । सर्वभूतानि तस्यैह प्रयच्छन्त्यभयं सदा

एक एव श्वरेन्नित्यमनश्विरनिकेतनः । सिद्धार्थमसहायः स्यादुग्राममन्त्रार्थमाश्रयेत्
जीवितमरणं वाधनाभिकाङ्क्षेत्कविद्यतिः । कालमेवप्रतीक्षेतनिर्देशमभ्युत्तको यथा
सर्वत्र ममताशून्यः सर्वत्र समतायुतः । वृक्षमूलनिकेतश्च मुमुक्षुरिहशस्यते
ध्यानं शौचं तथाभिक्षा नित्यमेकान्तशीलता । यतश्चत्वारिकमाणिपञ्चमं नोपपद्यते
वार्षिकांश्चतुरो मासान्विहरेन्न यतिःकश्चित् ।

बीजाङ्कुराणां जन्तूनां हिंसा तत्र यतो भवेत् ॥ २१ ॥

गच्छेत्परिहरञ्जन्तुम्पिवेत्कंवलशोधितम् । वाघवदेदनुद्देगानक्रुध्येत्केनचित्कश्चित्
श्वरेदात्मसहायश्च निरपेक्षो निराश्रयः । नित्यमध्यात्मनिरतो नीचकेशनखो वशी
कुसुम्भवासा दण्डाढ्यो भिक्षाशी ख्यातिवर्जितः ।

अलाबुदारुमृद्रेणुपात्रं शस्तं न पञ्चमम् ॥ २४ ॥

नप्राङ्मन्तेजसम्पात्रं भिक्षुकेन कदाचन । वराटके संगृहीते तत्र तत्र दिने दिने ॥ २५ ॥
गोसहस्रबधम्पायं श्रुतिरेया सनातनी । हृदिसस्नेहभावेन चेद्दृक्षेत्स्त्रियमेकदा
कोटिद्वयम्ब्रह्मकल्पं कुर्मीपाकी न संशयः । एककालञ्चरेद्दक्षं न कुर्यात्तत्र विस्तरम्
विधुमे सश्रमुसले ध्यङ्गारे भुक्तवज्जने । वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यञ्चरेद्यतिः
अल्पाहारो रहःस्थायी त्विन्द्रियार्थेष्वलोलुपः ।

रागद्वेषविनिर्मुक्तो भिक्षुर्माक्षाय कल्पते ॥ २६ ॥

आश्रमे तु यतिर्यस्य मुहूर्तमपि विभ्रमेत् । किन्तस्यानेकनन्त्रेणकृतकृत्यः स जायते
सञ्चितं यद् गृहस्थेनपापमामरणान्तिकम् । निर्धश्यतिहितत्सर्वमेकरात्रोपितोयतिः
दृष्ट्वा जराभिभवनमसङ्घं रोगपीडितम् । देहत्यागं पुनर्गर्भगर्भक्षलेश्च दारुणम्
नानायोनिनिवासञ्च वियोगञ्च प्रियंःसह । अप्रियंःसहसंयोगमधर्माद्दुःखसम्भवम्
पुनर्निरयसंवासं नानानरकयातनाः । कर्मदोषसमुद्भूता नृणां गतिरनेकधा
देहेष्वनित्यतां दृष्ट्वानित्यतां परमात्मनः । कुर्वीत मुक्तये यत्नं यत्र यत्राश्रमे रतः
करपात्रीति विख्याता भिक्षापात्रविधर्जिताः । तेषांशतगुणम्पुण्यम्भवत्येवदिनेदिने
आश्रमांश्चतुरस्त्वेवं क्रमादासेव्य पण्डितः । निर्द्वन्द्वस्त्यकसङ्गश्चब्रह्मभूयाय कल्पते

असंयतःकुबुद्धीनामात्मा बन्धाय कल्पते । धीमद्विः संयतःसोऽपिपदं दद्यादनामयम्
श्रुतिस्मृतिपुराणञ्च विद्योपनिषदस्तथा ।

श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यद्धान्यद्वाङ्मयं क्वचित् ॥ ३६ ॥

वेदानुचचनं ज्ञात्वा ब्रह्मचर्यं तपो दमः । श्रद्धोपघासःस्वातन्त्र्यमात्मनोज्ञानहेतवः
सहिसर्वैर्विजिज्ञास्य आत्मैवाश्रमवर्तिभिः । श्रोतव्यस्त्वथमन्व्योद्रष्टव्यश्चप्रयत्नतः
आत्मज्ञानेनमुक्तिःस्यात्तच्च योगादूतेनहि । सच्चयोगश्चिरंकालमभ्यासादेवसिध्यति
नारण्यसंश्रयाद्योगो न नानाग्रन्थचिन्तनात् । न दानैर्नव्रतैर्वापि नतपोभिर्नवा मलैः
नच पद्मासनाद्योगो न वाप्राणाप्रवीक्षणान् । न शौचेन न मौनेन न मन्त्राराधनैरपि
अभियोगात्सदाभ्यासात्तत्रैव च विनिश्चयात् ।

पुनः पुनरनिर्वेदात्सिध्येद्योगो न चान्यथा ॥ ४' ॥

आत्मकीडस्यसततं सदात्ममिथूनस्यच । आत्मन्येव सुतूनस्य योगसिद्धिर्नदूरतः
अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो नपश्यति । आत्मरामःसयोगीन्द्रोब्रह्मीभूतोभवेविह
संयोगस्त्वात्ममनसोर्योग इत्युच्यतेबुधैः । प्राणापानसमायोगो योग इत्यपि कैश्चन
विषयेन्द्रियसंयोगोयोगइत्यप्यपण्डितैः । विषयासक्तचित्तानां ज्ञानं मोक्षश्च दूरतः
दुर्निवारा मनोवृत्तिर्यावत्सा ननिवर्तते । किञ्चदन्त्यपि योगस्य तावन्नेदीयसी कुतः
वृत्तिहीनमनः कृत्वाक्षेत्रज्ञे परमात्मनि । एकीकृत्य चिमुच्येत योगयुक्तः सउच्यते
बहिर्मुखानिसर्वाणि कृत्वाखान्यन्तराणिचै । मनस्येवेन्द्रियग्रामंमनश्चात्मनियोजयेत्
सर्वभावविनिर्मुक्तक्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् । एतद्ध्यानंचयोगश्च शेषोऽन्योग्रन्थविस्तरः
यन्नास्ति सर्वलोकेषु तदस्तीतिचिरुध्यते । कथ्यमानं तदन्यस्य हृदयेनावतिष्ठते
स्वसंवेद्यंहितद्रुह्य कुमारी स्त्रीसुखंयथा । अयोगीनेतद्वेत्ति जात्यन्ध इव वर्तिकाम्
नित्याभ्यसनशीलस्यस्वसंवेद्यंहि तद्वेत् । तत्सूक्ष्मत्वादर्निर्देश्यंपरंब्रह्म सनातनम्
क्षणमप्येकमुदकं यथानस्थिरतामियात् । वाताहतंयथाचित्तं तस्मात्सत्यनविभवेत्
अतोऽनिलंनिरुन्धीतचित्तस्यस्थैर्यहेतवे । मरुन्निरोधनार्थाय षडङ्गं योगमन्यसेत्
आसनंप्राणसंरोधः प्रत्याहारश्चधारणा । ध्यानंसमाधिरंतानियोगाङ्गानिभक्तियत्

आसनानीह तावन्ति यावन्त्यो जीवयोनयः ।

सिद्धासनमिदं प्रोक्तं योगिनो योगसिद्धिदम् ॥ ६० ॥

एतदभ्यसनाश्रित्यं बर्षमदादन्यं मवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥

दक्षिणं चरणं न्यस्यवामोरूपरियोगवित् । याम्योरूपरि वामं स्वपद्मासनमिदं विदुः
कराभ्यां धारयेत्पश्चाद्कुष्ठौदृढबन्धवित् । भवेत्पद्मासनादस्माद्भयासादुदृढदक्षिप्रहः
अथ बाह्यासने यस्मिन्सुखमस्योपजायते ।

स्वस्तिकादौ तदध्यास्य योगं युञ्जीत योगवित् ॥ ६४ ॥

नतोयवह्निसामीप्ये न जीर्णारण्यगोष्ठयोः । नदशमशकाकीर्णेनचैत्येन च घत्सरे
केशमस्मत्पुष्करकीकसादिप्रदूषिते । नाभ्यसेत्पूतिगन्धादौ न स्थाने जनसङ्कुले
सर्वबाधाविरहिते सर्वेन्द्रियसुखावहे । मनः प्रसादजनने स्मृधूपामोदमोदिते

नातितुमः श्रुधार्तो न नविष्मूत्रप्रबाधितः ।

नाध्वस्त्रिणो न चिन्तार्तो योगं युञ्जीत योगवित् ॥ ६८ ॥

ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये न्यस्योत्तरं करम् ।

उत्तानं किञ्चिदुन्नम्य वक्त्रं विष्टभ्य शोरसा ॥ ६९ ॥

निमीलिताक्षः सस्वस्थो दन्तैर्दंताश्च संस्पृशेत् ।

तालुस्थाच्चलजिह्वश्च सम्भृतास्यः सुनिश्चलः ॥ ७० ॥

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं नाति नीचोच्छ्रितासनः । मध्यमं चोत्तमं चाथ प्राणायाममुपक्रमेत्
चलेऽनिलेचलं सर्वं निश्चले तत्र निश्चलम् ।

स्थाणुत्वमाप्नुयाद्योगी ततोऽनिलनिरुन्धनात् ॥ ७२ ॥

यावद्देहे स्थितः प्राणोजीवितं तावदुच्यते । निर्गते तत्र मरणततः प्राणं निरुन्धयेत्
यावद्बुधदो मरुद्देहे यावच्चेतो निराश्रयम् । यावद्दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्ये तावत्कालभयंकुतः
कालसाध्वसतो ब्रह्मा प्राणायामं सदाचरेत् ।

योगिनः सिद्धिमापन्नाः सम्यक् प्राणनियन्त्रिणात् ॥ ७५ ॥

मन्दोद्वाद्दशमात्रस्तुमात्रालघ्वक्षरामता । मध्यमो द्विगुणः पूर्वाद्दुत्तमस्त्रिगुणस्ततः

स्वेदं कर्मविषादं च जनयेत्कमशस्त्वसौ । प्रथमे न जयेत्स्वेदं द्वितीयेन तु वैपथ्यम्

विषादं हि तृतीयेन सिद्धः प्राणोऽथ योगिनः ।

भवेत्क्रमात्सन्निरुद्धः सिद्धः प्राणोऽथ योगिना ।

क्रमेण सेव्यमानोऽसौ नयते यत्र चेच्छति ॥ ७८ ॥

हृदाच्चिरुद्धप्राणोऽयं रोमकूपेषु निःसरेत् । देहं विदारयत्येष कुष्ठादिजनयत्यपि

तत्प्रत्याययितव्योऽसौ क्रमेणाऽरण्यहस्तिवत् ।

वन्यो गजो गजारिर्वा क्रमेण मृदुतामियात् ॥ ८० ॥

करोति शास्तृनिर्देशं च तंपरिलङ्घयेत् । तथा प्राणोऽहदिस्थोऽयं योगिनाक्रमयोगतः

गृहीतः सेव्यमानस्तु चिभ्रम्भमुपगच्छति ॥ ८१ ॥

षट्त्रिंशद्गुलो हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः । सव्यापसव्यमार्गेण प्रयाणात्प्राणउच्यते

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रमनाकुलम् । तदैव जायतेयोगा क्षमः प्राणनिरोधने

हृदासनो यथाशक्ति प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् । रश्मयेदथ सूर्येण प्राणायामोऽयमुच्यते

स्वत्पीयूषधारीघं ध्यायंश्चन्द्रसमन्वितम् ।

प्राणायामेन योगीन्द्रः सुखमाप्नोति तत्क्षणान्त ॥ ८५ ॥

रविणा प्राणमाकृष्य पूरयेदौदरीं दरीम् । कुम्भयित्वाशनैःपञ्चाद्योगीचन्द्रेणरश्मयेत्

ज्वलज्ज्वलनपुञ्जामं शील्यन्मुष्मगुं हृदि । अनेन याभ्यायामेनयोगीन्द्रःशर्मभाग्भवेत्

इत्थं मासत्रयाभ्यासादुभयायामसेवनात् ।

सिद्धनाडीगणो योगी सिद्धप्राणोऽभिधीयते ॥ ८८ ॥

यथेष्टधारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम् । नाशभिव्यक्तिरारोग्यंभवेन्नाडीविशोधनात्

प्राणोद्देहगतोषायुरायामस्तन्निरुद्धनम् । एकश्वासमयीमात्राप्राणायामो निरुच्यते

प्राणायामेऽधमेघर्मः कम्पोभवतिप्रध्यमे । उत्तिष्ठेदुत्तमे देहो बद्धपद्मासनो मुहुः

प्राणायामैर्देहेन्द्रोषान्प्रत्याहारेण पातकम् । मनोधैर्यं धारणया ध्यानेनैश्वरदर्शनम्

समाधिना लभेन्मोक्षं त्यक्त्वा घर्मं शुभाशुभम् ।

आसनेन षषुर्दाढ्यं षडङ्गमिति कीर्तितम् ॥ ९३ ॥

प्रणायामद्विषट्केन प्रत्याहार उदाहृतः । प्रत्याहारैर्द्वादशभिर्धारणा परिकीर्तिता
मवेदीश्वरसङ्गत्यै ध्यानं द्वादशधारणम् । ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते
समाधेः परतोऽयोतिरनन्तस्वप्रकाशकम् । तस्मिन् दृष्टेक्रियाकाण्डंयातायातनिघर्तते
पथने व्योमसम्प्राप्ते ध्वनिकल्पद्यते महान् । घण्टादीनाम्प्रवाधानां ततःसिद्धिरदूरतः
प्राणायामेन युक्तेन सर्वव्याधिक्षयो भवेत् । अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वव्याधिसमुद्भवः

हिकाश्वासश्च कासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः ।

भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात् ॥ ६६ ॥

युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तञ्च पूरयेत् ।

युक्तं युक्तञ्च बध्नीयादित्यं सिध्यति योगवित् ॥ १०० ॥

इन्द्रियाणां हि चरतां विषयेषु यदृच्छया । यत्प्रत्याहारणं युक्त्या प्रत्याहारः स उच्यते
प्रत्याहारति यः स्वानिकूर्मोङ्गानीचसर्धतः । प्रत्याहृतिविधानेन सस्याद्विगतकलमयः
नाभिदेशेषसेद्गानुस्तालुदेशे च चन्द्रमाः । वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रोऽग्रसेदूर्ध्वमुखोरविः
करणन्तश्चकर्तव्ययेन सा प्राप्यते सुधा । ऊर्ध्वं नाभिरघस्तालुर्ऊर्ध्वं भानुरधः शशी
करणं विपरीताख्यमभ्यासादेव जायते ॥ १०४ ॥

काकघञ्चुषदास्येन शीतलं शीतलं पिबेत् । प्राणं प्राणविधानञ्चो योगी भवति निर्जरः
रसनां तालुषिबरे निधायोर्ध्वमुखोऽमृतम् । धयन्निरजं रताङ्गच्छेदापण्मासात्त संशयः
ऊर्ध्वं जिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः ।

मासार्धेन न सन्देहो मृत्युञ्जयति योगवित् ॥ १०७ ॥

सम्पीठ्य रसनाग्नेरजदन्तर्बिलं महत् । ध्यात्वा सुधामयीं देवीं पण्मासेन कविभवेत्
अमृतापूर्णदेहस्य योगिनो द्वित्रिवत्सरात् । ऊर्ध्वं प्रवर्तते रतो ह्यणिमादिगुणोदयम्
नित्यं सोमकलापूर्णशरीरं यस्य योगिनः । तक्षकेणापि दृष्टस्य विष्वं तस्य न सर्पति
आसनेन समायुक्तः प्राणायामेन संयुतः । प्रत्याहारेण सम्पन्नो धारणाग्रयन्वाभ्यसेत्
हृदये पञ्चभूतानां धारणं यत्पृथक्पृथक् । मनसो निश्चलत्वेन धारणासाभिधीयते
हरितालनिभां भूमिं सलकारां सवेधसम् ।

चतुष्कोणां हृदि ध्यायेद्देवास्यात् क्षितिधारणा ॥ ११३ ॥

कण्ठेऽम्बुतत्त्वमर्धेन्दु निभं विष्णुसमन्वितम् ।

घकारबीजं कुन्दामं ध्यायन्नम्बुजयेदिति ॥ ११४ ॥

तालुस्थमिन्द्रगोपामंत्रिकोणरंफसंयुतम् । रुद्रेणाधिष्ठितंतेजोध्यात्वाबह्विजयेदिति
वायुस्तत्त्वंभ्रुवोर्मध्ये वृत्तमञ्जनमन्निभम् । यम्शीजमीशदैवत्यं ध्यायन्वायुं जयेदिति
आकाशञ्चमरीचिवारिसदृशं यदुग्रह्वरन्प्रस्थितं,

यन्नाथेन सदाशिवेन सहितं शान्तं हकाराक्षरम् ।

प्राणं तत्र विनीय पञ्चघटिकं चिन्तान्वितं, धारयै-

देवा मोक्षकपाटपाटनपटुः प्रोक्ता नभोधारणा ॥ ११७

स्तम्भनीप्लावनी चैव दहिनी भ्रामणी तथा । शमनीचमभवन्त्येताभूतानां पञ्चधारणाः
धैचिन्तायां स्मृतो धातुश्चिन्तातत्त्वे सुनिश्चला ।

एतदुध्यानमिह प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं द्विधा ॥ ११६ ॥

सगुणवर्णभेदेन निर्गुणं केवलममृतम् । समन्त्रं सगुणं विद्धि निर्गुणं मन्त्रवर्जितम्
अन्तश्चेतो बहिश्चक्षुरवस्थाप्य सुखासनम् । समत्वंश्चशरीरस्य ध्यानमुद्रातिसिद्धिदा
नाश्वमेधेन तत्पुण्यं न च वै राजसूयतः । यत्पुण्यमेकध्यानेन लभेद्योगी स्थिरासनः

शब्द्रादीनाञ्च तन्मात्रा यावत्कर्णादिषु स्थिता ।

तावदेव स्मृतं ध्यानं स्यात्समाधिरतः परम् ॥ १२३ ॥

धारणा पञ्चनाडीका ध्यानं स्यात्पष्टिनाडिकम् ।

दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिरिह भण्यते ॥ १२४ ॥

जलसैन्धवयोः साम्यं यथा भवति योगतः । तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरिह भण्यते
यदासंक्षीयते प्राणो मानसञ्च प्रलीयते । तदा समरसत्वं यत्समाधिरिहोच्यते
यत्समत्वं द्वयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः । स नष्टसर्वसङ्कल्पः समाधिरभिधीयते ॥
नात्मानं न परं वै स न ज्ञीतं नोप्समेव च । समाधियुक्तो योगीन्द्रो न सुखं सुखेतरत्
काल्यते नैव कालेन लिप्यते नैव कर्मणा । भिद्यते न च शस्त्रास्त्रैर्योगीयुक्तः समाधिना

युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टोहि कर्मसु । युक्तनिद्रावबोधश्च योगीतस्त्वं प्रपश्यति ॥
 तस्त्वंविज्ञानमानन्दम्ब्रह्मब्रह्मविश्वोविदुः । हेतुदृष्टान्तरहितं बाह्वनोभ्यामगोचरम् ॥
 तत्र योगी निरालम्बे निरातङ्के निरामये । षडङ्गयोगविधिना परेब्रह्मणि लीयते ॥
 यथा घृते घृतं क्षिप्तं घृतमेव हि तद्ववेत् । क्षीरेक्षीरं तथा योगी तत्रतन्मयतां ब्रजेत्
 अनसं जातपानीर्यैषिदध्यादङ्गमर्दनम् । त्यजेत्कदुष्पं लवणं क्षीरभोजी सदा भवेत्
 ब्रह्मचारी जितक्रोधो जितलोभो विमत्सरः ।

अष्टमित्थं सदाभ्यासात्स योगीति निगद्यते ॥ १३५ ॥

महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डीयानञ्जलन्धरम् । मूलबन्धन्तुयोवेत्तिसयोगीयोगसिद्धिभाक्
 शोधनंनाडीजालस्य घटनञ्चन्द्रसूर्ययोः । रसानां शोषणंसम्यङ्महामुद्रामिधीयते
 योनिं वामाङ्घ्रिणाऽऽपीड्य कृत्वा षक्षस्थले हनुम् ।

हस्ताभ्यां प्रसृतम्यादं धारयेद्दक्षिणं चिरम् ॥ १३८ ॥

प्राणेन कुक्षिमापूर्य चिरं संरिचयेच्छनैः । एषाप्रोक्ता महामुद्रा महाघौघविनाशिनी
 चन्द्राङ्गे तु समभ्यस्य सूर्याङ्गे पुनरभ्यसेत् ।

यावत्सत्या भवेत्सङ्ख्या ततो मुद्रा विसर्जयेत् ॥ १४० ॥

नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाःसर्वेऽपिनीरसाः । अपिघोरंविषम्पीतम्पीयूषमिषजीर्यति
 क्षयकुष्ठगुदाघतंगुल्माजीर्णपुरोगमाः । तस्यदोषाक्षयंयान्तिमहामुद्राञ्चयोऽभ्यसेत्
 कपालकुहरेजिह्वाप्रविष्टाविपरीतगा । भ्रूवोरन्तर्गतादृष्टिमुद्रा भवति खेचरी ॥ ४३
 न पीड्यते शरीरेण न च लिप्येत कर्मणा ।

बाध्यते न स कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ १४४ ॥

विसं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खेगता । तेनैषा खेचरीनाम मुद्रासिद्धैर्निषेचिता
 यावद्बिन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ।

यावद् बद्धा नभोमुद्रा तावद् बिन्दुर्नगच्छति ॥ १४६ ॥

उड्डीनं कुरुते यस्त्वादहोरात्रं महाखगः । उड्डीयानन्ततः प्रोक्तं तत्र बन्धो विधीयते ॥
 जठरेपश्चिमं ताननामेरुर्ध्वञ्चधारयेत् । उड्डीयानो ह्ययम्बन्धो मृत्योरपिभयं त्यजेत्

बध्नाति हि शिराजालमधोगामिनभोजलम् । एषजालन्धरोबन्धःकण्ठेदुःखौघनाशनः
जालन्धरे कृतेबन्धे कण्ठसङ्कोचलक्षणे । न पीयूषंपतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति ॥
पार्ष्णिभगेन सम्पीड्ययोनिमाकुञ्चयेद्गुदम् । अपानमूर्ध्वमाकृष्यमूलबन्धोविधीयते
अपानप्राणयोरैक्ये क्षयो मूत्रपुरीषयोः । युवामवतिवृद्धोऽपि सततम्मूलबन्धनात्

प्राणापानवशो जीव ऊर्ध्वाधः परिधावति ।

वामदक्षिणमार्गेण चञ्चलो न स्थिति लभेत् ॥ १५३ ॥

गुणबद्धोयथापक्षी गतोऽप्याकृष्यतेपुनः । गुणैर्बद्धस्तथाजीवः प्राणायामेन कृष्यते
अपानः कर्षति प्राणमप्राणोऽपानञ्च कर्षति ।

ऊर्ध्वाधःसंस्थितावेतौ संयोजयति योगवित् ॥ १५५ ॥

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः । हंसहंसेत्यतोमन्त्रंजीवोजपति सर्वदा
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येक विंशतिः ।

एतत्सङ्ख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥ १५७ ॥

अजपा नामगायत्री योगिनां मोक्षदायिनी । अस्याः सङ्कल्पमात्रेणनरःपापैःप्रमुच्यते
अन्तराया भवन्तीह योगिनोयोगहानिदाः । श्रूयतेदूरगा वार्ता दूरस्थं दृश्यते पुरः
योजनानां शतं यातुं शक्तिः स्यान्नमिषार्धतः ।

अच्चिन्तितानि शास्त्राणि कण्ठपाठी भवन्ति हि ॥ १६० ॥

धारणाशक्तिरत्युग्रा महाभारोलघुर्भवेत् । क्षणं कृशःक्षणंस्थूलः क्षणमल्पःक्षणमहान्
परकायं प्रविशति तिरश्चा वेत्ति भाषितम् ।

दिव्यगन्धं तनो धत्से दिव्यां वाणीं प्रवक्ति च ॥ १६२ ॥

प्राथर्यते दिव्यकन्याभिर्दिव्यं धारयते वपुः ।

इत्यादयोऽन्तरायाः स्युर्योगसंसिद्धिसूचकाः ॥ १६३ ॥

यद्येभिरन्तरायैर्नक्षिप्यतेऽस्येहमानसम् । तदग्रे तत्समाप्नोति पदम्ब्रह्मादिदुर्लभम्
यत्प्राप्य न निवर्तेत यत्प्राप्यन च शोचति । तल्लभ्यते षडङ्गेन योगेन कलशोद्भव
एकेन जन्मनायोगःकथमित्यम्ब्रसिद्धुध्यति । ऋतेचयोगसंसिद्धेःकथमुक्तिरिहाप्यते

उमे एव हि निर्वाणवर्त्मनी किल कुम्भज !।

किम्वा काश्यां ऋत्विष्यागः किम्वा योगोऽयमीदृशः ॥ १६७ ॥

षड्भ्रलेन्द्रियवृत्तिर्वात्कलिकल्मषजृम्भणात् ।

अल्पायुषां तथा नृणां क्वेह योगमहोदयः ॥ १६८ ॥

अतएष हि जन्तूनां महोदयपदप्रदः । सदैव सदयावार्धिःकाश्यां विश्वेश्वरःस्थितः
काश्यांसुखेनकैवल्यं यथात्मभ्येतजन्तुभिः । योगयुक्त्याद्युपायैश्चनतथान्यत्रकुत्रचित्
काश्यांस्वदेहसंयोगः सम्यग्योग उदाहृतः । मुच्यतेनेह योगेन क्षिप्रमन्येन केनचित्
विश्वेश्वरोविशालाक्षीद्यन्दीकालभैरवः । श्रीमान् दुण्डुर्दण्डपाणिःषडङ्गोयोग एषवै
एतत्षडङ्गं यो योगं नित्यंकाश्यां निषेवते । सम्प्राप्य योगनिद्रांसदीर्घाममृतमश्रुते
उड्ङ्कारः कृत्स्निवामाश्रकेदारश्च त्रिविष्टपः । वीरेश्वरोऽधविश्वेशः षडङ्गो यमिहापरः
पादोदकासिसम्भेदज्ञानोदमणिकर्णिकाः । षडङ्गोऽयम्महायोगो ब्रह्मधर्महदावपि
षडङ्गसेवनादस्माद्वाराणस्यां नरोत्तम !। न जातु जायते जन्तुर्जन्नीजठरे पुनः
गङ्गास्नानं महामुद्रामहापातकनाशिनी । एतन्मुद्राकृताभ्यासोऽप्यमृतत्वमवाप्नुयात्
काशीवीथिषु सञ्चारो मुद्रा भवति खेचरः । खेचरो जायते नूनं खेचर्यामुद्रयानया
उड्डीयसर्वतो देशाद्यानं वाराणसीम्प्रति । उड्डीयानो महाबन्ध एष मुक्त्यै प्रकल्पते
जलस्य धारणंमूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः । एष जालन्धरो बन्धः समस्तसुरदुर्लभः
वृत्तोषिध्नशानेनापियत्र काशीं त्यजेत्सुधीः । मूलबन्धःस्मृतोह्येपदुःखमूलनिकृन्तनः
इतियोगः समाख्यातो मयानेद्विविधो मुने !। सषडङ्गः समुद्रश्च मुक्त्येशम्भुमाषितः
यावन्नेन्द्रियवैक्लव्यं यावद्व्याधिर्न बाधते ।

यावत्कालचिलम्बोऽस्ति तावद्योगरतो भवेत् ॥ १८३ ॥

उभयोर्यागयोर्मध्येकाशीयोगोऽयमुत्तमः । काशीयोगंसमभ्यस्यन्नुवाचोद्योगमुत्तमम्
माधिष्याधिसहायिन्या जरया मृत्युलिङ्गया ।

कालं निकटतो ज्ञात्वा काशीनाथं समाश्रयेत् ॥ १८५ ॥

काशीनाथं समाश्रित्य कुतः कालभयं नृणाम् ।

कन्दोऽपि जीवद्वत्कालस्तत्र काश्यां सुमङ्गलम् ॥ १८६ ॥

आलिप्येनेहसि यथा प्रतीक्षेताऽतिथिं कृती ।

काश्यां कालं तथा यान्तं मान्यवान्सम्प्रतीक्षते ॥ १८७ ॥

कलिः कालः कृतकर्मत्रिकण्टकमितीरितम् । पतत्रयं न प्रभवेदानन्दधनवासिनाम्

अन्यत्राऽतर्कितः कालः कलयिष्यत्यसंशयम् ।

कालादभयमिच्छेच्छेस्ततः काशीं समाश्रयेत् ॥ १८८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

पूर्वार्धे योगारूयानंनार्मैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

कालवञ्चनोपायवर्णनम्

अगन्तिरुवाच

कथंनिकटतःकालो ज्ञायतेहरनन्दन !। तानि चिह्नानि कतिखिद्वुर्ब्रूहि मे परिपृच्छतः

कुमार उवाच

षडामिकालचिह्नानिजायन्ते यानिदेहिनाम् । मृत्यौनिकटमापकेमुने! तानि निशामय
याम्यनासापुटेयस्यवायुर्धानि दिवानिशम् । अखण्डमेवतस्यायुःक्षयत्यद्भद्रयेणहि
द्वयहोरात्रं त्रयहोरात्रं रविर्वहति सन्ततम् । अद्भमेकञ्च तस्येह जीवनावधिरुच्यते
वहेन्नासापुटयुगे दशाहानि निरन्तरम् । घातश्चेत्सहस्रकान्तिस्तथा जीवेद्विनत्रयम्
नासावर्त्मद्वयंहित्वामातरिश्वामुखाद्बहेत् । शंसेद्विनद्वयादर्वाक् प्रयाणंतस्यन्वाध्वनि
अकस्मादेवयत्कालेमृत्युःसन्निहितोभवेत् । चिन्तनीयःप्रयत्नैनसकालोमृत्युमीदृणा
सूर्येऽतमराशिस्येज्जन्मक्षंस्थेनिशाकरे । पौष्णःसकालोद्ब्रष्टव्योयदा याम्ये रविर्बहेत्
अकस्माद्दीक्षतेयस्तुपुरुषंरुष्णपिङ्गलम् । तस्मिन्नेव क्षणेऽरूपं स जीवेद्वत्सरद्वयम्

यस्यबीजमलम्ब्रं क्षुतम्ब्रं मलं तु वा । इहैकदा पतेद्यस्य अब्दन्तस्यायुरिच्यते
इन्द्रनीलनिभं व्योम्नि नागवृन्दं यईक्षते । इतस्ततः प्रसृमरं षण्मासं न सर्जीवति
व्यघ्रेऽहि वारिपूर्णास्यः पृष्ठीकृत्य दिवाकरम् ।

फूत्कृत्याश्विन्द्रचापं न पश्येत्पण्मासजीवितः ॥ १२ ॥

अरुन्धतीभ्रुवञ्चैव विष्णोस्त्रीणिपदानिच । आसन्नमृत्युर्नोपश्येच्चतुर्थं मातृमण्डलम्
अरुन्धतीमवेज्जिह्वाध्रुवोनासाप्रमुच्यते । विष्णोःपदानि भ्रूमध्येनेत्रयोर्मातृमण्डलम्
वेत्ति नीलादिषणंस्य कट्वम्लादिरसस्य हि ।

अकस्मादन्यथाभावं पण्मासेन समृत्युभाक् ॥ १५ ॥

षण्मासमृत्योर्मर्त्यस्य कण्ठोष्ठरसनारदाः ।

शुष्यन्ति सततं तद्वद्विच्छायास्तालुपञ्चमाः ॥ १६ ॥

रेतःकरजनेत्रान्तानीलिमानम्भजन्ति चेत् । तर्हिकीनाशनगरीं षष्टे मासि ब्रजेन्नरः
सम्प्रवृत्तेनिषुबन् मध्येऽन्तेक्षीति चेन्नरः । निश्चितं पञ्चमेमासि धर्मराजातिथिर्भवेत्
द्वुत्तमाल्लक्ष सरटस्त्रिवर्णो यस्य मस्तके । प्रयातियातितस्यायुः षण्मासेन परिक्षयम्
सुन्नातस्याऽपि यस्याशु हृदयम्परिशुष्यति ।

खरणौ च करौ वापि त्रिमासं तस्य जीवितम् ॥ २० ॥

प्रतिबिम्बभवेद्यस्य पदंखण्डपदाकृति । पांसौ वा कर्दमेवापिपञ्चमासान्सर्जीवति
छायाप्रकम्पते यस्य देहबन्धेऽपि निश्चले । कृतान्तदूता बध्नन्ति चतुर्थेमासितनरम्
निजस्य प्रतिबिम्बस्यनीराज्यमुकुरादिषु । उत्तमाङ्गं न यःपश्येत्समासेनचिनश्यति
मतिर्भ्रं श्येत्स्खलेद्वाणी धनुर्देन्द्रं निरीक्षते । रात्रीचन्द्रद्वयञ्चापिदिवाद्वौचदिवाकरौ
दिवा च तारकावक्रं रात्रीव्योमचितारकम् । युगपच्चतुर्विक्षुशाक्रंकोदण्डमण्डलम्
भूरुहे भूधराग्रे खगन्धर्वनगरालयम् । दिवापिशाचमृत्यञ्च एते पञ्चत्वहेतवः ॥ २६ ॥
सर्वेष्वेतेषु विह्वेषु यद्येकमपि वीक्षते । तदामासावधि मृत्युः प्रतीक्षेत नचाधिकम्

कराघरुद्धक्षयःशृणोति न यदा ध्वनिम् ।

स्थूलः कृशः कृशः स्थूलस्तदा मासाञ्जिवर्तते ॥ २८ ॥

यः पश्येदात्मनश्छायां दक्षिणाशासमाश्रिताम् ।

दिनानि पञ्च जीचित्वा पञ्चत्वमुपयाति सः ॥ २६ ॥

प्रोह्यते भक्ष्यते वापि पिशाचासुरबायसैः । भूतैः प्रेतैः श्वभिर्युधैर्गामायुक्षरसूकरैः
रासमैः करमैः कीशैः श्येनेरश्वतरैर्बकैः । स्वप्ने स जीवितं त्यक्त्वा वर्णान्तेयममीक्षते

गन्धपुष्पांशुकैः शोणैः स्वां तनुं भूषितां नरः ।

यः पश्येत्स्वप्नसमये सोऽष्टौ मासान्नित्यहो ॥ ३२ ॥

पांसुराशिञ्चत्वल्मीकंयूपदण्डमथापि वा । योऽभिरोहति वै स्वप्ने स पष्टे मासिनश्चरति
रासमारूढमात्मानं तैलाभ्यक्तञ्च मुण्डितम् ।

नीयमानं यमाशां यः स्वप्ने पश्येत्स्वपूर्वजान् ॥ ३४ ॥

स्वमौलीं स्वतनौ वापि यः पश्येत्स्वप्नगो नरः ।

नृणानि शुष्ककाष्ठानि पष्टे मासि न तिष्ठति ॥ ३५ ॥

लोहदण्डधरं कृष्णं पुरुषं कृष्णवाससम् ।

स्वयं योऽग्रे स्थितम्पश्येत्स त्रीन् मासान्न लङ्घयेत् ॥ ३६ ॥

काली कुमारीयं स्वप्ने बध्नीयाद्बाहुपाशकैः । समासेन समीक्षेत नगरं शमनोपिताम्
नरो यो वानरारूढो यायात्प्राचीं दिशं स्वपन् । दिनैः स पञ्चभिरेव पश्येत्संयमिनीम्पुरीम्

कृपणोऽपि बदान्यः स्याद्बदान्यः कृपणो यदि ।

प्रकृतेर्विकृतिञ्चेत्स्यात्तदा पञ्चत्वमुच्छति ॥ ३६ ॥

एतानि कालचिह्नानि सन्त्यन्यानि बहून्यपि ।

ज्ञात्वाऽभ्यसेन्नरो योगमथवा काशिकां श्रयेत् ॥ ४० ॥

न कालवञ्जनोपायं मुनेऽन्यमवयाम्यहम् । विनामृत्युञ्जयं काशीनारायं गर्भाधरोधकम्
तावद्गर्जन्ति पापानि तावद्गर्जेद्यमो नृपः । यावद्विश्वेशशरणं नरो न निरतो ब्रजेत्
प्राप्तविश्वेश्वरावासः पीतोत्तरवहापथाः । स्पृष्टविश्वेशसल्लिङ्गः कक्ष्यातिनघः च्यताम्

करिष्येत्कुपितः कालः किं काशीवासिनां नृणाम् ।

काले शिवः स्वयं कर्णे यत्र मन्त्रोपदेशकः ॥ ४४ ॥

यथाप्रयाति शिशुता कौमारञ्च यथागतम् । सत्वरंगत्वरं तद्वद्यौवनञ्चापिवाञ्छकम्
 यावन्नहिजराकान्तिर्यावन्नेन्द्रियवैकल्यम् । तावत्सर्वफल्युत्पत्तिहृत्वाकाशीभवेत्सुधीः
 अन्यानि कार्कण्ड्वमाणितिसुन्तुकलशोद्वव ! जरैर्वप्रथमं लक्ष्मचित्रं तत्रापिभीर्नहि
 परामृतो हि जरया सर्वैश्च परिभूयते । हृततारुण्यमाणिक्यो धनहीनः पुमानिव
 सुतावाक्यं न कुर्वन्ति पत्नीप्रेमापि मुञ्चति । बान्धवानैवमन्यन्तेजरसाश्लेषितंनरम्
 आश्लिष्टञ्जरयाद्गृष्ट्वा परयोपिद्विशङ्किता । भवेत्पराङ्मुखानित्यंप्रणयिन्यपिकामिनी
 नजरासद्गृशो व्याधिर्नदुःखं जरयासमम् । कारयिष्यपमानस्य जरैव मरणं नृणाम्
 न जीयते तथाकालस्तपसायोगयुक्तिभिः । यथाचिरेणकालेनकाशीषासाद्विजीयते
 विनायज्ञैर्विनादानैर्विनाप्रतजपादिभिः । विनाऽतिपुण्यसम्भारैःकःकाशीम्प्राप्तुमीहते
 काशीप्राप्तिरयं योगः काशीप्राप्तिरिदं तपः ।

काशीप्राप्तिरिदं दानं काशीप्राप्तिः शिवैकता ॥ ५३ ॥

कः कलिः कोऽध्वा कालः का जरा किञ्च दुष्कृतम् ।

का रुजः केऽन्तराया वा श्रिता धाराणसी यदि ॥ ५५ ॥

कलिस्तानेव बाधेत कालस्तांश्च जिवांसति ।

रतांसि तांश्च बाधन्ते ये न काशीं समाश्रिताः ॥ ५६ ॥

काशीसमाश्रितायैश्चयैश्च विश्वेश्वरोऽचिंतः । तारकंज्ञानमासाद्यतेमुक्ताकर्मपाशतः
 धनिनो न तथा सौख्यम्प्राप्नुवन्ति नराः कश्चित् ।

यथा निधनतः काश्यां लभन्ते सुखमव्ययम् ॥ ५८ ॥

वरंकाशीसमावासी नासीनो घृसदाम्पदम् । दुःखान्तंलभतेपूर्वःसुखान्तंलभतेपरः
 स्थितोऽपि भगवानीशो मन्दरं चारुकन्दरम् ।

काशीं विना रतिं नाऽऽप दिघोदासन्प्रोषिताम् ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कन्दैमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
 कालवञ्जनोपायो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

दिवोदासप्रतापवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

दिवोदासं नरपतिकथं देवस्त्रिलोचनः । कार्शीं सन्त्याजयामास कथमागाश्चमन्दरात्
एतदाख्यानमाख्याहि श्रोतॄणाम्प्रमुदे भगोः ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच

मन्दरंगतवान् देवो ब्रह्मणो वाक्यगौरवात् । तपसा तस्य सन्तुष्टो मन्दरस्यैव भूभृतः
गते विश्वेश्वरे देवे मन्दरं गिरिसुन्दरम् । गिरिशेन समञ्जसुरपि सर्वे दिवोकसः
क्षेत्राणि वैष्णवानीह त्यक्त्वा विष्णुरपि क्षितेः । प्रयातो मन्दरं यत्र देवदेव उमाधवः
स्थानानि गाणपत्यानि गणेशोपिततो ब्रजत् । हित्वाहमपि विप्रेन्द्रगतवान् मन्दरं प्रति
सूरः सौराणि सन्त्यज्य गतश्चायतनादरम् ।

स्वं स्वं स्थानं क्षितौ त्यक्त्वा ययुरन्येऽपि निर्जराः ॥ ६ ॥

गतेषु देवसङ्घेषु पृथिव्याः पृथिवीपतिः । चकार राज्यं निर्द्वन्द्वं दिवोदासः प्रतापवान्
विधाय राजधानीं सवाराणस्यां सुनिश्चलाम् । एधाञ्चक्रे महाबुद्धिः प्रजाधर्मेण पालयन्
सूर्यवत्सप्रतपिता दुर्हंदा हृदि नेत्रयोः । सोमवत्सुहृदामासीन्मानसेषु स्वकेष्वपि
अखण्डमाखण्डलवत्कोदण्डं कलयन् रणे । पलायमानैरालोकि शत्रुसैन्यबलाहकैः
सधर्मराजवज्जातो धर्माधर्मविवेक्षकः । अदण्ड्यान्मण्डयन् राजादण्ड्यांश्च परिदण्डयन्
धनञ्जय इवाऽधाक्षीत्परारण्यान्यनेकशः । पाशीव पाशयाञ्चके वैरिषकं विदूरगः
सोऽभूत्पुण्यजनाधीशो रिपुराक्षसवर्धनः । जगत्प्राणसमानश्च जगत्प्राणनतत्परः
राजराजः स एवाभूत्सर्वैरान्धनदः सताम् । स एव हृद्मूर्तिश्च प्रैक्षिष्ट रिपुभीरणे
विश्वेषां सहिदेवानां तपसा रूपभृग्यतः । विश्वेदेवास्ततस्तन्तुस्तुधन्ति च भजन्ति च
असाध्यः सहि साध्यानां बसुभ्यो बसुनाऽधिकः ।

प्रहाणां विप्रहधरो दक्षतोऽजस्ररूपमाक् ॥ १६ ॥

मरुत्क्षानामगणयंस्तुयितांस्तोषयन्गुणैः । सर्वविद्याधरो यस्तु सर्वविद्याधरेष्वपि
अगर्धानैश्च गन्धर्वांश्चक्रेनिजगीतिभिः । ररभ्रुयंश्चरक्षांसि तद्दुर्गं स्वर्गसोदरम्
नागा नागांसिचक्रुश्च तस्य नागबलीयसः । दनुजा मनुजाकारं कृत्वातञ्चसिपेधरे
जाता गुह्यचरा यस्यगुह्यकाःपरितोन्वुषु । संसेविष्यामहे राजन्नसुरास्त्वांस्ववैभवैः
वयं यतस्त्वद्विषये सुरावासोऽपि दुर्लभः । अशिक्षयत्क्षितिपतेरिह यस्यतुरङ्गमान्

आशुगङ्गाशुगामित्वं पावमाने पथि स्थितः ॥ २१ ॥

अगजान्यस्य तुगजान्नगवर्षमसु वर्षमणः । अजस्रदानिनो द्रुष्टाऽभवन्नन्येऽपि दानिनः
सदोजिरे चबोद्धारोयोद्धारश्चरणाजिरे । न यस्यशास्त्रैर्विजितानशास्त्रैःकेनचित्कचित्
ननेत्रविषये जाता विषये यस्य भूभृतः । सदा नष्टपदा द्वेष्यास्तवाऽनष्टपदाःप्रजाः
कलावानेक एवाऽस्ति त्रिदिवेऽपि दिवौकसाम् ।

तस्य क्षोणिभृतः क्षोण्यां जनाः सर्वे कलालयाः ॥ २५ ॥

एकएवहिकामोस्तिस्वर्गसोप्यङ्गवर्जितः । साङ्गोपाङ्गाश्चसर्वेषांसर्वकामाहितद्भुवि
तस्योपघर्तनेप्येको न श्रुतोगोत्रमित्कचित् ।

स्वर्गं स्वर्गं सदामीशो गोत्रमित्परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

क्षयी च तस्य विषये कोप्याऽऽकर्णि न केनचित् ।

त्रिचिष्टपे क्षपानाथः पक्षे पक्षे क्षयीष्यते ॥ २८ ॥

नाके नवप्रहाः सन्ति देशास्तस्याऽनघप्रहाः ॥ २९ ॥

हिरण्यगर्भःस्वर्लोकेऽप्येक एवप्रकाशते । हिरण्यगर्भाःसर्वेषां तत्पौराणामिहालयाः
सप्ताश्व एकः स्वर्लोके नितरां भासतेऽशुमान् ।

सर्वशुकाः प्रतिदिनं बह्वभ्वास्तत्पुरौकसः ॥ ३१ ॥

सदप्सरा यथा स्वभूर्स्तत्पुर्यपिसदप्सराः । एकैव पद्मावैकुण्ठेतस्यपद्माकराःशतम्
अनातयश्च तद्प्रामा नाराजपुरुषाः क्वचित् । गृहे गृहेऽन्नधनदा नाकएकोऽलकापतिः
दिवोदासस्य तस्यैवं काश्यां राज्यं प्रशासतः ।

गतं वर्षं दिनप्रार्थं शरदामयुताष्टकम् ॥ ३४ ॥

गीर्वाणाविप्रतीकारमथ तस्य चिकीर्षवः । गुरुणा मन्त्रयाञ्जुर्धर्मधर्मानुयायिनः
 भवादृशामिष मुने प्रायश्चोर्धर्मचारिणाम् । विबुधाच्चिदधत्येव महतीरापदांततीः
 यद्यप्यसौधराधीशो व्याधिनोद्दुर्धराध्वरैः । तानध्वरभजोऽत्यन्ततथापिसुहृदोनते
 स्वभाव एवद्युसदाभरोत्कर्षा सहिष्णुता । बलिबाणदधीच्याद्यैरपराद्धं किमत्र तैः
 अन्तरायामघन्त्येव धर्मस्यापि पदे पदे । तथापि न निजो धर्मो धर्मधीभिर्विमुच्यते
 अधर्मिणःसमेधन्ते धनधान्यसमृद्धिमिः । अधर्मादेव च परं समूलं यान्त्यधोगतिम्
 प्रजाः पालयनस्य पुत्रानिव निजौरसान् । रिपुञ्जयस्य नाऽल्पोपि बभूवाधर्मसंग्रहः
 षाड्गुण्यवेदिनन्तस्य त्रिशक्त्युजितचेतसः । क्षतुरोपायचित्तस्यनरन्ध्रविचिदुःसुराः
 बुद्धिमन्तोऽपि विबुधा विप्रतीकर्तुमुद्यताः । मनागपि संशेकुरपकर्तुं तदीशितुः
 एकपत्नीव्रताःसर्वेषुमांसस्तस्य मण्डले । नारीषु काचिन्नैवासादपतिव्रतधर्मिणी
 अनधीतो न विप्रोऽभूदशूरो नैव बाहुजः । वैश्योऽनभिन्नो नैवासीदर्थोपार्जनकर्मसु
 अनन्यवृत्तयः शूद्रा द्विजशुश्रूषणम्प्रति । तस्य राष्ट्रे समभवन्दिबोदासस्य भूपतेः
 अविप्लुतब्रह्मचर्यास्तद्राष्ट्रे ब्रह्मचारिणः । नित्यं गुरुकुलाधीना वेदग्रहणतत्पराः
 आतिथ्यधर्मप्रवणा धर्मशास्त्रविचक्षणाः । नित्यंसाधुसमाचारागृहस्थास्तस्यसर्वतः
 तृतीयाश्रमिणो यस्मिन्वन्वृत्तिकृतादराः । निःस्पृहाग्रामवातासुवेदवर्मानुसारिणः
 सर्वसङ्गविनिर्मुक्तानिर्मुक्तानिष्परिग्रहाः । वाङ्मनःकर्मदण्डाढ्यायतयोयत्रनिःस्पृहाः
 अन्येऽनुलोमजन्मानःप्रतिलोमभा अपि । स्वपारम्पर्यतो द्रष्टुं मनाघवर्त्म न तत्यजुः
 अनपत्योनतद्राष्ट्रे धनहीनोऽपि कोपि न । अवृद्धसेवी नो कश्चिदकाण्डमृतिभाक्चन
 नचाटानैववाचाटावञ्जकानो न हिंसकाः । नपाखण्डानवैभण्डानरण्डानच शौण्डिकाः
 श्रुतिघोषो हि सर्वत्र शास्त्रवादः पदेपदे । सर्वत्र सुभगालापा मुदामङ्गलगीतयः
 वीणावेणुप्रवादाश्च मृदङ्गा मधुरस्वनाः । सोमपानं चिनाऽन्यत्र पानगोष्ठीनकर्णगा
 मांसाशिनः पुरोडाशेनैवान्यत्र कदाचन । न दुरोदरिणो यत्र नाधमर्णानतस्कराः
 पुत्रस्यपित्रोःपदयोः पूजनं देवपूजनम् । उपवासो व्रतं तीर्थं देवताराधनम्परम्

नारीणां भर्तृपदयोरर्चनं तद्वचः श्रुतिः । समर्चयन्ति सततं मनुजानिजमप्रजम्
सपर्ययन्ति मुक्षिताभूत्याःस्वामिपदाम्बुजम् । हीनवर्णैरप्रवर्णो वष्यते गुणगौरवैः
वरिवस्यन्तिभूयोऽपित्रिकालंकाशिषेयताः । सर्वत्रसर्वेविद्वांसःसमर्चयन्ते मनोरथैः

विद्वद्विद्वा तपोनिष्ठास्तपोनिष्ठैर्जितेन्द्रियाः ।

जितेन्द्रियैर्हाननिष्ठा ज्ञानिभिः शिष्ययोगिनः ॥ ६१ ॥

मन्त्रपूर्तमहार्हञ्च विधियुक्तं सुसंस्कृतम् । वाडवानां मुखान्तो च ह्ययतेऽहर्निशं हविः
वापीकूपतडागानामारामाणाम्पदै पदे । शुचिभिर्द्रव्यसम्भारैः कर्तारोयत्र भूरिशः
यप्राप्ते हृष्टपुष्टाश्च दृश्यन्तेसर्वजातयः । अनिम्यसेवासम्पन्ना विना मृगयुसौनिकान्
इत्थंतस्यमहीजानेः सर्वत्रशुचिबर्तिनः । उन्मिषन्तोऽप्यनिमिषामनाच्छिद्रंनलेभिरे
अथोवाचामरगुरुर्देवानपस्विकीर्षुकान् । तस्मिन् राजनि धर्मिष्ठेवरिष्ठे मन्त्रवेदिषु

गुरुत्वाच्च

सन्धिविप्रहयानास्तिसंश्रयं द्वैधभावनम् । यथास राजासं वेत्ति नतथाऽत्रापिकश्चन
उपायोप्येक एवास्तित्तुर्ध्विहृदिर्बौकसः । भेदोनामसचेत्सिध्येत्तपोबलिनि तत्रहि
तेनयद्यपिभूमत्राभूमेर्देवाविवासिताः । तथापिभूरिशस्तत्र सन्त्यस्मत्पक्षपातिनः

कालो निमिषमात्रोऽपि यान् विना न सुखं व्रजेत् ।

अस्माकमपि तस्यापि सन्ति ते तत्र मानिताः ॥ ७० ॥

अन्तर्बहिश्चरानित्यं सर्वविश्वम्भूमयः । समागतेषु तेऽप्यत्रसर्वं नः सेत्स्यतिप्रियम्
समकर्ण्य च ते सर्वे त्रिदशागीष्पतीरितम् ।

निर्णोतवन्तस्तस्याऽर्थं तस्मादन्तर्बहिश्चरान् ॥

अभिनन्द्याऽद्य तं सर्वे प्रोचुरित्यम्भवेदिति ॥ ७१ ॥

ततःशक्रःसमाहृत्यबीतिहोत्रम्पुरः स्थितम् । ऊचे मधुरथा वाचा बहुमानपुरःसरम्
ह्यव्यवाहनयामूर्तिस्तव तत्र प्रतिष्ठिता । तामुपासंहर क्षिप्रं विषयात्तस्य भूपतेः

समागतायां तन्मूर्तीं सर्वा नष्टाग्नयः प्रजाः ।

ह्यव्यकव्यक्रिया श्रूमया चिरजिप्यन्ति राजनि ॥ ७५ ॥

प्रजासुखविरकासुराज्यकामदुघासुखे । कृच्छ्रेणोपार्जितोऽपार्थोराजशब्दोऽभिव्यति
प्रजानारंजनाद्राजायेर्यकृद्विरुपाजिता । तस्यां कृच्छ्रां प्रणष्टायां राज्यमेव विनश्यति
प्रजाविरहितो राजाकोशदुर्गबलादिभिः । समृद्धोऽप्यग्निराश्रयैत्कूलसंस्थ इवद्रुमः
त्रिवर्गसाधनाहेतुः प्राक्प्रजैव महीपतेः । क्षीणवृक्ष्याम्प्रजायां वै त्रिवर्गः क्षीयते स्वयम्

क्षीणे त्रिवर्गे सक्षीणा गतिर्लोकद्वयात्मिका ॥ ८० ॥

इतीन्द्रवचनाद्वह्निरहायक्षोणिमण्डलात् । आचर्कर्मनिजाम्मूर्तियोगमायाबलान्वितः
निन्ये नकेवलं त्रेतांजाठराग्निमपिप्रभुः । वज्रिणो वनसावह्निर्निजशक्तिसमन्वितम्
वह्नौस्वर्लोकमापन्नेजातेमध्यन्दिनेनृपः । कृतमाध्याह्निकस्तूर्णप्राग्विशद्वोऽज्यमण्डपम्
महानसाधिकृतयोवेपमानास्ततोमुहुः । भ्रुधार्हमपि भूपालमिदं मन्दं व्यजिह्वपन्

सूपकारा ऊचुः

अत्यहस्करतेजस्कप्रतापविजितानल । किञ्चिद्विज्ञप्तकामाः स्मोप्यकाण्डेरणपण्डित
यदि विश्राणयेद्राजन्मवानभयदक्षिणाम् । तदा विज्ञापयिष्यामः प्रबद्धकरसम्पुटाः
भूसञ्ज्ञयाकृतादेशाः प्रशास्तास्येनभूभुजा । मृदु विज्ञापयाञ्छ्रक्तः पाकशालाधिकारिणा
नजानीमोचयनाथ त्वत्प्रतापभयादितः । कुसुत्याधिकयाविद्वाञ्छ्रो वैश्वानरः पुरात्
कृशानौकृशताम्प्राप्तकथं पाकक्रियाभवेत् । तथाऽपि सूर्यपाकेनसिद्धा पक्तिर्हिकाचन
प्रभोरादेशमासाद्य तामिहैवानयामहे । मन्यामहे च भूजाने! पक्तिरघतनी शुभा
श्रुत्वाऽन्धसिकवाक्यं स महासन्धो महामतिः ।

नृपतिश्चिन्तयामास देवानां वै कृतं त्विदम् ॥ ६१ ॥

क्ष्णं संशीलयंस्तत्र ददर्शतपसो बलात् । न केवलञ्चहौ गेहं हुतभुक्चौदरीर्दरीः
अप्यहासीदितो लोकाजगामचसुरालयम् । भवत्विह हिकाहानिरस्माकं ज्वलनेगते
तेषामेव विश्वाराब्ध हानिरेषा सुपर्षणाम् । तदुचलेन च किं राज्यं भवेदमुररीकृतम्
पितामहेन महतो गौरवात्प्रतिपादिनम् । इति चिन्तयतस्यस्य मध्यलोकशतक्रतोः
पौराः समागता द्वारि सह जानपदैर्नरैः । द्वाऽस्येनचाङ्गयाराहस्ततस्तेन्तः प्रवेशिताः
दस्वोपर्वं यथाहं ते प्रणेमुः क्षोणिचज्जिणम् । केचित्सम्भाषिताराहादरसोदरया गिरा

केचिच्च समुदा दृष्ट्या केचिच्च करसङ्ख्या । विसर्जितासनाराज्ञा बहुमानपुरःसरम्
तेऽजिरे भेजिरे सर्वे रक्षाधिः परित्सेविते । विजितामोदसन्दोहे सुरानोकहसौरभैः

राक्षः शतशलाकस्य च्छत्रस्य च्छायया शुभे ॥ ६६ ॥

विशाम्पतिरथोवाच तन्मुखच्छाययेरितम् ।

विज्ञाय तदभिप्रायमलम्भीत्या पुरीकसः ॥ १०० ॥

विकारकारिभिर्लैर्यदिनीतोऽनलोभुवः । एतावतैवकिसिद्बुध्येन्मयि तेषाम्पराभवः
विकीर्णुं रहमेवासंपौराः कार्यमिदम्पुरा । परं ह्युपेक्षितप्रायं दिष्ट्यातैः स्मारितञ्चिरात्
गतोऽनलोऽभवद्द्वं जगत्प्राणोऽपि यात्वितः ।

वरुणः पुष्पवन्ताभ्यामविलम्बम्प्रयात्वितः ॥ १०३ ॥

अहमेव हि पर्जन्योभविष्यामि तपोबलात् । मुदे जनपदानाञ्च सर्वसस्यसमृद्धिदः
तपोयोगबलेनाहमात्मानम्परिकल्प्य च । त्रिधावह्निरूपेण पत्नीष्टिव्युष्टिकृत्तमः
अन्तर्बहिर्भ्योद्वेधानमस्वत्पदवीं दधत् । सर्वेषामेववेत्स्यामित्स्वन्तःकरणचेष्टितम्
विधायचाम्भसीमूर्तिं सर्वजीवैकजीवनीम् । प्रजाःसज्जीवयिष्यामिकिञ्चिद्विषयेमम
यद्रास्तेमसापौराप्रस्यैतेशशिभास्करौ । तदानकिञ्चिनाताभ्यांजीवामःक्षितिमण्डले
श्रियञ्चान्द्रमसीम्प्राप्य ह्यादयिष्याम्यहम्प्रजाः ।

निशाचरेण किमिह क्षयिणा च कलङ्किना ॥ १०६ ॥

अस्मत्कुलेमूलभूतोभास्करोमान्य एव नः । स तिष्ठतु सुखेनाऽत्रयातायातं करोतु ।
स एकोजगतामात्मा विशेषात्कुलदेवता । सोपकर्तुं नवेत्येव तस्येदं व्रतमुत्तम
इति नरपतिवाचसुधारसौं श्रुतिपुटकैः परिपीय पौरवर्गः ।

विकसितघटनाम्बुजो जगाम निजनिजमालयमाधिमुकचित्तः ॥ ११२ ॥

क्षितिपतिरपि तत्तथाविधाय तपसोऽसाध्यमिहास्तिकित्रिलोक्याम्

अतिवह्व्यकर्मसौ दधच्च तेजो द्यसदां शल्यमिषोच्चकैर्बभूव ॥ ११३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे दिवोदासप्रतापवर्णनं नाम त्रिंशत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

काशीवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अथ मन्दरकन्दरोदरोल्लसदसमद्युतिरत्नमन्दरे ।
परितः समधिष्ठितामरे निजशिखरैर्ध्वसनीकृताम्बरे ॥ १ ॥
निवसञ्जगदीश्वरो हरः कृशरजनीशकलामनोहरः ।
लभते स्म न शर्म शङ्करः प्रसरत्काशिवियोगजञ्जरः ॥ २ ॥
विरहानलशान्तये तदा समलेपि त्रिपुरारिणाऽपि यः ।
मलयोद्भव पङ्क एव सम्प्रतिपेदे ह्यधुनापि पांसुताम् ॥ ३ ॥
परितापहराणि पश्चिनीनां मृदुलान्यपि कङ्कणीकृतानि ।
गदितानि यद्वीश्वरेण सर्पास्तदभूत्सत्यमहो महेश्वरेच्छा ॥ ४ ॥
यदु दुग्धनिधिर्निमध्य देवैर्मृदुसारः समकर्षि पूर्णचन्द्रः ।
स बभूव कृशो वियोगतप्तेश्वरमूर्धोष्णपरिक्षरच्छरीरः ॥ ५ ॥
यद्वीधरदेश जाततापः पृथले मौलिजटानि कुञ्जकोणे ।
परितापहरां हरस्तदानीं द्युनदीं तामधुनापि नोज्जहीते ॥ ६ ॥
महतो विरहस्य शङ्करः प्रसभं तस्य वशी वशङ्कतः ।
विधिदे न सुरैः सदोगतैरपि संवीतसुतापवेष्टितः ॥ ७ ॥
अति चित्रमिदं यदात्मना शुचिरप्येष कृपीटयोनिना ।
स्वपुरीविरहोद्भवेन वै परिताप्येत जगत्प्रयेश्वरः ॥ ८ ॥
निजभालतलं कलानिधेः कलया नित्यमलङ्करोति यः ।
स तद्वीश्वरमप्यतापयद्विधुरेको विपरीत एव तु ॥ ९ ॥
गरलं गलनालिकातले विलसेदस्य न तेन तापितः ।

अमृतांशुतुषारदीधितिप्रचयैरेव तु तापितोऽद्भुतम् ॥ १० ॥
 विलसद्धरिचन्दनोदकच्छटयातद्विरहापनुत्तये ।
 हृदयाहितयाप्यदूयतप्रसरद्भोगिफटाभर्चनेतु ॥ ११ ॥
 सकलम्भ्रममेष नाशयेत्स्वगहित्वाद्यपदेशजं हरः ।
 इदमद्भुतमस्य यद् भ्रमः स्फुटमाल्येऽपि महाहिसम्भवः ॥ १२ ॥
 स्मृतिमात्रपथङ्गतोऽपि यस्त्रिविधन्तापमपाकरोत्यलम् ।
 स हि काशिवियोगतापितः स्वगतं किञ्चिदजल्पदित्यजः ॥ १३ ॥
 अपि काशिसमागतोऽनिलो यदि गात्राणि परिष्वजेन्मम ।
 दधुः परिशान्तिमेति तन्नहि मानी परिगाहनैरपि ॥ १४ ॥
 अगमिष्यद्दहो कथं स तापो ननु दक्षाङ्गजयाय ऽधितः ।
 मम जीवा तुलता भट्टित्यलं ह्यमविष्यन्नहि माद्रिजा यदि ॥ १५ ॥
 न तथोज्झितदेहया तथा मम दक्षोद्भवया मनोऽदुनोत् ।
 अविमुक्तवियोगजन्मना परिदूयेत यथा महोष्मणा ॥ १६ ॥
 अयि काशि मुदा कदा पुनस्तव लप्स्ये सुखमङ्गसङ्गजम् ।
 अतिशीतलितानि येन मेऽद्भुतगात्राणि भवन्ति तत्क्षणात् ॥ १७ ॥
 अयि काशि चिनाशिताघसङ्के तव विश्लेषज आशुशुक्ष्णिः ।
 अमृतांशुकलामृदुद्रवैरतिचित्रं हचिपेव वर्धते ॥ १८ ॥
 अगमन्मम दक्षजावियोगजो दधुः प्राग्निमवत्सुतौषधेन ।
 अधुना खलु नैवशान्तिमीयां यदि कार्शीं न विलोकयेहमाशु ॥ १९ ॥
 मनसेतिगृणंस्तदाशिवः सुनरां सम्भृततापवैकृतः ।
 जगदम्बिकयाधियाञ्जनन्या कथमप्येष चियुक्त इत्यमानि ॥ २० ॥
 प्रियया वपुवोऽर्धयाऽनयाप्यपरिज्ञातवियोगकारणः ।
 वचनैरुपस्यते स्म स प्रणतप्राणिनिदाघदारणः ॥ २१ ॥

श्रीपार्वत्युवाच

तव सर्वगसर्वमस्तिहस्तेषिलसद्योगधियोग एव कस्ते ।

तव भूतिरहो विभूतिदात्री सकलापत्कलिकाऽपि भूतधात्री ॥ २२ ॥

त्वदनीक्षणतः क्षणाद्विभो! प्रलयं यान्ति जगन्ति शोच्यवत् ।

च्यवते भवतः कृपालवादितरोपीश नयस्त्वयोङ्कृतः ॥ २३ ॥

भवतः परितापहेतवो न भवन्तीन्दुदिवाकराग्रयः ।

नयनानि यतस्त्रिनेत्र तेऽमी प्रणयिन्यस्तिलसज्जला च मौलौ ॥ २४ ॥

भुजगा भुजगाः सदैव तेऽमी न बिभं सङ्क्रमते च नीलकण्ठ !।

अहमस्मि च वामदेव वामा तव वामं च पुरत्र चित्तयुक्ता ॥ २५ ॥

इति संसृतिसम्बीजजनन्यामिहितेहिते । गिरांनिगुम्फेगिरिशोषकुमप्याददे गिरम्

ईश्वर उवाच

अयि काशीत्यष्टमूर्तिर्भवोभावाष्टकोऽभवत् । सत्वरंशिवयाज्ञायिध्रुवंकाश्याहृतोहरः

अथ बालसखीभूततत्तत्काननवीरुधम् ।

शिवा प्रस्तावयाञ्चक्रे विमुक्तां मुक्तिदाम्पुरीम् ॥ २८ ॥

पार्वत्युवाच

गगनतलमिलितसलिले प्रलयेऽपि भवत्रिशूलपरिविधृताम् ।

कृतपुण्डरीकशोभां स्मरहरकाशीम्पुरीं यावः ॥ २९ ॥

धराधरेन्द्रस्य धरातिसुन्दरा न मां तथास्यापि धिनोति धूर्जटे !।

धरागतापीह नयाध्रुवन्धरापुरी धुरीणा तव काशिका यथा ॥ ३० ॥

न यत्र काश्यांकलिकालजम्भयं न यत्र काश्या मरणात्पुनर्भवः ।

न यत्र काश्यांकलुषोद्भवम्भयंकथं विभो! सा नयनातिथिर्भवेत् ॥ ३१ ॥

किमत्र नो सन्ति पुरः सहस्रशः पदेपदे सर्वसमृद्धिभूमयः ।

परं न काशीसदृशीदृशोः पदं क्वचिद्गता मे भवता शपे शिव !॥ ३२ ॥

त्रिविष्टपे सन्ति नक्षिम्पुरः शतं समस्तकौतूहलजन्मभूमयः ।

तुष्पीभवन्तीह च साः पुरः पुरः पदम्पुरारे भवतोभवद्विषः ॥ ३३ ॥

न केवलं काशिबियोगजो उचरः प्रबाधते त्वान्तु तथा यथाऽत्रमाम् ।
 उपाय एषोऽत्रनिदाघशान्तये पुरी तु सा वा मम जन्मभूरथ ॥ ३४ ॥
 मया न मेने मम जन्मभूमिका बियोगजन्मापरिदाघ ईशितः ।
 अथाप्य कार्शीं परितः प्रशान्तिदां समस्तसन्तापविघातहेतुकाम् ॥
 न मोक्षलक्ष्म्योऽत्र समक्षमीक्षितास्तनूभृता केनचिदेव कुत्रचित् ।
 अवैम्यहं शर्मद् सर्वशर्मदासरूपिणी मुक्तिरसौ हि काशिका ॥ ३६ ॥
 न मुक्तिरस्तीह तथा समाधिना स्थिरेन्द्रियत्वोऽङ्किततत्समाधिना ।
 क्रतुक्रियाभिर्न न वेदविद्यया यथा हि काश्याम्परिहाय विग्रहम् ॥ ३७ ॥
 न नाकलोके सुखमस्ति तादृशं कुतस्तु पातालतलेऽतिसुन्दरे ।
 वार्ताऽपि मर्त्ये सुखसंश्रया क्व वा काश्यां हि यादृक् तनुमात्रधारिणि ।
 क्षेत्रे त्रिशूलिन्मघतोऽधिमुक्ते विमुक्तिलक्ष्म्या न कदापि मुक्ते ।
 मनोऽपि यः प्राणिवरः प्रयुङ्क्ते षडङ्गयोगं स सदैव युङ्क्ते ॥ ३९ ॥
 षडङ्गयोगाच्च हि तादृशी नृभिः शरीरसिद्धिः सहसाऽत्र लभ्यते ।
 सुखेन कार्शीं समवाप्य यादृशी दृशीं स्थिरीकृत्य शिव त्वयि क्षणम् ॥ ४० ॥
 वरं हि तिर्यक्त्वमबुद्धिचैभवं नमानवत्वम्बहु बुद्धिभाजनम् ।
 अकाशिसन्दर्शननिष्फलोदयं समन्ततः पुष्करबुदुबुदोपमम् ॥ ४१ ॥
 दृशीं कृतार्थं कृतकाशिदर्शने तनुः कृतार्थां शिवकाशिवासिनी ।
 मनः कृतार्थं धृतकाशिसंश्रयं मुखं कृतार्थं कृतकाशिसम्मुखम् ॥ ४२ ॥
 वरं हि तत्काशिरजोऽतिपावनं रजस्तमोर्ध्वंसि शशिश्रमोऽज्ज्वलम् ।
 कृतप्रणामैर्मणिकर्णिकाभुवे ललाटं यद्बहुमन्यते सुरैः ॥ ४३ ॥
 न देवल्लोको न च सत्यलोको न नागलोको मणिकर्णिकायाः ।
 तुलां ब्रजैद्यत्र महाप्रयाणकृच्छ्रतिर्भवेद् ब्रह्मरसायनास्पदम् ॥ ४४ ॥
 महामहोभूर्मणिकर्णिकास्थलीतमस्ततिर्यत्र समेति सङ्क्षयम् ।
 परः शतैर्जन्मभिरेघितापि या दिवाकराग्नीन्दुकरैरनिग्रहा ॥ ४५ ॥

किमु निर्वाणपदस्य भद्रपीठं मृदुलं तल्पमथोनु मोक्षलक्ष्म्याः ।
 अथवा मणिकर्णिकास्यली परमानन्दसुकन्दजन्मभूमिः ॥ ४६ ॥
 समतीतविमुक्तजन्तुसङ्ख्या क्रियते यत्र जनैः सुलोपविष्टैः ।
 विलसद्दुद्युतिसूक्ष्मशर्कराभिः स्ववपुःपातमहोत्सवामिलाषैः ॥ ४७ ॥

स्कन्द उवाच

अपर्णापरिवर्ण्येति पुरीं वाराणसीमुने !। पुनर्विज्ञापयामासकाशीप्राप्त्यं पिनाकिनम्
 श्रीपार्वत्युवाच

प्रमथाधिप ! सर्वेश ! नित्यस्वाधीनवर्तन । यथानन्दवनं यायां तथा कुरु वरप्रद !
 जितपीयूषमाधुर्यां काशीस्तवनसुन्दरीम् ।
 अथाकर्ण्यह मुदितो गिरिशो गिरिजां गिरम् ॥ ५० ॥

श्रीदेवदेव उवाच

अयिप्रियतमेगौरित्वद्भागमृतसीकरैः । आप्यायितोस्मिन्नितरांकाशीप्राप्त्यंयतेधुना
 त्वं जानासि महादेवि ममयत्तन्महद्द्वयम् । अभुक्तपूर्वमन्येन वस्तूपाशनामिनेतरत्
 पितामहस्य वचनाद्विबोदासे महीपती । धर्मेण शासतिपुरीं क उपायोविधीयताम्
 कथं स राजार्थमिष्टः प्रजापालनतत्परः । वियोज्यतेपुरःकाश्याद्विबोदासोमहीपतिः
 अधर्मवर्तिनो यस्माद्विघ्नः स्यान्नैतरस्य तु ।

तस्मान्कं प्रेषयामीशे यस्तं काश्या वियोजयेत् ॥ ५५ ॥

धर्मवर्तमानुसरतां यो विघ्नंसमुपाचरेत् । तस्यैवजायते विघ्नः प्रत्युत प्रेमवर्धिनि॥
 विनाच्छिद्रेण तं भूषं नोत्सादयितुमुत्सहे । मयैव हियतोरक्ष्याः प्रियेधर्मधुरन्धराः
 न जरा तमतिकामेव तंमृत्युर्जिघांसति । व्याधयस्तं न बाधन्ते धर्मवर्तमभृद्त्रयः
 इतिसञ्चिन्तयन्देवो योगिनी चक्रमग्रतः । ददर्शातिमहाप्रौढं गाढकार्यस्य साधनम्
 अथदेव्या समालोच्य व्योमकेशोमहामुने !। योगिनीवृन्दमाह्वयजगौवाक्पमिर्द हरः
 सत्वरं यात योगिन्यो मम वाराणसीं पुरीम् ।

यत्र राजा दिबोदासो राज्यं धर्मेण शास्त्यलम् ॥ ६१ ॥

स्वधर्मविच्युतः काशीं यथातूर्ण्यजेन्नृपः । तद्योपञ्जरतप्राज्ञायोगमभ्याखलान्विताः
 यथापुनर्नवीकृत्य पुरीं वारम्भसीमहम् । इतःप्रयामियोगिन्यस्तथाक्षिप्रविधीयताम्
 इति प्रसादमासाद्य शासनं शिरसावहन् । कृतप्रणामोनिर्यातोयोगिनीनांगणस्ततः
 ययुराकाशमाविश्यमनसोप्यतिरंहसा । पररूपरंभाषमाणायोगिन्यस्तामुदान्विताः
 अद्य धन्यतराः स्मोऽवै देवदेवेन यत्स्वयम् । कृतप्रसादाःप्रहिताःश्रीमदानन्दकाननम्
 अद्यसद्यो महालाभावभूतानोतिदुर्लभौ । त्रिनेत्रराजसम्मानस्तथाकाशीविलोकनम्
 इति मुदितमनाः सयोगिनीनां निकुरम्बस्त्वधमन्दराद्रिकुञ्जात् ।

नभसि लघुकृतप्रयाणवेगो नयनातिध्यमलम्भयत्पुरीं ताम् ॥ ६८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यासंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
 पूर्वार्धे काशीवर्णनं नामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुःषष्टियोगिन्यागमनवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अथ तद्योगिनीवृन्दं दूराद्दृष्टिं प्रसार्य च । स्वनेत्रदैर्घ्यनिर्माणंप्रशंसत्सफलान्वितम्
 दिव्यप्रासादमालानां पताकाश्चलपल्लवाः । सादरं दूरमार्गस्थान्पान्थानान्द्वयतीरिव
 चञ्चत्प्रासादमाणिक्यैर्धिजृम्भितमरीचिभिः ।

सुनीलमपि च व्योम धीक्ष्यमाणं सुनिर्मलम् ॥ ३ ॥

द्वेषत्वं माययाच्छाद्यवेणुकार्पटिकोचितम् । विधायकाशीमविशद्योगिनीचक्रमक्रमम्
 काश्चिच्च योगिनीभूता काचिज्जाता तपस्विर्ना ।

काचिद् बभूव सैरन्ध्री काचिन्मासोपवासिनी ॥ ५ ॥

मालाकारबधूःकाचित्काचिन्नापितसुन्दरी । सूतिकर्मविचारज्ञाऽपरामैषज्यकोविदा

वैश्या च काचिद्भवत्कयविक्रयचञ्चुरा ।

व्यालप्राहिण्यभूत्काचिद्वासी धात्री च काचन ॥ ७ ॥

एका च नृत्यकुशला त्वन्यागानविशारदा । अपरा वेणुवाद्दशा परावीणाधराऽभवत्
मृदङ्गवादनज्ञाऽन्या काचित्तालकलावती ।

काचित्कार्मणतस्त्वज्ञाकाचिन्मौक्तिकगुम्फिका ॥ ६ ॥

गन्धभागविधिज्ञान्याकाचिदक्षकलालया । आलापोलासकुशलाकाचिश्चत्वरधारिणी
वंशाधिरोहणेदक्षा रज्जुमार्गेण चेतरा । काचिद्वातुलचेष्टाऽभूत्पथि वीधरवेष्टना ॥
अपत्यदाऽनपत्यानापरातत्रपुरेऽवसत् । काचित्कराङ्घ्रिरेखाणालक्षणा निषिकेतिष
चित्रलेखननैपुण्यात्काचिज्जनमनोहरा । वशीकरणमन्त्रज्ञा काचित्त्र चचार ह ॥

गुट्टिकासिद्धिदा काचित्काचिदञ्जनसिद्धिदा ।

धातुवादविदग्धाऽन्या पादुका सिद्धिदा परा ॥ १४ ॥

अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं वाक्स्तम्भं चाप्यशिक्षयत् ।

खेचरीत्वं ददौ काचिदद्दृश्यत्वं परा ददौ ॥ १५ ॥

काचिदाकर्षणी सिद्धिददाबुष्पाटनंपरा । काचिन्निजाङ्गसौन्दर्ययुवचित्तविमोहिनी
चिन्तितार्थं प्रदाकाचिन्काचिज्ज्योतिः कलावती ।

इत्यादिवेशषमाषाभिरनुवृत्त्य समन्ततः ॥ १७ ॥

प्रन्यङ्गण प्रतिगृहं प्राविशद्योगिनीगणः । इत्थमश्र्वचरन्त्यस्तायोगिन्योऽहर्निशंपुरि
न च्छिद्रं लेभिरे काऽपि नृपविप्रचिकीर्षवः ।

ततः समेत्य ताः सर्वा योगिन्योबन्ध्यवाञ्छिताः ।

तस्थुः सम्मन्थ्य तत्रैव न गता मन्दरं पुनः ॥ १६ ॥

प्रभुकार्यमनिष्पाद्यसदःसम्भावनेधितः । कःपुरःशक्नुयात्स्वातुंस्वामिनोक्षतविप्रहः
अन्यश्चचिन्तितंताभिर्योगिनीभिरिदंमुने ! प्रभुं धिनापिजीवामोनतुकाशीं धिनापुनः
प्रभू रुष्टोऽपि सदभृन्वे जीविकामात्रहारकः । काशीहरेत्करादुग्रहापुरुषार्थचतुष्टयम्
नाद्यापि काशीं सन्त्यज्य तदारभ्य महामुने !

योगिन्योऽन्यत्र तिष्ठन्ति चरन्त्योऽपि जगत्त्रयम् ॥ २३ ॥

प्राप्यापिथ्रीमतींकाशींयस्तिथिक्षतिदुर्मतिः । सएवप्रत्युतत्यकोधर्मकामार्थमुक्तिभिः
कःकाशीं प्राप्यदुबुद्धिरपरत्रयियासति । मोक्षनिक्षेपकलशीं तुच्छश्रीकृतमानसः
विमुखोपीश्वरोऽस्माकं काशीसेधनपुण्यतः ।

समुखो भविता पुण्यं कृतकृत्याःस्म तद्वयम् ॥ २६ ॥

द्विनैः कतिपर्यैरेव सर्वज्ञोऽपि समेष्यति । चिनाकाशींन रमते यतोऽन्यत्रत्रिलोचनः
शम्भोःशक्तिरियंकाशीकाचित्सर्वरगोचरा । शम्भुरेवहिजानीयादेतस्याःपरमंसुखम्
इतिनिश्चित्य मनसि शम्भोरानन्दकानने । अतिष्ठद्योगिनीवृन्दंकयाचिन्माययावृतम्

व्यास उवाच

इत्थंसमाकर्ण्यमुनिः पुनःपप्रच्छयण्मुखम् । कानिकानिचनामानितासां तानिवदेश्वर
भजनाद्योगिनीनां च काश्यां किं जायते फलम् ।

कस्मिन्पर्वणि ताः पूज्याः कथं पूज्याश्च तद्वद ॥ ३१ ॥

श्रुत्वेतिप्रश्नमीमेयो योगिनीसंश्रयंततः । प्रत्युवाचमुनेवचिमृणोत्वघहितोभवान्

स्कन्द उवाच

नामधेयानि वक्ष्यामि योगिनीनां घटोद्भव ! ।

आकर्ण्य यानि पापानि क्षयन्ति भविनां क्षणात् ॥ ३३ ॥

गजानना सिंहमुखी गृध्रास्याकाकतुण्डिका । उग्रप्रीवा हयप्रीवाघाराहरीशरभानना
उलूकिका शिवारावामयूरी विकटानना । अष्टवक्राकोटराक्षी कुब्जाविकटलोचना
शुष्कोद्री ललज्जिह्वाश्वदंद्राघानरानना । ऋक्षाक्षीकेकराक्षीचवृहत्तुण्डासुराप्रिया
कपालहस्तारक्ताक्षी शुक्लीशयेनी कपोतिका ।

पद्माहस्ता दण्डहस्ता प्रचण्डा चण्डविक्रमा ॥ ३७ ॥

शिशुप्री पापहन्त्री च कालीकधिरपायिनी । घसाधयागर्भमक्षाशघहस्तान्त्रमालिनी
स्थूलकेशी बृहत्कुक्षिः सर्पास्या प्रेतवाहना । दन्दशूककराक्रौञ्चीमृगशीर्षावृषानना
व्यात्तास्याधूमनिःश्वासान्योमैकधरणोर्ध्वदूक ।

तापनी शोषणीदृष्टिः कोटरी स्थूलनासिका ॥ ४० ॥

विद्युत्प्रभा बलाकास्यामार्जारीकटपूतना । अट्टाट्टहासा कामाक्षीमृगाक्षीमृगलोचना
नामानीमानि योमर्त्यं षतुःषष्टिं दिनेदिने । जपेत्त्रिसन्ध्यं तस्येह दुष्टबाधाप्रशामयति
नडाकिन्यो न शाकिन्यो न कूष्माण्डा न राक्षसाः ।

तस्य पीडां प्रकुर्वन्ति नामानीमानि यः पठेत् ॥ ४३ ॥

शिशूनां शान्तिकारीणिगर्भशान्तिकराणि च । रणेराजकुले वापि विवादे जयदान्यपि
लभेदभाषितां सिद्धिं योगिनीपीठसेवकः ।

मन्त्रान्तराप्यपि जपस्तत्पीठे सिद्धिभाग्भवेत् ॥ ४५ ॥

बलिपूजोपहारैश्च धूपदीपसमर्पणैः । क्षिप्रं प्रसन्ना योगिन्यः प्रयच्छेयुर्मनोरथान्
शरत्कलेमहापूजांतत्र कृत्वा विधानतः । हवीं विहुत्वा मन्त्रज्ञो महतीं सिद्धिमाप्नुयात्
आरभ्याश्वयुजःशुक्लां तिथिं प्रतिपदं शुभाम् । पूजयेद्बुधमीं यावन्नरश्चिन्तितमाप्नुयात्
कृष्णपक्षस्य भूतायामुपवासी नरोत्तमः । तत्र जागरणं कृत्वा महतीं सिद्धिमाप्नुयात्
प्रणवादिषतुर्धनैर्नामभिर्भक्तिमाह्वरः । प्रत्येकं हवनं कृत्वा शतमष्टोत्तरं निशि
ससर्पिणा गुग्गुलुना लघुकोलिप्रमाणतः ।

यां यां सिद्धिमभीप्सेत तां तां प्राप्नोति मानवः ॥ ५१ ॥

चैत्रकृष्णप्रतिपदि तत्र यात्रा प्रयत्नतः । क्षेत्रविघ्नप्रशान्त्यर्थं कर्तव्या पुण्यकृद्जनैः
यात्रां च सांवत्सरिकीं यो न कुर्याद्वज्रया ।

तस्य विघ्नं प्रयच्छन्ति योगिन्यः काशिवासिनः ॥ ५३ ॥

अग्रे कृत्वा स्थिताः सर्वास्ताः काश्यां मणिकर्णिकाम् ।

तन्नमस्कारमात्रेण नरोविघ्नैर्न बाध्यते ॥ ५४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
पूर्वार्धे षतुःषष्टियोगिन्यागमनंनामपञ्चदशवारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

लोलार्कवर्णनम्

स्कन्द उवाच

गतेऽथ योगिनीवृन्दे देवदेवोद्यतोद्भव !। कार्शाप्रवृत्ति जिज्ञासुः प्राहिणोदंशुमालिनम्

देवदेव उवाच

समाश्वत्वरितोयाहिपुरीवाराणसीशुभाम् । यत्रास्तिसदिवोदासोधर्ममूर्तिर्महीपतिः
तस्यधर्मचिरोधेनयथा तत्क्षेत्रमुद्रसेत् । तथा कुरुष्व भोःक्षिप्र मावमंस्थाश्च तंनृपम्
धर्ममार्गप्रवृत्तस्य क्रियते याऽवमानना । साभवेदात्मनो नूनं महदेनश्च जायते
तव बुद्धिचिकासेन च्यवतेचेत्सधर्मतः । नृणासानगरी भानोत्वयोद्वास्याऽसहैःकरः
कामक्रोधौलोभमोहौ मत्सराहङ्कृतीअपि । नैतन्नभ्युत्थेत्तयत्कालोऽपिनतं जयेत्
यावद्धर्मेस्थिरा बुद्धिर्यावद्धर्मेस्थिरं मनः । तावद्विघ्नोदयः कास्ति विपद्यपि रवे नृपु
सर्वेषामिह जन्तूना त्वं वेत्सि ब्रध्नचेष्टितम् । अत एव जगत्क्षुभ्रंजत्वंकार्यसिद्धये
रविरादायदेवाज्ञामूर्तिमन्याप्रकल्प्य च । नभोध्वगामहोरात्रं कार्शीमभिमुखोऽभवत्
मनसातीषलोलोऽभूत्कार्शादर्शनलालसः । सहस्रचरणोऽप्यं च्छत्तदा खेनैकपादताम्
हंसत्वंतस्यसूर्यस्य तदासफलतामगात् । सदानभोध्वनीनस्यकाशीप्रति ,यियासतः
अथ कार्शीं समासाद्य रचिरन्तर्बहिश्चरन् । मनागपि न तद्रूपे धर्मध्वस्तिसर्वैक्षत
विभावसुर्वसन्काश्या नानारूपेण बत्सरम् । इच्छिन्नावसरं प्राप तत्र राक्षिसुधर्मिणि
कदाचिदतिथिभूतोदुर्लभं प्रार्थयन् रविः । न तस्य राहो विषये दुर्लभं किञ्चिदैक्षत
कदाचिद्याचको जातो बहुदोऽपि कदाऽप्यभूत् ।

कदाचिद्दीनता प्राप्तः कदाचिद्गणकोऽप्यभूत् ॥ १५ ॥

वेद्बाह्यांक्रियाञ्चापिकदाचित्प्रत्यपादयत् । कदाचित्स्थापयामासदृष्टप्रत्ययमैहिकम्
कदाचिज्जटिलो जातः कदाचिच्च दिग्म्बरः ।

स कदाचिज्जाङ्गलिको चिषविद्याचिशारदः ॥ १७ ॥

सर्वपाखण्डधर्मज्ञः कदाचिदुब्रह्मवाद्यभूत् ।

ऐन्द्रजालिक आसीच्च कदाचिद् भ्रामयज्जनान् ॥ १८ ॥

नानाव्रतोपदेशैश्च कदाचित्स पतिव्रताः । क्षोभयामास बहुशः स द्रष्टान्तकथानकैः

कापालिकव्रतधरः कदाचिञ्चाभवद्द्विजः । कदाचिदपि विश्वानी धातुवादी कदाचन

कचिद्विप्रः कचिद्राजपुत्रो वैश्योऽन्त्यजः कचित् ।

ब्रह्मचारी कचिदभूद् गृहीवनचरः कचिन् ॥ २१ ॥

यतिः कदाचिदितिस रूपैर्भ्रामयज्जनान् । सर्वविद्यासुकुशलः सर्वज्ञश्चाभवत्कचित्

इति नानाविधैरूपैश्चरन्काश्या ग्रहेश्वरः । न कदापि जने कापि च्छिद्रं प्राप कदाचन

तनो निनिन्द चात्मानं चिन्तार्तः कश्यपात्मजः ।

धिकपरप्रेष्यतां यस्यां यशो लभ्येत न कचित् ॥ २४ ॥

मार्तण्ड उवाच

मन्दरं यदि याम्यद्य सद्यस्तत्क्रुद्धन्यर्ताश्वरः ।

अनिष्पादितकार्यार्थे मयि सामान्यभृत्यचत् ॥ २५ ॥

कोपमप्युररीकृत्य यदि यायां कथञ्चन । कथंतिष्ठे पुरस्तस्य तर्हि वै मूढभृत्यवत्

अथोङ्कृत्यावहेलंवायामि चेच्चकथञ्चन । क्रोधाञ्जिरीक्षेत्त्र्यक्षो मांविषंपेयन्तदामया

हरकोपानलेनूनं यदियातःपतङ्गताम् । पितामहोऽपि मांत्रातुंतदा शङ्क्यतिनस्फुटम्

स्थास्याम्यत्रेव तन्नित्यं न त्यक्ष्यामि कदाचन ।

क्षेत्रसंन्यासविधिना वाराणस्यां कृताश्रमः ॥ २६ ॥

पुरः पुरारैः कार्याथमनिवेद्येह तिष्ठतः । यत्पापंमाविमेतस्य काशीपापस्य निष्कृतिः

अन्यान्यपि च पापानि महान्त्यल्पानि यानि च ।

क्षयन्ति तानि सर्वाणि काशीं प्रविशतां सताम् ॥ ३१ ॥

बुद्धिपूर्वमयाचैतन्नपापं समुपार्जितम् । पुरारिणैव हि पुराऽऽशासिधर्मो हिरक्ष्यताम्

धर्मो हि रक्षितोयैव देहे सत्वरगतचरे । त्रैलोक्यं रक्षितं तेनकिं कामार्थैः सुरक्षितैः

रक्षणीयोयदिभवेत्कामः कामारिणाकथम् । क्षणादनङ्गतांनीतो बहूनां सुखकार्यपि
 अर्थश्चेत्सर्वधारश्च इति कौक्षिदुदाहृतम् । तत्कथं न हरिश्चन्द्रोऽरक्षत्कुशिकनन्दने
 धर्मस्तु रक्षितः सर्वैरपि देहव्ययेन च । शिबिप्रभृतिभूपालैर्दधीचिप्रमुखैर्द्विजैः
 अयमेव हि वै धर्मः काशीसेवनसम्भवः । रुषितादपि दद्रान्मां रक्षिष्यति न संशयः
 अवाप्यकाशीदुष्प्रापांको जहातिसचेतनः । रत्नंकरस्थमुत्सृज्यकः काचंसञ्जिघृक्षति
 वाराणसीं समुत्सृज्य यस्त्वन्यत्र गियासति ।

हत्वा निधानं पादेन सोऽर्थमिच्छति भिक्षया ॥ ३६ ॥

पुत्रमित्रकलत्राणिक्षेत्राणिच धनानिच । प्रतिजन्मेह लभ्यन्ते काश्येका नैव लभ्यते
 येनलक्ष्म्यापुरी काशीत्रैलोक्योद्धरणक्षमा । त्रैलोक्यैश्वर्यदुष्प्रापं तेनलब्धं महासुखम्
 कुपितोऽपि हि मे द्रुहस्तेजोहानि विधास्यति ।

काश्यां च लप्स्ये तत्तेजो यद्वै स्वात्मावबोधजम् ॥ ४२ ॥

इतराणीह तेजांसिभासन्ते तावदेवहि । खद्योताभानि यावन्नोजृम्भने काशिजंमहः
 इति काशीप्रभावज्ञो जगच्चक्षुस्तमोनुदः ।

कृत्वाद्वादशधात्मानं कशीपुर्या व्यवस्थितः ॥ ४४ ॥

लोलार्क उत्तरार्कश्च साम्बादित्यस्तथैवच । चतुर्थोद्गुपदादित्योमयूखादित्यएव च
 खण्डोलकञ्जारुणादित्यो वृद्धकेशवसञ्ज्ञकौ ।

दशमो विमलादित्यो गङ्गादित्यस्तथैव च ॥ ४६ ॥

द्वादशश्चयमादित्यःकाशिपुर्यावटोद्भव । तमोऽधिकेभ्योदुष्टेभ्यः क्षेत्रंरक्षन्त्यमीसदा
 तस्याऽर्कस्य मनो लोलं यदासीत्काशिदर्शने ।

अतो लोलार्क इत्याख्या काश्यां जाता विषस्वतः ॥ ४८ ॥

लोलार्कस्त्वसि सम्भेदे दक्षिणस्यां दिशि स्थितः ।

योगक्षेमं सदा कुर्यात्काशीष्वासिजनस्य च ॥ ४९ ॥

मार्गशीर्षसप्तम्यांपृष्ठ्याम्बा रविचासरे । विधायघार्षिकीयात्रानरःपापैःप्रमुच्यते
 कृतानि यानि पापानि नरैः संबत्सरावधि ।

नश्यन्ति क्षणतस्तानि षष्ठ्यर्के, लोलदर्शनात् ॥ ५१ ॥

नरः स्नात्वाऽसिसम्भेदे सन्तर्प्यं पितृदेवताः ।

श्राद्धं विधाय विधिना पित्रानृष्यमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥

लोलार्कसङ्गमे स्नात्वादानं होमं सुरार्धनम् । यत्किञ्चित्क्रियते कर्मतदानन्त्यायकल्पते

सूर्यो परागे लोलार्के स्नानदानादिकाः क्रियाः

कुरुक्षेत्राद्दशगुणा भवन्तीह न संशयः ॥ ५३ ॥

लोलार्के रथसप्तम्यां स्नात्वा गङ्गासिसङ्गमे । सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुक्तो भवति तत्क्षणात्

प्रत्यर्कचारं लोलार्कं यः पश्यति शुचित्रतः ।

न तस्य दुःखं लोकेऽस्मिन्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ५६ ॥

न तस्य दुःखं नोपामा नदद्रुर्न विचचिंका । लोलाकमर्कं यः पश्येत्तत्पादोदकसेषकः

वाराणस्यामुषित्वाऽपि यो लोलार्कं न सेवते ।

सेवन्ते तं नरं नूनं क्लेशाः क्षुद्राद्याधिसम्भवाः ॥ ५८ ॥

सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः ।

ततोऽङ्गान्यन्यतीर्थानि तज्जलप्लावितानि हि ॥ ५९ ॥

तीर्थान्तराणि सर्वाणि भूमीबलयगान्यपि ।

असिसम्भेदतीर्थस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ६० ॥

सर्वेषामेव तीर्थानां स्नानाद्यलभ्यते फलम् । तत्फलं सम्यगाप्येतनरे गङ्गासिसङ्गमे

नार्थवादोऽयमुदितः स्तुतिवादो न वै मुने । सत्ययथार्थवादोऽयं श्रद्धेयः सद्द्विरादरात्

यत्र विश्वेश्वरः साक्षाद्यस्वर्गतरङ्गिणी । मिथ्यातत्रानुमन्यन्ते तार्किकाश्चातुसूयकाः

उदाहरन्ति ये मूढाः कुतर्कबलदर्पिताः । काश्यां सर्वेऽर्थवादोऽयन्ते विट्क्रीडायुगे युगे

कल्पयित्वा शितीर्थस्य महिम्नो महत्स्तुलाम्

नाधिरोहेन्मुने! नूनमपि त्रैलोक्यमण्डपः ॥ ६५ ॥

नास्तिका वेद्वाह्याश्च शिशनोदरपरायणाः ।

अन्त्यजाताश्च ये तेषां पुरः काशी न वष्यताम् ॥ ६६ ॥

लोलार्ककरनिष्ठतावसिधारविखण्डिताः । काश्यांदक्षिणदिग्भागेनविशेयुर्महामलाः
 महिमानमिमं धृत्वालोलार्कस्य नरोत्तमः । न दुःखीजायतेक्वापिसंसारेदुःखसागरे
 इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
 पूर्वार्धे लोलार्कवर्णनं नामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

उत्तरार्कवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अधोत्तरस्यामाशायां कुण्डमर्काख्यमुत्तमम् ।

तत्र नाम्नोत्तरार्केण रश्मिमाली व्यवस्थितः ॥ १ ॥

तापयन् दुःखसङ्घातंसाधनाप्याययन् रविः । उत्तरार्को महातेजा काशीरक्षतिसर्वं च
 तत्रेतिहासो यो वृत्तस्तं निशामय सुव्रत ! । विप्रःप्रियव्रतोनाम कश्चिदात्रेयवंशजः
 आसीत्काश्यांशुभाचारःसदातिथिजनप्रियः । भार्याशुभव्रतातस्यबभूवातिमनोहरा
 भर्तृशुश्रूषणरता गृहकर्मसुपेशला । तस्यां स जनयामास कन्यामेकां सुलक्षणां
 मूलक्षप्रथमे पादे तथा केन्द्रे बृहस्पती । बबुधे सा गृहे पित्रोः शुक्लेपक्षेयथाशशी
 सुरूपा विनयाचारा पित्रोश्च प्रियकारिणी । अनीवनिपुणाजातागृहोपस्करमाजने
 यथायथासमैधिष्टसाकन्यापितृमन्दिरे । तथा तथा पितृमन्त्याश्चिन्तासंबबुधेतराम्
 कस्मैदिया वरा कन्यासुरभ्येयंसुलक्षणा । अस्या अनुगुणो लभ्यः क्व मया वरउत्तमः
 क्लृप्तेन वयसा चापिशिलेनापि श्रुतेन च । रूपेणार्थेन संयुक्तः कस्मै दत्तासुखलभेत्
 इति चिन्तयतस्तस्य ज्वरोऽभूदतिदारुणः ।

यश्चिन्ताक्यो ज्वरः पुंसामीषधैर्नापि शाम्यति ॥ ११ ॥

तन्मूलक्षंविपाकेन चिन्ताक्येन ज्वरेण च ।

स विप्रः पञ्चतां प्राप्तस्त्यक्त्वा सर्वं गृहादिकम् ॥ १२ ॥

पितर्युं परते तस्याः कन्यायाः सा जनन्यपि ।

शुभव्रता परित्यज्य तां कन्यां पतिमन्वगात् ॥ १३ ॥

धर्मोऽयं सहचारिण्या जीवताजीवतापि वा । पत्यासहैवस्थातव्यं पतिव्रतयुजासदा
नापत्यं पान्ति नो माता नपितानैवबान्धवाः । पत्युश्चरणशुश्रूषापायाद्वैकेवलंस्त्रियम्
सुलक्षणापिदुःखार्तापित्रोःपञ्चत्वमाप्रयोः । और्ध्वदैहिकमापाद्यदशाहंविनिवर्त्यश्च
विन्तामवापमहतीमनाथा दैन्यमागता । कथमेकाकिनी पित्रामात्राहीनाभवाशुभेः

दुस्तरं पारमाप्स्यामि स्त्रीत्वं सर्वाभिभावि यत् ।

न कस्मैश्चिद्वरायाऽहं पितृभ्यां प्रतिपादिता ॥ १८ ॥

तददत्ता कथं स्वैरमहमन्यं वरं वृणे । वृतोऽपि न कुलीनश्चेद् गुणवान्न च शीलवान्
स्वाधीनोऽपि न तत्तेन वृतेनाऽपि हि किम्भवेत् ।

इति सञ्चिन्तयन्ती सा रूपौदार्यगुणान्विता ॥ २० ॥

युवभिर्बहुभिर्नित्यं प्रार्थिताऽपि मुहुर्मुहुः । नकस्यापि ददौबालाप्रवेशं निजमानसे
पित्रोरुपरतिं द्रष्ट्वा वात्सल्यं च तथाविधम् । निनिन्दबहुधान्मानं संसारंचनिनिन्दह
याभ्यामुत्पादिता चाऽहं याभ्याञ्च परिपालिता ।

पितरौ कुत्र तौ यातौ देहिनो धिगनित्यताम् ॥ २३ ॥

अहोदेहोऽप्यहोङ्गत्वं यथापित्रोःपुरोमम । इतिनिश्चित्यसाबालाविजितेन्द्रियमानसा
ब्रह्मचर्यं दृढं कृत्वा तपउग्रं चचार ह । उत्तरार्कस्य देवस्य समीपे स्थिरमानसा
तस्यां तपस्यमानायामेकाछागीलघीयसी । तत्रप्रत्यहमागत्यतिष्ठे सत्पुत्रतोऽबला
तृणपर्णादिकं किञ्चिन्सायमभ्यवहृत्य सा ।

तत्कुण्डपीतपानीया स्वस्वामिसदनं व्रजेत् ॥ २७ ॥

ततश्चैव्यतीतासुपञ्चपासुसमासुच । लीलयाधिचरन्दैवस्तत्र देव्यासहागतः
सन्निधावुत्तरार्कस्य तपस्यन्तीं सुलक्षणाम् ।

स्थाणुवन्निश्चलां स्थाणुरद्राक्षीत्तपसा कृशाम् ॥ २९ ॥

ततो गिरिजयाशम्भुर्विहसतःकरुणात्मना । वरेणानुगृहाणेमांबन्धुहीनां सुमध्यमाम्
 शर्वाणीगिरिमाकर्ण्यततःशर्वःकृपानिधिः । समाधिमीलिताक्षीतामुवाचवरदोहरः
 सुलक्षणे प्रसन्नोऽस्मिन्वरंवरयसुवते । चिरंस्त्रिभ्रासि तपसा कस्तेऽस्तीह मनोरथः
 सापिशम्भोर्गिरंश्रुत्वामुखपीयूषवर्षिणीम् । महासन्तापशमनीलोचनेउदमीलयत्
 त्र्यक्षं प्रत्यक्षमाधीक्ष्य वरदानोन्मुखंपुरः । देवीञ्च वामभागस्थां प्रणनाम कृताञ्जलिः
 किं वृणे यावदित्यं सा चिन्तयेन्धारुमध्यमा । तावत्तया निरैक्षिष्टवराकीवर्करी पुरः
 आत्मार्यं जीवलोकेऽस्मिन्को न जीवति मानवः ।

परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति ॥ ३६ ॥

अनया मत्तपोवृत्तिसाक्षिण्या बद्धनेहसम् । असेव्यहन्तदेतस्यै वरयामि जगत्पतिम्
 परामृश्यमनस्येतत्प्राह त्र्यक्षं सुलक्षणा । कृपानिधे महादेव! यदि देवो वरो मम
 अजशावीवराक्येनातर्हिप्रागनुगृह्यताम् । वक्तुं पशुत्वान्नोवेत्तिकिञ्चिन्मद्भक्तिपेशलः
 इतिवाचं निशम्येशः परोपकृतिशालिनीम् । सुलक्षणाया नितरां तुतोष प्रणतार्तिहा
 देवदेवस्ततः प्राह देवि! पश्य गिरीन्द्रजे ! साधूनामीदृशा बुद्धिः परोपकरणोजिता
 तेधन्याः सर्वलोकेषु सर्वधर्माश्रयाश्च ते । यतन्ते सर्वभावेन परोपकरणाय ये
 संभवाः सर्ववस्तूनां चिरंतिष्ठन्ति नोक्वचित् । सुचिरं तिष्ठते श्वैकं परोपकरणंप्रिये
 धन्यासुलक्षणा चयायोग्याऽनुग्रहकर्मणि । ब्रूहिदेवि वरो देयःकोऽस्यैच्छाम्यंश्वकःप्रिये
 श्रीदेव्युवाच

सर्वसृष्टिकृतांकर्तः सर्वज्ञप्रणतार्तिहन् । सुलक्षणाशुभाचारा सखी मेऽस्तु शुभोद्यमा
 यथा जयाचञ्चिजयायथा श्वैवजयन्तिका । शुभानन्दा सुनन्दाश्च कौमुदीश्च यथोर्मिला
 यथा चम्पकमाला च यथा मलयवासिनी । कर्पूरलतिका यद्वद्वन्धधारा यथा शुभा
 अशोकाश्च विशोका च यथामलयगन्धिनी । यथाचन्दननिःश्वासायथा मृगमदोत्तमा
 यथा च कोकिलालापयथा मधुरभाषिणी । गद्यपद्यनिधिर्यद्वदनुकल्हा यथा च सा
 दृगञ्जलेङ्गितहा च यथा कृतमनोरथा । गानचिन्तहरा यद्वत्तथास्त्वेषा सुलक्षणा
 अतिप्रिया भवित्री मे यद्बालब्रह्मचारिणी । अनेनैव शरीरेण दिव्यावयवभूषणा

दिव्याम्बरा दिव्यगन्धा दिव्यज्ञानसमन्विता ।

स मया मां सदैवास्तां चञ्चामरधारिणी ॥ ५२ ॥

एषाऽपि काशिराजस्य कुमार्यस्तिवह चर्करी ।

अत्रैव भोगान्सम्प्राप्य मुक्तिं प्राप्स्यत्यनुत्तमाम् ॥ ५३ ॥

अनयात्वर्ककुण्डेऽस्मिन्पुष्ये मासि रवेदिने । स्नातंत्वनुदितेसूर्येशीतादक्षुब्धचित्तया

राजपुत्री ततः पुण्यादस्त्वेषा शुभलोचना । वरदानप्रभावेण तव विश्वेश्वर प्रभो!

चर्करीकुण्डमित्याख्या त्वर्ककुण्डस्य जायताम् ।

एतस्याः प्रतिमा पूज्या भविष्यत्यत्र मानवैः ॥ ५६ ॥

उत्तरार्कस्य देवस्यपुष्ये मासि रवेदिने । कार्यासांवत्सरीयान्नानतैःकाशीफलेप्सुभिः

मृडान्याभिहितं सर्वं कृत्वैतद्विश्वगो विभुः ।

विश्वनाथो विवेशाऽथ प्रासादं स्वमतर्कितः ॥ ५८ ॥

स्कन्द उवाच

लोलार्कस्यचमाहात्म्यमुत्तरार्कस्यचद्विज ! कथिततेमहाभागसाम्बादित्यनिशामय

श्रुत्वैतत्पुण्यमाख्यानं शुभं लोलोत्तरार्कयोः ।

व्याधिभिर्नाभिभूयेत न दारिद्र्येण बाध्यते ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां सतुर्थे काशीखण्डे

पूर्वार्धे उत्तरार्कवर्णनं नामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः साम्बादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

शृणुष्व मैत्रावरुणे! द्वारवत्यां यदूद्ग्रहः । दानवानां वधार्थाय भुवो भारापनुत्तये
आधिरासीत्स्वयंकृष्णः कृष्णवर्त्मप्रतापवान् । वासुदेवो जगद्भामदेवक्यावसुदेवतः
साशीतिलक्षंतस्यासन्कुमाराऽर्कवर्चसः । स्वर्गेऽपितादृशाबालाःसुशीलानहिकुम्भज
अतीव रूपसम्पन्ना अतीव सुमहाबलाः । अतीव शस्त्रशास्त्रज्ञा अतीव शुभलक्षणाः
तां द्रष्टुम्मानसः पुत्रो ब्रह्मणस्तपसां निधिः ।

कृतवल्कलकौपीनो धृतकृष्णाजिनाम्बरः ॥ ५ ॥

गृहीतब्रह्मदण्डश्च त्रिवृन्मौञ्जी सुमेखलः । उरस्थलस्थतुलसीमालयासमलङ्कृतः
गोपीचन्दननिर्यासलसदङ्गुलिलेपनः । तपसा कृशसर्वाङ्गो मूर्ता ज्वलनवज्ज्वलन्
आजगामाम्बरधरो नारदोद्धारकां पुरीम् । विश्वकर्मचिनिर्माणांजितस्वर्गपुरीश्रियम्
तं दृष्ट्वा नारदं सर्वं चिनम्रतरकन्धराः । प्रबद्धमूर्धाञ्जलयःप्रणेमुवृष्टिष्णनन्दनाः
साम्बः स्वरूपसौन्दर्यगर्गसर्वस्वमोहितः । न ननाम मुनि तत्र हसंस्तद्रूपसम्पदम्
साम्बस्यतमभिप्रायं विज्ञायसमहामुनिः । विवेश सुमहारम्भं नारदः कृष्णमन्दिरम्

कृष्णोऽथ दृष्ट्वाऽऽगच्छन्तम्प्रत्युद्गम्य च नारदम् ।

मधुपर्केण सम्पूज्य स्वासने क्षोपवेशयत् ॥ १२ ॥

कृत्वा कथा विचित्रार्थास्तत एकान्तवर्तिनः ।

कृष्णस्य कर्णेऽकथयन्नारदः साम्बचेष्टितम् ॥ १३ ॥

अवश्यं किञ्चिद्वाऽस्ति यशोदानन्दघर्दनं ।

प्रायशस्तत्र घटतेऽसम्भाव्यन्नायत्रा स्त्रियम् ॥ १४ ॥

यूनां त्रिभुवनस्थानां साम्बोऽतीव सुरूपवान् ।

स्वभावचञ्चलाक्षीणां खेतोवृत्तिः सुखञ्चला ॥ १५ ॥

अपेक्षन्ते न मुग्धाक्ष्यः कुलंशीलं धृतं धनम् । रूपमेव समीक्षन्तेविषयेषु विमोहिताः
अथवा विदितन्नो ते बल्लवीनां विचेष्टितम् ।

विनाऽष्टौ नायिकाः कृष्ण कामयन्तेऽबला ह्यमुम् ॥ १७ ॥

वामभ्रूवां स्वभावाच्च नारदस्य च वाक्यतः ।

विज्ञाताऽखिलवृत्तान्तस्तथ्यं कृष्णोऽप्यमन्यत ॥ १८ ॥

तावद्धैर्यं चलाक्षीणां तावच्चेतोचिवेकिता ।

यावन्नार्थो विविक्तस्थो विविक्तेऽर्थिनि नाऽन्यथा ॥

इत्थं विवेचयंश्चित्ते कृष्णः क्रोधनदीरयम् ।

विवेकसेतुनाऽऽस्तभ्य नारदं प्राहिणोत्सुधीः ॥ २० ॥

साम्बस्य वैकृतं किञ्चित्कचित्कृष्णो न वैक्षत ।

गते देव मुनौ तस्मिन्वीक्षमाणोऽप्यहर्निशम् ॥ २१ ॥

कियत्यपिगतेकालेपुनरप्याययौमुनिः । मध्येलीलावतीनाञ्च ज्ञात्वाकृष्णमवस्थितम्
बहिः क्रीडन्तमाहूय साम्बमित्याहनारदः । याहिकृष्णान्तिकं तूर्णं कथयागमनं मम
साम्बोपियामिनोयामिक्षणमित्थमचिन्तयत् । कथंरहःस्थं पितरंयामिर्लक्षणसखंप्रति
नयामिच कथंवाक्यादस्याहं ब्रह्मचारिणः । ज्वलदङ्गारसङ्काशस्फुरत्सर्वाङ्गतेजसः
प्रणमत्सु कुमारेषु व्रीडितोयम्मयैकदा । इदानीमपि नोयायामस्य वाक्यान्महामुने
अत्याहितं तदस्तीह तदा गोद्वयदर्शनात् ।

पितुः कोपोऽपि सुश्लाघ्यो मयि नो ब्राह्मणस्य तु ॥ २७ ॥

ब्रह्मकोपाग्निनिर्दग्धाःप्ररोहन्तिनजातुचित् । अपराग्निचिनिर्दग्धारोहन्तेदाषदग्धवत्
इति ध्यात्वा क्षणं साम्बोऽविशदन्तःपुरम्पितुः ।

मध्ये स्त्रैणसमं कृष्णं यावज्जाम्बवतीसुतः ॥ २६ ॥

दूरात्प्रणम्यविह्वलित स चकार सशङ्कितः । तावत्तमन्वगच्छन्न नारदः कार्यसिद्धये
ससम्प्रमोद्यकृष्णोऽपिदृष्ट्वासाम्बञ्च नारदम् । समुत्तस्थौपरिदधत्पीतकौशेयमम्बरम्

उत्थिते देवकीसुनौ ताः सर्वा अपि गोपिकाः ।

विलज्जिताः समुत्सथुर्गृहन्त्यः स्वं स्वमम्बरम् ॥ ३२ ॥

महार्हशयनीये तं हस्ते धृत्वा महामुनिम् । समुपावेशयत्कृष्णःसाम्बश्चकीडितुंययौ
तासां स्वलितमालोक्य तिष्ठन्तीनाम्पुरोमुनिः ।

कृष्णलीलाद्रघीभूतघराङ्गानां जगौ हरिम् ॥ ३४ ॥

पश्य पश्यमहाबुद्धे! द्रष्टुं जाम्बवतीसुनम् । इमाः स्वलितमापन्नास्तद्रूपभुङ्क्ष्वचेतसः
कृष्णोपिसाम्बमाह्वयसहस्रैवाशपत्सुतम् । सर्वाजाम्बवतीतुल्याःपश्यन्तमपिदुर्बिधेः

यस्मात्स्वद्रूपमालोक्य गोपाल्यः स्वलिता इमाः ।

तस्मात्कुष्ठी भव क्षिप्रमव । ण्डागमनेन च ॥ ३७ ॥

वेपमानो महाव्याधिभयात्साम्बोऽपि दारुणात् ।

कृष्णं प्रसादयामास बहुशः पापशान्तये ॥ ३८ ॥

कृष्णोऽप्यनेनसंजानन्साम्बं स्वसुतमौरसम् ।

अब्रवीत्कुष्ठमोक्षाय व्रज वैश्वेश्वरीम्पुरीम् ॥ ३९ ॥

तत्र ब्रध्नं समाराध्य प्रकृतिं स्वामवाप्स्यसि ।

महैनसांक्षयोऽन्यत्र नास्ति धाराणसीं विना ॥ ४० ॥

यत्र विश्वेश्वरः साक्षाद्यत्रस्वर्गापगावसा । येषां महैन सां दृष्टामुनिभिर्नैवनिष्कृतिः

तेषां विशुद्धिरस्त्येव प्राप्य धाराणसीम्पुरीम् ॥ ४१ ॥

न केवलंहिपापेभ्योचाराणस्यां विमुच्यते । प्राकृतेभ्योपिपापेभ्योमुच्यतेशङ्कराह्वया
पुरा पुरारिणासृष्टमविमुक्तं विमुक्तये । सर्वेषामेव जन्तूनां कृपयाऽन्ते तनुत्यजाम्
सत्रानन्दघनेशम्बोस्तवशापनिराकृतिः । साम्बतस्त्वेरितंयाहि नान्यथाशापनिवृत्तिः

ततः कृष्णं समापृच्छथ कर्मनिर्मुक्तचेष्टितः ।

नारदः कृतकृत्यः सन् ययावाकाशवर्त्मना ॥ ४५ ॥

साम्बोचाराणसीम्प्राप्य समाराध्यांशुमालिनम् ।

कृष्णन्तत्पृष्ठतः कृत्वा निजाम्प्रकृतिमासवान् ॥ ४६ ॥

साम्बादित्यस्तदारभ्यसर्वव्याधिहरोरविः । ददाति सर्वभक्तेभ्योऽनामयाः सर्वसम्पदः
साम्बकुण्डे नरः स्नात्वा रविचारेऽरुणोदये ।

साम्बादित्यञ्च सम्पूज्य व्याधिभिर्नाभिभूयते ॥ ४८ ॥

न स्त्री वैधव्यमाप्नोति साम्बादित्यस्य सेवनात् ।

बन्ध्या पुत्रग्रस्येत शुद्धरूपसमन्वितम् ॥ ४९ ॥

शुक्लायां द्विजसप्तम्या माघेमासिरवेदिने । महापर्वसमाख्यातं रविपर्वसमं शुभम्
महारोगात्प्रमुच्येत तत्र स्नात्वाऽरुणोदये ।

साम्बादित्यग्रपूज्याऽपि धर्ममक्षयमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥

सन्निहृत्यां कुरुक्षेत्रे यत्पुण्यं राट्टदर्शने । तत्पुण्यं रविसप्तम्या माघेकाश्यानक्षत्रायः
मघी मासि रवेचारे यात्रा साम्बत्सरी भवेत् ।

अशोकैस्तत्र सम्पूज्य कुण्डे स्नात्वा विधानतः ॥ ५३ ॥

साम्बादित्यं नरो जातु नशोकैरभिभूयते । संवत्सरकृतात्पापाद्बहिर्भवतितत्क्षणात्
विश्वेशान्पश्चिमाशया साम्बेनाऽत्र महात्मना ।

सम्यगाराधितामूर्त्तिरादित्यस्य श्मश्रुदा ॥ ५५ ॥

इयम्भविष्या तन्मूर्त्तिरगस्ते! त्वत्पुरोऽकथि ।

तामभ्यर्च्य नमस्कृत्य कृत्वाष्टौ च प्रवृत्तिनाः ।

नरो भवति निष्पापः काशीवासफलं लभेत् ॥ ५६ ॥

साम्बादित्यस्य माहात्म्यं कथितं ते महामते ! । यच्छ्रुत्वापिनरोजातयमलोकं न पश्यति
इदानीं द्रौपदादित्यं कथयिष्यामि तेऽनघ । तथा द्रौपदादित्यः संसेव्यो भक्तसिद्धिदः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे

पूर्वार्धे साम्बादित्यमाहात्म्यकथनं नामाऽष्टवत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

द्रौपदादित्यमयूखादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

सून उवाच

पाराशर्ये! मुने! व्यास! कुमारः कुम्भजन्मने । यदाषदत्कथामेता तदाकद्रुपदात्मजा ॥

व्यास उवाच

पुराणसंहितासूतब्रूतेत्रैकालिकीकथाम् । सन्देहोनात्रकर्तव्योयतस्तद्रोचरोऽखिलम्

स्कन्द उवाच

आकर्णयमुने पूर्वं पञ्चवक्त्रोहरःस्वयम् । पृथिव्यांपञ्चधाभूत्वाप्रादुरासीजगद्धितः
उमापि च जगद्धात्री द्रुपदस्य महीभुजः । यजतोवह्निकुण्डाच्च प्रादुश्चक्रेति सुन्दरी
पञ्चापि पाण्डुतनयाः साक्षाद्द्रुवपुर्धराः । अवतेरुरिहस्वर्गाद् दुष्टसंहारकारकाः
नारायणोपिकृष्णत्वंप्राप्यतत्साहचर्यं कृतम् । उद्वृत्तवृत्तशमनः सद्वृत्तस्थितिकारकः

प्रतपन्तः पृथिव्यां ते पार्थाश्चेरुः पृथक् पृथक् ।

उदयानुद्यौ तस्मिन्सम्पदां विपदामपि ॥ ७ ॥

कदाचित्से महावीरा भ्रातृष्यप्रतिपादिताम् । विपत्तिमाप्यमहर्तांबभूवुःकाननौकसः
पाञ्चाल्यपि च तत्पत्नीपतिष्यसनतापिता । धर्मज्ञाप्राप्यतन्वङ्गीब्रध्नमाराधयद्भृशम्
आराधितोऽथ सचितातयाद्रुपदकन्यया । सदर्वीं सपिधानाञ्चस्थालिकामक्षयाद्दौ

उवाच च प्रसन्नात्मा भास्करो द्रुपदात्मजाम् ।

आराधयन्तीम्भावेन सर्वत्र शुचिमानसाम् ॥ ११ ॥

स्थाल्यैतयामहाभागो! यावन्तोऽन्नार्थिनोजनाः ।

तावन्तस्तृप्तिमाप्स्यन्ति यावच्च त्वं न भोक्ष्यसे ॥ १२ ॥

भुक्तायां त्वयि रिक्ताया पूर्णभक्ता भविष्यति ।

रसवद्भक्ष्यञ्जननिधिरिच्छामक्ष्यप्रदायिनी ॥ १३ ॥

इत्थं वरस्तयालम्बः काश्यामादित्यतो मुने ! अपरञ्चवरोदस्तस्यैदेवेनभास्वता
रषिरुवाच

विश्वेशाद्वक्षिणे भागे यो मां त्वत्पुरतः स्थितम् ।

आराधयिष्यति नरः क्षुब्धात् तस्य नश्यति ॥ १५ ॥

अन्यञ्च मे वरोदस्तो विश्वेशेन पतिव्रते ! तपसापरितुष्टेन तं निशामय वक्षिं ते ॥
प्राग्ब्रूवत्वां समाराध्य योमांद्रक्ष्यतिमानवः । तस्यत्वंदुःखतिमिरमपानुदनिर्जैःकरैः

अतो धर्मप्रिये नित्यं प्राप्य विश्वेश्वराद्वरम् ।

काशीस्थितानां जन्तूनां नाश्याम्यद्यसञ्चयम् ॥ १८ ॥

ये मामत्र भजिष्यन्ति मानवाः श्रद्धयान्विताः ।

त्वद्द्वरोद्यतपाणिञ्च तेषां दास्यामि चिन्तितम् ॥ १६ ॥

भवतींमत्समीपस्थान्युधिष्ठिरपतिव्रताम् । विश्वेशाद्वक्षिणेभागेदण्डपाणे.समीपतः
येऽर्चयिष्यन्तिभावेनपुरुषावास्त्रियोपिवा । तेषांकदाचिन्नोभाविभयंप्रियबियोगजम्
नव्याधिजम्भयंकापिनभुसृङ्दोषसम्भवम् । द्रौपदीक्षणतःकाश्यांतवधर्मप्रियेऽनघे !
इति दत्त्वा वरान्देव आदित्यः सर्वदःसताम् । शम्भुमाराधयामासधर्मद्रौपद्यापययी
आदित्यस्य कथामेतां द्रौपद्याराधितस्य वै ।

यः श्रोष्यति नरो भक्त्या तस्यैनः क्षयमेष्यति ॥ २४ ॥

स्कन्द उवाच

द्रौपदादित्यमाहात्म्यंसंक्षेपात्कथितंमया । मयूखादित्यमाहात्म्यंशृण्विदानींघटोद्वच !
पुरापञ्चनदे तीर्थे त्रिषुलोकेषुविधुते । सहस्ररश्मिर्भगवांस्तपस्तेपे सुदारुणम्
प्रतिष्ठाप्य महालिङ्गं गभस्तीश्वरसञ्चितम् । गौरीञ्चमङ्गलानार्त्नीभक्तमङ्गलदांसदा
दिव्यं वर्षसहस्रन्तुशतेन गुणितम्मुने । आराधयञ्छिवंसोमं सोमार्धकृतशेखरम्
स्वरूपतस्तुतपनखिलोकीतापनक्षमः । ततोऽतितीव्रतपसा जज्वाल नितरां मुने !
मयूखैस्तत्रसचितुखैलोक्यदहनक्षमैः । ततंसमस्तन्तत्कालेद्यावाभूम्योर्यदन्तरम्
वैमानिकैर्विष्णुपदे तत्यजे च गतागतम् । तीव्रे पतङ्गमहसि पतङ्गत्वभयादिषु

मयूखा एव दृश्यन्ते तिर्यगूर्ध्वमधोऽपि च ।
 आदित्यस्य न चादित्यो नीपपुष्पस्थितेरिव ॥ ३२ ॥
 तस्य वै महसां राशेस्तपोराशेस्तपोर्चिषाम् ।
 चकम्पे साध्वसात्तीव्रात्त्रैलोक्यं सच्चराचरम् ॥ ३३ ॥

सूर्यभात्माऽस्य जगतोवेदेषु परिपठ्यते । स एव चेज्ज्वालयिता कोनखाताभवेदिह
 जगत्क्षुरसौसूर्यो जगदात्मैव भास्करः । जगद्योयन्मृतप्रायं प्रातः प्रातः प्रबोधयेत्
 तमोन्धकूपपतितमुद्यन्नेष दिने दिने । प्रसार्थं परितः पाणिन्प्राणिजातं समुद्धरेन्
 उदितेऽत्रोदिमोनित्यमस्तंयात्यस्तमाप्नुमः । उदयेऽनुदयेतस्मादस्माकंकारणंरविः

इति व्याकुलित विभ्वम्पश्यन्विश्वेश्वरः स्वयम् ।

विश्वत्राता वरं दातुं सञ्जग्मे तिग्मरश्मये ॥ ३८ ॥

मयूखमालिनं शम्भुरालोक्ष्वातिसुनिश्चलम् ।

समाधिचिस्मृताऽऽत्मानं विसिस्माय तपःप्रति ॥ ३६ ॥

उवाच च प्रपत्रात्मा श्रीकण्ठःप्रणनार्निहन् । अलन्तप्त्वावरं ब्रूहिद्युमणेमहसां निधे
 निरुद्धेन्द्रियवृत्तित्वाद् ब्रध्नो ध्यानसमाधिना ।

न जग्राह वचः शम्भोर्द्वित्रिरुक्तोऽप्यकर्णवत् ॥ ४१ ॥

काष्ठीभूतं तु तं ज्ञात्वा शिवःपस्पर्शपाणिना । महातपःसमुद्भूतसन्तापामृतवर्षिणा
 ततउन्मीलयाञ्चक्रे लोचने विश्वलोचनः । तस्योदयमिव प्राप्य प्रगे पङ्कजिनीवनी
 परिव्यपेतसन्तापस्तपनःस्पर्शनाग्निभोः । अवप्रहितसस्यश्रीरुल्लासयथाम्बुदात्
 मित्रो नेत्रातिथीकृत्यत्रयक्षंप्रत्यक्षमग्रतः । दण्डवत्प्रणनामोच्चैस्तुष्टावचपिनाकिनम्

रविरुवाच

देषदेष! जगतांपते विभो! भर्ग! भीम! भव! चन्द्रभूषण ! ।

भूतनाथ! भवभीतिहारक! त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ॥ ४६ ॥

चन्द्रचूड! मृड! धूर्जटे! हर! त्र्यक्ष! दक्षशततन्तुशातन ! ।

शान्तशाश्वतशिवापते! शिव त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ! ॥ ४७ ॥

नीललोहित! समीहितार्थद्वयं कलोचन! विरूपलोचन! ।
व्योमकेश! पशुपाशनाशन! त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ॥ ४८ ॥
धामदेव! शितिकण्ठ! शूलभृच्चन्द्रशेखर! फणीन्द्रभूषण! ।
कामकृत्पशुपते! महेश्वर! त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद! ॥ ४९ ॥
त्र्यम्बक! त्रिपुरसूदनेश्वर! त्राणकृत्त्रिनयन त्रयीमय ।
कालकूटदलनान्तकान्तक! त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ! ॥ ५० ॥
शर्वरीरहित! शर्व! सर्वग! स्वर्गमागंसुखदापवर्गद ! ।
अन्धकासुररिपोकपर्दभृत्त्वां नतोऽस्ति नतवाञ्छितप्रद! ॥ ५१ ॥
शङ्करोग्रगिरिजापते पते! विश्वनाथ! विधिविष्णुसंस्तुत ।
वेदवेद्यविदिताऽखिलेङ्गित त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद! ॥ ५२ ॥
विश्वरूप! पर! रूपवर्जित! ब्रह्म! जिह्वारहितामृतप्रद! ।
वाङ्मनोविषयदूरदूरगत्त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद! ॥ ५३ ॥
इत्थंपरीत्यमार्तण्डोमृडन्देवंमृडानिकाम् । अथतुष्टावप्रतीतान्माशिववामार्धहारिणीम्

रविरुवाच

देवि! त्वदीयस्वरणाम्बुजरेणुगौरीं भालस्थलीं वहति यः प्रणतिप्रवीणः ।
जन्मान्तरेऽपि रजनीकरचारलेखा ता गौरयत्यतितगंकिलतस्य पुंसः ॥ ५५ ॥
श्रीमङ्गले! स कलमङ्गलजन्मभूमे! श्रीमङ्गले! स कलकलमपनूलवह्ने ! ।
श्रीमङ्गले सकलदानवदर्पहन्त्रि! श्रीमङ्गलेऽखिलमिदं परिपाहि विश्वम् ॥ ५६ ॥
विश्वेश्वरि! त्वमस्मि विश्वजनस्य कर्त्री त्वंपालयित्र्यसि तथाप्रलयेऽपि हन्त्री
त्वन्नामकीर्तनसमुल्लसदच्छगुण्या स्रोतस्विनीहरतिपातककूलबुक्षान् ॥ ५७ ॥
मातर्भवानि! भवती भवतीवदुःखसम्भारहारिणिशरण्यमिहास्तिनान्या ।
धन्यास्त एव भुञ्जन्तेषु त एवमान्या येषु स्फुरेत्सव शुभः करुणाकटाक्षः ॥ ५८ ॥
ये त्वां स्मरन्ति सततं सहजप्रकाशां काशीपुरीस्थितिमतीं नतमोक्षलक्ष्मीम्
तां संस्मरेत्स्मरहरो धृतशुद्धबुद्धीभिर्वाणरक्षणधिचक्षणपात्रभूताम् ॥ ५९ ॥

मातस्तवाङ्घ्रियुगलं विमलं हृदिस्यं यस्यास्ति तस्य भुवनं सकलं करस्यम् ।

यो नाम ते जपति मङ्गलगौरि! नित्यं सिद्धयष्टकं न परिमुञ्चति तस्य गेहम् ॥

त्वं देवि! वेदजननी प्रणवस्वरूपा गायत्र्यसित्वमसि वै द्विजकामधेनुः ।

त्वं व्याहृतित्रयमिहाखिलकर्मसिद्ध्यै स्वाहा स्वधाऽसिस्तुमनः पितृत्वमिहेतुः

गौरीत्वमेव शशिमौलिनिवेधसित्वं सावित्र्यसित्वमसिचक्रिणि चारुलक्ष्मीः

काश्यां त्वमस्यमलरूपिणि! मोक्षलक्ष्मीस्त्वं मे शरण्यमिह मङ्गलगौरि मातः

स्तुत्वेति तां स्मरहरार्धशरीरशोभां श्रीमङ्गलाष्टकमहास्तवनेन मानुः ।

देवीं च देवमसकृत्परिनः प्रणम्य तूर्णं बभूव सविताशिवयोःपुरस्तात् ॥

देवदेव उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्ते प्रसन्नोऽस्मि महामते । मित्रमन्नेत्रगोनित्यं प्रपश्येत्स्वरावरम्

मममूर्तिर्भवान्सुर्यं सर्वज्ञो भवसर्वगः । सर्वेषां महसां राशिः सर्वेषां सर्वकर्मवित्

सर्वेषां सर्वदुःखानि भक्तानां त्वं निराकुह ।

त्वया नाह्नां चतुःषष्ट्या यदष्टकमुदीरितम् ॥ ६६ ॥

अनेन माम्परिन्दुत्य नरो मद्भक्तिमाप्स्यति । अष्टकमङ्गलागौर्यामङ्गलाष्टकसञ्ज्ञकम्

अनेन मङ्गलागौरीं स्तुत्वामङ्गलमाप्स्यति । चतुःषष्ट्यष्टकं स्तोत्रमङ्गलाष्टकमेव च

एतत्स्तोत्रवरं पुण्यं सर्वपातकनाशनम् । दूरदेशान्तरस्थोऽपि जपन्नित्यं नरोत्तमः

त्रिसन्ध्यम्परिशुद्धात्मा काशीं प्राप्स्यति दुर्लभाम् ।

अनेन स्तोत्रयुग्मेन जप्तेन प्रत्यहं नृभिः ॥ ७० ॥

ध्रुवं दैनन्दिनंपापक्षालितं नात्र संशयः । न तस्य देहिनो देहे जातु चित्कलिबपस्थितिः

त्रिकालं यो जपेन्नित्यमेतत्स्तोत्रद्वयं शुभम् ।

किं जतेर्बहुभिः स्तोत्रैश्चञ्चलश्रीप्रदैर्दृणाम् ॥ ७२ ॥

एतत्स्तोत्रद्वयं दद्यात्काश्यान्नेः श्रेयसीं श्रियम् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मानवैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ ७३ ॥

एतत्स्तोत्रद्वयं जप्यं त्यक्त्वा स्तोत्राप्यनेकशः । प्रपञ्चबाहयोरेव सर्वेषु चराचरः

तदाद्योःस्तवाद्स्मान्निष्प्रपञ्चोऽज्ञोभवेत् । समृद्धिमाप्यमहतीं पुत्रपौत्रवतीमिह
मन्तेनिर्घाणमाप्नोति जपन् स्तोत्रमिदंनरः । अन्यच्च शृणुसताम्ब्रह्मराजदिवाकर!
त्वयाप्रतिष्ठितंलिङ्गं गमस्तीश्वरसञ्चितम् । सेवितंभक्तिभावेन सर्वसिद्धिसमर्पकम्

त्वया गमस्तिमालाभिश्चाभ्येयाम्बुजकान्तिभिः ।

यदर्षित्वैश्वरंलिङ्गं सर्वभावेन भास्कर ॥ ७८ ॥

गमस्तीश्वर इत्याख्यां ततो लिङ्गमवाप्स्यति ।

अर्घयित्वा गमस्तीशं स्नात्वा पञ्चनदे नरः ॥ ७९ ॥

नजातुजायतेमातुर्जडरेऽतकल्मषः । इमाञ्च मङ्गलागौरी नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥८०
सैत्रशुक्लतृतीयायामुपोषणपरायणः । महोपचारैः संपूज्य दुकूलाभरणादिभिः
रात्रौजागरणं कृत्वागीतनृत्यकथादिभिः । प्रातःकुमारीःसंपूज्यद्वादशाच्छादनादिभिः
सम्भोज्य परमाश्वाद्यैर्दत्त्वाऽन्येभ्योपि दक्षिणाम् ।

होमं कृत्वा विधानेन जातवेदस इत्पृचा ॥ ८३ ॥

अष्टोत्तरशताभिश्च तिलाज्याहुतिभिःप्रगे । एकंगोमिथुनंदत्त्वा ब्राह्मणाय कुटुम्बिने
श्रद्धया समलङ्कृत्य भूषणैर्द्विजदम्पती । भोजयित्वा महार्हाभैः प्रीयेतां मङ्गलेश्वरी
इति मन्त्रं समुच्चार्य प्रातःकृत्वाऽथपारणम् । नदुर्भगत्वमाप्नोतिनदारिद्र्यं कदाचन
न च सन्तानविच्छिन्ति भोगोच्छिन्ति न जातुषित् ।

स्त्रीवैधव्यं न घाप्नोति न ना योषिद्वियोगभाक् ॥ ८७ ॥

पापानि विलयं यान्तिपुण्यराशिश्चलभ्यते । अपिबन्ध्याप्रसूयेत कृत्वैतन्मङ्गलाव्रतम्
पतद्भ्रतस्यकरणात्कुरुपत्वंनजातुषित् । कुमारीचिन्दतेऽत्यन्तं गुणरूपयुतम्पतिम्
कुमारोऽपि व्रतंकृत्वाचिन्दतिस्त्रियमुत्तमाम् । सन्तिव्रतानिबहुशोधनकामप्रदानि च
नाप्नुयुर्जातुषित्तानि मङ्गलाव्रततुल्यताम् ।

कर्तव्या चादिकी यात्रा मघौ तस्यां तिथौ नरैः ॥ ९१ ॥

सर्वविघ्नप्रशान्त्यर्थं सदा काशीनिवासिभिः । अपरं द्युमणेवस्मितव चात्र तपस्यतः
मयूखापवलेदृष्टा न च दूष्टं कलेवरम् । मयूखादित्य इत्याख्या ततस्तेदितिनन्दन

त्वदर्शनाद्गृणां कश्चिन्न व्याधिः प्रभविष्यति ।

भविष्यति न दारिद्र्यं रविदारे त्वदीक्षणात् ॥ ६४ ॥

इत्थंमयूखादित्यस्यशिषोदस्वाबहून्वरान् । तत्रैवान्तर्हितोभूतोरचिस्तत्रैषतस्थिवान्
श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यममयूखादित्यसंश्रयम् । द्रौपदादित्यसहितं नरो ननिरयं व्रजेत्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यार्सहितायां बतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे द्रौपदादित्यमयूखादित्ययोर्वर्णनानामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

खखोल्कादित्यगरुडेशयोर्वर्णनम्

स्कन्द उवाच

चाराणस्यां तथादित्याये चान्येतान्वदान्यतः । कलशोद्भवतेप्रीत्यासर्वेसर्वाघनाशनाः
खखोल्कोनाममगचानादित्यः परिकीर्तितः । त्रिविष्टपोत्तरेभागेसर्वव्याधिघातकृन्
यथाखखोल्क इत्याख्यातस्यादित्यस्यतच्छृणु । पुराकद्रुश्चविनता दक्षस्य तनये शुभे
कश्यपस्य च ते पन्न्यौ मारीचेः प्राब्रजापतेः ।

क्रीडन्त्यावेकशऽन्योऽन्यं मुने! ते ऊचतुस्त्विति ॥ ४ ॥

कद्रुखाच

चिनते! त्वंविजानासियद्वितदुग्रहमेततः । भ्रखण्डितागतिस्तेऽस्तियतो गगनमण्डले
योसावुल्लैःश्रवावाजीभ्रूयतेसवितूरथे । किरूपःसोऽस्तिशबलोधवलोवाचदाऽऽशुमे
पणञ्जकुरुकल्याणि! तुभ्यं यो रोषतेऽनघे ! एवमेवनात्येव कालः क्रीडनकविना

चिनतोवाच

किं पणेनभगिन्यत्र कथयाम्येवमेव हि । त्वज्जयेका च मेप्रीतिर्मज्जयेकिं नु ते सुखम्
ज्ञात्वापणोनकर्तव्योमिथः स्नेहमभीप्सता । ध्रुवमेकस्यचिजये क्रोधोन्यस्यैहजायते

कट्टुरुवाच

क्रीडेयं नात्र भगिनिकारणं किमपि क्रुधः । खेलस्य व्यचहारोऽयं पणोयत्किञ्चित्तु च्यते
घिनतो वाच

तथा कुरु यथा प्रातिस्तवास्ति पचनाशिनि !। अथतां घिनतामाह कट्टुः कुटिलमानसा
तस्यास्तु सामवेद्रासीपराजीयेतयायया । अस्मिन्पणे इमाः सर्वाः सख्यसाक्षिण्येष्वनौ
इत्यन्योन्यम्पणीकृत्य सर्पिण्यपिपतत्त्रिणी । उवाच कट्टुरं कट्टुरश्वं श्वेतं गरुत्मती
कदागन्तव्यमिति चक्रातेते गमावधिम् । जग्मतुश्च विरम्याथ क्रीडनात्स्वस्वमालयम्
घिनताया गतायां तु कट्टुराह्वयञ्जान् । उवाच यात वै पुत्राद्रुतं घचनतो मम
तुरङ्गमुच्चश्रवसं प्रोद्भूतं क्षीरनीरधेः । सुरासुरैर्मध्यमानाम्मन्दराघातसाध्वसात्
कार्यं कारणरूपस्य सादृश्यमधिगच्छति । अतस्तं क्षीरघर्णाभं कल्मषायतपुत्रकाः
तस्य बालध्रिमध्यास्य कृष्णकुन्तलतागताः । तथा तद्ग्लोमानि विधत्त विपसीत्कृतैः
इति श्रुत्वा वचोमातुः काद्रवेयाः परस्परम् । सम्मन्यमातरम् प्रोचुः कट्टुं कट्टुपमागताः

नागा ऊचुः

मातवयं त्वदाहानाद्विहाय क्रीडनं बलात् । प्राप्ताः प्रहृष्टा मृष्टाश्च दास्यत्यद्य प्रसूरिति
मृष्टन्ति प्रुतु तद्दूरं विषादप्यधिकं कटु । तन्वयावादि यन्मन्त्रैरीषधैर्नोपशाम्यति
वयं नयामोयद्वाव्यंतदस्माकं भवत्विह । इति प्रोक्तविशस्यं स्तैस्तदा कुटिलगामिभिः

स्कन्द उवाच

अन्येऽपि ये कुटिलगाः पररन्ध्रनिषेविणः । अकर्णाः क्रूरहृदयाः पितरौ व्रीडयन्ति ते
पित्रोर्गिरं निराकृत्य येतिष्ठेयुः सुदुर्मदाः । अत्याहितमिह प्राप्य गच्छेयुस्तेऽचिराल्लयम्
तेषां वचनमाकर्ण्य न याम इति सोरगी । शशापतान् क्रधाविष्टानागांश्चागः समागतान्
ताक्ष्यं स्य भक्ष्या भवत यूयं मद्वाक्यलङ्घनात् ।

जातमात्रांश्च सर्पिण्यो भक्षयन्तु स्वबालकान् ॥ २६ ॥

इतिशापानलङ्घीतैः कैश्चित्पातालमाश्रितम् । जिजीविषुमिरन्यैश्चद्विभ्रैश्चक्रे प्रसूतवः
तेपुच्छमौच्चैः श्रवसमधिगम्य महाधियः । सुनीलचिकुराभासं चक्रुरङ्गकट्टुरम्

तत्क्ष्वेडानलभूमौघैः फूत्कारभरनिःसृतैः । मातृवाक्कृतिजाद्वर्मात्रदग्धाभानुभानुभिः
 चिन्तापृष्ठमारुह्य कद्रुः स्नेहवशास्ततः । वियन्मार्गमलङ्कृत्य ददर्शोष्णांशुमण्डलम्
 तिग्मरश्मिप्रभावेण व्याकुलीभूतमानसा । कद्रुस्ततः खर्गी प्राह विस्रब्धं चिन्ते ब्रज
 उष्णगोरुष्णगोभिर्मताप्यते नितरातनुः । विस्रब्धाहं स्वभावेनन्वंसापेक्षाहि सर्वतः
 स्वरूपेणपतङ्गीत्वम्पतङ्गोऽसौ सहस्रगुः । अतएव न ते बाधागगने तापसम्भवा
 विद्यत्सरसिहंसोयम्भवती हंसगामिनी । खण्डरश्मिप्रतापाग्निं स्वामतोनेहबाधते
 खर्गीमुद्रीयमानां खेपुनरूचेबिलेशया । त्राहि त्राहिभगिन्यत्र याचोन्यत्रविद्यत्पथः

चिन्ते ! चिन्ताम्मात्वं किन्नावसि पतत्रिणी ।

तव दासी भविष्यामि त्वदुच्छिष्टनिषेचिणी ॥ ३६ ॥

यावज्जीवमहंभूयात्वत्पाद्रोदकपायिनी । खखोलकानिपतेदेवा भृशं गद्गदभाषिणी
 मूर्च्छाङ्गतवतीपक्षपुटौधुत्वाबिडोरगी । सख्युलकानिपतेदेवावकव्येत्चितिसम्प्रमात्
 खखोलकेतियदुक्ता गीः कठवा सम्भ्रान्तचेतसा ।

तदा खखोलकनामार्कः स्तुतो चिन्तया बहु ॥ ३६ ॥

मनागतिग्मताम्प्राप्तेखेप्रयातिषिवस्वति । ताभ्यान्तुरङ्गमोदशिकिञ्चित्किमार्चानरधे
 उक्ताचिन्तयैवैषा तापोपहतलोचना । क्रूरा सरीसृपीसत्यवादिन्याविश्वमान्यया
 कद्रु ! त्वयाजितम्भद्रे!यतउरुवैःश्रवाहयः । खन्द्ररश्मिप्रभोऽप्येपकल्मापइवभासते ॥
 विधिर्बलीयान्भुजगि!चित्रञ्जयपराजये । क्रूरोऽपिचिजयी क्वापित्वक्रूरोऽपिपराजयी
 चिन्ता चिन्ताधारा वदन्तीतिथयागतम् । कद्रुनिवेशनम्प्राप्ता तस्यादास्यमचीकरत्
 कदाचिद्विन्तादर्शिसुपर्णेनाभ्रलोचना । चिच्छायामलिनादीनादीर्घनिःश्वासवत्यपि

सुपर्ण उवाच

प्रातःप्रातरहोमातः क्व यासित्वं दिनेदिने । सायमायासिचकुतोचिच्छायादीनमानसा
 कुतोनिःश्वसिसिप्रोच्चैरभुर्पूर्णबिलोचना । यथाङ्गीबसुतायोषिधधापतितिरस्कृता
 ब्रूहिमातर्भदित्यद्यकुतोदूनासिपक्षिणि । मयिजीवतितेबालेकालेऽपि कृतसाध्वसे
 अश्रुनिर्माणकरणे कारणं किंतपस्विनि । सुखरित्रासु नारीषु नामङ्गलमिहेष्यते

धिक् तांश्चपुत्रान्यन्माता तेषु जीवत्सु दुःखमाक् ।

वरं बन्ध्यैव सा यस्याः सुता बन्ध्यमनोरथाः ॥ ५० ॥

इत्यूर्जस्वलमाकर्ण्यवचः सूनोर्गरुटमतः । विनताप्राहतम्पुत्रम्मातृमकिसमन्वितम्
अहं दास्यस्मिरेबालकद्रवाश्चक्रचेतसः । पृष्ठे बहामि तानित्यं तत्पुत्रानपि पुत्रक
कदाचिन्मन्दरं यामिकदाचिन्मलयाचलम् । कदाचिदन्तरीपेषु चरेथं तदुदन्वताम्
यत्रयत्रनयेयुस्तेकाद्रवेयाः सुदुर्मदाः । व्रजेयंतत्रतत्राऽहं तदधीना यतः सुतः ॥ ५४

गरुड उवाच

दासीत्वकारणम्मातः किते जातं सुलक्षणे ! । दक्षप्रजापतेः पुत्रिः कश्यपस्यप्रियेऽनघे
विनतोवाच गरुडम्पुरावृत्तमशेषतः । दासीत्वकारणं यद्गदादित्याश्वविलोकनम्
श्रुत्वेतिगरुडः प्राहमातरं सत्वरं व्रज । पृच्छाद्यनातस्तान्दुष्टान् काद्रवेयानिदं वचः
यद्दुर्लभं हिभवता यत्रात्यन्तरुचिश्चवः । मद्दासीत्वविमोक्षायतद्याचध्वं ददाम्यहम्
तथाकरोश्चविनतातेपिश्रुत्वा तदीरितम् । सर्पाःसम्पन्न्यता प्रोचुर्विनतांहृष्टमानसाः
मातृशापविमोक्षाय यदि दास्यति नः सुधाम् ।

तदा समीहितं तेऽस्तु न दास्यत्यथ दास्यसि ॥ ६० ॥

इत्योङ्कृत्य समापृच्छश्चकद्रुदुतगतिःखगी । गरुटमन्तं समाचष्ट दृष्ट्वा संहृष्टमानसम्
नागान्तकस्ततः प्राह मातरञ्चिन्तयातुराम् । आनीतंविद्विपीयूषमातर्मेदेहि भोजनम्
विनताप्राहतम्पुत्रं सम्प्रहृष्टतनूरुहा । भोस्सुपर्णाणवं तूष्णं याहि मङ्गलमस्तु ते
सन्ति तत्रापिबहुशोनिषादामत्स्यघातिनः । वेलातदनिषासाश्चताम्भक्षयतुरात्मनः
परप्राणैर्निजप्राणान्ये पुष्पणन्तीहदुर्धियः । शासनीयाः प्रयत्नेन श्रेयस्तच्छासनम्परम्
बहुर्हिंसाकृतांर्हिंसामवेत्स्वर्गस्य साधनम् । विर्हिसितेषुदुष्टेषुरक्ष्यन्ते भूरिशो यतः
निषादेष्वपिषेद्विप्रः कश्चिद्भवति पुत्रक ! । सरक्षणीयोयत्नेन भक्षणीयोनर्हिंखित्

गरुड उवाच

मत्स्यादीना वसन्मध्ये कथं ज्ञेयो द्विजो मया ।

अभक्ष्यो यस्त्वया प्रोक्तस्तच्चिह्नं किञ्चनाऽऽत्य मे ॥ ६८ ॥

चिनतोवाच

यङ्गसूत्रं गले यस्य सोत्तरीयं सुनिर्मलम् ।

नित्यधौत्रानि वासांसि भालं तिलकलाञ्छितम् ॥ ६६ ॥

सपवित्रौ करौ यस्य यश्रीषी कुशगर्भिणी ।

यन्मौलिः सशिखाग्रन्थिः स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया ॥ ७० ॥

उच्चरेद्गयजुःसाम्नामृचमेकामपीह यः । गायत्रीमात्रमन्त्रोऽपि स चिज्ञेयो द्विजस्त्वया
गरुड उवाच

मध्ये सदा निषादानां यो वसेज्जननि! द्विजः । तस्यैतेष्वेकमप्येव न मन्ये लक्ष्मणबोधकम्
लक्ष्मन्तरं समाचक्ष्व द्विजबोधकरम्प्रसूः । येन विज्ञाय तं विप्रं त्यजेयमपि कण्ठगम्
तच्छ्रुत्वा चिन्ता प्राहयस्ते कण्ठगतोऽङ्गज ! । खदिराङ्गारवद्दृष्ट्यात्तमपाकुरुदूरतः
द्विजमात्रेऽपिया हि सासाहि सा कुशलाय न ! । देशं वंशं श्रियं स्वञ्च निमूल्यतिकालतः
निशम्य काश्यपिरिति प्रसूपादीं प्रणम्य च । गृहीताशीर्ययौ शीघ्रं खमार्गेण खगेश्वरः
दूरादालोकयाञ्चक्रे निषादान्मत्स्यजीविनः । पक्षौ विभूयपक्षीन्द्रोरजसापूर्य रोदसी

अन्धीकृत्य दिशोभागान्बिधरोधस्युपाविशत् ।

व्यादाय वदनं घोरम्महाकन्दरसन्निभम् ॥ ७८ ॥

कान्दिशीका निषादास्तु चिचिशुस्तत्र च स्वयम् ।

मन्वानेष्वथ पन्थानं तेषु कण्ठं विशत्स्वपि ॥ ७९ ॥

जज्वाल्लङ्गलसंस्पर्शो द्विजस्तत्कण्ठकन्दलीम् ।

प्राक् प्रविष्टानथो ताक्ष्यो निषादानौदरिव्रीम् ॥ ८० ॥

प्रवेश्य कण्ठतालुस्थन्तं विज्ञाय द्विजं स्फुटम् । भयादुदगिरत्तूर्णमात्तुषाक्यनियन्त्रतः
तमुत्तूर्णनरं दृष्ट्वा पक्षिराट् समभाषत । कस्त्वज्जात्यासिनिगदममकण्ठविदाहकृत्
सतदाऽऽहेतिविप्रोऽहम्पृष्टः सन्न गरुडाप्रतः । वसाम्येषु निषादेषु जातिमात्रोपजीवकः
तमप्येव गरुडोदूरभक्षयित्वाऽथभूरिशः । नभो विक्षोभयाञ्चक्रे प्रलयानिलसन्निभः
तं दृष्ट्वा तिग्मतेजस्कं उवालाततदिगन्तरम् । उबलद्वाधानलंशैलमिषबिभ्युर्दिर्धौकसः

ते सन्नहन्तयुद्धायसज्जीकृतबलायुधाः । अध्यास्यवाहनान्याशु सर्वे धर्मभृतः सुराः
तिर्यग्गतीरधिर्नार्यनायमग्निः सधूमवान् । क्षणप्रभाप्यसौनैषकोनः सम्मुखपत्यसौ
न देत्येषुऽमेदूकन्यान्नाकृतिर्दानवेष्विषयम् । महासाध्वसदःकोयमस्माकंहृत्प्रकम्पनः
यावत्सम्भावयन्तीति नीतिज्ञा अपि निर्जराः ।

तावद्दुधावस्वौ पक्षी पक्षिराजो महाबलः ॥ ८६ ॥

निपेतुः पक्षवातेन सायुधाश्च सबाहनाः । नञ्जायन्ते क्लसम्प्राप्ता वात्ययापार्णतार्णवत्
अथ तेषु प्रणष्टेषु बुद्ध्या चिन्ताय पक्षिराट् ।

कोशागारं सुधायाः स तत्राऽपश्यच्च रक्षणः ॥ ९१ ॥

शस्त्रास्त्रोद्यतपाणीस्तान्सुरानाधूयसर्वशः । ददर्शकर्तरीयन्त्रममृतोपरिसंस्थितम्
मनः पवनवेगेन भ्रममाणममहारयम् । अपिरुपशान्तममशक्यत्खण्डयति कोटिशः
उपोपविश्यपक्षीन्द्रस्तस्ययन्त्रस्यनिर्भयः । क्षर्णाधिचारयामास किमत्र करवाण्यहो
स्प्रष्टुन्नलन्यतेचैतद्वात्या न प्रभवेदिह । कउपायोऽत्रकर्तव्यो वृथाजातो ममोद्यमः
नबलमप्रभवेदत्र न किञ्चिदपिपौरुषम् । अहोप्रयत्नो देवानामेतत्पीयूषरक्षणे ॥
यदि मे शङ्करेभक्तिर्निद्वन्द्वातीवनिश्चला । तदासदेवदेवोर्माधियुनक्तुमहाधिया ॥
यद्यहम्मातृभकोऽस्मि स्वामिनः शङ्करादपि । तदा मे बुद्धिरत्रास्तुपीयूषहरणक्षमा
आत्मार्थनोद्यमश्चाऽयं हृत्स्थो वेत्तीति विश्वगः ।

मातुर्दास्यधिमोक्षाय यतेऽहममृतमप्रति ॥ ९६ ॥

जरितौ पितरौ यस्य बालापत्यश्च यः पुमान् ।

साध्वीभार्या च तत्पुष्ट्यै दोषोऽकृत्येऽपि तस्य न ॥ १०० ॥

इति विन्तयतस्तस्य बुद्धिरासीन्महात्मनः ॥ १०१ ॥

देहञ्चकारसोऽत्यन्तमणीयासमणोरपि । परमाणुसहस्रांशं कृत्वाकृपममहाद्भुतम्
प्रविश्यकर्तरीयन्त्रमधोदेहस्यलाघवात् । विन्यत् तद्यन्त्रतोदेहबन्धयन्वायुखण्डनात्
मूलमुत्पाश्यतरसागृहीत्वाऽमृतभाजनम् । निर्ययीपाधनेमार्गोकोशत्सुस्वर्गसशसु
तथा वैकुण्ठनाथं ते गत्वा प्रोचुः सुधाभुजः ।

निर्जित्य नीयते चक्रिन्सुधा नो जीवितम्परम् ॥ १०५ ॥

इत्याकर्ण्यहरिस्तेभ्योऽमयं द्रव्या त्वरायुतः । कृत्वायुद्धञ्जसुमहद्विशार्कघटिकाद्वयम्
शुम्भदेव्योर्यथासूतगरुडस्तत्रचाधिकः । तदाप्रसन्नोभगवान्महायुद्धेन सर्वदः
गत्वा गरुडमाहेदम्प्रसन्नोऽस्मि खगोश्वर ! । वरं वृष्णीहिभद्रं ते जितवृन्दारवृन्दक!
हसित्वागरुडः प्राहचिभ्वरूपञ्जनार्दनम् । अहमेव प्रसन्नोऽस्मि त्वं प्रार्थयवरद्वयम्
ततः कैटभजित्प्राह बैनतेयम्मुदान्वितः । वृतं वृतम्महोदार देहि देहि वरद्वयम्
इति विष्णुदितं श्रुत्वा प्रहसन्नाहपक्षिराट् । किं विलम्बेन तद्ब्रूहि दत्तंत्तंचरद्वयम्
अलब्धलाभेसञ्जाते घृतादिविजयोदये । दातव्यंसुधियापात्रे सदा लाभजयौ क्वा
श्राविष्णुरुवाच

बलवानसिपक्षीन्द्र! तन्मेवाहनतां व्रज । एकोवरोऽयं वरद! द्वितीयं शृणुकाश्यप!

दर्शयित्वाऽमृतम्प्राह! मातृदास्यचिमोक्षकम् ।

द्विजिह्वेभ्यः कुरु तथा द्रागश्नन्ति न ते यथा ॥ ११४ ॥

देया सुधा सुधाभुग्भ्यो द्वितीयोऽस्तु वरो मम ।

तथेति स प्रतिज्ञाय निर्ययौ पक्षिराट्दिवः ॥ ११५ ॥

स मातरं विनिर्मोच्य दास्यात्काश्यपनन्दनः ।

नागानां पुरतो धृत्वा महामृतकमण्डलुम् ॥ ११६ ॥

अमृतम्पातुकामांस्तानित्याचष्ट महामतिः ।

नागाः शुचित्वमासाद्य भोक्तव्येषा सुधा शुभा ॥ ११७ ॥

नोचेदशुचिभिः स्पृष्टा स्नानादिपरिचर्जितैः ।

यास्यत्यदृश्यतामेषा सुधाऽनिमिपरक्षिता ॥ ११८ ॥

सामान्यमपि यद्विश्यं स्पृश्यतेऽशुचिभिः क्वचित् ।

हरन्ति तद्रसं देवास्तच्च तिष्ठति नीरसम् ॥ ११९ ॥

इत्युक्त्वा सहितोमात्रा बैनतेयोश्चिनिर्ययौ । कुरासनेघतैरुकोधृत्वापीयूषभाजनम्

यावत्स्नानुं गताः सर्पास्तावत्पीयूषभाजनम् ।

आदाय विष्णुना दत्तं देवेभ्य इव जीवितम् ॥ १२१ ॥

आगत्यभुजगाः स्नात्वा न दृष्ट्वा मृतमाजनम् । अहोप्रतारितानीतममृतञ्चेतिचुकुशुः
ततः पर्यलिहन् दर्भान् पीयूषस्पर्शकाङ्क्षिणः ।

आस्तान्तावत्सुधादूरं जिह्वास्तेषां द्विधामवन् ॥ १२३ ॥

अन्येऽप्यन्यायलब्धार्थं ये बुभुक्षन्ति केवलम् । तन्नोपरिणतिगच्छेद्भोक्तुं वातैर्नलभ्यते
न्यायाध्वस्येन ताक्षर्येण सुधाप्राप्ताऽतिदुर्लभा ।

लब्धाऽप्यन्यायतो नामोर्द्धृष्टमात्रा क्षणाद्गता ॥ १२५ ॥

अथ दास्याद्विनिमुक्ताविनतोवाचखेध्वरम् । पुत्रकाशीं प्रयास्यामि दास्यपापापनुत्तये
तावत्पापानि जृम्भन्ते नानाजन्माजितान्यपि । यावत्काशीनद्वत्संस्थापुनर्भेषविघातिनी
काशीम्भरणमात्रेण किञ्चिन्नयदधं व्रजेत् । गर्भवासोपिनश्येत विश्वेशानुग्रहात्परात्
यत्र विश्वेश्वरः साक्षात्तारापतिविभूषणः । तारयेत्तारकद्रोण्यादुस्तराद्भवसागरात्
विश्वेशानुगृहीतानां विच्छिन्नाखिलकर्मणाम् । भवेत्काशीं प्रतिमतिर्न तरेषां कदाचन
काशीं प्रति मनोयेषां निःशेषक्षालितैः साम् । तेष्व मानवालोके सत्यं नृपशवोपरे ॥
तरेष्वकालो विजितस्त एव हि गतैः नसः । अपुनर्गर्भवासास्ते प्राप्तावारणसीहयैः ॥
श्रेयसाम्माजनञ्चैतन्नृजन्म न मुधा नयेत् । देवानामपि दुष्प्राप्यं काशीसन्दर्शनाद्गते
कः कलिः कोऽथवा कालः किंवा कर्माण्यनेकधा ।

परानन्दप्रदं क्षेत्रमचिमुक्तं यदीक्षितम् ॥ १३४ ॥

ते गर्भवासे तिष्ठन्ति पुनस्ते गर्भवासिनः । येन गर्भवनच्छेत्रीं सेवन्ते वरणामसिम्
निशम्येति वचः प्राह ताक्षर्यो नत्वाऽथ मातरम् ।

अहमप्यागमिष्यामि काशीं द्रष्टुं शिवाचिताम् ॥ १३६ ॥

मातुराज्ञामधप्राप्य जनन्यासहपक्षिराट् । क्षणाद्वाराणसीं प्रापमोक्षनिक्षेपभूमिकाम्
उभाषपिचतेपातेतपउग्रमहामती । संस्थाप्यशाम्भवंलिङ्गपतत्रीन्द्रोऽबलेन्द्रियः
नाम्ना खलोलकादित्यं संस्थाप्य चिन्ता शुभम् ।

अचिरैर्णवकालेन महतस्तपसस्तयोः ॥ १३६ ॥

काश्यां प्रसन्नौ सज्जातौ देवौ शङ्करभास्करौ ।

गरुडस्थापिताल्लिङ्गादाधिरसीदुमापतिः ॥ १४० ॥

गरुडाप्यधरान् प्रादात्सुबह्वनतिदुर्लभान् । खगेन्द्र मम भक्तोऽसि तद्यज्ञानम्भविष्यति
वेत्स्यसित्वरहस्यग्मेयज्ञानात्सुरैरपि । त्वयैतत्स्थापितंलिङ्गं गरुडेश्वरसञ्ज्ञितम्
परमहानदम्पुंसां दृष्टंस्पृष्टं समर्चितम् । अन्यच्चभृशुपक्षीन्द्र हितन्तेष्वग्निसाम्प्रतम्
असावहंसवैविष्णुर्मास्तु ते भेददृक् च नौ । एवं तस्यैवपक्षीन्द्रदैत्येन्द्रबलहारिणः
प्राप्य सत्पत्रतां पत्रिस्तवमप्यर्च्यो भविष्यसि ।

इति द्रुवा वरंशम्भुः स्वभक्ताय गरुटमते ॥ १४५ ॥

सत्रैवाऽन्तर्हितोजातोगरुडोपिहरिययौ । हरेत्थत्वंसम्प्राप्यसोपिपूज्योऽभवद्भुवि
तपस्यन्तीमयालोक्य कदाचिद्विनतां प्रभुः ।

शिवस्यैव परामूर्तिः खखोलकोनाम भास्करः ॥ १४७ ॥

द्रुवा वरं च पापघ्नं शिवज्ञानसमन्वितम् । काशीवासिजनानेकभवपापक्षयङ्करः
चिनतादित्य इत्याख्यः खखोलकस्तत्र संस्थितः ।

इत्थं खखोलकआदित्यः काशीविघ्नतमोहरः ॥ १४९ ॥

सस्यदर्शनमात्रेणसर्वपापैःप्रमुच्यते । काश्यांपैशङ्गिलेतीर्थे खखोलकस्यचिलोकनात्
नरश्चिन्तितमाप्नोति नीरोगो जायते क्षणात् ॥ १५० ॥

नरः ध्रुत्वैतदाख्यानं खखोलकादित्यसम्भषम् । गरुडेशेनसहितं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे खखोलकादित्यगरुडेशयोर्बर्णनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इति काशीखण्डपूर्वार्धसमाप्तम्

शम्भूयात्

—:—

* श्रीगणेशायनमः *

स्कन्दपुराणस्थकाशीखण्डम्

—:०:—

उत्तरार्द्धम्

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अरुणवृद्धकेशवविमलगङ्गादित्यानाम्बर्णनम्

अगस्तिरुवाच

पार्वतीहृदयानन्द सर्वज्ञाङ्गभवप्रभो !। किञ्चित्प्रष्टुमनाःस्वामिस्तद्वचान्बक्तुमर्हति
दक्षप्रजापतेः पुत्रो कश्यपस्य परिग्रहः । गरुन्मतः प्रसूः साध्वीकुतोदास्यमवापसा

स्कन्द उवाच

हञ्जिका त्वं यथाप्राप्ताविनता सा तपस्विनी । तदप्यहंसमाख्यामिनिशामयमहामते
कट्टूरजीजनत्पुत्राञ्छतं कश्यपतः पुरा । उत्कमरुणन्तार्क्ष्यमसूत चिन्ता त्रयम् ॥

कौशिको राज्यमाप्याऽपि श्रेष्ठत्वात्पक्षिणांमुने !।

निर्गुणत्वाच्च तैः सर्वैः स राज्यादधरोपितः ॥ ५ ॥

क्रूराक्षोऽयंदिवान्योऽयंसदावक्रनखस्त्वसौ । अतीषोद्वेगजनकंसर्षेणामस्यभाषणम्
इत्थं तस्यगुणप्रामान्विकथ्यबहुशःखगाः । नाद्यापिवृष्वतेराज्येकमपिस्वैरचारिणः
कौशिकेऽथ तथा वृत्तेपुत्रवीक्षणलालसा । अण्डम्प्रस्फोटयामासमध्यमंविनतातदा

पूर्णेवर्षसहस्रे तु प्रस्फोटय घटसम्भव । तदभेदितयोत्सुक्यादण्डमष्टमके शते
तावत्सर्वाणि गात्राणि तस्याऽतिमहसःशिशोः ।

ऊर्ध्वोरुपरिसिद्धानि तदण्डान्तर्निवासिनः ॥ १० ॥

अण्डाभिर्गतमात्रेण क्रोधारुणमुखश्रिया । अर्धनिष्पन्नदेहेन शिशुनाशा पिताप्रसूः
जनयित्रि! त्वया दृष्ट्वा काप्रवेयान् स्वलीलया ।

खेलतो मातुरुत्सङ्गे यदण्डं व्याधि तद् द्विधा ॥ १२ ॥

तदनिष्पन्नसर्वाङ्गः शपामि त्वां विहङ्गमे । तेषामेवैधिदासीत्वं सपत्न्यङ्गभुवामिह
वेषमानाऽथ तच्छापादिदम्प्रोवाचपक्षिणी । अनुरो! ब्रूहि मे शापावसानम्मातुरङ्गज

अनूरुवाच

अण्डन्तृतीयं मा भिन्धि ह्यनिष्पन्नम्ममैव हि ।

अस्मिन्नण्डेभविष्यो यः स ते दाम्यं हरिष्यति ॥ १५ ॥

इत्युक्त्वा सोऽरुणोऽगच्छदुद्धीयाऽऽनन्दकाननम् ।

यत्र विश्वेश्वरो दद्यादपि पङ्गोः शुभां गतिम् ॥ १६ ॥

एतत्सेपृच्छतः स्यातंचिनतादास्यकारणम् । मुने! प्रसङ्गतोवचिच्चिरुणादित्यसम्भवम्
अनूरुत्वादनूरुर्योऽरुणः क्रोधारुणोयतः । वाराणस्यान्तपस्तप्तवातेनाराधिदिवाकरः
सोऽपि प्रसन्नोदस्वाधवरंस्तस्मा अनूरवे । आदित्यस्तस्यनाम्नाभूदरुणादित्यइत्यपि

अर्क उवाच

तिष्ठानुरो! ममरथे सदैव चिनतात्मज ! । जगताञ्जहितार्थाय ध्वान्तं विध्वंसयन्पुरः

अत्र त्वत्स्थापिताम्मूर्ति ये भजिष्यन्ति मानवाः ।

वाराणस्याम्महादेवोत्तरे तेषां कुतो भयम् ॥ २१ ॥

येऽर्धयिष्यन्ति सततमरुणादित्यसञ्ज्ञकम् । मामत्रतेषां नोदुखंनदारिद्र्यं नपातकम्
व्याधिभिर्नाभिभूयन्तेनोपसर्गैश्च कैश्चन । शोकाग्निनानदह्यन्तेह्यरुणादित्यसेवनात्
अथस्यन्दनमारोप्य नीतबानरुणं रविः । अद्याऽपि स रथे सौरैः प्रातरेव समुद्यति
यः कुर्यात्प्रातरुपाय नमस्कारं दिने दिने । अरुणायससूर्यायतस्य दुःखभयं कुतः

अरुणादित्यमाहात्म्यं यः श्रोष्यति नरोत्तमः । न तस्य दुष्कृतकिञ्चिद्भविष्यति कदाचन

स्कन्द उवाच

वृद्धादित्यस्य माहात्म्यं शृणुते कथयाम्यहम् । यस्य भ्रवणमात्रेण नरो नो दुष्कृतम्भजेत्
पुरात्र वृद्धहारीतो वाराणस्याम् महातपाः । महातपःसमृद्धर्थं समाराधितवान् रविम्

मूर्तिं संस्थाप्य शुभदां भास्वतः शुभलक्षणाम् ।

दक्षिणेन विशालाक्ष्या दृढभक्तिसमन्वितः ॥ २६ ॥

तुष्टस्तम्भैर्वरम्प्रादाद्ब्रध्नो वृद्धतपस्विने । अलं विलम्बयाच्च स्वकस्ते देवो वरो मया
सोऽथ प्रसन्नाद् द्युमणेरवृणीत वरमुनिः । यदि प्रसन्नो भगवान् युवत्वन्देहि मे पुनः
तपःकरणसामर्थ्यं स्थविरस्य न मे यतः । पुनस्ता रुण्यमाप्तोऽहं चरिष्याम्युत्तमन्तपः
तप एव परो धर्मस्तप एव परं वसु । तप एव परः कामो निर्वाणं तप एव हि
ऋतेन तपसः काऽपिलभ्यापेऽर्थसम्पदः । पदं ध्रुवादिभिः प्रापिकेवलं तपसो बलात्
ततस्तपश्चरिष्यामि लोकद्वयमहस्यदम् । प्राप्यत्वद्वरदानेन यौवनं सर्वसम्मतम्
धिग्जरां प्राणिनामत्रयया सर्वोचिरज्यति । जरानुरेन्द्रियप्राप्तेस्त्रियोपिनयतः स्वसात्
वरं मरणमेवास्तु माजरास्त्वतिशोच्यकृत् । क्षणं दुःखञ्च मरणञ्जरादुखं क्षणेक्षणे
काङ्क्षन्ति दीर्घतपसे चिरमायुर्जितेन्द्रिया । धनदानाय पुत्राय कलत्रमुक्तये धियम्
वृद्धस्य वार्धकम्ब्रध्नस्तत्क्षणादपहृत्य वै । ददौ च चारुताहेतुन्तारुण्यमुण्यसाधनम्
एवंस वृद्धहारीतो वाराणस्यां महामुनिः । सम्प्राप्य यौवनम्ब्रध्नान्तपउग्रं च चारुह
वृद्धेनाराधितो यस्माद्दहारीतेन तपस्विना । आदित्यो बार्धकहरो वृद्धादित्यस्ततः स्मृतः
वृद्धादित्यं समाराध्य वाराणस्यां घटोद्भव ! । जरानुरेन्द्रियप्राप्तेस्त्रियोपिनयतः स्वसात्

वृद्धादित्यं नमस्कृत्य वाराणस्यां रवौ नरः ।

लभेद्भीप्सितां सिद्धिं न क्वचिद्दुर्गतिलभेत् ॥ ४३ ॥

स्कन्द उवाच

अतः परं शृणु मुने! केशवादित्यमुत्तमम् । यथा तु केशवम्प्राप्य सचिता ज्ञानमाप्तवान्
व्योम्निसञ्चरमाणेन सप्ताश्वेनादिकेशवः । एकदाऽदर्शित्वा भावेन पूजयँल्लिङ्गमैश्वरम्

कौस्तुकाविषडर्चीर्यहरैरबिरुपाविशत् । निःशब्दोनिश्चलःस्वस्थोमहाश्वर्यसमन्वितः
प्रतीक्षमाणोऽवसरंकिञ्चित्प्रष्टुमनाहरिम् । हरिं विसर्जितार्धञ्च प्रणनामकृताञ्जलिः
स्वागतन्तेहरिःप्राहबहुमानपुरःसरम् । स्वाम्याशवासयामास भास्वन्तंनतकन्धरम्
अथावसरमालोक्य लोकचक्षुरधोक्षजम् । नत्वा विज्ञापयामास हृतानुज्ञोऽसुरारिणा

रविरुवाच

अन्तरात्मासिजगतांचिम्बभरजगत्पते! । तथापिपूज्यःकोप्यस्तिजगत्पूज्यात्रमाधध
त्वसश्चाधिर्मवेदेतस्वयिसर्वप्रलीयते । त्वमेव पाता सर्वस्य जगतोजगतांनिधे
इत्याश्वर्यंसमालोक्यप्रातोस्म्यत्रतवान्तिकम् । किमिदम्पूज्यतेनाथमवतामवतापहत्
इतिभ्रुत्वा हृषीकेशःसहस्रांशोरुदीरितम् । उच्चैर्मां शंसऽसप्ताश्वं धारयन्करसऽज्ञया

श्रीविष्णुरुवाच

देवदेवो महादेवो नीलकण्ठ उमापतिः । एकएवहि पूज्योऽत्र सर्वकारणकारणम्
अत्र त्रिलोचनादन्यं समर्चयति योऽलपधीः ।

सलोचनोऽपि विज्ञेयो लोचनाभ्यां विधर्जितः ॥ ५५ ॥

एको मृत्युञ्जयः पूज्यो जन्ममृत्युजराहरः ।

मृत्युञ्जयं किलाम्यर्चयं श्वेतो मृत्युञ्जयोऽभवत् ॥ ५६ ॥

कालकालंसमाराध्यभृङ्गीकालंजिगायचै । शैलादिमपितत्याजमृत्युमृत्युञ्जयार्चकम्
विजिग्येत्रिपुरंयस्तु हेत्ययंकेषुमोक्षणात् । तंसमभ्यर्चयंभूतेशंकोनपूज्यतमोभवेत्
त्रिजगज्जयिनोहेतोस्त्र्यक्षस्याराधनम्परम् । कोनाराधयतिब्रध्नसारस्यस्मर विद्विषः
यस्याक्षिपश्मसङ्कोषाजगत्सङ्कोचमेत्यदः । विकस्वरं विकासाच्चकस्यपूज्यतमोनसः
शम्भोलिङ्गसमभ्यर्चयंपुरुषार्थचतुष्टयम् । प्राप्नोत्यत्रपुमान्सद्योनात्रकार्याविचारणा
समर्चयंशाम्भवंलिङ्गमपिजन्मशतार्जितम् । पापपुञ्जंहात्येव पुमानत्रक्षणाद् ध्रुवम्
किंकिनसम्भवेदत्रशिबलिङ्गसमर्चनात् । पुत्राःकलत्रक्षेत्राणिस्वर्गोमोक्षोप्यसंशयम्
त्रैलोक्यैर्भ्यर्चयंसम्पत्तिर्मयाप्राप्तासहस्रगो ! । शिबलिङ्गार्चनाद्रेकात्सत्यंसत्यंपुनः पुनः
अथमेवपरोयोगस्त्विदमेव परन्तपः । इदमेव परंज्ञानंस्थानुलिङ्गंयदर्च्यते ॥ ६५ ॥

यैर्लिङ्गसङ्घट्टपत्र पूजितम्पार्श्वतीपतेः । कुतौदुःखभयस्तेषां संसारे दुःखभाजने
सर्वम्परित्यज्यरवे यो लिङ्गशरणंगतः । न तम्पापानिबाधन्ते महान्त्यपि दिवाकर
लिङ्गार्चनैर्भवेद् बुद्धिस्तेषामेवाऽत्रभास्कर । येषाम्पुनर्भङ्गच्छेदञ्चिकीर्षति महेश्वरः
न लिङ्गाराधनात्पुण्यत्रिषुलोकेषु चाऽपरम् ।

सर्वतीर्थाभिषेकः स्याल्लिङ्गस्नानाम्बुसेवनात् ॥ ६९ ॥

तस्माल्लिङ्गन्त्वमप्यर्क! समर्षय महेशितुः ।

सम्प्राप्तपरमालक्ष्मीम्महातेजोभिजृम्भणीम् ॥ ७० ॥

इति श्रुत्वाहरेर्वाक्यन्तदारभ्यसहस्रगुः । विधायस्फाटिकंलिङ्गमुनेद्याऽपिसमर्षयेत्
गुह्यत्वेनतदाकल्प्य विवस्वानादिकेशवम् । तत्रोपतिष्ठतेद्याऽपिउसरेणादिकेशवात्
अतः सकेशवादित्यः काश्याम्भक्ततमोनुदः ।

समर्षितः सदादेयान्मनसोवाञ्छितम्फलम् ॥ ७३ ॥

केशवादित्यमाराध्य धाराणस्यां नरोत्तमः ।

परमं ज्ञानमाप्नोति येन निर्वाणभाग्भवेत् ॥ ७४ ॥

तत्रपादोदकेनीर्यं कृत्वा सर्वोदकक्रियः । विलोक्यकेशवादित्यं मुच्यते जन्मपातकः
अगस्ते! रथसप्तम्यां रविचारोयदाप्यने । तदापादोदकेतीर्थे आदिकेशवसन्निधौ
स्नात्वोपसि नरो मीनी केशवादित्यपूजनात् ।

सप्तजन्माजितात्पापान्मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥ ७७ ॥

यद्यजन्मकृत्पार्श्वमयासप्तसुजन्मसु । तन्मे रोगं च शोकं च, माकरी हन्तु सप्तमी
एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तराजितम् । मनोघाकायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः
इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके । सप्तव्याधिसमायुक्तं हरमाकरिसप्तमि!

एतन्मन्त्रत्रयं जप्त्वा स्नात्वा पादोदके नरः ।

केशवादित्यमालोक्य क्षणाग्निष्कलुषो भवेत् ॥ ८१ ॥

केशवादित्यमाहात्म्यं शृण्वञ्छुद्धासमन्वितः ।

नरो न लिप्यते पापैः शिबभर्कि च चिन्दति ॥ ८२ ॥

स्कन्द उवाच

अतः परंशृणुमुने विमलादित्यमुत्तमम् । हरिकेशवनेत्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम्
 उच्चदेशेऽभवत्पूर्वं विमलोनामथाहुजः । सप्राक्तनात्कर्मयोगाद्विमलेपध्यपि स्थितः
 कुष्ठरोगमवाप्योच्चैस्त्वत्त्वादारानगृहं वसु । वाराणसीसमासाद्यब्रध्नमाराधयत्सुधीः
 करवीरैर्जंपामिश्च गन्धकैः किशुकैः शुभैः । रक्तोत्पलैरशोकैश्च ससमानर्घभास्करम्
 विचित्ररत्नैर्माल्यैः पाटलाचम्पकोद्भवैः । कुङ्कुमागुरुकर्पूरमिश्रितैः शोणचन्दनैः
 देवमोहनधूपैश्च बह्मामोदततागवैः । कर्पूरवर्तिदीपैश्च नैवेद्यैर्घृतपायसैः ॥ ८८ ॥
 अर्घदानैश्च विधिवत्सौरैः स्तोत्रजपैरपि । एवंसमाराधयतस्तस्यार्कोवरदोऽभवत्
 उवाच च वरंब्रूहि विमलामलचेष्टित ! । कुष्ठश्च ते प्रयात्वेप प्रार्थयाऽन्यंवरं पुनः
 आकर्ण्यविमलश्चेत्थमालापं रश्मिमालिनः । प्रणतोदण्डवद् भूमौ संप्रहृष्टतनूरुहः ॥
 शनैर्विज्ञापयाञ्चकै एकचक्रयंरविम् । जगच्चक्षुरमेयात्मन्महाध्वान्तविधूनन
 यदि प्रसन्नो भगवन् ! यदि देवो वरो मम ।

तदात्वद्भक्तिनिष्ठा ये कुष्ठं मास्तु तदन्वये ॥ ९३ ॥

अन्येपिरोगामासन्तुमास्तुनैषां दरिद्रता । मास्तुकञ्चनसन्तापस्त्वद्भक्तानांसहस्रगो
 ध्रीसूर्य उवाच

तथास्त्वितिमहाप्राज्ञ शृण्वन् यंवरमुत्तमम् । त्वयेयं पूजितामूर्तिरेवंकाश्यांमहामते

अस्याः सान्निध्यमत्राऽहं न त्यश्यामि कदाचन ।

प्रथिता तव नास्मा च प्रतिमैषा भविष्यति ॥ ९६ ॥

विमलादित्यइत्याख्या भक्तानां वरदा सदा ।

सर्वध्याधिनिहन्त्री च सर्वपापक्षयङ्करी ॥ ९७ ॥

इति दृष्ट्वा वरानसुर्यस्तत्रैवाऽन्तरधीयत । विमलोनिर्मलतनुःसोऽपिस्वभवनं ययौ
 इत्थं सविमलादित्यो वाराणस्यां शुभप्रदः । तस्य दर्शनमात्रेण कुष्ठरोगःप्रणश्यति
 यश्चेतां विमलादित्यकथां वै शृणुयान्नरः ।

प्राप्नोति निर्मलां शुद्धिं त्यज्यते च मनोमलैः ॥ १०० ॥

स्कन्द उवाच

गङ्गादित्योऽस्ति तत्राऽन्यो विश्वेशाद्दक्षिणेन वै ।

तस्य दर्शनमात्रेण नरः शुद्धिमियादिह ॥ १०१ ॥

यदा गङ्गासमायाना भगीरथपुरस्कृता । तदागङ्गांपरिष्टोतुं रविस्तत्रैवसंस्थितः ॥
अद्याप्यहर्निशंगङ्गां सम्मुखीकृत्य भास्करः । परिष्टौतिप्रसन्नात्मा गङ्गाभक्तवत्प्रदः
गङ्गादित्यंसमाराध्य चारुणस्यांनरोत्तमः । नजातुदुर्गतिं कापि लभतेनच रोगभाक्

स्कन्द उवाच

अन्यच्छृणुमहाभाग यमादित्यस्यसम्भवम् । यच्छ्रुत्वापिनरोजातुयमलोकंनपश्यति
यमेशात्पश्चिमेभानो वीरेशात्पूर्वतो मुने ! यमादित्यं नरोदृष्ट्वा यमलोकं न पश्यति ॥
यमतीर्थे नरः स्नात्वा भूतायाम्भौमघासरे । यमेश्वरं विलोक्याशु सर्वैः पापैः प्रमुच्यते
यमतीर्थे यमः पूर्वं तप्त्वा सुविमलन्तपः । यमेशञ्चयमादित्यं प्रत्यष्टाद्भक्तसिद्धिदम्
यमेन स्थापितो यस्मादादित्यस्तत्र कुम्भज !

अतः स हि यमादित्यो यामीं हरति यातनाम् ॥ ६ ॥

यमेशञ्चयमादित्यं यमेन स्थापितं नमन् । यमतीर्थे कृतस्नानो यमलोकं न पश्यति
यमतीर्थे क्षतुर्दृश्यां भरण्याम्भौमघासरे ! तर्पणं पिण्डदानञ्च कृत्वापित्रुणोभवेत्
अभिलष्यन्तिसततं पितरोनरकौकसः । भौमेभरण्याम्भृतायां यदि योगोऽयमुत्तमः
काश्यां कश्चिद्यमे तीर्थे कृत्वा स्नानं महामतिः ।

अपि यस्तर्पणं कुर्यात्सतिलं नो विमुक्तये ॥ १३ ॥

किं गयागमनैः पुंसां किं श्राद्धैर्भूरिदक्षिणैः ।

यदि काश्यां यमे तीर्थे योगेऽस्मिञ्छ्राद्धमाप्यते ॥ १४ ॥

श्राद्धं कृत्वा यमेतीर्थे पूजयित्वायमेश्वरम् । यमादित्यं नमस्कृत्य पितृणामनुषोभवेत्

स्कन्द उवाच

इतितेद्वादशादित्याः कथिताः पापनाशनाः । यत्सम्भवंसमाकर्ण्य नरो न निरयीभवेत्
अन्येऽपिसन्ति घटजरविभक्तैरनेकशः । काश्यां संस्थापिताः सूर्यागुह्यकार्कादयः किल

धृत्वाध्यायानिमान्पुण्यान् द्वादशादित्यसूचकान् ।

श्रावयित्वाऽपि नो मर्त्यो दुर्गतिं याति कुत्रचित् ॥ ११८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

उत्तरार्धे ऽरुणवृद्धकेशवचिमलगङ्गायामादित्यवर्णनं

नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

—:—

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

गमस्तिमालिनि गते काशीं त्रैलोक्यमोहिनीम् ।

पुनश्चिन्तामवापोच्चैर्मन्दरस्थोमुनेहरः ॥ १ ॥

नाद्याप्यायान्ति योगिन्यो नाद्याप्यायाति तिग्मगुः ।

प्रवृत्तिरपि मे काश्याश्चित्रमप्यन्तदुर्लभा ॥ २ ॥

किमत्रचित्रं यत्काशी मदीयमपि मानसम् । निश्चलं चञ्चलयति गणना केतरेसुरे
अधाक्षिपमहकाम त्रिजगज्जिस्वरं दृशा । अहो काश्यभिलापोऽत्रमामेवदुनुयात्तराम्
काशीप्रवृत्तिमन्वेष्टुं कम्वा प्रहिणुयामितः । ज्ञातुंकएवनिपुणो यतः स चतुराननः
इत्याह्वय विधातारं बहुमानपुरःसरम् । तत्रोपवेश्य श्रीकण्ठः प्रोवाच चतुराननम्
योगिन्यः प्रेषिताःपूर्वंप्रेषितोऽथसहस्रगुः । नाद्यापितेनिवर्तन्नेकाश्याः कमलसम्भव
स्नासमुत्सुकयेत्काशी लोकेश मममानसम् । प्राकृतस्यजनस्येष चञ्चलाक्षीवकाचन
मन्दरेऽत्र रतिर्मे न भृशं सुन्दरकन्दरे । अनच्छतुच्छपानीये नक्रस्येवालपपल्वले
नावाधिष्ठतधामां स नापोहालाहलोद्भवः । काशीधिरहजन्माऽत्र यथामामतिबाधते
शीतरश्मिः शिरस्थोऽपिबर्षन्पीयूषसीकरैः । काशीविश्लेषजंतापनाहोंगमयितुंप्रभुः

विधेविधेहि मे कार्यं मार्यधुर्यं महामते! । याहिकाशीमितस्तूर्णं यतस्व च ममेहि ते
 ब्रह्मंस्त्वमेवतवेत्सिकाशीत्यजनकारणम् । मन्दोपिनत्यजेत्काशीकिमुयोवेत्सिकिञ्चन
 अचैवकिंनगच्छेयं काशीं ब्रह्मन्स्वमायया । द्विबोदासं स्वधर्मस्थं नतूह्यं घितुमुत्सहे
 विधेसर्वविधेयानित्वमेवविद्धानिसियत् । इतिचेतिचषक्तव्यंत्वज्यपार्थमतोऽखिलम्
 अरिष्टं गच्छपन्थास्ते शुभोदर्को भवत्वलम् ।

आदायाऽऽज्ञां विधिर्मुं धिन ययौ वाराणसीं मुदा ॥ १६ ॥

सितहंसरथस्तूर्णं प्राप्यवाराणसीं पुरीम् । कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत तदात्मभूः
 हंसयानफलं मेऽद्यजातं काशीसमागमे । काशीप्राप्तौयतः प्रोक्ता अन्तरायाः पदे पदे
 दृशिधातुरभूद्यमद्दृशौप्राप्यसान्वयः । स्पष्टं दृष्टिपथं प्राप्ता यदेवाऽऽनन्दवाटिका
 स्वयंसिञ्चितियामद्विःस्वाभिःस्वर्गतरङ्गिणी । यत्रानन्दमयावृक्षायत्रानन्दमयाजनाः
 निर्विशन्ति सदा काश्यां फलान्यानन्दघन्यपि ।

सदैवानन्दभूः काशी सदैवानन्दःशिवः ॥ २१ ॥

आनन्दरूपाजायन्ते तेनकाश्यांहिजननवः । चरणौ चरितुं विसस्तावेव कृतिनामिह
 चरणौविचरेतांथौ विश्वभर्तृपुरीभुवि । तावेव श्रवणौ श्रोतुं सम्बिदाते बहुध्रुतौ
 इहश्रुतिमतां पुंसांयान्यां काशीश्रुतासकृन् । तदेवमनुतेसर्वमनस्त्विहमनस्विनाम्
 येनानुमन्यतेष्वेवा काशीसर्वप्रमाणभूः । बुद्धिबुं ध्यति सा सर्वमिहबुद्धिमतां सताम्
 ययैतद्भूर्जटेधाम ध्रवं स्वविपर्ययकृतम् ॥ २५ ॥

वरंतृणानि धान्यानि तानि वात्याहृतान्यपि ।

काश्यां यान्यापतन्तीह न जनाः काश्यदर्शनाः ॥ २६

अद्यमेसफलञ्चायुः परार्थद्वयसम्मितम् । यस्मिन्सतिमयाप्रापितुञ्चापाकाशिकापुरी
 अहोमैधर्मसम्पत्तिरहोमेमाग्यगौरवम् । यद्द्राक्षियमद्याहं काशीं सुचिरचिन्तिताम्
 अद्यमेस्वतपोवृक्षो मनोरथफलैरलम् । शिवभक्त्यम्बुनासिक्तः फलितोऽतिबृहत्सरैः
 मयाव्यधायिबहुधा सृष्टिःसृष्टिचितन्वता । परमन्यादृशीकाशीस्वयंविश्वेशनिर्मितिः
 इति हृष्टमनावेधा दृष्ट्वा वाराणसीं पुरीम् । वृद्धब्राह्मणरूपेण राजानञ्चददर्शह

जलाद्राक्षतपाणिभ्रस्वस्त्युक्तवापृथिवीभुजे । कृतप्रणामोराहाय भेजेतद्वृत्तमासनम्
कृतमानोनृपतिना सोम्युत्थानासनादिभिः । विप्रोव्यजिज्ञपद्भूषं पृष्टागमनकारणम्

ब्राह्मण उवाच

भूपालबहुकालीनोऽस्म्यहमत्रचिरन्तनः । त्वन्तुमानैवजानासिजानेत्वांहिरिपुञ्जितम्
परःशतामयाद्रुष्टाराजानोभूरिदक्षिणाः । विजितानेकसङ्ग्रामा यायजूकाजितेन्द्रियाः
धिनिष्कृतारिषड्चर्गाः सुशीलाः सस्वशालिनः ।

श्रुतस्य पारदृश्वानो राजनीतिविचक्षणाः ॥ ३६ ॥

दयादाक्षिण्यनिपुणाः सत्यव्रतपरायणाः । क्षमयाक्षमयातुल्यागाम्भीर्यजितसागराः
जितरोषरयाःशूराः सौम्यसौन्दर्यभूमयः । इत्यादिगुणसम्पन्नाः सुसञ्चितयशोधनाः
परं द्वित्राःपवित्रायैराजर्षे तव सद्गुणाः । तेष्वेषु राजसु मम प्रायशो न दृशंगताः
प्रजानिजकुटुम्बस्त्वं त्वन्तु भूदेवदेवतः । महातपःसहायस्त्वं यथानान्ये तथानृपाः

धन्योमान्योऽसि च सता पूजनीयोऽसि सद्गुणैः ।

देवाअपिदिशोदास! त्वत्त्रासात्र विमार्गगाः ॥ ४१ ॥

किं नः स्तुत्या तव नृप! द्विजा नामस्पृहावताम् ।

किं कुर्मस्त्वद्गुणप्रामाः स्तावकान्नः प्रकुर्वते ॥ ४२ ॥

गोष्टीतिष्ठतिषयं तावत्प्रस्तुतं स्तोमि साम्प्रतम् ।

यष्टुकामोऽस्म्यहं राजस्त्वां सहायमतो वृणे ॥ ४३ ॥

त्वया राजन्वती खेयाऽवनिः सर्वधिभाजनम् ।

अहं खास्तिधनो राजन्! न्यायोपाल्तमहाधनः ॥ ४४ ॥

इयञ्चराजधानी ते कर्मभूमावनुत्तमा । यस्यां कृतानांकार्याणां सम्बर्तेऽपि न संक्षयः
सञ्चितं यद्धनं पुष्मिर्नयसन्मार्गगामिभिः ।

तत्काश्यां धिनिशुज्येत क्लेशायेतरथा भवेत् ॥ ४६ ॥

महिमानं परं काश्याः कोऽपिषेद न भूपते! । ऋतेत्रिनयनाच्छम्भोः सर्वज्ञानप्रदायिनः
मन्ये धन्यतरोऽसि त्वं बहुजन्मशतार्जितैः ।

सुकृतैः पासि यत्काशीं विश्वभर्तुः परां तनुम् ॥ ४८ ॥

काशीत्रिजगतीसारस्त्रिवेदीसार एव वै । त्रिवर्गोत्तरसारश्च निर्णीतिति महर्षिभिः
विश्वेशानुग्रहेणैव त्वयैवापाल्यतेपुरी । एकस्याप्यवनात्काश्यांत्रेलोक्यमचितम्भवेत्

अन्यच्च ते हितं घञ्चिम् यदि ते रोचतेऽनघ ! ।

प्रीणनीयः सदैवैको विश्वेशः सर्वकर्मभिः ॥ ५१ ॥

अन्यदेव धिया-राजन् विश्वेशं पश्य माकञ्चित् ।

ब्रह्मविष्ण्वन्द्रक्षन्द्रार्काः क्रीडेयन्तस्य धूर्जटेः ॥ ५२ ॥

विप्रैरुदकर्मिच्छद्भिः शिक्षणीया यतो नृपाः ।

अतस्तव हितं ख्यातं किम्वा मे चिन्तयाऽनया ॥ ५३ ॥

इति जोषं स्थितंविप्रं प्रत्युवाचनृपोत्तमः । सर्वं मयाहृदिधृतंयस्त्वयोक्तंद्विजोत्तम!

राजोवाच

अहं वियक्षमाणस्य तव साहाय्यकर्मणि ।

दासोऽस्मि यज्ञसम्भाराद्य मे कोशतोऽखिलान् ॥ ५५ ॥

यदस्ति मेऽखिलन्तत्र समाङ्गेऽपि भवान्प्रभुः ।

यजस्वैकमनाब्रह्मन् !सिद्धं मन्यस्व वाञ्छितम् ॥ ५६ ॥

राज्यं करोमि यद् ब्रह्मन् !स्वार्थं तन्नमनागपि । पुत्रैः कलत्रैर्देहेन परोपकृतये यते ॥

राज्ञां क्रतुक्रियाभ्योपितीर्थेभ्योपिसमन्ततः । प्रजापालनमेवैकोधर्मःप्रोक्तोमनीषिभिः

प्रजासन्तापजोवह्निर्वज्राग्नैरपिदारुणः । द्वित्रान्दहतवज्राग्निः पूर्वो राज्यं कुलंतनुम्

यदाऽघभृथसिस्नासुर्भवेर्यं द्विजसत्तम ! । तदा विप्रपदाम्भोभिरभिषेकं करोभ्यहम्

हवनं ब्राह्मणमुखे यत् करोमि द्विजोत्तम ! । मन्येऽपि क्रतुक्रियाभ्योऽपि तद्विशिष्टं महामते

अभिलाषेषु सर्वेषु जागत्यैकोहृदीह मे । अद्यापि मार्गणःकोऽपि द्रष्टव्यः स्वतनोरपि

अहो अहोमिबन्धुभिः फलितो मे मनोरथः । यस्वमेऽद्य गृहे प्रासः किञ्चित्प्रार्थयितुं द्विज

एकाग्रमानसो विप्र! यज्ञान्बिषुलक्षिणात् ।

बह्वन्यज कृतं बिद्धि साहाय्यं सर्वघस्तुषु ॥ ६४ ॥

इति राहो मह बुद्धैर्धर्मशीलस्य भाषितम् । श्रुत्वा तुष्टमनाःस्त्रष्टाकतुसम्भारमाहरत्
साहाय्यंप्राप्य राजर्षेर्विधोदासस्यपद्मभूः । इयाजदशभिः काश्यामश्वमेधैर्महामखैः
अद्यापि ह्योमधूमौर्वैर्यद्व्याप्तंगगनान्तरम् । तदाप्रभृति न व्योमनीलिमानंजहात्यदः
तीर्थं दशाश्वमेधाख्यं प्रथितंजगतीतले । तदाप्रभृति तत्रासीद्वाराणस्यां शुभप्रदम्
पुरारुद्रसरोनाम तत्तीर्थं कलशोद्भव !। दशाश्वमेधिकं पञ्चाज्जातं विधिपरिग्रहात्
स्वधुर्न्यथ ततः प्राप्ताभगीरधसमागमात् । अतीवपुण्यवज्जातमतस्तत्तीर्थंमुत्तमम्

विधिर्दशाश्वमेधेशं लिङ्गं संस्थाप्य तत्र वै ।

स्थितवाग्नगतोऽद्यापि काऽपि काशीं विहाय तु ॥ ७१ ॥

राहो धर्मरतेस्तस्यच्छिद्रंनावापकिञ्चन । अतःपुरारेः पुरतो व्रजित्वा किं वद्रेद्विधिः

क्षेत्रप्रभावं विज्ञाय ध्यायन्विश्वेश्वरं शिवम् ।

ब्रह्मेश्वरं च संस्थाप्य विधितत्रैव संस्थितः ॥ ७२ ॥

परा तनुरियं काशी विश्वेशस्येति निश्चितम् ।

अस्याः संसेवनाच्छम्भुर्न कुप्यति पुरो मयि ॥ ७३ ॥

कः प्राप्य काशीं दुर्मेधाः पुनस्त्यक्तुमिहेहते । अनेकजन्मजनितकर्मनिर्मूलनक्षमाम्

विश्वसन्तापसंहर्तुः स्थाने विश्वपतेस्तनुः ।

सन्ताप्यतेतरां काश्या विश्लेषजमहाग्निना ॥ ७६ ॥

प्राप्य काशीं त्यजेद्यस्तु समस्ताघौघनाशिनीम् ।

नृपशुः स परिच्छेद्यो महासौख्यपराङ्मुखः ॥ ७७ ॥

निर्वाणलक्ष्मीं यः काङ्क्षेस्यत्त्वा संसारदुर्गतिम् ।

तेन काशी न सन्त्याज्या यद्यातैशादनुग्रहात् ॥ ७८ ॥

यः काशीं सम्परित्यज्य गच्छेदन्यत्रदुर्मतिः । तस्यहस्ततलाद्गच्छेत्तुर्वर्गफलोदयः

निवर्हणीमघौघस्य सुपुण्यपरिवृद्धिणीम् ।

कःप्राप्य काशीं दुर्मेधास्त्यजेन्मोक्षसुखप्रदाम् ॥ ८० ॥

सत्यलोके क तत्सौख्यं क सौख्यं वैष्णवे पदे ।

यत्सौख्यं लभ्यते काश्यां निमेषार्धनिषेवणात् ॥ ८१ ॥

वाराणसीगुणगणाभिर्णीयद्रुहिणस्तिवति । व्यावृत्त्यमन्दरभिरिन्पुनःप्रत्यगान्मुने
स्कन्द उवाच

मित्रावरुणयोः पुत्र! महिमानं ब्रवीमि ते । काश्यां दशाश्वमेधस्य सर्वतीर्थशिरोमणेः
दशाश्वमेधिकं प्राप्य सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । यत्किञ्चित्क्रियते कर्म तदक्षयमिहेरितम्
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।

सन्ध्योपास्तिस्तर्पणं च श्राद्धं पितृसमर्चनम् ॥ ८५ ॥

दशाश्वमेधिके तीर्थे सकृत्स्नात्वा नरोत्तमः । दृष्ट्वा दशाश्वमेधेशं सर्वपापैः प्रमुच्यते
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रतिपदं तिथिम् । दशाश्वमेधिके स्नात्वा मुच्यते जन्मपातकैः
ज्येष्ठे शुक्लद्वितीयायां स्नात्वा रुद्रसरोवरे । जन्मद्वयकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति
एवं सर्वानुतिथिषु क्रमस्नायी नरोत्तमः । आशुक्लपक्षदशमि प्रतिजन्माद्यमुत्सृजेत्
तिथिदशहरां प्राप्य दशजन्माद्यहारिणीम् । दशाश्वमेधिके स्नातो यामीं पश्येन्नयातनाम्
लिङ्गं दशाश्वमेधेशं दृष्ट्वा दशहरातिथौ ।

दशजन्मार्जितैः पापैस्त्यज्यते नाऽत्र संशयः ॥ ९१ ॥

स्नातो दशहरायां यः पूजयेद्द्विङ्गमुत्तमम् । भक्त्या दशाश्वमेधेशं न तं गर्भं दशास्पृशेत्
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पक्षं रुद्रसरे नरः । कुर्वन्वेवार्पिकीं यात्रां न विघ्नै रभिभूयते
दशाश्वमेधाय भूयैर्यत्फलं सम्यगाप्यते । दशाश्वमेधे तन्नूनं स्नात्वा दशहरातिथौ ॥
स्वर्धुन्याः पश्चिमे तीरे नत्वा दशहरेश्वरम् । नदुर्दशामवाप्नोति पुमान्पुण्यतमः क्वचित्
यत्काश्यां दक्षिणद्वारमन्तर्गहस्य कीर्त्यते । तत्र ब्रह्मेश्वरं दृष्ट्वा ब्रह्मलोके महीयते
इति ब्राह्मणवेणवाराणस्यां महाधिया । द्रुहिणेन स्थितं तावद्याह द्रुविश्वेश्वरागमः
दिषोदासोऽपि राजेन्द्रो वृद्धब्राह्मणरूपिणे । ब्रह्मणे कृतयज्ञाय ब्रह्मशालामकल्पयत्
ब्रह्मेश्वरसमीपे तु ब्रह्मशालामनोहरा । ब्रह्मा तत्राद्यसद्व्योम ब्रह्मघोषैर्निनादयत् ॥
इति ते कथितो ब्रह्मन्महिमातिमहत्तरः । दशाश्वमेधतीर्थस्य सर्वाधौघविनाशनः ॥
श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं श्रावयित्वा तथैव च ।

ब्रह्मलोकमवाप्नोति श्रद्धया मानवोत्तमः ॥ १०१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
ऽऽत्तरार्धे दशाश्वमेधवर्णननामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सवाराणसीवर्णनं गणप्रेषणकथनम्

अगस्तिरुवाच

अपूर्वैर्यं कथाख्याताब्रह्मणो ब्रह्मवित्तम् ! किञ्चकारपुनः शम्भुस्तत्र ब्रह्मण्यपिस्थिते

स्कन्द उवाच

शृण्वगस्त्य महाभाग! काश्या ब्रह्मण्यपि स्थिते ।

गिरिशञ्चिन्तयामास भृशमुद्विग्नमानसः ॥ २ ॥

पुरीसायाद्दृशीकाशी वशीकरणभूमिका । नताद्दृशीद्दृशाहासीत्कचिन्मेप्रायशो भ्रूवम्
योयोयातिपुरीतान्तुससतत्रैवतिष्ठति । अभूवन्ननुयोगिन्योऽयोगिन्यःकाशीसङ्गताः
अकिञ्चित्करतांप्राप्तससहस्रकरोऽप्यरम् । विधिर्विधानदक्षोपिनमेससविधोऽभवत्
चिन्तयन्नितिदेवेशो गणानाह्वय भूरिशः । प्रेषयामास भोयात् क्षिप्रंघाराणसी पुरीम्

किं कुर्वन्ति तु योगिन्यः किं करोति स भानुमान् ।

गत्वा चित्तवरायुका विधिञ्च विदधाति किम् ॥ ३ ॥

नामप्राहन्ततोऽप्रैवीद्वबहुमानपुरः सरम् । शङ्कुकर्णमहाकाल घण्टाकर्णमहोदर
सामनन्दिन्नन्दिषेण कालपिङ्गलकुम्भकुट ! कुण्डोदर मयूराक्ष! बाणगोकर्णतारक
तिलपर्णस्थूलकर्ण दृमिचण्डप्रभामय ! सुकेश! चिन्दते छाग कपर्दिन् पिङ्गलाक्षक!
वीरभद्रकिराताक्य चतुर्मुख! निकुम्भक! । पञ्चमक्षमारभूताक्य त्र्यक्षक्षेमकलाङ्गलिन्
विराधसुमुखापादे भवन्ते मम सुनवः । यथेमी स्कन्दहैरम्बी नैगमेयोयथात्वयम्
यथाशास्त्रविशाखौ च यथेमीनन्दिभृङ्गिणौ । भवत्सुविद्यमानेषु महाधिक्रमशालिषु

काशीप्रवृत्तिनोजाने दिवोदासवृत्तस्य च । योगिन्यर्कचिधीनाञ्चतद्वृत्तौ यातं भवत्स्वम्
शङ्कुकर्णमहाकालौ कालस्यापि प्रकम्पनौ । ज्ञातुं वाराणसीवार्तामायातं च त्वरान्वितौ
कृतप्रतिज्ञौ तौ तूर्णं प्राप्य वाराणसीपुरीम् । शङ्कुकर्णमहाकालौ चिन्मृत्युशाम्भवीगिरम्
यथेन्द्रजालिकीं दृष्ट्वा मायामिह चिक्षणः । क्षणेन मोहमायातिकाशीम्बीक्ष्य तथैव तौ
अहो मोहस्य माहात्म्यमहोमानयचिपर्ययः ।

निर्वाणराशिं यत्काशीं प्राप्य यान्त्यन्यतोऽबुधाः ॥ १८ ॥

तत्प्रेषणं च काशीमहाशीर्षाद्भूमिका । तेषां करतलान्मुक्तिः प्राप्ताऽपि परितो गता
यत्र सर्वावभृथतः स्नानमात्रं चिश्चिष्यते । अप्यूपणीकृतपानीयैस्तं काशीकः परित्यजेत्
यत्रैकपुष्पदानेन शिवलिङ्गस्य मूर्धनि । दशसौवर्णिकपुण्यं कस्तं काशीं परित्यजेत्
यत्र दण्डप्रणामेन अप्येकेन शिवाग्रतः । तुच्छमैन्द्रपदं प्राहुस्तं काशीं कोचिमुञ्चति
यत्रैकद्विजमात्रन्तु भोजयित्वा यथेच्छया । वाजपेयाधिकपुण्यं तं काशीं कोचिमुञ्चति
एकागायत्रदस्वावैविधिवद्ब्राह्मणाय वै । लभेद्युतगोपुण्यं कस्तं काशीं त्यजेत्सुधीः
एकं लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य यत्र संस्थापितम्भवेत् ।

अपि त्रैलोक्यमखिलं तं काशीं कः समुञ्चति ॥ २५ ॥

परिनिश्चित्य तावित्थं लिङ्गे संस्थाप्य पुण्यदे ।

तत्रैव संस्थितिं प्राप्तीं काशीं नाऽद्यापि मुञ्चतः ॥ २६ ॥

शङ्कुकर्णेश्वरं लिङ्गं शङ्कुकर्णगणार्चितम् । दृष्ट्वा न जायते जन्तुर्जातुमातुर्महोदरे
विश्वेशाद्रायुदिग्भागे शङ्कुकर्णेश्वरं नरः । सम्पूज्य न विशेषत्र घोरे संसारसागरे
महाकालेश्वरं लिङ्गं महाकालगणार्चितम् । अर्चयित्वा च न त्वास्वस्तुत्वाकालभयंकृतः

स्कन्द उवाच

शङ्कुकर्णे महाकाले चिरन्तनचिलम्बिते । ज्ञात्वा सर्वज्ञनाथोऽथ प्राहैषीदपरीगणौ
अष्टाकर्णत्वमागच्छ महोदरमहामते । काशीं यातं युवां तूर्णं ज्ञातुं तत्रत्यच्छेदितम्
इत्यगस्ते गणौ तौ तु गत्वा काशीं महापुरीम् ।

व्यावृत्त्याद्यापि नो यातौ कापि तत्रैव संस्थितौ ॥ ३२ ॥

घण्टाकर्णेभ्वरं लिङ्गं घण्टाकर्णगणोत्तमः ।

काश्यां संस्थाप्य विधिषट्स्वयं तत्रैव निवृत्तः ॥ ३३ ॥

कुण्डतत्रैवसंस्थाप्यलिङ्गस्तपनकर्मणे । नाद्यापिसन्त्यजेत्काशीं ध्यायेत्त्रिङ्गन्तथैवहि
महोदरोपितत्प्राच्यांशिषध्यानपरायणः । महोदरेभ्वरं लिङ्गं ध्यायेदद्यापि कुम्भजं
महोदरेभ्वरं दृष्ट्वावाराणस्यां द्विजोत्तम । कदाचिदपि वै मातुः प्रविशेन्नौदरीं दरीम्
घण्टाकर्णहृदेस्नात्वा दृष्ट्वा ध्यासेभ्वरं विभुम् । यत्र कुत्रचिपन्नोपिवाराणस्यां मृतो भवेत्
घण्टाकर्णे महातीर्थे श्राद्धं कृत्वा विधानतः । अपि दुर्गतिमापन्नानुद्धरेत्समं पूर्वजान्

निमज्ज्याद्याऽपि तत्कुण्डे क्षणं योऽवहितो भवेत् ।

विश्वेश्वरमहापुजाघण्टारावाऽच्छृणोति सः ॥ ३६ ॥

षदन्तिपितरः काश्यां घण्टाकर्णेऽमलेजये । दातानि लोदकन्यापि धंशेन कोऽपि जायते
यद्दश्यामुनयः काश्यां घण्टाकर्णे महाहृदे । कृतोदकक्रियाः प्राप्ताः परां सिद्धिं घटोद्भवः ।

स्कन्द उवाच

घण्टाकर्णगणोयाते प्रयाते च महोदरे । विसिस्मायस्मरद्वेष्टामौलिमाग्दोलयन्मुहुः
उवाच धमनस्येव हरः स्मित्वा पुनः पुनः । महामोहनविद्याऽसि काशित्वाभ्ययं चैभ्यहम्
पुराचिदः प्रशंसन्ति त्वाम्महामोहहारिणीम् ।

काशीं तिष्ठति न जानन्ति महामोहनभूरियम् ॥ ४४ ॥

प्रेषयिष्याम्यहं सर्वान्भ्रमती मोहयिष्यति ।

इति सम्यग्बिजानामि काशित्वाम्मोहनौषधिम् ॥ ४५ ॥

तथापि प्रेषयिष्यामि यावान्मेऽस्ति परिच्छदः ।

नोद्यमाद्विरमन्तीह ज्ञानिनः साध्यकर्मणि ॥ ४६ ॥

नोद्यमाद्विरतिः कार्या कापि कार्ये षिचक्षणैः ।

प्रतिकूलोऽपि सिद्येत विधिस्तत्सततोद्यमात् ॥ ४७ ॥

शीतोष्णभानृस्वर्भानुप्रस्ताद्यपिनभोरुणे । गतिनत्यजतोऽद्यापिऽक्रान्तव्यहृतोद्यमौ
एकत्र हन्ति कार्याणि प्रातिकूल्याद्विधिर्मुहुः ।

एकत्रकरणीयानि सेतस्यन्त्यत्र भृशोद्यमात् ॥ ४६ ॥

देवं पूर्बकृतं कर्म कथ्यते नेतरत्पुनः । तन्निराकरणे यत्नः स्वयं कार्यो विपश्चिता
भाजनोपस्थितं वैवाहोर्ज्यं नास्यं स्वयं विशेत् ।

हस्तवक्त्रोद्यमात्तच्च प्रविशेदौदरीं वरीम् ॥ ५१ ॥

इत्युद्यमंसमर्प्येशोनिश्चितं देवजित्त्वरम् । पुनश्चप्रेषयाञ्चक्रेगणान्पञ्चमहारयान्
सोमनन्दीनन्दिषेणः कालपिङ्गलकुक्कुटाः । तेषापिननिवर्तन्तेकाश्यांजीवामृतायथा
तेऽपि स्वनाम्नालिङ्गानि शम्भुसन्तुष्टिकाम्यया ।

प्रतिष्ठाप्य स्थिताः काश्यां विश्वनिर्वाणजन्मनि ॥ ५४ ॥

सोमनन्दीश्वरं हृष्ट्वा लिङ्गं नन्दघनेपरम् । सोमलोके परानन्दं प्राप्नुयाद्वक्तिमान्नरः
तदुत्तरेविलोकयाथ नन्दिषेणेश्वरं नरः । आनन्दसेनांसम्प्राप्यजयेन्मृत्युमपिक्षणात्
कालेश्वरमहालिङ्गं गङ्गायाः पश्चिमोत्तरे । प्रणम्य कालपाशेन नो बध्येत कदाचन
पिङ्गलेश्वरमभ्यर्च्य कालेशात्किञ्चिदुत्तरे । लभते पिङ्गलज्ञानं येन तन्मयतां ब्रजेन्
कुक्कुटेश्वरलिङ्गस्ययेऽत्रमर्त्तिकं वितन्वते । कुक्कुटाण्डाकृतेस्तस्य नतेगर्भमवाप्नुयुः

स्कन्द उवाच

सोमनन्दिप्रभृतिषु मुनेष्वगणेष्वपि । आनन्दकाननम्प्राप्य स्थितेषु म्थःगुरव्वर्षीन्
कार्यमस्माकमेवंतद्यदि सम्भग्विमृश्यते । अनेनोपाधिनाप्येने तत्र तिष्ठन्तुमामकाः
प्रथमेषु प्रविष्टेषु मायावीर्यमहत्स्वपि । अहमेव प्रविष्टोऽस्मिन्वाराणस्यां न संशयः
क्रमेणप्रेषयिष्यामियोऽस्तितमेस्वपरिच्छदः । तत्रसर्वेषु यातेषु ततोयास्यम्यहम्पुनः
सम्प्रधार्येतिहृदये देवदेवेन शूलिना । प्रैषिष्ट प्रमथानां तु ततो गणक्षतुष्टयम्
कुण्डोद्रोमयराक्यो बाणोगोकर्णपवच । मायाबलंसमाश्रित्यकाशीम्प्रविचिशुर्गणाः
कन्वोपायशतं तैस्तुदिबोदासस्यसम्भ्रमे । यदैकोपिसमर्थोनतदातत्रैव संस्थितम्
अपराधशतेष्वीशः केन तुष्यनिकर्मणा । सम्प्रधार्येति ते चक्रुर्लिङ्गाराधनमुत्तमम्
एकस्मिञ्छाम्भवे लिङ्गे विधिनाऽत्र समर्षिते ।

स्मैत् व्यक्षोऽपराधानां शतम्भोक्षञ्च यच्छति ॥ ६८ ॥

न तुप्यति तथा शम्भुर्यज्ञदाक्षिण्योव्रतैः । यथातुप्येत्सकृल्लिङ्गे विधिनाभ्यर्चिते सति
लिङ्गार्चनविधानज्ञो लिङ्गार्चनस्तःसदा । त्र्यक्षपवसविज्ञेयःसाक्षाद्ब्रह्मक्षोऽपिमानवः
न गोशतप्रदानेन न स्वर्णशतदानतः । तत्फलं लभ्यतेपुमिभ्यत्सकृल्लिङ्गपूजनात्
अश्वमेधादिभिर्यागेर्नतत्फलमवाप्यते । यत्फलं लभ्यतेमर्त्यैर्नित्यं लिङ्गपूजनात्

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् ।

त्रिः पिबेत्त्रिचिधम्पापं तस्येहाऽऽशु प्रणश्यति ॥ ७३ ॥

लिङ्गस्नपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम् ।

गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः ॥ ७४ ॥

लिङ्गं समर्चितं दृष्ट्वा यः कुर्यात्प्रणतिं सकृत् ।

सन्देहो जायते तस्य पुनर्देहनिबन्धने ॥ ७५ ॥

लिङ्गं यः स्थापयेद्ब्रह्मत्या समजन्मकृतादद्यात् ।

मुच्यते नात्र सन्देहो विशुद्धः स्वर्गमागमवेत् ॥ ७६ ॥

चिचार्येऽतिगणैः काश्यां स्वामिद्रोहोपशान्तये ।

प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि महापातकमिन्द्यपि ॥ ७७ ॥

कुण्डोदरेऽश्वरलिङ्गं दृष्ट्वा लोलाकंसन्निधौ । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते
कुण्डोदरेऽश्वरालिङ्गात्प्रतीच्यामसिरोधसि । मयूरेऽश्वरमभ्यर्च्य न गर्मप्रतिपद्यते
मयूरेशप्रतीच्यां चलिङ्गम्बाणेऽश्वरममहत् । तस्य दर्शनमात्रेण सर्वैः पापैः प्रमुच्यते
गोकर्णेशम्हालिङ्गमन्तर्गेहस्यपश्चिमे । द्वारेऽसमर्च्य वै काश्या न विघ्नैरभिभूयते
गोकर्णेऽश्वरमकस्य पञ्चत्वसमये सति । ज्ञानमंत्रशो न जायेत कश्चिदप्यन्तमृच्छतः

स्कन्द उवाच

खिरयत्सुगणेष्वेषु क्षतुर्ध्वपिगणेऽश्वरः । महिमानममहस्त्वं तु तत्काश्याः पर्यवर्णयत्

वैष्णव्या मायया विश्वम्भ्राम्येताऽत्र ययाऽखिलम् ।

ध्रुवं मूर्त्तिमती खैवा काशी विश्वैकमोहिनी ॥ ८४ ॥

अपास्य सोदरान्दारान् पुत्रं क्षेत्रं गृहं क्षसु । अप्यङ्गीकृत्यनिधनं सर्वैकाशीमुपासते

मरणादपिनोकाश्याभ्यंयत्रमनागपि । गणास्तत्रतु तिष्ठन्तःकुतोमत्तोऽपिबिभ्यति
मरणम्मङ्गलं यत्र विभूतिर्वत्रभूषणम् । कौपीनं यत्रकौशेयं काशीकुत्रोपमीयते ॥
निर्वाणरमणीयत्ररङ्गं वाऽरङ्गमेव वा । ब्राह्मणं वा स्वपाकंवा वृणीतेप्रान्त्यभूषणम्
मृतानां यत्रजन्तूनांनिर्वाणपदमृच्छताम् । कोट्यंशेनापिनसमाअपिशकादयःसुराः
यत्रकाश्यांमृतोजन्तुब्रह्मनारायणादिभिः । प्रबद्धमूर्धाञ्जलिभिर्नमस्येतातियत्नतः

यत्र काश्यां शवत्वेऽपि जन्तुर्नाऽशुचितां व्रजेत् ।

अतस्तत्कर्णसंस्पर्शकरोम्यहमपि स्वयम् ॥ ६१ ॥

यस्तु काशीति काशीति द्विस्त्रिर्जपति पुण्यवान् ।

अपि सर्वपवित्रेभ्यः स पवित्रतरो महान् ॥ ६२ ॥

येनकाशीहृदिध्याता येनकाशीहसेविता । तेनाऽहं हृदिसन्ध्यातस्तेनाहंसेवितःसदा
काशी यः सेवनेजन्तुर्निर्विकल्पेन चेतसा । तमहं हृदये निव्यं धारयामि प्रयत्नतः ॥
स्त्रयंवस्तुमशकोपिवासयेत्तीर्थवामिनाम् । अप्येकमपिमूल्येनसवस्तुःफलभागधुषम्

काश्यां वसन्ति ये धीरा आपञ्चत्वविनिश्चयाः ।

जीवन्मुक्तास्तु ते ज्ञेया वन्द्याः पूज्यास्त एव हि ॥ ६६ ॥

इत्थं विमृश्य बहुशः स्थाणुर्वाराणसीगुणान् ।

गणानन्धान्समाह्वय प्राहिणोत्प्रीतिपूर्वकम् ॥ ६७ ॥

तारकत्वं समागच्छ गच्छाऽतिस्वच्छमानस ! ।

दिवोदासो वृषावासो यामधीष्टे वरां पुरीम् ॥ ६८ ॥

तिलपर्ण! स्थूलकर्ण!द्रुमिचण्ड!प्रभामय ! सुकेश!चिन्दते!छाग! कपर्दिन्पिङ्गलाक्षक!
वीरभद्र!किराताख्य!चतुर्मुख!निकुम्भक !। पञ्चाक्षभारभूताख्य!त्र्यक्षक्षेमकलाङ्गलिन्
चिराधसुमुखापाढेयान्तुसर्वे पृथक् पृथक् । एतेगणामहाभागाःस्वामिभक्ताःदृढमतः

कृत्वा माया बहुविधा बहुरूपा विचक्षणाः ।

अनिमेषेक्षणास्तस्थुः क्षोणीशच्छिद्रकाङ्क्षिणः ॥ १०२ ॥

अपरिहातच्छिद्राचिद्रावितयशोधनाः । आःकिमेतदहोजातंनिनिन्दुःस्वमितोहते

गणा ऊचुः

धिगस्मान्स्वामिनानित्यं कृतसम्भावनान्मुहुः । मनुष्यमात्रमप्यत्रयैरेकंनवशीकृतम्
बहुमानेन दानेन सौहार्देन महीयसा । कृतप्रसादांस्त्रयक्षेणधिङ्गस्तत्कार्यवञ्चकान्
कागतिर्नोभवित्रीहस्वामिकृत्यप्रमादिनाम् । अन्धं तमोमयेलोकेध्रुवंवासोभविष्यति
अकृतस्वामिकार्याणामहोजीवितधारिणाम् । अक्षतेन्द्रियवृत्तीनां दुर्गतिश्च पदे पदे
लब्धसम्भावनानाञ्च न्यक्कृतस्वामिकर्मणाम् ।

भृत्यानाम्भूरिभाजाञ्च भङ्गुराः स्युर्मनोरथाः ॥ १०८ ॥

अनिष्पादितकार्यार्थाये मुखं प्रेक्षयन्त्यहो । अपत्रपाः पुरोभर्तुस्तेभू भारवतीत्वियम्
नाद्रीणां न समुद्राणां न द्रुमाणां महीयसाम् ।

भूतधात्र्यास्तथाभारो यथा स्वामिद्रुहां महान् ॥ ११० ॥

अहो पौराणिकी गाथा स्मृताऽस्माभिरनिन्दिता ।

तदर्धमवलम्ब्येह स्थास्यामः कृतनिश्चयाः ॥ १११ ॥

अनाकलितपुण्यानां परिक्षीणधनायुषाम् । सर्वोपायविहीनानांगतिर्वाराणसीपुरी
अपुण्यभारस्त्रिधानां पश्चात्तापमुपेयुषाम् । विश्वगूध्वंगतीनाञ्च गतिर्वाराणसीपुरी
स्वामिद्रुहः कृतप्राक्ष ये ष्विभ्रम्भशतकाः ।

तेषां काऽपि गतिर्नास्ति मुक्त्वा वाराणसीपुरीम् ॥ ११४ ॥

इत्थंनिश्चित्य गाथार्थं प्रमथावचतस्थिरे । अविज्ञातस्वरूपाश्च दिवोदासेन भूभुजा
न बुबोध सभूपालोनितरांबुद्धिमानपि । विबुधान्विविधाकारैःस्थितानीशप्रभावतः
चित्रं न चित्रगुप्तोऽपि वेत्ति वाराणसीस्थितान् ।

जन्तुका गणनाऽन्येषां मर्त्यलोकनिवासिनाम् ॥ ११७ ॥

अविच्छिन्नप्रभावाणामपरिच्छिन्नतेजसाम् ।

कृतलिङ्गप्रतिष्ठानां नान्तं प्राप्नोति धर्मराट् ॥ ११८ ॥

इति ते प्रमथाःसर्वे घटोद्भवमहामुने! । कृतलिङ्गार्चनाःकाशीनाद्याऽप्युज्ज्वन्तिशर्मदम्
तारकेशं महालिङ्गं तारकाख्योगणोत्तमः । तारकह्यानदंपुंसां मुनेऽद्यापि समर्धयेत्

तारकेश्वरलिङ्गस्य कृत्वाभक्तिं सुनिश्चलाम् । सुखेन तारकज्ञानं लभ्यते तेर्नरोत्तमैः
तिलपर्णेश्वरलिङ्गं तिलपर्णप्रतिष्ठितम् । तिलप्रमाणमप्यत्र दृष्ट्वा पापं न सम्भवेत्
स्फूलकर्णेश्वरलिङ्गपरिपूज्यनरोत्तमः । नदुर्गन्तिमवाप्नेतिपुण्यमाप्नोतिचोत्तमम्
दृमिषण्डेश्वरलिङ्गं तथा लिङ्गप्रभामयम् । आराध्यतत्प्रतीच्याञ्जनपापैरभिभूयते ॥
प्रभामयेश्वरलिङ्गदृष्ट्वाऽन्यत्रापिसंस्थितः । प्रभामयेनयानेन शिवलोकेवजेत्सुधीः
सुकेशेश्वरमभ्यर्च्य हरिकेशवनेनरः । पाट्कौशिकमयं देहं धारयेन्नपुनः पुनः

चिन्दनीशं नरोऽभ्यर्च्यभीमचण्डीसमीपतः ।

त्यक्तवाप्रचण्डमप्येनोमोक्षं चिन्दति शाश्वतम् ॥ १२७ ॥

छागलेशमहालिङ्गपित्रीश्वरसमीपगम् । विलोक्यपशुवत्कोपिनपापं प्राकृतं स्पृशेत्
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्रयां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
उत्तरार्धे वाराणसीवर्णनगणप्रेषणनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पिशाचमोचनमहत्त्ववर्णनम्

स्कन्द उवाच

कुम्भसम्भव! वक्ष्यामि शृणोत्ववहितोऽभवान् ।

कपर्दीशस्य लिङ्गस्य महामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

कपर्दुर्दीनाम गणपः शम्भोरत्यन्तबल्लभः ।

पित्रीशादुत्तरे भागे लिङ्गं संस्थाप्य शाम्भवम् ॥ २ ॥

कुण्डं च खानतस्याग्रे विमलोदकसञ्ज्ञकम् । यस्य तोयस्य संस्पर्शाद्विमलो जायते नरः
इतिहासं प्रवक्ष्यामि तत्र त्रेतायुगे पुरा । यथावृत्तं कुम्भयोने! श्रवणात्पातकापहम्
एकः पाशुपतश्रेष्ठो बालमीकिरिति सञ्ज्ञितः । तपश्च चार स मुनिः कपर्दीशसमर्चयन्

एकदा स हि हेमन्ते मार्गे मासि तपोधनः ।

स्नात्वा तत्र महातीर्थे मध्याह्ने चिमलोदके ॥ ६ ॥

चकारभस्मनास्नानमापादतलमस्तकम् । लिङ्गस्यदक्षिणेभागे कृतमाध्याह्निकक्रियः
न्यस्तमस्तकर्पासुश्च सन्ध्यामाध्यात्मिकीं स्मरन् ।

जपन्पञ्चाक्षरीं विद्या ध्यायन्देवं कपर्दिनम् ॥ ८ ॥

कृत्वा संहारमार्गेण सप्रमाणं प्रदक्षिणम् । हुडुं कृत्य हुडुं कृत्यत्रिरुच्यकेः
प्रणवं पुरतःकृत्वा षड्जादिस्वरभेदतः । गीतंविधायसानन्दं सनृत्यंहस्नकान्वितम्
अङ्गहारैर्मनोहारि चारीमण्डलसंयुतम् । क्षणं तत्र सरस्तीर उपविष्टो महातपाः
अद्राक्षीद्राक्षसंघोरमतीवचिरुताकृतिम् । शुष्कशङ्कुकपोलास्यनिमग्नापिङ्गलोचनम्
रुक्षस्फुटितकेशाग्रं महालम्बशिरोधरम् । अतीवचिपिटघ्राणं शुष्कौष्ठमतिदन्तुरम्

महाविशालमौलिञ्च प्रोर्ध्वीभूतशिरोरुहम्

प्रलम्बकर्णपालीकं पिङ्गलशमध्रभीषणम् १४ ॥

प्रलम्बितललज्जिङ्गमत्युत्कटकृकाटिकम् ।

स्थूलास्थिजत्रुसंस्थानं दीर्घस्कन्धद्वयोत्कटम् ॥ १५ ॥

निमग्नकक्षाकुहरं शुष्कह्रस्वभुजद्वयम् । चिरलाङ्गुलिहस्ताग्रं नतपीननखावलिम्
विशुष्ककर्पासुलोत्कोडं पृष्ठलग्नोदरत्वचम् । कटीतटेन विकटं निर्मांसत्रिकबन्धनम्

प्रलम्बस्फियुगयुतं शुष्कमुष्कालपमेहनम् ।

दीर्घनिर्मांसलोरुकं स्थूलजान्वस्थिपञ्जरम् ॥ १८ ॥

अस्थिचर्मावशेषं च शिराजालितविग्रहम् ।

शिरालंदीर्घजङ्घं च स्थूलगुल्फास्थिभीषणम् ॥ १९ ॥

अतिविस्तृतपादञ्च दीर्घवक्त्रशङ्कुलिम् । अस्थिचर्मावशेषेण शिराताडितविग्रहम्
विकटं भीषणाकारं श्रुतक्षाममतिलोमशम् । दाघदग्धद्रुमाकारमतिचञ्चललोचनम्
मूर्त्तभयानकमिव सर्वप्राणिभयप्रदम् । हृदयाकम्पनं दृष्ट्वा तं प्रेतं वृद्धतापसः ॥

अतिदीनाननं कस्त्वमिति धैर्येण पृष्ठवान् ॥ २२ ॥

कुतस्त्वमिह सम्प्राप्तः कस्मात्ते गतिरीदृशी ।

अनुक्रोशधिया रक्षः पृच्छामि वद निर्भयम् ॥ २३ ॥

अस्माकं तापसानां च न भयं त्वद्विधानमनाक् ।

शिवनामसहस्राणां विभूतिकृतधर्मणाम् ॥ २४ ॥

तापसोदीरितमिति तद्रक्ष- प्रीतिपूर्वकम् । निशम्यप्राञ्जलिःप्राहतंकृपालुं तपोधनम्

राक्षस उवाच

अनुक्रोशोऽस्ति यदि ते भगवंस्तापसोत्तम !।

स्ववृत्तान्तं तदा वच्मि शृणुष्वावहितः क्षणम् ॥ २६ ॥

प्रतिष्ठानामिधानोस्तदेशोगोदावरीतटे । तीर्थप्रतिप्रहरुषिस्तत्रासंब्राह्मणस्त्वहम्

तेन कर्मविपाकेन प्राप्तोऽस्मि गतिमीदृशीम् । मरुस्थलेमहाधारे तरुतोयविचर्जिते

गतो बहुतरः कालस्तत्रमेवसतो मुने । क्षुधितस्य तृपार्तस्य शीततापसहस्य च

वर्षत्यपि महामेघे धारासारैर्दिवानिशम् ।

प्रावृट्कालेऽनिले घाति किञ्चित् प्रावरणं न मे ॥ ३० ॥

पर्वण्यदत्तदाना ये कृततीर्थप्रतिप्रहाः । त इमां योनिमुच्छन्तिमहादुःखनिबन्धनीम्

गते बहुतिथे काले मरुभूमौ मुने! मया । दृष्टो ब्राह्मणदायाद् एकदा कश्चिदागतः

सूर्योदयमनुप्राप्य सन्ध्याविधिविचर्जितः ।

कृत्वा मूत्रपुरोपे तु शौचाचमनवर्जितः ॥ ३३ ॥

मुक्तकच्छमशौचं च सन्ध्याकर्मविचर्जितम् ।

तं दृष्ट्वा तच्छरीरेऽहं संक्रान्तो भोगलिप्सया ॥ ३४ ॥

सद्विज्ञो मन्दभाग्यान्मे केनचिद्विणिजा सह । अर्थलोभेनसम्प्राप्तःपुरीपुण्यामिमांमुने

अन्तःपुरिप्रविष्टोभूत्सद्विज्ञोमुनिसत्तम !। तच्छरीराद्बहिर्भू तस्त्वहंपापैःसमंक्षणात्

प्रवेशो नास्ति चास्माकं प्रेतानां तपसां निषे !।

महताम्पातकानां च वाराणस्यां शिवाह्वया ॥ ३७ ॥

अद्यापि तानि पापानि तद्बहिर्निर्गमेच्छया ।

बहिरेष हि तिष्ठन्ति सीञ्जि प्रमथसाध्वसात् ॥ ३८ ॥

अथ श्वो वा परश्वो वा स बहिर्निर्गमिष्यति ।

इत्याशया स्थिताः स्मो वै यावदद्य तपोधन ॥ ३९ ॥

नाद्यापि स बहिर्गच्छेन्नाद्याप्याशा प्रयाति नः ।

इत्यास्महे निराधारा आशापाशनियन्त्रिताः ॥ ४० ॥

चित्रमद्यतनं बलिं तपस्विंस्तन्निशामय । अनीबभाक्कल्याणमितिमन्येऽधुनैव हि
आप्रयागंप्रतिदिनंप्रयामःश्रुधितावयम् । आहारकाम्ययाक्तापिपरंनोकिञ्चिदाप्नुमः
सन्ति सर्वत्र फलिनः पादपाः प्रतिकाननम् ।

जलाशयाश्च स्वच्छापाः सन्ति भूम्याम्पदे पदे ॥ ४३ ॥

अन्यान्यपि च भक्ष्याणि सर्वेषां सुलभान्यहो ।

पानान्यपि विचित्राणि सन्ति भूयांसि सर्वतः ॥ ४४ ॥

परन्नोद्भूगतात्येव दूरे दूरेत्रजन्यहो । देवादद्यैकमायान्तं दृष्ट्वा कार्पाटिकम्मुने ॥४५॥
तस्यान्तिकमहं प्राप्तः क्षुधया परिपीडितः । प्रसह्य भक्षयाम्येनमितिमन्त्वात्वरान्वितः
यावत्तं तुजित्पुश्चामिनावत्तद्भद्रताम्बुजात् । शिवनामपवित्रावाङ्निर्गाद्विघ्नहारिणी
शिवनामस्मरणतो मदीयमपि पातकम् । मन्दीभूतं ततस्तेन प्रवेशं लब्धवानहम्
सीमस्थैः प्रमथैर्नाहं सद्यो दृग्गोचरीकृतः । शिवनामश्रुतौयेपांताम्रपश्येद्यमोपियत्
अन्तर्गहस्य सीमानं प्राप्तस्तेनसहाधुना । सतुकार्पाटिकोमध्यंप्रविष्टोऽहमिहस्थितः
आत्मानं बहुमन्येऽहं त्वां विलोक्याधुना मुने !।

मामुद्धर कृपालो, त्वं योनेरस्मात्सुदारुणात् ॥ ५१ ॥

इति प्रेतबन्धःश्रुत्वासरूपालुस्तपोधनः । मनसाचिन्तयामासधिङ्निजार्थोद्यमान्नरान्
स्वोदरम्भरयः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः । सपव धन्यः संसारे यः परार्थोद्यतः सदा
तपसाऽथ निजेनाऽहं प्रेतमेतमघातुरम् । मामेव शरणं प्राप्तमुद्धरिष्याम्यसंशयम् ॥

विमृश्येति सर्वे चित्ते पिशाचं प्राह ससमः ।

विमलोदे सरस्यस्मिन् रुनाहि रे पापनुत्तये ॥ ५५ ॥

पिशाच! तेऽपिशाचत्वं तीर्थस्यास्य प्रभावतः ।

कपर्दीशे क्षणाद्य क्षणात्क्षीणं विनङ्क्ष्यति ॥ ५६ ॥

श्रुत्वेति स मुनेर्वाक्यं प्रेतः प्राह प्रणम्यतम् । प्रीतात्मा प्रीतमनसं प्रबद्धकरसमुद्यः
पानीयं पातुमपि नो लभेयं मुनिसत्तम ! । स्नानस्य का कथा नाथ रक्षेयुर्जलदेवताः
पानस्याप्यत्रकावार्ताजलस्पर्शोपि दुर्लभः । इतिप्रेतोक्तमाकर्ण्यं सभृशमप्रीतिमानभूत्
उवाच च तपस्वी तं जगदुद्धरणक्षमः । गृहाणेमां विभूर्ति त्वं ललाटफलके कुरु
अस्माद्विभूतिमाहात्म्यात्प्रेत! कोऽपि न कुत्रचित् ।

वाधां करोति कस्यापि महापातकिनोऽप्यहो ॥ ६१ ॥

भालविभूतिधवलं विलोक्य यमकिङ्कराः । पापिनोऽपिपलायन्तेभीताःपाशुपतास्त्रतः
अस्थिध्वजाङ्कितंद्रुप्रायथापान्थाजलाशयम् । दूरयन्तितथाभस्मभालाङ्गं यमकिङ्कराः
कृतभूतितनुत्राणं शिवमन्त्रनरोत्तमम् । नोपसर्पन्ति नियतमपि हिस्त्राः समन्ततः
भक्त्या विभर्ति यो भस्म शिवमन्त्रपवित्रितम् ।

भाले वक्षसि दोर्मले न त हिंसन्ति हिंसकाः ॥ ६५ ॥

सर्वेभ्योदुष्टसत्त्वेभ्यो यतो रक्षेद्दहनिंशम् । रक्षेन्त्येषा ततः प्रोक्ता विभूतिभृतिक्वद्यतः
भासनाद्दत्सनाद्भस्मपासुः पांसुत्वदायतः । पापानां क्षारणात्क्षारो बुधैरेवंनिरुच्यते
गृह्णात्वाधारमध्यात्स भस्मप्रेतकरेऽर्पयत् । सोऽप्यादरात्समादायभालदेशेन्यवेशयत्
विभूतिधारिणं वीक्ष्यपिशाचं जलदेवताः । जलावगाहनपरं धारयाञ्चक्रिरे न तम्
स्नात्वा पीत्वा स निर्गच्छेद्यावत्समाज्जलाशयान् ।

तावत्पैशाच्यमगमद्विच्यं देहमवाप च ॥ ७० ॥

दिव्यमालाम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः । दिव्ययानं समारुह्यवर्त्म प्राप्तोऽथ पावनम्
गच्छता तेन गगनेसतपस्वीनमस्कृतः । प्रोच्यैःप्रोवाचभगवन्मोचितोऽस्मित्वयानघ
तस्मात्कदर्ययोनित्वाद्तीघ परिनिन्दितात् ।

अस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्विच्यं देहमवाप्तवान् ॥ ७३ ॥

पिशाचमोचनं तीर्थमद्यारभ्यसमाख्यया । अन्येषामपिपैशाच्यमिदंस्नानाद्धरिष्विति
अस्मिन्तीर्थे महापुण्ये ये स्नास्यन्तीह मानवाः ।

पिण्डांश्च निर्वापिष्यन्ति सन्ध्यातर्पणपूर्वकम् ॥ ७५ ॥

देवात्पैशाच्यमापन्नास्तेषां पितृपितामहाः ।

तेऽपि पैशाच्यमुत्सृज्य यास्यन्ति परमां गतिम् ॥ ७६ ॥

अद्यशुक्लवतुर्दश्यां मार्गे मासितपोनिधे ! अत्रस्नानादिकंकार्यं पैशाच्यपरिमोचनम्

इमां सांघत्सरीं यात्रां ये करिष्यन्ति मानवाः ।

तीर्थं प्रति प्रहात्पापान्निःसरिष्यन्ति ते नराः ॥ ७८ ॥

पिशाचमोचनेस्नात्वा कपर्दीशंसमर्च्य च । कृत्वा तत्राश्रदानं च नरोऽन्यत्रापि निर्भयाः
मार्गशुक्लवतुर्दश्यां कपर्दीश्वरसन्निधौ । स्नात्वाऽन्यत्रापि मरणात्पैशाच्यमवाप्नुयुः
इत्युत्तर्षादिव्यपुरुषोभूयोभूयोनमस्यतम् । तपोधनं महाभागो दिव्या गतिमवाप्तवान्
तपोधनोऽपि तद्द्रष्टुमहाक्षयं घटोद्भव ! कपर्दीश्वरमाराध्य कालाभिर्घाणमाप्तवान्
पिशाचमोचनं तीर्थं तदारभ्य महामुने ! वाराणस्या परां ख्यातिमगमत्सर्वपापहृत्
पैशाचमोचने तोर्थे सभोज्य शिवयोगिनम् । कोटिभोज्यफलं सम्यगेकैकपरिसङ्ख्यया
धृत्वा ध्यायमिमं पुण्यं नरो नियतमानसः । भूतः प्रेतैः पिशाचश्च कदाचिन्नाभिभूयते
बालप्रहाभिभूताना बालानाशान्तिकारकम् । पठनीयं प्रयत्नेन महाख्यानमिदं परम्
इदमाख्यानमाकर्ण्य गच्छन्देशान्तरं नरः । चोरव्याघ्रपिशाचाद्यैर्नाभिभूयेत् कुत्रचित्
इति श्रीस्कन्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे पिशाचमोचनमहिमकथनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

काशीवर्णने गणेशप्रेषणवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अन्येपियेगणास्तत्रकाश्यांलिङ्गानिचक्रिरे । तांश्चतेकथयिष्यामिकुम्भयोनेनिशामय
गणेनपिङ्गलाख्येनपिङ्गलाख्येशसञ्ज्ञितम् । लिङ्गंप्रतिष्ठितंशम्भोःकपर्दीशादुदग्दिशि
तस्य दर्शनमात्रेण पापानां जायते क्षयः । धीरभद्रो महाप्रीतो देवदेवस्य शूलिनः
वीरभद्रेश्वरं लिङ्गंध्यायेदद्यापि निश्चलः । तस्यदर्शनमात्रेण धीरसिद्धिः प्रजायते
अधिमुक्तेश्वरात्पञ्चाद्वीरभद्रेश्वरं नरः । समर्च्य नरणेभङ्गं कदाचिदपि चाप्नुयात्
धीरभद्रः स्वयं साक्षाद्वीरमूर्तिधरो मुने !। संहरंद्भिन्नसंवातमधिमुक्तनिवासिनाम्
भद्रयाभद्रकाल्या स्वभार्ययाशुभयायुतम् । धीरभद्रं नरोऽभ्यर्च्य काशीवासफलंलभेत्
किरातेनकिरातेशं लिङ्गंकाश्याप्रतिष्ठितम् । केदारादृक्षिणे भागे भक्तानामभयप्रदम्
चतुर्मुखोगणः श्रीमान्वृद्धकालेशसन्निधौ । चतुर्मुखेश्वरं लिङ्गंध्यायेदद्यापिनिश्चलः
भक्ताश्चतुर्मुखेशस्य चतुराननवद्विधि । पूज्यन्ते सुरसङ्घातः सर्वभोगसमन्विताः

निकुम्भेश्वरमालोक्य निकुम्भगणपूजितम् ।

पूजयित्वा व्रजन् प्रामं कार्यसिद्धिमवाप्नुयात् ।

कुबेरेशसमीपे तु शिवलोके महीयते ॥ ११ ॥

पञ्चाक्षशं महालिङ्गं महादेवस्य दक्षिणे ।

समभ्यर्च्य नरः काश्यां जातिस्मृतिमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

भारभूतेश्वरं लिङ्गं भारभूतगणाक्षितम् । अन्तर्गृहोत्तरद्वारिध्यात्वाशिवपुरे घसेत्
भारभूतेश्वरंलिङ्गंयैः काश्यांनविलोकितम् । भारभूताःपृथिव्यास्तेऽषकेशिनहृवद्रुमाः
गणेन त्र्यक्षसञ्ज्ञेन लिङ्गं त्र्यक्षेश्वरं परम् । त्रिलोचनपुरोभागेशील्येताद्यापिकुम्भज
तस्य लिङ्गस्यैभक्तास्तेतुदेहावसानतः । त्र्यक्षा एव प्रजायन्तेनात्र कार्याचिचारणा

क्षेमकोनामगणपः काश्यांमूर्तिधरःस्वयम् । विश्वेश्वरसर्वगतं ध्ययेदद्यापि निश्चलः
 क्षेमकंपूजयेद्यस्तुवाराणस्यां महागणम् । विघ्नास्तस्य प्रलीयन्ते क्षेमं स्याच्च पदेपदे
 देशान्तरंगतोयस्तु तस्यागमनकाम्यया । क्षेमकः पूजनीयोऽत्रक्षेमेणाशु स आम्रजेत्
 लाङ्गलीश्वरमालोक्यलिङ्गंलाङ्गलिनार्चितम् । विश्वेशादुत्तरेभागे न नरोरोगभाग्भवेत्
 लाङ्गलीशंसकृत्पूज्यपञ्चलाङ्गलदानजम् । फलं प्राप्नोत्यविकलं सर्वसम्पत्करं परम्
 विराधेश्वरमाराध्य विराधगणपूजितम् । सर्वापराधयुक्तोऽपि नापराध्यातिकुत्रचित्
 दिनेदिनेपराधोयः क्रियतेकाशिवासिभिः । स याति संक्षयं क्षिप्रं विराधेशसमर्चनात्
 नैर्ऋते दण्डपाणेस्तु विराधेशं प्रयत्नतः । नत्वा सर्वापराधेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः
 सुमुखेशमहालिङ्गंसुमुखाक्यगणार्जितम् । पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं दृष्ट्वापैः प्रमुच्यते

स्नात्वा पिलिपिलार्तीर्थे सुमुखेशं विलोक्य च ।

सदैव सुमुखं पश्येद्धर्मराजं न दुर्मुखम् ॥ २६ ॥

आषाढिनाऽर्चितं लिङ्गमाषाढीश्वरसञ्ज्ञिकम् ।

दृष्ट्वाऽऽषाढ्यां नरो भक्त्या सर्वैः पापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

उदीच्यांभारभूतेशादाषाढीशं समर्चयन् । आषाढ्यां पञ्चदश्यांवै न पापैः परितप्यते
 शुचिशुक्लवर्तुर्दश्यां पञ्चदश्यामथापिवा । कृत्वा सांवत्सरीं यात्रामनेना जायतेनरः

स्कन्द उवाच

मुने! गणेषु खेनेषु वाराणस्यां स्थितेष्विति ।

स्वनाम्ना स्थाप्य लिङ्गानि विश्वेशपरितुष्टये ॥ ३० ॥

विश्वेशश्चिन्तयाञ्जके पुनः काशीप्रवृत्तये । कं वाहितं प्रहित्याद्य निवृत्तिं परमाम्भजे
 योगिन्यस्तिग्मगुर्धधाः शङ्कुकर्णमुखा गणाः ।

व्यावृत्य नागताः काश्याः सिन्धुगा इव सिन्धवः ॥ ३२ ॥

ध्रुवंकाश्यांप्रविष्टाये तेप्रविष्टाममोदरे । तेषांविनिर्गमो नास्ति दीप्तिऽग्नौ हविषामिष
 येषांहिसंस्थितिःकाश्यां लिङ्गार्चनरतात्मनाम् । तपधममलिङ्गानिङ्गमानिनसंशयः
 स्थाष्वराजङ्गमाःकाश्यामचेतनसचेतनाः । सर्वेममैव लिङ्गानितेभ्यो द्रुह्यन्तिर्दुर्धिवः

वाचिवाराणसीयेषां श्रुतौ वैश्वेश्वरीकथा । तएषकाशीलिङ्गानिबराण्यर्चान्ग्रहंयथा
 वाराणसीतिकाशीतिरुद्रावास इतिरूपुटम् । मुखाद्विनिर्गतं येषां तेषां न प्रभवेद्यमः
 आनन्दकाननंप्राप्ययैरानन्दभूमिकाम् । अन्यांहृदापिवाञ्छन्तिरानन्दाःसदाश्रते
 अष्टैववाप्तुमरणंबहुकालान्तरेपिवा । कलिकालभियापुंसांकाशीत्याज्यानकर्हिचित्
 अवश्यभाविनोभावामधिष्यन्तिपदेपदे । सलक्ष्मीनिलयांकाशीतित्यजन्तिकुतोधिष्यः
 वरंविप्रसहस्राणिसोढव्यानिपदेपदे । काश्यांनान्यत्रनिर्घिघ्नंवाञ्छेद्राज्यमपिकचित्
 कियन्निमेरममोग्याःसन्तिलक्ष्म्यःपदेपदे । परंनिरन्तरसुखाऽमुत्राप्यत्रापिकाशिका

विश्वनाथो ह्यहं नाथः काशिकामुक्तिकाशिका ।

सुधातरङ्गा स्वर्गङ्गा त्रय्येषा किन्न यच्छति ॥ ४३ ॥

पञ्चक्रोश्यापरिमिता तनुरेषा पुरी मम । अविच्छिन्नप्रमाणार्धिर्भक्तनिर्वाणकारणम्
 संसारभारखिन्नना यातायातकृतां सदा । एकैव मे पुरी काशी ध्रुवं विश्रामभूमिका
 मण्डपःकल्पवल्लीनांमनोरथफलैरलम् । फलितःकाशिकाख्योयं संसाराध्वजुषां सदा
 धकवर्तैरियं उत्र विचित्र सर्वतापहृत् । काशीनिर्वाणराजस्य मम शूलोच्चदण्डवृत्

निर्वाणलक्ष्मी ये पुण्याः परिवाञ्छन्ति लीलया ।

निरन्तरसुखप्राप्त्यै काशी त्याज्या न तैर्नृभिः ॥ ४८ ॥

ममानन्दवने ये वै निरन्तरवनीकसः । मोक्षलक्ष्मीफलान्यत्र सुस्वादूनि लभन्ति ते
 निर्ममञ्चापि निर्मोहं या मामपि चिमोहयेत् ।

कर्नं संस्मरणीया सा काशी विश्वविमोहिनी ॥ ५० ॥

नामाऽपि मधुरं यस्याः परानन्दप्रकाशकम् ।

काश्याः काशीति काशीति सा कैः पुण्यैर्न जप्यते ॥ ५१ ॥

काशीनामसुधापानं ये कुर्वन्तिरन्तरम् । तेषां वर्त्मभवत्येव सुधामघसुधामयम्
 ममत्तारहितस्यापिममसर्वात्मनो ध्रुवम् । तएवमामकालोके ये काशीनामजापकाः
 रहस्यमितिचिन्नायवाराणस्या गणेश्वरैः । सन्नह्ययोगिनीब्रध्नैः स्थितंतत्रैव नान्यथा
 अन्यथाताश्चयोगिन्यःसरविःसपितामहः । तेगणा मां परित्यज्य कथंतिदृयुरन्यतः

अतीवमद् सञ्जातं काश्यां तिष्ठत्सुतेषुहि । एकोपिमेदेप्रमवेद्राज्यैराज्यान्तरं विना
 लब्धप्रवेशास्तावन्तस्ते सर्वे मत्स्वरूपिणः । यतिष्यन्ति यतोऽवश्यंमदागमनहेतवे
 अन्यानपिप्रेषयामिमत्पार्श्वपरिवर्तिनः । येतेतत्रस्थिताःश्रेष्ठावपिगन्ताऽस्म्यहं ततः
 विश्वार्येतिमहादेवःसमाह्वयगजाननम् । प्राहिणोत्कथयित्वेति गच्छ काशीमितःसुतः

तत्र स्थितोऽपि संसिद्धयै यतस्व सहितो गणैः ।

निर्विघ्नं कुरु चास्माकं नृपे विघ्नं समाचर ॥ ६० ॥

आधायशाननंमूर्ध्निगणाधीशोथधूर्जटे । प्रतस्थेत्वरितःकाशींस्थितिज्ञःस्थितिहेतवे
 इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे-
 उत्तरार्धे काशीवर्णनगणेशप्रेषणं नामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

—:—:—

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गणेशमायाप्रपञ्चवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अधेशाक्तां समादाय गजवक्त्रः प्रतस्थिवान् ।

शम्भोः काश्यागमोपायं चिन्तयन्मन्दराद्वितः ॥ १ ॥

प्राप्य धाराणसीं तूर्णमास्त्रस्यन्दनगो विभुः ।

घाडध्वीं मूर्तिमालम्ब्य प्राचिशच्छकुनैस्तु सः ॥ २ ॥

नक्षत्रपाठकोभूत्वावृद्धः प्रत्यवरोधगः । चचार मध्ये नगरं पीराणां प्रीतिमावहन्
 स्वयमेवनिशाभागेस्वप्नं सन्दर्शयन्नृणाम् । प्रातस्तेषां गृहान्गत्वातेषां वक्त्रिभलाबलम्
 भवद्विरघराश्रीयद्गुह्यं स्वप्नचिचेष्टितम् । भवत्कौतूहलोत्पत्त्यै तदेव कथयाम्यहम्
 स्वपताभवता रात्री तुर्ये यामेमहाहवः । अदर्शि तत्र च भवान् मज्जनमज्जंस्तटंगतः
 तद्भ्युपिच्छिले पङ्के मग्नोन्मग्नोऽसि भूरिशः ।

दुःस्वप्नस्यास्य च महान्विपाकोऽतिभयप्रदः ॥ ७ ॥

कापायवसनो मुण्डः प्रैक्ष्यहोभवतापियः । परितापं महानेव जनविष्यति दारुणम्
रात्रौ सूर्यग्रहो दृष्टो महानिष्टकरो ध्रुवम् । ऐन्द्रं धनुर्द्वयं रात्रौ यदलोकि नतच्छुभम्
प्रतीच्यांरविरागत्यप्रोद्यन्तंध्योस्त्रिं शतगुम् । पातयामास भूपृष्ठे तद्राज्यभयसूखकम्
युगपत्केतुयुगलं युध्यमानं परस्परम् । यददर्शि नतद्भद्रं राष्ट्रभङ्गाय केवलम् ॥ ११ ॥
विशीर्यत्केशदशननीयमानञ्च दक्षिणे । आत्मानंयत्समद्राक्षीःकुटुम्बस्यापिभीषणम्
प्रासादध्वजभङ्गोयस्त्वयंक्षतनिशाक्षये । राज्यक्षयकरंविद्धिमहोत्पाताय निश्चितम्
नगरीप्लाघितास्वप्ने तरङ्गैः क्षीरनारधेः । पक्षैस्त्रिचतुरैः शङ्के महाशङ्कां पुरीकसाम्
स्वप्ने धानरयानेन यस्वमूढोऽसि दक्षिणाम् । अतस्तद्भङ्गनोपायःपुरत्यागो महामते
रुदतीयात्वयादृष्टा महिलैका निशात्यये । मुक्तकेशी विषसना सा नारी श्रीरिवोद्भता
देवालयस्यकलशोयस्वयावीक्षितः पतन् । दिनैः कतिपर्यैरेव राज्यभङ्गो भविष्यति
पुरीपरिवृतास्वप्ने मृगयूथैः समन्ततः । रोक्यमाणैरत्यर्थं मासेनैवोद्भसी भवेत्
आतायियूकगृध्राद्यैः पुरीमुपरिचारिभिः ।

सूचयतेत्याहितं किञ्चिद् ध्रुवमत्र निवासिनाम् ॥ १६ ॥

स्वप्नोत्पातानिति बहुञ्छंसञ्छंसन्नितस्ततः ।

बहुनुच्चाटयाञ्चके सविघ्नेशः पुरीकसः ॥ २० ॥

केयांचित्पुरतोवादीद्गृहचारप्रदर्शयन् । एकराशिस्थिताः सौरिसितभौमानशोभनाः
योऽयं धूमग्रहो व्योम्नि भिस्वा सतर्पिमण्डलम् ।

प्रयातः पश्चिमामाशां स नाशाय विशाम्पतेः ॥ २२ ॥

अतिचारगतो मन्दः पुनर्वक्त्रध्वसंस्थितः । पापग्रहसमायुक्तो न युक्तो यमिहेष्यते
व्यतीते वासरे योऽयं भूकम्पः समपद्यत । कम्पं जनयतेऽतीव हृदो मेपिपुरीकसः
उदीच्यां दक्षिणाशायां ये यमुल्का प्रधाषिता ।

बिलीना च धियत्येष स निर्घातं न सा शुभा ॥ २५ ॥

उन्मूलितो महामूलो महान्बिलरयेण चः । अत्थरे चैत्यवृक्षोऽयं महोत्पातं प्रशंसति

सूर्योदयमनुनाप्य प्राच्यां शुष्कतरुपरि । करटो रारटीत्येष कटूत्कटभयप्रदः

मध्ये क्षिपणि यत्सूर्णं कौचिच्चारण्यचारिणौ ।

मृगौ मृगयतां यातौ पौराणां पुरतोऽहितौ ॥ २८ ॥

रसालशालमुकुलं धीक्ष्यते यच्छरद्यदः । महाकालभयं मन्येऽप्यकालेपि पुरौकसाम्
साध्वसंजनयित्वेति केचिदुच्चाटिताः पुरः । तेन चिघ्नकृता पौराःकपटद्विजकृपिणा
अथ मध्येऽवरोधं स प्रविश्य निजमायया । द्रुपार्थमेघकथयंस्त्रीणां विलम्बभूरभूत्
तत्र पुत्रशतं जज्ञे समोनं शुभलक्षणे । तेष्वेकस्तुरगारूढो बाह्याल्या पतितो मृतः

अन्तर्घ्नीत्वियं कन्यां जनयिष्यति शोभनाम् ।

एषा हि दुर्भगा पूर्वं साम्प्रतं मुभगाऽभवत् ॥ ३३ ॥

असौ हि राज्ञोराज्ञीनामत्यन्तमिहवल्लभा । मुक्तालङ्कृतिरेतस्यैराज्ञादस्तिनिजोरसः
पञ्चसप्तदिनान्येष जातानीतीह तर्क्यते । अस्यै राज्ञा प्रसादेन ग्रामौ दातुमुदीरितौ
इतिदृष्टार्थकथनैराज्ञीमान्योऽभवद्द्विजः । वर्णयन्ति चताराज्ञःपरोक्षेऽपिगुणान्बहून्
अहोयाद्गमसौ क्षिप्रःसर्वत्रातिविचक्षणः । सुशीलश्च सुरूपश्चसत्यवाङ्मतिभाषणः
अलोलुप उदारश्च सदाचारो जिनेन्द्रियः । अपिस्वल्पेन संतुष्टः प्रतिग्रहपराङ्मुखः
जितक्रोधः प्रसन्नास्यस्त्वनसूयुरवञ्चकः । कृतज्ञः प्रीतिसुमुखः परिवादपराङ्मुखः
पुण्योपदेष्टा पुण्यात्मा सर्वत्रतपरायणः । शुचिः शुचिचरित्रश्च्रुतिस्मृतिविशारदः

धीरः पुण्येतिहासज्ञः सर्वदृक् सर्वसम्मतः ।

कलाकलापकुशलो ज्योतिःशास्त्रचिदुत्तमः ॥ ४१ ॥

क्षमी कुलीनोऽकृपणो भोक्ता निर्मलमानसः ।

इत्यादिगुणसम्पन्नः कोऽपि कापि न दृग्गतः ॥ ४२ ॥

इत्थं तास्तद्गुणप्रामंवर्णयन्त्यः पदे पदे । कालं चिनोदयन्तिस्मभन्तःपुरचराःस्त्रियः
एकदावसरं प्राप्य दिघोदासस्य भूभुजः । राज्ञी लीलावती नामराज्ञेतंविन्यवेदयत्
राजन् ! वृद्धो गुणैर्बृद्धो ब्राह्मणः सुविचक्षणः ।

एकोऽस्ति स तु द्रष्टव्यो मूर्ता ब्रह्मनिधिः परः ॥ ४५ ॥

राज्ञी राज्ञा कृतानुज्ञा सखी प्रेष्य विचक्षणाम् ।

आनिनाय च तं विप्रं ब्राह्मं तेज इवाङ्गवत् ॥ ४६ ॥

राजापि दूरादायान्तं तं विलोक्य महीसुरम् ।

यत्राकृतिगुणास्तत्र जहर्षेति वदन् हृदि ॥ ४७ ॥

पदैर्द्वित्रैर्नृपतिना कृताभ्युत्थानसत्कृतिः । सतुर्निगमजाभिः स तमाशीर्भिरनन्दयत्
कृतप्रणामो राज्ञा ससादरं दत्तमासनम् । भेजेऽथ कुशलं पृष्टः स राज्ञा तेन भूपतिः
परस्परं कुशलिनौ कुशलौ च कथागमे । प्रश्नोत्तराभ्या सतुष्टौ द्विजवर्यक्षमाभृतौ
कथावसाने राज्ञा गेहं विसृजेद्विजः । लब्धमानमहापूजः सस्वमाश्रममाचिशत्
गतेऽथस्वाश्रमं विप्रेद्विबोदासोनरेश्वरः । लीलावत्याः पुरोविप्रवर्णयामासभूरिशः
महादेवि महाप्राज्ञे! लीलावति! गुणप्रिये ! यथाशंसितथाचिप्रस्ततोऽपिगुणवत्तरः
अतीतं वेत्ति सकलं वर्त्तमानमवेति च । प्रष्टव्यः प्रातराह्वय भविष्यं किञ्चिदेष वै
महाविभवसम्भारैर्महाभोगैरनेकधा । व्युष्टाया सनृपो रात्र्याप्रातराहृतवान्द्विजम्
सत्कृत्य तं द्विजं भक्त्या दुकूलादिप्रदानतः ।

एकान्ते तं द्विजं राजा पप्रच्छ निजहृत्स्थितम् ॥ ५६ ॥

राजोवाच

द्विजवर्यो भवानेकः प्रतिभातीति निश्चितम् ।

यथा तस्त्वचतीते धीर्नतथा न्यस्य मे मतिः ॥ ५७ ॥

दृष्ट्वा न्वा तु महाप्राज्ञं शान्तं दान्तं तपोनिधिम् ।

किञ्चित्प्रष्टुमना विप्र! तदाख्याहि यथार्थवत् ॥ ५८ ॥

शासितेयं मया पृथ्वी न तथान्यैस्तु पार्थिवैः ।

यावद्भूतिमया भुक्ता दिव्या मोगा अनेकधा ॥ ५९ ॥

निजौरसेभ्योप्यधिकंरात्रिदिवमतन्द्रितम् । चिर्निर्जित्यहठाद्दुष्टान्प्रजेयं परिपालिता
द्विजपादार्षनात्किञ्चित्सुकृतं वेदि नापरम् । अनेनापरिकथ्येन कथितेनेहकिमम
निर्विस्ममिष मे वेतःसाम्प्रतंसर्वकर्मसु । विद्यार्याय! शुभोर्कमतभाख्याहिसत्तम!

द्विज उवाच

अपि स्वल्पतरं कृत्यं यद्वेषेदुभूभुजामिह । एकान्ते तत् पृष्टुन वक्तव्यं सुधियासदा
अमात्यैनाव्यपृष्टेन न वक्तव्यं नृपाप्रतः । महापमानभीतेन स्तोत्रकमप्यत्र विञ्जन ॥
पृष्टञ्चेत्कथयामीह मा तत्र कुरु संशयम् । तत्कृते तव गन्तावै मनो निर्बेदकारणम्

भृशु राजन् ! महाबुद्धे ! नायथार्थं ब्रवीम्यहम् ।

चिक्रान्तोऽस्यतिशूरोऽसि भाग्यवानसि सर्वदा ॥ ६६ ॥

पुण्येन यशसा बुद्ध्या सम्पन्नोऽस्ति भवान् यथा ।

मन्ये तयामरावस्था त्रिदशेशोऽपि नैव हि ॥ ६७ ॥

सुधिया त्वा गुरुं मन्ये प्रसादेनसुधाकरम् । तेजसास्तिभवानर्कःप्रतापेनाशुशुक्षणिः
प्रमञ्जनो बलेनासिध्रीदोऽसिभ्रासमर्षणैः । शासनेनभवान्कद्रोनिर्ऋतिस्त्वंरणाङ्गणे
दुष्टपा शयिता पाशी यमो नियमने सताम् ।

इन्दनार्षं महेन्द्रोऽसि क्षमया त्वमसि क्षमा ॥ ७० ॥

मर्यादया भवान्धिर्महर्षे हिमवानसि । भार्गवो राजनीत्यासिराज्येनमनुनासमः
सन्तापहर्ताम्बुदधत्पवित्रो गाङ्गनामघत् । सर्वेषामेव जन्तूना काशीष सुगतिप्रदः
रुद्रः संहाररूपेण पालनेन चतुर्भुजः । विधिषर्षं विधातासि भारती ते मुखाभ्युजे
त्वत्पाणिपद्मे कमला त्वत्कोधेऽस्ति हलाहलः ।

अमृतं तव वागेव त्वद्भुजावम्बिनीसुती ॥ ७४ ॥

तत्किम्यस्वयि भूजानौ सर्वदेवमयो ह्यसि ।

तस्मात्तव शुभोवर्को मया ज्ञातोऽस्ति तस्वतः ॥ ७५ ॥

भारभ्याद्यदिनाद्भुपब्राह्मणोऽष्टादशोऽहनि । उदीच्यःकश्चिदागत्यध्रुवंत्वामुपदेक्ष्यति

तस्य वाक्यं त्वया राजन्कर्तव्यमविचारितम् ।

ततस्ते हृत्स्वतं सर्वं सेतस्यत्येव महामते ॥ ७७ ॥

इत्युक्त्वा पृच्छन् राजानं लब्धानुहो द्विजोत्तमः ।

विधेश स्वाश्रमं तुष्टो नृपोऽप्याभ्यर्चयामभूत् ॥ ७८ ॥

इत्थं विघ्नजिता सर्वा पुरी स्वात्मवशीकृता ।
 स पौरा साधरोघ्रा च सनृपा निजमायया ॥ ७६ ॥
 कृत्स्नकृत्यमिवात्मानं ततो मत्वा स विघ्नजित् ।
 विधाय बहुघातमानं काश्यां स्थितिमवाप च ॥ ८० ॥

यदासनदिवोदासः प्रागासीत्कुम्भसम्भव । तदातनंनिजं स्थानमलञ्जके गणाधिपः
 दिवोदासे नरपती चिष्णुनोच्चाटिते सति । पुनर्नवीकृतायाञ्च नगर्यां विश्वकर्मणा
 स्वयमागत्य देवेन मन्दरात्सुन्दरांपुरीम् । धाराणसीं प्रथमतस्तुष्टुवे गणनायकम्

अगस्त्य उवाच

कथंस्तुतोभगवता देवदेवेन विघ्नजित् । कथं च बहुघातमानं स चकार विनायकः
 केनकेनसर्वनाम्ना काशिपुर्यां व्यवस्थितः । इति सर्वं समासेन कथयस्व षडानन
 इत्युद्गीरितमाकर्ष्यकुम्भयोनेः षडाननः । यथावत्कथयामास गणराजकथां शुभाम्
 इति श्रीस्कान्दे महापुराण पराशीतिसाहस्र्या संहितायां तृतीये काशीखण्डे
 उत्तरार्धे गणेशमायाप्रपञ्चोनाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

—:—:—

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुष्टविनायकप्रादुर्भाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

विश्वेशोविश्वयासाधैमयाच मुनिसत्तम ! महाशास्त्रविशाखाभ्यांनन्दिभृङ्गिपुरोगमः
 नैगमेयेन सहितो रुद्रैः सर्वत्र सम्भृतः । देवर्षिभिः समायुक्तः सनकाद्यैरभिष्टुतः
 समस्तायतनाधीशैर्दिव्यालैरभिनन्दितः । तीर्थैर्दर्शिततीर्थैश्च गन्धर्वैर्गौतमङ्गुलः ॥
 कृतपूजोऽप्सररोभिश्च नृत्यहस्तकपल्लवैः । वियत्यनाहतैर्धाद्यैः समन्तादनुमोदितः
 श्रुतीनां ब्रह्मनिर्घोषैर्बिचिरीकृतंदिग्मुखः । कृतस्तुतिभारणौघैर्षिमानैरभितो वृतः

त्रिविष्टपवधूमृष्टिभ्रष्टैर्लाजैरितस्ततः । अभिवृष्टो महादेवः सम्ग्रहष्टतनूरुहः ॥ ६ ॥
 दत्तमालयोपहारश्च बहुविद्याधरीगणैः । यक्षगुह्यकसिद्धैश्च खेचरैरभिनन्दितः ॥
 कृतप्रवेशशकुनो मृगैः शकुनिभिः पुरः । किन्नरीभिः प्रहृष्टास्यैः किन्नरैरुपवर्णितः
 विष्णुनाचमहालक्ष्म्याब्रह्मणाविश्वकर्मणा । नन्दिनाऽथगणेशेनआविष्कृतमहोत्सवः
 नागाङ्गनाभिः परितः कृतनीराजनाविधिः । प्रविवेशमहादेवःपुरीं वाराणसीं शुभाम्
 पश्यतां सर्वदेवानामवरुह्य वृषेन्द्रतः । परिष्वज्य गणार्धीशं प्रोवाच वृषभध्वजः
 यदहंप्राप्तवानस्मिपुरींवाराणसींशुभाम् । मयाप्यतीवदुष्प्राप्यांसप्रसादोऽस्यवैशिशोः
 यद्वदुष्प्रसाध्यंहिपितुरपित्रिजगतीतले । तत्सूनुना सुसाध्यं स्यादत्र दृष्टान्तता मयि
 अनेन गजवक्त्रेण स्वबुद्धिभिर्भवेरिह । काशीप्राप्तिसंयामेऽस्यात्तथाकिञ्चिदनुष्ठितम्
 पुत्रवानहमेवास्मिन्मयश्चमे चिरचिन्तितम् । स्वपौरुषेण कृतवानभिलाषं करन्धितम्
 इत्युत्तवात्रिपुरीहर्त्तां पुरुहूतादिभिः स्तुतः । परितुष्टाव संहृष्टः स्पष्टगीर्मिर्गजाननम्

श्रीकण्ठ उवाच

जयविघ्नकृतामाद्यभक्तनिर्विघ्नकारक !। अविघ्नविघ्नशमनमहाविघ्नैकविघ्नकृन्
 जय सर्वगणाधीश! जय सर्वगणाप्रणीः !। गणप्रणतपादाब्जगणनातीतसद्गुण!
 जय सर्वग! सर्वेश सर्वबुद्ध्येकशेषे । सर्वमायाप्रपञ्चसर्वकर्माप्रपूजित ॥ १६ ॥
 सर्वमङ्गलमाङ्गल्य! जय त्वं सर्वमङ्गल !। अमङ्गलोपशमन ! महामङ्गलहेतुक !। २० ॥
 जय सृष्टिकृतां वन्द्य!जयस्थितिकृतानत !। जयसंहृतिकृत्स्तुत्य!जयमत्कर्मसिद्धिद!

सिद्धवन्द्यपद्मभोज! जयसिद्धिविधायक !।

सर्वसिद्धये कनिलयमहासिद्धयद्विसूचक !। २३ ॥

अशेषगुणनिर्माणगुणातीतगुणाप्रणीः !। परिपूर्णचरित्रार्थ ! जय त्वं गुणवर्णित ॥
 जय सर्वबलाधीश! बलारातिबलप्रद !। बलाकोज्ज्वलदन्ताप्रबालाबालपराक्रम !।।
 अनन्तमहिमाधार ! धराधरविदारण !। दन्ताप्रप्रोतदिङ्नाग ! जयनागाविभूषण !।।
 ये त्वां नमन्ति करुणामयदिव्यमूर्ते! सर्वेनसामपि भुवो भुवि मुक्तिभाजः
 तेषां सदैव हरसीह महोपसर्गान्स्वर्गापवर्गमपि संप्रददासि तेभ्यः ॥ २६ ॥

ये विघ्नराज भवता करुणाकटाक्षैः सम्प्रेक्षिताःक्षितितले क्षणमात्रमत्र ।
 तेषां क्षयान्त सकलान्यपि किल्विषाणि लक्ष्मीः कटाक्षयति तान्पुरुषोत्तमान्निह ।
 ये त्वा स्तुवन्ति नतचिन्नविघातदक्ष दाक्षायणीहृदयपङ्कजतिग्मरश्मे ! ।
 श्रूयन्त एव त इह प्रथिता न चित्रं चित्रं तदत्र गणपा यदहोत एव ॥ २८ ॥
 येशील्यन्तिसततं भवतोऽङ्घ्रियुग्मं ते पुत्रपौत्रधनधान्यसमृद्धिभाजः ।
 संशीलिताङ्घ्रिकमलाबहुभृत्यवर्गैर्भूपालभोग्यकमला विमला लभन्ते ॥ २९ ॥
 त्वं कारणं परमकारणकारणाना वेद्योऽसि वेदविदुषा सततं त्वमेकः ।
 त्वंमार्गणीयमसिकिञ्चनमूलवाचा वाचामगोचरचराचरदिव्यमूर्ते ! ॥ ३० ॥
 वेदा विदन्ति न यथार्थतया भवन्तं ब्रह्मादयोऽपि न चराचरसूत्रधार ।
 त्वं हंसि पासि विदधामि समस्तमेकः कस्तेस्तुतिव्यतिकरोमनसाप्यगम्य !
 त्वद्बुद्धुद्बुद्धिषिशिखेनिहताग्निहन्मि दैत्यान्पुरान्धकजलन्धरमुख्यकाश्च ।
 कस्यास्ति शक्तिरिहयस्त्वद्भूतेपितुच्छं वाञ्छेद्विधातुमिह सिद्धिद ! कार्यजातम् ।
 अन्वेषणे दुद्विरयंप्रथितोऽस्ति धातुःसर्वाथंदुण्डिततया तव दुण्डिनाम् ।
 काशीप्रवेशमपि कोलभतेऽत्रदेही तोषं विनातव विनायक दुण्डिराज ॥ ३१ ॥
 दुण्डे ! प्रणम्य पुरतस्तव पादपद्मं यो मा नमस्यति पुमानिह काशिवासी ।
 तत्कर्णमूलमधिगम्य पुरा दिशामि तत्किञ्चिदत्र न पुनर्भवताऽस्ति येन ॥ ३२ ॥
 म्नात्वा नरःप्रथमतोमणिकर्णिकायामुद्भूलिताङ्घ्रियुगलस्तुसचैलमाशु ।
 देवविमानवपितृनपि तर्पयित्वा ज्ञानोदतीर्थमभिलभ्य भजेत्ततस्त्वाम् ॥ ३५ ॥
 सामोद्मोदकभरैर्वरधूपदीपैर्माल्यैः सुगन्धधहुरैरनुलेपनैश्च ।
 समप्रीण्य काशिनगरीफलदानदक्षं प्रोक्त्वाऽथमाकङ्क्षसिध्यतिनैवदुण्डे ! ॥
 तीर्थान्तराणि च ततः क्रमवर्जितोऽपिसंसाधयन्निह भवत्करुणाकटाक्षैः ।
 दूरीकृतस्त्वहितघात्युपसर्गवर्गो दुण्डे ! लभेदधिकलं फलमत्र काश्याम् ॥ ३७ ॥
 यःप्रत्यहं नमति दुण्डविनायकं त्वांकाश्यां प्रगे प्रतिहताखिलविघ्नसङ्घः ।
 नो तस्य ज्ञातुजगतीतलवर्तिवस्तु दुष्प्रापमत्र च परत्र च किञ्चनापि ॥ ३८ ॥

यो मम ते जपति दुण्डिबिनायकस्यतं वैजपन्त्यनुदिनं हृदि सिद्धयोऽष्टौ ।
 भोगान्बिभुञ्ज्य विविधान्बिबुधोपभोग्याभिर्वाण्णया कमलया त्रियते स चान्ते ।
 दूरेस्थितोऽप्यहरहस्तव पादधीठं यः संस्मरेत्सकलसिद्धिदं दुण्डिराज ॥
 काशीस्थितेरचिकलं सफलं लभेत नैवान्यथा न वितथा मम चाक्रदाचित् ॥ ४० ॥
 जानेचिद्वानसंख्यातान्विनिहन्तुमनेकधा । क्षेत्रस्यास्यमहाभागनानारूपैरिहस्थितः
 यानियानिब्रूपाणि यत्र यत्र च तेऽनघ । तानितत्रप्रवक्ष्यामिभृष्वन्त्वेतेदिवोकसः
 प्रथमं दुण्डिराजोऽसि मम दक्षिणतोमनाक् ।
 आदुण्ड्यसर्षभक्तेभ्यः सर्वार्थान्सम्यग्रच्छसि ॥ ४३ ॥
 अङ्गारवासरवतीमिह यैश्चतुर्थीं सम्प्राप्य मोदकमरैःपरिमोदवद्विः ।
 पूजा ध्यध्यायि विविधा तव गन्धमाल्यैस्तानत्रपुत्रविदधामिगणानुगणेश ॥
 ये त्वामिह प्रतिचतुर्थिसमर्षयन्ति दुण्डे! चिगाढमतयःकृतिनस्तपव ।
 सर्वापदां शिरसि वामपदं निधाय सम्यग्गजानन! गजाननतां लभन्ते ॥ ४५ ॥
 माघशुक्लचतुर्थ्यांतुनकव्रतपरायणाः । येत्वांदुण्डेऽर्चयिष्यन्ति तेऽर्चाःस्युरसुरद्रुहाम्
 विधाय वार्षिकीं यात्रां चतुर्थीं प्राप्य तापसीम् ।
 शुक्रां शुक्लतिलैर्बद्ध्वा प्राशनीयाल्लड्डुकान्ब्रवीती ॥ ४७ ॥
 कार्या यात्रा प्रयत्नेन क्षेत्रसिद्धिमभीप्सुभिः ।
 तस्यां चतुर्थ्यां त्वत्प्रीत्यै दुण्डे! सर्वोपसर्गहृत् ॥ ४८ ॥
 तां यात्रां नात्र यः कुर्यान्नैवेद्यंतिललड्डुकैः । उपसर्गसहस्रैस्तु सहन्तव्योममाह्वया
 होमं तिलाज्यद्रव्येण यः करिष्यति भक्तितः ।
 तस्यां चतुर्थ्यां मन्त्रज्ञस्तस्य मन्त्रःप्रसेत्स्यति ॥ ५० ॥
 वैदिकोऽवैदिको वापि यो मन्त्रस्ते गजानन ! ।
 जतस्त्वत्सन्निधौ दुण्डे! सिद्धिं दास्यति वाञ्छिताम् ॥ ५१ ॥

ईश्वर उवाच

इमां स्तुतिं मम कृतिं यः पठिष्यति सन्मतिः

न जानु तं तु विघ्नौघाः कीडयिष्यन्ति निश्चितम् ॥ ५२ ॥

द्वीण्दी स्तुतिमिमां पुण्यां यः पठेद्दुण्डिसन्निधौ ।

साभिध्यं तस्य सततं भजेयुः सर्वसिद्धयः ॥ ५३ ॥

इमां स्तुतिनरो जप्त्वा परंनियतमानसः । मानसैरपि पापैस्तैर्नाभिभूयेत कर्हिचित् ।
पुत्रान्कलत्रं क्षेत्राणि घराभ्यान्वरमन्दिरम् । प्राप्नुयाच्च धनं धान्यं दुण्डिस्तोत्रं जपन्नरः
सर्वसम्पत्करं नाम स्तोत्रमेतन्मयेरितम् । प्रजप्तव्यं प्रयत्नेन मुक्तिकामेन सर्वदा

जप्त्वा स्तोत्रमिदं पुण्यं कापि कार्यं गमिष्यतः ।

पुंसः पुरःसमेप्यन्ति नियतं सर्वसिद्धयः ॥ ५७ ॥

अन्येषु कथयाम्यत्र शृण्वन्त्वेते दिवौकसः ।

दुण्डिना क्षेत्ररक्षार्थं यत्र यत्र स्थितिः कृता ॥ ५८ ॥

काश्या गङ्गासिसम्भेदेनामतोऽर्कविनायकः । दृष्टोऽर्कवासरेपुष्पिः सर्वतापप्रशान्तये
दुर्गो नाम गणाध्यक्षः सर्वदुर्गतिनाशनः । क्षेत्रस्य दक्षिणे भागे पूजनीयः प्रयत्नतः
भीमचण्डीसर्मापे तु भीमचण्डविनायकः । क्षेत्रनैः शतदेशस्थो दृष्टो हन्ति महाभयम्
क्षेत्रस्य पश्चिमे भागे सदेहलि विनायकः । सर्वाभिचारये द्विघ्नान्भक्तानां नात्र संशयः
क्षेत्रवायव्यदिग्भागे उद्वण्डाख्यो गजाननः ।

उद्वण्डानपि विघ्नौघान् भक्तानां दण्डयेत्सदा ॥ ६३ ॥

काश्याः सदोत्तराशायां पाशापाणि विनायकः ।

विनायकान्पाशयन्ति भक्त्या काशीनिवासिनाम् ॥ ६४ ॥

गङ्गावरणयोः सङ्करम्यः सर्वविनायकः । अखर्धानपि विघ्नौघान् भक्तानां खर्चयेत्सताम्
प्राच्यां तु क्षेत्ररक्षार्थं सिद्धः सिद्धि विनायकः ।

पश्चिमे यमतीर्थस्य साधकक्षिप्रसिद्धिदः ॥ ६६ ॥

बाह्यावरणगाञ्जैते काश्यामष्टौ विनायकाः । उच्चाटयन्त्यभक्तान् भक्तानां सर्वसिद्धिदाः
द्वितीयावरणे खैव ये रक्षन्ति विनायकाः । अविमुक्तमिदं क्षेत्रं तानहं कथयाम्यतः
स्वर्धुन्याः पश्चिमे कूले उत्तरेऽर्कविनायकात् ।

लम्बोदरो गणाध्यक्षः क्षालयेद्विघ्नकर्दमम् ॥ ६६ ॥

तत्पश्चिमे कूटदन्त उदग्दुर्गविनायकात् । दुर्गोपसर्गसंहर्ता रक्षेत्क्षेत्रमिदं सदा
भीमस्रण्डगणाध्यक्षात्किञ्चिदीशानदिग्गतः ।

क्षेत्ररक्षोगणाध्यक्षः पूज्यः शालकटङ्कट ॥ ७१ ॥

प्राच्या देहलिविघ्नेशात्कृशमाण्डाख्यो विनायकः ।

पूजनीयः सदाभक्तैर्महोत्पातप्रशान्तये ॥ ७२ ॥

उद्दण्डाख्याद्गणपतेराशुशुक्षणिदिकस्थितः ।

महाप्रसिद्धः सम्पूज्योभक्तमुण्डविनायक ॥ ७३ ॥

पाताले तस्य देहोऽस्ति मुण्ड काश्या व्यवस्थितम् ।

अतः सङ्गीयते काश्या देवा मुण्डविनायकः ॥ ७४ ॥

पाशापाणेर्गणेशानादृक्षिणे विकटद्विजम् । पूजयित्वा गणपतिगणपत्यपदं लभेत्
खर्वाख्याभैर्भृते भागे राजपुत्रोविनायकः । भ्रष्टराज्यञ्च राजानराजानं कुरुतेऽर्चितः
गङ्गायाः पश्चिमे कूले प्रणवाख्योगागाधिप । अत्राच्याराजपुत्राच्चप्रणत प्रणयेद्विषम्
द्विनीयावरणे काश्यामष्टावेने विनायकाः ।

उत्सादयेयुर्विघ्नोघान्काशीस्थितिनिवामिनाम् ॥ ७८ ॥

क्षेत्रे तृतीयावरणे क्षेत्ररक्षाकृतः सदा । ये विघ्नराजाः सन्तीह ते वक्तव्या मयाधुना
उदग्बहायाः स्वधुन्या रम्ये रोधसि विघ्नराट् ।

लम्बोदरादुर्वीच्यान्तु वक्रतुण्डोऽवसङ्कहतम् ॥ ८० ॥

कूटदन्ताद्गणवतेरुर्वीच्यामेकदन्तक । सद्गोपसर्गसंसर्गात्पायादानन्दकाननम् ॥
काशीमयहरो नित्यमैश्याशालकटङ्कटात् । त्रिमुखोनामविघ्नेश कपिसिंहद्विपाननः

कृशमाण्डात्पूर्वदिग्भागे पञ्चास्यो नाम विघ्नराट् ।

पञ्चास्वस्यन्दनवरः पाति वाराणसीं पुरीम् ॥ ८३ ॥

हेरम्बाख्यः सदाग्नेय्यां पूज्यो मुण्डविनायकात् ।

अम्बावत्पूरयेत्कामान्सर्वेषां काशिवासिनाम् ॥ ८४ ॥

अवाच्यामर्षयेद्धीमान्सिहदुध्यै विकटदन्तनः । विघ्नराजगणपतिं सर्वविघ्नविनाशनम्
विनायकाद्राजपुत्रात्किञ्चिद्भक्षोदिशिस्थितः ।

वरदाख्यो गणाध्यक्षः पूज्यो भक्तवरप्रदः ॥ ८६ ॥

याम्यां प्रणवविघ्नेशान्मणेशो भोदकप्रियः । पूज्यः पिशाङ्गिलातीर्थे देवनद्यास्तटेशुभे
चतुर्थावरणे काश्यां भक्तविघ्नविनाशकाः । द्रष्टव्या हृष्टचेतोभिःस्पष्टमष्टौविनायकाः
वक्रतुण्डाद्दुदग्दिक्स्थः स्वः सिन्धो रोधसि स्थितः ।

विनायकोऽस्त्यभयदः सर्वेषां भयनाशनः ॥ ८६ ॥

कौबेयांमेकदशनात्सिहनुण्डोविनायकः । उपसर्गगजान्हन्तिवाराणसिनिवासिनाम्
कृणिताक्षो गणाध्यक्षस्त्रितुण्डादीशदिक् स्थितः ।

महाश्मशानं सततं पायाद्दुष्टकुट्टप्रितः ॥ ६१ ॥

प्राच्या पञ्चान्यतः पायात्पुरीं क्षिप्रप्रसादनः ।

क्षिप्रप्रसादनार्घातः क्षिप्रं सिध्यन्ति सिद्धयः ॥ ६२ ॥

हेरम्बाद्बहिर्दिग्भागे चिन्तामणिविनायकः ।

भक्तचिन्तामणिः साश्चाच्चिन्तितार्थसमर्पकः ॥ ६३ ॥

विघ्नराजादवाच्यान्तुदन्तहस्तोगणेश्वरः । लिखेद्विघ्नसहस्राणिनृणांघाराणसीद्रुहाम्
वरदाद्या तुधान्यां चयानुधानगणानृतः । देवः पिच्चिण्डलो नाम पुरीरक्षेदहर्निशम्
दूष्टःपिलिपिलापीर्थेदक्षिणेभोदकप्रियात् । उद्दण्डमुण्डोहेरम्बोभक्तेभ्यःकृतयच्छति
प्राचारे पञ्चमे काश्यां द्विचतुष्कविनायकाः । कुर्वन्तिरक्षाक्षेत्रस्येतानश्रम्वीम्यहम्
तीरे स्वर्गतरङ्गिण्या उत्तरे घामयप्रदात् ।

स्थूलदन्तो गणेशानःस्थूलाःसिद्धीर्दिशेत्सताम् ॥ ६८ ॥

सिहनुण्डाद्दुग्भागेकलिप्रियविनायकः । कलहंकारयेन्नित्यमन्योन्यंतीर्थिकद्रुहाम्
कृणिताक्षात्तथैशान्याञ्जतुदन्तोविनायकः । यस्यदर्शनमात्रेणविघ्नसङ्घःक्षयेत्स्वयम्
क्षिप्रप्रसादनादैन्द्र्यां द्वितुण्डोगणनायकः । अग्रतःपृष्ठतश्चापिबिभर्तिसद्रुशीश्रियम्
तस्यसन्दर्शनात्पुंसांभवेच्छ्रीःसर्वतोमुखी । ज्येष्ठोनामगणाध्यक्षोऽयेष्टोमेपुत्रसम्पदि

ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सम्पूज्यो ज्येष्ठतामये ।

स्थितो वह्निदिशोभागे चिन्तामणिचिनायकात् ॥ १०३ ॥

दन्तहस्ताधमाशायां पूज्योगजविनायकः । तस्यसम्पूजनाद्भक्त्यागजान्ताश्रीरवाप्यते
पिचिण्डिलाद्गणपतेर्याभ्यांकालविनायकः । भयंनकालकलिततम्यसंसेवनान्मृणाम्
उद्वण्डमुण्डाद्गणपात्कीनाशदिशिसंस्थितम् । नागेशंगणप दृष्ट्वा नागलोके महीयते
अथषष्ठावरणगाः प्रोच्यन्ते विघ्ननायकाः । तेषांनामश्रवादेव पुंसां सिद्धिः प्रजायते
मणिकर्णो गणपतिः प्राच्यां विघ्नविघातकृत् ।

आशाविनायको घहृथां भक्ताशां पूरयन् स्थितः ॥ १०८ ॥

याभ्यां सृष्टिगणेशश्च सृष्टिसंहारसूचकः । नैऋत्यांयक्षविघ्नेशः सर्वविघ्नहरः परः
प्रतीच्यां गजकर्णश्च सर्वेषांश्रेमकारकः । वित्रघण्टो गणपतिर्वायव्यांपालयेत्पुरीम्
स्थूलजङ्घ उदीच्यां च शमयेच्छमिनामघम् ।

पेश्यामैशीं पुरीं पायात्समङ्गलविनायकः ॥ १११ ॥

यमतीर्थादुदीच्यां च पूज्योमित्रविनायकः । सप्तमावरणे येषतांश्चवक्ष्येविनायकान्
मोदाद्याः पञ्चविघ्नेशाः षष्ठो ज्ञानविनायकः । सप्तमो द्वारविघ्नेशो महाद्वारपुरश्चरः
अष्टमः सर्वकष्टीघानचिमुक्तविनायकः । अचिमुक्ते मम क्षेत्रे हरेत्प्रणतचेतसाम्
षट्पञ्चाशद्गजमुखानेतान्यःसंस्मरिष्यति । दूरदेशान्तरस्थोऽपिसमृतोज्ञानमाप्नुयात्
दृष्टिदस्तुति महापुण्यां षट्पञ्चाशद्गजाननाम् ।

यः पठिष्यति पुण्यात्मा तस्य सिद्धिः पदे पदे ॥ ११६ ॥

इमे गणेश्वराः सर्वैस्मर्तव्यायत्रकुत्रचिन् । महाविपत्समुद्रान्तःपतन्तंपान्तिमानवम्
इति स्तुति महापुण्यां श्रुत्वा चैतान्विनायकान् ।

जानु विघ्नैर्नबाध्येत पापेभ्योऽपि प्रहीयते ॥ ११८ ॥

इत्युक्तवा देवदेवोऽपि महोत्सवितमानसः ।

कृतामिवेको ब्रह्माद्यैस्तेभ्योदस्वाऽमिबाऽञ्जितम् ॥ ११९ ॥

सम्प्रसाद्य यथाथोमं सर्वाऽनुचितञ्चक्षुरः । अक्षिशद्राजसदनं विभ्वकर्मविनिर्मितम्

स्कन्द उवाच

एवं स्तुतो भगवतादिवदेवेन विघ्नजित् । इत्यञ्च बहुधात्मानं स चकार चिनायकः

एतानि तस्य नामानि दुण्डिराजस्य कुम्भज ! ।

जपित्वा यानि मनुजो लप्स्यते निजवाञ्छितम् ॥ १२२ ॥

अन्येऽपिस्तत्रचैभेदात्स्यदुण्डेर्गणेशितुः । भक्तैःसमर्चिताभक्तयाह्यसंख्याताःसहस्रशः
भगीरथगणाध्यक्षो हरिश्चन्द्रचिनायकः । कपर्दाख्यो गणपतिस्तथाबिन्दुचिनायकः

इत्याद्यास्तत्र विघ्नेशाः प्रतिभक्तप्रतिष्ठिताः ।

तेषामप्यर्चनात्पुंसां जायन्ते सर्वसम्पदः ॥ १२५ ॥

श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यंनरःश्रद्धासमन्वितः । सर्वविघ्नान्समुत्सृज्यलभतेषाञ्छितम्पदम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

उत्तरार्धे दुण्डिचिनायकप्रादुर्भावोनामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दिवोदासनिर्वाणप्राप्तिवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

किं चकार हरःस्कन्द!मन्दराद्रिगतस्तदा । विलम्बमालम्बयति तस्मिन्नपि गजानने

स्कन्द उवाच

ऋणवगस्त्य! कथाःपुण्यां कथ्यमानां मयाधुना

घाराणस्येकविषयामशेषाघौघनाशिनीम् ॥ २ ॥

करीन्द्रचन्दने तत्र क्षेत्रवर्येऽविमुक्तके । विलम्बभाजि व्यक्षेण प्रीक्षि क्षिप्रमधोक्षजः

प्रोक्तोऽथ बहुशश्चेति बहुमानपुरःसरम् ।

तथा त्वमपि माकार्षीर्यथाप्राक्प्रस्थितैः कृतम् ॥ ४ ॥

धीविष्णुरुवाच

उद्यमः प्राणिभिः कार्यो यथाबुद्धिबलाबलम् । परं फलन्तिकर्माणि त्वदर्धानानिशङ्करे !

अचेतनानि कर्माणि स्वतन्त्राः प्राणिनोऽपि न ।

त्वञ्च तत्कर्मणां साक्षी त्वञ्च प्राणिप्रवर्तकः ॥ ६ ॥

किन्तु त्वत्पादमकानां तादृशजायते मतिः । यया त्वमेव कथयेः साध्वनेन त्वनुष्ठितम्

यत्किञ्चिदिह वै कर्म स्तोत्रमवास्तोकमेव वा ।

तत्सिद्धयत्येष गिरिश! त्वत्पादस्मृत्यनुष्ठितम् ॥ ८ ॥

सुसिद्धमपि वै कार्यं सुबुद्ध्याऽपि स्वनुष्ठितम् ।

अत्वत्पादस्मृतिकृतं विनश्यत्येव तत्क्षणात् ॥ ९ ॥

शम्भुना प्रेषितेनाद्य सूद्यमः क्रियते मया ।

त्वद्वक्तिसम्पत्तिमता सम्पन्नप्राय एव एव नः ॥ १० ॥

अतीव यदसाध्यं स्यात्स्वबुद्धिबलपौरुषैः ।

तत्कार्यं हि सुसिद्धं स्यात्स्वदनुष्ठ्यानतः शिव ! ॥ ११ ॥

यान्ति प्रदक्षिणीकृत्यै भवन्तं भवं विभो ! भवन्ति तेषां कार्याणि पुरोभूतानि ते भयात्

जातं विद्धिमहादेव कार्यमेतत्सुनिश्चितम् । काशीप्रावेशिकश्चिन्त्यः शुभलग्नोदयः परम्

अथवा काशिसम्प्राप्तौ न चिन्त्यहिशुभाशुभम् । तदेव हि शुभः कालो यदेवाप्येत काशिका

शम्भुम्प्रदक्षिणीकृत्यप्रणम्य च पुनः पुनः । प्रतस्थेऽथ सलक्ष्मीको मन्दराद्रुडध्वजः

दृशोरतिथितां नीत्वा विष्णुर्वाराणसी ततः ।

पुण्डरीकाक्ष इत्याख्या सफलीकृतवान्मुदा ॥ १६ ॥

गङ्गावरणयोर्विष्णुः सम्भेदेऽस्वच्छमानसः । प्रक्षाल्य पाणिचरणसञ्चलैः स्नातवानथ

तदा प्रभृति तत्तीर्थं पादोदकमितीरितम् । पादौ यदादौ शुभदौ क्षालितौ पीतवाससा

तत्र पादोदके तीर्थे ये स्नास्यन्तीह मानवाः । तेषां विनश्यति क्षिप्रं पापं सप्तमघाजितम्

तत्र भ्रातृनरः कृत्वा दस्वाच्चैव तिलोदकम् । सप्तसप्ततथा सप्तस्ववंश्यांस्तारयिष्यति

गयायां यादृशी तृमिलंभ्यते प्रपितामहैः । तीर्थे पादोदके काश्यां तादृशी लभ्यते ध्रुवम्

कृतपादोदकस्नानं पीतपादोदकोदकम् । दक्षपादोदपोनीयं नरं न निरयः स्पृशेत्
विष्णुपादोदके तीर्थे प्राश्य पादोदकं सकृत् ।

जातुचिजननीस्तन्यं न पिबेदिति निश्चितम् ॥ २३ ॥

सन्नकशालग्रामस्यशङ्खे ननस्नापितस्यच । अद्विःपादोदकस्याम्बुपित्रभ्रमृततां व्रजेत्
विष्णुपादोदकेतीर्थेविष्णुपादोदकंपिबेत् । यदितत्सुधया किं नुबहुकालीनया तथा
काश्याम्पादोदकेतीर्थेयैःकृतानोदकक्रियाः । जन्मैवविफलं तेषांजलशुद्धशुदसधियाम्

कृतनित्यक्रियो विष्णुः सलक्ष्मीकः सकाश्यपिः ।

उपसंहृत्य ताम्मूर्तिं त्रैलोक्यव्यापिनीं तथा ॥ २७ ॥

विधायदार्पदीमूर्तिं स्वहस्तेनादिकेशवः । स्वयंसम्पूजयामाससर्वसिद्धिसमृद्धिदाम्
आदिकेशवनाम्नीतांश्रीमूर्तिंपारमेश्वरीम् । सम्पूज्यमर्त्योच्चैकुण्ठमन्यतेस्वगृहाङ्गणम्
श्वेतद्वीपइतिख्यातं तत्स्थानंकाशिलीमनि । श्वेतद्वीपेवसन्त्येव नरास्तन्मूर्तिसेवकाः
क्षीराद्विसञ्ज्ञं तत्रान्यत्तीर्थं केशवतोऽग्रतः । कृतोदकक्रियस्तत्रवसेत्क्षीराब्धिरोधसि
तत्राद्दंनरः कृत्वागां दत्वाद्यपयस्विनीम् । यथोक्तसर्वाभरणांक्षीरोदेषासयेत्पितृन्
एकोत्तरशतं वश्याभयेत्पायसकर्दमम् । क्षीरोद्रोधः पुण्यात्मा भक्त्या तत्रैकधेनुदः
बद्धाश्चनंचिकीर्त्स्वाश्चद्रयात्र सदक्षिणाः । शय्योत्तरांश्चप्रत्येकंपितृंस्तत्रसुधासयेत्
क्षीरोदाद्क्षिणे तत्र शङ्खतीर्थमनुत्तमम् । तत्रापिसन्तर्प्यंपितृन् विष्णुलोके महीयते
तद्याभ्याञ्चकनीर्थं नपितृणामपिदुर्लभम् । तत्रापिविहितश्चाद्धो मुच्यते पैतृकादृणात्
तत्सन्निधौ गदातीर्थं विश्वगाधिनिर्बर्हणम् ।

तारणञ्च पितृणां वै कारणं श्वेनसां क्षये ॥ ३७ ॥

पञ्चतीर्थं तदग्रे तुतत्रस्नान्चा नरोत्तमः । पितृन्सन्तर्प्यं विधिना पश्यन् नैव ह्यीयते
तत्रैव च महालक्ष्म्यास्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

स्वयं यत्र महालक्ष्मीः स्नाता त्रैलोक्यहर्षदा ॥ ३६ ॥

तत्रतीर्थं कृतस्नानोदस्वारत्नानिकाञ्जनम् । पट्टाम्बराणिचिप्रेभ्योनलक्ष्म्यापरिहीयते
यत्रयत्रहिजायेततत्रतत्रसमृद्धिमान् । पितरोपिहिसश्रीकास्तस्यस्युस्तीर्थंगौरवात्

तत्रास्ति हि महालक्ष्म्या मूर्तिल्लौक्यवन्दिता ।

ताम्प्रणम्य नरो भक्त्या न रोगी जायते क्वचित् ॥ ४२ ॥

नभस्पवहुलाष्टम्यांकृत्वाजागरणंनिशि । समर्च्य च महालक्ष्मीं व्रती व्रतफलं लभेत्
ताक्ष्यतीर्थं हि तत्रास्ति ताक्ष्यकेशवसन्निधौ ।

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या संसाराहि न पश्यति ॥ ४४ ॥

तदग्रे नारदं तीर्थं महापातकनाशनम् । ब्रह्मविद्योपदेशञ्च प्राप्तवान्यत्र नारदः ॥ ४५ ॥
तत्रस्नातो नरः सम्यग्ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात् । केशवात्नेन तत्रोक्तः काश्यां नारदकेशवः
अर्घयित्वा नरो भक्त्या देवं नारदकेशवम् । जनन्या जठरं पीठमध्याम्ने न कदाचन
प्रह्लादतीर्थं तस्याग्रे यत्र प्रह्लादकेशवः । तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा विष्णुलोके महीयते
आम्बरीषमहातीर्थमघघ्नन्तस्य सन्निधौ । तत्रौदकीक्रियां कुर्वन्निष्कालुष्यं लभेन्नरः
आदित्यकेशवः पूज्य आदिकेशवपूर्वतः । तस्य संदर्शनादेव मुह्यते चोद्यपातकैः
दत्तात्रेयेश्वरं तीर्थं तत्रैवादिगदाधरः । पितृन्सन्तर्प्य तत्रैव ज्ञानयोगमवाप्नुयात्
भृगुकेशवपूर्वेण तीर्थं च भार्गवं परम् । तत्रस्नातो नरः प्राहो भवेद्भार्गववन्सुधीः
तत्रवामनतीर्थं च प्राच्यां वामनकेशवात् । पूजयित्वा च तं विष्णु वसेद्दामनसन्निधौ
नरनारायणं तीर्थं नरनारायणात्पुरः । तत्र तीर्थे कृतस्नानो नरो नारायणो भवेत्
यज्ञवाराहतीर्थं च तदग्रे पापनाशनम् । प्रतिमज्जनतस्तत्र राजस्यक्रतोः फलम्
चिदारनारसिंहाख्यं तत्रतीर्थं सुनिर्मलम् । स्नातो चिदारवैत्तत्र पापं जन्मशताजितम्
गोपिगोविन्दतीर्थं च गोपिगोविन्दपूर्वतः ।

स्नात्वा तत्र समभ्यर्च्य विष्णुं विष्णुप्रियो भवेत् ॥ ५७ ॥

तीर्थं लक्ष्मीनृसिंहाख्यं गोपिगोविन्ददक्षिणे ।

न लक्ष्म्या त्यज्यते कापि तत्तीर्थपरिमज्जनात् ॥ ५८ ॥

तदग्रे शेषतीर्थं च शेषमाधवसन्निधौ । तर्पितातां पितृणां च यत्र तृप्तिर्नशिष्यते
शङ्कामाधवतीर्थं च तदवाच्यां सुनिर्मलम् । कृतोदकोत्तरस्तत्र भवेत्पापोऽपि निर्मलः
तदग्रे च हयग्रीवं तीर्थं परमपावनम् । तत्र स्नात्वा हयग्रीवं केशवं परिपूज्य च

पिण्डं च तत्र निर्वाप्य ह्यग्रीहस्यसन्निधौ । हायग्रीवीश्रियम्प्राप्यसमुच्येत सपूर्वजः

स्कन्द उवाच

प्रसङ्गतोमयैतानितीर्थानि कथितानिते । भूमौ तिलान्तरायां यत्तत्र तीर्थान्यनेकशः
उद्दिष्टाना तु तीर्थानामेतेषां कलशोद्भवः । नाममात्रमपि ध्रुत्वा निष्पापांजायते नरः
इदानींप्रस्तुतं विप्रशृणुष्वश्यामि तेऽप्रतः । वैकुण्ठनाथां यच्चक्रे शङ्खचक्रगदाधरः
तस्यामूर्त्तौसमावेश्यकेशध्यामथ केशवः । शम्भोः कार्यैकृतमनांशंशांशाशेन निर्गतः

अगस्त्य उवाच

अशांशांशेननिश्चक्रे कुतोभो!चक्रपाणिना । कनिर्गतं च हरिणाप्राप्यकाशीं पडानन!

स्कन्द उवाच

सामस्त्येन यदर्थं न निर्गतं विष्णुना मुने !। ब्रुवे तत्कारणमितिक्षणमात्रं निशामय
सम्प्राप्य पुण्यसम्भारः प्राज्ञोवाराणसी पुरीम् । नत्यजेत्सर्वभावेनमहालाभैरपीरितः

अनः प्रतिकृतिः स्वीया तत्र काश्या मुरारिणा ।

प्रतितस्थे कलशज! स्तोकाशेन च निर्गतम् ॥ ७० ॥

किञ्चित्काश्या उदीच्याञ्च गत्वा देवेन चक्रिणा ।

स्वस्थित्य कल्पितं स्थानं धर्मक्षेत्रमितीरितम् ॥ ७१ ॥

ततस्तु सौगतंरूपं शिश्रायश्रीपतिःस्वयम् । अतीवसुन्दरतरं त्रैलोक्यस्यापिमोहनम्

श्रीः परिव्राजिका जाता नितरां सुभगाकृतिः ।

यामालोक्य जगत्सर्वं चित्रन्यस्तमिवास्थितम् ॥ ७३ ॥

विश्वयोनि जगद्धात्रीं न्यस्तहस्ताग्रपुस्तकाम् ।

गरुत्मानपि तच्छिष्यो जातो लोकोत्तराकृतिः ॥ ७४ ॥

अत्यद्भुतमहाप्राज्ञो निःस्पृहः सर्ववस्तुषु । गुरुशुश्रूषणपरो न्यस्तहस्ताग्रपुस्तकः

अपृच्छपरमं धर्मं संसारविनिमोचकम् । आचार्यवर्यसौम्यास्यंप्रसन्नात्मानमुत्तमम्

धर्मार्थशास्त्रकुशलं ज्ञानविज्ञानशालिनम् । सुस्वरं सुपदं यत्किमुस्तिग्धमृदुभाषिणम्

स्तम्भनोच्छाटनाकृष्टिबशीकर्मादिकोविदम् ।

व्याख्यानसमयाकृष्टपक्षिरोमाञ्चकारिणम् ॥ ७८ ॥

पीततद्गीतपीयूषमृगयूगैरुपासितम् । महाम्बोदभराकान्तघातचाञ्चल्यहारिणम् ॥
बृह्णैरपि पतत्पुष्पच्छलैःकृतसमर्चनम् । ततः प्रोवाचपुण्यात्प्रापुण्यकीर्तिःससौगतः
शिष्यं चिनयकीर्तिं तं महाचिनयभूषणम् ॥ ८१ ॥

पुण्यकीर्तिरुवाच

त्वंया चिनयकीर्त्तैर्यो धर्मः कृष्टः सनातनः । वक्ष्याम्यहमशेषेणशृणुष्व त्वं महामते!
अनादिसिद्धः संसारः कर्तुं कर्मविचर्जितः । स्वयं प्रादुर्भवेदेष स्वयमेव चिलीयते
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यावद्वेहनिबन्धनम् । आत्मैवैकेश्वरस्तत्र नद्वितीयस्तदीशिता
यद्ब्रह्मविष्णुरुद्राद्यास्तथाख्या देहिनामिमाः ।

आख्या यथाऽस्मदादीनां पुण्यकीर्त्यादिरुच्यते ॥ ८५ ॥

देहोयथाऽस्मदादीनां स्वकालेन चिलीयते ।

ब्रह्मादिमशकान्तानां स्वकालाह्णीयते तथा ॥ ८६ ॥

चिन्वायंमाणेदेहेऽस्मिन्नकिञ्चिदधिकं कश्चित् । आहारोमैथुननिद्राभयंसर्वत्रयत्समम्
निजाहारपरीमाणं प्राप्यसर्वोपि देहभृत् । सदृशीमेव संतुप्तिं प्राप्नुयान्नाधिकेतराम्
यथा वितृषिताः स्याम पीत्वा पेयं मुदाचयम् ।

तृषितास्तु तथाऽस्यैपि न विशेषोऽल्पकोधिकः ॥ ८९ ॥

सन्तु नार्यः सहस्राणि रूपलावण्यभूमयः । परश्विभुवने कालेहोकेवैहोपयुज्यते
अम्बाःपरशताःसन्तुसन्त्वनेकेऽप्यनेकपाः । अश्विरोहेतथाप्येकोनद्वितीयस्तथात्मनः
पर्यङ्कशायिनां स्वापे सुखं यदुपपद्यते । तदेव सौख्यंनिद्रायामिह भूशायिनामपि
यथैव मरणान्नीतिरस्मदादिषुष्मताम् । ब्रह्मादिकीटकान्तानां तथा मरणतो भयम्
सर्वे तनुभृतस्तुल्या यदि बुद्ध्या चिन्वार्थे ।

इदं निश्चित्य केनाऽपि नो हिंस्यः कोऽपि कुत्रचित् ॥ ९४ ॥

धर्मा जीवदयानुल्लयो न कापि जगतीतले । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकार्याजीवदयानृभिः
एकस्मिन् रक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत् ।

घातिते घातितं तद्वत्तस्माद्रक्षेन्न आतयेत् ॥ ६६ ॥

अहिंसापरमो धर्म इहोक्तः पूर्वसूरिभिः । तस्मान्न हिंसा कर्तव्यानरैर्नरकमीरुभिः
नहिंसासद्रुशम्पापं त्रैलोक्ये सचराचरे । हिंसको नरकगच्छेत्स्वर्गगच्छेदहिंसकः
सन्ति दानान्यनेकानि किं तैस्तुच्छफलप्रदैः । अभीतिदानसद्रुशं परमेकमपीहन
इह चत्वारि दानानि प्रोक्तानि परमर्षिभिः । विचार्य नानाशास्त्राणि शर्मणेऽत्रपरत्रय
भीतेभ्यश्चाभयं देयं व्याधितेभ्यस्तथौषधम् । देयाविद्याधिनां विद्यादेयमलंशुघातुरे
अविचिन्त्यप्रभावं हिमणिमन्त्रौषधीबलम् । तदभ्यस्यप्रयत्नेनानाथो पार्जननायकै
अर्थानुपाज्यं बहुशो द्वादशायतनानि वै । परितः परिपूज्यानि किमन्यैरिह पूजितैः
पञ्च कर्मन्द्रियाण्येव पञ्चबुद्धान्द्रियाणि च ।

मनोबुद्धिरिह प्रोक्तं द्वादशायतनं शुभम् ॥ १०४ ॥

इहैव स्वर्गनरकौ प्राणिनानान्यतः क्वचित् । सुखंस्वर्गः समाख्यातो दुःखंनरकएव हि
सुखेषु भुज्यमानेषु यत्स्याद्देहविसर्जनम् । अयमेव परोमोक्षो न मोक्षोऽन्यः क्वचित्पुनः
वासनासहितक्लेशसमुच्छेदे सति भ्रवम् । विज्ञानोपरमोमोक्षो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः
प्रामाणिकी धृतिरियमप्रोच्यते वेदवादिभिः ।

न हिंस्यात्सर्वभूतानि नान्या हिंसा प्रवर्तिका ॥ १०८ ॥

अग्नीषोमीयमिति या भ्रामिका साऽसतामिह ।

न सा प्रमाणं ज्ञातृणाम्भवालम्भनकारिका ॥ १०९ ॥

वृक्षाशिञ्जित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।

दग्ध्वा बह्वी तिलाज्यादिखिन्नं स्वर्गोऽभिलष्यते ॥ ११० ॥

इत्येवं धर्मजिज्ञासाभ्युपयकीर्तौ प्रकुर्वन्ति । पारम्पर्येण तच्छ्रुत्वापौरायात्राम्प्रचक्रिरे
परिव्राजिकयाप्येवं समारुष्टाः पुराङ्गनाः । तथाविज्ञानकौमुद्यासर्वविद्याविदग्धया
ततस्तासांपुरस्तात्साबौद्धधर्मानवीचदत् । दृष्टार्थप्रत्ययकरान्देहसौख्यैकसाधनान्

विज्ञानकौमुद्याच्च

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं श्रुत्यैवं यन्निगद्यते । तस्यैवेह मन्तव्यं मिथ्यानानात्वकल्पना

यावत्स्वस्थमिदं वर्धम् यावन्नेन्द्रियविकलवः ।

यावज्जरा च हरेऽस्ति तावत्सौख्यं प्रसाधयेत् ॥ ११५ ॥

अस्वास्थ्येन्द्रियवैकल्येवार्धकेतुकुनःसुखम् । शरीरमपिदातध्यमधिभ्योतःसुखेऽसुभिः
यावमानमनोवृत्तिप्रीणने यस्य नोजनिः । तेन भूर्भारवत्येषा समुद्रागद्रुमैर्नहि
स्त्वरो गत्वरो देहः सञ्चयाःसपरिक्षयाः । इति विज्ञायविज्ञातादेहेसौख्यंप्रसाधयेत्
भवायसक्रीमाणांच प्रान्ते भोज्यमिदं वपुः । अस्मान्तंतच्छरीरं च वेदे सत्यंप्रपद्यते
मुधा जातिविकल्पोऽयं लोकेषु परिकल्प्यते ।

मानुष्ये सति सामान्ये कोऽधमः कोऽध सौत्तमः ॥ १२० ॥

ब्रह्मादिसृष्टिरेपेति प्रोच्यते वृद्धपूरुषैः । तस्य स्रष्टुः सुतौ दक्षमरीची चेति विश्रुतौ
मारीचिनाकश्यपेनदक्षकन्याः सुलोचनाः । धर्मेण किलमार्गेण परिणीतास्त्रयोदश
अपीदानीन्तनेर्मर्त्यैरल्पबुद्धिपराक्रमैः । अयंगम्यस्त्वगम्योऽयं विचारः क्रियतेमुधा
मुखबाहूरुपजातश्चातुर्वर्ण्यमिहोदितम् । कल्पनेयं कृता पूर्वैर्नघटेत विचारतः
एकस्याञ्च तनौ जाता एकस्माद्यदि वा कश्चित् ।

चत्वारस्तनयास्तत्किं भिन्नवर्णत्वमाप्नुयुः ॥ १२५ ॥

वर्णावर्णविवेकोयं तस्मान्नप्रतिभासने । अतोमेदोनमन्तव्योमानुष्ये केनचित्कचित्
विज्ञानकौमुदीवाणीमित्याकर्ण्य पुराङ्गनाः । भर्त्सुशुभ्रूणवती विजहुर्मतिमुत्तमाम्
अभ्यस्याकर्षणीं विद्यां वशीकृतिमतीमपि । पुरुषाःसफलीचक्रुः परदारेषु मोहिताः
अन्तःपुरश्चरानायंस्तथाराजकुमारकाः । पौराः पुराङ्गनाश्चापिसर्वताभ्यांविमोहिताः

बन्ध्यानाञ्चापि बन्ध्यात्वं सा परिव्राजिकाऽहरत् ।

तेस्तैश्च कार्मणोपायैरसौभाग्यवतीः स्त्रियः ॥ १३० ॥

सौभाग्यभाग्यसम्पन्ना व्यधाद्विज्ञानकौमुदी ।

कस्यैचिद्वज्जुनं दसं कस्यैचित्तिलकौषधम् ॥ १३१ ॥

वशीकरणमन्त्रैश्च तथा बह्व्योपदीक्षिताः ।

मन्त्राञ्जपेयुः काश्चिच्च यन्त्राप्यन्यालिखन्ति च ॥ १३२ ॥

अष्टपञ्चाशत्सप्तमोऽध्यायः] * पुण्यकीर्तिप्रतिदिवोदासेनस्वकर्तव्यवर्णनम् * ४७७

काश्चिज्जुह्वतिकुण्डानौनानाद्रव्याणिनिश्चलाः । एवंसर्वेषुर्षोरेषुनिजधर्मेषुसर्वथा
पराङ्मुखेषु जातेषु प्रोल्लास वृषेतरः ॥ १३३ ॥

सिद्धयोऽकृष्टपर्याया नष्टा ऽनःप्रवेशनात् ।

आसीत्कुण्ठितसामर्थ्यो नृपोऽपि स मनाङ्गनाक् ॥ १३४ ॥

दूरस्थितोपि विघ्नेशो नृपनिर्विण्णमानसम् । अकारराज्यकरणेदुण्ढिराजो रिपुञ्जयम्
अजीगणद्विवोदासो ह्यष्टादशदिनावधिम् । कदागन्तासर्वेषु योमांसमुपदेश्यति
इत्थमष्टादशे प्राप्ते दिवसे दिवसेश्वरे । प्राप्ते मध्यनभोभागं द्वारग्रामो द्विजोत्तमः
स एव पुण्यकीर्त्याख्यो धर्मक्षेत्रादधोक्षजः । द्विजवेषं समालम्ब्य समायातो नृपान्तिकम्
द्वित्रैः पवित्रैर्बहुधाजयजीवेतिषादिभिः । समेतः स इतो विप्रो मूर्तिमान्निव पावकः
विलोक्य तं समायान्तं दूरादुत्कण्ठितो नृपः । मेने भवेद्गुरुर्य युक्तो मदुपदेशे
अभिगम्य च तं राजा प्रणम्य च पुनः पुनः । गृहीतस्वस्तिवचनो निनायान्तःपुरं द्विजम्
मधुपर्केण विधिना तं सम्पूज्य जनाधिपः । व्यपेताध्वश्रमं स्वस्थम् प्रोल्लसन्मुखपङ्कजम्
निवेद्य स्वाद्यवस्तुनिहतकृत्यक्रियाविधिम् । परितुमं सुखासीनं पप्रच्छ ब्राह्मणं नृपः

राजोवाच

खिन्नोऽस्मि विप्रवर्याहं राज्यभारं समुद्रहन् । खेत्रो नास्त्येव हि परं वराग्यमिव जायते
किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे निवृत्तिर्भवेत् । पश्वद्दयैव यातेति मम चिन्तयतो द्विज!
असीमसुखसन्तानं भुक्तं राज्यं मया द्विज ! । परिशीणविपक्षं च यक्षैश्चर्यमिव स्फुटम्
स्वसामर्थ्यादहं जातः पर्जन्यात् न्यनिलात्मकः ।

प्रजाश्च पालिताः सम्यक् पुत्रा इव निर्जोरसाः ॥ १४७ ॥

तर्पिताश्चापि भूदेवावसुभिश्च दिनेदिने । एकमेवापराद्धं च मया राज्यं प्रशासता
देवास्तृणीकृताः सर्वे स्वतपोबलदर्यतः । तच्च प्रजोपकारार्थं न स्वार्थं भवताशये
अधुना गुरुरेधि त्वं मम भाग्योदयागतः । राज्यं तु प्रकरोम्येवं न्यक्कृतान्तकसाध्वसम्
अकालकालकलनं मम राज्ये न कुत्रचित् । जराव्याधिदरिद्रेभ्यो मम राज्येपि नो मयम्
कोपि धर्मतरां वृश्चिनश्रेयेनमपि शासति । धर्मोदयाजनाः सर्वे सर्वे सन्ति सुखोदयाः

सद्विद्याव्यसनाः सर्वे सर्वे सन्मार्गश्चक्षुराः ।

अथवा यदि कल्पान्तं तिष्ठेदायुस्ततोऽपि किम् ॥ १५३ ॥

सर्वेभोग्यास्तथाभान्ति यथा सर्चितसर्वणम् । किपिष्टपेषणेनाऽत्र राजयेन द्विजपुङ्गव !
किमप्युपदिश प्राह ! गर्भवासोपशान्तये । अथवा त्वां प्रपन्नस्य ममकिञ्चिन्तनैरिमैः
यदेषकथयस्यद्यतत्करिष्याम्यसंशयम् । त्वद्विलोकनमात्रेण सर्व एष मनोरथाः
अन्येषामपि जायन्ते जातप्राया ममैव तु । जाने देवचिरोधेन के के न प्रलयंगताः
अवन्तोऽपिप्रजाः स्वधीयानिजधर्ममनुव्रताः । पुरा ते त्रिपुराःशूराःशिवभक्तिपराअपि
धरामयं रथं कृत्वा धनुः कृत्वा हिमाचलम् ।

वेदांश्च वाजिनः कृत्वा गुणं कृत्वा च वासुकिम् ॥ १५६ ॥

विरिञ्चिं सारथिं कृत्वा कृत्वा विष्णुञ्च पत्त्रिणम् ।

रथचक्रे पुष्पवन्तौ प्रतोदं प्रणवात्मकम् ॥ १६० ॥

ताराग्रहमयान्कीलान् वरुण्यगगनात्मकम् । ध्वजदण्डं सुमेरुञ्च प्रांशुकल्पतरुध्वजम्
योक्त्राणि सञ्चुःश्रवसश्छन्दांस्यङ्गानि रक्षकान् ।

भल्लं कालाग्निरुद्राख्यं पुङ्गीकृत्य प्रभञ्जनम् ॥ १६२ ॥

हरेषुकेषुपातेन लीलया भस्मसात्कृताः । बलिर्यश्चकृतांश्चेष्टः कृत्वा कपटसर्वताम्
पातल्लंगमितः पूर्वं हरिणाचिक्रमैस्त्रिभिः । वृत्तवानपिचै वृत्रः सुत्राम्णाविनिसृष्टितः
दधीचिरपिष्विन्दोर्देवैरस्थिकृते हतः । पूर्ववैरमनुस्मृत्य जयार्थं युध्यतो हरेः

कुशास्त्रैर्विजितस्याञ्जी तेनैव च दधीचिना ॥ १६५ ॥

शिवभक्तस्यबाणस्यदोःसहस्रं पुराहरिः । चिच्छेदसंख्ये किन्तेनापराडं साधुवर्तिना
तस्माद्विरोधो भद्राय नभवेद्वैवर्तैः सह । देवेभ्योमद्भयं नास्ति सत्पथीनस्यैव मनाक्
यज्ञैर्देवत्वमापन्ना गीर्वाणा वासवाद्ययः ।

यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च तेभ्योऽप्याचिक्वमस्ति मे ॥ १६८ ॥

अस्तुन्यूनत्वमात्रिण्यं किमनेनाधुनामम । इन्द्रियोपरमः प्राप्तः सुखदस्तव दर्शनात्
इदानीं दिश मे तात कर्मनिर्मूलनक्षमम् । उपायं त्वमुपायाह येननिवृत्तिमाप्नुयाम्

स्कन्द उवाच

गणेशवेशशशतो राज्ञेतियदुद्धीरितम् । तदाकर्ण्य हृषीकेशः प्राह ब्राह्मणवेशभृत्
श्रीविष्णुरुवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ! नृपखूडामणेऽनघ !। मया यदुपदेष्टव्यं तस्वयैव निरूपितम्
त्वमादावेवनिर्वृत्तः परम्मेमानदोह्यसि । क्षालितेन्द्रियपङ्कश्चसुतपः स्वच्छवारिभिः
यदुक्तं भवता भूप! तत्सर्वं तध्यमेव हि । तवशक्तिञ्च जानामि विरक्तिं च महामते
न भवत्सद्रुशोराजा भुविभूतो भविष्यति । राज्यम्भोक्तुं त्वया ज्ञायि युक्तुं यत्समुक्षसि
विरोधेऽपि हि देवानां त्वया नापकृतं भवेत् ।

धर्मतरप्रवेशश्च तव राष्ट्रेऽपि नोऽभवत् ॥ १७६ ॥

प्रवर्तिताभिर्भवता प्रजाभिर्यदनुष्ठितम् । धर्मं धर्मं स्वधर्मञ्च तेन तृप्तादिबौकसः
एक एव हि ते दोषो-इदि मे प्रतिभासते । काश्याविश्वेश्वरोदूरं यत्कृतो भवता किल
महान्तमपराधं ते जाने भूजानिसत्तम !। इमं तत्पापशान्त्यै च वरुण्युपायमहत्तरम्
सङ्ख्यास्तियावती देहे देहि नोरोमसम्भवा । तावन्तोऽप्यपराधाद्यैयान्तिलिङ्गप्रतिष्ठया
एकं प्रतिष्ठितं येन लिङ्गमत्रेशमक्तिनः । तेनात्मना समं विश्वं जगदेतत्प्रतिष्ठितम्
रत्नाकरे रत्नसङ्ख्या सङ्ख्याविद्विरपीष्यते ।

लिङ्गप्रतिष्ठा पुण्यस्य न तु सङ्ख्येति लिख्यते ॥ १८२ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुरु लिङ्गप्रतिष्ठितिम् । तया लिङ्गप्रतिष्ठित्या कृतकृत्यो भविष्यसि
इत्युक्त्वा ब्राह्मणो दध्यौ क्षणं निश्चलमानसः ।

उवाच च प्रहृष्टास्यो राजानं पाणिना स्पृशन् ॥ १८४ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

अन्यच्च किञ्चित्पश्यामि भूपाल! ज्ञानचक्षुषा । शृणुष्व्वाचहितो भूत्वा तदपि प्राज्ञसत्तम
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि मान्योऽसि महतामपि । जप्यञ्जतवनामेहप्रातःशुभफलेऽसुना
दिवोदासत्त्वदभ्याशादपि धन्यतराद्ययम् । तेऽपि धन्यतरामर्त्यैरेत्थदाख्याम्प्रचक्षते
स्मार्यं स्मार्यञ्जगौ विप्रो मौलिमान्दोलयन्मुहुः । हृद्येव बहुशोहृष्टः सम्प्रहृष्टतनूरुहः

अहोभाग्योदयश्चास्य अहो नैर्मल्यमस्य वै ।

यदेनमनिशं ध्यायेद्व्यथो यो विश्वेभ्योऽखिलैः ॥ १८६ ॥

अहो उदर्क एतस्य न केश्चिन्प्रतिपद्यते । अस्माकमपि यदुदूरमदवीयस्तदस्ययत्
हृद्यालोच्येति विप्रोऽथ वर्णयित्वा क्षितीश्वरम् ।

आविश्वकार तत्सर्वं यत्समाधावलोकयत् ॥ १८७ ॥

ब्राह्मण उवाच

राजस्तवाद्यफलितोमनोरथमहाद्रुमः । अनेननैव शरीरेण त्वंगन्तामि परम्पदम्
यथा विश्वेश्वरो नित्यं त्वामेव हृदि शीलयेत् ।

तथाऽस्मदादीनपि न द्विजांसनत्पादलोचनान् ॥ १८८ ॥

कृतलिङ्गप्रतिष्ठन्वां सप्तमेहाद्यवासरान् । दिव्यं विमानमागत्य नेतुमेष्यतिशाम्भवम्
राजंस्त्वं वेत्सि कस्यार्थविपाकःसुकृतस्य ते ।

वाराणस्याः पुरः सम्यक् सेवनादित्यवैभ्यहम् ॥ १८९ ॥

एकमप्यत्रयःपायाद्वाराणस्यांस्थितञ्जनम् । तस्याप्येवंविपाकोस्तिदेहान्नेराजससप्त
इति श्रुत्वा स राजयिद्विषोदासः प्रतापवान् ।

ब्राह्मणाय सशिष्याय प्रादात्प्रीतोऽभिवाञ्छितम् ॥ १९० ॥

अथ सम्प्रीणितं विप्रंप्रणम्यन्मुहुर्मुहुः । प्रोवाचराजासंहृष्टस्तारितोस्मिभवार्षाणात्
ब्राह्मणोऽपि प्रहृष्टात्मापरिपूर्णमनोरथः । समापृच्छथ महीनाथंस्वेष्टंदेशंजगामह
विलोक्यकाशींपरितोमायाद्विजवपुर्हरिः । भूयोभूयोविचार्यापिकिमत्रातीवपावनम्
स्थानं यच्चाहमध्यास्यनिजमक्तानशेषतः । नेष्यामिपरमंधामविश्वेशानुग्रहात्परात्
सम्प्रधार्येतिभगवान् दृष्ट्वापाञ्चनदंहदम् । तत्रकृत्वाविधिस्तानं ततस्तत्रैवसंस्थितः

प्रतीक्षमाणो लक्ष्मीशो मङ्गुञ्ज्यक्षसमागमम् ।

ताक्ष्यंस्प्रस्थापयाञ्चको राजवृत्तान्तवेदिनम् ॥ २०३ ॥

द्विषोदासोऽपि राजेन्द्रो! विप्रेन्द्रं परिवर्णयन् ।

आहूय प्रकृतीः सर्वाः सामात्यान्मण्डलेश्वरान् ॥ २०४ ॥

अष्टपञ्चाशत्सप्तोऽध्यायः] * दिवोदासेश्वरलिङ्गप्रतिष्ठापनवर्णनम् *

४११

अध्यक्षानपिसर्वाश्चकोशाश्वेभादिदेशितान् । पुत्रान्पञ्चशतंप्राग्रथं सुतंबसमरञ्जयम्
पुरोहितं प्रतीहारमृत्विजो गणकान् द्विजान् ।

सामन्तान् राजपुत्राश्च सूपकाराश्चिकित्सकान् ॥ २०६ ॥

वेदेशिकानपि बह्वानाकार्यसमागतान् । सान्तःपुराञ्च महिर्षीवृद्धगोपालबालकान्
सर्वान्प्रोवाच हृष्टात्मा प्रबद्धकरसम्पुटः ।

यथा स ब्राह्मणः प्राह दिनसप्तावधिस्थितिम् ॥ २०८ ॥

आश्चर्यं तेषु शृण्वन्तु विपणवदनेषुच । स्वयं राजगृहं नीत्वा कुमारं समरञ्जयम्
अभियिच्य महाबुद्धिः पौराञ्जानपदानपि । प्रसादीकृत्यपुण्यात्मापुनः काशीमगान् नृपः
आगत्य काशी मेधावी स भूपालो रिपुञ्जयः ।

प्रासादं कारयामास स्वधुन्याः पश्चिमेतटे ॥ २११ ॥

रिपुन्प्रमध्यसमरेयावतीश्रीरपार्जिता । तावत्यासहि भूपालः शिवालयमर्चावलृपत्
भूपाललक्ष्मीरखिला यत्तत्र विनियोजिता ।

भूपालश्रीरिति क्वाता ततः सा भूरभृच्छुभा ॥ २१३ ॥

दिवोदासेश्वरं लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य रिपुञ्जयः । कृतकृत्यमिषात्मानममन्यत नरेश्वरः
अथेकस्मिन् दिने राजा तल्लिङ्गं विधिपूर्वकम् ।

समन्यर्च्यं नमस्कृत्य यावत्सुष्टाव तुष्टिदम् ॥ २१५ ॥

तावन्नभोज्जणादाशु दिव्यं यानमवातरत् । पार्श्वेः परितः कीर्णशूलखट्वाङ्गपाणिभिः
अन्यादिन्याग्निनेजोभिर्मालनेत्रः कपर्दिभिः । शुद्धस्फटिकसङ्काशैरङ्गैर्दीप्तनभोज्जणैः
विभूषाहिफणारत्नज्योतिःपूजितधिग्रहैः । नित्यप्रकाशसन्त्रस्ततमः श्रितशिरोधरैः
चामरन्यग्रहस्ताम्ररुद्रकन्याशतावृतम् । अथ पारिपदैराजा दिव्यस्त्रगनुलेपनैः ॥ २१६

दिव्यं दुःकूलनेपथ्येरलञ्चके मुदान्वितैः । त्रिनेत्रीकृतसद्मालं श्यामीकृतशिरोधरम्
सुगौरीकृतसर्वाङ्गं कपर्दीकृतमौलिजम् । सतुभुंजीकृततनुं भूवणीकृतपन्नगम्
चन्द्रार्थीकृतमूर्धानं निन्युस्तं पार्श्वदा दिवम् ॥ २२२ ॥

तदाप्रभृतितसोर्थं भूपालश्रीरिति श्रुतम् । तत्र श्रद्धादिकंकृतवादानं दस्वास्वशक्तिः

दिवोदासेभ्वरं दृष्ट्वा समभ्यर्च्य च भक्तिः ।

राक्ष्णाख्यायिकां श्रुत्वा न नरो गर्भमाविशेत् ॥ २२४ ॥

आख्यानमेतन्नृपतेर्दिवोदासस्य पावनम् । पठित्वापाठयित्वापि नरःपापैःप्रमुच्यते

दिवोदासशुभाख्यानं श्रुत्वा यः समरंविशेत् ।

न जातु जायते तस्य भयं वैरिकृतं क्वचित् ॥ २२६ ॥

दिवोदासकथा पुण्या महोत्पातनिकृन्तनी । पठनीयाप्रयत्नेन सर्वविघ्नोपशान्तये

नावृष्टिर्जायते तत्र नाकालमरणाद्वयम् । देवोदासी कथा यत्र सर्वपातकनाशिनी

अस्याख्यानस्य पठनाद्विष्णोरिव मनोरथाः ।

सम्पूर्णतां गमिष्यन्ति शम्भोश्चिन्तितकारिणः ॥ २२६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

पूर्वार्धे दिवोदासनिर्वाणप्रामिर्नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

पञ्चनदाविर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

सर्वं हृद्यानन्दं! गौरीबुम्बिनमूर्धज !। तारकान्तक! पञ्चवक्त्र तारिणे भद्रकारिणे
सर्वज्ञाननिधे! तुभ्यंनमः सर्वज्ञसूनवे । सर्वथाजितमाराय कुमाराय महात्मने ॥ २ ॥

कामारिमर्धनारीशंवीक्ष्यकामकृतंकिल । योजिगायकुमारोऽपिमारंतस्मै नमोऽस्तुते
यदुक्तं भवता स्कन्दमायाद्विजवपुर्हरिः । काश्यां पञ्चनदं तीर्थमभ्यासातीवपावनम्
भूर्भुवः स्वः प्रदेशेषु काशीपरमपावनम् । तत्रापि हरिणाऽज्ञायितीर्थं पञ्चनदम्परम्
कुतः पञ्चनदं नामतस्य तीर्थस्यपमुख !। कुतश्च सर्वतीर्थेभ्यस्तदासीत्पावनम्परम्
कथञ्च भगवान्विष्णुरन्तरात्माजगत्पतिः सर्वेषाञ्जगताम्पाताकर्ता हर्ता च लीलया

अरूपोरूपमापन्नोहाव्यक्तोव्यक्ततांगतः । निराकारोपिसाकारोनिष्प्रपञ्चः प्रपञ्चभाक्

अजन्मानेकजन्मा च त्वनामास्फुटनामभृत् ।

निरालम्बोऽखिलालम्बो निर्गुणोऽपि गुणास्पदम् ॥ ६ ॥

अहृषीको हृषीकेशोऽप्यनङ्घ्रिरपिसर्वगः । उपसंहृत्य रूपं स्वसर्वव्यापी जनार्दनः

स्थितः सर्वात्मभावेन तीर्थे पञ्चनदेपरे ।

एतदाख्याहि षड्चक्रं पञ्चचक्राद्यथाश्रुतम् ॥ ११ ॥

स्कन्द उवाच

कथयामि कथामेतानमस्कृत्य महेश्वरम् । सर्वाधौघप्रशमनीं सर्वश्रेयोविधायिनीम्

यथा पञ्चनदं तीर्थं काश्यामग्रधितिमागतम् । यन्नामग्रहणादेव पापं याति सहस्रधा

प्रयागोऽपि च तीर्थेशो यत्र साक्षात्स्वयं स्थितः ।

पापिनाम्पापसङ्घातं प्रसह्य निजतेजसा ॥ १४ ॥

हरन्ति सर्वतीर्थानि प्रयागस्यबलेनहि । तानि सर्वाणि तीर्थानि माघेमकरगेरधौ

प्रत्यब्दं निर्मलानि स्युस्तीर्थराजसमागमात् ।

प्रयागश्चापि तीर्थेन्द्रः सर्वतीर्थापितम्मलम् ॥ १६ ॥

महाधिनां महाघञ्ज हरेत्पाञ्चनदादुबलात् । यं सञ्चयति पापीघमाघर्षतीर्थनायकः

तमेकमज्जनादूर्जे त्यजेत्पञ्चनदे ध्रुवम् ॥ १७ ॥

यथा पञ्चनदोत्पत्तिस्तथा च कथयाम्यहम् । निशामय महाभागमित्रावरुणनन्दन

पुरा वेदशिरा नाम मुनिरासीन्महातपाः । भृगुवंशसमुत्पन्नो मूर्तो वेद इवापरः

तपस्यतस्तस्य मुनेः पुरोद्गमोचरगता । शुचिरप्सरसां श्रेष्ठा रूपलावण्यशालिनी

तस्या दर्शनमात्रेण परिशुद्धममुनेर्मनः । चस्कन्दस मुनिस्पूर्णसाथ मीतावराप्सरा

दूरादेव नमस्कृत्य तमृषिं साभ्यभाषत । अतीववेपमानाङ्गी शुचिस्तच्छापमीतितः

नापराध्नोभ्यहं किञ्चिन्महोदप्रतपसांनिधे ! । क्षन्तव्यमेक्षमाधार क्षमारूपास्तपस्विनः

मुनीनाम्मानसम्प्रायो हृत्पशादपि तन्मृदु । स्त्रियः कठोरहृदयाः स्वरूपेणैव सत्तम

इतिश्रुत्वाघचस्तस्याःशुचैरप्सरसोमुनिः । विवेकसेतुनाऽस्तम्भीन्महारोपनदीरयम्

उवाचप्रसन्नात्माशुभेशुचिरसिधुषम् । नमेऽल्पोपिहिदोषोत्रनतेदोषोस्तिसुन्दरि!
 वह्निस्वरूपाललना नवनीतसमः पुमान् । अनभिज्ञा वदन्तीति विद्यारान्महदन्तरम्
 स्निह्येदुद्भूतसारोऽपि वहेः संस्पर्शमाप्य वै ।

चित्रं स्त्र्याख्या समादानात्पुमान् स्निह्यति दूरतः ॥ २८ ॥

अतःशुचो न भेतव्यं त्वया शुचिमनोगते । अतर्कितोपस्थितयात्वयाच्चस्खलितममया
 स्खलनान्न तथाहानिरकामासपसोमुनेः । यथा क्षणान्धीकरणाद्धानिः को परयादरेः
 कोपात्ततः क्षयंयातिसञ्चितंयत्सुकुच्छितः । यथाभ्रपटलम्प्राप्यप्रकाश पुष्पवन्तयोः
 अनर्थकारिणः क्रोधात्कार्थानाम्परिजृम्भणम् ।

क वा खलजनोत्सेधात्साधनाम्परिवर्धनम् ॥ ३२ ॥

अमर्थं कर्षतिमनो मनोभूसम्भवः कुतः । विधुन्तुदेतुदत्युच्चैर्विधुं कुत्रास्ति कौमुदी
 ज्वलतो रोषदावाग्नेः क वा शान्तितरोः स्थितिः ।

दृष्टा केनापि किं कापि सिहात्कलभसुस्थिता ॥ ३४ ॥

तस्यात्सर्वप्रयत्नेन प्रदीपः प्रतिघातुकः । चतुर्वर्गस्यदेहस्य परिहेयोविपश्चिता
 इदानीशृणु कलयणि! कर्तव्यं यत्त्वया शुचे !। अमोघबीजा हि वयतद्बीजमुरगीकुरु
 पतस्मिन् रक्षितेवीर्येपरिस्कन्धे त्वदीक्षणात् । त्वयातवभवित्रेककन्यारत्नमहाशुचि
 इत्युक्तानेनमुनिना पुनर्जातिव साप्सरा । महाप्रसाद इत्युक्त्वा मुने शुकमर्जीगिलत्
 अथकालेनदिव्यश्रीकन्यारत्नमजीजनत् । अर्तावनयानानन्दि निधानरूपसम्पदाम्
 तस्यैव वेदशिरसश्रमेनानिधाय सा । शुचिरप्सरसाश्रेष्ठा जगाम च यथेप्सितम्
 ता च वेदशिरा कन्या स्नेहेन समवर्धयत् ।

क्षीरेण स्वाश्रमस्थाया हरिण्या हरिणीक्षणाम् ॥ ४१ ॥

मुनिर्नामददौ तस्यै धूतपापेति चार्धवत् । यन्नामोच्चारणेनापि कम्पते पातकावली
 सर्वलक्षणशोभाढ्यां सर्वावयवसुन्दरीम् ।

मुनिस्तस्या जनोत्सङ्गात्क्षणमात्रमपि क्वचित् ॥ ४३ ॥

दिनेदिनेवर्धमानांताम्पश्यन्मुमुदे भृशम् । क्षीरनीरधिघट्टम्यानिशिबान्द्रमसीकलाम्

अथाष्टवार्षिकीद्वृष्टातांकन्यांस मुनीश्वरः । कस्मैदेयेति सञ्चिन्त्य तामेव समपृच्छत
वेदशिरा उवाच

अयिपुत्रि! महाभागे! धृतपापे शुभेक्षणे ! । कस्मैदद्यां वराय त्वान्त्वमेवाख्याहितं वरम्
अतिस्नेहार्दचित्तस्य जनेतुश्चेति भाषितम् । निशम्य धृतपापासा प्रोवाच चिनतानना
धृतपापोवाच

जनेतर्यद्यहं देया सुन्दराय वराय ते । तदा तस्मै प्रयच्छ त्वं यमहं कथयामि ते ॥४८
तुभ्यश्चरोचते तात शृणोत्व वहितो भवान् । सर्वेभ्योऽतिपवित्रो योयः सर्वेषां तमस्कृतः
सर्वेयमभिलष्यन्ति यस्मात्सर्वसुखोदयः । कदाचिद्यो न नश्येत् यः सर्वानुवर्तते
इहमुत्रापि यो रक्षेन्महापदुदयाद्भ्रुवम् । सर्वे मनोरथा यस्मान्परिपूर्णा भवन्ति हि
दिनेदिने वसौभार्यवर्धते यस्य सन्निधौ । नैरन्तर्येण यत्सेवां कुर्वतो न भयं क्वचित्
यन्नामग्रहणादेव केऽपि बाधां न कुर्वते । यदाधारेण तिष्ठन्ति भुवनानि सतुर्दश ॥
एवमाद्या गुणायस्य वरस्य वरचेष्टितम् । तस्मै प्रयच्छ मां तात मम तेऽपीह शर्मणे
एतच्छ्रुत्वा पिता तस्या भृशम्मुदमवापह । धन्योऽस्मि धन्यामे पूर्वे येषामेवासुतान्वये
ध्रुवाहि धृतपापाऽसौयस्याईदृग्विधामतिः । ईदृग्विधैर्गुणगणैर्गर्भ्णाकोऽत्र वै भवेत्
अथवा स कथं लभ्योचिनापुण्यभरोदयम् । इति क्षणं समाधाय मनः समुनिपुङ्गवः
ज्ञानेन तं समालोच्य वरमीदृग्गुणोदयम् । धन्यांकन्यांबभाषेऽथ शृणु वत्से शुभैषिणि!

पितोवाच

वरस्य ये त्वया प्रोक्ता गुणा एते चिचक्षणे ।

एषां गुणानामाधारो वरोऽस्तीति विनिश्चितम् ॥ ५६ ॥

परससुखलभ्यो ननितरां शुभगाकृतिः । तपः पणेन सकल्प्यः सुतीर्थविपणी क्वचित्
नार्थभारैः स सुलभो न कौलीन्येन कन्यके । न वेदशास्त्राभ्यसनैर्न चैश्वर्यबलेन वै
न सौन्दर्येण वपुषा न बुद्ध्या न पराक्रमैः । एकैव मनः शुद्ध्या करणानां जये न च
महातपःसहायेन दमदानदयायुजा । लभ्यते स महाप्राज्ञो नान्यथा सदृशः पतिः
इति श्रुत्वाथ सा कन्यापितरं प्रणिपत्य च । अनुज्ञाप्यार्थयामास तपसे कृतनिश्चया

स्कन्द उवाच

कृतानुष्ठा जनेत्रासाक्षेत्रे परमपावने । तपस्ततापपरमं यदसाध्यं तपस्विभिः ॥ ६५॥
कसाबालातिमृद्भङ्गी क च तत्ताडूशंतपः । कठोरवर्धर्मसंसाध्यमहो सख्येतसोदृतिः
धारासारासुवर्षासुमहावातवतीष्वलम् । शिलासुसावकाशासुसा बह्नीरनयन्निशाः
श्रुत्वागर्जरखं घोरं द्रष्टुमिच्छामत्कृतीः । आसारशीकरैः क्लृप्तानघकम्पेमनाक् च सा
तडित्स्फुरन्ती त्वसकृत्तमिस्रासु तपोवने ।

यातायातं करोतीव द्रष्टुं तत्तपसः स्थितिम् ॥ ६६ ॥

तपतुरेवसाक्षाच्च कुमारी कंतवातिकल । पञ्चाग्नीन्परिधायान्न तपस्यतितपोवने
जलामिलाषिणीबालानमनागपि साऽपिबत् । कुशाग्रतयपृषत्तं पञ्चाग्निपरितापिता
रोमाञ्चकञ्चुकवती वेपमानतनुच्छदा । पर्यक्षिपत्क्षपाः क्षामा तपसा हैमनीञ्चसा
निशीथिनीषु शिशिरे श्रयन्ती सारसंरसम् । मेनेसासारसंः केयमुद्यताद्येतिपद्मिनी
मनस्विनामपि मनो रागतां सृजते मधौ ।

तदोष्ठपल्लवाद्रागो जह् माकन्दपल्लवैः ॥ ७४ ॥

वसन्तेनिवसन्तीसावनेबालाचलंमनः । चक्रेतपस्यपिश्रुत्वा कोकिलाकाकलीरघम्
बन्धुजांवेऽधरर्षि कलहंसे कलागतीः । निक्षेपमिष साक्षिप्त्वाशरघासीत्तपोरता
अपास्तभोगसंपर्काभोगिनांवृत्तिमाश्रिता । श्रुदुद्वबोधनिरोधाय धृतपापातपस्विनी
शाणेनमणिघल्लीढाकृशाऽप्यायादनर्चताम् । तथापितपसाक्षामादिदीपितत्तनुस्तराम्
निरीक्ष्य तां तपस्यन्तीं विधिः संशुद्धमानसाम् ।

उपेत्योवाच सुप्रह्वे! प्रसन्नोऽस्मि वरं वृणु ॥ ७६ ॥

सा सतुर्वक्त्रमालोक्य हंसयानोपरि स्थितम् ।

प्रणम्य प्राञ्जलिः प्रीता प्रोवाचाथ प्रजापतिम् ॥ ८० ॥

धृतपापोवाच

पितामह! वरो मह्यं यदि देवो वरप्रद !। सर्वेभ्यः पावनेभ्योऽधिकुरुमामतिपावनीम्
स्रष्टा तदिष्टमाकर्ण्यनितरांतुष्टमानसः । प्रत्युवाचाथताम्बालांविमलांविमलैषिणीम्

ब्रह्मोवाच

धूतपापे! पश्चिन्नाणि यानि सन्त्यत्र सर्वतः । तेभ्यः पश्चिन्नमतुलं त्वमेधि वरतो मम
तिष्ठः कोट्योऽर्धकोटी च सन्ति तीर्थानि कन्यके !।

दिवि भुव्यन्तरिक्षे च पावनान्युत्तरेत्तरम् ॥ ८४ ॥

तानि सर्वाणितीर्थानि त्वत्तनौ प्रतिलोमवे । वसन्तु ममवाक्येनभवसर्वातिपावनी
इत्युत्तवान्तर्दधे वेधाः सापि निर्धूतकल्मषा । धूतपापोऽजप्राप्ताथोवेदशिरसःपितुः
कदाचित्तां समालोक्य खेलन्ती मुदजाजिरे ।

धर्मस्तत्तपसाकृष्टः प्रार्थयामास कन्यकाम् ॥ ८७ ॥

धर्म उवाच

पृथुब्रोगि विशालाक्षिक्षामोदरि शुभानने । क्रीतःस्वरूपसम्पस्यात्वयाऽहं देहिमेरुः
नितराम्बाधते कामस्त्वत्कृते मां सुलोचने । अज्ञातनाम्नासातेनप्रार्थितेत्यसकृद्ब्रह्मः
उवाच सा पिता दाता तं प्रार्थय सुदुर्मते !।

पितृप्रदेया यत्कन्या श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ९० ॥

निशम्येति वचो धर्मो भाविनोऽर्थस्य गौरवात् ।

पुनर्निबन्धयाञ्चक्रेऽपधृतिर्धृतिशालिनीम् ॥ ९१ ॥

धर्म उवाच

न प्रार्थयेहं सुभगेपितरं तव सुन्दरि !। गान्धर्वेण विवाहेन कुरु मे त्वंसमीहितम्
इतिनिबन्धवद्वाक्यंसानिशम्यकुमारिका । पितुःकन्याफलंदिदसुःपुनराहेतितं द्विजम्
अरे जडमते मात्वं पुनर्ब्रूहीति याह्यतः । इत्युकोऽपि कुमार्या स नातिष्ठन्मदनानुरः
ततः शशाप तं बालाप्रबलातपसोबलात् । जडोऽसिनितरायस्माज्जलाधारोनदोमव
इति शप्तस्तया सोऽधतां शशाप क्रुधान्वितः । कठोरहृदये! त्वं तुशिलाभवसुदुर्मते
स्कन्द उवाच

इत्यन्योन्यस्य शापेन मुने!धर्मो नदोऽभवत् । अविमुक्तमहाक्षेत्रेख्यातोधर्मनदोमहान्
साप्याह पितरं त्रस्ता स्वशिलात्वस्य कारणम् ।

ध्यानेन धर्मं विज्ञाय मुनिः कन्यामथाब्रवीत् ॥ ६८ ॥

मामैःपुत्रः करिष्यामितवसर्वशुभोदयम् । तच्छापोनान्यथाभूयाच्चन्द्रकान्तशिलाभव
चन्द्रोदयमनुप्राप्यद्रवीभूततनुस्ततः । धुनी भव सुते! साध्वि! धूतपापेनि विश्रुता
स च धर्मनदः कन्ये तवभर्तासुशोभनः । तैर्गुणैः परिपूर्णाङ्गोयेगुणा प्राथितास्त्वया
अन्यथा शृणु सहबुद्धे ममापि तपसो बलात् । द्वैरूप्य भवतोर्माचि प्राकृतवद्रवञ्चै
इत्याश्वास्य पिताकन्याधूतपापापरन्तप । चन्द्रकान्तशिलाभूतामनुजप्राहबुद्धिमान्
तदारभ्यमुनेकाश्या ख्यातो धर्मनदोहृदः । धर्मो द्रवस्वरूपेण महापातकनाशनः
धुनी च धूतपापा सा सर्वतीर्थमयी शुभा । हरेन्महाघसघातान् कूलजानिवपादपान्
तत्र धमनदे तीर्थं धूतपापासमन्विते । यदा न स्वधुनी तत्र तदाब्रध्नस्तपोव्यधान्
गमस्तिमालीभगवान्गमस्तीश्वरसन्निधौ । शीलयन्मङ्गलागौरीतपउत्रचचारह
नाम्नामयूषादित्यस्य तीर्थं तत्र तपस्पतः । किरणेभ्यः प्रवृत्ते महास्वेदोऽनिस्वेदत-
किरणेभ्यः प्रवृत्तायामहास्वेदस्य सन्ततिः । ततः साकिरणानामज्ञातापुण्यातरङ्गिणी
महापापान्धतमसंकिरणाख्यातरङ्गिणी । ध्वंसयेत्स्नानमात्रेणमिलिताधूतपापया
आदौ धर्मनदः पुण्यो मिश्रितो धूतपापया । यथाधूतानिपापानिसर्वतीर्थोक्तान्मना
ततोऽपि मिलितागत्यकिरणारविणैधिता । यन्नाम स्मरणादेवमहामोहोन्धताव्रजेत्
किरणाधूतपापे च तस्मिन् धर्मनदे शुभे । स्रवन्त्यौ पापसहस्रौ वाराणस्याशुभद्रवे
ततोऽभागीरथी प्राप्नातेन दंलीपिना सह । भागीरथी समायातायमुना च सरस्वती
किरणा धूतपापा च पुण्यतोयासरस्वती । गङ्गा च यमुनाचैव पञ्चनद्योऽत्रकीर्तिताः
अतः पञ्चनदं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

तत्राप्लुतो न गृहीयाद्देह ना पाञ्चभौतिकम् ॥ ११६ ॥

अस्मिन् पञ्चनदीनाञ्च सम्भेदेऽवौघभेदिनि ।

स्नानमात्रात्प्रयात्यैव भिस्वा ब्रह्माण्डमण्डपम् ॥ ११७ ॥

तीर्थानि सन्ति भूयांसिकाश्यामत्रपदे पदे । नपञ्चनदतीर्थस्यकोट्यंशेनसामान्यपि
प्रयागे माघमासे तु सम्यक् स्नातस्य यत्फलम् ।

तत्फलं स्याद्विनैकेन काश्यां पञ्चनदे ध्रुवम् ॥ ११६ ॥

स्नात्वा पञ्चनदेतीर्थंकृत्वाद्यपितृतर्पणम् । विन्दुमाधवमभ्यर्च्यनभूयोजन्मभागभवेत्
यावत्सङ्ख्यास्तिला दत्ताः पितृभ्यो जलतर्पणे ।

पुण्ये पञ्चनदे तीर्थे तुभिः स्यात्सावदाब्दिकी ॥ १२१ ॥

श्रद्धया यैः कृतं श्राद्धं तीर्थे पञ्चनदे शुभे । तेषांपितामहामुक्ता नानायोनिगता अपि
यमलोके पितृगर्णगाथेयं परिगीयते । महिमानं पाञ्चनदं दृष्ट्वा श्राद्धविधानतः
अस्माकमपि वंश्योऽत्र कश्चिच्छ्राद्धं करिष्यति ।

काश्यां पञ्चनदं प्राप्य येन मुच्यामहे वयम् ॥ १२४ ॥

इयं गाथा प्रतिदिनं श्राद्धदेवस्य सन्निधौ । पितृभिः परिगीयेत काश्यांपञ्चनदंप्रति
तत्र पञ्चनदे तीर्थे यत्किञ्चिद्दीयते वसु । कल्पक्षयेऽपि न भवेत्तस्यपुण्यस्य संक्षयः
वन्ध्यापि वर्णपर्यन्तं स्नात्वा पञ्चनदे हरे । समर्च्य मङ्गलां गौरीं पुत्रं जनयतिध्रुवम्
जलं पाञ्चनदे पुण्यैर्वाससापरिशोधितैः । महाफलमवाप्नोतिस्नपयित्त्वेष्टदेवताम्
पञ्चामृतानां कलशरष्टोत्तरशतोन्मितैः ।

तुलितोऽधिकतां यानो विन्दुः पाञ्चनदाम्भसः ॥ १२६ ॥

पञ्चकूर्चनर्पानेनयाऽत्र शुद्धिरुदाहृता । साशुद्धिः श्रद्धया प्राश्यविन्दुं पाञ्चनदाम्भसः
भवेद्भवभृत्यस्नानान्नाजसूयाश्वमेधयोः । यत्फलं तच्छतगुणं स्नानात्पाञ्चनदाम्भसा
राजसूयाश्वमेधौ चभवेतांस्वर्गसाधनम् । आब्रह्मघटिकाद्वन्द्वं मुक्त्यै पाञ्चनदाप्लुतिः
स्वर्गराज्याभिषेकोऽपिनतथासम्मतःसताम् । अभिषेकःपाञ्चनदोयथाऽनल्पसुखप्रदः
घरं वाराणसीं प्राप्यभृत्यः पञ्चनदोक्षिणाम् । नान्यत्र सेवकीभूतभूपकोदिनरेभ्वरः
यर्नपञ्चनदे स्नातं कार्तिके पापहारिणि । तेऽद्यापि गर्भे तिष्ठन्तिपुनस्तेगर्भवान्तिनः
कृतेधर्मनर्दानाम् श्रेतायां धृतपापकम् । द्वापरे विन्दुतीर्थञ्च कलौ पञ्चनदं स्मृतम्
शतंसमास्तपन्तप्त्वा कृतेयत्प्राप्यतेफलम् । तत्कार्तिकेपञ्चनदेसकृन्स्नानेनलभ्यते
इष्टापूर्तेषु धर्मेषु यावज्जन्मकृतेषु यत् । अन्यत्र स्यात्फलं तत् स्यादूर्जेधर्मनदाप्लवत्
न धृतपापसदृशं तीर्थं कापि महीतले । यदेकस्नानतो नश्येदधं जन्मत्रयार्जितम्

बिन्दुतीर्थेनरोदस्वा काञ्चनं छण्णलोन्मितम् । नदरिद्रोभवेत्कापिनस्वर्णेनचियुज्यते
गोभूतिलहिरण्याश्वालोन्नग्विभूषणम् ।

यत्किञ्चिद्बिन्दुतीर्थेऽत्रदस्वाक्षयमवाप्नुयात् ॥ १४१ ॥

एकामप्याहुतिदत्त्वा समिद्धेऽग्नौ विधानतः । पुण्येधर्मनदेतीर्थेकोटिहोमफलं लभेत्
न पञ्चनदतीर्थस्य महिमानमनन्तकम् । कोऽपिघर्णयितुं शक्तश्चतुर्वर्गशुभौकसः

श्रुत्वाख्यानमिदं पुण्यं ध्रावयित्वाऽपि भक्तितः ।

सर्वपापचिशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ॥ १४४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाइक्ष्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे पञ्चनदाविर्भावो नामैकोनवष्टितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

—:—:—

षष्टितमोऽध्यायः

बिन्दुमाधवाविर्भाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

उक्ता पञ्चनदोत्पत्तिर्मित्रावरुणनन्दन ! । इदानीं कथयिष्यामिमाधवाविष्कृतिपराम्
यांश्रुत्वा श्रद्धयाधीमान्पापेभ्योमुच्यतेक्षणात् । नचश्रियाचियुज्येतसंयुज्येतवृषेणच
भागत्यमन्दरादत्रे रुपेन्द्रश्चन्द्रशेखरम् । आपृच्छशताक्षर्यरथगः क्षणाद्वाराणसीपुरीम्
दिघोदासंमहीपालं समुष्ठाट्यस्वमायया । स्थित्वापादोदकेतीर्थेकेशवाह्यस्वरूपतः
महिमानं परं काश्यां चिचार्यं सुचिचार्यं च । दृष्ट्वा पञ्चनदं तीर्थं परां मुदमवापह
उवाचच प्रसन्नात्मा पुण्डरीकविलोचनः । अगण्याभपिचैकुण्ठगुणाविगणिता मया
ऋक्षीरनीरधौसन्ति तावन्तो निर्मलागुणाः । यावन्तोविजयन्तेऽत्रकाश्यां पञ्चनदेह्रदे
श्वेतद्वीपेऽपि सामग्रीकगुणानांगरीयसी । ईदृशीयादृशीकाश्यांधृतपापेऽस्तिपावनी
मुदे कौमोदकी स्पर्शस्तथानमम जायते । धृतथापाम्बुसम्पर्को यथाभवति सर्वथा

नक्षीरनीरधिजया सुखमे श्लिष्टगात्रया । तथा भवेद्यथाऽत्रस्यात्स्पष्टयाधूतपापया
इत्य पञ्चनदे तीर्थेक्षीरनीरधिजाधव । सप्रेष्यताक्ष्यं श्यक्षाग्रे वृत्तान्तंविनिवेदितुम्
आनन्दकाननभव दिवोदासक्षमापते । सम्बणयन्गुणग्राम पुण्य पाञ्चनदोद्वधम् १२
सुखोपविष्ट सहृष्ट सुदृष्टिर्विष्टरश्रवा । द्रष्टवास्तपसाजुष्टमपुष्टाङ्ग तपोधनम् ॥ १३
सम्पृष्टिस्तसमभ्येत्यपुण्डरीकाक्षमच्युतम् । उपोपविष्टकमल वनमालाविराजितम्
शङ्खपद्मगदापकचञ्चत्करचतुष्टयम् । कौस्तुभोद्वासितोरस्क पीतकौशेयषामसम्
सुनीलेन्दीवररुष्टि सुस्निग्धमधुराकृतिम् । नाभीहृदलसन्पक्षं सुपात्रलरदच्छदम्
दाडिमीवीजदशन किरीटघोतिताम्बरम् । देवेन्द्रवन्दितपदं सनकान्निपरिष्टुतम्
दिव्यर्षिभिन्नारदाद्यै परिगीतमहोदयम् । प्रह्लादाद्यर्भागवतै परिनन्दितमानसम्
वृतशाङ्गधनुदण्ड दण्डिताखिलदानधम् । मधुकैम्भहन्तारं कसविष्वचससूचकम्
कैवल्य यत्परब्रह्म निराकारमगोचरम् । तगु मृत्यां परिणतभक्ताना भक्तिहेतुत ॥
वेदा विदुयदाकारनैवोपनिषदोदितम् । ब्रह्माद्या नञ् गीर्षाणाश्चक नैत्रातिर्थिसतम्
प्रणनाम मुदायुक्त क्षितिविन्यस्तमस्तक । सम्पृष्टिस्तंहृषीकेशमग्निबिन्दुमहातपा
तुणव परया भक्त्या मौलिबद्धकराञ्जलि ।

अयस्तविस्तीणशिल बलिध्वसनमच्युतम् ॥ २३ ॥

तत्र पञ्चनदाभ्याशे माकण्डेयादिसेधित ।

गोविन्दमग्निबिन्दु स स्तुतवास्तुष्टमानस ॥ २४ ॥

अग्निबिन्दुरुवाच

ॐ नम पुण्डरीकाक्ष बाह्यान्त शौचदायिने । सहस्रशीर्षापुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात्
नमामितेपद्मद्वन्द्व सवद्वन्द्वनिधारकम् । निद्वन्द्वयाधियाविष्णोजिष्णवादिसुरषन्दित
यस्तोतुनाधिगच्छन्तिवाचो वाचरूपतेरपि । तमीष्टे क इहस्तोतुभक्तिरत्रबलीयसी
अपियो भगवानीशो मन प्राचामगोचर । समादृशैरल्पधीभि कथंस्तुत्यो वचपर
य वाचोनविशन्तीशं मनतीहमनोनयम् । मनोगिरामतीतं तं स्तोतुंशक्तिमान्भवेत्
यस्य निःश्वसितं वेदा सषडङ्गपदक्रमा । तस्य देवस्य महिमामहान् कैरवगम्यते

सतन्द्रितमनोबुद्धीन्द्रियार्थं सनकादयः । ध्यायन्तोपिहृदाकाशेन चिन्दन्त्यध्वार्थतः
नास्वाद्यैर्मुनिधरैराबालब्रह्मचारिभिः । गीयमानचरित्रोऽपि न सम्यग्योऽधिगम्यते

तं सूक्ष्मरूपमजमव्ययमेकमाद्यं ब्रह्माद्यगोचरमजेयमनन्तशक्तिम् ।

नित्यं निरामयममूर्तमखिन्त्यमूर्ति कस्त्वां चराचर!चराचरभिन्न! वेत्ति ॥ ३३ ॥

एकैकमेव तव नाम हरेन्मुरारे! जन्मार्जिताद्यमधिनां च महापदाढ्यम् ।

दद्यात्फलं च महितं महतो मखस्य जपं मुकुन्दमधुसूदनमाधवेति ॥ ३४ ॥

नारायणेति नरकार्णवतारणेति दामोदरेति मधुहेति चतुर्भुजेति ।

विश्वम्भरेति चिरजेति जनार्दनेति क्लास्तीह जन्मजपता क कृतान्तभीतिः ॥

ये त्वां त्रिचिक्रम! सदाहृदि शीलयन्ति कादम्बिनीरुचिररोचिषमम्बुजाक्षम् ।

सौदामनीविलसिताशुक्वीतमूर्ते! तेऽपि स्पृशन्ति तव कान्तिमखिन्त्यरूपाम्

श्रीचत्सलाञ्छन! हरेऽच्युतकैटभारे! गोविन्द! नाश्वर्यरथ! केशव! चक्रपाणे !।

लक्ष्मीपते! दनुजसूदन! शार्ङ्गपाणे! त्वद्वक्तिभाजि नभयं कश्चिदस्ति पुंसि ॥ ३७ ॥

येरचितोऽसि भगवंस्तुलसीप्रसूनैर्दूरीकृतैणमदसौरभदिव्यगन्धैः ।

तानर्चयन्ति दिवि देवगणाः समस्ता मन्दारदामभिरलं विमलस्वभावान् ॥ ३८ ॥

यद्वाचि नाम तव कामदमञ्जनेत्र यच्छ्रोत्रयोस्तवकथा मधुराक्षराणि ।

यच्चित्तमित्तिलिखितं भवतोऽस्ति रूपं नीरूपभूपपदवी नहितैर्दुरापा ॥ ३९ ॥

ये त्वा भजन्ति सततं भुवि शेषशार्थिस्ताञ्ज्जीपते पितृपतीन्द्रकुबेरमुख्याः ।

वृन्दारका दिवि सदैव सभाजयन्ति स्वर्गापवर्गसुखसन्ततिदानदक्ष ॥ ४० ॥

ये त्वां स्तुवन्ति सततं दिवि तांस्तुवन्ति सिद्धाप्यसरोमरगणालसदञ्जपाणे !।

विश्राणयत्यखिलसिद्धिद को विना त्वां निर्वाणधारुकमला कमलायताक्ष !॥ ४१ ॥

त्वं हंसि पासि सृजसि क्षणतः स्वलीला लीलावपुधंरविरिञ्चिनताडिघ्रयुग्म !।

विश्वं त्वमेव परविश्वपतिस्त्वमेव विश्वस्यबीजमसितत्पणतोऽस्मनित्यम् ॥ ४२ ॥

स्तोता त्वमेव दनुजेन्द्ररिपोस्तुति स्त्वंस्तुत्यस्त्वमेव सकलं हि भवानिहैकः ।

त्वत्तो न किञ्चिदपि भिन्नमचैमि चिष्णो तृष्णां सदा ऋणुहि मे भवजन्मभारे !॥

इति स्तुत्वा हृषीकेशमग्निबिन्दुर्महातपाः ।

तस्थौ तृष्णीं ततो विष्णुरुवाच वरदो मुनिम् ॥ ४४ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

अग्निबिन्दो! महाप्राज्ञ! महतां तपसां निधिं !। वरंवरय सुप्रीतस्तवादेयं नकिञ्चन

अग्निबिन्दुरुवाच

यदिप्रीतोऽसि भगवन्वैकुण्ठेश! जगत्पते । कमलाकान्त! तद्देहियद्विहप्रार्थयाम्यहम्

कुतानुज्ञोऽथ हरिणा भ्रूभङ्गेन न तापसः । कृतप्रणामो हृष्टात्मा वरयामास केशवम्

भगवन्सर्वगोऽपीह तिष्ठ पञ्चनदे हृदे । हिताय सर्वजन्तूनां मुमुक्षुणां विशेषतः

लक्ष्मीशेन वरो महामेष देयोऽविचारतः । नान्यं वरं नमीहेऽहं भक्तिञ्चत्वत्पदाम्बुजे

इति श्रुत्वावरं तस्याग्निबिन्दोर्ममुमुदनः । प्रीतःपरोपकारार्थं तथेत्याहाविधजापतिः

श्रीविष्णुरुवाच

अग्निबिन्दो! मुनिश्रेष्ठ! स्थान्याम्यहमिहध्रुवम् ।

काशीभक्तिमताम्पसां मुक्तिमार्गं समादिशन् ॥ ५१ ॥

मुने! पुनः प्रसन्नोऽस्मिन्वरम्ब्रह्मिद्वामिते । अतीवमममकोऽस्मिभक्तिम्नेस्तुदृढामयि

आदावेव हि तिष्ठानुरहमत्रतपोनिधिं !। ततस्त्वयासमभ्यर्थिस्थान्याम्यत्रसदैवहि

प्राप्य काशीं सुदुर्मेधाः कस्तन्यजेज्ज्ञानवान्यत्रि ।

अनर्घ्यंप्राप्य माणिक्यं हित्वा काशं क ईहने ॥ ५४ ॥

अल्पीयसा श्रमेणेह वपुषो व्ययमात्रतः । अवश्यंगत्वरस्याशु यथामुक्तिस्तथाक्वहि

विनिमाय जराजीर्णं देहं पार्थिवमत्र वै । प्राज्ञाः किमु न शृङ्गीयुरमृतस्रैर्जरं वपुः

न तपोभिर्नवादानैर्नयज्ञैर्बहुदक्षिणैः । अन्यत्रलभ्यतेमोक्षोयथाकाश्यांतनुव्ययात्

अपि योगं हि युञ्जाना योगिनो यतमानसाः ।

नैकेन जन्मना मुक्ताः काश्यां मुक्ता वपुर्व्ययात् ॥ ५८ ॥

इदमेव महादानमिदमेव महत्तप इदमेव ब्रतं श्रेष्ठं यत्काश्यां प्रियते तनुः ॥ ५६ ॥

स एव विद्याञ्जगति स एव विजितेन्द्रियः

स एव पुण्यवान् धन्यो लब्ध्वा कार्शीं न यस्स्यजेत् ॥ ६० ॥

तावत्स्थास्याम्यहं चात्र यावत्काशीमुने त्विह ।

प्रलयैऽपि न नाशोऽस्याः शिवशूलाग्रसुम्नितेः ॥ ६१ ॥

इत्याकर्ण्य गिरं विष्णोरग्निबिन्दुर्महामुनिः ।

प्रहृष्टरोमा प्रोवाच पुनरन्यं वरं वृणे ॥ ६२ ॥

मापते मम नाम्नात्रर्तार्ये पञ्चनदे शुभे । अभक्तेभ्योऽपिभक्तेभ्यःस्थितोमुक्तिसदादिश

येऽत्र पञ्चनदेऽस्नात्वागत्वादेशान्तरेष्वपि । नराः पञ्चत्वमापन्नामुक्तितेभ्योऽपिचैदिश

ये तु पञ्चनदे स्नात्वा त्वाम्भजिष्यन्ति मानवाः ।

बलाबलापि द्वैरूपामात्याक्षीच्छ्रीश्वनाश्रान् ॥ ६५ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

एवमस्त्वग्निबिन्दोऽत्र भवता यद्वृतम्मुने । त्वभ्रान्नोऽर्धनेनेनाममयासहभविष्यति

बिन्दुमाधवइत्याख्या मम त्रैलोक्यविभ्रुता ।

काश्याम्भविष्यति मुने! महापापौघघातिनी ॥ ६७ ॥

ये मामत्र नराः पुण्याः पुण्ये पञ्चनदे हृदे । मदासपर्ययिष्यन्तिनेषांसंसारभीःकुतः

वसुस्वरूपिणी लक्ष्मीर्लक्ष्मीर्निर्वाणसञ्चिका । तत्पार्श्वगासदायेषांहृदिपञ्चनदेहाहम्

येनपञ्चनदं प्राप्य वसुभिः प्रीणिताद्विजाः । आशुलभ्यविपत्तीनांतेषांतद्वसुरोदिनि

त एव धन्या लोकेऽस्मिन्कृतकृत्यास्त एव हि ।

प्राप्य यंमम सान्निध्यं वसवो मम सात्कृताः ॥ ७१ ॥

बिन्दुतीर्थमिदं नाम तव नाम्नाभविष्यति । अग्निबिन्दोमुनिश्रेष्ठसर्वपातकनाशनम्

कार्तिकेबिन्दुतीर्थेयोब्रह्मर्ष्यपरायणः । स्नास्यत्यनुदितेभानौमानुजात्तस्यभीःकुतः

अपि पापसहस्राणि कृत्वामोहेनमानवः । ऊर्जे धर्मनदेऽस्नातोनिष्पापोजायतेक्षणात्

यावत्स्वस्थोऽस्ति देहोऽयं यावन्नन्द्रियचिक्लवः ।

तावद्भवसानि कुर्वीत यतो देहफलं व्रतम् ॥ ७५ ॥

एकभक्तेन नक्तेन तथैवापाचितेन च । उपवासेन देहोऽयं संशोध्योऽशुचिमाजनम्

कृच्छ्रखान्द्रायणादीनि कर्तव्यानि प्रयत्नतः ।

अशुचिः शुचितामेति कायो यद्व्रतधारणात् ॥ ९७ ॥

व्रतैः संशोधिते देहे धर्मवसतिनिश्चलः । अर्थकामौसनिर्वाणौतत्रयत्रवृषस्थितिः
तस्माद्ब्रतानि सततंचरितव्यानिमानवैः । धर्मसान्निध्यकर्तृ णिचतुर्धर्गफलेप्सुभिः
सदा कर्तुं नशक्नोति व्रतानि यत्रि मानवः । चातुर्मास्यमनुप्राप्य तदा कुर्यात्प्रयत्नतः
भूशय्या ब्रह्मचर्यञ्चक्रिञ्चिद्वश्यनिषेधनम् । एकभक्तादिनियमोनित्यदानं स्वशाक्ततः
पुराणश्रवणं चैव तदर्थाचरणम्पुनः । अखण्डदीपोद्बोधश्च महापूजेष्टदेवते ॥
प्रभूताङ्कुरबीजादथेदेशे चापिगतागतम् । यत्नेनवर्जयेद्दीमान् महाधर्मचिवृद्धये ॥

असम्भाष्या न सम्भाष्याश्चातुर्मास्यव्रतस्थितैः ।

मौनञ्चापि सदा कार्यं तथ्यं वक्तव्यमेव वा ॥ ८४ ॥

निष्पावाश्च मसूराश्च कोद्रवान्वर्जयेद्ब्रती ।

सदा शुचिभिरास्थेयं स्पष्टव्यो नाव्रतीजनः ॥ ८५ ॥

दन्तकेशाम्बगदीनि नित्यं शोध्यानि यत्नतः ।

अनिष्टचिन्ता नो कार्या व्रतिना हृद्यपि क्वचित् ॥ ८६ ॥

द्वादशस्वपिमासेषुव्रतिनोयत्फलंभवेत् । चातुर्मास्यव्रतभृतातत्फलंस्यादखण्डितम्
चतुर्ध्वपि च मासेषु नसामर्थ्यं व्रतेयदि । तदोर्जे व्रतिनाभाव्यमप्यब्दफलमिच्छता
अव्रतः कार्तिकोद्येवागतोमूढधियामिह । तेषाम्पुण्यस्यलेशोपिनभवेत्सूकरात्मनाम्

कृच्छ्रं वाचातिकृच्छ्रं वा प्राजापत्यमथापि वा ।

सम्प्राप्ते कार्तिके मासि कुर्याच्छ्रवत्याऽति पुण्यवान् ॥ ९० ॥

एकान्तरं व्रतं कुर्यात्त्रिरात्रव्रतमेव वा । पञ्चरात्रं सतरात्रं सम्प्राप्ते कार्तिके व्रती ॥
पक्षव्रतंवाकुर्वीतमासोपोषणमेव वा । नोर्जेबन्धयोविधातव्योव्रतिनाकेनचित्कचित्
शाकाहारं पयोहारं फलाहारमथापिवा । शरेद्यवाङ्गाहारं वासम्प्राप्ते कार्तिके व्रती
नित्यंनैमित्तिकं स्नानं कुर्यादूर्जे व्रती नरः । ब्रह्मचर्यं शरेदूर्जे महाव्रतफलार्थंवा
बाहुलं ब्रह्मचर्येण यः क्षिपेच्छुचिमानसः । समस्तं हायनन्तेन ब्रह्मचर्यकृतम्भवेत्

यस्तु कार्तिकिकम्मासमुपवासैःसमापयेत् । अप्यब्दमपि तेनेहभवेत्सम्यगुपोषितम्
शाकाहारपयोहारैरुर्जो यैरतिवाहितः । अखण्डिताशरत्नेन तदाहारेण यापिता ॥

पत्रभोजी भवेदूर्जे कांस्यं त्याज्यं प्रयत्नतः ।

यो व्रती कास्यभोजी स्यान्न तद्ब्रतफलं लभेत् ॥ ६८ ॥

कांस्यस्य नियमे दद्यात्कास्यसर्पिःप्रपूरितम् । ऊर्जेनभक्षयेत्क्षौद्रमतिक्षुद्रगतिप्रदम्
मधुन्यागे घृतं दद्यात्पायसञ्च सशर्करम् । अभ्यङ्गेऽभ्यवहारे चर्तलमूर्जे चिवर्जयेत्
भूयात्स नाग्वी देही तत्राभ्यङ्गाद्यतोऽनघ ॥

तैलत्यागे तिलान्दद्याद्द्रोणमात्रान्सकाञ्चनान् ॥ १०१ ॥

कार्तिके मत्स्यभोजी यः स तैमी योनिमृच्छति ।

बाहुले मासभोजी यः स कृमिः पृथशोणिते ॥ १०२ ॥

मांसाशिनोऽपि ये भूपास्त्यजेयुस्तेऽपि कार्तिके ।

मत्स्यमांसानि सन्त्यज्य कार्तिके व्रततत्परः ॥ १०३ ॥

मत्स्यमांसादनाद्रोषाद्बहिर्भवति निश्चितम् ।

नियमे मत्स्यमांसानां दद्यात्कार्तिकिके व्रती ॥

कूश्माण्डानि समापाणि दशस्वर्णयुतान्यपि ॥ १०४ ॥

कार्तिके मौनभोजी यः सोऽश्नात्यमृतमेव हि ।

सुघण्टां सतिलाम्मौनी सहिरण्याग्रदापयेत् ॥ १०५ ॥

कार्तिके लवणंत्यक्तं येन व्रतभृता सता । त्यक्ताःसर्वैरसास्तेनतस्यागीगाम्रदापयेत्
भूशप्यांकार्तिके कुर्वन्नभुवं संस्पृशेद्ब्रती । पर्यङ्कं भूशयोदद्यात्सत्लं सोपधानकम्
दीपयः कार्तिकेदद्यादखण्डंघृतवर्तिकम् । मोहान्धतमसग्राप्यसन गच्छतिदुर्गतिम्

यः कुर्यात्कार्तिके मासे रजन्यां दीपकौमुदीम् ।

तामिच्छं चान्धतामिच्छं न स पश्येत्कदाचन ॥ १०६ ॥

पापान्धकारसंक्रुद्धः कार्तिके दीपदानतः । क्रोधान्धकारितमुखमन्मास्करिसनधीक्षते
सउद्योतमयस्पश्येत्त्रैलोक्यंसचराचरम् । प्रबोधयेन्ममात्रं योदीपंसोऽज्जलवर्तिकम्

पञ्चामृतानाङ्गुलशैर्कुर्जेमां स्नापयेन्नरः । क्षीराब्धितटमासाद्य वसेत्कल्पंसपुण्यवान्
प्रतिक्षपं कार्तिकिके कुर्वन्ज्योत्स्नाग्रदीपजाम् ।

ममाग्रे भक्तिसंयुक्तो गर्भध्वान्तं न सम्भिशेत् ॥ ११३ ॥

आज्यवस्त्रिकमूर्जेयो दीपमेऽग्रे प्रबोधयेत् । बुद्धिभ्रंशं न चाप्नोति महामृत्युभये सति
कार्तिके मासि मेयात्रा यैः कृता भक्ति तत्परैः । बिन्दुतीर्थं कृतस्नानैस्तेषां मुक्तिर्न दूरतः
व्रतिनः कार्तिके माम्भि स्नातस्य विधिवन्मम । दामोदरगृहाणाद्यं दनुजेन्द्रनिषूदन
स्नानेनैमित्तिके कृष्णकार्तिके पापशोषणे । गृहात्त्वर्घ्यमयादसंराधया सहितो भवान्
श्मौमन्त्रौ समुच्चार्योऽर्घ्यं मह्यं प्रयच्छति । सुवर्णरत्नपुष्पाभ्युज्या शङ्खेन पुण्यवान्
सुवर्णपूर्णपृथिवी सङ्कल्पोदकपूर्वकम् । तेन दत्ता भवेत्सम्यक्सुपात्राय सुपर्षणि
एकादशीं समासाद्य प्रबोधकरणीं मम । बिन्दुतीर्थं कृतस्नानो रात्रौ जागरणान्वितः
दीपान् प्रबोधय बहुरशो ममालङ्कृत्य शक्तिः । तौर्यत्रिकविनोदेन पुराणश्रवणादिभिः
महामहोत्सवं कृत्वा यावत्पूर्णातिथिर्मवेत् । तत्राब्रह्मदानं बहुशः कृत्वा मत्प्रातये नरः
महापातकयुक्तोऽपि न विशेत्प्रमदोदरम् । बिन्दुमाधवनामानं यो मामत्र समर्चयेत्
बिन्दुतीर्थं कृतस्नानो निर्वाणसं हि विन्दति । आदिमाधवनामाहं पूज्यः सत्ययुगे मुने
अनन्तमाधवो ज्ञेयस्त्रेताया सर्वसिद्धिदः । श्रीदमाधवसङ्कोऽहं द्वापरे परमार्थकृत्
कलौ कलिमलध्वंसी ज्ञेयोऽहं बिन्दुमाधवः । कलौ कल्मषसम्पन्ना नमं विन्दन्ति मानवाः
ममैव मायया मूढा भेदघादपरायणाः । मम भक्तिं प्रकुर्वाणा ये विश्वेशं द्विषन्ति वै
विद्विष्यो मम ते ज्ञेयाः पिशाचपदगामिनः । पशार्थीयो निमाप्यापि कालभैरवशासनात्
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि उपित्वा दुःखसागरे । विश्वेशानुग्रहादेव ततो मोक्षमवाप्नुयुः
तस्माद्द्वेषेण कर्तव्यो विश्वेशे परमात्मनि । विश्वेशद्वेषिणां पुंसां प्रायश्चित्तसंयतो न हि
मनसाऽपि हि विश्वेशं विद्विषन्तीह येऽधमाः ।

अध्यासतेऽन्धतामिस्त्रं मृतास्तेऽन्यत्र सन्ततम् ॥ १३१ ॥

शिवनिन्दापराये स्ये पाशुपतनिन्दकाः । विद्विष्यो मम ते ज्ञेयाः पतन्तो नरकेऽशुषी
अष्टाविंशतिकोटीषु नरकेषु क्रमेण हि । कल्पंकल्पं वसेयुस्ते ये विश्वेश्वरनिन्दकाः

विश्वेशानुग्रहंप्राप्यमुनेऽहमपिमुक्तिदः । मङ्गकैस्तद्विशेषेणसेच्योविश्वेश्वरोऽनिशम्
इयं वाराणसी ह्येया मुने! पाशुपतस्थली ।

तस्मात्पशुपतिः सेच्यः काश्यां निःश्रेयसार्थिभिः ॥ १३५ ॥

अत्रपञ्चनदे तीर्थेऽस्नातिविश्वेश्वरःस्वयम् । ऊर्जे सदैवसगणःसस्कन्दःसपरिच्छदः
ब्रह्मासवेदः समखोब्रह्माण्याद्याश्च मातरः । सताब्धयः ससरितःस्नान्त्यूर्जे धृतपापके
सञ्चेतनाहि यावन्तस्त्रैलोक्ये देहधारिणः । तावन्तःस्नानुमायान्तिकात्तिकेधृतपापके
यैर्नपञ्चनदेऽस्नातं प्राप्यकार्तिकिकं शुभम् । जलबुद्बुदवत्तेषां वृथा जन्मशरीरिणाम्
आनन्दकाननं पुण्यं पुण्यं पाञ्चनदं ततः । ततोऽपिममसाग्निध्यामग्निबिन्दोमहामुने!
अनेनैवानुमानेन विद्धि पञ्चनदस्य धे । महिमानं महाप्राज्ञ! सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्
श्रुत्वाऽपि यं महाप्राज्ञो महापार्षः प्रमुच्यते ।

विष्णोर्मुखादिति ध्रुन्वा सोऽग्निबिन्दुर्महामुनिः ॥ १४२ ॥

पुनः प्रणम्य पप्रच्छ बिन्दुमाधवमच्युतम् ॥ १४३ ॥

अग्निबिन्दुरुवाच

मगवच्छ्रोतुमिच्छामिबिन्दुमाधव! तद्वद् । कतिधातवरूपाणि काश्यांसन्तिजनार्दन
भविष्याण्यपि कानाह तानि मे कथयाच्युत ।

यानि सम्पूज्य ते भक्ताः प्राप्स्यन्ति कृतकृत्यताम् ॥ १४५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
बिन्दुमाधवाविर्भाववर्णनं नामषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

बिन्दुमाधवाविर्भावोमाधवाग्निबिन्दुसम्वादोवैष्णवतीर्थमाहात्म्यवर्णनञ्च

अगस्त्य उवाच

षडास्यमाधवाख्यानं श्रुतं मे पापनाशनम् । महिमापिश्रुतःश्रेयान्सम्यक्पञ्चनदस्यैव
यदग्निबिन्दुनाऽऽपृच्छिमाधवोदैत्यसूदनः । तस्योत्तरं समाख्याहियथाख्यातंमधुद्विषा

स्कन्द उवाच

शृण्वगस्त्य महर्षे! त्वं कथ्यमानंमयाऽधुना । माधवेत्यथाचक्षिमुनयेषाग्निबिन्दवे

बिन्दुमाधव उवाच

आदौ पादोदके तीर्थे विद्धि मामादिकेशवम् ।

अग्निबिन्दो महाप्राज्ञ! भक्तानां मुक्तिदायकम् ॥ ४ ॥

अचिमुक्तेऽमृते क्षेत्रे येऽर्चयन्त्यादिकेशवम् । तेऽमृतत्वंभजन्त्येवसर्वदुःखविषजिता
सङ्गमेशं महालिङ्गं प्रतिष्ठाप्यादिकेशवः । दर्शनादद्यहं नृणां भुक्तिं मुक्तिं दिशेत्सदा
याभ्यां पादोदकाच्छ्वेतद्वीपतीर्थमहत्तरम् । तत्राहंज्ञानदोषाणां ज्ञानकेशवसञ्ज्ञकः
श्वेतद्वीपे नरःस्नात्वा ज्ञानकेशवसन्निधौ । न ज्ञानाद्भ्रश्यते कापिज्ञानकेशवपूजनात्
तार्क्ष्यकेशवनामाहं तार्क्ष्यतीर्थनरोत्तमैः । पूजनीयः सदाभक्त्यातार्क्ष्यवत्प्रिया मम
तत्रैव न रदे तीर्थेऽस्म्यहं नारद केशवः । ब्रह्मविद्योपदेष्टा च तत्तीर्थाप्लुतधर्मणाम्
प्रह्लादतीर्थे तत्रैव नाम्नाप्रह्लादकेशवः । भक्तैः समर्चनीयोऽहं महाभक्तिसमृद्धये ॥
तीर्थेऽम्बरीपे तत्राहं नाम्नेवादित्यकेशवः । पातकध्वान्तनिचयं ध्वंसयामीक्षणादपि
दत्तात्रयेश्वराद्याम्यामहमादिगदाधरः । हरामि तत्र भक्तानां संसारगदसञ्चयम्
तत्रैवभार्गवे तीर्थे भृगुकेशवनामतः । काशीनिवासिनः पुंसो बिर्भमि च मनोरथैः
वामनाख्ये महातीर्थे मनःप्रार्थितदे शुभे । पूज्योऽहंशुभमिच्छद्विर्नाम्ना वामनकेशवः
नरनारायणे तीर्थे नरनारायणात्मकम् । भक्ताः समर्च्य मांस्युर्ध्वं नरनारायणात्मकाः

तीर्थेयज्ञवराहाख्ये यज्ञवाराहसञ्ज्ञकः । नरैः समर्चनीयोऽहं सर्वयज्ञफलेप्सुभिः ॥
विदारनरसिंहोहं काशीविघ्नविदारणः । तन्नामिनतीर्थे संसेव्यस्तीर्थोपद्रवशान्तये

गोपीगोविन्दतीर्थे तु गोपीगोविन्दसञ्ज्ञकम् ।

समर्च्य मां नरो भक्त्या मम मायां न संस्पृशेत् ॥ २१ ॥

मुने! लक्ष्मीनृसिंहोऽस्मि तीर्थे तं नामिन् पावने ।

दिशामि भक्तियुक्तेभ्यः सदा नःश्रेयसीं श्रियम् ॥ २० ॥

शेषमाधवनामाहंशेषतीर्थेऽवहारिणि । विश्राणयाम्यशेषांश्चविशेषान्भक्तचिन्तितान्
शङ्खमाधवतीर्थे च स्नात्वामाशङ्खमाधवम् । शङ्खोदकेनसंस्नाप्यभवेच्छङ्खनिधेःपतिः
हयप्रीवे महानीर्थे मां हयप्रोक्षकेशवम् । प्रणम्यप्राप्नुयान्नूनं तद्विष्णोःपरमम्पदम्
भीष्मकेशवनामाहं वृद्धकालेशपश्चिमे । उपसर्गान्हरेभीष्मान्सेवितोभक्तियुक्तिः
निर्वाणकेशवश्चाहम्भक्तनिर्वाणसूचकः । लोलार्कादुत्तरेभागे लोलत्वं चेतसो हरे

वन्द्यास्त्रिलोकसुन्दर्या याम्यां यो मा समर्चयेत् ।

काश्यां ख्यातं त्रिभुवनकेशवं न स गर्भमाक ॥ २६ ॥

ज्ञानवाप्याः पुरो भागे चिद्धि मां ज्ञानमाधवम् ।

तत्रमां भक्तितोऽभ्यर्च्य ज्ञानं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ २७ ॥

श्वेतमाधवसत्रोहंविशाशाश्याःसमीपतः । श्वेतद्वीवेश्वरंरूपंकुर्याम्भनयासमर्चितः
उदम्दशाश्वमेधान्माप्रयागाख्यञ्चमाधवम् । प्रयागतीर्थे मुन्नातोदृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते
प्रयागगमने पुंसा यत्फलं तपसिश्रुतम् । तत्फलंन्यादृशगुणमत्रस्नात्वाममाऽग्रतः
गङ्गायमुनयोःसङ्गे यत्पुण्यं स्नानकारिणाम् ।

काश्याम्मत्सन्निधावत्र तत्पुण्यं स्याद्दशोत्तरम् ॥ ३१ ॥

दानानिराहुप्रसनेऽर्केददतांयत्फलम्भवेत् । कुरुक्षेत्रेहितत्काश्यामत्रंघन्यादृशाधिकम्
गङ्गोत्तरवहा यत्र यमुना पूर्ववाहिनी । तत्सम्भेदं नरःप्राप्यमुच्यते ब्रह्महत्याया ॥
अपनं तत्र कर्तव्यं पिण्डदानं च भावतः । देयानि तत्र दानानि महाफलमभीप्सुना
शुणाः प्रजापतिक्षेत्रेयेसर्वेसमुदीरिताः । अविमुक्तेमहाक्षेत्रेऽसङ्ख्याताश्चभवन्तिह

प्रयागेशं महालिङ्गं तत्र तिष्ठति कामदम् ।

तत्सान्निध्याच्च तत्तीर्थं कामदम्परिकीर्तितम् ॥ ३६ ॥

काश्यांमात्रः प्रयागे येनस्नातो मकरार्कगः । अरुणोदयमासाद्यतेषां निःश्रेयसंकुतः
काश्युद्भवे प्रयागे ये तपसि स्नान्ति संयुताः ।

दशाश्वमेधजनितं फलं तेषाम्भवेद् ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

प्रयागमाधवम्भतयाप्रयागेशञ्च कामदम् । प्रयागे तपसिस्नात्वायेऽर्चयन्त्यन्वहंसदा
धनधान्यसुनर्द्धीस्नेलध्याभोगान्मनोरमान् । भुक्त्वेहपरमातन्दंपरम्भोक्षमवाप्नुयुः
माघेसर्वाणि तीर्थानि प्रयागमधियान्ति हि ।

प्राच्युदीचीप्रतीचीतोदक्षिणाधस्तथोर्ध्वतः ॥ ४१ ॥

काशीस्थितानि तीर्थानि मुने ! यान्ति न कुत्रचित् ।

यदि यान्ति तदा यान्ति तीर्थत्रयमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥

आयान्त्यूज पञ्चनदं प्रातःप्रातर्ममान्तिकम् । महाघौघप्रशमने महाश्रेयोविधायिनि
प्राप्यमामत्रारिञ्च प्रयागेशसमीपतः । प्रातः प्रयागे संस्नान्ति सर्वतीर्थानिमामनु
समासाद्य च मध्याह्नमभियान्ति च नित्यशः ।

संस्नातुं सर्वतीर्थानि मुक्तिदां मणिकर्णिकाम् ॥ ४५ ॥

काश्यांरहस्यंपरममेतत्ते कथितम्मुने । यथा तीर्थत्रयीश्रेष्ठा स्वस्वकाले विशेषतः
अन्यद्ग्रहस्यं वक्ष्यामि न वाच्यं यत्र कुत्रचित् । अमक्तेषुसदागोप्यंनगोप्यंभक्तिमज्जने
काश्यां सर्वाणि तीर्थानि एकैकादुत्तरोत्तरम् । महंनांसिप्रहन्त्येवप्रसह्यनिजतेजसा
एतदेवरहस्यं ते वाराणस्या उदीर्यते । उत्तिक्ष्यैकाङ्गुलिं तथ्यंश्रेष्ठकामणिकर्णिका
गर्जन्ति सर्वतीर्थानि स्वस्वधिष्ण्यगतान्यहो ।

केवलम्बलमासाद्य सुमहन्मणिकर्णिकम् ॥ ५० ॥

पापानि पापिनां हत्वा महान्त्यपि बहून्यपि ।

काशीतीर्थानि मध्याह्ने प्रायश्चित्तविकीर्षया ॥ ५१ ॥

पर्वस्वपर्वस्वपि वा नित्यं नियमवन्त्यहो ।

निर्मलानि भषन्त्येष विगाह्य मणिकर्णिकाम् ॥ ५२ ॥

विश्वेशो विश्वया सार्धं सदोपमणिकर्णिकम् ।

मध्यन्दिनं समासाद्य संस्नाति प्रतिवासरम् ॥ ५३ ॥

वैकुण्ठादप्यहं नित्यं मध्याह्नेमणिकर्णिकाम् । विगाहेपश्यासार्धं मुदापरमया मुने!

सकृन्ममाख्यां गृणतां निर्हरन्त्यदधान्यहम् ।

हरिनामसमापन्नस्तद्वबलान्माणिकर्णिकात् ॥ ५५ ॥

सत्यलोकात्प्रतिदिनं हंसयानः पितामहः ।

माध्याह्निकविधानाय समायान्मणिकर्णिकाम् ॥ ५६ ॥

इन्द्राद्यालोकपालाश्च मरीचाद्या महर्षयः ।

माध्याह्निकीं क्रियां कर्तुं समीयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ ५७ ॥

शेषवासुकिमुख्याश्च नागा वै नागलोकतः ।

समायान्तीह मध्याह्ने संस्नातुं मणिकर्णिकाम् ॥ ५८ ॥

चराचरेषु सर्वेषु यावन्तश्चसचेतनाः । तावन्तःस्नान्तिमध्याह्ने मणिकर्णिकजलेऽमले
के माणिकर्णिकेयानां गुणानां सुगरीयसाम् ।

शक्ता वर्णयितुं विप्रा ऽसङ्ख्येयानां मदाद्रिभिः ॥ ६० ॥

स्त्रीर्णान्युप्राण्यरण्येषुतैस्तपांसितपोधनैः । यैरियंहिसमासादिमुक्तिभूर्मणिकर्णिका
विभ्राणितमहादानास्त एव नरपुङ्गवाः । चरमे वयसि प्राप्तायैरेयामणिकर्णिका ॥

स्त्रीर्णसर्वव्रतास्ते तु यथोक्तविधिना ध्रुवम् ।

यैः स्वतल्पीकृता माणिकर्णिकेयीस्थली मृदुः ॥ ६३ ॥

त एव धन्यामर्त्येऽस्मिन् सर्वकतुषु दीक्षिताः ।

त्यक्त्वा पुण्यार्जितां लक्ष्मीमैक्षि यैर्मणिकर्णिका ॥ ६४ ॥

कृतानानाविधाधर्मा इष्टापूर्तास्तु तैर्नृभिः । वार्धकंसमनुप्राप्यप्रापियैर्मणिकर्णिका
रत्नानिसद्रुकूलानि काञ्चनं गजवाजिनः । देयाः प्राज्ञेन यत्नेन सदोपमणिकर्णिकम्
पुण्येनोपाजितं द्रव्यमत्यल्पमपियैर्नरैः । दत्तं तदक्षयं नित्यं मुनेऽधिमणिकर्णिकम्

कुर्याद्यथोक्तमप्येकं प्राणायामं नरोत्तमः । यस्तेन विहितो नूनं षडङ्गो योग उत्तमः
जप्त्वाकामपिगायत्रीं संप्राप्यमणिकर्णिकाम् । लभेदयुतगायत्रीजपनस्य फलंस्फुटम्
एकामप्याहुतिं प्राक्षो दस्वोपमणिकर्णिकम् ।

यावज्जीवाग्निहोत्रस्य लभेदविकलं फलम् ॥ ७० ॥

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यमग्निबिन्दुर्महातपाः । प्रणिपत्य महाभक्त्यापुनःपप्रच्छमाध्वम्
अग्निबिन्दुरुवाच

विष्णो! कियत्परीमाणा पुण्यं वा मणिकर्णिका ।

ब्रह्मि मे पुण्डरीकाक्ष! न त्वत्सस्नत्स्ववित्परः ॥ ७२ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

आगङ्गाकेशवादाच्च हश्चिन्द्रस्यमण्डपात् । आमध्याद्वेषसरितःस्वर्त्वारान्मणिकर्णिका
स्थूलमेतन्परीमाणं सूक्ष्मं च प्रवदामिने । हरिश्चन्द्रस्यतीर्थाग्रे हरिश्चन्द्रविनायकः
सीमाविनायकश्चात्रमणिकर्णिकहृदोत्तरे । सीमाविनायकं भक्त्यापूजयित्वानरोत्तमः
मोदकैःसोपचारैश्चप्राप्नुयान्मणिकर्णिकाम् । हरिश्चन्द्रेमहातीर्थं तर्पयैयुःपितामहान्
शतंसमाःसुतृप्ताः स्युःप्रयच्छन्ति च वाञ्छितम् ।

हरिश्चन्द्रे महातीर्थं स्नात्वा श्रद्धान्वितो नरः ॥ ७७ ॥

हरिश्चन्द्रेभ्रवं नत्वानसत्यात्परिहीयते । ततः पर्वततीर्थञ्च पर्वतेभ्रवसन्निधौ ॥
अधिष्ठानं महामेरोर्महापातकनाशनम् । तत्रस्नात्वाचर्यन्तिवेशंकिञ्चिद्वस्वास्वशक्तिः
अध्यास्यमेरुशिखरं दिव्यान्भोगान्समश्नुते । कम्बलाभ्रवतरतीर्थं पर्वतेभ्रवदक्षिणे
कम्बलाभ्रवतरेण च तस्तीर्थात्पश्चिमे शुभम् ।

तस्मिंस्तीर्थे कृतस्नानस्तद्विद्धं यः समर्चयेत् ॥ ८१ ॥

अपि तस्य कुले जाना गीतज्ञाः स्युः श्रियान्विताः ।

चक्रपुष्परिणी तत्र योनिचक्रनिवारिणी ॥ ८२ ॥

संसारचक्रगहने यत्रस्नातो विशेषेण ना । चक्रपुष्करिणीतीर्थं ममाधिष्ठानमुत्तमम् ॥
समाःपपार्थसङ्ख्यातास्तत्रततं महत्तपः । तत्र प्रत्यक्षतां यातोमम विश्वेश्वरः परः

तत्रलब्धमयैर्ध्वयमविनाशि महत्तरम् । चक्रपुष्करिणी चैव ख्याताऽभून्मणिकर्णिका
 द्रवकूपं परित्यज्य ललना रूपधारिणी । प्रत्यक्षरूपिणी तत्र मयैक्षिमणिकर्णिका
 तस्या रूपंप्रवक्ष्यामिभक्तानांशुभदं परम् । यद्रूपध्यानतःपुम्भिरावणमासंत्रिसन्ध्यतः
 प्रत्यक्षरूपिणी देवीदृश्यतेमणिकर्णिका । चतुर्भुजाविशालाक्षीःपुरद्वालघिलोचना
 पश्चिमाभिमुखी नित्यं प्रबद्धकरसम्पुटा । इन्दीवरवतीं मालां दधती दक्षिणेकरे
 वरोद्यातेकरे सव्ये मातुलुङ्गफलं शुभम् । कुमारीरूपिणी नित्यंनित्यंद्वादशचार्षिकी
 शुद्धस्फटिककान्तिश्च सुनीलस्निग्धमूर्द्धजा । जितप्रवालमाणिक्यरमणीयरदच्छदा
 प्रत्यग्रकेतकीपुष्पलसद्भ्रमिलमस्तका । सर्वाङ्गमुक्ताभरणा चन्द्रकान्त्यंशुकावृता
 पुण्डरीकमयीं मालां सश्रीकांबिभ्रतीहृदि । ध्यातव्याऽनेनरूपेण मुमुक्षुभिरहर्निशम्

निर्वाणलक्ष्मीभवनं श्रीमती मणिकर्णिका ।

मन्त्रं तस्याश्च वक्ष्यामि भक्तकल्पद्रुमाभिधम् ॥

यस्यावर्तनतः सिद्धयेदपि सिद्धचष्टकं नृणाम् ॥ ६४ ॥

वाग्भवमायालक्ष्मीमदनप्रणवान्वदेत्पूर्वम् ।

भान्न्यं बिन्दूपेतं मणिपद्मपकर्णिके सहृत्प्रणवपुटः ॥ ६५ ॥

मन्त्रः सुरद्रुमसमः समस्तसुखसन्ततिप्रदो जप्यः ।

तिथिभिः परिमितवर्णः परमपद्ं दिशति निशितधियाम् ॥ ६६ ॥

तारस्तारतृतीयो बिन्द्वन्तो मणिपद्ं ततः कर्णिके ।

प्रणवात्मिपद्ं केन म इति मनुसङ्ख्यवर्णमनुः ॥ ६७ ॥

अयं मन्त्रोऽनिशं जप्यः पुम्भिर्मुक्तिमभीप्सुभिः ।

होमोदशांशकः कार्यः श्रद्धावद्वावरैर्नृभिः ॥ ६८ ॥

परिप्लुतैः पुण्डरीकैर्गव्येनहविषा स्फुटैः । सशकरेणमेधावीसक्षौद्रे णसदा शुचिः
 त्रिलक्षमन्त्रजप्येन मृतोदेशान्तरेष्वपि । अक्षयंमुक्तिमाप्नोतिमन्त्रस्यास्यप्रभावतः
 सौवर्णोप्रतिमा कार्यानवरत्नसमन्विता । पूर्वोक्तरूपसम्पन्ना सम्पूज्या साप्रयत्नतः
 सम्पूज्यावासदागोहे नरैर्माक्षेककाङ्क्षिभिः । मणिकर्ण्यामथाक्षेप्यासमभ्यर्च्यप्रयत्नतः

संसारभीरुभिःपुम्भिः श्रद्धाबद्धादरैरिह । उपायः समनुष्ठेयो ह्यपिदूरनिवासिभिः ॥
मणिकर्ण्यं कृतस्नानोमणिकर्णोशबीक्षणात् । जननीजठराषासे वसति न लभेन्नरः
मणिकर्णोऽश्वरं लिङ्गं पुरा संस्थापितम्भया ।

प्राग्द्वारेऽन्तर्गृहस्याऽत्र समर्च्यो मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ १०५ ॥

ततःपाशुपतंतार्थमवाच्यां मणिकर्णितः । कृतोदकक्रियस्तत्र पश्येत्पशुपतीश्वरम्
यत्र पाशुपतो योग उपदिष्टःपिनाकिना । ममापिचिधिमुख्यानांसुराणाम्पशुपाशहृत्
अतः पशुपतिर्यत्र लिङ्गरूपधरः स्वयम् । पशुपाशविमोक्षाय नित्यं काश्यां प्रकाशते
तत्र चंद्रचतुर्दश्यां शुक्लायांशुचिमानसैः । कार्यायात्रा प्रयत्नेन रात्रौ जागरणं तथा
पूजयित्वा पशुपतिमुपोषणपरायणाः ।

पशुपाशैर्न वध्यन्ते दर्शं विहितपारणाः ॥ ११० ॥

रुद्रावासस्ततस्तीर्थं तीर्थात्पाशुपतात्पुरः । तत्रस्नात्वा नरैरर्च्योरुद्रावासेश्वरोहरः
मणिकर्णोऽश्वराद्याभ्या रुद्रावासेश्वरं नरः । समाराध्य वसेल्लोके रुद्रावासे न संशयः
विश्वतीर्थं ततो याभ्यां विश्वैस्तीर्थैरधिष्ठितम् ।

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या विश्वनाथं विलोकयेत् ॥ ११३ ॥

विश्वं गौरीञ्च तदनु पूजयित्वाऽतिभक्तितः ।

विश्वस्य पूज्यो भवति ततो विश्वमयोभवेत् ॥ ११४ ॥

मुक्तितीर्थं तदनुतत्रापि कृतमज्जनः । मोक्षेश्वरंततोऽभ्यर्च्यमोक्षमाप्नोत्यसंशयम्
अविमुक्तेश्वरात्पञ्चान्मोक्षेशं वीक्ष्य मानवः । नपुनर्मानवेलोके यातायातङ्करोत्यहो
अविमुक्तेश्वरं तीर्थंमुक्तितीर्थान्मनाक्परि । तत्राप्लुत्याविमुक्तेशमर्चयित्वाविमुच्यते
तत्परि तारकं तीर्थं यत्र विश्वेश्वरः स्वयम् । आचष्टे तारकं ब्रह्ममृतकर्णमृतात्मकम्
सुस्नातस्तारके तीर्थे तारकेश्वरदर्शनात् । संसारसागरं तीर्त्वा तारयेत्स्वपितृन्
तत्राभ्याशे स्कन्दतीर्थं तत्राप्लुत्य नरोत्तमः ।

दृष्ट्वा पडाननं धैव जह्यात्पाट्कौशिकीं तनुम् ॥ १२० ॥

तारकेश्वरपूर्वेण दृष्ट्वा देवं पडाननम् । वसेत्पडानने लोके कौमारं वपुरुद्धहम् ॥

दुग्ण्ढितीर्थं ततः पुण्यं नरस्तत्र कृतोदकः । दुग्ण्ढिगणपतिस्तुत्वा नविघ्नैरभिभूयते
भवानातीर्थमतुलं दुग्ण्ढितीर्थस्य दक्षिणे । तत्र स्नात्वा विधानेन भवानीं परिपूज्य च
दुकूलैरजनेपथ्यैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः । पुष्पैर्धूपैः प्रदीपैश्च भवानीं शौं प्रपूज्य च ॥ १२४
समस्तमर्चितं तेन त्रैलोक्यं सच्चराचरम् । भवानीं शङ्करौ काश्यामर्चितौ श्रद्धया तु यैः

वैत्राष्टम्यां महायात्रामभवान्याः कारयेत्सुधीः ।

अष्टाधिकाः प्रकर्तव्याः शतकृत्वः प्रदक्षिणाः ॥ १२६ ॥

प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपवती मही । सशैला ससमुद्रा च साश्रमा च सकानना
अष्टौ प्रदक्षिणादेयाः प्रत्यहं भक्तितत्परैः । नमनीयौ प्रयत्नेन भवानीं शङ्करौ सदा
भक्तानां कामदा नित्यं भवानीं वाससाम्प्रदा ।

अतो भवानीं सम्पूज्या काश्यां तीर्थनिवासिभिः ॥ १२६ ॥

योगक्षेमं सदा कुर्याद्भवानीं काशिवासिनाम् ।

तस्माद्भवानीं संसेव्या सततं काशिवासिभिः ॥ १३० ॥

मिक्षणीया सदा भिक्षा मिथुणा मोक्षकाङ्क्षिणा ।

यतो भिक्षाप्रदा काश्यां विश्वेशस्य कुटुम्बिनी ॥ १३१ ॥

गृहमेध्यत्र विश्वेशो भवानीं तत्कुटुम्बिनी ।

सर्वेभ्यः काशिसंस्थेभ्यो मोक्षशिक्षां प्रयच्छति ॥ १३२ ॥

दुष्प्रापमपि यत्किञ्चित्काशीक्षेत्रनिवासिनाम् ।

तत्सुप्राप्यं करोत्यैव भवानीं वृजिता नृभिः ॥ १३३ ॥

कुर्याज्जागरणं रात्रौ महाष्टम्यां त्रतीनरः । प्रातर्भवानीं मभ्यर्च्य प्राप्नुयाद्वाञ्छितफलम्

शुक्रे शात्पञ्चमाशायां भवानीं योऽभिर्वीक्षते ।

सर्वे मनोरथास्तस्य सिद्धयन्तीह न संशयः ॥ १३५ ॥

काश्यां सदैव वस्तव्यं स्नातव्योत्तरवाहिनी ।

भवानीं शङ्करौ सेव्यौ प्राप्तव्ये भुक्तिमुक्तिके ॥ १३६ ॥

आतर्भवानि! तव पादरजोभवानि मातर्भवानि! तव दासतरो भवानि ।

मातर्मवानि न भवानि यथा भवेऽस्मिंस्त्वद्वाग्भवान्यनुदिनं न पुनर्मवानि ॥ १३७ ॥

तिष्ठता गच्छता चापि स्वपता जाग्रताऽपि वा ।

अयमन्त्रः सदा जप्यः सुखाप्त्यै काशिवासिना ॥ १३८ ॥

ईशानतीर्थं तत्रैव भवानीतीर्थसन्निधौ । तत्रस्नातो य ईशानमर्चयेन्न सजन्मभाक्
ज्ञानतीर्थञ्च तत्रैव ज्ञानदं सर्वदानृणाम् । कृनाभिवेकन्ततीर्थे द्रष्टुं ज्ञानेश्वरं शिवम्
ज्ञानवापीसमीपस्थो ज्ञानेशो यैः समर्चितः ।

ज्ञानघ्नं शो न तेषा स्यादपि पञ्चत्वमृच्छनाम् ॥ १४१ ॥

शैलादितीर्थं तत्रैव परमर्द्धिप्रकाशकम् । तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा दत्त्वादानं स्वशक्तितः
शैलादीश्वरमालोक्य ज्ञानवाप्याउदग्दिशि । लभेद्गणत्वपदवीं नात्रकार्याचिन्धारणा
नन्दितीर्थादवाच्या तु विष्णुतीर्थं परं मम ।

तत्र पिण्डान्विनिर्वाप्य पितृणामनृणो भवेत् ॥ १४४ ॥

विष्णुतीर्थे कृतस्नानो यो मा विष्णुं चिलोकयेत् ।

विश्वेशाद्दक्षिणे पार्श्वे विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १४० ॥

यः प्रत्येकादशीम्प्राप्यशयनीम्बोधिनी तथा । कुर्याज्जागरणं रात्रौ मममूर्तिसमीपतः
प्रातः समर्च्य माम्भक्त्या भोजयित्वा द्विजानपि ॥

दत्त्वा गाः काञ्चनभूमिं न भूयोभूमिभागभवेत् ॥ १४७ ॥

कृत्वा तत्र व्रतोत्सर्गं विस्रशाख्यविचर्जितः ।

सम्यग्व्रतफलं धीमान् प्राप्नोत्येवममाज्ञया ॥ १४८ ॥

ममतीर्थादवाच्यां तु तीर्थम्पैतामहंशुभम् । तत्र श्राद्धविधानेनतर्पयित्वापितामहान्
पितामहेश्वरं लिङ्गं ब्रह्मनालोपरिस्थितम् । पूजयित्वा नरो भक्त्या ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्
ब्रह्मस्रोतःसमीपे तु कृतकर्मशुभाशुभम् । परामक्षयतामेऽति शुभमेव ततश्चरेत् ॥
अत्यल्पमपियत्कर्म कृतमत्र शुभाशुभम् । प्रलयेऽपि न तस्यास्ति प्रलयो मुनिसत्तम
नाभितीर्थमिदम्प्रोक्तं नाभिभूतयतःक्षितेः । अपि ब्रह्माण्डगोलस्यनाभिरैवाशुभोदया
सामाणिकार्णिकेयीयं नाभिर्गाम्भीर्यभूमिका ।

ब्रह्माण्डगोलकं सर्वं यस्यामेति लयोदयम् ॥ १५४ ॥

ब्रह्मनालम्परतीर्थं त्रिकुण्डोकेषु विश्रुतम् । तत्सङ्गमे नरः स्नात्वाकोटिजन्ममलं हरेत्
ब्रह्मनाले पतेद्येषामपि कीर्कसमात्रकम् । ब्रह्माण्डमण्डपान्तस्ते नविशन्तिकदाचन
ततो भागीरथेस्तीर्थं ब्रह्मनालाश्चदक्षिणे । तत्रस्नात्वानरः सम्यङ्मुच्यते ब्रह्महत्याया
भागीरथीश्वरं लिङ्गं स्वर्गद्वारस्य सन्निधौ । दर्शनाद् ब्रह्महत्यायाः पुरश्चरणमुच्यते
अशुभागतिमापन्ना यस्य पूर्वेपितामहाः । तेनभागीरथीतीर्थे तर्पणीयाः प्रयत्नतः
तत्र भागीरथे तीर्थे श्राद्धं कृत्वा विधानतः ।

ब्रह्मणान्भोजयित्वा तु ब्रह्मलोके नयेत्पितृन् ॥ १६० ॥

तद्दक्षिणेमहातीर्थं खुरकर्तरिसञ्चितम् । गोलोकादागताभिश्चगोभिर्यत्खुरकोटिभिः
स्थपुट्टीकृतभूभागं ततस्तत्खुरकर्तरि । तस्मिन्स्तीर्थेकृतस्नानः कृतपिण्डोदकक्रियः
खुरकर्तरीशं लिङ्गं द्रष्टुं गोलोकमाप्नुयात् । गोधनैर्नविमुच्येततल्लिङ्गस्यसमर्चनात्
दक्षिणे खुरकर्तर्यामार्कण्डतीर्थमुत्तमम् । कृतश्राद्धविधानश्चतस्मिन्स्तीर्थेऽग्रहारिणि
मार्कण्डेयेश्वरं लिङ्गं द्रष्टुं युर्दीर्घमाप्नुयात् । ब्रह्मतेजोऽभिवृद्धिञ्च कीर्तिञ्च परमाम्भुवि
वसिष्ठतीर्थम्परमं महापातकनाशनम् । तर्पयित्वा पितृंस्तत्रवसिष्ठेशं विलोक्यच
नरो न लिप्यतेपापैर्जन्मत्रयसमर्जितैः । वसिष्ठलोके वसति ब्रह्मतेजःसमन्वितः
तत्रैवारुन्धतीतीर्थं स्त्रीणां सौभाग्यवर्धनम् । पतिव्रताभिस्तत्तीर्थं गाहनीयं विशेषतः

पौंश्चल्यजनितो दोषस्तत्तीर्थपरिमज्जनात् ।

क्षणाद् चिनाशमागच्छेदरुन्धत्याः प्रभाषतः ॥ १६६ ॥

मार्कण्डेयेश्वरात्प्राच्यां वसिष्ठेश्वरपूजनात् ।

निष्पापो जायते मर्त्यो महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥ १७० ॥

मूर्तीं वसिष्ठारुन्धत्योस्तत्र पूज्ये प्रयत्नतः ।

न स्त्रीवैधव्यमाप्नोति न पुमांस्त्रीधियोगिताम् ॥ १७१ ॥

वसिष्ठतीर्थतोषाम्यां नर्मदातीर्थमुत्तमम् । विधायश्राद्धं मेधावीनर्णदेशं विलोक्यच
तत्रदृष्ट्वा महादानं पद्मया न विमुच्यते । ततस्त्रिसन्ध्यं वै तीर्थं त्रिसन्ध्येश्वरपूषंतः

तत्र तीर्थं नरः स्नात्वा कृत्वा सन्ध्यां विधानतः ।

सन्ध्याकालविलोपोत्थपातकैर्नाऽभिभूयते ॥ १७४ ॥

त्रिसन्ध्येश्वरमालोक्य कृतसन्ध्यस्त्रिकालतः ।

त्रिवेदावर्तजम्पुण्यं प्राप्नुयाच्छ्रद्धया द्विजः ॥ १७५ ॥

ततोऽन्योगिनीतीर्थं नरस्तत्रकृताप्लवः । दृष्ट्रातुयोगिनीपीठयोगसिद्धिमवाप्नुयात्
अगस्तितीर्थं तत्रास्तिमहाबौधविघातकृत् । तत्र स्नात्वाप्रयत्नेनदृष्ट्वागस्तीश्वरंविभुम्
अगस्तिकुण्डे च ततः सन्तर्प्य च पितामहान् ।

अगस्तिना समेताञ्च लोपामुद्रां प्रणम्य च ॥ १७८ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वथ शशिवर्जितः । गच्छेत्सर्वजैः सार्धं शिवलोकं नरोत्तमः
दक्षिणेऽगस्त्यतीर्थाञ्च तीर्थंमस्त्यनिपावनम् । गङ्गावेशवसञ्ज्ञञ्चसर्वपातकनाशनम्
तत्र मे शुभदां मूर्तिं मुने! तत्तीर्थसञ्ज्ञिकाम् ।

सम्पूज्य श्रद्धया धीमान् मम लोके महीयते ॥ १८१ ॥

तत्रपिण्डान्विनिर्वाप्यदस्त्वादानंस्वशक्तिः । शतसाम्बत्सरीं तृप्तिपितृणांससमर्पयेत्
मणिकर्णोपरीमाणमेतत्तेकीर्तितंमहत् । सीमाविनायकाद्याभ्यांसर्वविघ्नविघातनात्
वैरोचनेश्वरात्प्राच्यामहं वैकुण्ठमाधवः ।

तत्र मां भक्तितोऽभ्यर्च्य वैकुण्ठार्चामवाप्नुयात् ॥ १८४ ॥

वीरमाधवसञ्ज्ञोऽहं वीरेशात्पश्चिमे मुने । तत्र व्रतीसमभ्यर्च्यनयामीं यातनां लभेत्
कालमाधवनामाहं कालभैरवसन्निधौ । कलिःकालो नकलयेन्मद्भक्तमितिनिश्चितम्
मार्गशीर्षस्य शुक्रायामेकादश्यामुपोषितः । तत्रजागरणंकृत्वा यमं नालोकयेत्कचित्
निर्वाणनरसिंहोऽहं पुलन्तीश्वरदक्षिणे । भक्तोनिर्वाणमाप्नोति तन्मूर्तिनमनादपि
महाबलवृत्सिंहोऽहमोङ्कारात्पूर्वतोमुने ! । दूतान्महाबलान्याभ्यां नपश्येत्सु तदर्चकः
प्रचण्डनरसिंहोऽहं चण्डभैरवपूर्वतः । प्रचण्डमप्यर्चंकृत्वा निष्पाप्मास्यात्तदर्चनात् ॥
अहंगिरिवृत्सिंहोऽस्मितद्वेहलिधिनायकात् । प्राच्याम्प्रबलपापौघजनानाम्प्रविदारणः
महाभयहरम्माहं नरसिंहो महामुने ! । पितामहेश्वरात्पश्चाद्भक्तसाध्वससाध्वसः

अत्युग्रनरसिंहोऽहं कलशेश्वरपश्चिमे । अत्युग्रमपिपापींश्च हरामि श्रद्धयार्चितः

ज्वालामालीर्सिंहोऽहं ज्वालामुखाः समीपतः ।

संज्वालयामि पापीघतृणानि परिपूजितः ॥ १९४ ॥

कोलाहलर्सिंहोऽस्मि दैत्यवानवमर्दनः । मम नाम समुञ्जारादद्यकोलाहलोयतः
कङ्कालभैरवो यत्र काशीरक्षणदक्षधीः । तत्रमाम्भक्तितोऽभ्यर्च्यनोपसर्गेर्निरुध्यते
षिट्कूनरसिंहोऽस्मि नीलकण्ठेश्वरादन । तत्र मां श्रद्धयापूज्य नरो भवति निर्भयः
अनन्तवामनश्चाहमनन्तेश्वरससिधौ । अनन्तान्यपि भक्तस्य कलुषाणि हरेऽर्चितः
दधिवामनसञ्ज्ञोऽहं भक्तानां दधिभक्तिदः । यन्नामस्मरणादेव न दरिद्रो नरोभवेत्
त्रिविक्रमोऽस्म्यहं काश्यामुदीच्यां च त्रिलोचनात् ।

वदामि पूजितो लक्ष्मीं हरामि वृजिनान्यपि ॥ २०० ॥

बलिवामनमामाऽहं बलिना परिपूजितः । बलिभद्रे श्वरात्प्राच्याम्भक्तानाम्बलवर्धनः
दक्षिणे भवतीर्याश्च ताम्रद्वीपाद्रिहागतः ।

नाम्ना ताम्रवराहोऽस्मि भक्तानां चिन्तिनार्थदः ॥ २०२ ॥

मुने! धरणिवाराहः प्रयागेश्वरसन्निधौ । स्नात्वावाराहतीर्थेऽत्रद्रुष्ट्वा मां किट्टिरुपिणीम्
सम्पूज्य बहुभावेन न विशेषो निसङ्कुटम् । तत्रालपमपि दत्त्वाऽञ्जरादानफलं लभेत्
महाकलुषगम्भीरसागरे निपतञ्जनः । मम भक्त्युदुपं प्राप्य प्रलयेऽपि न मज्जति ॥
अहंकोकावराहोऽस्मि किट्टीश्वरसमीपतः । तत्रमाम्पूज्यन्मर्त्यो लभन्ते चिन्तितं फलम्
नारायणाः शतम्पञ्चशतञ्जलशायिनः । त्रिशत्कमठरूपाणि मत्स्यरूपाणि विशतिः
गोपालाश्च शतं साष्टं बुद्धाः सन्ति सहस्रशः । त्रिशत्परशुरामाश्च रामा एकोत्तरं शतम्
विष्णुरूपोऽस्म्यहं शैको मुक्तिमण्डपमध्यतः ।

मुने! हृतप्रसादेन विश्वेशेन श्रितः स्वयम् ॥ २०६ ॥

नारायणस्वरूपेण गणाश्चक्रगदोद्यताः । कुर्बन्ति रक्षांक्षेत्रस्य परितो नियुतानि घट
सोऽग्निबिन्दुरिति श्रुत्वा सम्प्रहृष्टतनूकहः । पुनः पप्रच्छ मे धार्वी मूर्तिभेदान्वद् प्रभो
हिताय निजभक्तानां मम सन्देहशान्तये । कति ते मूर्तयोऽनन्त कथं ज्ञेयास्तथा वद

इत्याकर्ष्य षष्ठस्तस्याऽग्निविन्दोस्तपसां निधेः ।
 उवाच भगवान्विष्णुमूर्तिभेदानुक्रमात् ॥ २१३ ॥
 याञ्छ्रुत्वाऽपि हि नो मर्त्यो यमगोचरतां व्रजेत् ।
 केशवादींश्चतुर्विंशद् भेदानाह प्रजापतिः ॥ २१४ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

अग्निविन्दो! महाप्राज्ञ! शृणु ते कथयाम्यहम् ।

आद्यदक्षिणहस्ताच्च विद्धि सृष्टिक्रमान्मुने ॥ २१५ ॥

शङ्खचक्रगदापद्ममूर्ति जानीहिकेशवीम् । पूजितायानृणांकुर्याच्चिन्तितार्थमसंशयम्
 मधुहा परिचेतव्यः शङ्खपद्मगदारिभिः । वैरिणोनाशमायान्ति तन्मूर्तिपरिसेवनात्
 सङ्कर्षणः समर्च्योऽत्रशङ्खञ्जारिगदायुधः । तन्मूर्तिपूजनाज्जातुजन्तुर्नस्यात्पुनर्भवी
 शङ्खकौमोदकीषक्रपद्मार्द्रामोदरोच्यते । ददाति वित्तम्पुत्रांश्चगोधनंधान्यमेव हि ॥
 वामनःशङ्खक्राञ्जगदाभिरुपलक्षितः । लक्ष्मीवन्तं जनं कुर्याद्गृहेऽपि परिधारितः
 पाञ्चजन्यं गदां पद्मं चित्रमूर्तिसुदर्शनम् । प्रद्युम्नः पूज्यते मर्त्यैर्बहुद्युम्नप्रयच्छति
 ऊर्ध्ववामकरात्सृष्ट्या विष्णवाद्यं षट्कमुच्यते ।

यस्य स्मरणमात्रेण विलीयन्तेऽघराशयः ॥ २२२ ॥

शङ्खारिभ्यांगदाञ्जाम्या पूज्यो विष्णुःश्रियेनरैः । शङ्खपद्मगदाषक्रैर्माधवःपरमर्द्धिदः
 ध्येयोऽनिरुद्धःसंसिद्ध्यै शङ्खञ्जारिगदोद्यतः ।

शङ्खे न गदया चक्राम्बुजाभ्याम्पुरुषोत्तमः ॥ २२४ ॥

अधोक्षजो जनिहरः शङ्खार्यञ्जगदो मुने ! । शङ्खकौमोदकी पद्मचक्रं ध्येयोजनार्दनः ॥
 अधो वामकरात्सृष्ट्या षड्गोविन्दादिमूर्तयः ।

शङ्खं चक्रं गदां पद्मं गोविन्दो विभूयात्सदा ॥ २२६ ॥

शङ्खपद्मगदाषक्रैरर्च्यो लक्ष्म्यैश्चिचिक्रमः । शङ्खञ्जचक्रं विभ्राणो गदावाञ्छ्रीधरः श्रिये
 ह्यधीकेशश्च शङ्खे न गदाचक्राम्बुजैर्मतः । नृसिंहः शङ्खचक्राभ्यां पटुमेन गदयो ह्यते ॥
 अच्युतः शङ्खभृन्नित्यं गदापद्मरथाङ्गवान् । दक्षिणाधः कराद्गृह्णावासुदेवादयश्च षट्

वासुदेवश्च शङ्करिगदाजलजभृत्सदा । शङ्काम्बुजगदाचक्रीध्येयो नारायणो नृभिः
शङ्की पद्मी पद्मनाभोह्येयश्चक्रागदी .मुने । उपेन्द्रः शङ्कवाचित्यं गदारिकमलायुधः
हृत्तिर्हरेर्दधंशङ्की चक्री पद्मी गदी नृणाम् । शङ्के नगद्यापद्मचक्राभ्यां कृष्णउच्यते
एते भेदामयाख्याताः स्वमूर्तीनां महामुने । यान्विज्ञाय ध्रुवं मर्त्यो भुक्तिमुक्तिः च विन्दति
एवं वदति गोविन्दे मुनये चाग्निविन्दवे । पक्षीन्द्रः पक्षविक्षितविपक्षोऽक्षिपथंगतः
प्राह च प्रणिपत्याऽऽशुश्रूष्यक्षस्यागमनम्मुदा । सम्भ्रमेण हर्षाकेशः केश इत्यवदत्ततः

गरुड उवाच

प्रत्यक्षः क्रियतामेव महावृषभकेतनः । यस्य ध्वजस्य रत्नार्चिः पूरयेद्रोदसीमिमाम्
लोकलोचननिर्माणसफलीकरणक्षमम् । कोटिमातं षण्डचिद्योतप्रद्योतितदिगाननम्

निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्षस्यस्य वृषभध्वजम् ।

चिमानिनां चिमानौघैः परीतगगनाङ्गणम् ॥ २३८ ॥

महावाद्यनिनादौघैः प्रतिस्वानितकन्दरम् ।

विद्याधरीपरिक्षिप्तपुष्पाञ्जलिसुगन्धितम् ॥ २३९ ॥

प्रणम्य दूरादपि च सम्प्रहृष्टतनूरुहः । अभ्युत्थातुं मनश्चक्रे शङ्खस्रजगदाधरः ॥
अग्निविन्दुमथ प्राह मुक्तिदस्तु मुदाभिधिः । इदं सुदर्शनं चक्रं स्पृशासव्येन पाणिना
अग्निविन्दुरिति प्रोक्तः स्पृशेद्यावत्सुदर्शनम् ।
तावत्सुदर्शनो जातः परमानुग्रहादरेः ॥ २४२ ॥

स्कन्द उवाच

ज्योतीरूपोऽथ समुनिः कौस्तुभे ज्योतिषां तनी ।

एकीभूतः कलशज! विन्दुमाधवसेवनात् ॥ २४३ ॥

विन्दुमाधवपादाञ्जभ्रमरीकृतमानसाः । अग्निविन्दूपमांयान्तिकलशोद्भवनिश्चितम्
काश्यां सर्वैव वस्तव्यं द्रष्टव्यो विन्दुमाधवः ।
श्रोतव्यमिदमाख्यानं जेतव्या जगतां गतिः ॥ २४५ ॥
पुण्या पञ्चनदोत्पत्तिः पुण्यामाधवसङ्ख्या ।

पुण्यो वाराणसीवासः सम्भवेत्पुण्यजन्मनाम् ॥ २४६ ॥

अग्निविन्दोः स्तुतिं योऽत्र माधवाऽग्रे पठिष्यति ।

समृद्धसर्वकामः स मोक्षलक्ष्मीपतिर्भवेत् ॥ २४७ ॥

श्राद्धकाले सदा जप्यमिदमाख्यानमुत्तमम् । द्विजानाम्भुञ्जमानानाम्पुरस्तात्परतृप्तये
जप्तव्यमिदमाख्यानं पर्वकाले विशेषतः । पुण्ये पञ्चनदान्याशे पुण्यलक्ष्मीविबृद्धये
पठितव्यः प्रयत्नेन विन्दुमाधवसम्भवः । श्रोतव्यः परयाभक्त्याभुक्तिमुक्तिसमृद्धये
सम्प्राप्ते वासरे विष्णो रात्रौ जागरणान्वितः

श्रुत्वाऽऽख्यानमिदम्पुण्यं वैकुण्ठे वसतिं लभेत् ॥ २५१ ॥

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे [काशीखण्डे

विन्दुमाधवाविर्भावोमाधवाग्निविन्दुसम्वादोवैष्णवतीर्थ-

माहात्म्यञ्च नामैकपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

वृषभध्वजप्रादुर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

श्रुत्वा स्कन्द! न तृप्तोऽस्मि तव वक्त्रेरितां कथाम् ।

अत्याश्चर्यकरम्प्रोक्तमाख्यानम्बैन्दुमाधवम् ॥ १ ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि देवदेवसमागमम् ।

ताश्चर्यात्त्यक्षः समाकर्ण्य दिषोदासस्य चेष्टितम् ॥ २ ॥

विष्णुमायाप्रपञ्चं च किमाह गरुडध्वजम् । के के चशम्भुनासार्धसमीयुर्मन्दराद्विरेः

ब्रह्मणेशः कथं दृष्ट्वस्त्रपाकुलितचक्षुषा । किमाह देवो ब्रह्माणं किमुकम्भास्वतापि च

योगिनीभिः किमाख्यायि गणा ह्रीणाः किमब्रुवन् ।

एतदाख्याहि मे स्कन्द! महत्कौतूहलं मयि ॥ ५ ॥

इमं प्रश्नं निशम्यं शिशुनेः कलशजन्मनः । प्रत्युवाच नमस्कृत्यशिवौ प्रणतसिद्धिदौ
स्कन्द उवाच

मुने शृणु! कथामेतां सर्वपातकनाशिनीम् । अशेषविघ्नशमनीममहाश्रेयोभिर्बर्धिनीम्
अथ देवोऽसुररिपुः श्रुत्वा शम्भुसमागमम् । द्विजराजाय समुदानमदात्पारितोषिकम्
आयानं शंसते शम्भोरुपचाराणसिप्रियम् । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततश्चाभ्युद्ययौ हरिः
शिवस्वता समेतश्च तैर्गणैः परितो वृतः । योगिनीभिरनूद्यातो गणेशमुपसंस्थितः
अथनेत्रातिथीकृत्य देवदेवं वृषध्वजम् । मङ्ग्लुताह्वर्यादवास्त्रं प्रणनाम श्रियः पतिः
पितामहोऽपि स्थवरो भृशं नम्रशिरोधरः । प्रणतेन मृडेनैव प्रणमन्विनिवारितः ॥
स्वस्त्यभ्युदितपाणिश्चरुद्रसूक्तैर्मन्त्रयत् । अक्षतान्यधस्मार्द्राणि दशयन्सफलान्यजः
मौलिम्पादाब्जयोः कृत्वा गणेशः सत्वरौ नतः ।

मूर्ध्न्युपाजिघ्रयाञ्चक्रे हरो हर्षान्नृजाननम् ॥ १४ ॥

अभ्युपावेशयञ्चापि परिष्वज्यनिजासने । सोमनन्दिप्रभृतयः प्रणेमुर्दण्डवद्गणाः
योगिन्योऽपि प्रणम्येशञ्चक्रे मङ्गलगायनम् । तरणिः प्रणनामाऽथ प्रमथाधिपतिहरम्
खण्डेन्दुशेखरश्चाथ उपसिंहासनं हरिम् । समुपावेशयद्दामपार्श्वं मानपुरःसरम्
ब्रह्माणं दक्षिणे भागे परिविश्राणितासनम् । दृष्ट्वा सम्भावितः सर्वेशर्वेण प्रणतागणाः
मौलिचालनमात्रेण योगिन्योऽपि प्रसादिताः ।

सन्तोषितो रविश्चापि विशेति करसङ्ख्या ॥ १६ ॥

अथ शम्भुं शतधृतिः प्रवद्वक्त्रकरसम्पुटः । परिचिन्नापयाञ्चक्रे प्रसन्नवदनाम्बुजम् ॥
ब्रह्मोवाच

भगवन्देशवेश क्षन्तव्यं गिरिजापते ! । वाराणसीं समासाद्य यदहं नागतः पुनः ॥
प्रसङ्गतोऽपि कः काशीं प्राप्य खन्द्रविभूषण ! ।

किञ्चिद्विधातुं शक्तोऽपि त्यज्येत्स्थकिरतां दधत् ॥ २२ ॥

स्वरूपतो ब्राह्मणत्वाद्पाकर्तुञ्ज शक्यते । अथ शक्तोऽप्यपाकर्तुं कः पुण्ये सञ्चिकीरति

द्विषष्टितमोऽध्यायः] * धर्मवर्तमानुसारिणिदेवसभाकथनम् * ४४५

विभोरपि समाह्वेयं धर्मवर्तमानुसारिणि । न किञ्चिदपकर्तव्यं ज्ञानताकेनचित्कचित्
कस्तादृशि महीजानौ पुण्यवर्त्मन्यतन्द्रिते ।

काशीपाले दिवोदासे मनागपि विरुद्धधीः ॥ २५ ॥

निशम्येति वचस्तुष्टः श्रीकण्ठोऽतिविशुद्धधीः ।

हसन्प्रोवाच धातारम्ब्रह्मन्सर्वमवैम्यहम् ॥ २६ ॥

देवदेव उवाच

आदौ नावददोषं हि ब्रह्मत्वम्ब्राह्मणस्यते । वाजिमेधाध्वराणाञ्च ततोऽपि दशकं कृतम्
ततोऽपि विहितम्ब्रह्मन्भवता परमं हितम् । अपराधसहस्राणियल्लिङ्गं स्थापितम्मम
येनेकमपिमेलिङ्गं स्थापितं यत्र कुत्रचित् । तस्यापराधशेषोपि नास्ति सर्वापराधिनः
अपराधसहस्रेऽपि ब्राह्मणयोऽपराधनुयात् । दिनैः कनिपर्यरेव तस्यैश्वर्यं विनश्यति
इति ब्रुवति देवेशोऽप्यन्तरुच्छसितंगणैः ।

स मातृभिः समन्ताच्च विलोक्यास्यः परस्परम् ॥ ३१ ॥

अर्कोऽप्यवसरं ज्ञात्वानन्वाशम्भुं व्यजिज्ञपत् । प्रसन्नास्यमुमाकान्तं दृष्ट्वा दृष्ट्वा चरः

अर्क उवाच

नाथकाशीमितो गत्वा यथाशक्ति कृतोपधिः । अकिञ्चित्करताम्प्राप्तः सहस्रकरवानपि
स्वधर्मपालके तस्मिन् दिवोदासे धरापतौ । निश्चितागमनज्ञात्वा देवस्याहमिहस्थितः
प्रतीक्षमाणो देवेशत्वदागमनमुत्तमम् । विभज्य बहुधात्मानं त्वदाराधनतत्परः
मनोरथदुमश्चाद्य फलितः श्रीमदीक्षणात् ।

किञ्चिद्वक्तिलषाम्भोभिः सिक्तो ध्यानेन पुष्पितः ॥ ३६ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य रवेर्वरविलोचनः । प्रोवाच देवदेवेशो नापराध्यसि भास्कर ! ॥
ममैवकार्यं विहितत्वं यदत्र व्यवस्थितः । यस्यां सुरदेवेशो न तस्मिन् राजनिशासति
इति सूतं समाश्वस्य देवदेवः कृपानिधिः । गणानाश्वासयामास मीडानस्रशिरोधरात्
योगिन्योऽपि सुदृष्ट्वाथशम्भुनासम्प्रसादिताः । त्रपाभरसमाक्रान्तकन्धराइव सङ्गताः
ततो व्यापारयाञ्जके व्यक्षो नेत्राणि चक्रिणि । हरिर्न किञ्चिदप्युचे सर्वज्ञो महामनाः

ईशोऽपिश्रुतवृत्तान्तस्ताह्वार्याङ्गणपशार्ङ्गिणोः । मनसैवप्रसन्नोऽभूच्चकिञ्चित्पर्यभाषत
एतस्मिन्नन्तरं प्राप्तागोलोकात्पञ्चधेनवः । सुनन्दासुमनाश्चापिसुशीला सुरभिस्तथा
पञ्चमी कपिला चापि सर्वाघौघचिघट्टिनी ।

घात्सलयदृष्ट्या भर्गस्य तासामूधांसि सुन्न वुः ॥ ४४ ॥

वचधुः पयसाम्पूरैस्तदूधांसि पयोधराः ।

धारासारैरविच्छिन्नैस्तावद्यावद्भद्रोऽभवत् ॥ ४५ ॥

पयःपयोधिरिव सङ्घितीयः प्रैक्षि पार्यदैः । देवेशसमधिष्ठानात्सतीर्थमभवत्परम् ॥
कपिलाहृद् इत्याख्यायाम्ने तस्य महेश्वरः । ततोद्देवाज्ञया सर्वेस्नातास्तत्रदिघौकसः
आधिरासुस्ततस्तीर्थादथदिव्यपितामहाः । तान् दृष्ट्वातेसुराःसर्वेत्तर्पयाञ्चक्रिरेमुदा
अग्निष्वात्ता बर्हिषद् आज्यपाःसोमपास्तथा ।

इत्याद्या दिव्यपितरस्तुमाः शम्भुं व्यजिज्ञपन् ॥ ४६ ॥

देवदेव! जगन्नाथ! भक्तानामभयप्रद ! अस्मिन्स्तीर्थे त्वदभ्याशाज्जातानस्तृप्तिरक्षया
सस्माच्छम्भो! वरं देहि प्रसन्नेनान्तरात्मना ।

इति दिव्यपितॄणां स श्रुत्वा वाक्यं वृषध्वजः ॥ ५१ ॥

शृण्वतां सर्वदेवानामिदं वचनमब्रवीत् । सर्वैः सर्वपितॄणां वै परतृप्तिकरम्परम् ॥
श्रीदेवदेव उवाच

शृणुविष्णो! महाबाहोशृणुत्वञ्चपितामह ! एतस्मिन्कापिलेतीर्थेकापिलेयपयोभृते
येषिण्डाञ्जिर्बपिष्यन्तिश्रद्धयाश्राद्धदानतः । तेषाम्पितॄणांसन्तुमिर्बपिष्यन्तिममाज्ञया
अन्यं विशेषं वक्ष्यामि महातृप्तिकरम्परम् । कुह्लसोमसमागोगे दत्तं श्राद्धमिहाक्षयम्
संबतकाले सम्प्राप्ते जलराशिर्जलान्यपि । क्षीयन्ते न क्षयत्यत्र श्राद्धं सोमकुह्लकृतम्
अमासोमसमायोगेश्राद्धं यद्यत्रलभ्यते । तीर्थेकपिलधारेऽस्मिन् गययापुष्करेणकिम्
गदाधरमवान्यत्र यत्रत्वं च पितामह । वृषध्वजोऽस्म्यहं यत्र फल्गुस्तत्र न संशयः

दिव्यान्तरिक्षभौमानि यानि तीर्थानि सर्वतः ।

तान्यत्र निबसिष्यन्ति दर्शो सोमदिनान्विते ॥ ५६ ॥

कुरुक्षेत्रे नैमिषे च गङ्गासाबरसङ्गमे । ग्रहणे श्राद्धतोयत्स्यासस्तीर्थे धार्षभध्वजे ॥

अस्य तीर्थस्य नामानि यानि दिव्यपितामहाः ।

तान्यहं कथयिष्यामि भवतां तृप्तिदान्यलम् ॥ ६१ ॥

मधुस्रवेति प्रथममेवा पुष्करिणी स्मृता । कृतकृत्याततो ज्ञेयाततोऽसौक्षीरनीरधिः
वृषभध्वजतीर्थञ्च तीर्थम्पैतामहं ततः । ततो गदाधराख्यञ्च पितृतीर्थं ततः परम्
ततः कापिलधारं वै सुधाखनिरियम्पुनः । ततः शिवगयाख्यञ्च ज्ञेयं तीर्थमिदंशुभम्
एतानिदशनामानि तीर्थस्यास्यपितामहाः । भवतां तृप्तिकारीणिचिनापिश्राद्धतर्पणैः
सूर्येन्दुसङ्गमेत्रपितृणां तृप्तिकामुकाः । ब्राह्मणान्भोजयिष्यन्तितेषां श्राद्धमनन्तकम्
श्राद्धे पितृणां सन्तृप्त्यै दास्यन्ति कपिलां शुभाम् ।

येऽत्र तेषां पितृगणो वसेत्क्षीरोद्रोधसि ॥ ६१ ॥

वृशोत्सर्गःकृतोयैस्तु तीर्थेऽस्मिन्वार्षभध्वजे । अश्वमेधपुरोडाशैः पितरस्तेनतर्पिताः
गयातोऽष्टगुणम्पुण्यमस्मिन्स्तीर्थे पितामहाः ।

अमायां सोमयुक्तायां श्राद्धैः कापिलधारिके ॥ ६२ ॥

येषां गर्भेऽभवत्स्त्रावो येऽदन्तजननामृताः । तेषां तृप्तिर्भवेन्नूनतीर्थे कापिलधारिके
अदत्तमौर्झीदाना ये ये चादारपरिग्रहाः । तेभ्यो निर्वापितं पिण्डमिहहृष्यतां व्रजेत्
अग्निदाहमृता ये वै नाग्निदाहश्च येषु वै । ते सर्वे तृप्तिमायान्ति तीर्थे कापिलधारिके
और्ध्वदैहिकहीना येषोऽश्राद्धवर्जिताः । ते तृप्तिमधिगच्छन्तिवृतकुल्यां निवापतः
अपुत्राश्च मृता ये वैयेषां नास्त्युदकप्रदः । तेऽपितृत्तिपरांयान्ति मधुस्रवसितर्पिताः
अपमृत्युमृता ये वै चोरविद्युज्जलादिभिः । तेषामिह कृतं श्राद्धं जायते सुगतिप्रदम्
आत्मघातेन निधनंयेषामिहचिकर्मणाम् । तेऽपितृत्तिलभन्तेत्रपिण्डैः शिवगयाकृतैः
पितृगोत्रे मृता ये वै मातृपक्षेचये मृताः । तेषामत्र कृतः षण्डो भवेदक्षयतृप्तिदः ॥
पत्नीवर्गेमृताये वै मित्रवर्गे च ये मृताः । ते सर्वे तृप्तिमायान्ति तर्पिता वार्षभध्वजे
ब्रह्मभृत्त्रविशांशं शूद्रवंशेऽन्त्यजेषु च । येषां नाम गृहीत्वाऽन्नदीयते ते समुद्भृताः
तिर्यग्योनिमृताये वैयेपिशाचत्वमागताः । तेऽप्यूर्ध्वगतिमायान्ति तृप्ताः कापिलधारिके

येतुमानुषलोकेऽस्मिन् पितरोमर्त्ययोनयः । तेदिव्ययोनयःस्युर्वमधुस्रवसितर्पिताः
येदिव्यलोके पितरःपुण्यैर्देवत्वमागताः । ते ब्रह्मलोके गच्छन्तितुतास्तीर्थं वृषध्वजे
कृते क्षीरमयं तीर्थं त्रेतायां मधुमत्पुनः ।

द्वापरे सर्पिषा पूर्णं कलौ जलमयं भवेत् ॥ ८३ ॥

स्त्रीमाबहिर्गतमपि ज्ञेयं तीर्थमिदं शुभम् । मध्येवाराणसिश्रेष्ठमसात्रिध्यतो नरैः
काशीस्थितैर्यतोऽदर्शिध्वजोमेवृषलाऽञ्जनः । वृषध्वजेननाम्नातःस्थास्यत्रपितामहाः
पितामहेन सहितो गदाधरसमन्वितः । रविणा पार्षदैः सार्धन्तुष्टये षः पितामहः
इति यावद्वरं दत्तेपितृभ्यो वृषभध्वजः । तावन्नन्दी समागत्य प्रणम्येशं व्यजिह्वत्

नन्दिकेश्वर उवाच

विहितः स्यन्दनः सज्जस्ततोऽस्तु विजयोदयः ।

अष्टौ कण्ठीरवा यत्र यत्रोक्ष्णामष्टकं शुभम् ॥ ८८ ॥

यत्रेभाःपरिभान्त्यष्टौयत्राष्टौजविनोहयाः । मनःसंयमनंयत्रकशापाणिव्यवस्थितम्
गङ्गा यमुनयोरीये चक्रे पवनदेवता । सायंप्रातर्मये चक्रे छत्रं द्योर्मण्डलं शुचि ॥
ताराबलीमयाःकोलाआहेया उपनायकाः । श्रुतयो मार्गदर्शिन्यः स्मृतयो रथगुप्तयः
दक्षिणाग्रूढा यत्र मखायत्रामिरक्षकाः । आसनं प्रणवो यत्र गायत्रीपादपीठभूः
साङ्गाव्याहृतयो यत्र शुभाः सोपानवीथिकाः । सूर्याचन्द्रमसौयत्र सततंद्वारक्षकौ
अग्निर्मकरतुण्डश्च रथभूः कौमुदीमयी । ध्वजदण्डो महामेरुः पताकाहस्करप्रभा
स्वयं चाग्नेयता यत्र चञ्चामरधारिणी ।

स्कन्द उवाच

शैलादिनेति विश्रमो देवदेव उमापतिः ॥ ९५ ॥

कृतनीराजनविधिरष्टभिर्देवमातृभिः । पिनाकपाणिरुत्स्थौदत्तहस्तोऽथ शार्ङ्गिणा
निनादो दिव्यवाद्यानां रोदसी पर्यपूरयत् । गीतमङ्गलगीभिश्च चारणैरनुवर्धितः ॥
तेन दिव्यनिनादेन बधिरिकृतविङ्मुखाः । आहूता इव आजग्मुर्विष्वग्भुवनवासिनः
देवाः कोट्यत्स्यत्स्त्रिशङ्गणाः कोट्ययुतद्वयम् ।

नवकोटयस्तु वामुण्डा भैरव्यः कोटिसम्मिताः ॥ ६६ ॥

पडाननाः कुमारश्च मयूरवरबाहनाः । ममानुगाः समायाताः कोटयोऽष्टौ महाभलाः
आययुःकोटयः सप्तस्फुरत्परशुपाणयः । पिचण्डिलामहावेगा विघ्नचिघ्ना गजाननाः
षडशीतिसहस्राणि मुनयोब्रह्मवादिनः । तावन्तोऽपि समाजग्मुस्तत्राऽन्येगृहमेधिनः

नागानांकोटयस्तिरुः पातालतलवासिनाम् ।

दानधानाञ्च दैत्यानां द्वे द्वे कोटी शिवात्मनाम् ॥ १०३ ॥

गन्धर्वानियुतान्यष्टौ कोट्यर्थं यक्षरक्षसाम् । विद्याधराणामयुतं नियुतद्वयसंयुतम्
तथा षष्टिसहस्राणि दिव्याभ्याप्सरसः शुभाः ।

गोमातरोऽष्टौ लक्षाणि सुपर्णान्ययुतानि षट् ॥ १०५ ॥

सागराः सप्तसम्प्राप्ता नानारत्नोपदप्रदाः । सरिताञ्चसहस्राणित्रीणि पञ्चायुतानि च
गिरयोऽष्टौसहस्राणि वनस्पतिशतत्रयम् ।

आजग्मुर्दिग्गजाष्टौ यत्र देवः पिनाकधृक् ॥ १०७ ॥

एतैःसमेतः सन्तुष्टः परिप्लुत इतस्ततः । श्रीकण्ठोरधमारुह्यकाशीं प्राविशदुत्तमाम्
स गिरीन्द्रसुतस्त्र्यक्षो मुदां धाममुधाङ्गुलिः ।

काशीं प्रैक्षिष्ट संहृष्टस्त्रिविष्टपसमुत्कटात् ॥ १०६ ॥

स्कन्द उवाच

श्रुत्वाऽऽख्यानमिदम्पुण्यं कोटिजन्माघनाशनम् ।

पठित्वा पाठयित्वा च शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ११० ॥

श्राद्धकाले विशेषेण पठनीयम्प्रयत्नतः । अक्षयन्तद्ववेच्छाद्धं पितृतृष्टिकम्परम् ॥
वृषभध्वजमाहात्म्यं पठित्वाशिवसन्निधौ । प्रत्यहं वर्षमात्रं तु ह्यपुत्रः पुत्रवान्भवेत्
विश्वेशितुः सम्प्रवेशो यः काश्यां समुदाहृतः ।

परमानन्दकन्दस्य बीजमेतत्सुनिश्चितम् ॥ ११३ ॥

पठित्वैतन्मुदाख्यानमप्रविशेद्यो नर्षं गृहम् । ससर्वसौख्यनिलयो भवेदेव न संशयः
त्रैलोक्यानन्दजनकमेतदाख्यानमुत्तमम् । अस्य श्रवणमात्रेण विश्वेशःसम्प्रसीदति

अलभ्यलामोदैवस्यजातोऽत्रहियतःपरः । ततः काशीप्रवेशाख्यंजप्यमाख्यानमुत्तमम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां सतुर्थे काशीखण्डे
वृषभध्वजप्रादुर्भावोनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

—:—

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

ज्येष्ठेशाख्यानवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

दृष्ट्वा काशीं दृग्गानन्दां तारकारे पुरारिणा । किमकारि समाचक्ष्व प्राप्ताम्बहुमनोरथैः

स्कन्द उवाच

पतिव्रतापतेऽगस्त्य! शृणु वक्ष्याम्यशेषतः ।

मृगाङ्गुलक्ष्मणोत्कृष्टं काशीनेत्रातिथीकृता ॥ २ ॥

अथ सर्वज्ञनाथेन भक्तवत्सलचेतसा । जैगीषव्यो मुनिश्रेष्ठो गुहान्तस्थो निरीक्षितः
यमनेहसमारभ्य मन्दराद्रिं चिनिर्ययी । अद्रीन्द्रसुतया सार्धं रुद्रेणोक्षेन्द्रगामिना
तं वासरम्पुरस्कृत्य जप्राहनियमं वृढम् । जैगीषव्यो महामेघाः कुम्भयोने महाकृती
विपमेक्षणपादाब्जं समीक्षिष्येयदा पुनः । तदा म्बुविप्रमपि भक्षयिष्यामि चेत्यहो
कुतश्चिद्धारणायोगादथवाशम्भ्वनुग्रहात् । अनश्नन्नपि बन्धोगीजैगीषव्यः स्थितो मुने
तं शम्भुरेव जानाति नान्योजानातिकञ्चन । अत एव ततः प्राप्तः प्रथमम्प्रमथाधिपः
ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सोमवारानुराघयोः । तत्पर्वणि महायात्रा कर्तव्या तत्र मानवैः
ज्येष्ठस्थानं ततः काश्यां तदाऽभूदपिपुण्यदम् ।

तत्र लिङ्गं समभवत्स्वयं ज्येष्ठेश्वरामिधम् ॥ १० ॥

वल्लिङ्गदर्शनात्पुंसां पापं जन्मशस्तार्जितम् । तमोऽर्कोदयमाप्येष तत्क्षणादेव नश्यति

ज्येष्ठबाप्यांनरः स्नात्वा तर्पयित्वा पितामहान् ।

ज्येष्ठेश्वरं समालोक्य न भूयो जायते भुवि ॥ १२ ॥

आविरासीत्स्वयं तत्र ज्येष्ठेश्वरसमीपतः । सर्वसिद्धिप्रदागौरीज्येष्ठाश्रेष्ठासमन्ततः
ज्येष्ठेमासिसिताष्टम्यांतत्र कार्यामहोत्सवः । रात्रौजागरणं कार्यं सर्वसम्पत्समृद्धये

ज्येष्ठां गौरीं नमस्कृत्य ज्येष्ठवापीपरिप्लुता ।

सौभाग्यभाजनभूयाद्योषा सौभाग्यभागपि ॥ १५ ॥

निवासं कृतवाञ्छम्भुस्तस्मिन् स्थाने यतः स्वयम् ।

निवासेश इति ख्यातं लिङ्गं तत्र परन्ततः ॥ १६ ॥

निवासेश्वरलिङ्गस्य सेवनात्सर्वसम्पदः । निवसन्ति गृहे नित्यं नित्यं प्रतिपदम्पुनः
कृत्वाश्चाहं विधानेन ज्येष्ठस्थानेनरोत्तमः । ज्येष्ठांतृप्तिददात्येव पितृभ्योमधुसर्पिषा

ज्येष्ठतीर्थे नरः काश्यां दत्त्वा दानानि शक्तितः ।

ज्येष्ठान्स्वर्गानवाप्नोति नरो मोक्षश्च गच्छति ॥ १६ ॥

ज्येष्ठेश्वरोऽर्च्यः प्रथमं काश्यां श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ।

ज्येष्ठा गौरी ततोऽभ्यर्च्या सर्वज्येष्ठमभीप्सुभिः ॥ २० ॥

अथनन्दिनाह्वय धूर्जटिःसकृपानिधिः । शृण्वतांसर्वदेवानामिदं वचनमब्रवीत् ॥

ईश्वर उवाच

शैलादेप्रविशाऽऽशुत्वंगुहान्त्यत्र मनोहरा । तदन्तरेऽस्तिमेभक्तोजैगीषव्यस्तपोधनः
महानियमवान्निद्रस्त्वगस्थिस्नायुशेषितः । तमिहानय मद्भक्तमद्दर्शनदृढव्रतम् ॥

यदाप्रभृत्यगांकाश्यामन्दरं सर्वसुन्दरम् । महानियमवानेष तदारभ्योऽङ्गिताशनः
गुहाणलीलाकमलमिदम्पीयूषपोषणम् । अनेन तस्य गात्राणि स्पृशसद्यःसुवृंहिणा

ततो नन्दी समादाय तल्लीलाकमलं चिभोः ।

प्रणम्य देवदेवेशमाविशद्गङ्गरां गुहाम् ॥ २६ ॥

नन्दीदृष्ट्वाऽथ तं तत्र धारणादूदमानसम् । तपोग्निपरिशुष्काङ्गं कमलेन समस्पृशत्
सपान्ते वृष्टिसंयोगच्छालूर इव कोटरे । उल्लालाससयोगीन्द्रःस्पर्शमात्रासदञ्जजात्

अथ नन्दीसमादाय सत्वरंमुनिपुङ्गवम् । देवदेवस्य पादाग्रे नमस्कृत्य न्यपातयत्
 जैगीषव्योऽथसम्भ्रान्तः पुरतो धीक्ष्यशङ्करम् । वामाङ्गसन्निविष्टाद्रितनयम्प्रणनामह
 प्रणम्य दण्डवद्भूमौपरिलुल्यसमन्ततः । तुष्टाव परया भक्त्या समुनिश्चन्द्रशेखरम्
 जैगीषव्य उवाच

नमः शिषाय शान्ताय सर्वज्ञाय शुभात्मने । जगदानन्दकन्दाय परमानन्दहेतवे ॥
 अरूपाय सरूपाय नानारूपधराय च । विरूपाक्षाय विधये विधिविष्णुस्तुताय च
 स्थावराय नमस्तुभ्यंजङ्गमाय नमोऽस्तुते । सर्वात्मने नमस्तुभ्यन्नमस्तेपरमात्मने
 नमस्त्रैलोक्यकाम्याय कामाङ्गदहनाय च । नमोशेषविशेषाय नमः शेषाङ्गदाय ते ॥

श्रीकण्ठाय नमस्तुभ्यं विषकण्ठाय ते नमः ।

वैकुण्ठवन्द्य पादाय नमोऽकुण्ठितशक्तये ॥ ३६ ॥

नमः शक्त्यर्धदेहाय विदेहाय सुदेहिने । सकृत्प्रणाममात्रेण देहिदेहनिवारिणे ॥
 कालाय कालकालाय कालकूटविषादिने । व्यालयज्ञोपवीताय व्यालभूषणधारिणे
 नमस्ते खण्डपरशो नमः खण्डेन्दुधारिणे । खण्डिताशेषदुःखायखड्गखेटकधारिणे
 गीर्वाणगीतनाथाय गङ्गाकल्लोलमालिने । गौरीशाय गिरीशाय गिरिशाय गुहारणे
 चन्द्रार्धशुद्धभूषाय चन्द्रसूर्याग्निचक्षुषे । नमस्ते चर्मघसन ! नमो दिग्घसनाय ते ॥
 जगदीशाय जीर्णाय जराजन्महरायते । जीषाय ते' नमस्तुभ्यञ्जजपूकादिहारिणे ॥
 नमोडमरुहस्ताय धनुर्हस्ताय ते नमः । त्रिनेत्राय नमस्तुभ्यं जगन्नेत्राय ते नमः
 त्रिशूलव्यग्रहस्ताय नमस्त्रिपथगाधर । त्रिविष्टपाधिनाथाय त्रिवेदीपठिताय च ॥
 त्रयीमयाय तुष्टाय भक्ततुष्टिप्रदाय च । दीक्षिताय नमस्तुभ्यं देवदेवाय ते नमः
 दारिताशेषपापाय नमस्ते दीर्घदर्शिने । दूराय दुरवाप्याय दोषनिर्दलनाय च ॥
 दोषाकरकलाधार त्यक्तदोषागमाय च । नमो धूर्जटये तुभ्यं धत्तरकुसुमप्रिय ! ॥
 नमो धीराय धर्माय धर्मपालाय ते नमः । नीलग्रीव! नमस्तुभ्यंनमस्ते नीललोहित
 नाममात्रस्मृतिकृतान्त्रैलोक्यैश्वर्यपूरक । नमः प्रमथनाथाय पिनाकोद्यतपापये ॥
 पशुपाशविमोक्षाय पशूनाम्पतये नमः । नामोच्चरणमात्रेण महापातकहारिणे ॥

परात्पराय पाराय परापरपराय च । नमोऽपारस्वरित्राय सुपक्षित्रकथाय च ॥
 वामदेवाय वामार्धधारिणे वृषगामिने । नमो भर्गाय भीमस्य नतभीतिहराय च ॥
 भवाय भवनाशाय भूतानाम्पतये नमः । महादेव! नमस्तुभ्यम्महेश महसाम्पते ॥
 नमो मृडानीपतये नमो मृत्युञ्जयाय ते । यज्ञारये नमस्तुभ्यं यक्षराजप्रियाय च ॥
 यायजूकाय यज्ञाय यज्ञानाम्फलदायिने । रुद्राय रुद्रपतये कद्रुद्राय रमाय च ॥ ५५ ॥
 शूलिने शाश्वतेशाय श्मशानावनिचारिणे । शिवाप्रियाय सर्वाय सर्वज्ञाय नमोस्तुते
 हराय क्षान्तिरूपाय क्षेत्रज्ञाय क्षमाकर ! । क्षमाय क्षितिर्ध्वं च क्षीरगौराय ते नमः
 अन्धकारे नमस्तुभ्यमाद्यन्तरहिताय च । इडाधाराय ईशाय उपेन्द्रेन्द्रस्तुताय च ॥
 उमाकान्ताय उग्राय नमस्ते ऊर्ध्वरैतसे । एकरूपाय चैकाय महदैश्वर्यरूपिणे ॥
 अनन्तकारिणे तुभ्यमम्बिकापतयेनमः । त्वमोङ्कारोवषट्कारोभूर्भुवःस्वस्त्वमेवहि

द्रश्याद्रश्यं यद्रास्ति तत्सर्वं त्वमुमाधव ! ।

स्तुतिकर्तुं न जानामि स्तुतिकर्ता त्वमेव हि ॥ ६१ ॥

वाच्यस्त्वं वाचकस्त्वं हि वाक्स् त्वंप्रणतोऽस्मि ते ।

नाऽन्यं वेद्मि महादेव! नान्यं स्तौमि महेश्वर ! ॥ ६२ ॥

नान्यं नमामिगौरीशनान्याख्यामाद्देशिव । सूकोन्यनामप्रहणेवधिरोऽन्यकथाश्रुतौ
 पङ्कुरन्यामिगमनेऽस्म्यन्धोऽन्यपरिवीक्षणे । एक एव भवानीश एकः कर्तात्वमेवहि
 पाता हतां त्वमेवैको नानात्वं मूढकल्पना । अतस्त्वमेव शरणं भूयो भूयः पुनःपुनः
 संसारसागरे मग्नं मामुद्धर महेश्वर ! । इति स्तुत्वा महेशानं जैगीषव्यो महामुनिः

वाच्यमोऽभवत्स्थाणोः पुरतः स्थाणुसन्निभः ।

इति स्तुतिं समाकर्ण्य मुनेश्चन्द्रविभूषणः ।

उवाच च प्रसन्नात्मा धरं ब्रूहीति तं मुनिम् ॥ ६७ ॥

जैगीषव्य उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश! ततस्तव पदाम्बुजात् । मामवानि! भवानीश दूरं दूरपदप्रद ! ॥
 अपरश्च वरो नाथ! देयोऽयमविचारतः । यन्मयास्थापितंलिङ्गं तत्रसाग्निध्यमस्तुते

ईश्वर उवाच

जैगीषव्यमहाभाग यदुक्तं भवताऽनघ ! तदस्तु सर्वं तेऽभीष्टं वरमन्यं ददामि च ॥

योगशास्त्रं मया दत्तं तव निर्वाणसाधकम् ।

सर्वेषां योगिनां मध्ये योगाचार्योऽस्तु वै भवान् ॥ ७१ ॥

रहस्यं योगविद्याया यथावत्स्वनपोधन । संवेत्स्यसेप्रसादान्मेयेननिर्वाणमाप्स्यसि

यथा नन्दी यथा भृङ्गी सोमनन्दी यथा तथा ।

त्वं भविष्यसि भक्तो मे जरामरणवर्जितः ॥ ७२ ॥

सन्ति व्रतानि भूयांसि नियमाः सन्त्यनेकधा ।

तपांसि नाना सन्त्यत्र सन्ति दानान्यनेकशः ॥ ७३ ॥

श्रेयसां साधनान्यत्र पापघ्नान्यपि सर्वथा । परं हि परमश्रेष्ठं नियमो यस्त्वं वयाकृतः

परोहिनियमश्रेष्ठं मां विलोक्य यदृश्यते । मामनालोक्य यद्भुक्तं तद्भुक्तं केवलं त्वघम्

असमर्च्यं च यो भुङ्क्ते पत्रपुष्पफलैरपि । रेतोभक्षी भवेन्मूढः सजन्मान्यैकविशतिम्

महतो नियमस्याऽस्य भवताऽनुष्ठितस्य वै ।

नार्हन्ति षोडशीं मात्रामप्यन्ये नियमायमाः ॥ ७८ ॥

अतो मन्थरणाभ्याशे त्वं निवत्स्यसि सर्वथा ।

अतो नैःश्रेयसीं लक्ष्मीं तत्रैव प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥ ७९ ॥

जैगीषव्येश्वरं नाम लिङ्गं काश्यां सुदुर्लभम् । त्रीणि वर्षाणि संसेव्य लभेद्योगं न संशयः

जैगीषव्यगुहां प्राप्य योगाभ्यसनतत्परः ।

पण्मासेन लभेत्सिद्धिं चाञ्छितां मदनुग्रहात् ॥ ८१ ॥

तव लिङ्गमिदं भक्तैः पूजनीयं प्रयत्नतः । विलोक्याच्च गुहारभ्या परांसिद्धिमभाप्सुभिः

अत्र ज्येष्ठेश्वरक्षेत्रे त्वल्लिङ्गं सर्वसिद्धिदम् ।

नाशयेदघसङ्कानि द्रष्टुं स्पृष्टुं समर्षितम् ॥ ८३ ॥

अस्मिन् ज्येष्ठेश्वरक्षेत्रे सम्भोज्य शिष्ययोगिनः ।

कोटिभोज्यफलं सम्यगैकैकपरिसङ्कल्पया ॥ ८४ ॥

जैगीषव्येभ्वरंलिङ्गं गोपनीयं प्रयत्नतः । कलौ कलुषबुद्धीनां पुरतश्च विशेषतः ॥

करिष्याम्यत्र सान्निध्यमस्मिंलिङ्गे तपोधन ॥

योगसिद्धिप्रदानाय साधकेभ्यः सदैवहि ॥ ८६ ॥

ददे शृणु महाभाग! जैगीषव्याऽपरं वरम् । त्वयेदं यत्कृतंस्तोत्रयोगसिद्धिकरं परम्
महापापीघशमनं महापुण्यप्रवर्धनम् । महाभीतिप्रशमनं महाभक्तिविधर्धनम् ॥
एतत्स्तोत्रजपात्पुंसामसाध्यंनैवकिञ्चन । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जपनीयं सुसाधकैः
इति दत्त्वा वरं तस्मैस्मरारिःस्मेरलोचनः । ददर्शब्राह्मणांस्तत्रसमेतान्क्षेत्रधासिनः

स्कन्द उवाच

निशम्याख्यानमतुलमेतत्प्राज्ञः प्रयत्नतः । निष्पापो जायते मर्त्यो नोपसर्गःप्रवाध्यते

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

ज्येष्ठेशाख्यानं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

क्षेत्ररहस्यकथनम्

अगस्त्य उवाच

दृष्ट्वा भूदेवताः शम्भुः किमाश्चक्षेपडानन ! । कानिकानिचलिङ्गानि तत्रतान्यपिचक्ष्वमे
ज्येष्ठस्थाने महापुण्ये देवदेवस्य बल्लभे । आश्चर्यं किमभूत्तत्र तदाश्चक्ष्वपडानन ! ॥

स्कन्द उवाच

शृण्वगस्त्ययथापृच्छिमद्यतातदुग्रवीर्यहम् । मन्दराद्रियदादेवोगतषान्ब्रह्मभौरवात्
तदा निराश्रया विप्राः क्षेत्रसंन्यासिनोऽनघाः । उपाकृताश्चाधिरतंमहाक्षेत्रप्रतिग्रहात्
क्षातं क्षातं च दण्डाग्रभूमिं कन्दाविवृत्तयः ।

शक्रः पुष्करिणीं रम्यां दण्डखाताभिधां मुने ॥५॥

तत्तीर्थपरितः स्थाप्य महालिङ्गान्यनेकशः । महेशाराधनपरास्तपश्चक्रुः प्रयत्नतः
विभूतिधारिणो नित्यं नित्यं रुद्राक्षधारिणः । लिङ्गपूजार्तानित्यं शतरुद्रियजापिनः
ते श्रुत्वा देवदेवस्य पुनरागमनं मुने । तपः कृशाअतितरा मासुरानन्दमेदुराः ॥
द्विजाः पञ्चसहस्राणि खरन्तो विपुलंतपः । दण्डखातान्महातीर्थादाजग्मुर्देवदर्शने
तीर्थान्मन्दाकिनीनाम्नो द्विजाः पाशुपतव्रताः ।

शिवैकाराधनपराः समेता अयुतोन्मिताः ॥ १० ॥

हंसतीर्थात्परिप्राप्ता अयुतं त्रिशतोत्तरम् । शतदुर्वाससस्तीर्थादेकादशशताधिकम्
मत्स्योदर्याः परापेतुः सहस्राणिषडेवहि । कपालमोचनात्सप्तशतान्यभ्यागताद्विजाः
ऋणमोचनतस्तीर्थात्सहस्रं द्विशताधिकम् । घैतरण्याअपिमुनेद्विजानामयुताधिकम्
ततः पृथूदकात्कुण्डात्पृथुना परिक्षानितात् । अथासिषुर्द्विजानां चशतान्येव त्रयोदश
तथैवाप्सरसः कुण्डान्मेनकाल्याच्छतद्वयम् ।

उर्वशीकुण्डतः प्राप्तः सहस्रं द्विशताधिकम् ॥ १५ ॥

तथैरावतकुण्डाच्च ब्राह्मणास्त्रिशतानि च । गन्धर्वाप्सरसः सप्तशतानिद्विशतानिच
वृषेशतीर्थादाजग्मुर्नवतिः सशतत्रया । यक्षिणीकुण्डतः प्राप्तः सहस्रं त्रिशतोत्तरम्
लक्ष्मीतीर्थात्परंजग्मुः षोडशैवशतानिच । पिशाचमोचनात्सप्तसहस्राणिद्विजोत्तमाः
पितृकुण्डाच्छतं सप्तध्रुवतीर्थाच्छतानिषट् । मानसाल्याच्च सरसोद्विशतीसशतत्रया
ब्राह्मणा वासुकिहदात्सहस्राणिदशैवतु । तथैवाष्टशतं द्रष्टुं जानकीकुण्डतोद्विजाः
काशीनाथमनुप्राप्तः परमानन्ददायिनम् । तथार्गोतमकुण्डाच्च शतानि न वचागताः
तीर्थाद्दुर्गतिसंहर्तुर्ब्राह्मणाः प्रतिपेदिरे । एकादशशतान्येव द्रष्टुं देवमुमापतिम् ॥
असीसम्भेदमारभ्यगङ्गातीरस्थिताद्विजाः । आसङ्गमेध्वरात्तत्रपरिप्राप्ताघटोद्वच ॥
अष्टादशसहस्राणि तथा पञ्चशतान्यपि । ब्राह्मणाः पञ्चपञ्चाशद्रङ्गातीरात्समागताः
सार्द्रुर्वाक्षतकरैः सपुष्पफलपाणिभिः । सुगन्धमाल्यहस्तैश्च ब्राह्मणैर्जयवादिभिः
स्तुतोमङ्गलसूक्तैश्च प्रणतश्च पुनः पुनः । तेभ्योदत्ताभ्यः शम्भुः पप्रच्छकुशलं मुदा

ततस्ते ब्राह्मणाः प्रोचुः प्रबद्धकरसम्पुटाः । क्षेत्रेनिवसतां नाथ सदा नःकुशलोदयः
विशेषतः कृतोऽस्माभिः साक्षान्नयनगोचरः । त्वयत्स्वरूपंभ्रुतयो न चिदुःपरमार्थतः
सदैवाऽकुशलं तेषां ये त्वत्क्षेत्रपराङ्मुखाः ।

अतुर्दशापि वै लोकास्तेषां नित्यम्पराङ्मुखाः ॥ २६ ॥

येषां हृदिसदैवास्ते काशीत्वाशीविषाङ्गद । संसाराशीविषधिपंनतेषांप्रभवेत्कचित्
गर्भरक्षामणिर्मन्त्रःकाशीवर्णद्वयात्मकः । यस्यकण्ठे सदातिष्ठेत्तस्याकुशलता कुतः
सुधापिबतियो नित्यंकाशीवर्णद्वयात्मिकाम् । सनैर्जरींदशाहिंत्वासुधैवपरिजायते
श्रुतंकर्णामृतं येन काशात्यक्षरयुगमकम् । न समाकर्णयत्येव स पुनर्गमंजांकथाम् ॥
काशीरजोऽपियन्मूर्ध्निपतेदप्यनिलाहतम् । चन्द्रशेखरतन्मूर्धा भवेच्चन्द्रकलाङ्कितः
प्रसङ्गतोऽपियन्नेत्रपथमानन्दकाननम् । यातं तेऽत्रनजायन्ते नैक्षेण् पितृकाननम् ॥
गच्छता तिष्ठतावापि स्वपता जाप्रताथवा । काशीत्येषमहामन्त्रोयेन जप्तःसनिर्भयः
येन बीजाक्षरयुगंकाशीति हृदि धारितम् । अवीजानिभवन्त्येव कर्मवीजानितस्यधै
काशीकाशीतिकाशीति जपतो यस्य संस्थितिः ।

अन्यत्रापि सतस्तस्य पुरो मुक्तिः प्रकाशने ॥ ३८ ॥

क्षेममूर्त्तिरियंकाशी क्षेममूर्त्तिर्भवान्भव । क्षेममूर्त्तिंस्त्रिपथगा नान्यत्क्षेमत्रयं क्वचित्
ब्राह्मणानामिति वचःक्षेत्रभक्तिविद्बृंहितम् । निशम्यगिरिजाकान्तस्तुतोपनितरांहरः
प्रोवाच च प्रसन्नात्माधन्या यूयं द्विजर्षभाः । येषामिहेदृशीभक्तिर्ममक्षेत्रेऽतिपावने ॥

जाने सत्त्वमया जानाः क्षेत्रस्याऽस्य निषेवणात् ।

नीरजस्का वितमसः संसारार्णवपारगाः ॥ ४२ ॥

वाराणस्यास्तु ये भक्तास्ते भक्ता मम निश्चितम् ।

जीवन्मुक्ता हि ते नूनं मोक्षलक्ष्म्या कटाक्षिताः ॥ ४३ ॥

यैश्चकाशीस्थितोजन्तुरल्पकोपिविरोधितः । तैर्वै विश्वम्भरासर्वाभ्यासहविरोधिता
वाराणस्याः स्तुतिमपि यो निशम्याऽनुमोदते ।

अपि ब्रह्माण्डमखिलं ध्रुवं तेनानुमोदितम् ॥ ४५ ॥

निवसन्ति ह्यैमर्त्या अस्मिन्नानन्दकानने । ममान्तःकरणे ते वै निवसेयुरकल्मषाः ॥
 निवसन्ति ममक्षेत्रे ममभक्तिं प्रकुर्वते । मम लिङ्गधरा ये तु तानेवोपदिशाम्यहम्
 निवसन्ति मम क्षेत्रे मम भक्तिं न कुर्वते । मम लिङ्गधरा ये नो नतानुपदिशाम्यहम्
 काशीनिर्वाणनगरीयेषां चित्तेप्रकाशते । तेमत्पुरः प्रकाशतेनैःश्रेयस्याश्रियावृताः
 मोक्षलक्ष्मीरियं काशी नयेभ्यः परिरोचते ।

स्वलक्ष्मीं काङ्क्षमाणेभ्यः पतितास्ते न संशयः ॥ ५० ॥

काशीं सङ्काङ्क्षमाणानां पुरुषार्थचतुष्टयम् । पुरः किङ्करवत्तिष्ठेन्ममानुग्रहतोद्विजाः
 आनन्दकाननेह्यत्रज्वलद्वाधानलोऽस्म्यहम् । कर्मबीजानि जन्तूनां उवाचयेन प्ररंहये
 वस्तव्यं सततं काश्यायष्टव्योऽहंप्रयत्नतः । जेतव्यौकलिकालौघरन्तव्यामुक्तिरङ्गना
 प्राप्यापिकाशीं दुबुद्धिर्योनमां परिसेवते । तस्यहस्तगताप्याशुकेवल्यश्रीः प्रणश्यति
 धन्यामद्भक्तिलक्ष्माणो ब्राह्मणाः काशिवासिनः । यूयं यच्छेत्सोवृत्तेर्न दूरेऽहं न काशिका
 दातव्यो धोवरः कोऽत्र त्रियतां मे यथारुचि । प्रेयांसो मे यतो यूयं क्षेत्रसंन्यासकारिणः
 इति पीत्वा महेशानमुखक्षीराधिजांसुधाम् । परितुमाद्विजाः सर्वे ध्वं वरं मनुत्तमम्

ब्राह्मणा ऊचुः

उमापते! महेशान! सर्वह! वर एष नः । काशी कदापिनत्याज्या भवता भवतापहन्
 वचनाद् ब्राह्मणानां तु शापो माप्रभवत्विह ।

कदाचिदपि केवाञ्चित्काश्यां मोक्षान्तरायकः ॥ ५१ ॥

तवपादाम्बुजद्वन्द्वे निर्द्वन्द्वाभक्तिरस्तुनः । आकलेषरपातञ्जकाशीवासोऽस्तुनोनिशम्
 किमन्येन वरेणेशदेय एष वरो हि नः । अवधे ह्यन्धकध्वंसिन्धवरमन्यं वृणीमहे ॥

तव प्रतिनिधीकृत्याऽस्माभिस्त्वद्भक्तिभाषितैः ।

प्रतिष्ठितेषु लिङ्गेषु साश्लिष्यं भवतोऽस्त्विह ॥ ६२ ॥

श्रुत्वेति तेषां वाक्पानि तथाऽस्त्विति पिनाकिना ।

प्रोचेऽन्योऽपि वरो दत्तो ज्ञानं वञ्च भविष्यति ॥ ६३ ॥

पुनः प्रोवाच देवेशो निशामयत भोद्विजाः । हितं वः कथयाम्यत्र तदनुष्ठीयतां ध्रुवम्

वस्तुःषष्टितमोऽध्यायः] * काश्यां पापकरणाद्दुर्गतिवर्षानम् * ४५६

सेष्योत्तरवहानित्यं लिङ्गमर्च्यं प्रयत्नतः । दमोदानंदयानित्यं कर्तव्यं मुक्तिं काङ्क्षिभिः
इदमेवरहस्यं च कथितं क्षेत्रवासिनाम् । मतिः परहिता कार्या वाच्यं मोहगेरुद्वेषः
मनसापि न कर्तव्यमेनोऽत्र विजिगीषुणा । अत्रत्यमक्षयं यस्मात्सुकृतं सुकृतेतरम्
अन्यत्र यत्कृतं पातं तत्काश्यां परिणश्यति । वाराणस्यां कृतं पापमन्तर्गहे प्रणश्यति
अन्तर्गहे कृतं पापं पैशाच्यनरकावहम् । पिशाचनरकप्राप्तिर्गच्छत्येष बहिर्यदि ॥
न कल्पकोटिभिः काश्यां कृतं कर्म प्रमृज्यते । किन्तु रुद्रपिशाचत्वं जायतेऽत्रायुतत्रयम्
वाराणस्यां स्थितो यो वै पातकेषु रतः सदा ।

योनिं प्राप्यापि पैशाचीं वर्षाणामयुतत्रयम् ॥ ७१ ॥

पुनरत्रैव निवसन् ज्ञानं प्राप्स्यत्यनुत्तमम् । तेन ज्ञानेन सम्प्रान्ते मोक्षमाप्स्यत्यनुत्तमम्
दुष्कृतानि विधायैह बहिः पञ्चत्वमागताः । तेषां गतिं प्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः
यामाख्या मे गणाः सन्ति घोरा विकृतमूर्तयः ।

मूषायान्ते धमन्त्यादौ क्षेत्रदुष्कृतकारिणः ॥ ७४ ॥

नयन्त्यनूपप्रायाञ्चततः प्राचीं दुरासदाम् । वर्षाकाले दुराचारान् पातयन्ति महाजले
जलीकाभिः सपक्षाभिर्दन्दशूकैर्जलोद्भवैः । दुर्निवारैश्च मशकैर्दश्यन्ते ते दिवानिशम्
ततो यामैर्हिमतीति नीयन्तेऽद्रौ हिमालये । अशनावरणैर्हीनाः क्लेश्यन्ते ते दिवानिशम्
मरुस्थले ततोऽग्नीष्मेवारिवृक्षविचर्जिते । दिवाकरकरैस्तीव्रैस्ताप्यन्ते ते पिपासिताः
क्लेशितास्ते गणैरुग्रैर्यातनाभिः समन्ततः ।

इत्थं कालमसङ्ख्यातमानीयन्ते ततस्त्विह ॥ ७६ ॥

निवेदयन्ति ते यामाः कालराजान्ति केततः । कालराजोपितान् दृष्ट्वा कर्मसंस्मर्यं दुष्कृतम्
विषस्त्रान् भुक्तृयार्तांश्च लग्नपृष्ठोदरत्वचः । अन्यैरुद्रपिशाचैश्च सहसंयोजयत्यपि
ततो रुद्रपिशाचास्ते भैरवानुचराः सदा । सहन्ते क्लममत्यर्थं भ्रूसृष्णोत्सवसम्भयम्
आहारं रुधिरान्मिश्रंते लभन्ते कदाचन । एवं श्रययुतसङ्ख्याकं कालं तत्रातिदुःखिताः
श्मशानस्तम्भमभितो नीयन्ते कण्ठपाशिताः ।

पिपासिता अपि न तेऽम्बुस्पर्शमपि चाप्नुयुः ॥ ८४ ॥

अथ संक्षीणपापास्ते कालभैरवदर्शनात् ।

इहैव देहिनो भूत्वा मुच्यन्ते ते ममाऽऽह्वया ॥ ८५ ॥

तस्मान्नकामयेताऽत्रवाङ्मनःकर्मणाप्यवम् । शुचौपथिसदास्थेयंमहालाममभीप्सुभिः
नाबिमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं यातिकिल्बिषी । ममानुग्रहमासाद्यगच्छत्येवपरांगतिम्
अनाशनं यः कुर्वते मद्भक्तइह सुव्रतः । न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वामानुष्यं बहुकिल्बिषम् । अबिमुक्तंसदासेव्यंसंसारभयमोचकम्
नाऽन्यत्पश्यामि जन्तूनां मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम् ।

सर्वपापप्रशमनीं प्रायश्चित्तं कलौ युगे ॥ ९० ॥

जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम् । अबिमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजतिक्षयम्
जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन्योगी यदाप्नुयात् । तदिहैव परं मोक्षो मरणादधिगम्यते
तीर्यग्योनिगताः सत्त्वा ये बिमुक्तकृतालयाः ।

कालेन निधनं प्राप्तास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ॥ ९३ ॥

अबिमुक्तं न सेवन्ते ये मूढास्तमसावृताः । विष्णुत्रैतसामध्ये ते वसन्तिपुनः पुनः
अबिमुक्तं समासाद्य यो लिङ्गं स्थापयेत्सुधीः ।

कल्पकोटिशतैर्वाऽपि नास्ति तस्य पुनर्भवः ॥ ९५ ॥

ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनं ध्रुवम् । अबिमुक्ते मृतानां तु पतनं नैव विद्यते ॥
ब्रह्महत्यांनरःकृत्वापश्चात्संयतमानसः । प्राणांस्त्यजतिवःकाश्यांसमुक्तोनात्रसंशयः
स्त्रियः पतिव्रता याश्च मम भक्तिसमाहिताः ।

अबिमुक्ते मृता चिप्रा! यान्ति ताः परमां गतिम् ॥ ९८ ॥

अत्रोत्क्रमणकालेऽहंस्वयमेव द्विजोत्तमाः ! दिशामितारकं ब्रह्मदेहीस्याद्येन तन्मयः
मन्मना ममभक्तश्च मयिसर्वार्पितक्रियः । यथामोक्षमिहाप्नोतिन तथान्यत्रकुत्रचित्
मरणांनिश्चितं ज्ञात्वागर्तिसासुखरूपिणीम् । चलमागन्तुकं सर्वततःकाशींसमाश्रयेत्
काशीसमाश्रिता येस्तु मनोवाक्कायकर्मभिः ।

तावत्र निर्मलधियो निर्वाणश्रीः समाश्रयेत् ॥ १०२ ॥

खतुःश्चित्तमोऽध्यायः] * क्षेत्रमाहात्म्यमनुभगवतोऽन्तर्धानवर्णनम् * ४६१

काशीस्थितैकमपियः प्रीणयेन्नयायजैर्धनैः । तेन त्रैलोक्यमखिलंप्रीणितंतु मयासह
यः प्रीणयति पुण्यात्मा निर्वाणनगरी नरम् ।

पुमर्थेन स्थितेर्नित्यं ब्राह्मणाः प्रीणयामि तम् ॥ १०४ ॥

दिवोदासोऽपि राजर्षिः कार्शीधर्मेण पालयन् । सदेहोमत्पदंप्राप्तोयतो नपुनरागतिः
अत्र योगस्तथा ज्ञानं मुक्तिरैकेनजन्मना । अतोऽविमुक्तमासाद्यनान्यद्गच्छेत्तपोधनम्
मोक्षं सुदुर्लभं ज्ञात्वा संसारं चातिभीषणम् । अश्मनावरणौहत्वाकालमत्रप्रतीक्षयेत्
अविमुक्तं परित्यज्य यदा यास्यन्ति दुर्धियः ।

हसिष्यन्ति तदा भूतान्यन्योन्यकरताडनैः ॥ १०८ ॥

प्राप्य वाराणसीं पुण्यां सिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम् ।

परिनिष्क्रान्तुमन्यत्र कस्य जन्तोर्मतिर्भवेत् ॥ १०९ ॥

महादानेन चान्यत्र यत्फलंलभ्यते नरैः । अविमुक्तेषु काकिण्यां दत्तायां तद्वाप्यते
एकसमर्थयेद्विद्वांसः तपस्तप्येतचापरः । तयोर्मध्येतु स श्रेष्ठो यो लिङ्गं पूजयेद्विह ॥
तीर्थान्तरे गवां कोटिं विधिवद्यः प्रयच्छति ।

एकाऽहं यो वसेत्काश्यां काशीवासी तयोर्वरः ॥ ११२ ॥

अन्यत्र ब्राह्मणानांतुकोटिलभोज्ययत्फलम् । वाराणस्यांतुघंकेनभोजितेनतदाप्यने
सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे राहुप्रस्ते दिवाकरे । तुलापुरुषदानेन काशीमिक्षासमाभवेत्
ममेह परमज्योतिरापातालाद्व्यवस्थितम् । अतीत्यसमलोकादीननन्तंलिङ्गरूपधृक्
पृथिव्यन्तेऽपि ये लिङ्गमविमुक्तं स्मरन्ति मे ।

कलुषैस्ते विमुच्यन्ते महद्विरिति निश्चितम् ॥ ११६ ॥

अस्मिन्क्षेत्रे तु येनाहं दृष्टःस्पृष्टःसमर्चितः । सम्प्राप्यतारकंज्ञानंनसभूयोऽभिजायते
यो मामिह समभ्यर्च्य म्रियतेऽन्यत्र कुत्रचिन् ।

जन्मान्तरेऽपि मामप्राप्य स विमुक्तो भविष्यति ॥ ११८ ॥

इत्युक्त्वा क्षेत्रमाहात्म्यं द्विजानामप्रतो हरः । पश्यतामेवतेषांतुतत्रैवान्तर्हितोभवत्
तेऽपिसाक्षाद्विरूपाक्षंप्रत्यक्षीकृत्यवाडवाः । प्रहृष्टमनसोऽत्यन्तंप्रययुःस्वस्वमाश्रयम्

शम्भोर्वाक्यं चिनिश्चित्य सर्वज्ञस्य कृपानिधेः ।

त्यत्तत्त्वा कार्यान्तरं विप्रा लिङ्गान्येष समर्चिषुः ॥ १२१ ॥

स्कन्द उवाच

पठित्वा पाठयित्वा च रहस्याख्यानमुत्तमम् । श्रद्धालुःपातकैर्मुक्तःशिवलोकेमहीयते

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

क्षेत्ररहस्यकथननामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

पराशरेश्वरादिकन्दुकेश्व्याप्तेश्वरादिलिङ्गसम्भवावर्णनम्

स्कन्द उवाच

ज्येष्ठेश्वरस्य परितो यानि लिङ्गानि कुम्भज ! ।

तानि पञ्चसहस्राणि मुनीनां सिद्धिदान्यलम् ॥ १ ॥

पराशरेश्वरं लिङ्गं ज्येष्ठेशादुत्तरेमहत् । तस्यदर्शनमात्रेण निर्मलं ज्ञानमाप्यते ॥

तत्रैव सिद्धिर्द्वलिङ्गं माण्डव्येश्वरसञ्ज्ञितम् । न तस्यदर्शनाज्जातुदुर्बुद्धिप्राप्नुयान्नरः

लिङ्गांबशङ्करेशाख्यं तत्रैव शुभदंसदा । भृगुनारायणस्तत्र भक्तानां सर्वसिद्धिदः ॥

जाबालीश्वरसञ्ज्ञं च लिङ्गं तत्रातिसिद्धिदम् । तस्यसन्दर्शनाज्जातुनजन्तुर्दुर्गतित्वजेत्

सुमन्तुमुनिनाश्रेष्ठस्तत्रादित्यःप्रतिष्ठितः । तस्यसंदर्शनादेव कुष्ठव्याधिः प्रशाम्यति

भैरवीभीषणानाम तत्रभीषणरूपिणी । क्षेत्रस्यभीषणं सर्वं नाशयेद्वाघतोऽर्चिता ॥

तत्रोपजङ्घनेर्लिङ्गं कर्मबन्धविमोक्षणम् ।

वृभिः संसेवितं भक्त्या षण्मासात्सिद्धिदम्परम् ॥ ८ ॥

भारद्वाजेश्वरं लिङ्गं लिङ्गं माद्रीश्वरं धरम् । एकत्र संस्थितेद्वेत्तद्वृष्ट्येसुकृतात्मना

अरुणिस्थापितं लिङ्गं तत्रैवकलशोद्भव । तस्यलिङ्गस्यसेवातःसर्वामृद्धिमवाप्नुयात्

लिङ्गं वाजसवेयाख्यं तत्राऽस्त्यतिमनोहरम् ।

तस्यसन्दर्शनात्पुंसां वाजपेयफलम्भवेत् ॥ ११ ॥

कण्वेश्वरं शुभं लिङ्गं लिङ्गं कात्यायनेश्वरम् । वामदेवेश्वरं लिङ्गमीतथ्येश्वरमेव च ॥
हारीतेश्वरसङ्घं च लिङ्गं वै गालवेश्वरम् । कुम्भेलिङ्गं महापुण्यं तथा वै कौस्तुभेश्वरम्
अग्निवर्णेश्वरं चैव नैध्रुवेश्वरमेव च । वत्सेश्वरं महालिङ्गं पणद्विश्वरमेव च ॥
सक्तुप्रस्थेश्वरं लिङ्गं कणादेशं तथैव च । अन्यत्तत्र महालिङ्गं माण्डूकायनिरूपितम्
वाभ्रवेयेश्वरं लिङ्गं शिलावृत्तीश्वरं तथा । च्यवनेश्वरलिङ्गञ्च शालङ्कायनकेश्वरम् ॥
कलिन्दमेश्वरं लिङ्गं लिङ्गमक्रोधनेश्वरम् । लिङ्गं कपोतवृत्तीशंकङ्केशं कुन्तलेश्वरम्
कण्ठेश्वरं कहोलेशं लिङ्गं तुम्बुरुपूजितम् । मतङ्गेशम्मरुत्तेशम्मगधेयेश्वरं तथा ॥
जातूकर्णेश्वरं लिङ्गं जम्बुकेश्वरमेव च । जारुधीशं जलेशञ्च जालमेशं जालकेश्वरम्
एवमादीनि लिङ्गानि अयुतार्धानि कुम्भज !

एतेषां शुभलिङ्गानां ज्येष्ठस्थानेऽतिपावने ॥ २० ॥

स्मरणाद्दर्शनात्स्पर्शादर्घनान्ममनात्स्तुतेः । न जातुजायते जन्तोः कलुषस्यसमुद्भवः

स्कन्द उवाच

एकदा तत्र यद्वृत्तं ज्येष्ठस्थाने महामुने ! । तदहं ते प्रवक्ष्यामि शृणु स्वाऽघविनाशनम्
स्वरं विहरतस्तत्र ज्येष्ठस्थाने महेशितुः । कौतुकेनैव चिक्रीडशिवाकन्दुकलीलया
उदञ्चयञ्च दङ्गानां लाघवं परितन्वती । निःश्वासामोदमुदितभ्रमराकुलितेक्षणा
भ्रश्यद्भिमल्लसन्माल्यस्थपुटीकृतभूमिका ।

स्विद्यत्कपोलपत्रालीस्रघदम्बुकणोज्ज्वला ॥ २५ ॥

स्फुटञ्चोलांशुकपथनिर्यदङ्गप्रभावृता । उल्लसत्कन्दुकास्फालातिशोणितकराम्बुजा
कन्दुकानुगसद्बुद्धिनर्तितभ्रूलताञ्जला । मृडानी किलखेलन्ती ददूरो जगदम्बिका ॥
अन्तरिक्षवराभ्याञ्चदितिजाभ्यामनोहरा । कटाक्षिताभ्यामिवधैसमुपस्थितमृत्युना
विदलोत्पलसञ्जाभ्यां दृप्ताभ्यां वरतो विधेः ।

सृणीकृतत्रिजगतीपुरुषाभ्यां स्वदोर्षलात् ॥ २६ ॥

देवीपरिजिहीर्षु तौ विषमेषु प्रपीडितौ । दिवोऽवतरतुः क्षिप्रमायां स्वीकृत्य शाम्भरीम्
धृत्वा पारयर्षीं मूर्तिमायातावम्बिकान्तिकम् । तावत्यन्तं सुदुष्टं चावतिषञ्जलमानसौ
सर्वज्ञेन परिह्वतात्वाञ्जलया लोषनोद्भवात् । कटाक्षिताथ देवेन दुर्गा दुर्गारिघातिनी
विज्ञाय नैत्रसङ्घां तु सर्वज्ञार्थशरीरिणी । तेन च कन्दुकेनाथ युगपश्चिजघानतौ ॥
महाबलौ महादेव्या कन्दुकेन समाहतौ । परिभ्रम्य परिभ्रम्य तौ दुष्टौ विनिपेततुः
वृन्तादिव फले पक्वे तालादनिललोलिते । दम्भोलिना परिहृते शृङ्गे इव महागिरेः
तौ निपात्य महादैत्यावकार्यकरणोद्यतौ । ततः परिणतिं यातो लिङ्गरूपेण कन्दुकः
कन्दुकेश्वरसङ्घं च तं लिङ्गमभवत्तदा । ज्येष्ठेश्वरसमीपे तु सर्वदुष्टनिवारणम् ॥३७

कन्दुकेशसमुत्पत्तिं यः श्रोष्यति मुदान्वितः ।

पूजयिष्यति यो भक्तस्तस्य दुःखभयं कुतः ॥ ३८ ॥

कन्दुकेश्वरभक्तानां मानवानाञ्चिरेनसाम् । योगक्षेमं सदा कुर्याद्भवानीभयनाशिनी ॥
मृडानी तस्य लिङ्गस्य पूजां कुर्यात्सदैव हि ।

तत्रैव देव्याः साञ्चिध्यं पार्वत्या भक्तसिद्धिदम् ॥ ४० ॥

कन्दुकेशमहालिङ्गं काश्यां यैर्न समर्चितम् ।

कथं तेषां भवानीशौ स्यातां सर्वेप्सितप्रदौ ॥ ४१ ॥

द्रष्टव्यं च प्रयत्नेन तल्लिङ्गं कन्दुकेश्वरम् । सर्वोपसर्गसङ्घातविघातकरणं परम् ॥
कन्दुकेश्वरनामापि श्रुत्वा बृजिनसन्ततिः । क्षिप्रं क्षयमवाप्नोतितमः प्राप्योष्णगुं यथा

स्कन्द उवाच

संश्रुणुष्व महाभाग ज्येष्ठेश्वरसमीपतः । यद्ब्रुवन्तमभूद्विप्रपरमाश्रयं कृद् ध्रुवम् ॥
दण्डबाते महातीर्थं देवर्षिपितृत्सिदे । तप्यमानेषु विप्रेषु निष्कामं परमन्तपः ॥

दैत्या दुन्दुभिनिर्हादो दुष्टः प्रहादमातुलः । देवाः कथं सुजेयाः स्युरित्युपायमचिन्तयत्
किं बलाञ्च किमाहाराः किमाधारा हि देवताः ।

विचार्य बहुशो दैत्यस्तस्त्वं विज्ञाय निश्चितम् ॥ ४७ ॥

अवश्यमप्रजन्मानो हेतवोऽत्र विचारतः । ब्राह्मणं हन्तुमसकृत्कृतवानुद्यमं ततः ॥

पञ्चदशतमोऽध्यायः] * दैत्यदुर्वृत्तशमनायशिवाभिर्भाषवर्षर्षणम् * ४६५

यतः क्रतुभुजो देवाःऋतवो वेदसम्भवाः । तेवेदाब्राह्मणाधीनास्ततो देवबलं द्विजाः
निश्चितं ब्राह्मणाधाराःसर्वेऋदाःसषासवाः । गीर्वाणाब्राह्मणबलान्नात्रकार्याविचारणा
ब्राह्मणा यदिनष्टाःस्युर्वेदानष्टास्ततः स्वयम् । आम्नायेषु प्रणष्टेषु चिनष्टाःशततन्तवः
यज्ञेषु नाशंगच्छत्सुहृताहारास्ततः सुराः । निबंलाःसुखजेयाःस्युर्जितेषु त्रिदशेष्वथ
अहमेव भविष्यामि मान्यस्त्रिजगतीपतिः । आहरिष्यामिदेवानामक्षयाःसर्वंसम्पद्ः
निर्वेक्ष्यामिसुखान्येषराज्येनिहतकण्टके । इतिनिश्चित्यदुर्वृत्तिःपुनश्चित्तघान्मुने
द्विजाः क्व सन्ति भूयांसो ब्रह्मतेजोऽतिवृंहिताः ।

श्रुत्यध्ययनसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ ५५ ॥

भूयसांब्राह्मणानां तुस्थानंवारानसीभवेत् । तानादावुपसंहृत्ययामितीर्थान्तरन्ततः
यत्र यत्र हि तीर्थेषु यत्र यत्राश्रमेषु च । सन्ति सर्वेऽप्रजन्मानस्तेमयाद्याःसमन्ततः
इति दुन्दुभिनिर्हादो मतिं कृत्वा कुलोचिताम् ।

प्राप्याऽपि कार्शीं दुर्वृत्तो मायावी न्यवधीद् द्विजान् ॥ ५८ ॥

समित्कुशान्समादातु यत्र यान्ति द्विजोत्तमाः ।

अरण्ये तत्र तान्सर्वान्स भक्षयति दुर्मतिः ॥ ५९ ॥

यथा कोऽपिनवेस्येव तथाच्छन्नोऽभवत्पुनः । वनेवनेष्वरो भूत्वा यादोरूपी जलाशये
अदृश्यरूपी मायावी देवानामप्यगोचरः । दिवाध्यानपरस्तिष्ठेन्मुनिवन्मुनिमध्यगः
प्रवेशमुटजानाञ्च निर्गमञ्च बिलोकयन् । यामिन्यांव्याघ्ररूपेण ब्राह्मणान्भक्षयेद्बहून्
निःशब्दमेव नयति नत्यजेदपि कीकसम् । इत्थंनिपातिताविप्रास्तेन दुष्टेन भूरिशः
एकदाशिवरात्रौतुभक्तस्त्वेकोनिजोऽजे । सपर्यादेवदेवस्यकृत्वाध्यानस्थितोऽभवत्
सच दुन्दुभिनिर्हादो दैत्येन्द्रो बलदर्पितः । व्याघ्ररूपंसमास्थाय तमादातुं मतिं दधे
तम्भक्तं ध्यानमापन्नंद्दृढचित्तंशिवेक्षणे । कृताख्यमन्त्रविन्यासं सङ्कान्तुमशकन्न सः
अथसर्वगतःशम्भुर्हात्वा तस्याशयं हरः । दैत्यस्यदुष्टरूपस्य वधायविदधे धियम्
यावदादित्सतिव्याघ्रस्तावदाविरभूद्धरः । जगद्रक्षामणिलख्यक्षो भक्तरक्षणदक्षधीः
रुद्रमायान्तमालोक्य तद्भक्तार्चितलिङ्गतः । दैत्यस्तेनैव रूपेण ववृधे भूधरोपमः ॥

सत्त्वहमथ सर्वज्ञं यावत्पश्यति दानवः । तावदायान्तमादाय कक्षायन्त्रेन्यपीडयत्
 पञ्चास्यस्त्वथ पञ्चास्यम्मुष्टयामूर्धन्यताडयत् । सत्त्वतेनैव रूपेण कक्षानिष्पेषणेन च
 अत्यार्तमरटव्याघ्रो रोदसी परिपूरयन् । तेन नादेन सहसा सम्प्रवेपितमानसाः ॥
 तपोधनाः समाजमुर्निशि शञ्चानुसारतः । तत्रेश्वरं समालोक्य कक्षीकृतमृगेश्वरम्
 तुष्टुबुः प्रणताः सर्वे शवं जयजयाक्षरैः । परित्राता जगत्त्रातः प्रत्यूहाद्वारुणादितः
 अनुग्रहं कुरुष्वेश तिष्ठात्रैव जगद्गुरो ! । अनेनैव हि रूपेण व्याघ्रेश इति नामतः ॥
 कुरुरक्षा महादेव ! ज्येष्ठस्थानस्य सर्वदा । अन्येभ्योऽप्युपसर्गेभ्योरक्ष नस्तार्थवासिनः
 इति श्रुत्वा च स्तेषा देवश्चन्द्रविभूषणः । तथेत्युक्त्वा पुनः प्राह शृणु ध्वं द्विजपुङ्गवाः
 यो मामनेन रूपेण द्रक्ष्यति श्रद्धयाऽत्र वै । तस्योपसर्गं सङ्घतघातयिष्याम्यसंशयम्
 एतल्लिङ्गं समभ्यर्च्य यो याति पथिमानवः । चौरव्याघ्रादि सम्भूतम्भयं तस्य कुतो भवेत्
 मञ्चरित्रमिदं श्रुत्वा स्मृत्वा लिङ्गमिदं हृदि । संग्रामे प्रविशन्मर्त्यो जयमाप्नोति नान्यथा
 इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गे लयं ययौ ।

सचिस्मयास्ततो घिप्राः प्रातर्याता यथागतम् ॥ ८१ ॥

स्कन्द उवाच

तदा प्रभृति कुम्भोत्थलिङ्गं व्याघ्रेश्वरामिधम् । ज्येष्ठेशादुत्तरेभागे दृष्टं स्पृष्टं भयापहम्
 व्याघ्रेश्वरस्य ये भक्तास्तेभ्यो बिभ्यति किङ्कराः ।

यामा अपि महाक्रूरा जयजीवेति वादिनः ॥ ८३ ॥

पराशरेश्वरादीनां लिङ्गानामिह सम्भषम् । श्रुत्वा नरो न लिप्येत महापातककर्दमैः
 कन्दुकेशसमुत्पत्तिं व्याघ्रेशाचिर्मवं तथा । समाकर्ण्य नरो जातु नोपसर्गः प्रदूयते ॥
 उटजेश्वरलिङ्गन्तु व्याघ्रेशात्पश्चिमे स्थितम् । भक्तरक्षार्थमुद्भूतं स्यात्समभ्यर्च्य निर्भयः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
 पराशरेश्वरादिकन्दुकेशव्याघ्रेश्वरादिलिङ्गसम्भषोनाम पञ्चवष्टितमोऽध्यायः ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः शैलेशादिलिङ्गनिर्णयवर्णनम्

स्कन्द उवाच

ज्येष्ठेश्वरस्य परितो लिङ्गान्यग्यानि यानि तु ।

तानि ते कथयिष्यामि शृणु वा तापितापन ॥ १ ॥

ज्येष्ठेशाद्दक्षिणे भागे लिङ्गमप्सरसांशुभम् । तत्रैवाप्सरसः कूपःसौभाग्योदकसंज्ञकः
तत्कूपजलसुस्नातो विलोक्याप्सरसेश्वरम् । नदीर्भाग्यमवाप्नोति नारी वा पुरुषोथवा
तत्रैव कुक्कुटेशाख्यं लिङ्गं चापीसमीपगम् । तस्य पूजनतः पुंसां कुटुम्बं परिधर्षते
पितामहेश्वरं लिङ्गं ज्येष्ठवापीतटे शुभम् । तत्र श्राद्धं नरः कृत्वा पितृणां मुदमर्षयेत्
पितामहेशांश्रुत्यां पूजनीयप्रयत्नतः । गदाधरेश्वरं लिङ्गं पितृणां परितृप्तिदम्
दिशिपुण्यजनाख्यायां लिङ्गाज्ज्येष्ठेश्वरान्मुने । वासुकीश्वरसंज्ञञ्च लिङ्गमच्यंसमन्ततः

तत्र वासुकिकुण्डे च स्नानदानादिकाः क्रियाः ।

सर्पभीतिहराः पुंसां वासुकीशप्रभावतः ॥ ८ ॥

यः स्नातो नागपञ्चम्यां कुण्डे वासुकिसञ्ज्ञिते । न तस्य विषसंसर्गो भवेत्सर्पसमुद्भवः
कर्तव्या नागपञ्चम्यां यात्रावर्षासु तत्र वै । नागाः प्रसन्ना जायन्ते कुले तस्यापि सर्वदा
तत्कुण्डात्पश्चिमे भागे लिङ्गं वै तक्षकेश्वरम् ।

पूजनीयं प्रयत्नेन भक्तानां सर्वसिद्धिदम् ॥ ११ ॥

मुने तस्योत्तरे भागे कुण्डं तक्षकसञ्ज्ञितम् । कृतोदकक्रियस्तत्र न सर्पैरभिभूयते
तत्कुण्डादुत्तरे भागे क्षेत्रक्षेमकरः सदा । भक्तानां साध्वसध्वंसीकपालीनामभैरवः
भैरवस्य महाक्षेत्रं तद्वै साधकसिद्धिदम् ।

तत्र संसाधिताविद्या षण्मासात्सिद्धिमाप्नुयुः ॥ १४ ॥

सत्रषण्डीमहामुण्डाभक्तविघ्नोपशान्तिदा । बलिपूजोपहाराद्यैः पूज्यास्वाभीष्टसिद्धये

तस्या यात्रां तु यः कुर्यान्महाष्टभ्यां नरोत्तमः ।

यशस्वी पुत्रपौत्राढ्यो लक्ष्मीवांश्चापि जायते ॥ १६ ॥

महामुण्डा प्रतीच्यां तु चतुःसागरवापिका ।

तस्यां स्नातो भवेत्स्नातःसागरेषु चतुर्ष्वपि ॥ १७ ॥

महाप्रसिद्धं तत्स्थानं चतुःसागरसञ्ज्ञितम् ।

चत्वारि तत्र लिङ्गानि सागरैः स्थापितानिऽथ ॥ १८ ॥

तस्या वाप्याश्चतुर्दिक्षु पूजितानि दहन्त्यथम् । तदुत्तरेमहालिङ्गं वृषभेश्वरसञ्ज्ञितम्
हरस्य वृषभेणैव स्थापितं तत्स्वभक्तितः ।

तस्य दर्शनतः पुंसां षण्मासान्मुक्तिरुद्भवेत् ॥ २० ॥

वृषेश्वरादुदीच्यां तुगन्धर्वेश्वरसञ्ज्ञितम् । गन्धर्वकुण्डंतत्प्राच्यांतत्रस्नात्वानरोत्तमः
गन्धर्वेश्वरमभ्यर्च्य दक्षा दानानिशक्तितः । सन्तर्प्यपितृदेवांश्च गन्धर्वैः सह मोदते
कर्काटनामा नागोऽस्ति गन्धर्वेश्वरपूर्वतः । तत्र कर्कोटवापीच लिङ्गं कर्कोटकेश्वरम्
तस्यां वाप्यां नरः स्नात्वा कर्कोटिशं समर्च्यथ ।

कर्कोटनागमाराध्य नागलोके महीयते ॥ २४ ॥

कर्कोटनागो यद्द्रष्टस्तद्वाप्यां चिहितोदकैः । क्रमते नचिपं तेषां देहे स्थावरजङ्गमम्
कर्कोटेशात्प्रताच्यान्तु धुन्धुमारीश्वरामिधम् ।

तल्लिङ्गाभ्यर्चनत्पुंसां न भवेद्द्वैरिजम्भयम् ॥ २६ ॥

पुकरवेश्वरं लिङ्गं तदुदीच्यां व्यथस्थितम् । द्रष्टव्यन्तत्प्रयत्नेन चतुर्धंगफलप्रदम्
दिग्गजेनार्चितं लिङ्गं सुप्रतीकेन तत्पुरः । सुप्रतीकेश्वरं नाम्ना यशोबलविधर्धनम्
सरश्च सुप्रतीकाख्यं तत्पुरो भासते महत् ।

तत्र स्नात्वा च तल्लिङ्गं दृष्ट्वा दिक्पतितां लभेत् ॥ २६ ॥

तत्रास्त्येका महागौरी नाम्ना चिजयभैरवी । रक्षार्थमुत्तरद्वारिस्थितापूजयेष्टसिद्धये
षरणायास्तटे रभ्येगणौ हुण्डनमुण्डनी । क्षेत्ररक्षांविधत्तस्तौविघ्नस्तम्भनकारकौ
तौ द्रष्टव्यौ प्रयत्नेन क्षेत्रनिर्विघ्नहेतवे । हुण्डनैशम्मुण्डनैश्च तत्र दृष्ट्वा सुखीभवेत्

स्कन्द उवाच

इत्थलारे कथामेकां शृणुष्वभावहितोभव । वरणायास्तटे रम्ये यद्भृत्त्वं पूर्वमुत्तमम्
एकदाद्रीन्द्रमालोक्यमेनासंहृष्टमानसम् । उमासंस्मृत्यनिःश्वस्यप्रोवाचेतिपतिव्रता

मेनोवाच

आर्यपुत्र! न जानामि प्रवृत्तिमपि काञ्चन । विवाहसमयादूर्ध्वं तस्यागौर्यागिरीश्वर
सवृषेन्द्रगतिर्देवो भस्मोरगविभूषणः । महापितृवनावासो दिग्वासाःकास्तिसम्प्रति
अष्टौ यामातरो दृष्टाब्राह्मीप्रभृतयःप्रिय !। स्वस्वरूपास्तामन्येऽहंबालिकाःकष्टहेतवः

तस्यैकस्य न कोऽप्यन्योऽस्त्यद्वितीयस्य शूलिनः ।

तदुदन्तप्रवृत्त्यै च क्रियतामुद्यमो विभो !॥ ३८॥

तस्याःप्रियायावाक्येनतदपत्यप्रियोगिरिः । उवाचवचनंसास्त्रमुमावात्सल्यसन्नगीः

गिरिराज उवाच

अहमेवगमिष्यामि तस्या मेने! गवेषणे । नितरांबाधतेप्रेम तददृष्ट्यग्निदूषितम्
यदाप्रभृति सा गौरी निर्गता मम सद्यतः । मन्ये मेनेतदारभ्यपद्मसद्गुमाघिनिर्ययी
तदालापासृतधर्यौ नमे शब्दग्रहौप्रिये । प्राणेश्वरि! तदारभ्यस्यातां शब्दान्तरग्रहौ

जैवातुकी यतोऽहः स्याद् दूरीभूताद्गुशोर्मम ।

अहो जैवातुकीज्योत्स्ना ततोऽहोऽतिदुनोति माम् ॥ ४३ ॥

इत्युक्त्वाऽऽदायरत्नानिघासांसिधिविधानिच । धराधरेन्द्रोनिर्यातः शुभलग्नबलोदये

अगस्त्य उवाच

कानिकानिचरत्नानिकियन्त्यपिच षण्मुख !। यान्यादायप्रतस्थेसतानिमेग्रूहिपृच्छतः

स्कन्द उवाच

तुलामुकाफलानां तु कोटिद्वयपरीमिताः । तथावारितराणांचहीरकाणान्तुलाशतम्
नवलक्षाधिकंविप्रषड्स्त्राणांसुतेजसाम् । लक्षद्वयं विदूराणान्तुला चिमलवर्धसाम्
कोटयः पद्मरागाणांपञ्चा वै हि तुलामुने । पुष्परगतुला लक्षं गुणितंनवसङ्ख्यया
तथागोमेदरत्नानां तुलालक्षमिता मुने !। इन्द्रनीलमणीनांचतुलाःकोट्यर्धसम्भिताः

गरुडोद्धाररत्नानां तुलाः प्रयुतसम्मिताः । शुद्धविद्रुमरत्नानां तुलाश्च नवकोटयः

अष्टाङ्गाभरणानां च सङ्ख्या कर्तुं न शक्यते ।

वाससां च विचित्राणां कोमलानां तथा मुने ! ॥ ५१ ॥

चामराणि च भूयांसि द्रव्याण्यामोदवन्ति च ।

सुवर्णदासदास्यादीन्यसंख्यातानि वै मुने ! ॥ ५२ ॥

सर्वाण्यपि समादाय प्रतस्थे भूधरेश्वरः । आगत्य घरणातीरं दूरात्काशीमलोक्यत्

अनेकरत्ननिचयैः खञ्जिताऽखिलभूमिकाम् ।

नानाप्रासादमाणिष्यज्योतिस्तततताम्बराम् ॥ ५४ ॥

सौध्राग्रविचिधस्वर्णकलशोज्ज्वलदिङ्मुखाम् ।

जयन्ती वैजयन्तीनां निकरैस्त्रिदिग्स्थलीम् ॥ ५५ ॥

महासिद्धयष्टकस्यापि क्रीडाभवनमद्भुतम् । जितकल्पद्रुमघनां वनैः सर्वफलावनैः

इतिकाशीसमृद्धिसखिलोक्याभूद्विलज्जितः । उवाचघमनस्येव भूधरेन्द्र इदं वचः ॥

प्रासादेषु प्रतोलीषु प्राकारेषु गृहेषु च । गोपुरेषु विचित्रेषु कपाटेषु तटेष्वपि ॥

मणिमाणिष्यरत्नानामुच्छलञ्चारुरोचिवाम् ।

ज्योतिर्जालैर्जटिलितं यथेदमवलोक्यते ॥ ५६ ॥

द्यावाभूम्योरन्तरालन्तथेतिसमवैभ्यहम् । ईदृक्सम्पत्तिसम्भारःकुबेरस्यापि नो गृहे

अपिचैकुण्ठभुवने नेतरस्येह का कथा । इति यावद्विरीन्द्रोऽसौ संभावयति चेतसि

तावत्कार्पाटिकः कश्चित्सल्लोचनपथंगतः । आहूय बहुमानंतमपृच्छञ्चाचलेश्वरः ॥

हिमवानुवाच

हंहो कार्पाटिकश्रेष्ठ! अध्यास्त्वैतदिहासनम् ।

स्वपुरोदन्तमाख्याहि किमपूर्वमिहाऽध्वग ! ॥ ६३ ॥

कोऽत्र सम्प्रत्यधिष्ठाता किमधिष्ठातृचेष्टितम् ।

यदि जानासि ततत्सर्वमिहाचक्ष्व ममाग्रतः ॥ ६४ ॥

सोपिकार्पाटिकस्तस्यगिरिराजस्यभाषितम् । समाकर्ण्य समाचष्टुं मुनेसमुपचक्रमे

कार्पटिक उवाच

आचक्षे शृणुराजेन्द्र यत्पृष्टोऽस्मि त्वयाऽखिलम् ।

अहानि पञ्चषाप्येष व्यतिक्रान्तानि मानद ! ॥ ६६ ॥

समायाते जगन्नाथे पर्वतेन्द्रसुतापतौ । सुन्दरान्मन्दरावद्रे दिवोदासे गते दिशि ॥

योवैजगदधिष्ठातासोऽधिष्ठाताऽत्रसर्वगः । सर्वदृक्सर्वदःशर्वःकथं न ज्ञायते चिमो

मन्ये दूषत्स्वरूपोऽसि दूषदोऽपि कठोरधीः ।

यतो विश्वेश्वरं काश्यां न वेत्सि गिरिजापतिम् ॥ ६६ ॥

स्वभावकठिनात्माऽपि स वरं हिमवान् गिरिः ।

प्राणाधिकसुतादानाद्योऽधिनोद्विध्वनायकम् ॥ ७० ॥

विभ्रत्सहजकाठिन्यं जातो गौरीगुरुगुरुः । शम्भुं प्रपूज्य सुतया ह्यजाविश्वगुरोरपि

चेष्टितन्तस्य कोवेदवेदवेद्यस्य चेशितुः । मनागितिच जानेहं तच्चेष्टितमिदं जगत्

अधिष्ठातामयाख्यातस्तथाधिष्ठातुचेष्टितम् । अपूर्वयत्त्वयापृष्टं तदाख्यामिचतच्छृणु

शुभेज्येष्टेश्वरस्थानेसाम्प्रतं सउमापतिः । काशीं प्राप्यमुदातिष्ठेद्विरिराजाङ्गजासखः

स्कन्द उवाच

यदायदासगिरिजा मृदुनामाक्षरामृतम् । आविष्करोतिपधिकोऽद्रीन्द्रोहृष्येत्तदातदा

उमा नामामृतम्पीतं येनेह जगतीतले । न जातु जननीस्तन्यं स पिबेत्कुम्भसम्भव

उमेति दृश्यक्षरंमन्त्रं योऽहर्निशमनुस्मरेत् । न स्मरेच्चित्रगुप्तस्तं कृतपापमपि द्विज !

पुनः शुश्राव हिमवान् हृष्टः कार्पटिकोदितम् ।

कार्पटिक उवाच

राजन्विश्वेश्वरार्थं यः प्रासादो विश्वकर्मणा ॥ ७८ ॥

निर्मोयतेसुनिर्माणो जन्मनिर्वाणदायिनः । तदपूर्वैर्नकर्णाभ्यामप्याकर्णितवानहम्

यत्रातिमिन्नतेजोमिः शलाकामिः समन्ततः ।

मणिप्राणिक्वरत्नानां प्रासादे भित्तयः कृताः ॥ ८० ॥

यत्र सन्ति शतं स्तम्भा भास्वन्तो द्वादशोत्तराः ।

एकैकम्भुवनं धर्तुमष्टाष्टाचितिकल्पिताः ॥ ८१ ॥

अतुर्वशसु याशोभाविष्टपेषु समन्ततः । तस्मिन्विमाने सास्तीहशतकोटिमुणोत्तरा
चन्द्रकान्तमणीनाञ्च स्तम्भाधारशिलाश्च याः ।

चित्ररत्नमयैः स्तम्भैः स्तम्भितास्तत्प्रभाभराः ॥ ८२ ॥

पद्मरागेन्द्रनीलानां शालीनाः शालभञ्जिकाः । नीराजयन्त्यहोरात्रं यत्ररत्नप्रदीपकैः
स्फुरत्स्फटिकनिर्माणश्लक्ष्णपद्मशिलातले । अनेकरत्नरूपाणिविचित्राणिसमन्ततः
आरक्तपीतमञ्जिष्ठनीलकिर्मोरवर्णकैः । विन्यस्तानीव भासन्ते चित्रे चित्रकृता यतः

दृक् पिच्छिला विलोक्यन्ते माणिक्यस्तम्भराजयः ।

यतोऽचिमुक्ते स्वक्षेत्रे मोक्षलक्ष्म्यङ्कुरा इव ॥ ८३ ॥

रत्नाकरेभ्यःसर्वेभ्योगणारत्नोच्चयान्बहून् । राशींश्चक्रुःसमानीययत्राद्रिशिखरोपमान्
यत्रपातालतलतो नागानां कोशवेश्रमतः । गणैर्मणिगणाः सर्वे समाहृत्यगिरीकृताः
शिवभक्तःस्वयंयत्र पौलस्त्यःस्वद्रिकूटतः । कोटिहाटककूटानिआनयामासराक्षसैः

प्रासादनिर्मितिं श्रुत्वा भक्ता द्वीपान्तरस्थिताः ।

माणिक्यानि समाजहुर्यंधासंख्यान्यहो नृप ! ॥ ९१ ॥

चिन्तामणिः स्वयं यत्र कर्मणे चिन्वकर्मणे ।

चित्राणयेदहोरात्रं चिचित्रांश्चिन्तितान्मणीन् ॥ ९२ ॥

नानावर्णपताकाश्च यत्रकल्पमहीरुहः । अनल्पाः कल्पयन्त्येव नित्यम्भक्तिसमन्विताः
अर्धयो यत्रसततंदधि क्षीरैर्भ्रुसर्पिषाम् । पञ्चामृतानांकलशैः स्नपयन्ति दिने दिने
यत्र कामदुघा नित्यं स्नपयेन्मधुधारया ।

स्वदुग्धया स्वयम्भक्त्या विश्वेशं लिङ्गरूपिणम् ॥ ९५ ॥

गन्धसाररसैर्यश्च सेवते मलयाचलः । कर्पूररम्भाकर्पूरैर्भक्त्या निषेवते ॥ ९६ ॥
इत्याद्यपूर्वयत्रास्ति प्रत्यहं शङ्करालये । कथं तं त्वमुमाकान्तं न वेत्सि कठिनाशयः
इतितस्य समृद्धिं तां दृष्ट्वा जामातुरद्विराट् । त्रपया परिभूतोऽभून्नितरांकुम्भसम्भव
तस्मै कार्पटिकायाथ स दत्त्वा पारितोषिकम् ।

पुनश्चिन्तापरो जातोऽद्विराट् कार्पाटिके गते ॥ ६६ ॥

उवाचेतिमनस्यैवचिस्मयोत्कुल्लोचनः । अहोभद्रमिदंजातं यस्त्वयाऽश्रावि शर्मभाक्
यावत्सम्पत्तिसंभारः श्रूयते दृश्यतेऽत्र वै । जामातुरत्र सद्ने लीला त्रिजगतीपतेः ॥
ततःप्राभृतकस्तुच्छो नितरांप्रतिभातिमे । कन्यार्थयोमयानीतोजामातुःपरितोषकृत्
अहंमन्येतथैवाऽसौयथादर्शि मया पुरा । वृद्धोक्षमात्र सम्पत्तिः सर्वकर्मपराङ्मुखः
नैनंकोपिविजानीयाश्रान्त्वयोऽस्य कदाचन । नामापियस्य नैकंश्च किंदेशीयश्चनोह्यते
किंवृत्तश्चकिमाधारोनाममात्रेण चेश्वरः । ऐश्वर्यसूचकं वस्तुयस्य किञ्चिन्न लक्ष्यते
सोऽसौनिर्वाणसम्पत्तिरङ्कायापिदात्यहो । सुमुखःसर्वकर्माणिफलवन्तिकरोतिसः
वेदवेद्योहिःसर्वज्ञो यत्सन्तानोऽखिलं जगत् । यनकोपिहिःवेदादौ वेदवेद्यः सएष वै
योऽनभिज्ञः सदाज्ञातः स सर्वज्ञोऽयमेव हि । यस्यैकमपिनोनामपुंसाज्ञेर्यनकेनचित्
सर्वेषां सर्वनामानि यस्य नामानि निश्चितम् ।

सोऽसौ हि सर्वदेशीयः सर्वैभ्यः सर्वसिद्धिदः ॥ १०६ ॥

यस्यदेशोनविदितो यस्तुवृत्तिपराङ्मुखः । आधारहीनमिव यं पुराऽपश्यंकारोरधीः
श्रुतिस्मृतीयतः सर्वमाचारं वित्तएवहि । नाममात्रेण नियतं यमज्ञासिपमीश्वरम् ॥
साक्षादीश्वरएवैष सोऽन्येष्वैश्वर्यसूचकः । अपिसर्वगुणाधारो गुणातीतः परापरः ॥
अर्वाचीनइहाप्येष पराचीनः परात्परः । भूधराणामहं नाथो विश्वनाथ उमापतिः ॥
अहं प्रमितसम्पत्तिरप्रमेयधनो हासौ । तुच्छप्राभृतकस्तस्मान्नेदानीमस्य दर्शनम्
करिष्येऽथ करिष्यामि व्यावृत्त्यागत्य कर्हिचित् ।

संप्रधार्येति मनसि सायं स च गिरीश्वरः ॥ ११५ ॥

आह्वयसर्वाननुगान्पार्श्वतीयान्महाबलान् । आदिष्टवानिदंवाक्यं सर्वं यूयं बलाधिकाः
कुर्वन्त्वेकंममादेशं यावन्नोद्यति भानुमान् । तावच्छिवाललयंशैवं विदधत्वत्र सत्वरम्
यस्मिन्कृतेकृतार्थःस्यामिहलोके परत्र च । समागत्येहकाश्यायःकुर्यादेकंशिवाललयम्
तेनत्रैलोक्यमखिलंसालयं कृतमेवहि । तेनदत्तानि दानानि महान्ति विधिपूर्वकम् ॥
सुपर्वणिसुपात्राय सुतीर्थैश्चद्वयाधिकम् । येन स्वचित्तमानेन धर्मोपार्जितवित्ततः ॥

कृतंशम्भोर्महासद्य नतंपद्मात्यजेत्कचित् । तपांसितेनतप्तानि शीर्णपर्णाशनान्यपि
 वाराणसीसमासाद्ययेनाऽकारिशिवालयः । अशेषाःसुविशेषाढ्याइष्टास्तेनमहामखाः
 आनन्दकानने येन देवदेवालयः कृतः । इति तस्य समादेशं समाकर्ण्यानुगास्ततः
 चक्रुर्देवालयंश्रेष्ठंयावद्द्व्युष्टा न यामिनी । तावच्छैलेश्वरं लिङ्गं शैलेशेन प्रतिष्ठितम्
 चन्द्रकान्तमणेश्चञ्चत्कान्तिश्वेतितमण्डपम् ॥ १२४ ॥

अलेखयत्प्रशस्तिञ्च प्रशस्ताक्षरमालिनीम् ।

व्याचक्षाणां निजां सर्वगोत्रेभ्योऽप्यधिकोन्नतिम् । १२५ ।

ततोऽरुणोदये जातेस्नात्वापञ्चनदे हृदे । शैलराजः कालराजं नमस्कृत्य समर्च्य च
 तत्रराशिसमुत्सृज्य परितस्त्वरितो ययौ । पार्वतीयैरनुगतः सर्वैरपि निजालयम्
 ततःप्रातः समालोक्य गणौहुण्डनमुण्डनौ । हृष्टौ देवालयंरयं वरणायास्तटे शुभे
 अदृष्टपूर्वं देवाय निवेदयितुमागतौ । तौ तु दृष्ट्वामहादेवमुमादर्शितदर्पणम् ॥ १२६ ॥
 प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कृताञ्जलिपुटौ गणौ । कृताभ्यनुज्ञौ भ्रूक्षेपाद्विह्वलमथ चक्रतुः
 देवदेव न जानीषः केनचिद् दृढभक्तिना । अतीवरम्यःप्रासादो निर्मितो वरणातटे
 आसायं नेक्षि चावाभ्यां दृष्टोऽद्यैव प्रगे विभो !

गणोदितमितीशानो निशम्याऽऽह गिरीन्द्रजाम् ॥ १३२ ॥

विज्ञातसर्ववृत्तान्तः सर्वज्ञोऽप्यनभिन्नवत् । अचलेन्द्राङ्गजेयावस्तत्प्रासादविलोकने ॥
 इत्युक्त्वेशः सगिरिजोनिरगात्सगणो मुने । महास्यन्दनमारुह्यप्रासादंद्रष्टुमुत्सुकः
 अथाऽऽलुलोके गिरिशः प्रासादं वरणातटे । अतीववरम्यरत्नंयामिनीमात्रनिर्मितम्
 स्यन्दनादवरुह्याथ गर्भागारमघीविशत् । ददर्शचमहालिङ्गं चन्द्रकान्तशिलामयम्
 देदीप्यमानं महसा मोक्षलक्ष्म्यङ्कुराकृति । दृष्टिप्रसादजननं पुनर्जननशासनम् ॥
 केनेदंस्थापितं लिङ्गं यावज्जिज्ञासतीश्वरः । तावद्दशंपुरतःप्रशस्तिं कर्तुं सूचिकाम्
 वाचयित्वेष च मनाङ्गमनस्येष मनोजहत् ।

उवाच देवी दिष्ट्येति प्रेक्षस्वात्मपितुः कृतिम् ॥ १३६ ॥

उमाश्रुत्वैतिसंहृष्टा कदम्बकुसुमश्रियम् । आनन्दाङ्कुरलक्ष्मीवदङ्गेषु परिबिभ्रती ॥

ततोव्यजिह्वपद्मेवं देवीपादौ प्रणम्य च । अस्मिँल्लिङ्गवरेनाथत्वया स्थेयमहर्निशम्
 अस्यलिङ्गस्ययेभक्ताः शैलेशस्यमहेशितुः । तेभ्यस्त्वं महतीमृद्धिदास्यसीहपरत्रघ
 तथेतिदेवउत्तातांपार्वतीं पुनरब्रवीत् । वरणायां कृतस्नानैः शैलेशो यैः समर्चितः
 पितृन्सन्तर्प्य च मुदादत्त्वादानानि शक्तिः । न तेषां पुनरावृत्तिरत्रसंसारवर्त्मनि
 शैलेश्वरेमहालिङ्गे नित्यंस्थास्याम्यहं शुभे !। प्रदास्यामिपरांमुक्तिमेतलिङ्गाच्चकेजने
 शैलेश्वरं ये द्रक्ष्यन्ति वरणायाः सुरोधसि ।

तेषां काश्यां निवसतां दुःखं नाभिभविष्यति ॥ १४६ ॥

उमयाऽपि वरो दत्तस्तत्रलिङ्गे घटोद्भव !। शैलेश्वरस्य ये भक्तास्तेमे पुत्रा न संशयः
 स्कन्द उवाच

इतिशैलेश्वरं लिङ्गं कथितं ते महामुने !। इदानीं कथयिष्यामि रत्नेश्वरसमुद्भवम्
 श्रुत्वाशैलेशमाहात्म्यं श्रद्धयापरयानरः । पापकञ्चुकमुत्सृज्य शिवलोकमवाप्नुयात्
 इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकार्शातिसाहरुपां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
 शैलेशादिलिङ्गनिर्णयो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

—:—

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

रत्नेश्वरप्रशंसनवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

रत्नेश्वरसमुत्पत्तिं कथयस्व पदानन !। रत्नभूत महालिङ्गं यत्काश्यांपरिवर्ण्यते ॥
 कोस्य लिङ्गस्य महिमा केनैतच्च प्रतिष्ठितम् । एवंविस्तरतो ब्रूहिगौरीहृदयनन्दन!

स्कन्द उवाच

रत्नेश्वरस्यमाहात्म्यंकथयिष्यामितेमुने !। यथाचतस्यलिङ्गस्यप्रादुर्भावोऽभवद्भुवि
 श्रुतं नामापिलिङ्गस्य यस्य जन्मत्रयार्जितम् । वृजिनंनाशयेत्तस्य प्रादुर्भावंब्रुवमुने

शैलराजेन रत्नानि यानि पुञ्जीकृतान्यहो । उत्तरे कालराजस्य तानितस्यगिरेर्वृथात्
 सर्वरत्नमयं लिङ्गं जातं तत्सुकृतात्मनः । शक्रचापसमच्छायं सर्वरत्नद्युतिप्रभम्
 तल्लिङ्गदर्शनादेव ज्ञानरत्नमवाप्यते । शैलेश्वरं समालोक्य शिवौ तत्र समागतौ ॥
 यत्र रत्नमयं लिङ्गमाधिभूतं स्वयं मुने ! तस्य स्फुरत्प्रभाजालैस्ततमम्बरमण्डलम्
 तत्र दृष्ट्वा शुभंलिङ्गं सर्वरत्नसमुद्भवम् । भवान्यदृष्टपूर्वा हि परिपप्रच्छ शङ्करम् ॥
 देवदेव! जगन्नाथ ! सर्वभक्ताभयप्रद ! । कुतस्त्यमेतल्लिङ्गं हि सप्तपातालमूलवत् ॥
 ज्वालाजटिलिताकाशं प्रभ.भासितदिङ्मुखम् ।

किमाख्यां किंस्वरूपञ्च किं प्रभावम्भवान्तक ! ॥ ११ ॥

यस्य सम्बीक्षणादेव मनो मेऽतीवहृष्टवत् । इहैव रमते नाथ कथयंतत्प्रसादतः ॥
 देवदेव उवाच

शृण्वपर्णे समाख्यामियस्वयापृच्छिपार्वति ! । स्वरूपमेतल्लिङ्गस्यसर्वतेजोनिधेःपरम्
 तव पित्रा हिमवतागिरिराजेनभामिनि । त्वामुद्दिश्य महारत्नसंभारोऽत्राप्यनायिहि
 अत्र तानि च रत्नानिराशीकृत्यहिमाद्रिणा । सुकृतोपाजितान्येवययौस्वसदनंपुनः
 तवार्यंशाममार्यं वा श्रद्धयायत्समर्प्यते । काश्यां तस्यपरीपाकोभवेदीदृग्विधोऽनघे
 लिङ्गं रत्नेश्वराख्यं वै मत्स्वरूपं हि केवलम् ।

अस्य प्रभावो हि महान्वाराणस्यामुमे! ध्रुवम् ॥ १७ ॥

सर्वेषामिहलिङ्गानां रत्नभूतमिदं परम् । अतोरत्नेश्वरं नामपरं निर्वाणरत्नदम् ॥
 अनेनैव सुवर्णेन पित्राराशीकृतेन च । प्रासादमस्यलिङ्गस्य विधापय महेश्वरि!
 लिङ्गप्रासादकरणात् खण्डस्फुटिनसंस्कृतेः ।

लिङ्गस्थापनजं पुण्यं हेलयैवेह लभ्यते ॥ २० ॥

तथेतिभगवत्योक्तवागणाःप्रासादनिर्मितौ । सोमनन्दिप्रभृतयोऽसंख्याव्यापारितामुने
 गर्णेश्च काञ्चनमयो नानाकौतुकचित्रितः । निर्ममे याममात्रेण प्रासादोमेरुशृङ्गवत्
 देवीप्रहृष्टवदना दृष्ट्वा प्रासादनिर्मितिम् । गणेभ्योव्यतरद्भूरिस्सम्मानंपारितोषिकम्
 पुनश्चदेवी पप्रच्छ प्रणिपातपुरःसरम् । महिमानं महादेवं लिङ्गस्थास्य महामुने

देषवेष उवाच

लिङ्गं त्वनादिसंसिद्धमेतद्देविशुभप्रदम् । आविर्भूतमिदानीञ्चत्वत्पितुःपुण्यगौरवात्
गुह्यानां परमंगुह्यं क्षेत्रेऽस्मिन्निततप्रदम् । कलौकलुषबुद्धीनांगोपनीयं प्रयतनतः
यथारत्नं गुहे गुप्तं न कैश्चिज्जायते परैः । अविमुक्ते तथा लिङ्गं रत्नभूतं गुहेऽमम ॥

यानि ब्रह्माण्डमध्येऽत्र सन्ति लिङ्गानि पार्वति !

तैरर्चितानि सर्वाणि रत्नेशो यैः समर्चितः ॥ २८ ॥

प्रमादेनाऽपि यैर्गौरि! लिङ्गं रत्नेशमर्चितम् । ते भवन्त्येव नियतं सप्तद्वीपेश्वरानृपाः
त्रैलोक्ये यानि वस्तूनि रत्नभूतानि तानि तु ।

रत्नेश्वरं समभ्यर्च्य सकृत्प्राप्नोति मानवः ॥ ३० ॥

पूजयिष्यन्ति ये लिङ्गं रत्नेशं कामवर्जिताः ।

ते सर्वे मद्गुणा भूत्वा प्रान्ते द्रक्ष्यन्ति मामिह ॥ ३१ ॥

रुद्राणांकोटिजप्येन यत्फलं परिकीर्तितम् । तत्फलंलभ्यते देविरत्नेशस्यसमर्चनात्
लिङ्गे चानादिसंसिद्धे यद्दत्तं तद्ब्रवीमि ते । इतिहासं महाश्चर्यं सर्वपापनिहन्तनम्
पुरेह नर्तकी काचिदासीन्नाट्यार्थकोविदा ।

सैकदा फालगुने मासि शिवरात्र्या कलावती ॥ ३४ ॥

ननर्त जागरं प्राप्य जगौ गीतं च पेशलम् । स्वयंश्चवाद्यामासनानावाद्यानिवाद्यवित्
तेन तौर्यत्रिकेणापि प्रीणयित्वाऽथ सा नटी । रत्नेश्वरंमहालिङ्गंदेशमिष्टंजगामह
कालधर्मवशं याता तत्रसावरनर्तकी । सुता गन्धर्वराजस्य वसुभूतेर्बभूवह ॥३७ ॥

सङ्गीतस्य सवाद्यस्य तस्य लास्यस्य पुण्यतः ।

तत्रेशाग्रे कृतस्येह जागरे शिवरात्रिजे ॥ ३८ ॥

रम्या रत्नावली नामरूपलावण्यशालिनी । कलाकलापकुशला मधुरालापवादिनी
पितुरानन्दकृन्नित्यं वसुभूतेर्घटोद्भव ! । सर्वगान्धर्वकुशला गुणरत्नमहास्त्रिनिः ॥
सुनै! सखीत्रयं तल्याश्चारुचातुर्यमाजनम् । शशिलेखानङ्गलेखाच्चित्रलेखेति नामतः
तिसृभिस्तामिरेकत्र वाग्देवी परिशीलिता ।

ताभ्यःसर्वाः कलाःप्रादात्परिप्रीता सरस्वती ॥ ४२ ॥

प्राप्यरत्नावलीगौरिसाजगन्तन्तरवासनाम् । रत्नेश्वरस्यलिङ्गस्यजग्राहनियमंशुभम्
रत्नभूतस्य लिङ्गस्य काश्यांरत्नेश्वरस्यवै । नित्यं संदर्शनंप्राप्यचक्ष्याम्यपिचक्षोमुखे
इत्थं नियमवत्यासीत्सा गन्धर्वसुतोत्तमा ।

ताभिः सखीभिः सहिता नित्यं लिङ्गं च पश्यति ॥ ४५ ॥

एकदाराध्य रत्नेशंममैतल्लिङ्गमुत्तमम् ! समानर्षं च सा बाला रम्यया गीतमालया
सख्यः प्रदक्षिणीकर्तुंलिङ्गं तिल्लोऽप्युमे! गताः ।

तस्या गीतेन तुष्टोऽहं लिङ्गस्थो वरदोऽभवम् ॥ ४७ ॥

यस्त्वया रंस्यते रात्रावद्यगन्धर्वकन्यके । तव नाममसमानाख्यःसतेभर्ताभविष्यति
इति लिङ्गाम्बुध्रेजाताम्परिपीयवचः सुधाम् । बभूवानन्दसन्दोहमन्धरातीवहीमती
गताथव्योममार्गेणसखीभिःस्वपितुर्गृहम् । कथयन्तीनिजोदन्तं तमालीनाम्पुरोमुदा
तामिर्दिष्ट्येति दिष्ट्येति सखीभिः परिनिन्दिता ।

अथ ते वाञ्छितम्भावि रत्नेशस्य समर्षनात् ॥ ५१ ॥

यद्यायाति सते रात्रावद्य कौमारहारकः । चोरोबाहुलतापाशैःपाशितव्योऽतियत्नतः
गोचरीक्रियतेऽस्माभिर्यथास सुकृतैकभूः । प्रातरेव तवप्रेयान् रत्नेशादिष्टष्टकृत्
यातास्वस्मासुहृष्टासु भवतीपुण्यगौरवात् । अहोरत्नेश्वरंलिङ्गं प्रत्यक्षीकृतवत्यसि
अहोभाग्योदयोन्नामहोपुण्यसमुच्छ्रयः । एकस्यैव भवेत्सिद्धिर्यदेकत्रापितिष्ठताम्
सत्यंबदन्ति नासत्यं दैवप्राधान्यवादिनः । दैवमेव फलेदेकंनोद्यमो नापरम्बलम् ॥
भवत्या अपि चास्माकमेकएव हि चोद्यमः । परंदैवंफलत्येकंयथातव न नः पुरः ॥
लोकानांव्यवहारोऽयमालिप्रोक्तः प्रसङ्गतः । परंमनोरथावाप्तिस्तवयासैव नःस्फुटम्

इति सम्याहरन्तीनामनन्तोऽध्वाऽति तुच्छवत् ।

क्षणात्तासां व्यतिक्रान्तः प्राप्ताश्च स्वं स्वमालयम् ॥ ५६ ॥

अथप्रातः समुत्थाय पुनरेकत्र सङ्गताः । साश्वमौनवतीताभिः परिभुक्तेव लक्षिता
तूष्णीं प्राप्याथ काशीं सा स्नात्वा मग्दाकिनीजले !।

सखीमिः सहिताऽपश्लिङ्गं रत्नेश्वरं मम ॥ ६१ ॥

निर्वर्त्य नियमं साऽथ लज्जामुकुलितेक्षणा । निर्वन्धेन वयस्याभिः परिपृष्टाजगादह
रत्नावलयुवाच

अथरत्नेशयात्रायाः प्रयातासु स्वमन्दिरम् । भवतीषु स्मरन्त्येवतद्रत्नेशवचोऽमृतम्
सविशेशङ्गसंस्काराऽविशंसंवेशमन्दिरम् । निद्रादरिद्रनयना तद्विलोकनलालसा
थलात्स्वप्नदर्शाप्राप्ताभाविनोऽर्थस्यगौरवात् । आत्मविस्मरणेहेतूततोमेद्वीबभूवतुः
तन्द्रीतदङ्गसंपशौममबोधोपाहारकौ । तन्द्रया परवशाचाऽऽसं ततस्तत्स्पर्शनेन च
न ज्ञाने त्वथकिवृत्संकाहं काहं स चाथकः । तन्निर्जिगमिषुं सख्योयावद्धतुं प्रसारितः
दाःकङ्कणेन रिपुणा कणितन्तावदुत्कटम् । महतासिञ्जितेनाहं तेनाल्पपरिबोधिता
सुखसन्तानपीयूषहृदेपरिनिमज्ज्य वै । क्षणेन तद्वियोगाग्निकीलासुपतिताबलात्

किं कुलीयः स नो वेद्मि किंदेशीयः किमाख्यकः ।

दुनोति नितरां सख्यस्तद्विश्लेषानलो महान् ॥ ७० ॥

अनलपोत्कलितं चेतःपुनस्तत्सङ्गमाशया । प्राणानां मे यियासूनामेकमेव महौषधम्
वयस्यानिशिभुक्तस्य तस्यैव पुनरीक्षणम् । भवतीनामधीनञ्च तत्पुनर्दर्शनं मम ॥

काऽलीकमालयो वक्ति स्निग्धमुग्धे सखीजने ।

तद्दर्शनेन स्थास्यन्ति प्राणा यास्यन्ति चान्यथा ॥ ७३ ॥

दशम्यवस्था रुन्नहोद् बाधितुं माऽधुना भृशम् ।

इति तस्या गिरः श्रुत्वा दूनायानितरां च ताः ॥ ७४ ॥

प्रवेपमानहृदयाः प्रोचूर्वाश्च परस्परम् ॥ ७५ ॥

सख्य ऊचः

यस्यग्रामो ननो नामनान्वयो नापिवुध्यते । सकथंप्राप्यतेभद्रेकउपायोविधीयताम्
इति रत्नावली श्रुत्वा ससन्देहांचतद्गिरम् । वयस्यास्तदवाप्तौमेयूर्यं कुण्ठिमुमूर्च्छह
इत्यर्थोक्तेनसावालायंकुण्ठितशक्तयः । यद्वक्तव्यं स्थितितयावयूर्यंकुण्ठीतिभाषितम्
ततस्तास्त्वचिताः सख्यः परितापोपहारकान् ।

बहुशः शितलोपायान् व्यधुर्मोहप्रशान्तये ॥ ७६ ॥

व्यपैतिनयदामूर्च्छां तत्सञ्छीतोपचारतः । तस्यास्तदैकया नीतंरत्नेशस्नपनोदकम्
तदुक्षणात्क्षणादेवतन्मूर्च्छां विरराम ह । सुप्तोत्थितैवसावादीन्मुहुःशिवशिवेतिष
स्कन्द उवाच

श्रद्धावतांस्वभक्तानामुपसर्गे महत्यपि । नोपायान्तरमस्त्येव विनेशचरणोदकम्
येव्याधयोपिदुःसाध्याबहिरन्तःशरीरगाः । श्रद्धयेशोदकस्पर्शान्तिशयन्त्येवनान्यथ
सेवितं येन सततम्भगवच्चरणोदकम् । तम्बाह्याभ्यन्तरशुचि नोपसर्पति दुर्गतिः ॥

आधिभौतिकतापञ्च तापञ्चप्याधिदैविकम् ।

आध्यात्मिकं तथा तापं हरेच्छीचरणोदकम् ॥ ८५ ॥

व्यपेतसंज्वराचाथ गन्धर्वतनया मुने ! उचितज्ञेतिहोवाचताःसखीःस्निग्धधीरधीः
रत्नावल्युवाच

शशिलेखेऽनङ्गलेखे!चित्रलेखेमदीहिते । यूयंकुण्डितसामर्थ्याःकुतोवस्ताःकलाःकवा
मत्प्रियप्राप्तये सम्यगुपायोऽस्ति मयेक्षितः । रत्नेश्वरानुग्रहतोऽनुतिष्ठतहितं हिताः
शशिलेखेऽभिलषितप्राप्त्यै लेखांस्त्वमालिख ।

संलिखानङ्गलेखे! त्वं यूनः सर्वाचनीचरान् ॥ ८६ ॥

चित्रज्ञेचित्रलेखेत्वंपातालतलशायिनः । किञ्चिदाविर्भवञ्चारुतारुण्यालङ्कृतीन्लिख
अथाकर्ण्येति ताः संख्यास्तच्चानुर्थं प्रवर्ण्य च ।

लिलिखुः क्रमशः सक्यो यूनो यौवनशेवधीन् ॥ ९१ ॥

निर्यत्कौमारलक्ष्मीकान्पुंष्वश्रीसमावृतान् ।

प्रातः सन्ध्येव गन्धर्वीं नृपाद्यांस्तानवैक्षत ॥ ९२ ॥

सर्वान्सुरनिकायान्सा व्यलोकत शुभेक्षणा

न चाञ्चल्यंजहावक्ष्णोस्तेषु स्वर्लोकवासिषु ॥ ९३ ॥

ततो मध्यमलोकस्थान्मुनिराजकुमारकान् ।

घिलोक्याऽपि न सा प्रीतिं काप्याऽऽप प्रेमनिभंरा ॥ ९४ ॥

सप्तपञ्चितमोऽध्यायः] * रत्नाबल्यादिसखीनांपरिरम्भणवर्णनम् * ४८१

अथरत्नावली बाला कर्णाभ्यर्णचिलोचना । दृशी व्यापारयामासबलिसद्युषस्वपि

दितिजान्दनुजान्वीक्ष्य सा गन्धर्वी कुमारकान् ।

रतिम्बबन्ध न कापि तापिता मान्मथैः शरैः ॥ ६६ ॥

सुधाकरकरस्पृष्टाप्यतिदूनाङ्गयष्टिका ।

पश्यन्ती नागयूनः सा किञ्चिदुच्छ्वसिताऽभवत् ॥ ६७ ॥

भोगिनस्तान्विलोक्याऽपि चित्रञ्चित्रगतानथ ।

मनाक्संभुक्तमोगेव क्षणमासीत्कुमारिका ॥ ६८ ॥

यूनः प्रत्येकमद्राक्षीदशोषाच्छेषवंशजान् । तक्षकान्वयगांस्तद्वदथ वासुकिगोत्रजान्

पुलीकानन्तकर्कोटभद्रसन्तानगानपि । दृष्ट्वा नागकुमारांस्ताऽच्छङ्खचूडमथैक्षत ॥

शङ्खचूडेक्षणादेव परांलज्जाम्बभारसा । उद्विभ्रपुलकाप्यासीदङ्गप्रत्यङ्गसन्धिषु ॥

तत्रपामरतोऽज्ञायि तत्कौमारहरो वरः । तया वैदग्ध्यवरया क्षणतश्चित्रलेखया

अथचित्रपटीं चित्रलेखाचित्रपटाञ्चलम् । परिक्षिप्यावृणोत्सूर्णम्परिहासैकपेशला ॥

रत्नावली चित्रलेखांहियामौनावलम्बिनी । दृशाकुटिलयाद्राक्षीत्प्रस्फुरद्दृशनाम्बरा

कटाक्षितानङ्गलेखा तयाऽथ शशिलेखया । चित्रलेखा परिक्षितपटाञ्चलमपाकरोत्

वसुभूतिसुतासाथ कन्या रत्नावली शुभा । शङ्खचूडान्ववाये तं रत्नचूडमथैक्षत ॥

तदीक्षणक्षणाद् दृष्टिरानन्दाश्रुभिरावृता । कपोलभित्तरभवत्स्वेदोदकणिकाञ्चिता

षकम्पेगात्रलतिकाधृतरोमाञ्चकञ्चुका । चित्रन्यस्तेष तस्तम्भ क्षणम्मुकुलितानना

ततः सा चित्रलेखा तामेत्याभ्वासयदातुराम् ।

मौत्सुक्यं व्रज गन्धर्वि! सिद्धस्तेऽद्य मनोरथः ॥ १०६ ॥

एतस्याऽवगतं सर्वदेशनामान्वयादिकम् । मा विधीदालिसुलभस्त्वेष रत्नेभ्वरार्पितः

अहो सद्गवरावाप्या रत्नेशोनाऽसितोषिता । उत्तिष्ठयामःसदंरत्नेशः सर्वदोहिनः

अथ दैववशाद्यान्त्यस्ता दृष्ट्वा गगनाध्वगाः । सुबाहुना दानवेनपातालतलवासिना

गृहीत्वा ताश्चतस्रोऽपि निरगाद्दानवोगृहम् । हरिर्धिकटदंष्ट्रास्यःप्रान्तरेहरिणीरिष

तास्तं विलोक्य गन्धर्व्यो दंष्ट्राविकटिताननम् । रुधिरारुणनेत्रंजजाता वेपथुभूमयः

हामातर्हापितस्त्राहि हाविधे! मा विधेहि तत् ।

यदेतत्कर्तुंमारब्धमनाथास्वतिनिष्ठुरम् ॥ ११५ ॥

हादैव मन्दभाग्याभिः किमस्माभिरनुष्ठितम् ।

सुकृतेतरवार्ताऽपि नो चित्ते व्याहृता क्वचित् ॥ ११६ ॥

शिशुकीडनकांहित्वाहित्वारत्नेश्वरार्चनम् । पित्रोःस्वाधीनसत्त्वेष्टाइष्टंविद्योतकिञ्चन
अधोभुवनगादीना हीनानाथेनकोऽन्ननः । त्राति त्राणार्थिनीर्वालाःशम्भोरत्नेशसर्वग
इत्थंगन्धर्वतनया विलपन्तीःकृपातुरम् । शुश्राव नागराजोऽसौ रत्नचडोमहामनाः
कोऽसौ मत्स्वामिनोनामरत्नेशस्यमहेशितुः । लिङ्गराजस्यशृङ्गातिकर्मबन्धनभेदिनः
पुनरप्यार्त्तरावं स श्रुत्वाबालामुखेरितम् । रत्नेश! रक्षरक्षेतिगृहीतास्त्रो विनिर्ययौ ॥
तंबसासवपापानेन महामांसनिपेवणात् । अत्यन्तोन्मत्तदुष्टेष्टं रत्नचडो निरैक्षत ॥
अध्याक्षिपच्चरेदुष्टशिष्टकन्यापहारक ! । मद्द्रष्टिगोचरं यातः क्रयान्यस्यद्यरेऽधम
मम बाणहतप्राणः प्रयाणं कुरु दुर्मते ! । आर्तत्राणोद्यतमतेर्वैवस्वतपुरम्प्रति ॥ १२४
रत्नेश्वरस्य येनाम प्रलयापद्यपि स्फुटम् । गृहीतंनभवाद्गम्यस्तेषु भीतिर्भयात्मसु
रत्नेश्वरमहानामकृतत्राणास्तु ये नराः । तेषा जन्मजराव्याधिकलिकालभयं कुतः

इत्युक्त्वा ता भयत्रस्तास्तन्मुखप्रहितेक्षणाः ।

व्याघ्रघाता इव मृगीर्माभैषिष्टेत्युवाच सः ॥ १२७ ॥

इत्याश्वास्यार्थगन्धर्वाःसर्वेभुजगराजजः । आकर्णपूर्णमारुप्यकोदण्डम्प्राहिणोच्छरम्
सोऽपिक्वदोदनुजराट्पदात्पृष्टभुजङ्गवत् । आचिद्व्यकालदण्डाभम्परिधंव्यसृजन्महत्
हृदिरत्नेश्वरंलिङ्गंयस्यसम्यग्विबजृम्भते । अलातदण्डवत्स्मिन्कालदण्डोऽपिजायते
अन्तरेष सच्चिच्छेद् परिधं स्वमहेषुभिः । दुर्वृत्तस्य यथेहायुर्विच्छिद्येतान्तरंवहि
ततोऽस्यबाणंविश्लेष कालानलसमप्रभम् । सबाणस्तस्य हृदयं प्रविश्य प्रगवेप्य च
प्राणानस्य विनिर्यात्य स्वयं तूणमगात्पुनः ।

हृदिस्थं तस्य दौरात्म्यं सर्वं विहाय तत्त्वतः ॥ १३३ ॥

दिगङ्गनापुरः ख्यातुमिष नागाशुगो गतः ॥ १३४ ॥

अन्यायोपाजतैर्द्रव्यै र्यः सुखम्भोक्तुमिच्छति ।

तानि द्रव्याणि यान्त्येव सप्राणानि कुतः सुखम् ॥ १३५ ॥

इति तं दानचं इत्वा नागराजो महाबली ।

प्रत्युवाचाऽथ ताः कन्याः का यूयं कस्य चात्मजाः ॥ १३६ ॥

दुरात्मना कुतोऽनेन सङ्गतादनुजन्मना । क वारत्नेश्वरं लिङ्गं भवतीभिर्विलोकितम्
यस्य नामाक्षरोच्चारान्ध्रपेतपरामापदः । यूयमाशु तदाख्यातः येन जानामितस्वतः
इतिश्रुत्वागिरस्तस्यनितराप्रेमनिर्भराः । परस्परंमुखवीक्ष्यकोऽसौस्याद्दृष्टपूर्ववत्
अकारणसखा कोऽसौ प्रान्तरे समुपस्थितः ।

निजप्राणान्पणीकृत्य येन त्राताः स्म बालिकाः ॥ १४० ॥

अस्य सन्दर्शनादेवस्वभावस्वपलान्यपि । मन्थराणीन्द्रियाणिस्युःपरिर्पायसुधामिष
यातुमन्यत्र नो नेत्रे प्रोत्सहेते यथा तथा । अन्यद्वस्त्वन्तरं प्रेक्ष्य रमणीयतरन्त्वपि
वचः पीयूषमाधुर्यं नितरा प्राप्य नः श्रुती । शब्दान्तरप्रहापेक्षां न कुर्वातेस्वजन्मनः
आप्नुतः पङ्कतामेतौ पादौ नश्चञ्चलावपि । अमुं युवानमालोक्यचोरं नः सन्मनोमणेः
इति ब्रुवन्त्यस्ता बालाः परस्परमनुल्वणम् ।

दृष्ट्वाऽपि चित्रमध्यस्थं विविदुस्तत्र बालिकाः ॥ १४५ ॥

अतीव भीषणाकारदनुजस्याऽति साध्वसात् ।

अन्धीभूतेश्चणास्तं नाहासिषुहरिणीक्षणाः ॥ १४६ ॥

ऊजुश्चतं युवानंतानिजजीवितरक्षणम् । यद्भङ्गभवता पृष्टंस्नेहनिर्भरचेतसा ॥
तदाचक्षामहे सर्वमवधेहि क्षणं मनः । इयंगन्धर्वराजस्य वसुभूतेस्तनूद्भवा ॥ १४८ ॥
कन्यारत्नावलीनामगुणरत्नमहाखनिः । वयं वयस्या एतस्याश्छायेवानुगताःसदा
आरभ्यबाल्यमध्येबालिङ्गं रत्नेश्वराभिधम् । यातिपित्राप्यनुज्ञाताकाश्यामर्षयितुंसदा
शरोपि दत्तस्तेनास्वै प्रसन्नेनाथशम्भुना । हरिष्यतीति यःस्वप्नेकौमारंतेकुमारिके
तव नामसमानाख्यः स ते भर्ता भविष्यति ।

युवानं स्वप्नभोकारं प्राप्याऽप्येवा सुदुःखिता ॥ १५२ ॥

पुनस्तद्विरहोत्थेनबह्विनातीवतापिता । कलाकौशल्यतोऽस्माभिःसोपिचित्रप्रदर्शितः
यस्य न ग्राम नामापि नान्वयोप्यवबुध्यते । तं दृष्ट्वा चित्रलिखितमप्येषाजीवितापुनः

ततो रत्नेश्वरं नत्वा स्वगृहायोत्सुकाऽभवत् ।

यान्तीस्ततोऽनया सार्धं प्रान्तरे गगनाध्वनि ॥ १५५ ॥

अतर्कितागमध्यास्मान्धृत्वा पातालमाचिशत् । अनन्तरम्भवानेव तं वेत्तिदनुजाधमम्
अङ्ग ! इत्येव वृत्तान्तो निजोऽस्माभिरुदीरितः ।

प्रसादं कुरु चास्माकं पुरः कोऽसि कृपानिधे ! ॥ १५७ ॥

यदाप्रभृति खाऽस्माभिः सदृष्टोदुष्टदानवः । तदा प्रभृति नो नेत्रेविद्युते च हतप्रभे
कान्दिशीका भयत्रातर्नविद्रुमः किञ्चिदेवहि ।

क वयं का वयं कस्त्वं किं जातं किं भविष्यति ॥ १५६ ॥

निशम्येति स पुण्यात्मा नागराजकुमारकः ।

आश्वास्य ता भयत्रस्ताः प्रोवाचेदञ्च पुण्यधीः ॥ १६० ॥

मया सहसमायात रत्नेशं दर्शयामिचः । इत्याह्वय सतानिन्ये क्रीडावापींसुखोदकाम्
चिचित्रमणिसोपानांहंसकोककृतारवाम् । कवीनांवासितव्याजात्स्वागतंकुर्वतीमिव
तत्र तेनाभ्यनुज्ञाताः क्रीडावाप्यां निमज्ज्यं ताः ।

सचेलपुष्पाभरणाः प्रोन्ममज्जुस्ततः पुनः ॥ १६३ ॥

बहिर्निर्गत्यगन्धर्व्यः पश्यन्त्यःस्थगिताइव । रत्नेशालयमालोक्यकालराजसमीपतः
परस्परंततः प्रोचुर्गन्धर्व्योर्विस्मिताइव । स्वप्नोर्यंकिनुवासत्यंखेलोरत्नेश्वरस्यवा
वयमेवहिवा भ्रान्ता गन्धर्व्यो न वयंकिमु । किमेतन्नैव जानीमणेन्द्रजालिकखेलवत्
पयोत्तरवहा गङ्गा स्फुटमेव भवेदिह । शङ्खचूडस्यवाप्येषाशङ्खचूडालयस्त्वसौ
पतत्पञ्चनर्दतीर्थमेवषागीश्वरालयः । यस्य सन्दर्शनादेव वाग्विभृतिर्बिजम्भते
शङ्खचूडेभ्वरक्षेप शङ्खचूडप्रतिष्ठितः । यस्य सन्दर्शनात्पुंसां न भयंकालसर्पजम् ॥

एषा मन्दाकिनी नाम दीर्घिका पुण्यतोयभूः ।

यस्यां कृतोदका मर्त्या मर्त्यलोके विशन्ति न ॥ १७० ॥

असावाशापुरी देवी यास्तुता त्रिपुरारिणा । त्रिपुरं जेतुकामेनमन्दाकिन्यास्तटेशुभे
याद्यापिपूजिता मर्त्यैराशाम्पूरयतेऽर्थिनाम् ।

मन्दाकिन्याः प्रतीच्यान्तु एष सिद्धयष्टकेश्वरः ॥ १७२ ॥

भवेद्यस्य सपर्यातो गृहे सिद्धयष्टकं स्फुटम् ।

कुण्डं सिद्धयष्टकाख्यं च तत्रैव चिरजोदकम् ॥ १७३ ॥

यत्र स्नात्वा कृतश्राद्धो चिरजस्को दिवं व्रजेत् ।

मूर्त्यस्ताः सिद्धयश्चाष्टौ याः काश्यां सर्वसिद्धिदाः ॥ १७४ ॥

सर्वसिद्धिप्रदश्चासीमहारजविनायकः । विनायकाः प्रणश्यन्वियस्मैप्रणमतां नृणाम्
असौ सिद्धेश्वरस्योच्चैः प्रासादः काञ्चनोज्ज्वलः ।

रत्नध्वजपताकाश्च सिद्धिः स्याद्यद्विलोकनात् ॥ १७६ ॥

क्षेत्रस्य मध्यमे भागे मध्यमेश्वरएषवै । मध्याधोलोकयोर्मध्येनवसेद्यस्यवीक्षणात्
मध्यमेशं समभ्यर्च्यनरोमध्यमविष्टपे । आसमुद्रक्षितीन्द्रः स्यात्सतोमोक्षञ्चविन्दति
पेरावतेश्वरं लिङ्गं तत्प्राच्यामिष्टसिद्धिकृत् ।

दृश्यते यत्पताकायां रम्य पेरावतो गजः ॥ १७६ ॥

वृद्धकालेश्वरस्यैष प्रासादोरत्ननिर्मितः । प्रतिदर्शं वसेद्यत्र रात्रौ चन्द्रः सतारकः
यस्यसन्दर्शनान्नृणां न कालः प्रभवेद्भवे । न कलिः प्रभवेत्सत्यं न च कल्मषराशयः
इति यावत्कथाञ्चकुः सम्भ्रान्ता इव बालिकाः ।

तावद्वसुचिभूतिः स गन्धर्वस्त्वरया ययौ ॥ १८२ ॥

नारदाच्छ्रुतवृत्तान्तः सुबाहुदनुजन्मनः । रत्नावलीसुता प्रीता ससखीका यथाहृता
रत्नेश्वरात्समायान्ति शून्ये गगनवर्त्मनि । यथाऽनयच्च पातालं यथायुद्धमभूत्पुनः
यथारत्नेशमक्तेन रत्नघूडेनघातितः । ससुबाहुर्वजुजनुर्महेश्वसेन चेषुणा ॥ १८५ ॥

यथा च पृष्टवृत्तान्तो षापीमार्गेणघानयत् । शङ्खबूडस्यवापीं तां पातालेषुप्रवर्तिनीम्
यथा च प्राप्य निर्याताः काशीं दृष्ट्वाऽपि बालिकाः ।

भृशं सम्भ्रान्तिमापन्नाः पश्यन्त्योऽपि समुत्सुकाः ॥ १८७ ॥

द्रुष्ट्वागन्धर्वराजस्ताम्पुनर्जातामिवात्मजाम् । सवयस्यामनम्लानमुखपङ्कजसुश्रियम्
परिष्वज्य समाध्याय ललाटफलकमुहुः । अङ्कमारोप्य पप्रच्छ सर्वं वृत्तान्तमादरात्
अथसाकथयामास दनुजापहृतेः कथाम् । रत्नेश्वरवरावामि स्वप्नावस्थांविहायच
रत्नावलीमनोवृत्तिचिन्तायाऽथ मुखेङ्कितैः । शशिलेखासमाक्षरुपपृष्ठवर्णैःसविस्तरम्
तुतोषनितरां सोऽथ गन्धर्वाधिपतिः कृतिः । प्रभावं वर्णयामासमुदारत्नेश्वरस्य च

स्कन्द उवाच

आकर्णय मुनिश्रेष्ठ! विन्ध्यवृद्धिविधर्दन ! प्रत्यहं रत्नचूडोऽपि वापीमार्गेण संयमी
नागलोकात्समागत्य स्नात्वा मन्दाकिनीजले ।

रत्नेश्वरं समन्यर्च्य रत्नाञ्जल्यष्टकेन वै ॥ १६४ ॥

सुवर्णपङ्कजान्यष्टौ समर्पयति हृष्टवत् । एकदा स्वप्रसमये रत्नेशो लिङ्गरूपधृक् ॥
रत्नचूडमुवाचेदं निजभक्तं द्रुढव्रतम् । दानवेन हतां कन्यां मोचयिष्यति याम्भवान्
तं दानवं रणेजित्वा सा ते पत्नी भविष्यति ।

इति स्मरन्स्वरं सोऽथ नागराजो महामनाः ॥ १६७ ॥

तां कन्यां दानवंहत्वाविमोच्यनिजवीर्यतः । वापीमार्गेणपातालादानिनायपुनर्महीम्
स्वयं च साधयाञ्चकेप्रत्यहनियमंसुधीः । लिङ्गंसमर्चयित्वाथकृत्वाचापिप्रदक्षिणम्
यावद्बहिःसमागच्छेद्रम्याद्रत्नेशमण्डपात् । तावद्गन्धर्वराजायतामिः सवसुभूतये
सोऽयं सोऽयं युवाधन्यस्तर्जन्यग्रे णदर्शितः । गन्धर्वराजस्तद्द्रुष्टानागराजकुमारकम्
अतीवस्मेरनयनः सम्ग्रहृष्टतनूरुहः । मनस्येनञ्च संवर्ष्य तद्रूपं सवयोन्वयम् ॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि रत्नेशेन वरार्पणात् ।

कन्या धन्यतरा चैयमनुरूपोऽस्ति यत्पतिः ॥ २०३ ॥

सम्प्रधार्यति हृद्येन समाकार्यं च सुन्दरम् । पृष्टातन्नामपोत्रञ्च गणयित्वाथलाबालम्
रत्नेश्वरस्य पुरतस्तस्मै कन्यां ददौ मुदा । नीत्वागन्धर्वलोकञ्चकृतकौतुकमङ्गलम्
मधुपर्केण सम्पूज्य पाणिमग्राह्यसतः । वैवाहिकेन विधिना ददौ रत्नान्यनेकशः ॥
शशिलेखाऽनङ्गलेखाचित्रलेखापिकुम्भज ! । विहाप्य स्वजनेतारंवरयामासतंपतिम्

उपयम्य चतस्रोऽपिसगन्धर्वसुताःशुभाः । रत्नचूडोजगामाथताभिःस्वपितृमन्दिरम्
यथा चतसृभिः सार्धं श्रुतिभिः प्रणवः शिवम् ।

स्वपित्रोश्चरणौ नत्वा नवोढाभिः स नागराट् ॥ २०६ ॥

विनिवेदितवृत्तान्तो रत्नेशानुग्रहस्य च । उवासताभिःससुखं पितृभ्यामभिनन्दितः

ईश्वर उवाच

रत्नेश्वरस्य लिङ्गस्य ममस्थावररूपिणः । सर्वेषांसर्वदस्यास्यप्रभावो गिरिजेऽतुलः
अस्मिंलिङ्गे परां सिद्धिं प्राप्ताः सिद्धाः सहस्रशः ।

गुप्तमासीदिदं लिङ्गमद्य यावत्सुमध्यमे ॥ २१२ ॥

तव पित्रोऽहिमवता मम भक्तेन सर्वथा । पुण्याजितैर्महारत्नैरत्नेशः प्रकटीकृतः ॥
अस्मिंलिङ्गे ममप्रीतिर्नितरामद्रिराजजे !। वाराणस्यामिदं लिङ्गं पूजनीयं प्रयत्नतः
नानारत्नानिलभ्यन्ते रत्नेशानुग्रहादुमे !। स्त्रीरत्नपुत्ररत्नादि स्वर्गमोक्षावपि प्रिये
योऽत्र रत्नेश्वरं नत्वा मृतो देशान्तरेष्वपि ।

न स स्वर्गादिहागच्छेत्कल्पकोटिशतैरपि ॥ २१६ ॥

असितायां चतुर्दश्यामुपोष्य निशि जागरात् ।

रत्नेशमन्निधौ देवि! मम सान्निध्यमाप्नुयात् ॥ २१७ ॥

अस्यलिङ्गस्य पूर्वेणत्वयाजन्मान्तरेप्रिये । दाक्षायणीश्वरंलिङ्गमद्वक्त्यात्रप्रतिष्ठितम्
तस्य सन्दर्शनादेव नरो यातिदुर्गतिम् । अम्बिकानामगौरीत्वंत्राहं चाम्बिकेश्वरः
मूर्तःपडाननस्तत्र तवपुत्रः सुमध्यमे !। एतत्त्रयं नरो द्यूता न गर्भं प्रविशेदुमे ॥ २२०
रत्नेश्वरस्य माहात्म्यं मयातेसमुद्गीरितम् । गोपनीयंप्रयत्नेनकलिकलमपचेतसाम्
इदंरत्नेश्वराख्यानं यः पठिष्यति सर्वदा । सपुत्रपौत्रपशुभिर्नविगुज्येत कर्हिचित्
श्रुत्वा रत्नेश्वरोत्पत्तिं सेतिहासां नरोत्तमः ।

अनूढो लभते सत्यं कन्यारत्नं कुलोचितम् ॥ २२३ ॥

कन्यापीमं समाकर्ण्य त्वितिहासं मनोरमम् ।

श्रद्धया सत्पतिं प्राप्य भविष्यति पतिव्रता ॥ २२४ ॥

इतिहासमिमं श्रुत्वानारी वायुरुषोऽपि वा । न जात्विष्टधियोगाग्नितापेन परितप्यते
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
रत्नेश्वरप्रशंसननामसप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

कृत्तिवासःसमुद्भववर्णनम्

स्कन्द उवाच

अन्यच्च शृणु चिप्रेन्द्र! वृत्तान्तं तत्र सम्भवम् । महाश्चर्यप्रजननं महापातकहारि च
इत्थं कथां प्रकुर्वाणे रत्नेशस्य महेश्वरे । कोलाहलो महानासीत्त्रातत्रातेति सर्वतः
महिषासुरपुत्रोऽसौ समायाति गजासुरः । प्रमथन्प्रमथान्सर्वाग्निजवीर्यमदोद्धतः ॥
यत्र यत्र धरायां स खरणं प्रमिणोति हि । अवलोल्लोलयाञ्चक्रे तत्र तत्रास्यभारतः
ऊरुवेगेन तरवः पतन्ति शिखरैः सह । यस्यदोर्दण्डघातेन घूर्णाःस्युश्चशिलोच्चयाः
यस्य मौलिजसङ्घर्षाद्धना व्योम त्यजन्त्यपि ।
नीलिमानं न चाद्यापि जह्यस्तत्केशसङ्गजम् ॥ ६ ॥
यस्य निःश्वाससंभारैरुत्तरङ्गामहाब्धयः । नद्योऽप्यमन्दकल्लोलाभवन्तितिमिभिःसह
योजनानां सहस्राणि न वयस्यसमुच्छ्रयः ।
तावानेष हि विस्तारस्तनोर्मायाविनोस्य हि ॥ ८ ॥
यज्ञेत्रयोःपिङ्गलिमातथातरलिमापुनः । विद्युतानोऽभ्ययतेऽद्यापिसोयमायातिसत्वरः
यां यां दिशं समभ्येति सोऽयं दुःसहदानवः ।
सा सा समीभवेदस्य साध्वसादिषदिग्ध्रुवम् ॥ १० ॥
ब्रह्मलब्धवरध्यायं तृणीकृतजगत्त्रयः । अवध्योऽहं भवामीतिस्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः
ततस्त्रिशूलहेतिस्तमायान्तं वैत्यपुङ्गवम् । विष्ण्वाद्याध्वमन्येन शूलेनाभिजघान तम्

प्रोतस्तेन त्रिशूलेन सचदैत्यो गजासुरः । छत्रीकृतमिवात्मानं मन्यमानो जगौ हरम्

गजासुर उवाच

त्रिशूलपाणे! देवेश!जाने त्वां स्मरहारिणम् । तव हस्ते ममबधः श्रेयानिवपुरान्तक
किञ्चिद्विह्वलमिच्छामि अवधेहि ममेरितम् । सत्यं ब्रवीमिनासत्यंमृत्युञ्जयविचारय
त्वमेको जगतां वन्द्यो विश्वस्योपरि संस्थितः ।

अहं त्वदुपरिष्ठाञ्च स्थितोऽस्मीति जितं मया ॥ १६ ॥

धन्योस्स्यनुगृहीतोस्मित्वत्त्रिशूलाप्रसंस्थितः । कालेनसर्वैर्मर्तव्यंश्रेयसेमृत्युरीदृशः
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदेवःकृपानिधिः । प्रोवाचप्रहसञ्छम्भुर्बटोद्वेष! गजासुरम्

ईश्वर उवाच

गजासुर! प्रसन्नोऽस्मि महापौरुषशेषधे !। स्वानुकूलं वरं ब्रूहि ददामि सुमतेऽसुर
इत्याकर्ण्य स दैत्येन्द्रः प्रत्युवाच महेश्वरम् ।

गजासुर उवाच

यदि प्रसन्नो दिग्वासस्तदा नित्यं वसान मे ॥ २० ॥

इमां कृत्ति विरूपाक्ष! त्वत्त्रिशूलाग्निपाचिताम् ।

स्वप्रमाणां सुखस्पर्शां रणाङ्गणपणिकृताम् ॥ २१ ॥

इष्टगन्धिः सदैवास्तु सदैवास्त्वतिकोमला ।

सदैव निर्मला चास्तु सदैवास्त्वतिमण्डनम् ॥ २२ ॥

महातपोऽनलज्वालाःप्राप्यापिसुचिरं विभो । नद्रग्धाकृत्तिरेषामेपुण्यगन्धनिधिस्ततः
यदि पुण्यवती नैषाममकृत्तिर्दिगम्बर !। तदा त्वदङ्गसङ्कोऽस्याः कथं जातोरणाङ्गणे
अन्यञ्च मेवरं देहि यदि तुष्टोऽसि शङ्कर !। नामास्तुकृत्तिवासास्तेप्रारभ्याद्यतनंदिनम्
इति तस्यवचः श्रुत्वातथेत्युत्तवाषशङ्करः । पुनःप्रोवाचतं दैत्यं भक्तिनिर्मलमानसम्

ईश्वर उवाच

शृणुपुण्यनिधे दैत्य वरमन्यं सुदुर्लभम् । अविमुक्ते महाक्षेत्रे रणत्यक्तकलेबर !॥

इदं पुण्यशरीरं ते क्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिसाधने । ममलिङ्गंभवत्त्वत्र सर्वेषां मुक्तिदायकम्

कृत्तिवासेश्वरं नाम महापातकनाशनम् । सर्वेषामेव लिङ्गानां शिरोभूतमिदं वरम् ॥
यावन्तिसन्तिलिङ्गानि वाराणस्यां महान्त्यपि । उत्तमं तावतामेतदुक्तमाङ्गवदुक्तमम्
मानवानां हितायाऽत्र स्यास्येऽहं सपरिग्रहः । दृष्टेनाने न लिङ्गेन पूजितेन स्तुतेन च
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यः संसारं न विशेत्पुनः ॥ ३१ ॥

रुद्राः पाशुपताः सिद्धा ऋषयस्तस्वचिन्तकाः ।

शान्ता दान्ता जितक्रोधा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ ३२ ॥

अविमुक्तेस्थिताये तुममभक्तामुमुक्षवः । मानापमानयोस्तुल्याः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः
कृत्तिवासेश्वरे लिङ्गेऽस्यास्येऽहं तदनुग्रहे । दशकोटिसहस्राणि तीर्थानि प्रतिवासरम्
त्रिकालमागमिष्यन्ति कृत्तिवासेनमंशयः । कलिद्वारसम्भृता नराः कलमपबुद्धयः ॥
सद्वाधारचिनिर्मुक्ताः सत्यशीघ्रपगङ्मुखाः । माययादम्भलोभाभ्यां मोहाहं कृतिसंयुताः
शूद्रान्सेविनो विप्राजिह्वात्लातिलालसाः । सन्ध्यास्नानजपेऽयासुदूरीकृतमनोधियः
कृत्तिवासेश्वरं प्राप्य सर्वपापविचर्जिताः । सुखेनमोक्षमेष्यन्ति यथा सुकृतिनस्तथा
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं सेव्यं काश्यां ततो नरैः । जन्मान्तरसहस्रेषु मोक्षोऽन्यत्र सुदुर्लभः
कृत्तिवासेश्वरे लिङ्गे लभ्यस्त्वेकेन जन्मना । पूर्वजन्मकृतं पापं तपोदानादिभिः शनैः
नश्येत्सद्यो विनश्येत् कृत्तिवासेश्वरेक्षणात् ॥ ४० ॥

कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं येऽर्चयिष्यन्ति मानवाः । प्रविष्टास्ते शरीरे मेतेषां नास्ति पुनर्भवः
अविमुक्तेऽत्र वस्तव्यं जमव्यं शतरुद्रियम् । कृत्तिवासेश्वरो देवो द्रष्टव्यश्च पुनः पुनः
सप्तकोटिमहारुद्रैः सुजर्मैर्यत्फलम्भवेत् । तत्फलं लभ्यते काश्यां पूजनात्कृत्तिवाससः
माघकृष्णचतुर्दश्यामुपोष्य निशि जागृयात् ।

कृत्तिवासेशमभ्यर्च्य यः स यायात्परां गतिम् ॥ ४४ ॥

शुक्लायां पञ्चदश्यां यश्चैत्र्यां कर्ता महोत्सवम् । कृत्तिवासेश्वरे लिङ्गे न सगर्भं प्रवेक्ष्यते
कथयित्वेति देवेशस्तत्कृत्तिम्परिगृह्य च । गजासुरस्य महतीं प्रावृणोद्धरिदम्बरः ॥
महामहोत्सवो जातस्तस्मिन्नह निकुम्भजः । कृत्तिवासत्वमापेदेयस्मिन् देवो दिगम्बरः
यत्र च्छत्रीकृतो दैत्यः शूलमारोप्य भूतले । तच्छूलोत्पाटनाज्जातं तत्र कुण्डं महत्तरम्

तस्मिन्कुण्डेनरः स्नात्वाकृत्वाचपितृतर्पणम् । कृत्तिवासेश्वरंद्रष्ट्राकृतकृत्योनरोमवेत्

स्कन्द उवाच

तस्मिन्स्तीर्थेतुयद् वृत्संतदगस्नेनिशामय । काकाहंसत्वमापन्नास्तस्तीर्थस्यप्रभावतः
एकदा कृत्तिवासेतुष्वेद्यां यात्राऽभवत्पुरा । अन्नं राशीकृतं तत्र ह्यपहारसमुद्भवम्
बहुद्देवलकैर्विप्रैः तं दृष्ट्वा पश्चिणोऽमिलन् । परस्परं तदन्नार्थंयुध्यन्तो व्योमवर्त्मनि
घलिपुष्ट्रैरपुष्टाङ्गा रटन्तः करटाः कटु । बलिभिश्चातिपुष्टाङ्गै रबलाश्चुचुर्भिताः ॥
ते हन्यमाना न्यपतंस्तस्मिन्कुण्डे नमोऽङ्गणात् ।

आयुः शेषेण सन्नाता हंसीभूतास्तु घायसाः ॥ ५४ ॥

आश्चर्यवन्तस्तत्रत्या यात्रायांमिलिताजनाः । ऊचुरङ्गुलिनिर्देशैरहोपश्यतपश्यत
अस्मान्तु वीक्षमाणेषु काकाः कुण्डेऽत्र येऽपतन् ।

धार्तराष्ट्रास्तुने जातास्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ॥ ५६ ॥

हंसतीर्थं तदारभ्य कृत्तिवाससमीपतः । नाम्नाख्यातमभूल्लोके तत्कुण्डं कलशोद्भव
अतीवमलिनात्मानो महामलिनकर्मभिः ! क्षणान्निर्मलतां यान्तिहंसतीर्थकृतोदकाः
काश्यांसदैव वस्नव्यं स्नातव्यं हंसतीर्थके । द्रष्टव्यः कृत्तिवासेशःप्रातर्व्यंपरमंपदम्
काश्यां लिङ्गान्यनेकानि मुनेसन्तिपदेपदे । कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गं सर्वलिङ्गशिरःस्मृतम्
कृत्तिवासं समाराध्य भक्तियुक्तेन चेतसा । सर्वलिङ्गाराधनजं फलंकाश्यामवाप्यते
जपोदानं तपोहोमस्तर्पणं देवतार्चनम् । समीपे कृत्तिवासस्य कृतं सर्वमनन्तकम्
तीर्थं त्वनादिसंसिद्धमेतत्कलशसम्भव ! । पुनर्देवस्य सान्निध्यदाविरासीन्महेशितुः

एतानि सिद्धलिङ्गानि छन्नानि स्युर्युगे युगे ।

अवाप्य शम्भुसान्निध्यं पुनराविर्भवन्ति हि ॥ ६४ ॥

हंसतीर्थस्य परितो लिङ्गानामयुतं मुने । प्रतिष्ठितं मुनिवरैरत्राऽस्ति द्विशतोत्तरम्
एकैकंसिद्धिदंनृणामविमुक्तनिवासिनाम् । लिङ्गं कात्यायनेशादिच्यवनेशान्तमेवहि
लोमशेशं महालिङ्गं लोमशेन प्रतिष्ठितम् ।

कृत्तिवासः प्रतीच्यांतु तद् दृष्ट्वा काऽन्तकाद्वयम् ॥ ६७ ॥

मालतीशं शुभं लिङ्गं कृत्तिवासोत्तरेमहत् । सपर्ययित्वातल्लिङ्गं राजागजपतिभवेत्
अन्तकेश्वरसम्भ्रं च लिङ्गं तद्गुददिक्स्थितम् ।

अतिपापोऽपि निष्पापो जायते तद्विलोकनात् ॥ ६६ ॥

जनकेशं महालिङ्गं तत्पार्श्वे ज्ञानदं परम् । तल्लिङ्गवरिवस्यातो ब्रह्मज्ञानमवाप्यते ॥
तदुत्तरे महामूर्त्तिरसिताङ्गोऽस्तिभैरवः । तस्यदर्शनतः पुंसां नभवेद्यमदर्शनम् ॥
शुष्कोदरी च तत्राऽस्ति देवी विकटलोचना ।

कृत्तिवासादुदीच्यन्तु काशी प्रत्यूहभक्षिणी ॥ ७२ ॥

अग्निजिह्वोऽस्ति वेतालस्तस्या देव्यास्तु नेऋते ।

ददाति वाञ्छितां सिद्धिं सोऽर्चितो भौमवासरे ॥ ७३ ॥

वेतालकुण्डं तत्रास्ति सर्वव्याधिविघातकृत् ।

तत्कुण्डोदकसंस्पर्शाद् व्रणविरुफोटूरुव्रजेत् ॥ ७४ ॥

वेतालकुण्डे सुस्नातावेतालं प्रणिपत्य च । लभेत वाञ्छितां सिद्धिं दुर्लभां सर्वदेहिभिः
गणोऽस्ति तत्र द्विभुजश्चतुष्पात्पञ्चशीर्षकः । तस्य सम्भीक्ष्णा देवपापयाति सहस्रधा
तदुत्तरे मुनेरुद्विभुः शृङ्गोऽस्ति भीषणः । त्रिपादस्तु द्विशिर्षा च हस्ताः स्युः सप्त एष हि
रोरुयते वृषाकारस्त्रिधा बद्धः स कुम्भज ! । काशीविघ्नकरायेष्वेयं काश्याम्पापबुद्धयः
तेषाञ्च संछिदां कर्तुमहं धृतकुठारकः । ये काश्यां विघ्नहर्तारो ये काश्यां धर्मबुद्धयः
सुधाघटकरश्चाहंतदंशपरियेककृत् । तं दृष्ट्वा वृषरुद्रं वै पूजयित्वा तु भक्तितः ॥
महामहोपचारैश्च न विघ्नैरभिभूयते । मणिप्रदीपोनागोऽस्ति तस्माद्गुद्रादुदग्दिशि
मणिकुण्डं तदग्रे तु विषव्याधिहरं परम् । तस्मिन्कुण्डे कृतस्नानस्तं नागं परिषीक्ष्य च
मणिमणिक्वसम्पूर्णगजाश्वरथसङ्कुलम् । स्त्रीरत्नपुत्ररत्नैश्च समृद्धं राज्यमाप्नुयात्
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं काश्यां यैर्न विलोकितम् ।

ते मर्त्यलोके भाराय भुवो भूता न संशयः ॥ ८४ ॥

स्कन्द उवाच

कृत्तिवासः समुत्पत्तिं ये श्रोष्यन्तीह मानवाः ।

तल्लिङ्गदर्शनाच्छ्रेयो लप्स्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ ८५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे [काशीखण्डे
कृत्तिवासःसमुद्भवो नामाऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

अष्टषष्ट्यायतनसमागमवर्णनम्

स्कन्द उवाच

श्रण्वगस्त्य! तपोराशे! काश्यां लिङ्गानि यानि वै ।

सेवितानि नृणां मुक्त्यै भवेयुर्भावितात्मनाम् ॥ १ ॥

कृत्तिप्रावरणं यत्र कृतन्देवेन लीलया । रुद्रावान इति ख्यातंतत्स्थानंसर्वसिद्धिदम्
स्थिते तत्रोमया सार्धं स्वेच्छया कृत्तिवाससि ।

आगत्य नन्दीविज्ञमिञ्चके प्रणतिपूर्वकम् ॥ ३ ॥

देवदेवेशविश्वेश प्रासादाः सुमनोहराः । सर्वरत्नमया रम्याःसाष्टाषष्टिरभूदिह ॥ ४ ॥

भूर्भुवः स्वस्तलेयानि शुभान्नायतनानिह । मुक्तिदान्यपि तानीहमयानीतानिसर्वतः

यतो यच्च समानीतं यत्र यच्च कृतास्पदम् । कथयिष्याम्यहं नाथक्षणंतद्वधार्थताम्

स्थाणुर्नाममहालिङ्गं देवदेवस्यमोक्षदम् । कुरुक्षेत्रादिहोद्भूतंकलाशेषोऽस्तितत्रवै

तदग्रेसन्निहत्याख्या महापुष्करिणीशुभा । लोलार्कपश्चिमे भागे कुरुक्षेत्रस्थलीतुसा

तत्र स्नातं हुतं जतंततं दत्तंशुभार्थिभिः । कुरुक्षेत्राद्भवेत्सत्यंकोटिकोटिगुणाधिकम्

नैमिषाद्देवदेवोऽत्र ब्रह्मावर्तेन संयुतः । तत्रांशमात्रं संस्थाप्य काश्यामाविरभूद्विभो!

दुण्डिराजोत्तरे भागे सिद्धिदं साधकस्य वै ।

लिङ्गं वै देवदेवाख्यं तदग्रे कूपउत्तमः ॥ ११ ॥

ब्रह्मावर्त इति ख्यातः पुनरावृत्तिहन्त्रणाम् । तत्कूपाद्विः कृतस्नानोदेवदेवसमर्च्यश्च

तत्पुण्यं नैमिषारण्यात्कोटिकोटिगुणं स्मृतम् ।

गोकर्णायतनादत्र स्वयमाचिरभून्महत् ॥ १३ ॥

लिङ्गं महाबलं नाम साम्बादित्यसमीपतः । दर्शनात्स्पर्शानाद्यस्य क्षणादेनो महाबलम्
चाताहतस्तूलराशिखि बिद्रातिदूरतः । कपालमोचनपुरो दृष्ट्वा लिङ्गं महाबलम्
महाबलमवाप्नोति निर्वाणनगरं व्रजेत् ।

ऋणमोचननः प्राच्यां प्रभासात्क्षेत्रसत्तमात् ॥ १६ ॥

शशिभूषणसञ्ज्ञन्तु लिङ्गमत्र प्रतिष्ठितम् । तल्लिङ्गसेवनान्मर्त्यः शशिभूषणतां व्रजेत्
प्रभासक्षेत्रयात्रायाः पुण्यं प्राप्नोति कोटिकृतम् ।

उज्जयिन्या महाकालः स्वयमत्रागतो विभुः ॥ १८ ॥

यन्नामस्मरणादेव न भयं कलिकालतः ।

प्रणवाख्यान्महालिङ्गात्प्राच्यां कलमपनाशनम् ॥ १९ ॥

महाकालामिधं लिङ्गं दर्शानामोक्षदम्परम् । अयोगन्धेश्वरं लिङ्गं पुष्करार्त्तीयसत्तमात्
आचिरासीदिह महत्पुष्करेण सहैव तु । मत्स्योद्युत्तरे भागे दृष्ट्वाऽयोगन्धमीश्वरम्
स्नात्वाऽयोगन्धकुण्डे तु भवात्तारयते पितृन् ।

महानादेश्वरं लिङ्गमट्टहासादिहागतम् ॥ २२ ॥

त्रिलोचनादुदीच्यान्तु तद्दृष्टं मुक्तये मतम् । महोत्कटेश्वरं लिङ्गं मरुत्कोटादिहागतम्
कामेश्वरोत्तरे भागे दृष्टं विमलसिद्धिदम् ॥ २३ ॥

विश्वस्थानादिहायातं लिङ्गं वै विमलेश्वरम् ।

स्वर्लानात्पश्चिमे भागे दृष्टं विमलसिद्धिदम् ॥ २४ ॥

महाव्रतं महालिङ्गं महेंद्रादिहसंस्थितम् । स्कन्देश्वरसमीपे तु महाव्रतफलप्रदम्
वृन्दारकर्विवृन्दानां स्तुततां प्रथमेयुगे । उत्पन्नयन्महालिङ्गं भूमिभिस्वासुदुर्भिदाम्
महादेवेति तेरुक्तं यन्मनोरथपुरणात् । वाराणस्यां महादेवस्तदारभ्याभवच्चयत्
मुक्तिक्षेत्रं कृतं येन महालिङ्गेन काशिका । अविमुक्ते महादेवं यो द्रक्ष्यत्यत्र मानवः
शम्भुलोके गमस्तस्य यत्र तत्र मृतस्य हि । अविमुक्ते प्रयत्नेन तत्संसेव्यं मुमुक्षुभिः

कल्पान्तरेऽपि न त्यक्तं कदाप्यानन्दकाननम् । येन लिङ्गस्वरूपेण महादेवेन सर्वथा
तत्प्रासादोऽयमनुलः सर्वरत्नमयः शुभः । हिरण्यगर्भतीर्थाच्च प्रतीच्याक्षेत्रक्षकम्
घाराणस्यामधिष्ठात्री देवतासामिलाषदा । महादेवेतिसञ्ज्ञा वैसर्वाल्लिङ्गस्वरूपिणी
घाराणस्यांमहादेवो दृष्टोयैल्लिङ्गरूपधृक् । तेनत्रैलोक्यलिङ्गानि दृष्टानीह न संशयः
घाराणस्यांमहादेवं समभ्यर्च्य सकृन्नरः । आभूतसम्प्लवंयावच्छिवलोके वसेन्मुदा
पवित्रपर्वणि सदा श्रावणे मासि यत्नतः । लिङ्गेपवित्रमारोप्य महादेवेन गर्भभाक्
पितामहेश्वरं लिङ्गं गयातीर्थादिहागतम् ।

फलगुप्रभृतिभिस्तीर्थैः सार्धंकोट्यष्टसंमितैः ॥ ३६ ॥

धर्मेण यत्र वै तप्तं युगानामयुत शतम् । साक्षाकृत्य महालिङ्गं श्रीमद्वर्माश्वराभिधम्
पितामहेश्वरं लिङ्गं तत्राभ्यर्च्य नरो मुदा । त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो मुच्यते नात्र संशयः
प्रयागार्त्ताथराजाच्च शूलटङ्को महेश्वरः । तीर्थराजेन सहितःस्थित आगत्यवैस्वयम्
निर्वाणमण्डपाद्रम्यादवाच्यामतिनिर्मलः ।

प्रासादो मेरुणा यस्य स्पधंते काञ्चनोज्ज्वलः ॥ ४० ॥

देवेनैव चरो दत्तो यत्र पूर्वं युगान्तरे । पूज्यो महेश्वरः काश्यां प्रथमं कलुषापहः
यःप्रयागइहस्नातो नमस्यति महेश्वरम् । समभ्यर्च्य विधानेन महासम्भारविस्तरैः
प्रयागस्नानजातपुण्याच्छूलटङ्कविलोकनात् ।

सप्राप्नुयान्न सन्देहः पुण्यं कोटिगुणोत्तरम् ॥ ४३ ॥

शङ्कुकर्णान्महाक्षेत्रान्महातेज इतीरितम् । लिङ्गमाचिरभूदत्र महातेजोविवृद्धिदम्
महातेजोनिधिस्तस्य प्रासादोऽतीवनिर्मलः ।

ज्वालाजटिलिताकाशो माणिक्यैरेव निर्मितः ॥ ४५ ॥

तल्लिङ्गदर्शनात्स्पर्शात्स्तवनाच्च समर्चनात् । प्राप्यते तत्परं धामयत्र गत्वान शोचते
विनायकेश्वरात्पूर्वं महातेजसमर्चनात् । तेजोमयेन यानेन याति माहेश्वरम्पदम् ॥
रुद्रकोटिसमाख्यातातीर्थात्परमपावनात् । महायोगीश्वरंलिङ्गमाचिञ्चकेस्वयम्परम्
पार्वतीश्वरलिङ्गस्यसमीपे सर्वसिद्धिरुत् । तल्लिङ्गदर्शनात्पुसां कोटिलिङ्गफलंभवेत्

तत्प्रासादस्य परितो रुद्राणां कोटिसम्मिताः ।

प्रासादा रम्यसंस्थाना निर्मिता रुद्रमूर्तिभिः ॥ ५० ॥

काश्यां रुद्रस्थलीसा तुपठ्यते वेदवादिभिः । रुद्रस्थल्यां मृतायेवै कृमिकीटपतङ्गकाः
पशुपक्षिमृगा मर्त्यां म्लेच्छा वाऽप्यथ दीक्षिताः । तेषान्तरुद्रीभूतानां पुनरावृत्तिरत्र न
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम् । रुद्रस्थलीमप्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्
अकामो वा सकामो वा तिर्यग्योनिगतोऽपि वा ।

रुद्रस्थल्यां त्यजन् प्राणान्परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

स्वयमेकाम्बरात्क्षेत्रात्कृत्तिवासाऽहागतः । कृत्तिवाससिल्लिङ्गे त्रस्वयमेव व्यवस्थितः
अस्मिन्स्थाने स्वभक्तानां साम्बः सर्पिगणो विभुः ।

स्वयं चोपदिशेद्ब्रह्म श्रुतौ श्रतिभिरीडितम् ॥ ५६ ॥

क्षेत्रेऽत्रसिद्धिद्वेप्राप्तश्चण्डीशो मरुजाङ्गलात् । प्रचण्डपापसङ्घातं खण्डयेच्छतश्रेक्षणात्
पाशपाणिगणाध्यक्षसमीपे यः प्रपश्यति । चण्डीश्वरं महालिङ्गं स्याति परमांगतिम्
कालञ्जरात्नीलकण्ठस्तिष्ठेद्ब्रह्म स्वयं विभुः । गणेशाद्गन्तकूटाख्यात्समीपे भवनाशनः
नीलकण्ठेश्वरं लिङ्गं काश्यां यैः परिपूजितम् ।

नीलकण्ठास्त एव स्युस्त एष शशिभूषणाः ॥ ६० ॥

काशमीरादिह सम्प्राप्तं लिङ्गं विजयसञ्ज्ञितम् ।

सदा विजयदम्पुसाम्प्राच्यां शालकटङ्कटात् ॥ ६१ ॥

रणे राजकुले यूनै विवादे सर्वदैव हि । चिजयो जायते पुंसां विजये शसमर्चनात्
ऊर्ध्वरेतास्त्रिदण्डायाः सम्प्राप्तोऽत्र स्वयं विभुः ।

कूर्माण्डकं गणाध्यक्षं पुरस्कृत्य व्यवस्थितः ॥ ६३ ॥

ऊर्ध्वांगतिमवाप्नोति वीक्षणादूर्ध्वरेतसः । ऊर्ध्वरेतसि ये भक्तानहितेषामधोगतिः
मण्डलेश्वरतः क्षेत्राल्लिङ्गं श्रीकण्ठसञ्ज्ञितम् ।

विनायकान्मण्डसञ्ज्ञादुत्तरस्यां व्यवस्थितम् ॥ ६५ ॥

श्रीकण्ठस्य च ये भक्ताः श्रीकण्ठापवतेनराः । नेह श्रियाधिप्युज्यन्ते न परत्र कदाचन

छागलाण्डान्महातीर्थात्कपर्दीश्वरसञ्चितः । पिशाचमोचनेतीर्थेष्वयमाविरभूद्विभुः
कपर्दीशंसमभ्यर्च्य न नरोनिरयं व्रजेत् । न पिशाचत्वमाप्नोति कृत्वात्राप्यघमुत्तमम्
आम्नातकेभवात्क्षेत्रालिङ्गं सूक्ष्मेशसञ्चितम् । स्वयमभ्यागतञ्चात्रक्षेत्रे वैश्रेयसाम्बदे
विकटद्विजसञ्ज्ञस्य गणेशस्यसमीपतः । द्रष्टुं सूक्ष्मेश्वरं लिङ्गं गतिं सूक्ष्माप्युयात्
सम्प्राप्तमिह देवेशं जयन्तं मधुकेभवात् । लम्बोदराद्गणपतेः पुरस्तात्तदवस्थितम्
जयन्तेश्वरमालोक्य स्नात्वा गङ्गाजले शुभे ।

प्राप्नुयाद्वाञ्छितां सिद्धिं सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ७२ ॥

प्रादुश्चकार देवेशः श्रीशैलात्त्रिपुरान्तकः । श्रीशैलशिखरं द्रष्टुं यत्फलं समुदीरितम्
त्रिपुरान्तकमालोक्य तत्फलं हेलयाप्यते । विश्वेशात्पश्चिमेभागे त्रिपुरान्तकमीश्वरम्
सम्पूज्य परया भक्त्या न नरो गर्भमाविशेत् ।

सौम्यस्थानादिहायातो भगवान्कुक्कुटेश्वरः ॥ ७५ ॥

वक्रतुण्डगणाध्यक्षसमीपे सोपतिष्ठते । तद्दर्शनादर्चनाच्चकरस्थाः सर्वसिद्धयः ॥
जालेश्वरात्त्रिशूलीष्व स्वयमीशः समागतः । कूटदन्ताद्गणपतेः पुरस्तात्सर्वसिद्धिदः
रामेश्वरान्महाक्षेत्राज्जटीदेवः समागतः । एकदन्तोत्तरे भागे सोऽर्चितः सर्वकामदः
त्रिसन्ध्यात्क्षेत्रतो देवस्यम्बकोऽस्ति समागतः ।

त्रिमुखात्पूर्वदिग्भागे पूजितस्यम्बकत्वकृत् ॥ ७६ ॥

हरेश्वरो हरिश्चन्द्रान्क्षेत्रादत्र समागतः । हरिश्चन्द्रेश्वरपुरः पूजितो जयदः सदा ॥
इहशर्षःसमायातः स्थानान्मध्यमकेभवात् । चतुर्वेदेश्वरं लिङ्गं पुरोधायव्यवस्थितम्
शर्वलिङ्गंसमभ्यर्च्य काश्यां परमसिद्धिकृत् । नजातुजन्तुपदवीं प्राप्नुयात्कापिमानवः
स्थलेश्वरान्महालिङ्गं प्रादुर्भूतं परं त्विह । यत्रयज्ञेश्वरं लिङ्गं सर्वलिङ्गफलप्रदम्
महालिङ्गंसमभ्यर्च्य महाश्रद्धासमन्वितः । महतींश्रियमाप्नोति लोकेऽत्र च परत्रच
इहलिङ्गंसहस्राक्षं सुवर्णाढ्यात्समागतम् । यस्यसंदर्शनात्पुंसां ज्ञानचक्षुः प्रजायते
शैलेश्वरादवाच्यातु सहस्राक्षेश्वरं विभुम् । द्रष्टुं जन्मसहस्राणां शतानां पातकं त्यजेत्
हर्षिताद्धर्षितं चात्र प्रादुरासीत्तमोहरम् । लिङ्गं हर्षप्रदं पुंसां दर्शनात्स्पर्शनादपि

मृन्नेश्वरसमीपे तु प्रासादो हर्षितेशितुः । तद्विलोकनतः पुंसां नित्यं हर्षपरम्परा
 इह स्वर्च्यं समायातो रुद्रो रुद्रमहालयात् । यस्य दर्शनतोयान्तिरुद्रलोकेनराः स्फुटम्
 यैस्तु रुद्रेश्वरं लिङ्गं काश्यामत्र समर्चितम् । ते रुद्ररूपिणो मर्त्या विज्ञेयानात्र संशयः
 त्रिपुरेशसमीपे तु दृष्ट्वा रुद्रेश्वरं विभुम् । रुद्रास्तद्विज्ञेया जीवन्तोऽपि मृता अपि
 आगादिह महादेवो वृषेशो वृषभध्वजात् । बाणेश्वरस्य लिङ्गस्य समापे वृषदः सदा
 इहागतन्तु केदारादीशानेश्वरसञ्ज्ञितम् । तद्द्रष्टव्यप्रतीच्याञ्च लिङ्गं प्रह्लादकेशवात्
 ईशानेशं समभ्यर्च्य स्नात्वा चोत्तरवहाम्भसि । वसेदीशाननगरे ईशानसदृशप्रभः ॥
 भैरवाद्भैरवीमूर्तिरत्रायाता मनोहरा । संहारभैरवो नाम द्रष्टव्यः सप्रयत्नतः ॥
 पूजनात्सर्वसिद्धयै सप्राच्यां खर्वविनायकात् । संहारभैरवः काश्यासंहरेदद्यसन्ततिम्
 उग्रः कनखलात्तीर्थादाविरासेह सिद्धिदः । तद्विलोकनतो नृणामुग्रं पापं प्रणश्यति
 उग्रलिङ्गं सदासेव्यंप्राच्यामर्कविनायकात् । अत्युग्राभपिनश्येयुरूपसर्गास्तदर्चनात्
 बह्मपथान्महाक्षेत्राद्ब्रह्मो नाम स्वयं विभुः । भीमचण्डीसमीपे तु प्रादुरासीदिह प्रभो!
 भवेश्वरं समभ्यर्च्य भवेनाचिर्भवेन्नरः । प्रभुर्भवति सर्वेषां राजामाज्ञाकृतामिह ॥

देषदारुवनाद्दण्डी दण्डयन्पातकावलीः ।

वाराणस्यां समागत्य स्थितो लिङ्गाकृतिर्विभुः ॥ १०१ ॥

प्राच्यां दण्डीश्वरः पूज्यः स देहलिचिनायकात् । तस्याऽर्चनेन मर्त्यानां न पुनर्भव ईक्ष्यते
 भद्रकर्णहृदादत्र भद्रकर्णहृदान्वितः । शिवः साक्षादिहायातः सर्वेषां शिवदोऽर्चितः
 उद्वण्डाख्याद्गणपतेः प्राच्यां तत्तीर्थमुत्तमम् ।

भद्रकर्णहृदे स्नात्वाऽभ्यर्च्य लिङ्गं शिवाह्वयम् ॥ १०४ ॥

सर्वत्र शिवमाप्नोति भद्रकर्णेशपूजनात् । शृणुयात्सर्वभूतानां भद्रं पश्यति चाक्षमिः
 शङ्करश्च हरिश्चन्द्रात्स्वतपुरः प्रतिभासते । तत्पूजनाज्जनानां न जननीजठरेजनिः ॥

यमलिङ्गान्महातीर्थात्काललिङ्गमिहस्थितम् ।

कलशेश इति ख्यातं चन्द्रेशात्पश्चिमेन च ॥ १०७ ॥

वसतीर्थेनरः स्नात्वा मित्राचरुणदक्षिणे । काललिङ्गं समालोक्य कलिकालमयंकुतः

वंकोनसप्ततितमोऽध्यायः] * अष्टषष्ट्यायतनेलिङ्गानाम्बर्णनम् * ४६६

तत्रभौमचतुर्दश्यां बस्तुयात्रां करिष्यति । अपि पातकयुक्तःसयमयात्रानयास्यति
नैपालाञ्च महाक्षेत्रादायात्पशुपतिस्त्विह । यत्र पाशुपतो योग उपदिष्टः पिनाकिना
भवता देवदेवेन ब्रह्मादिभ्यो विमुक्तये । तस्य सन्दर्शनादेव पशुपाशीर्वियुज्यते ॥
करबीरकतीर्थाञ्च कपालीश इहागतः । कपालमोचने तीर्थे द्रष्टव्यः सप्रयत्नतः ॥
तद्विलोकनमात्रेण ब्रह्महत्या विलीयते । उमापतिर्देविकाया इहागत्यव्यवस्थितः
द्रष्टः पशुपतिः प्राच्याहरेत्पापं चिराजितम् । लिङ्गं महेश्वरक्षेत्रादिहदीपेशसञ्चितम्
'उपोमापतितिष्ठेत् दीप्त्यै चेहपरत्रच । भुक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गं दीपेशं काशिमध्यगम्
कायारोहणतः क्षेत्रदानार्थो नकुलीश्वरः ।

शिष्यैः परिवृतस्तिष्ठेन्महापाशुपतव्रतैः ॥ ११६ ॥

दक्षिणेहि महादेवाद्द्रष्टो ज्ञानं प्रयच्छति । अज्ञानं नाशयेत्क्षिप्रं गर्भसंसृतिहेतुकम् ॥
गङ्गासागरतश्चायादमरेश इतीरितम् । लिङ्गं यदर्शनादेव नामरत्नं हि दुर्लभम् ॥
सप्तगोदावरीतीर्थाद्देवो भीमेश्वरः प्रभुः । प्रकाशते लिङ्गरूपीभुक्त्यैमुक्त्यैः नृणामिह
नकुलीशात्पुरो भागे दृष्ट्वा भीमेश्वरं प्रभुम् ।

महाभीमानि पापानि प्रणश्यन्ति हि तत्क्षणात् ॥ १२० ॥

भूतेश्वराद्भस्म गात्रं प्रादुरासीदिहस्वयम् । भीमेशाद्दक्षिणे भागेतदभ्यर्च्य प्रयत्नतः
सम्यक्पाशुपताद्योगादभ्यस्ताञ्च समाः शतम् ।

यत्प्राप्यते फलं तत्स्याद्भस्मगात्रविलोकनात् ॥ १२२ ॥

नकुलीश्वरतो देवः स्वयम्भूरिति श्रुतः । आत्मना प्रकटीभूतः काश्यां लिङ्गाकृतिर्हरः
स्वयम्भुलिङ्गं सम्पूज्य स्नात्वा सिद्धिहृदे नरः ।

महालक्ष्मीश्वरपुरो न भूयो जन्मभागभवेत् ॥ १२४ ॥

प्रयागतीर्थनिकवाप्रासादो विद्रुमप्रभः । वाराहस्य महानेव धरणीनाम्न एव हि ॥
विन्ध्यपर्वततः प्राप्तो देवं श्रुत्वासमागतम् । सगर्णं सर्षिद्वेषं च मन्दराद्ब्रह्मकन्दरात्
काश्यां धरणिवाराहो द्रष्टव्यः सप्रयत्नतः । आपत्समुद्रसंमग्नमुद्गरैश्छरणागतम् ॥
कर्णिकाराद्रूपाध्यक्षः कर्णिकारप्रसूनरुक् । समर्च्योऽर्थं गदाहस्त उपसर्गसहस्रहत्

तस्माद्धरणिवाराहात्प्रतीच्यां दिशि संस्थितम् ।

पूजयित्वा गणाध्यक्षं गणपत्यपदं लभेत् ॥ १२६ ॥

हेमकूटाद्विरूपाक्षं लिङ्गमत्राधिरासह । महेश्वरादवाच्यां च दृष्टं संसारतारकम् ॥

गङ्गाद्वाराद्धिमस्थेशं लिङ्गं हिमसमप्रभम् ।

ब्रह्मनालात्प्रतीच्यां च द्रष्टव्यमिह सिद्धिदम् ॥ १३१ ॥

गणाधिपश्च कैलासाद्रणा अन्ये महाबलाः ।

कैलासाद्रेः समायाताः सप्तकोटिमिताः प्रभो ! ॥ १३२ ॥

दुर्गाणितैः कृतानीह सप्तस्वर्गसमानि च । सह्याराणि सयन्त्राणिकपाटविकटानिश्च
कोटिकोटिमटाद्यानि सर्वद्विसहितान्यपि ।

सुवर्णरूप्यताम्रेश्च कांस्यरीतिकसीसकैः ॥ १३४ ॥

अयस्काण्तेनकान्तानिद्रुढान्यभ्रंलिहान्यपि । ततःशैलं महादुर्गतैःकाशीपरितःकृतम्
परिखाऽपि कृता निम्ना मत्स्योदर्या जलाविला ।

मत्स्योदरी द्विधा जाता बहिरन्तश्चरा पुनः ॥ १३६ ॥

तच्च तीर्थं महत्क्यातं मिलितं गङ्गाधारिभिः । यदासंहारमार्गेण गङ्गाम्भः प्रसरदिह
तदा मत्स्योदरी तीर्थंलभ्यतेपुण्यगौरवात् । सूर्याचन्द्रमसोःपर्वतदाकोटिगुणंशतम्

सर्वपर्वाणि तत्रैवसर्वतीर्थानि तत्र वै । तत्रैवसर्वलिङ्गानिगङ्गामत्स्योदरीयतः ॥
मत्स्योदर्याहि येस्नाता यत्रकुत्रापिमानवाः । कृतपिण्डप्रदानास्ते न मातुरुदरेशयाः

अचिमुक्तमिदंक्षेत्रंमत्स्याकारस्त्रज्ञानुयात् । परितःस्वधुनीधारिसंसारिपरिवीक्ष्यते
मत्स्योदर्याकृतस्नानायेनरास्तेनरोत्तमाः । कृत्वापिबहुपापानिनेक्षन्तेभास्करेःपुरीम्

किंस्नात्वाबहुतीर्थेषुकितप्त्वाहुष्करंतपः । यदिमत्स्योदरीस्नाताकुतोर्गमंभयंततः
यत्रयत्रहिलिङ्गानि नृदेषकिंतान्यपि । तत्रमत्स्योदरीं प्राप्य सुस्नातोमोक्षभाजनम्

सन्ति तीर्थान्यनैकानि भूभुवः स्वर्गंतान्यपि ।

न समानि परं तानि कोट्यंशेनापि निश्चितम् ॥ १४५ ॥

हृत्थंतीर्थंकृतं तेनविभो कैलासवासिता । गणाधिपेन सुमहत्सुमहोदारकर्मणा ॥

भूर्भुवः सञ्ज्ञकं लिङ्गं पर्वताद्रन्धमादनात् ।

स्वयमाधिरभूदत्र तस्मात्प्राच्यां गणाधिपात् ॥ १४७ ॥

विलोक्य भूर्भुवं लिङ्गं भूर्भुवः स्वमंहः परे ।

निवसन्ति जनाः पुण्याः सुचिरं दिव्यभोगिनः ॥ १४८ ॥

हाटकेशं महालिङ्गं भोगवत्त्वा समायुतम् । सप्तपातालतलत इहाप्यातं स्वयं विभो !

शेषवासुकिमुख्यैश्च तत्प्रासादो महानिह । मणिमाणिक्यरत्नौघैर्निर्मायि प्रयत्नतः

तल्लिङ्गं हाटकमयं रत्नमालाभिरर्चितम् । ईशानेश्वरतः प्राच्यां पूजनीयं प्रयत्नतः ॥

भक्तितोऽऽभ्यर्च्य तल्लिङ्गं नरः सर्वसमृद्धिमान् ।

भुक्त्वा भोगानसङ्ख्यातानन्ते निर्वाणमृच्छति ॥ १५२ ॥

आकाशात्तारकाल्लिङ्गं ज्योतीरूपमिहागतम् । ज्ञानवाप्याःपुरोभागेतल्लिङ्गं तारकेश्वरम्

तारकं ज्ञानमाप्येततल्लिङ्गस्य समर्चनात् । ज्ञानवाप्यांनरःस्नात्वातारकेशविलोक्यच्च

कृतसन्ध्यादिनियमः परितर्प्यपितामहान् । धृतमौनव्रतोधीमान्यावल्लिङ्गविलोकनम्

मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुण्यं प्राप्नोति शाश्वतम् ।

प्रान्ते च तारकं ज्ञानं यस्माज्ज्ञानाद्विमुच्यते ॥ १५६ ॥

किराताच्चकिरातेश इह चाचिबंभूवह । किरातरूपो भगवान्यत्र देवोऽभवत्पुरा ॥

तत्किरातेश्वरं लिङ्गं भारभूतेश्वरादनु । नमस्कृत्य नरो जातु न मातुरुदरेशयः ॥

लङ्कापुर्याः समागच्छन्मरुकेश्वरसञ्ज्ञकम् ।

लिङ्गं यदर्चनात्पुंसां न भयं रक्षसाम्भवेत् ॥ १५६ ॥

नैऋत्यां दिशि तल्लिङ्गं नैऋतेश्वरसञ्ज्ञकम् ।

पौलस्त्यराघवात्पश्चात्पूजितं सर्वदुष्टहृत् ॥ १६० ॥

पुण्यं जलप्रियं लिङ्गं जललिङ्गं स्थलादपि ।

आयातं तच्च गङ्गाया जलमध्ये व्यवस्थितम् ॥ १६१ ॥

तत्प्रासादोऽद्भुततरो मध्येगङ्गं निरीक्ष्यते । सर्वधातुमयः श्रेष्ठः सर्वरत्नमयः शुभः

अद्यापि दृश्यते कैश्चित्पुण्यसम्भारगौरवात् ।

श्रेष्ठं लिङ्गमिहायातं तीर्थात्कोटीश्वरादपि ॥ १६३ ॥

कोटिलिङ्गेश्वरे पुण्यं तल्लिङ्गस्य निरीक्षणात् ।

श्रेष्ठं ज्येष्ठेश्वरात्पञ्चाच्छ्रेष्ठसिद्धिप्रदायकम् ॥ १६४ ॥

बडवास्यात्समुद्रभूतं लिङ्गमत्रानलेश्वरम् । नलेश्वरपुरो भागे पूजितं सर्वसिद्धिदम्
आगत्य शिरजस्तीर्थाद्वेवदेवखिलोचनः । लिङ्गे त्वनादिसंसिद्धे ह्यवतस्थेत्रिविष्टपे
पुण्ये पिलिपिलातीर्थे सर्वेषां तारकप्रदे । आविश्चक्रे स्वयन्देव उकारोऽमरकण्टकात्
तदाद्यन्तारकक्षेत्रं यदागङ्गा न चागता । यदैवाशिरभूत्काशी त्रैलोक्योद्धरणाय वै
तदाकृतिमहलिङ्गं स्वयमाशिरभूत्ततः । महिमानं न तस्यान्यः परिवेत्तिविभोऽर्भृते
एतान्यायतनानीश आनिनाय महान्ति च । शेषयित्वांशमात्रञ्च तस्मिन्क्षेत्रे निजे निजे
इहायातानि पुण्यानि सर्वभावेनान्यान्यथा । प्रासादाः सर्वतश्चैषां रम्या अन्नलिहाविभो
बहुधातुमयाश्चित्राः सर्वरत्नसमुज्ज्वलाः । येषां कलशमात्रस्य दर्शनमुक्तिराप्यते
श्रुत्वापि नामचैतेषां लिङ्गानां सुरसत्तम ! । अपि जन्मसहस्रोत्थाः क्षीयन्ते पापराशयः
इदानीं कोनिदेशोऽत्र मयानुष्ठेयं शितः । प्रसादीक्रियतासोऽपि सिद्धो मन्तव्य एव हि

स्कन्द उवाच

श्रुत्वेति नन्दिनो वाक्यं देवदेवेश्वरोहरः । श्रद्धाप्रसाद्यशैलादिमिदं प्रोवाच कुम्भजः

श्रीदेवदेव उवाच

साधूकृतं त्वया नन्दिनसदानन्दविधायक ! । विधेहि मेनिदेशञ्च चण्डीव्यापारयाधुना
नवकोट्यस्तु चामुण्डा या यत्र निवसन्ति हि । स्वदेवताभिः सहिता भूतवेतालभैरवैः
ताः पुरीरक्षणार्थाय सवाहनबलायुधाः । प्रतिदुर्गं दुर्गरूपाः परितः परिवासय ॥

स्कन्द उवाच

नन्दिनं संनिदेश्येति मृडान्या सहितो मृडः । ययौ वै विष्टपं क्षेत्रं मुक्तिबीजप्ररोहणाम्
शिलादत्तनयोऽप्यैशैर्मूर्द्धन्याह्वां विधाय च । आहूय सर्वतो दुर्गाः प्रतिदुर्गान्यवेशयत्
निशम्याऽप्यायमेतञ्च पुण्यायतनगर्भिणम् ।

नरः स्वर्गोपवर्गौ च प्राप्नुयाच्छ्रद्धया क्रमात् ॥ १८१ ॥

श्रुत्वाष्टवष्टिमेतां वै महायतनसंश्रयाम् । न जातुप्रविशेन्मर्त्यो जनन्याजाठरीं दरीम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
उत्तरार्धे अष्टवष्टयायतनसमागमो नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

देवताधिष्ठानवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

कात्यायनेय! कथय नन्दिना विश्वनन्दिना । यथाव्यापारिता देव्यो देवदेवनिदेशतः
अचिमुक्तस्य रक्षार्थं यत्र यादेवताः स्थिताः । प्रसादं कुरुमेदेवताःसमाप्तश्चतत्त्वतः
इत्यगस्त्युदितं श्रुत्वा महादेवतनुद्भवः । कथयामास यात्रस्थिताऽऽनन्दवनेमुदा
स्कन्द उवाच

वाराणस्या विशालाक्षीक्षेत्रस्य परमेष्टदा ।

विशालतीर्थं गङ्गाया कृत्वा पृष्ठे व्यवस्थिता ॥ ४ ॥

स्नात्वा विशालतीर्थे वै विशालाक्षीम्प्रणम्य च ।

विशालां लभते लक्ष्मीम्परत्रेह च शर्मदाम् ॥ ५ ॥

भाद्रकृष्णतृतीयायामुपोषणपरैर्ऋषिभिः । कृत्वा जागरणं रात्रौ विशालाक्षीसमीपतः ।
प्रातर्भोज्याःप्रयत्नेनचतुर्वंशकुमारिकाः । अलङ्कृता यथा शक्त्या स्रगम्बरविभूषणैः
विधाय पारणम्पश्चान्पुत्रभृत्यसमन्वितैः । सम्यग्वाराणसीवासफलंलभ्येत कुम्भजः
तस्या तिथौ महायात्रा कार्या क्षेत्रनिवासिभिः ।

उपसर्गप्रशान्त्यर्थं निर्वाणकमलात्तथे ॥ ६ ॥

वाराणस्यां विशालाक्षी पूजनीया प्रयत्नवः । धूपैर्दोषैः शुभैर्माल्यैरुपहारैर्मनोहरैः
मणिमुक्तायलङ्कारैर्विचित्रोल्लोचनारैः । शुभैरनुपभुक्तैश्च दुकूलैर्गन्धवासितैः ॥

मोक्षलक्ष्मीसमृद्धयर्थयत्रकुत्रनिवासिभिः । अप्यल्पमपियद्दत्तं विशालाक्ष्यै नरोत्तमैः
तदानन्त्याय जायेत मुने लोकद्वयेऽपि हि । विशालाक्षीमहापीठे दत्तं जप्तं हुतंस्तुतम्

मोक्षस्तस्य परीपाको नात्र कार्याविचारणा ।

विशालाक्षीसमर्चातो रूपसम्पत्तियुक्पतिः ॥ १४ ॥

प्राप्यतेऽत्रकुमारीभिर्गुणशीलाद्यलंकृतः । गुर्विणीभिः सुतनयो बन्ध्याभिर्गर्भसम्भवः
असौभाग्यवतीभिश्च सौभाग्यं महदाप्यते । विघ्नघाभिर्नैवैधव्यं पुनर्नान्तरे कश्चित्
सीमन्तिनीभिः पुम्भिर्वापरं निर्वाणमिच्छुभिः ।

श्रुताद्दृष्टार्चिता काश्यां विशालाक्ष्यभिलाषदा ॥ १७ ॥

ततोऽन्यल्ललितातीर्थगङ्गाकेशवसन्निधौ । तत्राऽस्तिललितादेवीक्षेत्ररक्षाकरी परा
सा च पूज्या प्रयत्नेन सर्वसम्पत्समृद्धये । ललितापूजकानाञ्च जातुघिघ्नो न जायते
इषे कृष्णद्वितीयायां ललिताम्परिपूज्यवै । नारीवापुरुषोवापिलभतेवाञ्छितम्पदम्
स्नात्वा च ललितातीर्थे ललिताम्प्रणिपत्य वै ।

लभेत्सर्वत्र लालित्यं यद्वा तद्वाऽनुलप्य च ॥ २१ ॥

मुने विश्वभुजा गौरीविशालाक्षीपुरःस्थिता । संहरन्तीमहाविघ्नक्षेत्रभक्तियुवांसदा
शारदंनवरात्रञ्च कार्या यात्रा प्रयत्नतः । देव्या विश्वभुजा या वै सर्वकामसमृद्धये
यो न विश्वभुजां देवीं वारणस्यां न मे भ्रमः । कुनोमहोपसर्गेभ्यस्तस्यशान्तिर्दुरात्मनः
यैस्तु विश्वभुजा देवी वाराणस्यां स्तुतार्चिता ।

नहि तान्विघ्नसङ्घातो बाधते सुकृतात्मनः ॥ २५ ॥

अन्यास्ति काश्यां वाराही क्रतुचाराहसन्निधौ ।

ताम्प्रणम्य नरो भक्त्या विपद्बधौ न मज्जति ॥ २६ ॥

शिवदूती तु तत्रैव द्रष्टव्याऽऽपद्विनशिनी । आनन्दवनरक्षार्थमुद्यच्छूलारितर्जनी ॥
वज्रहस्तातथाचैन्द्रीगजराजस्यास्थिता । इन्द्रेणाद्दक्षिणे भागेऽर्चितासम्पत्करीसदा
स्कन्देश्वरसमीपे तु कौमारीः बर्हिद्यानगा । प्रेक्षणीया प्रयत्नेन महाफलसमृद्धये ॥
महेश्वराद्दक्षिणतोः देवी माहेश्वरीनरैः । वृषयानवती पूज्या महाहृषसमृद्धिदा ॥

निर्वाणनरसिंहस्य समीपे मोक्षकाङ्क्षिभिः । नारसिंहीसमर्च्यांचसमुद्यच्चक्ररम्यदोः
हंसयानवतीब्राह्मीब्रह्मेशात्पञ्चिमेस्थिता । गलत्कमण्डलुजलचुलकाताडिताहिता ॥

ब्रह्मविद्याप्रबोधार्थं काश्याम्पूज्या दिने दिने ।

ब्राह्मणैर्यतिभिर्नित्यं निजतस्वावबोधिभिः ॥ ३३ ॥

शाङ्गं चापचिनिर्मुक्तमहेषुभिरितस्ततः ।

उत्सादयन्तीम्प्रत्यूहान्काश्यां नारायणीं श्रयेत् ॥ ३४ ॥

प्रतीच्यांगोपिगोविन्दाद् भ्राभ्यश्चक्रोच्चतर्जनीम् ।

नारायणीं यः प्रणमेत्तस्य काश्यां महोदयः ॥ ३५ ॥

ततो गौरीं विरूपाक्षीं देवयान्या उदग्दिशि ।

पूजयित्वा नरो भक्त्या वाञ्छितां लभते श्रियम् ॥ ३६ ॥

शैलेश्वरी समभ्यर्च्या शैलेश्वरसमीपगा । तर्जयन्ती च तर्जन्या संसर्गमुपसर्गजम्
चित्रकूपेनरः स्नात्वाविचित्रफलदेनृणाम् । चित्रगुप्तेश्वरंवीक्ष्यचित्रघण्टाम्प्रपूज्यच
बहुपातकयुक्तोऽपि त्यक्तधर्मपथोऽपिषा । नचित्रगुप्तलेख्यःस्याच्चित्रघण्टार्चकोनरः
योपिद्वा पुरुषो वापि चित्रघण्टानयोऽर्चयेत् । काश्यांविघ्नसहस्राणितंसेचन्तेपदेपदे
श्वेत्रशुक्लतृतीययायां कार्यायात्राप्रयत्नतः । महामहोत्सवः कार्यो निशिजागरणं तथा
महापूजोपकरणैश्चित्रघण्टां समर्च्यच । शृणोतिनान्तकस्येह घण्टांमहिषकण्ठगाम्
चित्राङ्गदैश्वरप्राच्यां चित्रग्रीवाम्प्रणम्य च । नजातुजन्तुर्वीक्षेतविचित्रायमयातनाम्
भद्रकालीनरोदृष्ट्वा नाभद्रम्प्रशयति क्वचित् । भद्रनागस्य पुरतोभद्रवाप्यां कृतोदकः ॥

हरसिद्धिं प्रयत्नेन पूजयित्वा नरोत्तमः ।

महासिद्धिमवप्नोति प्राच्यां सिद्धिचिनायकात् ॥ ४५ ॥

विधिसम्पूज्यविधिवद्विधिधैरुपहारकैः । विधिधांलभतेसिद्धिचिधीश्वरसमीपगाम्
प्रयागतीर्थेसुस्नातोजनो निगडभञ्जनीम् । सभाजयित्वानोजातुनिगडैःपरिबाध्यते
भौमधारे सदापूज्यादेवी निगडभञ्जनी । कृत्वैकभुक्तंमद्यत्वाऽत्रबन्दीमोक्षणकाम्यया
संसारबन्धविच्छिन्तमपि यच्छति सार्धिता ।

गणना शृङ्खलादीनां का च तस्याः समर्चनात् ॥ ४६ ॥

दूरस्थोऽपि हियो बन्धुः सोऽपि क्षिप्रं समेप्यति । बन्दीपदजुषांपुंसां श्रद्धयानात्रसंशयः
किञ्चिन्नियममालम्ब्य यदिसाप रिषेचिता । कामान् पूरयति क्षिप्रं काशीसन्देहहारिणी
घनटङ्कुकरा देवी भक्तबन्धनभेदिनी । कंकं न पूरयेत्कामं तीर्थं राजसमीपगा ॥ ५२ ॥
द्वेषीपशुपतेः पश्चादमृतेश्वरसन्निधौ । स्नात्वा चैवामृते कूपे नमनीया प्रयत्नतः
पूजयित्वा नरो भक्त्या देवताममृतेश्वरीम् । अमृतत्वं भजे देव तत्पादाभ्युजसेचनात्
धारयन्तीं महामायाममृतस्य कमण्डलुम् ।

दक्षिणेऽभयदां घामे ध्यात्वा को नाऽमृतत्वभाक् ॥ ५५ ॥

सिद्धलक्ष्मीजगद्धात्रीप्रताच्याममृतेश्वरात् । प्रपितामहलिङ्गस्य पुरतः सिद्धिदार्चिता
प्रासादं सिद्धलक्ष्म्याश्च चिलोक्य कमलाकृतिम् ।

लक्ष्मीविलाससञ्ज्ञञ्च को न लक्ष्मीं समाप्नुयात् ॥ ५७ ॥

ततः कुब्जा जगन्मातानलकृवरलिङ्गतः । पूजनीया पुरोभागे प्रपितामहपश्चिमे ॥
उपसर्गानशेषाश्च कुब्जा हरति पूजिता ।

तस्मात्कुब्जा प्रयत्नेन पूज्या काश्या शुभार्थिभिः ॥ ५९ ॥

कुब्जाम्बरेश्वरं लिङ्गं नलकृवरपश्चिमे । त्रिलोकसुन्दरी गौरी तत्राचार्याभीष्टदायिनी
त्रिलोकसुन्दरीसिद्धिं दद्यात्त्रैलोक्यसुन्दरीम् ।

वैधव्यं नाऽप्यते काऽपि तस्या देव्याः समर्चनात् ॥ ६१ ॥

दीप्ता नाम महाशक्तिः साम्बादित्यसमीपगा ।

देदीप्यमानलक्ष्मीका जायन्ते तत्समर्चनात् ॥ ६२ ॥

श्रीकण्ठसन्निधौ देवी महालक्ष्मीर्जगज्जनिः ।

स्नात्वा श्रीकुण्डतीर्थे तु समर्चया जगदम्बिका ॥ ६३ ॥

पितृन्सन्तर्प्य विधिवत्तीर्थे श्रीकुण्डसञ्ज्ञिते ।

दत्त्वा दानानि विधिवन्न लक्ष्म्या परिमुच्यते ॥ ६४ ॥

लक्ष्मीक्षेत्रं महापीठं साधकस्यैव सिद्धिदम् ।

साधकस्तत्र मन्त्रांश्च नरः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६५ ॥

सन्ति पीठान्यनेकानि काश्यां सिद्धिकराण्यपि ।

महालक्ष्मीपीठसमं नान्यल्लक्ष्मीकरं परम् ॥ ६६ ॥

महालक्ष्म्यष्टमीं प्राप्य तत्रयात्राकृतां नृणाम् । सम्पूजितेह विधिवत्पद्मा सद्यन्मुञ्चति
उत्तरेतु महालक्ष्म्याह्वयकण्ठीकुठारधृक् । काशीविघ्नमहावृक्षांश्छिनत्तिप्रतिषासस्म्

कौर्मीशक्तिर्महालक्ष्मीर्दक्षिणे पाशपाणिका ।

बध्नाति विघ्नसङ्घातं क्षेत्रस्याऽस्य प्रतिक्षणम् ॥ ६६ ॥

सा पूजिता स्तुता मर्त्यैः क्षेत्रसिद्धिं प्रयच्छति ।

वायव्यां च शिखी चण्डी क्षेत्ररक्षाकरी परा ॥ ७० ॥

खादन्ती विघ्नसङ्घातं शिखीशब्दं करोति च ।

तस्याः सन्दर्शनात्पुंसां नश्यन्ति व्याधयोऽखिलाः ॥ ७१ ॥

भीमचण्ड्युत्तरद्वारं सदा रक्षेदतन्द्रिता । भीमेश्वरस्य पुरतः पाशमुद्गरधारिणीम्
भीमचण्डीनरोद्वृष्टाभीमकुण्डेकृतोदकः । भीमाकृतीन्त्रवै पश्येद्याभ्यान्दूतान्कचित्कृती
छागचक्रेश्वरी देवीदक्षिणे वृषभध्वजात् । अहर्निशम्भक्षयति विघ्नौषतरुपल्लवान् ॥
तस्यादेव्याः प्रासादेन काशीवासःप्रलभ्यते । अतश्लागेश्वरीं देवीं महाष्टम्यां प्रपूजयेत्
तालजङ्घेश्वरे देवी तालवृक्षकृतायुधा । उत्सादयति विघ्नौषानानन्दवनमध्यगान्
सङ्गमेश्वरलिङ्गस्य दक्षिणे चिकटाननाम् । तालजङ्घेश्वरीं नत्वा न विघ्नैरभिभूयते
उद्दालकेश्वराल्लिङ्गात्तीर्थं उद्दालकामिधे । याम्यां च यमदंष्ट्राख्या चर्चयेद्विघ्नसंहतिम्
प्रणता यमदंष्ट्रा यैस्तीर्थे चोद्दालकामिधे । कृत्वाऽपि पापसङ्घातं न यमाद्विभ्यतीहते
दारुकेश्वरतीर्थे तु दारुकेशसमीपतः । पातालतालुबदनामाकाशोर्ष्ठी धराधराम् ॥

कपालकर्त्रीहस्तां च ब्रह्माण्डकवलप्रियाम् ।

शुष्कोदरीं स्नायुबद्धां चर्ममुण्डेति विश्रुताम् ॥ ८१ ॥

क्षेत्रस्य पूर्वदिग्भागं रक्षन्तीविघ्नसङ्घतः । लसत्सहस्रदोर्दण्डाञ्जलत्केकरधीक्षणाम्
पारावारप्रसृमरहस्तन्यस्तारिमोदकाम् । द्वीपिकृत्तिफरीधानां कटुकाट्टाट्टहासिनीम्

मृणालनालवत्तीव्रं चर्वन्तीमस्थिपापिनः । शूलाग्रप्रोतदुर्वृत्सक्षेत्रद्रोहिकलेधराम् ॥

कपालमालाभरणां महाभीषणरूपिणीम् ।

चर्ममुण्डां नरो नत्वा क्षेत्रविघ्नैर्न चाध्यते ॥ ८५ ॥

यथैव चर्ममुण्डैवा महारुण्डाऽपि तादृशी । एतावानेषभेदोऽस्यारुण्डस्त्रभूषणात्त्वियम्
क्षेत्ररक्षां प्रकुरुत उभे देव्यौ महाबले । हस्तन्त्यौ करतालीभिरन्योन्यदोःप्रसारणात्
हयग्रीवेश्वरे तीर्थे लोलार्कादुत्तरे सदा । महारुण्डा प्रचण्डास्यातिष्ठते भक्तविग्रहत्
चर्ममुण्डा महारुण्डा कथितेयेतु देवते । तयोरन्तरतस्तिष्ठेच्चामुण्डामुण्डरूपिणी
एतास्तिस्त्रः प्रयत्नेनपूज्याःक्षेत्रनिवासिभिः । धनधान्यप्रदाश्चैताःपुत्रपौत्रप्रदा इमाः
उपसर्गान् मूर्ध्नन्तिदद्यन्तैश्चेत्सीं श्रियम् । स्मृताद्दृष्टानताःस्पृष्टाःपूजिताःश्रद्धयानरैः
महारुण्डा प्रतीच्यां च देवी स्वप्नेश्वरी शुभा ।

भविष्यं कथयेत्स्वप्ने भक्तस्याऽग्रे शुभाशुभम् ॥ ९२ ॥

तत्र स्वप्नेश्वरं लिङ्गं देवीं स्वप्नेश्वरीं तथा ।

स्नात्वासिसङ्गमेपुण्येयस्मिन्कस्मिन्स्तिथावपि ॥ ९३ ॥

उपोषणपरो धीमान्भारी वा पुरुषोऽपि वा ।

सम्पूज्य स्थण्डिलशयः स्वप्ने भावि विलोकयेत् ॥ ९४ ॥

अद्यापि प्रत्ययस्तत्र कार्येषु विज्ञानता । भूतं भावि भवत्सर्ववदेत्स्वप्नेश्वरीनिशि
अष्टभ्यांश्चतुर्दश्यांनवभ्यांनिशिवादिवा । प्रयत्नतःसमर्चयासाकाश्यांज्ञानार्थिभिरैः

स्वप्नेश्वर्याश्च धारण्यां दुर्गादेवी व्यवस्थिता ।

क्षेत्रस्य दक्षिणं भागं सा सदैवाऽभिरक्षति ॥ ९७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थकाशीखण्डे

उत्तरार्धेदेवताधिष्ठानं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

दुर्गपराक्रमवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

कथं दुर्गेतिवैनामदेव्याजातमुमासुत !। कथंच काश्यांसा सेव्यासमाचक्ष्वेतिमामिह
स्कन्द उवाच

कथयामिमहानुद्धे यथा कलशसम्भव !। दुर्गानामाऽभवद्देव्या यथासेव्याष्व साधकैः
दुर्गोनाममहादैत्योरुरुदैत्याङ्गजोऽभवत् । यश्चतपत्चातपस्तीव्रं गुम्भ्योजेयत्वमाप्तवान्
ततस्तेनाऽखिला लोका भूर्भुवः स्वर्मुखा अपि ।

स्वसात्कृताचिनिर्जित्य रणे स्वभुजसारतः ॥ ४ ॥

स्वयमिन्द्रः स्वयं वायुः स्वयं चन्द्रः स्वयं यमः ।

स्वयमग्निः स्वयं पाशी धनदोऽभूत्स्वयं बली ॥ ५ ॥

स्वयमीशानरुद्रार्कधसूनां पद्माददे । तत्साध्वसाद्विमुक्तानि तपांस्यतितपस्विभिः
न वेदाध्ययनं चक्रुर्ब्राह्मणास्तद्गयादिताः । यज्ञवाद्याचिनिर्ध्वस्तास्तद्गदैरतिदुःसहैः
विध्वस्ताबहुशः साध्व्यस्तैरमार्गकृतास्पदैः । प्रसभञ्चपरस्वानि अपहृत्य दुरासदाः
अभोक्षिषुर्दुराचाराः क्रूरकर्मपरिग्रहाः । नद्यो चिमार्गंगाआसञ्ज्वलन्तिन तथाऽग्रयः
ज्योतींषि न प्रदीप्यन्ति तद्द्वयाकुलितान्यहो ।

दिव्यूषसनान्यासन्विच्छायानि समन्ततः ॥ १० ॥

धर्मक्रियाचिलुप्ताश्च प्रवृत्ताः सुकृतेतराः । तएव जलदीभूयचवृषुर्निजलीलया ॥ ११ ॥
सस्यानि तद्द्वयात्सूनैत्वनुमापि चसुन्धरा । सदैवफलिनोजातास्तरघोऽप्यघकेशिनः
बन्दीकृताः सुरर्षीणां पत्न्यस्तेनाऽतिदर्षिणा ।

विषौकसः कृतास्तेन समस्ताः काननौकसः ॥ १३ ॥

मर्त्या अमर्त्यान्स्वगृहं प्राप्तानपि भयादिताः ।

अपिसम्भावमात्रेण नाऽर्चयन्ति विपज्जुषः ॥ १४ ॥

स्कन्द उवाच

नकौलीन्यं न सद्वृत्तं महत्स्वाय प्रकल्पते । एकमेवपदं श्रेयः पदभ्रंशो हिलाघवम् ॥
 विपद्यपिहिते धन्याः नयेदैन्यप्रणोदिताः । धनेर्मलिनचित्तानामालभन्तेऽङ्गुणकञ्चित्
 पञ्चत्वमेव हि वरं लोके लाघववर्जितम् । नामरत्वमपि श्रेयो लाघवेनसमन्वितम्
 तएवलोकेजीवन्तिपुण्यभाजस्त एवैव । विपद्यपिनगाम्भीर्यंरुचेतोन्ध्रिःपरित्यजेत्
 कदाचित्सम्पदुदयः कदाचिद्विपदुद्गमः । देवाद्ब्रह्ममपिप्राप्य धीरोधैर्यं न हापयेत्
 उदयानुदयौ प्राज्ञेर्द्रष्टव्यौ पुष्पवन्तयोः । सदैकरूपताऽत्याज्या हर्षाहर्षौ ततोऽध्रुवौ
 यस्त्वापदं समासाद्यदैन्यप्रस्तोऽविपद्यते । तस्यलोकद्वयंनष्टं तस्माद्दैन्यं विवर्जयेत्
 आपाद्यपिहिये धीरा इहलोके परत्र च । नतान्पुनः स्पृशेदापत्तद्धैर्येणावधीरिता ॥
 भ्रष्टराज्याश्च विबुधा महेशं शरणं गताः । सर्वज्ञेन ततो देवी प्रेरिताऽसुरमर्दने ॥
 माहेश्वरीं समासाद्य भवान्यात्रां प्रहृष्टवत् । अमर्त्यायाऽभयं दत्त्वा समरायोपचक्रमे ॥
 कालरात्रीं समाह्वय कान्त्यात्रैलोक्यसुन्दरीम् । प्रेपयामास रुद्रार्पातमाह्वातुंसुरदुहम्
 कालरात्री समासाद्य तंदैत्यं दुष्टचेष्टितम् । उवाचदैत्याधिपतेत्यजत्रैलोक्यसम्पदम्
 त्रिलोकीं लभतामिन्द्रस्त्वन्तु याहि रसातलम् ।

प्रवर्तन्तां क्रियाः सर्वा वेदोक्ता वेदवादिनाम् ॥ २७ ॥

अथचेद्रवलेशोऽस्ति तदा याहिसमाजये । अथवा जिविताकाङ्क्षीतदिन्द्रं शरणं ब्रज
 इति वक्तुं महादेव्या महामङ्गलरूपया । त्वदन्तिकं प्रेषिताऽहं मृत्युस्ते तदुपेक्षया
 अतो यदुचितं कर्तुं तद्विधेहि महासुर ! । परंहितं चेच्छृणुयाज्जीवप्राहन्ततो ब्रज
 इत्याकर्ण्य वचो देव्या महाकाल्याः स दैत्यराट् ।

प्रजज्वाल तदाक्रोधाद् गृह्यतां गृह्यतामिधम् ॥ ३१ ॥

त्रैलोक्यमोहिनी ह्येषा प्राप्तामद्भाग्यगौरवैः ।

त्रैलोक्यराज्यसम्पत्तिवह्निःफलमिदं महत् ॥ ३२ ॥

एतदर्थं हि देवर्षिनृपा बन्दीकृता मया । अनाथासेन मे प्राप्तागृहमेवा शुभोदयात् ॥

अवश्यं यस्य योग्यं यत्तत्सर्वैर्होपतिष्ठते । अरण्येवाग्रहैवाऽपियतोभागस्यगौरवात्
अन्तः पुरखराएनां नयन्त्वन्तःपुरं महत् । अनया सदलङ्कृत्याममराष्ट्रमलङ्कृतम् ॥
अहोमहोदयश्चाद्य जातो मम महामतेः । केवलं न ममैकस्य सर्वदैत्यान्वयस्य च
नृत्यन्तु पितरश्चाऽद्य मोदन्तां बान्धवाःसुखम् ।

मृत्युः कालोऽन्तको देवाः प्राप्नुवन्त्वद्य मे भयम् ॥ ३७ ॥

इति यावत्समायातास्तांनेतुंसौविदल्लकाः । तावत्तयाकालरात्र्याप्रत्युक्तोदैत्यपुङ्गवः
कालरात्र्युवाच

दैत्यराज महाप्राज्ञ! नैतद्यत्कं भवादृशाम् । वयं दूत्यः परवशा राजनीतिचिदुत्तम ॥
अल्पोऽपिदूतसम्बाधानंविदध्यात्कदाचन । किपुनर्येभवादृशामहान्तोबलिनोऽधिपाः
दूतीषु कोऽनुरागोऽयं महाराजाऽल्पिकास्विह ।

अनायासेन च वयमायास्यामस्तदागमात् ॥ ४१ ॥

चिजित्यसमरेतां तुस्वामिनींममदैत्यप ! । मादृशीनांसहस्राणिपरिभुङ्क्ष्वयथेच्छया
अद्यैव ते महासौख्यं भावि तस्या विलोकनात् ।

बान्धवानां सुखं तेऽद्य भविता सह पूर्वजैः ॥ ४३ ॥

सम्पत्स्यन्तेऽद्यते कामाः सर्वे ये चिरचिन्तिताः ।

अबला सा च मुग्धा च तस्यास्त्राता न कश्चन ॥ ४४ ॥

सर्वरूपमयी चैव तां भवान्द्रष्टुमर्हति । अहं हि दर्शयिष्यामियत्रसाऽस्तिजगत्खनिः
धृतायामपि चैकस्यां कस्ते कामो भविष्यति ।

अहन्ते सन्निधिं नैव त्यक्षाम्यद्य दिनावधि ॥ ४६ ॥

ततो निवारयैतान्मामादित्सून् सौविदल्लकान् ।

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः सकामकोधमोहितः ॥ ४७ ॥

तामेवबह्वंस्त्रैकांदूतींमृत्योरिवाऽसुरः । शुद्धान्तरक्षिणश्चैतां शुद्धान्तैप्रापयन्त्वरम्
इति तेन समादिष्टाः सर्वेवर्षवरा मुने । तां धर्तुमुद्यमञ्चक्रुर्बलेन बलवन्तराः ॥ ४९ ॥

सा तान् भस्मीचकाराऽऽशु हुङ्कारजनितान्निना ।

ततो दैत्यपतिः क्रुद्धो दृष्ट्वा तान् भस्मसात्कृतात् ॥ ५० ॥

क्षणैर्नैव तयादूत्यादैत्यांस्त्रययुतसम्मितात् । दृशा व्यापारयामास दुर्धरं दुर्मुखं खरम्
सीरपाणिम्पाशापाणिं सुरेन्द्रदमनं हनुम् । यज्ञारिखड्गलोमानमुग्रास्यं देवकम्पनम्

बद्धध्वा पाशैरिमान्दुष्टामानयन्त्वाशु दानवाः ।

विध्वस्तकेशवेशाञ्च विघ्नस्ताम्बरभूषणाम् ॥ ५३ ॥

इति दैत्याधिपादेशाद् दुर्धरप्रमुखास्ततः । पाशासिमुद्गरधरास्तामादातुं कृतोद्यमाः
गिरोन्द्रगुरुवर्माणः शस्त्रास्त्रोद्यतपाणयः ।

दिगन्तं ते परिप्राप्तास्तदुच्छ्वासानिलाहताः ॥ ५५ ॥

तेषूड्डीनेषु दैत्येषुशतकोटिमितेषु च । निर्जगाम ततः साऽतु कालरात्रिर्भोऽध्वगा
ततस्तान्तु क्षिनिर्यान्तीमनुजग्मुर्महासुराः । कोटिकोटिसहस्राणि पूरयित्वातुरोदसी
दुर्गो नाम महादैत्यः शतकोटिरथावृतः । गजानामर्बुदशतद्वयेन परिवारितः ॥ ५८ ॥

कोट्यर्बुदेन सहितो हयानां वातरंहसाम् ।

पदातिभिरसङ्ख्यातैः पञ्चूर्णितशिलोच्चयैः ॥ ५९ ॥

उदायुधैर्महाभीमैः कृतत्रिजगतीभयैः । समेतः समहादैत्यो दुर्गः क्रुद्धोचिनिर्ययौ ॥

अथ दृष्ट्वा महादेवीं विन्ध्याचलकृतालयाम् ।

आगत्य कालरात्र्या च निवेदिततदागसम् ॥ ६१ ॥

महाभुजसहस्राढ्यां महातेजोभिर्गृहिताम् । तत्तद्द्वोरप्रहरणां रणकौतुकसादराम्

प्रोद्यच्चन्द्रसहस्रांशुभिर्माजितशुभाननाम् ।

लावण्यवार्धिनिरांशुञ्चञ्चन्द्रैकचन्द्रिकाम् ॥ ६३ ॥

महामाणिक्यनिचयरोचिःखचितविग्रहाम् । त्रैलोक्यरम्यनगरीसुप्रकाशप्रदीपिकाम्
हरनेत्राग्निनिर्दग्धकामजीवातुषीरुधम् । लसत्सौन्दर्यसम्भारजगन्मोहमहौषधिम्
विषमेषुशरैर्भिन्नहृदयो दैत्यपुङ्गवः । आदिष्टवान्महासैन्यनायकानुग्रशासनः ॥ ६६ ॥

अयि जम्भ महाजम्भ ! कुजम्भविकटानन ! लम्बोदर महाकाय महादंष्ट्र ! महाहनो !
पिङ्गाक्ष ! महिषग्रीव महोप्रात्युग्रविग्रह ! क्रूराक्ष ! क्रोधनाकन्द ! संक्रन्दन ! महाभय

जितान्तक! महाबाहो! महावक्त्र! महीधर ! दुन्दुभे! दुन्दुभिरव! महादुन्दुभिनासिक!
उप्रास्य! दीर्घदशन! मेघकेशवृकानन ! । सिंहास्य सूकरमुख! शिवाराधमहोत्कट ॥
शुकतुण्ड! प्रचण्डास्य भीमाक्ष! क्षुद्रमानस ! । उलूकनेत्रकङ्कास्य! काकतुण्डकरालवाक्
दीर्घग्रीव! महाजङ्घ! क्रमेलकशिरोधर ! । रक्तचिन्दो! जपानेत्र! विद्युज्जिह्वाग्नितापन !
धूम्राक्ष! धूमनिःश्वास! षण्डचण्डांशुतापन ! ।

महामीषणमुख्याश्च शृण्वन्त्वाङ्गां ममाऽऽदरात् ॥ ७३ ॥

भवत्स्वेतेषु चाऽन्येषु पतां विन्ध्य (नि) वासिनीम् ।

धृत्या नेष्यति बुद्ध्या वा बलेनाऽपि छलेन वा ॥ ७४ ॥

तस्याहमिन्द्रपदवीमद्य दास्याम्यसंशयम् । दृष्ट्वैतां सुन्दरीमद्य मनोमेव्याकुलम्भवेत्
यान्तु क्षिप्रं न यावन्मे पञ्चेषुशरपीडितम् । मनोविह्वलतां गच्छेदेतत्प्राप्तेरभावतः
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दुर्गस्यदनुजेशितुः । प्रोचुः सर्वे तदा दैत्याः प्रबद्धकरसम्पुटाः
अवधेहि महाराज! किमेतत्कर्म दुष्करम् । अनाथायास्तथैकस्याअबलाया विशेषतः
अस्या आनयने कोऽयं महायत्नविधिः प्रभो ! ।

कोऽस्मान्प्रलयकालाग्निमहाज्वालाषलीसमान् ॥ ७६ ॥

सहेत त्रिषु लोकेषु त्वत्प्रसादात्कृतोद्यमान् । यथादेशो भवेदद्यतदेन्द्रं समरुद्गणम्
सान्तःपुरं समानीय क्षिप्नुमस्त्वत्पदाग्रतः ।

भूर्भुवःस्वरिदं सर्वं त्वदाज्ञावशवर्तितम् ॥ ८१ ॥

महर्जनस्तपः सत्यलोकास्त्वदधिकारिणः ।

तत्राप्यसाद्बुध्यं नाऽस्माकं त्वन्निदेशान्महासुर ॥ ८२ ॥

वैकुण्ठनायको नित्यं त्वदाज्ञापरिपालकः । यानिरम्याणिरत्नानि तानिसम्प्रेषयन्मुखा
अस्माभिरेव सन्त्यक्तः कैलासाधिपतिः सर्वै ।

विषाशी चातिनिःस्वत्वाद्ब्रह्मकृत्यहिभूषणः ॥ ८४ ॥

अर्धाङ्गे नास्मद्भयतोयोषिदेका निगूहिता । तस्य प्रामेऽपिसकलेद्वितीयो न वतुष्पदः
एकोजरद्भवः सोऽपिनान्यस्मात्परिजीवति । श्मशानवासिनः सर्वे सर्वैकौपीनवाससः

सर्वे विभूतिधवलाः सर्वेऽप्येककपर्दिनः । समस्ते नगरे तस्य वसन्त्येवंविधागणाः
तेषांगणानां किं कुर्मोद्विद्राणां वयंविभो । समुद्रारत्नसम्भारं प्रत्यहम्प्रेयन्तिष्व
नागा वराकाश्चाऽस्माकं सायं सायं स्वयम्प्रभो !।

प्रदीपयन्ति सततं फणारत्नप्रदीपकान् ॥ ८६ ॥

कल्पद्रुमः कामगधीचिन्तामणिगणाबहु । तव प्रसादादस्माकमपि तिष्ठन्तिवेश्मसु
वायुर्व्यंजनतां यातस्त्वां सेवेतप्रयत्नतः । स्वच्छान्यम्बूनिधरुणःप्रत्यहम्पूरयत्यहो
वासांसि क्षालयेदग्निश्चन्द्रश्छत्रधरः स्वयम् ।

सूर्यः प्रकाशयेन्नित्यं क्रीडावाप्यम्बुजानि च ॥ ९२ ॥

कल्बटप्रसादं नेत्रेत मर्त्यामर्त्योरिगेषुच । सर्वे त्वामुपजीवन्तिसुराऽसुरखगादयः
पश्यनः पौरुषंराजज्ञानयामोबलादिमाम् । इत्युत्तवायुगपत्सर्वेभ्रुब्धास्तोयधयोयथा
संबर्नकालमासाद्य प्लावितुञ्जगतीमिमाम् । रणतूर्यनिनादश्च समुत्तस्थौ समन्ततः
रोमाञ्जिता यच्छ्रवणात्कातरा अप्यकातराः । ततोदेवाभयत्रस्ताश्चकम्पेचवसुन्धरा
ध्रुब्धा अम्बुधयः सर्वेपेतुर्नक्षत्रमालिकाः । रोदसी मण्डलं व्याप्तं तेन तूर्यरेणवै
ततो भगवती देवी स्वशरीरसमुद्भवाः । शक्तीरुत्पादयामास शतशोऽथ सहस्रशः
ताभिः शक्तिभिरैतेषां बलिनां दितिजन्मनाम् ।

प्रत्येकम्परितो रुडउद्वेलः सैन्यसागरः ॥ ९६ ॥

शस्त्रास्त्राणि महादैत्यैर्यान्व्युत्सृष्टानि सङ्गरे ।

ताभिः शक्तिभिरुग्राणि तृणीकृत्योऽिभ्रतान्धरम् ॥ १०० ॥

ततोऽतिकोपपूर्णास्तेज्जम्भमुख्याः सुरारयः । असिचक्रभुशुण्डीभिर्गदामुद्गरतोमरैः
मिण्डिपालैश्चपरिचैःकुन्तैःशल्यैश्चशक्तिभिः । अर्धचन्द्रैःक्षुरप्रैश्चनाराचैश्चशिलीमुखैः
महाभल्लैः परशुभिर्भिदुरैर्मर्मभेदिभिः । वृक्षोपलमहावर्षैर्वृषुर्जलदा इव ॥ १०३ ॥
अथ साधिन्ध्यनिलया महामायामहेश्वरी । आदायोद्वण्डकोद्वर्धवायव्याखेणहेलया
दैत्यास्त्रशस्त्रजालानि परिचिक्षेप दूतः । ततो महासुरोदुर्गोःबीक्ष्यसैन्यंनिरायुधम्

ज्वलन्तीं शक्तिमादाय तां देवीं प्रति सोऽक्षिपत् ।

तां तु शक्तिं समायान्तीं महावेगवतीं रणे ॥ १०६ ॥

निजत्रापविनिर्मुक्तैर्बाणैश्चूर्णोच्चकार सा । भग्नांशक्तिसमालोक्यततो दुर्गोमहासुरः
चक्रंच प्रेषयामास दैत्यचक्रातिहर्षदम् । तच्च देव्या शरशतैरन्तरैर्बाणुघटकृतम् ॥
ततःशार्ङ्गं समादाय धनुः शक्रधनुर्यथा । हृदि विव्याध बाणेन तां देवीममरार्दनः
सच बाणस्तया देव्यानिजबाणैर्महाजघैः ।

निवारितोपि वेगेन तां देवीमभ्यगान्मुने ॥ ११० ॥

ततः कोदण्डदण्डेन आशुगेन तमाशुगम् । हत्वा निवारयामास कालदण्डमिवापरम्
तस्मिन् विमुखतांयाते मार्गणेदुर्गमासुरः । क्रुद्धःशूलं समादाय संवर्तानलसुप्रभम् ॥
महावेगेन चिक्षेप तां देवीमभिदैत्यपः । परापतञ्चतच्छूलं निजशूलेन क्षण्डिका ॥
धन्तरैव प्रविच्छेद् सह दैत्यजयाशया । तस्मिन्नपि महाशूलेदेवीशूलावहेलिते ॥
गदामादाय दैत्येन्द्रः सहसाऽभिपपातह । आजघान च तां देवीं भुजमूले महाबलः
सापि देवी भुजं प्राप्यगिरीन्द्रशिखराकृतिः । गदाशुपरिपुस्फोटशतधा च सहस्रधा
तदा देव्या सदैत्येन्द्रो वामपादतलेन हि । आताडितः पपातोव्यांहृदिगाढं प्रपीडितः
तत्क्षणादेव दैत्येन्द्रः पतित्वा पुनरुत्थितः । बभूव सहसादृश्योदीपोवातहतो यथा
तावज्जगज्जनन्याताः प्रेरितानिजशक्तयः । विचेरुर्दैत्यसैन्येषु सम्भर्ते मृत्युसैन्यवत् ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

उत्तरार्धेदुर्गापराक्रमो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

दुर्गवधमनुदेवःवज्रपञ्जरस्तुतिवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

पार्वतीहृदयानन्द! स्कन्दसर्वज्ञनन्दन । काःकास्तु शक्तयस्तावै तासां नामानि मे वद
स्कन्द उवाच

तासां परमशक्तीनामुमावयवसम्भुवाम् ।

आख्याभ्याख्यां शृणु मुने! कुम्भसम्भवा! तत्त्वतः ॥ २ ॥

त्रैलोक्यविजयातारा क्षमा त्रैलोक्यसुन्दरी । त्रिपुरा त्रिजगन्मातामीमात्रिपुरभैरवी
कामाख्या कमलाक्षी च धृतिस्त्रिपुरतापनी । जयाजयन्तीविजयाजलेशीचापराजिता
शङ्खिनी गजवक्त्राघमहिषघ्नी रणप्रिया । शुभानन्दाकोटराक्षी विद्युज्जिह्वा शिखारवा
त्रिनेत्रा चत्रिषक्त्रात्र त्रिपदा सर्वमङ्गला । हुङ्कारहैतिस्तालेशी सर्पास्यासर्वसुन्दरी
सिद्धिबुद्धिः स्वधास्वाहा महानिद्राशराशना । पाशपाणिःखरमुखीवज्रतारापडानना
मयूरवदना काकी शुकी भ्राष्ट्री गरुत्मती । पद्मावती पद्मकेशी पद्मास्या पद्मवासिनी
अक्षरात्र्यक्षरा तन्तुः प्रथवेशीस्वरात्मिका । त्रिघर्गागर्घरहिता अजपा जपहारिणी
जपसिद्धिस्तपःसिद्धिर्योगसिद्धिः पराऽमृता ।

मैत्रीकृन्मित्रनेत्रा च रक्षोघ्नी दैत्यतापनी ॥ १० ॥

स्तम्भनी मोहनी माया बहुमायाबलोत्कटा । उष्वाटनीमहोल्कास्यामनुजेन्द्रक्षयङ्करी
क्षेमंकरीसिद्धिकरी छिन्नमस्ताशुभानना । शाकम्भरीमोक्षलक्ष्मीखिवर्गफलदायिनी
घातालीजम्भलीक्लिन्नाभश्चारुडा सुरेश्वरी । ज्वालामुखीप्रभृतयोनवकोट्योमहाबला
बलानिबलानां तामिर्दानवानां स्वलीलया । संक्षिप्तानिजगन्तीवप्रलयानलहेतिभिः
तावत्स दुर्गा दैत्येन्द्रः पयोदान्तरतो बली । चकार करकावृष्टिं घात्यावेगवर्ती बहु
सतोभगवती देवी शोषणास्त्रप्रयोगतः । वृष्टिं निवारयामास वर्षोपलमयीं क्षणात्

योपिन्मनोरथवती षण्दंप्राप्ययथाऽफला । सादैत्यकरकावृष्टिर्देवी प्राप्यवृथामघत्
अथदैतेयराजेन बाहुसङ्कुर्षकोपतः । उत्पात्र्यशैलशिखरं परिक्षिप्तं नभोङ्गणात् ॥

अद्रेः शृङ्गसुविस्तीर्णं मापतत्परिवीक्ष्य सा ।

शतकोटिप्रहारेण कोटिशः शकलं व्यधात् ॥ १६ ॥

आन्दोल्य मौलिमसकृत्कुण्डलाभ्यां विराजितम् ।

गजीभूयाशु दुद्राव तां देवीं समरेऽसुरः ॥ २० ॥

शैलाकारं तमायान्तं दृष्ट्वाभगवतीगजम् । बद्ध्वापाशेनजवतः खड्गेन करमच्छिनत्
ततोऽत्यन्तं स चीत्कृत्यदेव्याकृतकरःकरी । अकिञ्चित्करतांप्राप्य माहिषंवपुराददे
अस्रलां सस्रलां सर्वास्रक्रेतुरघाततः । शिलोच्चयांश्चबहुशःशृङ्गाभ्यांसोपितद्वली
निश्वासघातनिहता पेतुरुर्ध्वा महाद्रुमाः । उद्वेलिताः समभवन्सप्तापिजलराशयः
महामहिषरूपेण तेनत्रैलोक्यमण्डपः । आन्दोलितोतिबलिना युगान्तेवात्ययायथा
ब्रह्माण्डमप्यकाण्डेन तद्व्येनसमाकुलम् । दृष्ट्वा भगवती क्रुद्धा त्रिशूलेन जघान तम्
त्रिशूलघातविभ्रान्तः पतित्त्वापुनरुत्थितः । तं त्यक्तवामाहिषंवेपथुभूदुबाहुसहस्रभृत्

स दुर्गां नितरां दुर्गां विबभौ समराजिरे ।

आयुधानां सहस्राणि विभ्रत्कालान्तकोपमः ॥ २८ ॥

अथतूर्णं सदैत्येन्द्रस्तां देवींरणकोविदाम् । महाबलःप्रगृह्याऽऽशुनीतवान्गगनाङ्गणम्
ततो नभोऽङ्गणाद् दूरात्क्षिप्त्वा स जगदम्बिकाम् ।

क्षणात्कलम्बजालेन च्छादयामास वेगवान् ॥ ३० ॥

अथाऽन्तरिक्षगादेवी तस्यमार्गणमध्यगा । विद्युन्मालेव विबभौ महान्नपटलीधृता
तं विधूय शरव्रातं निजेषु निकरैरलम् । महेषुपाथविष्याथ सा तं दैत्यजनेश्वरम् ॥
हृदिबिद्धस्तयादेव्या स च तेन महेषुणा । व्याघूर्णमाननयनःक्षितिमापातिबिह्वलः
महारुधिरधाराभिः स्रवन्तीं च प्रवर्तयन् । तस्मिन्निपतिते दुर्गे महादुर्गपराक्रमे ॥
देवदुन्दुभयो नेदुःप्रहृष्टानि जगन्ति च । सूर्याचन्द्रमसौ साङ्गितेजोनिजमबापतुः
पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वन्तः प्राप्तादेवा महर्षिभिः । तुष्टुवुश्च महादेवीं महास्तुतिभिरादरात्

देवा ऊचुः

नमोदेवि! जगद्धात्रि ! जगत्त्रयमहारणे ! । महेश्वर महाशक्ते ! दैत्यद्रुमकुठारके ! ॥

त्रैलोक्यव्यापिनि! शिवे! शङ्खचक्रगदाधरि ! ।

स्वशार्ङ्गव्यग्रहस्ताम्रे ! नमो विष्णुस्वरूपिणि ! ॥ ३८ ॥

हंसयाने! नमस्तुभ्यं सर्वसृष्टिविधायिनि ! । प्राचांवाचां जन्मभूमेचतुराननरूपिणि
त्वमैन्द्रीत्वंचकौबेरीवायवीत्वंत्वमम्बुपा । त्वंयामीनैर्ऋ तीत्वंधत्वमैशैशित्वंषपावकी
शशाङ्गकौमुदी त्वंच सौरी शक्तिस्त्वमेव च । सर्वदेवमयी शक्तिस्त्वमेव परमेश्वरी
त्वं गौरी त्वं च सावित्री त्वं गायत्री सरस्वती ।

प्रकृतिस्त्वं मतिस्त्वं च त्वमहं कृतिरूपिणी ! ॥ ४२ ॥

चेतःस्वरूपिणीत्वंधैतवंसर्वेन्द्रियरूपिणी । पञ्चतन्मात्ररूपात्वंमहाभूतात्मिकेऽम्बिके.
शब्दादिरूपिणीत्वंधै करणानुग्रहात्त्वमु । ब्रह्माण्डकर्त्रोत्वंदेवीब्रह्माण्डान्तस्त्वमेवहि
त्वं पराऽसि महादेवि त्वं च देविपरापरा । परापराणां परमा परमात्मस्वरूपिणी
सर्वरूपात्वमीशानि त्वमरूपाऽसि सर्वगे !

त्वं चिच्छक्तिर्महामाये त्वंस्वाहा त्वं स्वधामृते ! ॥ ४६ ॥

षण्ड्वौषट्स्वरूपासित्वमेवप्रणवात्मिका । सर्वमन्त्रमयीत्वंधैब्रह्माद्यास्वत्समुद्भवाः
चतुर्वर्गात्मिका त्वं धै चतुर्वर्गफलोदये । त्वत्तः सर्वमिदंविश्वं त्वयि सर्वं जगन्निधे
यद्द्रुश्यं यद्द्रुश्यं च स्थूलसूक्ष्मस्वरूपतः । तत्रत्वंशक्तिरूपेण किञ्चिन्नत्वदूतेकचित्
मातस्त्वयाद्य चिनिहत्य महासुरेन्द्रं दुर्गनिसर्गबिबुधापितदैत्यसैन्यम् ।

त्राताःस्म देवि! सततं नमतां शरण्ये त्वत्तोऽपरःकद्दह यं शरणं ब्रजामः ॥ ५०

लोके त एव धनधान्यसमृद्धिभाजस्ते पुत्रपौत्रसुकलत्रसुमित्रवन्तः ।

तेषां यशःप्रसरच्चन्द्रकरावदातं विश्वं भवेद्भवति येषु सुदृक्त्वमीशे ॥ ५१ ॥

त्वद्भक्तिचेतसि जनेन विपत्तिलेशः क्लेशः कषा नु भवतीनतिकृत्सु पुंसु ।

त्वद्भक्तसंस्तुतिजुषां सकलायुषां क भूयः पुनर्जनिरिह त्रिपुरारिपत्नि ! ॥ ५२ ॥

विभ्रं यदत्र समरे स हि दुर्गदैत्यस्त्वद्द्रुष्टिपातमधिगम्य सुधानिधानम् ।

मृत्योर्बशत्त्वमगमद्विदितं भवानि! दुष्टोऽपि ते द्रुशिगतः कुगर्तिनपाति ॥ ५३ ॥
 त्वच्छलवह्निशलमत्वमिता अपीह देत्याः पतङ्गुरुचिमाप्य दिवं व्रजन्ति ।
 सन्तः खलेष्वपि न दुष्टधियो यतः स्युः साधुष्विष्वप्रणयिनः स्वपथं दिशन्ति
 प्राच्यां मृडानि! परिपाहिसदा सदा नतासोयाम्यामवप्रतिपदं विपदो भवानि!
 प्रत्यग्दिशित्रिपुरतापनपत्नि ! रक्ष त्वं पाह्युदीषि निजभक्तजनान्महेशि ! ॥ ५५ ॥
 ब्रह्माणि! रक्ष सततं नतमौलिदेशं त्वं वैष्णवि! प्रतिकुलम्परिपालयाऽधः ।
 रुद्राग्निनैऋतिसदागतिदिभ्युपान्तु मृत्युञ्जयात्रिनयनात्रिपुरात्रिशक्त्यः ॥ ५६ ॥
 पातु त्रिशूलममले तव मौलिजात्रो भालस्थलं शशिकलाभृदुमाभ्रवौ च ।
 नेत्रे त्रिलोचनवर्गिरीजा च नासामोष्ठं जया च विजया त्वधरप्रदेशम् ॥
 श्रोत्रद्वयं श्रतिरवादाशनावलि श्रीश्चण्डी कपोलयुगलं रसनाञ्च वाणी ।
 पायात्सदैव चिबुकं जयमङ्गला नः कात्यायनी वदनमण्डलमेव सर्वम् ॥ ५८ ॥
 कण्ठप्रदेशमवतादिह नीलकण्ठी भूदारशक्तिरनिशञ्च कृकाटिकायाम् ।
 कौर्म्यं सदेशमनिशं भुजदण्डमैन्द्री पद्मा च पाणिफलकं नतिकाकिरिणां नः ॥ ५९ ॥
 हस्ताङ्गुलीः कमलजाधिरजा नखाश्च कक्षान्तरन्तरणिमण्डलगा तमोष्ठी ।
 वक्षःस्थलं स्थलधरी हृदयन्धरित्री कुक्षिद्वयन्त्वचतु नः क्षणदाचरप्ती ॥ ६० ॥
 अव्यात्सदोदरदरीजगदीश्वरीनो नाभिनभोगतिरजा त्वध पृष्ठदेशम् ।
 पायात्कटिञ्च चिकटा परमा स्फिचौ नो गुह्यं गुहारणिरपानमपायहन्त्री ॥
 ऊरुद्वयञ्च विपुला ललिता च जानू जङ्घे जवाऽघतुकठोरतराऽत्रगुल्फौ ।
 पादौ रसातलचराङ्गुलिदेशमुप्रा चान्द्रीनखान्पदतलं तलवासिनी च ॥ ६२ ॥
 गृहंरक्षतु नो लक्ष्मीः क्षेत्रं क्षेमकरी सदा । पातुपुत्रान्प्रियकरी पायादायुः सनातनी
 यशःपातु महादेवी धर्मम्पातु धनुर्धरी । कुलदेवी कुलम्पातु सद्गतिं सद्गतिप्रदा ॥
 रणे राजकुले द्यूते सङ्ग्रामे शत्रुसङ्कटे । गृहेवने जलादौ च शर्षाणी सर्वतोऽघतु ॥
 इति स्तुत्वाजगद्धात्रीम्प्रगेमुक्ष पुनः पुनः । सर्वैसवासवा देवाः सर्षिगन्धर्वचारणाः
 ततस्तुष्टाजगन्मत्तातानाहस्तुरसत्तमान् । स्वाधिकारान्सुराःसर्वेशासन्तुप्राग्यथायथा

तुष्टाऽहमनयास्तुत्यानितरान्तु यथार्थया । वरमन्यप्रदास्यामि तच्छृणुष्वंसुरोत्तमाः

दुर्गोवाच

यः स्तोष्यति तु मां भक्त्या नरः स्तुत्याऽनया शुचिः ।

तस्याऽहं नाशयिष्यामि चिपदञ्च पदे पदे ॥ ५६ ॥

एतत्स्तोत्रस्य क्वचंचपरिधास्यतियो नरः । तस्य क्वचिद्भयं नास्तिवज्रपञ्जरस्यहि
अद्यप्रभृतिमे नाम दुर्गेति ख्यातिमेष्यति । दुर्गदैत्यस्य समरे पातनादतिदुर्गमात्
ये मां दुर्गां शरणगानतेषां दुर्गतिः क्वचिन् । दुर्गास्तुतिरियंपुष्यावज्रपञ्जरसञ्चिका
अनयाक्वचंच कृत्वा मा विभेतु यमादपि । भूतप्रेतपिशाचाश्च शाकिनीडाकिनीगणाः
भोण्टिङ्गाराक्षसाः क्रूराचिषसपान्निदस्यवः । वेतालाश्चापिकङ्कालग्रहाबालग्रहाअपि
घातपित्तादिजनितास्तथा च विषमज्वराः ।

दूरादेव पलायन्ते श्रुत्वा स्तुतिमिमां शुभाम् ॥ ७५ ॥

वज्रपञ्जरनामैतत्स्तोत्रं दुर्गाप्रशंसनम् । एतत्स्तोत्रकृतत्राणे वज्रादपि भयं नहि ॥
अष्टजप्तेनघानेनयोऽभिमन्त्र्यजलं पिबेत् । तस्योदरगतापीडाकाऽपिनोसम्भविष्यति
गर्भपीडा तु नो जातु भविष्यत्यभिमन्त्रणात् ।

बालानाम्परमा शान्तिरेतत्स्तोत्राम्बुपानतः ॥ ७८ ॥

यत्रसाञ्चिध्यमेतस्य स्तवस्येह भविष्यति । एतास्तु शक्तयः सर्वाः सर्वत्रसहितामया
रक्षाम्परिकरिष्यन्ति मद्भक्तानांममाह्वया । इति दत्त्वाधरान्देवीदेव्योऽन्तर्हितातदा
तेऽपि स्वर्गोकसः सर्वे स्वं स्वं स्वर्गं ययुमुदा ।

स्कन्द उवाच

इत्थंदुर्गाभवन्नामतस्यादेव्या महामुने !! काश्यांसेव्यायथा साचतच्छृणुष्वदामिते
अष्टम्याञ्चतुर्दश्याम्भौमघारेविशेषतः । सम्पूज्यासततंकाश्यां दुर्गादुर्गतिनाशिनी
नधरात्रं प्रयत्नेन प्रत्यहं सासमर्चिता । नाशयिष्यति विघ्नौघान्मुमतिञ्च प्रदास्यति
महापूजोपहारैश्च महाबलिनिवेदनैः । दास्यत्यभाष्टदासिद्धिं दुर्गा काश्यां न संशयः
प्रतिसंबत्सरंतस्याः कार्या यात्रा प्रयत्नतः । शारदं नधरात्रञ्च सङ्कुटुम्बैःशुभार्थिभिः

यो न सांबत्सरीं यात्रां दुर्गायाः कुरुते कुधीः ।
 काश्यां विघ्नसहस्राणि तस्य स्युश्च पदे पदे ॥ ८६ ॥
 दुर्गाकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वदुर्गातिहारिणीम् ।
 दुर्गां सम्पूज्य विधिवन्नवजन्माघमुत्सृजेत् ॥ ८७ ॥
 सा दुर्गाशक्तिभिः सार्धं कार्शीं रक्षति सर्वतः ।
 ताः प्रयत्नेन सम्पूज्याः कालरात्रिमुखा नरैः ॥ ८८ ॥

रक्षन्ति क्षेत्रमेतद् तथान्या नव शक्तयः । उपसर्गलहस्त्रेभ्यस्ता वै दिग्देवताःक्रमात्
 शतनेत्रा सहस्रास्या तथाऽयुतभुजा परा । भ्रवारूढागजास्याचत्वरिताशववाहिनी
 विश्वा सौभाग्यगौरी च सृष्टाः प्रोच्यादिमध्यतः ।

पता यत्नेन सम्पूज्याः क्षेत्ररक्षणदेवताः ॥ ६१ ॥

तथैव भैरवाश्चाऽष्टौ दिक्ष्वष्टासुप्रतिष्ठिताः । रक्षन्तिसततंकार्शीनिर्वाणश्रीनिकेतनम्
 रुक्मण्डोऽसिताङ्गश्च कपाली क्रोधनस्तथा । उन्मत्तभैरवस्तद्वत्क्रमात्संहारभीषणौ
 चतुःषष्टिस्तु वेताला महाभीषणमूर्तयः ॥ रुण्डमुण्डस्रजः सर्वे कर्त्रांस्त्रपरपाणयः
 श्ववाहनारकमुखा महादंष्ट्रा महाभुजाः । नग्ना विमुक्तकेशाश्च प्रमत्ता रुधिरासवैः ॥
 नानारूपधराः सर्वे नानाशस्त्रास्त्रपाणयः । तदाकारैश्च तद्भृत्यैःकोटिशःपरिवारिताः
 विद्युज्जिह्वोललजिह्वः क्रूरास्यः क्रूरलोचनः । उग्रोचिकटदंष्ट्रश्च वक्रास्योघक्रनासिकः
 जम्भको जृम्भणमुखो ज्वालानेत्रो वृकोदरः ।

गर्तनेत्रो महानेत्रस्तुच्छनेत्रोऽन्त्रमण्डनः ॥ ६७ ॥

ज्वलत्केशः कम्बुशिराः खर्वध्रीषो महाहनुः । महानासोलम्बकर्णःकर्णप्रावरणोनसः
 इत्यादयो मुने! क्षेत्रं दुर्वृत्तरुधिरप्रियाः । त्रासयन्तो दुराचारान् रक्षन्तिपरितःसदा
 त्रलोक्यविजयाद्याश्च ज्वालामुख्यन्तगाश्च याः ।

शक्तयोऽत्र मयाख्याता मुने! कलशसम्भव ! ॥ १०१ ॥

ताः कार्शीं परिरक्षन्ति चतुर्दिक्षुद्यतायुधाः । ताः समर्च्याःप्रयत्नेनमहाविघ्नप्रशान्तये
 भैरवा रुक्मुख्याश्च महाभयनिवारकाः । संपूज्याः सर्वदा काश्यां सर्वसम्पत्तिहेतवः

विद्यज्जिह्वप्रभृतयो वेताला उग्ररूपिणः ।

अत्युग्रानपि विघ्नौघान्हरिष्यन्त्यर्चिता इह ॥ १०४ ॥

तथाभूतावलीचात्र नानामीषणरूपिणी । उदायुधाऽवतिदुरीं शतकोटिमिता मुनेः
निर्वाणलक्ष्मीक्षेत्रस्य पालयित्री पदे पदे ।

एता वै देवताः पूज्याः काश्यां निर्वाणकाङ्क्षिभिः ॥ १०६ ॥

श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं नरो दुर्गज्याभिधम् ।

नानाशक्तिसमायुक्तं दुर्गमाशु तरिष्यति ॥ ७ ॥

य एते भैरवाः प्रोक्ता ये वेताला उदाहृताः । तेषां नामानिच्चाकर्ष्यनरो विघ्नेर्नन्दूयते
अदृष्टा अपि ते भूता एतदाख्यानपाठकम् ।

रक्षिष्यन्ति प्रयत्नेन सह श्रोतृजनेन च ॥ ६ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन काशीभक्तिपरैर्नरैः । श्रोतव्यमिदमाख्यानंमहाविघ्ननिवारणम्
गृहेऽपि यस्य लिखितमेतत्स्थास्यति पूजितम् ।

तस्याऽऽपदां सहस्राणि नाशयिष्यन्ति देवताः ॥ ११ ॥

काश्यां यस्याऽस्ति वै प्रेम तेन कृत्वाऽऽदरं गुरुम् ।

श्रोतव्यमिदमाख्यानं वज्रपञ्जरसन्निभम् ॥ १२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धेवज्रपञ्जराख्यानवर्णनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

सक्षेत्रलिङ्गमहिमं^ॐकारमहिमवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

त्रिलोचनं समासाद्य देवदेवः पदानन !। जगदम्बिकया युक्तः किञ्चकाराऽऽशु तद्वद

स्फन्द उवाच

मुने कलशजाख्यामि यत्पृष्टन्तन्निशामय । विरजःसञ्ज्ञकं पीठंयत्प्रोक्तंसर्वसिद्धिदम्
तत्पीठदर्शनादेव विरजाजायते नरः । यत्रास्ति तन्महालिङ्गं धाराणस्यां त्रिलोचनम्
तीर्थं पिलिपिलाख्यंतद् घुनद्यम्भसि विश्रुतम् ।

सर्वतीर्थमयं तीर्थं तत्काश्यां परिगीयते ॥ ४ ॥

विष्टपत्रितयान्तये देवर्षिमनुजोरगाः । ससरिपधंतारण्याः सन्ति ते तत्र यन्मुने ॥
तदारभ्य च तर्त्तीर्थं तच्च लिङ्गं त्रिलोचनम् । त्रिचिष्टपमितिख्यातमतोहेतोर्महत्तरम्
त्रिचिष्टपस्य लिङ्गस्य महिमोक्तःपिनाकिना । जगज्जनन्याःपुरतोयथावच्चिमतथामुने

देव्युवाच

देवदेवजगन्नाथ शर्वं सर्वद सर्वग !। सर्वदृक् सर्वजनक!किञ्चित्पृच्छामि तद्वद ॥

इदंतवप्रियं क्षेत्रं कर्मबीजमहौषधम् । नैःश्रेयस्याः श्रियोगेहम्ममापिप्रीतिदम्महत्
यत्क्षेत्रजसोप्यश्रेत्रिलोक्यपितृणायते । तस्याखिलस्यमहिमाविष्वक्केनाद्यगम्यते

यानीह सन्ति लिङ्गानि तानि सर्वाण्यसंशयम् ।

निर्वाणकारणान्येव स्वयम्भून्यपि तान्यपि ॥ ११ ॥

यद्यप्येवन्तथापीश विशेषं धकुमर्हसि । काश्यामनादिसिद्धानिकानिलिङ्गानिशङ्कर!

यत्र देवः सदातिष्ठेत्सम्बर्तेऽपि सचल्लभः । यैरियंप्रथिति प्राताकाशीमुक्तिपुरीतिष्ठ

येषांस्मरणतोऽप्यत्रभवेत्पापस्यसंक्षयः । दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्जल्यातांस्वर्गापवर्गकौ

येषां समर्चनादेव मध्ये जन्मसकृद्विभो !।

लिङ्गानि पूजितानि स्युः काश्यां सर्वाणि निश्चितम् ॥ १५ ॥

विधायमप्यनुक्रोशं कारुण्यामृतसागर । पतदाबक्ष्वमेशम्भोपादयोःप्रणताऽस्म्यहम्
इत्याकर्ण्य महेशानस्तस्या देव्याः सुभाषितम् ।

कथयामास विन्ध्यारे महालिङ्गानि सत्तम ॥ १७ ॥

यन्नामाकर्णनादेव क्षीयन्ते पापराशयः । प्राप्यतेपुण्यसम्भारःकाश्यानिर्वाणकारणम्
देवदेव उवाच

शृणु देवि! परं गुह्यं क्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिकारणम् । इदंविदन्तिनैवापिब्रह्मनारायणादयः
असङ्ख्यातानि लिङ्गानि पार्वत्यानन्दकानने ।

स्थूलान्यपि च सूक्ष्माणि नानारत्नमयानि च ॥ २० ॥

नानाधातुमयानीशे दार्षदान्यप्यनेकशः । स्वयम्भून्यप्यनेकानिदेवर्षिस्थापितान्यहो
सिद्धचारणगन्धर्वयक्षरक्षोऽर्चितान्यपि । असुरोरगमर्त्यैश्च दानवैरप्सरोगणैः ॥
दिग्गजैर्गिरिभिस्तीर्थैश्च क्षवानरकिन्नरैः । पतत्रिप्रमुखैर्देवि! स्वस्वनामाङ्कितानिचै
प्रतिष्ठितानि यानीहमुक्तिहेतूनि तान्यपि । अदृश्यान्यपिदृश्यानिदुरवस्थान्यपिप्रिये
भग्नान्यपि च कालेन तानिपूज्यानिसुन्दरि । परार्धशतसंख्यानिगणितान्येकदामया
गङ्गाम्भस्यपि तिष्ठन्ति षष्टिकोटिमितानिहि ।

सिद्धलिङ्गानि तानीशे तिष्येऽदृश्यत्वमाययुः ॥ २६ ॥

गणनादिवसादर्वाङ्मम भक्तजनैः प्रिये । प्रतिष्ठितानि यानीह तेषांसङ्ख्यानचिद्यते
त्वया तु यानि पृष्ठानियैरिदंक्षेत्रमुत्तमम् । तानिलिङ्गानिबक्ष्यामिमुक्तिहेतूनिःसुन्दरि
कलावतीच गोप्यानि भविष्यन्ति गिरीन्द्रजे !

परं तेषां प्रभावो यः स्वं स्वं स्थानं न हास्यति ॥ २६ ॥

कलिकल्मषपुष्टा ये ये दुष्टा नास्तिकाः शठाः ।

एतेषांसिद्धलिङ्गानां ह्यास्यन्त्याख्यामपीह न ॥ ३० ॥

नामभ्रषणतोऽपीह यलिङ्गानां शुभानने । वृजिनानिक्षययान्ति वर्धन्ते पुण्यराशयः ॥
ईकारः प्रथमं लिङ्गं द्वितीयञ्च त्रिलोचनम् ।

तृतीयञ्च महादेवः कृत्तिवाक्काञ्चतुर्यकम् ॥ ३२ ॥

रत्नैशः पञ्चमं लिङ्गं षष्ठञ्चन्द्रेश्वरमिधम् । केदारः सप्तमं लिङ्गं धर्मेशश्चाष्टमं प्रिये !
वीरेश्वराञ्च नवमं कामेशं दशमं चिदुः । विश्वकर्मेश्वरं लिङ्गं शुभमेकादशम्परम्
द्वादशम्मणिकर्णोशमचिमुक्तं त्रयोदशम् । चतुर्दशम्महालिङ्गम्ममविश्वेश्वरमिधम्
प्रिये ! चतुर्दशैतानि श्रियोहेतूनि सुन्दरि ! एतेषांसमवायोऽयम्मुक्तिक्षेत्रमिहेरितम्
देवताः समधिष्ठात्र्यः क्षेत्रस्याऽस्य परा इमाः ।

आराधिताः प्रयच्छन्ति नृभ्यो नैःश्रेयसीं श्रियम् ॥ ३७ ॥

आनन्दकानने मुक्त्यैप्रोक्तान्येतानि सुन्दरि । प्रियेचतुर्दशैज्यानिमहालिङ्गानिदेहिनाम्
प्रतिमासं समारभ्यतिथिं प्रतिपदंशुभाम् । एतेषालिङ्गमुख्यानांकार्यायात्राप्रयत्नतः
अनाराध्य महादेवमेषुलिङ्गेषु कुम्भज !। कःकाश्यामोक्षमाप्नोतिसत्यंसत्यंपुनःपुनः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकाशीफलमभीप्सुभिः । पूज्यान्येतानिलिङ्गानिभक्त्यापरमयामुने
अगस्त्य उवाच

एतान्येव किमन्यानि महालिङ्गानिषण्मुख !। निर्वाणकारणानीह यदिसन्तितदावद
स्कन्द उवाच

अन्यान्यपि च सन्तीह महालिङ्गानि सुव्रत !।

कलिप्रभाषाद्गुप्तानि भविष्यन्त्येव तानि वै ॥ ४३ ॥

यस्येश्वरे सदाभक्तिर्यःकाशीतस्वचित्तमः । सएवैतानिलिङ्गानिवेतस्यत्यन्योनकञ्चन
येषां नामग्रहेणापि कलिकल्मषसंक्षयः । अमृतेशस्तारकेशो ज्ञानेशः करुणेश्वरः
मोक्षद्वारेश्वरश्चैव स्वर्गद्वारेश्वरस्तथा । ब्रह्मेशो लाङ्गलश्चैव वृद्धकालेश्वरस्तथा
वृषेशश्चैव चण्डीशो नन्दिकेशो महेश्वरः । ज्योतीरूपेश्वरं लिङ्गं ख्यातमत्रचतुर्दशम्
काश्याञ्चतुर्दशैतानि महालिङ्गानि सुन्दरि । इमानि मुक्तिहेतूनि लिङ्गान्यानन्दकानने
कलिकल्मषबुद्धीनांनाख्येयानि कदाचन । एतान्याराधयेद्यस्तु लिङ्गानीहचतुर्दश
न तस्य पुनरावृत्तिः संसाराध्वनि कर्हिचित् ।

काशी कोशोयमनुलो न प्रकाश्यो यतस्ततः ॥ ५० ॥

पतलिङ्गाभिधा देवि! महापद्यपि दुःखहृत् । रहस्यं परमञ्चैतत्क्षेत्रस्यास्य धरानने
चतुर्दशापि लिङ्गानि मत्सान्निध्यकाराणि हि । अविमुक्तस्य हृदयमेतदेव गिरीन्द्रजे
इमानि यानि लिङ्गानि सर्वेषां मुक्तिदानि हि । एकैकभुवनस्येह सारमादायसर्वतः
मयैतानि कृतान्येव महाभक्तिरूपावशात् ।

अस्मिन्क्षेत्रे ध्रुवमुक्तिरितियाप्रथितिःप्रिये !। कारणतत्रलिङ्गानि मयैतानि चतुर्दश
त एव व्रतितः कान्ते! त एवघतपस्विनः । ध्यातान्येतानियैर्भक्तैर्लिङ्गान्यानन्दकानने
त एवाभ्यस्तसद्योगा दत्तदानास्त एव हि ।

काश्याग्रिमानि लिङ्गानि यैर्दृष्टान्यपिदूरतः ॥ ५६ ॥

इष्टापूर्ताश्च ये धर्माः प्रणीता मुनिसत्तमैः । तेसर्वे तेन विहिता यावज्जीवन्नरेनसा
येनाऽविमुक्तमासाद्यमहालिङ्गानि पार्वति !। सकृद्भ्यर्चितानीह समुक्तोनाऽत्रसंशयः

स्कन्द उवाच

अन्यान्यपि च विन्ध्यारे! देव्यै प्रोक्तानि शम्भुना ।

स्वभक्तानां हितार्थाय तान्यथाऽऽकर्णयाऽग्रज ॥ ५६ ॥

शैलेशः सङ्गमेशश्च स्वर्लीनो मध्यमेश्वरः । हिरण्यगर्भ ईशानो गोप्रेक्षो वृषभध्वजः
उपशान्तशिवो ज्येष्ठो निवासेश्वर एव च । शुकेशो व्याघ्रलिङ्गश्चजम्बुकेशश्चतुर्दशम्
मुने! चतुर्दशैतानि महान्त्यायतनानि वै । एतेषामपि सेवातो नरो मोक्षमवाप्नुयात्
चैत्रकृष्णप्रतिपदं समारभ्य प्रयत्नतः । आचतुर्दशि पूज्यानि लिङ्गान्येतानि सत्तमैः
एतेषां वार्षिकी यात्रा सुमहोत्सवपूर्वकम् ।

कार्या मुमुक्षुभिः सम्यक् क्षेत्रसंसिद्धिदायिनी ॥ ६४ ॥

मुने चतुर्दशैतानि महालिङ्गानि यत्नतः । दृष्ट्वा न जायते जन्तुः संसारे दुःखसागरे
क्षेत्रस्य परमं तरुमेतदेव प्रिये! ध्रुवम् । संसाररोगप्रस्तानामिदमेव महौषधम्
क्षेत्रस्योपनिषत्त्वैषा मुक्तिबीजमिदं परम् । कर्मकाननदावाग्निरेषा लिङ्गावलिः प्रिये
एकैकस्याऽऽस्यलिङ्गस्यमहिमाद्यन्तवर्जितः । मयैवज्ञायतेदेविसम्यङ्नान्येनकेनचित्
इति श्रुत्वा मुने! प्राह देवी हृष्टतनूरुहा । प्रणम्य देवमीशानं सर्वज्ञं सर्वदं शिवम्

देव्युवाच

रहस्यं परमं काश्यां यदेतत्समुदीरितम् । तच्छ्रुत्वोत्सुकतां प्राप्तःमनोमेऽतीववल्लभ
 यदुक्तं लिङ्गमेकैकं महासारतरं परम् । काश्यां परमनिर्वाणकारणंकारणेश्वर ! ७१ ॥
 प्रत्येकं महिमानं मे ब्रूह्येषां भुवनेश्वर ! । अतुर्दशानां लिङ्गानां श्रवणादघहारिणाम्
 उँकारेशस्य लिङ्गस्यकथमत्रसमागमः । अतिपुण्यतमात्सस्मात्क्षेत्रादमरकण्डकात्
 किमात्मकोऽयमोङ्कारोमहिमास्यचकोहर ! । केनाराधि पुराचंपददावाराधितश्चकिम्
 मृडानीवाक्सुधामेतां विधाय श्रुतिगोचराम् ।

कथामकथयद्देव उँकारस्य महाद्भुताम् ॥ ७५ ॥

देवदेव उवाच

कथामाकर्णयाऽपर्णे वर्णयामितवाऽप्रतः । यथोङ्कारस्यलिङ्गस्यप्रादुर्भावइहाऽभवत्
 पुराऽऽनन्दवने चात्र ब्रह्मणा विश्वयोनिना । तपस्तप्तं महादेवि समाधिदधतापरम्
 पूर्णं युगसहस्रेऽथमित्वापातालसप्तकम् । उदतिष्ठत्पुरोज्योतिर्विद्योतितहरिन्मुखम्
 यदन्तराविरमवन्निर्व्याजेन समाधिना । तदेव परमंधामबहिराविरभूद्विधेः ॥ ७६ ॥
 योभूच्छटघटाशब्दःस्फुटतोभूमिभागतः । तच्छब्दाद्भवत्सृजद्देवाःसमाधिकमतोवशी
 स्रष्टा विसृष्टतद्भवानो यावदुन्मील्य लोचने । पुरःपश्येद्ददर्शाऽग्रे तावदक्षरमादिमम्
 अकारं सत्त्वसम्पन्नमृक्क्षेत्रं सृष्टिपालकम् ।

नारायणात्मकं साक्षात्तमःपारे प्रतिष्ठितम् ॥ ८२ ॥

उकारमथ तस्याऽग्रे रजोरूपं यजुर्जनिम् ।

विधातारं समस्तस्य स्वाकारमिध बिम्बितम् ॥ ८३ ॥

नीरवध्वान्तसङ्केतसदनामं तदप्रतः । मकारंस ददर्शाथ तमोरूपंविशेषतः ॥ ८४ ॥

साम्नोयोनिं लये हेतुं साक्षादुद्रस्वरूपिणम् ।

अथ तत्पुरतो ध्याता व्यधात्स्वनयनातिथिम् ॥ ८५ ॥

विश्वरूपमयाकारं सगुणंवापिनिर्गुणम् । अनाख्यनादसदनम्परमानन्दविग्रहम् ॥

शब्दब्रह्मो तित्यक्त्यातंसर्ववाङ्मयकारणम् । अथोपरिष्ठात्तादस्यबिन्दुरूपम्परमात्परम्

कारणंकारणानाञ्च जगद्योनिचतम्परम् । विधिर्विलोकयाञ्चक्रेतपसामोचरीकृतम्
अवनादोमिति क्वातं सर्वस्याऽऽस्य प्रभाषतः ।

भक्तमुन्नयते यस्मात्सदोमिति यईरितः ॥ ८६ ॥

अरूपोऽपि सरूपाढ्यःसधात्रा नेत्रगीकृतः । तारयेद्यद्वचाम्भोधेःस्वजपासक्तमानसम्
ततस्तार इतिरुयातो यस्तं ब्रह्मा व्यलोकयत् ॥ ९० ॥

प्रणूयतेयतःसर्वेःपरनिर्वाणकामुकैः । सर्वेभ्योऽभ्यधिकस्तस्मात्प्रणवोयःप्रकीर्तितः
स्वसेचितारम्पुरुषं प्रणयेद्यः परम्पदम् । अतस्तम्प्रणवं शान्तं प्रत्यक्षीकृतवान्विधिः
त्रयीमयस्तुरीयो यस्तुर्यातीतोऽखिलात्मकः ।

नादबिन्दुस्वरूपो यः स प्रैक्षि द्विजगामिना ॥ ९३ ॥

प्रावर्तन्त यतोवेदाः साङ्गाः सर्वस्ययोनयः । सवेदादिः पद्मभुवा पुरस्तादधलोकितः
वृषभो यस्त्रिधाबद्धो रोरधीति महोमयः । स नेत्रविषयीचक्रे परमः परमेष्ठिना ॥
शृङ्गाभ्रत्वारियस्याऽऽसनहस्तासःसप्तपवच । द्वेशीर्षेचत्रयःपादा सदेवोविधिनैक्षत
यदन्तर्लीनमखिलं भूतम्भाषिमवत्पुनः । तद्वीजम्बीजरहितं द्रुहिणेन विलोकितम्
लीनं मृग्येत यत्रेतदाब्रह्मस्तम्बभाजनम् । अतःसमाज्यतेसद्विर्यलिङ्गं तद्विलोकितम्
पञ्चार्था यत्रभासन्ते पञ्चब्रह्ममयं हियत् । आदिपञ्चस्वरूपंयन्निरैक्षि ब्रह्मणा हि तत्
तमालोक्य ततो वेधालिङ्गरूपिणमीश्वरम् । पञ्चाक्षरम्पञ्चाच्च भिन्नं तुष्टाव शङ्करम्

ब्रह्मोवाच

नम ऊँकाररूपाय नमोऽक्षरवपुर्धुते । नमोऽकारादिवर्णानांप्रभवाय सदाशिव ! ॥
अकारस्त्वमुकारस्त्वं मकारस्त्वमनाकृते । ऋग्यजुः सामरूपाय रूपातीताय ते नमः
नमो नादात्मने तुभ्यं नमोबिन्दुकलात्मने । अलिङ्गलिङ्गरूपाय सर्वरूपस्वरूपिणे
नमस्ते धामनिधये निधनादिविर्जित ! । नमो भवाय रुद्राय शर्वाय च नमोऽस्तुते
नम उप्राय भीमाय पशूनाम्पतये नमः । नमस्तारस्वरूपाय सम्भवाय नमोऽस्तुते
अमायःय नमस्तुभ्यं नमः शिषतराय ते । कपर्दिनेनमस्तुभ्यं शितिकण्ठनमोऽस्तुते
मीदुष्टमाय गिरिश ! शिपिबिष्टाय तेनमः । नमोऽहस्वाय खर्वायवृद्धते वृद्धरूपिणे ॥

कुमारगुरवे तुभ्यं कुमारवपुषे नमः । नमः श्वेताय कृष्णाय पीतायारुणमूर्तये ॥
 धूम्रवर्णाय पिङ्गाय नमः किर्मीरवर्धसे । नमः पाटलवर्णाय नमो हरिततेजसे ॥
 नानावर्णस्वरूपाय वर्णानाम्पतये नमः । नमस्ते स्वरूपाय नमोव्यञ्जनरूपिणे ॥
 उदात्तायानुदात्ताय स्वरिताय नमो नमः । ह्रस्वदीर्घप्लुतेशाय सचिसर्गाय ते नमः ॥
 अनुस्वारस्वरूपाय नमस्ते सानुनासिके ! नमो निरनुनासाय दन्त्यतालव्यरूपिणे
 ओष्ठयोरस्यस्वरूपायनमःऊष्मस्वरूपिणे । अन्तस्थाय नमस्तुभ्यं पञ्चमायपिनाकिने
 निषादाय नमस्तुभ्यं निषादपतये नमः । धीणावेणुमृदङ्गादिवाद्यरूपाय ते नमः ॥
 नमस्ताराय मन्द्राय घोरायाघोरमूर्तये । नमस्तानस्वरूपाय मूर्च्छनापतये नमः ॥
 स्थायिसंचारिभेदेन नमोभावस्वरूपिणे । तालप्रियाय तालायलास्यताण्डवजन्मने
 तौर्यत्रिकस्वरूपाय तौर्यत्रिकमहाप्रिये ! तौर्यत्रिककृताम्भक्त्यानिर्वाणश्रीप्रदायक
 स्थूलसूक्ष्मस्वरूपाय दृश्यादृश्यस्वरूपिणे । अर्वाचीनाय चनमः पराचीनाय ते नमः
 वाक्प्रपञ्चस्वरूपाय वाक्प्रपञ्चपराय च । एकायानैकभेदाय सदसत्पतयेनमः ॥ ११६
 शब्दब्रह्म! नमस्तुभ्यं परब्रह्म! नमोऽस्तुते । नमो वेदान्तवेद्याय वेदानाम्पतये नमः ॥
 नमोवेदस्वरूपाय वेदगोचरमूर्तये । पार्वतीश! नमस्तुभ्यं जगदीश! नमोऽस्तुते
 नमस्ते देवदेवेश! देवदिव्यपदप्रद । शङ्कराय नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महेश्वर ! ॥ १२२
 नमस्ते जगदानन्द नमस्ते शशिशेखर । मृत्युञ्जय नमस्तुभ्यं नमस्ते त्र्यम्बकाय च
 नमः पिनाकहस्ताय त्रिशूलायुधधारिणे । नमस्त्रिपुरहन्त्रे च नमोऽन्धकनिषूदन ॥
 कन्दर्पदर्पदलन नमोजालन्धरारथे । कालाय कालकालाय कालकूटविषादिने ॥ १२५
 विषादहन्त्रे भक्तानामभक्तैकविषादद ! ज्ञानायज्ञानरूपाय सर्वज्ञाय नमोऽस्तुते ॥

योगसिद्धिप्रदोऽसि त्वं योगिनां योगसत्तम !

तपसां फलदोऽसि त्वं तपस्विभ्यस्तपोधन ! ॥ १२७ ॥

त्वमेवमन्त्ररूपोऽसिमन्त्राणां फलदो भवान् । महादानफलं त्वं वै महादानप्रदो भवान्
 महायज्ञस्त्वमेवेश महायज्ञफलप्रद ! त्वं सर्वः सर्वगस्त्वं वै सर्वदः सर्वदृग्भवान् ॥
 सर्वभुक् सर्वकर्ता त्वं सर्वसंहारकारक ! योगिनां हृदयाकाशकृतालय! नमोऽस्तुते

त्वमेव विष्णुरुपेण शङ्खचक्रगदाधर ॥ त्रिलोकीत्रायसे त्रातःसत्त्वमूर्ते ! नमोऽस्तु ते
 त्वमेव विद्धानस्यैतद्विधिभूत्वाविधानवित् । रजोरुं समालम्ब्य नीरजस्कपदप्रद
 त्वमेव हि महाह्रस्त्वम्महोप्रभुजङ्गभृत् । त्वमेव हि महाभीमो महापितृवनेश्वर
 तामसीं तनुमाश्रित्य त्वं कृतान्तकृतान्तकः । कालाग्रिकद्रोभूत्वान्तेत्वंसंवर्तप्रवर्तकः
 त्वं पुम्प्रकृतिरूपाभ्यां महदाद्यखिलजगत् । अक्षिपद्मसमुत्क्षेपात्पुनराविःकरोष्यज
 उन्मेषचिनिमेषौ ते सर्गासर्गककारणम् । कपालमालाखेलोयं भवतः स्वैरुच्चारिणः
 त्वत्कण्ठे नृकरोटीयं धूर्जटे ! याचिभासते । सर्वेषामन्तदग्धानां सास्फुटं बीजमालिका
 त्वत्तः सर्वमिदं शम्भो त्वयि सर्वं चराचरम् ।

कस्त्वां स्तोतुं विजानाति पुरा वाचामगोचरम् ॥ १३८ ॥

स्तोता त्वं हि स्तुतिस्त्वं हि नित्यं स्तुत्यस्त्वमेव च ।

वेद्यन्तौ नमः शिवायेति नान्यद्वेद्यन्तौ च किञ्चन ॥ १३९ ॥

त्वमेव हि शरण्यं त्वमेव हि गतिः परा । त्वामेव प्रणमामीश नमस्तुभ्यं नमो नमः
 इत्युदीर्यासकृद्वेधाः प्रणनाम महेश्वरम् । प्रणवाढ्यं महालिङ्गरूपिणं दण्डवत्क्षितौ
 ईश्वर उवाच

ततो गिरीन्द्रतनये ! श्रुत्वा ब्रह्मस्तुतिम्पराम् । परमैश्वर्यसम्पत्तिहेतुं तुष्टोऽहमद्भुताम्
 अमूर्तोऽहं ततो लिङ्गान्मूर्तिमास्थाय शाङ्करीम् ।

प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहीत्युवाच चतुराननम् ॥ १४३ ॥

चतुर्वक्त्रः समुत्थाय प्रत्यक्षं वीक्ष्य मामाथ । पुनर्जयजयेत्युक्त्वा प्रणनामकृताञ्जलिः
 आनन्दवाष्पसलिलनेत्रोद्दृष्टतनूरुहः । गद्गदेन स्वरेणाथ प्रोवाच जलजासनः ॥ १४५ ॥

ब्रह्मोवाच

यदिप्रसन्नो देवेश यदिदेयो वरो मम । तदेतस्मिन्महालिङ्गैसात्रिध्यं तेऽस्तु शङ्करं
 अयमेव वरो देवो नान्यं वरमहं वृणे । ओंकारेश्वरनामैतदस्तु भक्तैकमुक्तिदम् ॥

स्कन्द उवाच

विध्युक्तमिति विप्रर्षे ! समाकर्ण्य तदेशिता । उवाच वचनं श्वेतसयास्तु चतुराननम्

वरानन्यानपि विभुःप्रसन्नस्तत्क्षणाद्द्वी । विधये दीर्घतपसे तथास्तुत्यातितोषितः
ईश्वर उवाच

सुरश्रेष्ठ तपःश्रेष्ठ! सर्वाङ्गायनिधिर्मव । सृष्टेःकरणसामर्थ्यं तवास्तु मद्गुणप्रहात् ॥
पितामहस्त्वं सर्वेषां सर्वेषांमान्यभूर्भवान् । त्वत्तपःफलदानार्थंयदेतल्लिङ्गमुत्थितम्
परमोङ्काररूपं च शब्दब्रह्ममयं विधे ! । अस्याराधनतः पुंसां न दूरं ब्रह्मणः पदम् ॥
अकाराख्यमिदंलिङ्गमुकाराख्यमिदंपरम् । मकाराह्वयमेतच्च नादाख्यं बिन्दुसञ्ज्ञकम्
पञ्चायतनमीशानमित्थमेतदुदीरितम् । मोक्षाय सर्वजन्तूनामस्मिन्नानन्दकानने ॥

स्नात्वा मत्स्योदरीतीर्थं विलोक्योङ्कारमीश्वरम् ।

न जातु जायते जन्तुर्जननीजठरे क्वचित् ॥ १५५ ॥

एतन्नादेश्वरंलिङ्गयेतल्लिङ्गं सुदुर्लभम् । रम्यैमत्स्योदरीतीरे द्रष्टुं स्पृष्टुं विमुक्तिदम्
यदेतत्कापिलं ज्योतिरेतल्लिङ्गेविलोक्यते । अतस्तु कपिलेशाख्यमेतल्लिङ्गं सुदुर्लभम्
मत्स्योदरी यदागङ्गाकपिलेश्वरसन्निधौ । तदा तत्र नरःस्नात्वाब्रह्महत्यां व्यपोहति
चरणोत्सिक्तपानीये घृणदीतोयमिश्रिते । स्नात्वानादेश्वरं द्रष्टुं नरः किमनुशोचति
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तीर्थानि सह सागरैः ।

पष्टिकोटिसहस्राणि मत्स्योदर्यां विशन्ति हि ॥ १६० ॥

प्रणवेशसमीपेतु यदा गङ्गासमेप्यति । तदा पुण्यतमः कालो देवर्षिपितृवल्लभः
तत्रस्नानं जपोदानं हवनं देवतार्चनम् । मत्स्योदर्यामक्षयं स्यादोङ्कारेश्वरसन्निधौ
ओङ्कारदर्शनादेव वाजिमेषफलंलभेत् । तस्मात्काश्यां प्रयत्नेन दृश्यओङ्कार ईश्वरः
दुर्लभं मानवं जन्म चतुर्वर्गकसाधनम् । जलबुद्बुदवत्तत्स्यान्नादेशो येन नेक्षितः

निरीक्ष्य कपिलेशानं स्नात्वा मत्स्योदरीजले ।

कृत्वा पिण्डप्रदानानि पितृणामनृणो भवेत् ॥ १६५ ॥

कृत्वाऽपि मोहात्पापानि भूरीण्येव महान्त्यपि ।

काश्यामोङ्कारमालोक्य कुतस्त्रस्यति वै यमात् ॥ १६६ ॥

ओङ्कारयात्राभिमुखंनरंवीक्ष्य पितामहाः । परितृत्यन्तिमुदिताःस्वसन्तानसमुद्भवम्

यस्य यस्य च वै नाम स्मृत्वा स्मृत्वा नमस्यति ।

तन्तमुन्नयते प्राज्ञः पितरं, ब्रह्मणः पदम् ॥ १६८ ॥

रुद्राणां नियुतं जप्त्वा यत्फलं सम्यगाप्यते ।

तत्फलं लभते नूनं भक्त्योङ्कारविलोकनात् ॥ १६९ ॥

केवलं भूमिभाराय जन्मिनो जन्मतस्य वै । येनाऽऽनन्दधनेद्रुष्टो नोङ्कारः सर्वकामदः
एकमोङ्कारमालोक्यसमस्तेक्षोणिमण्डले । लिङ्गजातानिसर्वाणिद्रष्टानिस्युर्नसंशयः
प्रणवेशं प्रणम्याथ यद्यन्यत्र विपद्यते । स्वर्गलोकमवाप्याथकाश्यामुक्तिमवाप्नुयात्

अस्मिँल्लिङ्गे सदा ब्रह्मन्स्थास्यामीति विनिश्चितम् ।

दास्यामि च सदा मोक्षमेतल्लिङ्गार्चकाय वै ॥ १७३ ॥

ओङ्कारसकृदप्यत्र नरो नत्वाप्रयत्नतः । कृतकृत्यो भवेन्नूनं परमानन्दनुग्रहात् ॥
ओङ्कारपश्चिमे भागे तारतीर्थमनुत्तमम् । कृतोदकक्रियस्तत्र नरस्तरति दुर्गतिम्
ओङ्कारेशस्य ये भक्ता ज्ञेयास्ते नैघमानवाः । मनुष्यचर्मणानद्धास्तेरुद्रामोक्षगामिनः
अस्यलिङ्गस्यमहिमानान्यैरत्रावगम्यते । त्वत्पुण्योदयतोयस्माद्विधेत्राविरभूदिदम्
एतल्लिङ्गप्रभावाच्च सर्वज्ञास्यसि तत्त्वतः । विधेविधेहि तस्मात्त्वं सर्वमेतच्चराचरम्
इति दत्त्वा धरं तस्मै ब्रह्मणे पद्मसम्भवे । तस्मिन्नेवमहालिङ्गे शम्भुर्लोनो बभूव ह

स्कन्द उवाच

ब्रह्मापिभजतेद्यापि तल्लिङ्गं कलशोद्वेष ! । स्तुवन्ब्रह्मस्तवेनैव स्वात्मनाविहितेन हि
ब्रह्मस्तवं जपन्मर्त्यैः सर्वेषांपैः प्रमुच्यते । पूर्यते च महापुण्यैर्ज्ञानं प्राप्नोतिससत्तमम्
ब्रह्मस्तवमिमं जप्त्वा त्रिकालं परिवत्सरम् । अन्तकालेभवेज्ज्ञानंयेनबन्धात्प्रमुच्यते

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

उत्तरार्धेओङ्कारमहिमघर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

ॐकारमाहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

शृणुवातापिसंहतः! काश्यां पातकतङ्किनी । पद्मकल्पे तु या वृत्ता दमनस्य द्विजन्मनः
भारद्वाजस्य तनयो दमनो नाम नामतः । कृतमौञ्जीविधिः सोऽथ विद्याजातं प्रगृह्य च
संसारं दुःखबहुलं जीवितं चापि चञ्चलम् । चिन्नाय दमनो विद्वाञ्छिर्जगाम गृहाञ्छिजात्
काञ्चिद्विशं समालम्ब्य निर्वेदं परमंगतः । प्रत्याश्रमं प्रतिनगं प्रत्यब्धिं प्रतिकाननम्
प्रतितीर्थं प्रतिनदि स बभ्राम तपोयुतः । यावन्त्यायतना नीह तिष्ठन्ति परितो भुवम्
अध्युषास स तावन्ति संयतेन्द्रियमानसः ।

परं न मनसःस्थैर्यं कापि प्रापि च तेन वै ॥ ६ ॥

मनोरथोपदेष्टा च कुत्रचित्कापिनेक्षितः । कदाचिद्वैचयोगात्स दमनो नाम तापसः
रेवातटे निरैक्षिष्ट तीर्थं चामरकण्ठकम् । महदायतनं पुण्यमोङ्कारस्यापि तत्र वै ॥
दृष्ट्वा हृष्टमना आसीच्चेतः स्थैर्यमवाप ह । अथ पाशुपतांस्तत्र स निरीक्ष्य तपोधनात्
विभूतिभूषिततनून्कृतलिङ्गसमखनान् । विहितप्राणयात्रांश्च कृतागमविचारणान्
स्वस्थोपविष्टान्स्वशुरोऽप्रतोऽचलमानसान् ।

प्रणम्योपाविशस्तत्र तदाचार्यस्य सन्निधौ ॥ ११ ॥

प्रबद्धहस्तयुगलः प्रणमन्तरकन्धरः । अथ पाशुपताचार्यां गगौ नाम महामुनिः ॥
चार्यकेन समाक्रान्तस्तपसा कृशविग्रहः । शम्भोरा राधने निष्ठः श्रेष्ठः सर्वतपस्विषु
यप्रच्छ दमनं चेतिकस्त्वं कस्मादिहागतः । तरुणोऽपिषिरकोऽसि कुतस्तद्भदसत्सम
इति प्रणयपूर्वं स निशम्य दमनोऽब्रवीत् । भगोः पाशुपताचार्यां सर्वं ह्याराधनप्रिय
कथयामि यथार्थं ते निजचेतो विचेष्टितम् । अहं ब्राह्मणदायादोऽवेदशास्त्रकृतभ्रमः
संसारसारतां ह्यात्वा वानप्रस्थमशिभ्रियम् । अनेनैव शरीरेण महासिद्धिमभीप्सता

स्नातं बहुषु तीर्थेषु मन्त्राजसास्तु कोटिशः । देवताः सेचिताबह्व्योहवनंचकृतं बहु
शुश्रूषिताश्च गुरवो बहवो बह्वनेहसम् । महाश्मशानेषु निशाभूयस्योऽप्यतिवाहिताः
शिखराणि गिरीन्द्राणां मया बाध्युषितान्यहो ।

दिव्यौषधिसहस्राणि मया संसाधितान्यपि ॥ २० ॥

रसायनानि बहुशः सेचितानि मया पुनः । महासाहसमालम्ब्यसिद्धाध्युषितकन्दराः
मया प्रविष्टा बहुशः कृतान्तचदनोपमाः । तपश्चापि महत्तनं बहुभिर्नियमैर्मैः ॥
परं किञ्चित्कचिन्नैश्च सिद्ध्यङ्कुरमपिप्रभो । इदानीं त्वामनुप्राप्यमहर्षीपर्यटता मया
मनसः स्थैर्यमापन्नमिद्य संप्राप्तसिद्धिना ।

अवश्यं त्वन्मुखाम्भोजायद्वचो निःसरिष्यति ॥ २४ ॥

तेनैव महती सिद्धिर्भवित्रीममनान्यथा । तद्ब्रूहि सूपदेशं च कथं सिद्धिर्भवेन्मम
अनेनैव शरीरेण पार्थिवेन प्रथीयसी । दमनस्य निशम्येति गर्गाचार्यो वचस्तदा
प्रत्यक्षदृष्टं प्रोवाचमहदाश्चर्यमुत्तमम् । सर्वेषांशृण्वतांतत्र शिष्याणांस्थिरचेतसाम्
मुमुक्षूणां धृतवतां महापाशुपतं व्रतम् ॥ २७ ॥

गर्ग उवाच

अनेनैवेह देहेन यदि त्वं सिद्धिकामुकः । शृणुष्वावहितो भूत्वातदाते कथयाम्यहम्
अविमुक्ते महाक्षेत्रे सर्वसिद्धिप्रदे मताम् । धर्माश्चकाममोक्षाख्यरत्नानां परमाकरे
समाश्रितानां जन्तूनांसर्वेषां सर्वकर्मणाम् । शलभानांप्रदीपा ये तमस्तोममहाद्विषि
कर्मभूरुहदावाग्नौ संसाराढ्यौर्वशोचिषि ।

निर्वाणलक्ष्मी क्षीराब्धौ सुखसङ्केतसन्ननि ॥ ३१ ॥

दीर्घनिद्राप्रसुतानां परमोदुबोधदायिनि । यातायातश्रमापन्नप्राणिमार्गमहीरुहि ॥
अनेकजन्मजनितमहापापाद्विषज्जिणि । नामोच्चारकृतां पुंसां महाश्रेयोविधायिनि
विश्वेशितुः परे धाम्नि सीम्नि स्वर्गापवर्गयोः ।

स्वर्धुं नीलोलकलोलनित्यक्षालितभूतले ॥ ३४ ॥

बभं विधे महाक्षेत्रे सर्वधुःखौषहारिणि । प्रत्यक्षं मम यद् वृत्तं तद् ब्रवीमि महामते

यत्र कालभयं नास्तियत्र नास्त्येनसोभयम् । तत्क्षेत्रमहिमानकः सम्यग्वर्णयितुंक्षमः
तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिञ्जन्तुनामग्रहान्यहो ।

तानि सर्वाणि शुद्धवर्थं काशीमायान्ति नित्यशः ॥ ३७ ॥

अपिकाश्यां वसेद्यस्तु सर्वाशीसर्वविक्रयी । सयांगतिलभेन्मर्त्योपश्लैदानैर्नसाऽन्यतः
रागबीजसमुद्भूतः संसारविटपोमहान् । दीर्घस्वापकुठारेण च्छिन्नःकाश्यांनवर्धते
सर्वेषाम्पराणा तु काशी परमऊपरः । वप्तुर्बीजमिदं तस्मिन्नुप्तं नैव प्ररोहति ॥

स्मरिष्यन्तीह ये काशीमवश्यं तेऽपि साधवः ।

तेऽप्यधौघविनिर्मुक्ता यास्यन्ति गतिमुत्तमाम् ॥ ४१ ॥

विभूतिःसर्वलोकानांसत्यादीनांसुमंगुरा । अमंगुराविमुक्तस्य सानुलभ्याशिवाह्वया
कृमिकीटपतङ्गानामविमुक्तेतुत्यजाम् । विभूतिर्दृश्यतेयासाकास्तिब्रह्माण्डमण्डले
वाराणसी यदा प्राप्ता कदाचित्कालपर्ययात् ।

स उपायो विधातव्यो येन नो निष्कमो बहिः ॥ ४४ ॥

पूर्वतो मणिकर्णोशो ब्रह्मेशो दक्षिणेस्थितः । पश्चिमेष्वैव गोकर्णोभारभूतस्तथोत्तरे
इत्येतदुत्तमं क्षेत्रमविमुक्ते महाफलम् । मणिकर्णोहृदे स्नात्वाद्दृष्ट्वाविश्वेश्वरंविभुम्
क्षेत्रं प्रदक्षिणीकृत्य राजसूयफलंलभेत् । तत्र श्राद्धप्रदातुश्च मुच्यन्तेप्रपितामहाः ॥
अविमुक्तसमं क्षेत्रमपि ब्रह्माण्डगोलके । नविद्यते क्वचित्सत्यंसत्यंसाधकसिद्धिदम्
रक्षन्ति सततक्षेत्रं यत्रपाशासिपाणयः । महापारिषदाउघ्राः क्रूरभ्योऽक्रूरबुद्धयः ॥
प्राग्द्वारमदृहासश्च गणकोटिपरीवृतः । रक्षेदहर्निशं क्षेत्रं दुर्वृत्तेभ्यो विभीषणः ॥
तथैव भूतधात्रीशः क्षेत्रदक्षिणरक्षकः । गाकर्णः पश्चिमद्वारं पाति कोटिगणावृतः
उदग्द्वारंतथारक्षेद्दुघण्टाकर्णोमहागणः । पेशं कोणं छागवक्त्रोभीषणोवह्निदिग्दलम्

रक्षः काष्ठां शङ्कुकर्णो दृमिचण्डो महाद्विशम् ।

इत्थं क्षेत्रं सदा पान्ति गणा एतेऽतिभास्वराः ॥ ५३ ॥

कालाक्षो रणभद्रस्तु कौलेयःकालकम्पनः । एतेपूर्वेणरक्षन्ति गङ्गापारेस्थितागणाः
वीरभद्रो नभश्चैव कर्दमास्तिसविग्रहः । स्थूलकर्णमहाबाहुरसिपारे व्यवस्थिताः

विद्यालाक्षो महाभीमः कुण्डोदरमहोदरौ । रक्षन्तिपश्चिमद्वारं देहलीदेशसंस्थिताः
 नन्दिसेनश्च पञ्चालः खरपादः करण्डकः । आनन्दो गोपको बभ्रुरक्षन्ति वरणातटे ॥
 तस्मिन्क्षेत्रे महापुण्ये लिङ्गमोङ्कारसञ्चकम् । तत्रसिद्धिपरंप्राप्तादेहेनानेनसाधकाः
 कपिलश्चैवसार्वर्णिःश्रीकण्ठःपिङ्गलौशुमान् । एतेपाशुपताःसिद्धास्तल्लिङ्गाराधनेनहि
 एकदातस्यलिङ्गस्यकृत्वापञ्चापिपूजनम् । मृत्यन्तःसहृदुत्कारं तस्मिँल्लिङ्गैलयययुः
 अन्यथ तेप्रवक्ष्यामि तत्र यद्वृत्तमद्भुतम् । निशामय महाबुद्धे! दमनद्विजसत्तम ॥
 एकामेकी मुनेतत्रचरन्ती लिङ्गसन्निधी । प्रदक्षिणं सदा कुर्यान्निर्माल्याक्षतभक्षिणी
 सा तत्र मृत्युं न प्रापशिष्यनिर्मात्यभक्षणात् । क्षेत्रादन्यत्र मरणं जातंतस्यास्तदेनसः
 धरंविषमपि प्राश्यं शिवस्त्वन्नैवभक्षयेत् । विषमेकाकिनं हन्तिशिवस्वं पुत्रपौत्रकम्
 शिवस्वपरिपुष्टाङ्गः स्पर्शनीया नसाधुभिः । तेन कर्मधिपाकेन ततस्ते रौरवौकस'
 कश्चित्काकः समालोक्य मण्डूकीं तामितस्ततः ।

पोप्ट्रयमानामादाय चञ्च्वा क्षेत्राद् बहुर्गतः ॥ ६६ ॥

वर्षाभ्वीतेन साक्षिता काकेनक्षेत्रबाह्यतः । अथ सा कालतो भेकी तत्रैव क्षेत्रसत्तमे
 प्रदक्षिणीकरणतो लिङ्गस्य स्पर्शनादपि । पुण्यापुण्यवती जाताकन्यापुष्पवटोगृहे
 शुभावयवसंस्थाना शुभलक्षणलक्षिता । परंगृध्रमुखी जाता निर्माल्याक्षतभक्षणात्
 सम्यग्गीतरहस्यज्ञा नितरामधरस्वरा । सप्तस्वरास्त्रयोप्रामामूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः
 ताना एकोनपञ्चाशत्ताला एकोत्तरं शतम् । रागाः षडेव तेषां तु पञ्चपञ्चापिचाङ्गनाः
 षट्त्रिंशद्गगारागिण्य इति रागिमुदावहाः । देशकालविभेदेन पञ्चषष्टिस्तथापराः
 यावन्त एव तालाः स्युरागास्तावन्तएवहि । इतिगीतोपनिषदा प्रत्यहं साशुभवता
 माधवी मधुरालापासदोङ्कारंसमर्चयेत् । प्राप्याप्यनर्च्यतारुण्यंसातु पुष्पवटोःसुता
 प्राग्जन्मवासनायोगादोङ्कारंबहुमंस्तथै । स्वभावचञ्चलंवेतस्तस्यास्तल्लिङ्गसेवनात्
 दमनस्थैर्यमगमद्योगेनेव महात्मनः । नदिषा बाधयाञ्चके क्षुत्तृणिनद्राक्षपासु ताम्
 अतन्त्रितमना आसीत्सा तल्लिङ्गनिरीक्षणे ।

अक्ष्णोर्निमेषा यावन्तस्तस्या आसन् दिषाविशम् ॥ ७७ ॥

तावत्कालस्तथा साध्व्या महान् विघ्नोऽनुमीयते ।

निमेषान्तरितः कालो यो यो व्यर्थो गतो मम ।

लिङ्गानवेक्षणात्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ७८ ॥

इति सञ्चिन्तयन्त्येवसेषांतत्याजरोऽकृतेः ।

जलाभिलाषिणी सा तु लिङ्गनामामृतं पिबेत् ॥ ७९ ॥

नान्यद्विद्वक्षिणी तस्या अक्षिणी श्रुतिगे अपि ।

विहाय लिङ्गमोङ्कारं हृदिहायःस्थितं सताम् ॥ ८० ॥

तस्याः शब्दग्रहौ नान्यशब्दग्रहणतत्परौ । अतीवनिपुणौजातौतत्सन्माल्यकरोकरी
नान्यत्र चरणौ तस्याश्चरतः सुखवाञ्छया ।

त्यक्तवोङ्काराजिरक्षोर्णी क्षुण्णां निर्वाणपद्मया ॥ ८२ ॥

ओङ्कारं प्रणवसारं परं ब्रह्मप्रकाशकम् । शब्दब्रह्मत्रयीरूपं नादबिन्दुकलालयम् ॥
सदक्षरं चादिरूपं विश्वरूपं पराचरम् । वरं वरेण्यं वरदं शाश्वतं शान्तमीश्वरम्
सर्वलोकैकजनकं सर्वलोकैकरक्षकम् । सर्वलोकैकसंहर्तुं सर्वलोकैकवन्दितम् ॥
आद्यन्तरहितं नित्यं शिवं शङ्करमव्ययम् । एकगुणत्रयातीतं भक्तस्वान्तकृतास्पदम्
निरुपाधिनिराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् । निर्मलं निरहङ्कारं निष्प्रञ्जं निजोदयम्
स्वात्माराममनन्तं च सर्वगं सर्वदंशिनम् । सर्वदं सर्वभोक्तारं सर्वं सर्वसुखास्पदम्
वागिन्द्रियं तदीयं च प्रोच्चरत्तदहर्निशम् ।

नामान्तरं न गृह्णाति क्वचिदन्यस्य कस्यचित् ॥ ८६ ॥

यत्प्रामाक्षररसं रसयन्ती दिधानिशम् । रसना नैव जानाति तस्याअन्यद्रसान्तरम्
सम्मार्जनं रङ्गमालाः प्रासादं परितःसदा । विदध्यान्माधवीतत्रतथाषांपात्रशोधनम्
तत्र पाशुपता यैव प्रणवेशार्चने रताः । तांश्च शुभ्रूषयेन्नित्यं पितृबुद्ध्यातिभक्तितः
सैशाखस्य चतुर्दश्यामेकदा सातु माधवी । रात्रौजागरणंकृत्वादिषोपषसनान्विता
यात्रामिलितमकेषु प्रातर्यातेषु सर्वतः । सम्मार्जनादिकं कृत्वा लिङ्गमभ्यर्च्यहर्षतः
गगयन्ती मधुरं गीतं नृत्यन्तीनिजलोलया । ध्यायन्तीलिङ्गमोङ्कारं तत्रलिङ्गैल्ययौ

अनेनैव शरीरेण पार्थिवेन महामतिः । अस्मदाचार्यमुढ्यानां पश्यताञ्चतपस्विनाम्
प्रादुर्बभूव यल्लिङ्गाज्ज्योतिर्जटिलिताम्बरम् ।

तत्र ज्योतिषि सा बाला ज्योतिर्मव्यपि साऽप्यभूत् ॥ ६७ ॥

राधशुक्लचतुर्दश्यामद्यापि क्षेत्रवासिनः । तत्र यात्रां प्रकुर्वन्ति महोत्सवपुरःसराः
तत्र जागरणं कृत्वा चतुर्दश्यामुपोषिताः ।

प्राप्नुवन्ति परं ज्ञानं यत्र कुत्रापि वै मृताः ॥ ६९ ॥

ब्रह्माण्डोदरमध्ये तुयानितीर्थानिसर्वतः । तानिवैशाखभूतायामायान्त्योङ्कृतिदर्शने
लिङ्गाग्रे श्रीमुखी नाम्नी गुहाऽस्ति परमोत्तमा ।

पातालस्य च तद् द्वारं तत्र सिद्धा वसन्ति हि ॥ १०१ ॥

तिष्ठेयुः पञ्चरात्र्ये गुहायां तत्रसुव्रताः । तेनागकन्याःपश्यन्तिब्रूयुस्ताश्च शुभाशुभम्
कन्दरोत्तरदिग्भागे तत्र कूपोरसोदकः ।

आपण्मासं च तत्पीत्वा पिबेद्ब्रह्मरसायनम् ॥ १०३ ॥

तत्र नादेभ्वरं लिङ्गं दृष्ट्वा नादनिदानभूः । सर्वनादात्मकं विश्वं तच्छ्रवोगोचरीभवेत्
तत्र मत्स्योदरीं स्नात्वा स्वधुर्नी वरुणाप्लुताम् ।

कृतकृत्यो भवेज्जन्तुर्नैव शोचति कुत्रचित् ॥ १०५ ॥

असङ्ख्याता गताः सिद्धिमोङ्कारेभ्वरसेवकाः । पार्थिवेनैवदेहेनदिव्यभूतेनतत्क्षणात्
अचिमुक्तं परं क्षेत्रं ब्रह्माण्डादपि सर्वतः ।

ततोऽपि पर ओङ्कार उक्तो मत्स्योदरीतटे ॥ १०७ ॥

प्रणवेशोऽङ्ग! यैःकाश्यांनतोनोनापिषार्धितः । किमर्थंतेसमुत्पन्नामातृतारुण्यहारिणः
यदा प्रभृति विश्वेशो मन्द्रादागतोऽभवत् । तस्मिन्नानन्दगहनेतदाप्रभृति सत्तम!

सर्वाण्यायतनान्याशु साब्धीनि सगिरीण्यपि ।

सनदीनि सतीर्थानि सङ्घीपानि ययुस्ततः ॥ ११० ॥

इदानीं ममभाष्येन स्मारितोऽहंत्वयाम्बुने । अहमप्यागमिष्यामियामःकाशींशिनैःशनैः
पतेऽपि ममशिष्या ये महापाशुपतव्रताः । काशीं यियासवस्तेपि यतःसर्वेमुमुक्षवः

अपि वार्धकमासाद्य यैः काशी नैव शीलिता ।

मानुषे दुर्लभे नष्टे कृतस्तेषां महासुखम् ॥ ११३ ॥

यावन्नेन्द्रियवैकल्यं यावन्नैवायुषः क्षयः । तावत्सेव्यं प्रबलत्वेन शम्भोरानन्दकाननम्

य आनन्दघनं शम्भोः शिश्रियुः श्रीनिकेतनम् ।

अचला श्रीनमुञ्जेत्तान्महासौख्यैकशेषधीन् ॥ ११५ ॥

इत्याख्याय कथारम्यां गर्गः पाशुपतोत्तमः । भारद्वाजेनसहितःप्रापवाराणसीपुरीम्

दमनोऽपि हि धर्मात्मा गर्गाचार्येण संयुतः ।

आराध्य श्रीमदोङ्कारं तस्मिंलिङ्गे लयं गतः ॥ ११७ ॥

स्कन्द उवाच

श्लवलारे परं न्ध्यानमोङ्कारमविमुक्तके । तत्र सिद्धिं परांजगमुः साधका बहुशो मुने
कलौ कलुषचित्तानांपुरोनाऽऽख्येयमेवहि । प्रणवेश्वरमाहात्म्यं नास्तिकानां विशेपतः

ये निन्दन्ति महादेवं क्षेत्रं निन्दन्ति येऽधियः ।

पुराणं ये च निन्दन्ति ते सम्भाष्या न कुत्रचित् ॥ १२० ॥

ॐङ्कारसदृशं लिङ्गं न क्वचिज्जगतीतले । इतिगौर्यैसमाख्यातं देवदेवेन निश्चितम्
इममध्यायमाकर्ण्य नरस्तद्गतमानसः । चिमुक्तः सर्वपापेभ्यः शिषलोकमवाप्नुयात्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां तृतीये काशीखण्डे

उत्तरार्धे ॐङ्कारमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

त्रिलोचनाविर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

श्रुत्वोङ्कारकथामेतांमहापातकनाशिनीम् । नतृप्तोस्तिविशाखाथब्रूहित्रैचिष्टर्षीकथाम्
कथं च कथिता देव्यै देवदेवेन षण्मुख ॥ आविर्भूतिर्महाबुद्धे! पुण्यात्रैलोचनीपरा

स्कन्द उवाच

आकर्णय मुने! वच्मि कथां श्रमनिवारिणीम् ।

यथा देवेन कथितां त्रिचिष्टपसमुद्भवाम् ॥ ३ ॥

चिरजाख्यं हि तत्पीठं तत्र लिङ्गं त्रिचिष्टपम् ।

तत्पीठदर्शनादेव चिरजा जायते नरः ॥ ४ ॥

तिस्रस्तु सङ्गतास्तत्र स्रोतस्विन्यो घटोद्भव !

तिस्रः कल्मषहारिण्यो दक्षिणे हि त्रिलोचनात् ॥ ५ ॥

स्रोतोमूर्तिधराः साक्षालिङ्गस्नपनहेतवे । सरस्वत्यथ कालिन्दीनर्मदाचातिशर्मदा

तिस्रोपि हि त्रिसन्ध्यन्ताः सरितः कुम्भपाणयः ।

स्नपयन्ति महाधाम लिङ्गं त्रैचिष्टपमहत् ॥ ७ ॥

लिङ्गानि परितस्ताभिः स्वनाम्ना स्थापितान्यपि ।

तेषां सन्दर्शनात्पुंसां तासां स्नानफलं भवेत् ॥ ८ ॥

सरस्वतीश्वरं लिङ्गं दक्षिणेनत्रिचिष्टपात् । सारस्वतंपदं दद्याद्बुद्धंस्पृष्टञ्च जाड्यहत्

यमुनेशमप्रतीच्याञ्च नरैर्भक्त्यासमर्चितम् । अपि किन्चिद्विषयमलोकनिवारणम्

दृष्टं त्रिलोचनात्प्राच्यां नर्मदेशं सुशर्मदम् । तल्लिङ्गार्चनतो नृणांगर्भवासोनिधिष्यते

स्नात्वा पिपिलिलातीर्थे त्रिचिष्टपसमापतः ।

दृष्ट्वा त्रिलोचनं लिङ्गं किं भूयः परिशोचति ॥ १२ ॥

त्रिविष्टपस्य लिङ्गस्य स्मरणादपिस्तानवः । त्रिविष्टपपतिर्भूयान्नात्रकार्याविचारणा
त्रिविष्टपस्य द्रष्टारः स्रष्टारः स्मुर्नसंशयः । कृतकृत्यापत एवात्र त एवात्रमहाधियः
आनन्दकानने लिङ्गं प्रणतयैस्त्रिविष्टपम् । त्रिलोचनस्य नामापियैः श्रुतशुद्धबुद्धिभिः
सप्तजन्मार्जितात्पापाप्ते पूता नात्र संशयः । पृथिव्यांयानिलिङ्गानितेषुदृष्टेषुयत्फलम्
तत्स्यात्त्रिविष्टपेदृष्टेकाश्यामन्येततोधिकम् । काश्यांत्रिविष्टपेदृष्टेदृष्टंसर्वत्रिविष्टपम्
क्षणाभिर्धूतपापोसौ नपुनर्गर्भभाग्भवेत् । सस्नातः सर्वतीर्थेषुसर्वावभृथवान्सख
योवैपिलिपिलातीर्थे स्नात्वोत्तरबहाम्भसि । सरित्त्रयंमहापुण्यंयत्रसाक्षाद्वसेत्सदा
तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा गयायां किं करिष्यति ।

स्नात्वा पिलिपिलातीर्थे कृत्वा वै पिण्डपातनम् ॥ २० ॥

दृष्ट्वात्रिविष्टपं लिङ्गं कोटितीर्थफलं लभेत । यदन्यत्रार्जितंपापंतत्काशीदर्शनाद्ब्रजेत्
काश्यां तु यत्कृतं पापं तत्पेशाचपदप्रदम् । प्रमादात्पातकं कृत्वाशम्भोरानन्दकानने
दृष्ट्वात्रिविष्टपं लिङ्गं तत्पापमपि हास्यति । सर्वस्मिन्नपि भूपृष्टेश्रेष्ठमानन्दकाननम्
तत्रापि सर्वतीर्थानि ततोऽप्योङ्कारभूमिका ।

ऊँकारादपि सल्लिङ्गान्मोक्षवर्त्मप्रकाशकात् ॥ २४ ॥

अतिश्रेष्ठतरंलिङ्गं श्रेयोरूपंत्रिलोचनम् । तेजस्विपुत्रया भानुर्दृश्येषु च यथा शशी
तथा लिङ्गेषु सर्वेषु परं लिङ्गं त्रिलोचनम् । २६ ॥

त्रिलोचनार्चकानां सापदवी न दधीयसी । परं निर्वाणपद्माया महासौख्यैकशेवधेः
सकृत्त्रिलोचनार्चातो यच्छ्रेयः समुपाज्यते ।

न तदाजन्म सम्पूज्य लिङ्गान्यन्यानि लभ्यते ॥ २८ ॥

कार्यां त्रिलोचनं लिङ्गं येऽर्चयन्ति महाधियः ।

तेऽर्च्यास्त्रिभुवनोकोभिर्ममप्रीतिमभीप्सुभिः ॥ २९ ॥

कृत्वाऽपि सर्वसंन्यासं कृत्वा पाशुपतत्रतम् ।

नियमेभ्यः स्खलित्वाऽपि कुतो विभ्यति मानवाः ॥ ३० ॥

विद्यमाने महालिङ्गे महापापौघहारिणि । त्रिविष्टपे पुण्यराशौ मोक्षनिक्षेपसन्ननि

समभ्यर्च्य महालिङ्गं सकृद्देवत्रिलोचनम् । मुच्यते कलुषैः सर्वैरपि जन्मशतार्जितैः
 ब्रह्महापिसुरापोवास्तेषी वागुरुतल्पग । तत्सयोग्यपि धावर्षं महापापीप्रकीर्तित
 परदाररतश्चापि परहिंसारतोपि वा । परापचादशीलोपि तथा चिस्रम्भघातक ॥
 कृतघ्नोऽपि भ्रणहाऽपि वृषलीपतिरेव वा । मातापितृगुरुत्यागी बह्विद्रोगरदोऽपिवा
 गोघ्न स्त्रीघ्नोऽपिशूद्रघ्न कन्यादूषयितापि च । क्रूरोवापिशुनोवापिनिजघर्मपराङ्मुख
 निन्दको नास्तिको वाऽपि कूटसाक्ष्यप्रघादक ।

अमह्यमक्षको वाऽपि यथाऽविक्रोयचिक्रयी ॥ ३७ ॥

इत्यादिपापशीलोऽपि मुक्तकं शिवनिन्दकम् ।

पापान्निष्कृतिमाप्नोति नत्वा लिङ्गं त्रिलोचनम् ॥ ३८ ॥

शिवनिन्दारतो मूढ शिवशास्त्रविनिन्दक ।

तस्य नो निष्कृतिदूष्ण कापि शास्त्रेऽपि केनचित् ॥ ३९ ॥

आत्मघाती स विह्वय सदा त्रलोक्यघातक ।

शिवनिन्दा विधत्त य सोऽनाभाष्योऽधमाधम ॥ ४० ॥

शिवनिन्दारता ये च शिवभक्तजनेष्वपि । ते यान्ति नरके घोरे याचञ्चन्द्रदिवाकर्तौ
 शीवा पूज्या प्रयत्नेन काश्या मोक्षमभीप्सुभि ।

तेष्वर्चितेऽष्वपि शिव प्रीतो भवत्यसशय ॥ ४१ ॥

सर्वेषामिह पापानां प्रायश्चित्तचिकीर्षया । निःशङ्कैरेव वक्तव्यं प्रमाणञ्चरिद् ध्वज
 पुरश्चरणकामध्वेदीतोऽसि यदि पापत । मन्यसे यद्विन सत्यवाक्यं शास्त्रप्रमाणत
 तत सर्वपरित्यज्यकृत्वामनसिनिश्चयम् । आनन्दकाननयाहियत्र विश्वेश्वर स्वयम्
 यत्र क्षेत्रप्रविष्टानां नराणानिश्चितात्मनाम् । नबाधतऽधनिश्चयं प्राप्यतेषु परो वृष
 तत्राद्यापिमहातार्थे त्रिस्रोतस्यतिनिर्मले । पुण्येपिलिपिलानाञ्चित्रिसरित्परिसेचित
 त्रिलोचनक्षिविक्षेपपरिक्षिप्तमहैनसि । स्नात्वागृह्योक्तविधिना तपणीयान्प्रतप्य च
 दत्त्वादेययथाशक्तिविसशाठ्यविवर्जित । इष्ट्वा त्रिविष्टपलिङ्गं समभ्यर्च्यातिभक्तित
 गन्धाद्यैर्विधिर्माल्यैः पञ्चामृतपुरसरैः । धूपदीपैः सनैवेद्यवासोभिर्बहुभूषणैः ॥

पूजोपकरणैर्द्रव्यैर्घण्टादर्पणचामरैः । खित्रञ्चजपताकाभिर्नृत्यवाद्यसुगायनैः ॥ ५१
जपैः प्रदक्षिणाभिश्च नमस्कारैर्मुंदायुतैः । परिचारकसन्तोषैः कृत्वेति परिपूजनम्

ब्राह्मणान्वाचयेत्पञ्चाग्निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ।

एवं कुर्वन्नरः प्राज्ञो निरेना जायते क्षणात् ॥ ५३ ॥

ततः पञ्चनदेस्नात्वा मणिकर्णीहृदे ततः । ततो विश्वेशमभ्यर्च्यप्राप्नोतिसुकृतमहत्
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तंमहापापविशोधनम् । नास्तिकेनप्रवक्तव्यंकाशीमाहात्म्यनिन्दके
ददश्च द्रव्यलोभेन प्रायश्चित्तमिदं शुभम् । दातानरकमाप्नोति सत्यं सत्यं घटोद्बुध !
क्षमां प्रदक्षिणीकृत्य यत्फलंसम्यगाप्यते । प्रदोषेतत्फलंकाश्यांरुतकृत्वखिलोचने
भुजङ्गमेखलं लिङ्गंकाश्यां दृष्ट्वात्रिचिष्टपम् । जन्मान्तरेऽपिमुक्तः स्यादन्यत्रमरणेसति
अन्यत्रसर्वलिङ्गेषुपुण्यकालोविशिष्यते । त्रिचिष्टपेषुपुण्यकालःसदारात्रिन्दिदंनृणाम्
लिङ्गान्योङ्कारमुख्यानि सर्वपापप्रकृत्यलम् ।

परं त्रैलोचनी शक्तिः काञ्चिदन्यैव पार्वति ! ॥ ६० ॥

यतः सर्वेषु लिङ्गेषु लिङ्गमेतदनुत्तमम् । तत्कारणं ऋषवर्षेणैः कर्णे कुरु षडाम्यहम्
पुरा मेयोगयुक्तस्य लिङ्गमेतद्भुवस्तलात् । उद्विद्यसप्त पातालं निरगात्पुरतोमहत्
अस्मिँलिङ्गे पुरागौरिसुगुप्तं तिष्ठतामया । तुभ्यन्नेत्रन्नयंदत्तं निरैक्षिष्टास्तथोत्तमम्
तदाप्रभृति देवेशि ! लिङ्गमेतत्रिलोचनम् । विष्टपत्रितयान्तस्वैर्गीयते ज्ञानदृष्टिदम्
त्रिलोचनस्ययेभकास्तेऽपिसर्वैत्रिलोचनाः । ममपारिषदास्तेतुजीषन्मुक्तास्तएवहि
त्रिलोचनस्यलिङ्गस्यमहिमानं न कश्चन । सम्यग्वेत्तिमहेशानि ! मयैवपरिगोपितम्
शुक्लराधतृतीयायां स्नात्वापैलिपिले हृदे । उपोषणपरा भक्त्यारात्रौजागरणान्विताः
त्रिलोचनं पूजयित्वाप्रातः स्नात्वापितत्रचै । पुनर्लिङ्गं समभ्यर्च्य दत्त्वा धर्मघटानपि
साङ्गान्सदक्षिणान्देवि ! पितृनुद्दिश्यहर्षिताः । विधायपारणंपञ्चाच्छिद्यभक्तजनैःसह
विसृज्य पार्थिवं देहं तेन पुण्येन नोदिताः । भवन्ति देवि ! नियतंगणा ममपुरोगमाः
तावद् भ्रमन्ति संसारे देवा मर्त्या महोरगाः ।

गौरि ! यावन्न पश्यन्ति काश्यां लिङ्गं त्रिलोचनम् ॥ ७१ ॥

सकृत्त्रिचिष्टपद्रष्ट्वा स्नात्वा पैलिपिलेहृदे । न जानुमातुः स्तनपोजायते जन्तुरत्रहि

प्रतिमासं सदाऽष्टम्यां चतुर्दश्यां च भामिनि !।

आयान्ति सर्वतीर्थानि द्रष्टुं देवं त्रिविष्टपम् ॥ ७३ ॥

त्रिविष्टपाद्दक्षिणतः स्नातः पैलिपिलेऽम्भसि ।

तत्र सन्ध्यामुपास्यैकां राजसूयफलं लभेत् ॥ ७४ ॥

पादोदकाढ्यस्तत्रैव कूपः पापघिनाशकः । प्राप्यतस्योदकं मर्त्योन्मर्त्योऽजायते पुनः
तस्यलिङ्गस्यपार्श्वे तु सन्तिलिङ्गान्यनेकशः । कैवल्यदानितान्यत्र दर्शनात्स्पर्शनादपि
तत्र शान्तनघं लिङ्गं गङ्गातीरे प्रतिष्ठितम् ।

तद् द्रष्टुं शान्तिमाप्नोति नरः संसारतापितः ॥ ७७ ॥

तद्दक्षिणे महालिङ्गं मुनेभीष्मेशसञ्ज्ञितम् । कलिःकालश्चकामश्चवाधतेनतदीक्षणात्
तत्प्रतीच्याम्महालिङ्गं द्रोणेश इति कीर्तितम् ।

यलिङ्गपूजनाद् द्रोणो ज्योतीरूपम्पुनर्दधौ ॥ ७६ ॥

अश्वत्थामेश्वरं लिङ्गं तदग्रेष्वितिपुण्यदम् । यदर्चनवशाद् द्रौणिर्नविभेत्यपि कालतः
द्रोणेशाद्वायुदिग्भागे बालखिल्येश्वरम्परम् । तलिङ्गं श्रद्धयाद्द्रष्टुं सर्वकतुफलं लभेत्
तद्दामेलिङ्गमालोक्य वाल्मीकेश्वरसञ्ज्ञितम् । तस्यसन्दर्शनादेव विशोकोजायतेनरः
अन्यच्चात्रैव यद्वृत्तंतद्बर्षीमिघटोद्भव !। त्रिविष्टपस्यमाहात्म्यं देव्यैदेवेनभाषितम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

उत्तरार्धे त्रिलोचनाधिर्भावो नामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

त्रिलोचनप्रभाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

शृणुष्व मैत्रावरुणे! पुराकल्पे रथन्तरे । इतिहासइहासीद्यः पीठे विरजसञ्ज्ञितेः॥
त्रिलोचनस्यप्रासादेमणिमाणिक्यनिर्मिते । नानाभङ्गिणावाक्षाढ्ये रत्नसानाधिषायते
कदाचिदपिकल्पान्ते द्योलोकेभ्रंशतिक्षये । प्रोक्तम्भनस्तम्भहृदत्तोषिष्वकृतास्वयम्
मरुत्तरङ्गिताप्राभिः पताकाभिरितस्ततः । सन्निवारयतीवेत्थमधौघान्विशतो मुने!
देदीप्यमानसौघर्णकलशेन विराजिते । पार्वणेन शशाङ्केन खेदादिषु समाश्रिते ॥ ५॥

तत्र पारावतद्वन्द्वं वसेत्स्वैरं कृतालयम् ।

प्रातः सायञ्च मध्याह्ने कुर्वन्नित्यम्प्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥

उड्ढायमानम्परितः पक्षवातेरितस्ततः । रजः प्रासादसंल्लग्नं दूरीकुर्वद्दिने दिने ॥
त्रिलोचनेति सततं नामभक्तैरुदाहृतम् । त्रिविष्टपेति च तथा तयोःकर्णातिथामवेत्
चतुर्विधानि बाद्यानि शम्भुप्रीतिकराण्यलम् ।

तयोः कर्णगुह्याम्प्राप्य प्रतिशब्दम्प्रतन्वते ॥ ६ ॥

मङ्गलारार्तिकज्योतिस्त्रिसन्ध्यम्पक्षिणोस्तयोः ।

नेत्रान्तर्निचिशन्नित्यं भक्तचेष्टाम्प्रदर्शयेत् ॥ १० ॥

प्राणयात्रां विहायाऽपि कदाचित्स्थिरमानसौ ।

नोड्डीय वाञ्छितं यातः पश्यन्तौ कौतुकं खगौ ॥ ११ ॥

तत्र भक्तजनाकीर्णं प्रासादम्परिता मुने !। तण्डुलादिचरन्तीती कुर्वातेचप्रदक्षिणम्
देवदक्षिणदिग्भागेचतुःस्रोतस्विनीजलम् । तृषार्तौधयतोषिप्रस्नातौजातुषिदण्डजौ
तयोरित्थं विचरतोत्रिलोचनसमीपतः । अगाद्बहुतियःकालोद्विजयोःसाधुचेष्टयोः
अथदेवालयस्कन्धे गवाक्षान्तर्गतौ च तौ । श्येनेनकेनचिदृष्टौक्रूरदृष्ट्यासुखस्थितौ

तश्च पारावतद्वन्द्वं श्येनः परिजिघृक्षुकः । अघतीर्याम्बरादाशु प्रविष्टोऽन्यशिवालये
ततो विलोकयामास तदागमचिनिर्गमौ । केन मार्गेण विशतो दुर्गमेतौ पतत्रिणौ
केनाऽध्वना च निर्यातःककालेकुरुतश्चकिम् । कथंयुगपदेतौमेप्राह्यौस्वैरम्भविष्यतः
मध्ये दुर्गम्प्रविष्टौ च ममवश्याविमौ न यत् ।

एकदृष्टिः क्षणं तस्थौ श्येन इत्थं विचिन्तयन् ॥ १६ ॥

अहोदुर्गबलम्प्राज्ञाः शंसन्त्येवेति हेतुतः । दुर्बलोऽप्याकलयितुं सहसारिर्नशक्यते ॥
करिणां तु सहस्रेण वराध्वाना नलक्षतः । तत्कर्मसिद्धिर्नृपतेदुर्गंकेन यद्भवेत् ॥
दुर्गस्थो नाभिमूयेतविपक्षःकेनचित्कचित् । स्वतन्त्रंयदिदुर्गस्यादमर्मज्ञप्रकाशितम्
इति दुर्गबलंशंसश्येनोरोषारुणेक्षणः । असाध्वसोकलरवौवीक्ष्ययातो नमोऽङ्गणम्
अथ पारावती दक्षा विपक्षम्प्रेक्ष्य पक्षिणम् । महाबलं दुर्गबलाप्राहृपारावतम्पतिम्

कलरव्युवाच

प्रिय पारावत प्राज्ञ! सर्वकामिसुखारव ! तव दृग्विषयम्प्रातः श्येनोऽयम्प्रबलो रिपुः
साचञ्चं चाक्ष्यमाकर्ण्य पारावत्याः स तत्पतिः ।

पारावतीमुवाचेदं का चिन्तेति तव प्रिये ! ॥ २६ ॥

पारावत उवाच

कतिनाम नसन्तीह सुभगेव्योमचारिणः । कतिदेवालयेष्वेषु खगा नोपविशन्तिहि
कति शैव न पश्यन्ति नौ सुखस्थाविह प्रिये !

तेभ्यो यदि हि भेतव्यं कुतो नौ तत्सुखमिप्रिये ! ॥ २८ ॥

रमस्व त्वम्मयासार्थं त्यजचिन्तामिमामाशुभे । अस्यश्येनवराकस्यगणनापिनमे हृदि
इत्थंपारावतवचः श्रुत्वापारावतीततः । मौनमालम्ब्यसन्तस्थेपत्युः पादापितेक्षणा
हितवर्त्मोपदिश्याऽपि प्रियप्रियचिकीर्षया ।

साध्व्या जोषं ज्ञमास्त्वर्थं कार्यं पत्युर्बन्धःसदा ॥ ३१ ॥

अन्येद्युःप्राध्यायात्ःश्येनोप्रश्यत्सदम्बती । अपरिच्छिन्नयाङ्गद्वयायथामृत्युर्गतायुषम्
अधमण्डलमत्या स प्रासादम्प्रस्तितोश्चमन् । निरीक्ष्यत्सद्वत्प्रायतौ यातो गमनमार्गतः

[षडसप्ततितमोऽध्यायः] * कलरुबस्यपास्रवत्यासम्वादर्षणम् * ५४३

गतेऽथनभसिश्येने पुनःपारावताङ्गना । प्रोवाच प्रेयसी नाथ! दृष्टो दृष्टस्त्वयाऽहितः
तस्या वाक्यं समाकर्ण्य पुनः कलरवोऽब्रवीत् ।

किंकरिष्यत्यसौ मुग्धे! मम व्योमविहारिणः ॥ ३५ ॥

दुर्गञ्च स्वर्गतुल्यं मे यत्र नास्त्यरितो भयम् । अयंनतागतीर्षेत्तियावेदाहं नभोज्जणे
प्रडीनोड्डीनसपडीनकाण्डव्याडकपाटिका । खंसनीमण्डलवतीगतयोऽष्टाबुदाहताः
यथैतास्त्रिह कौशल्यं मयिपारावतिप्रिये । गतिषुकापिकस्यापिपक्षिणो न तथाम्बरे
सुखेन तिष्ठकाचिन्ता मयिजीवतिते प्रिये । इतितद्वचनंश्रुत्वासास्थितामूकवत्सती
अपरेद्युरपिश्येनस्तत्रभारशिलातले । कियदन्तरमासाद्योपविष्टोऽतिप्रहृष्टवत् ॥ ४०

आयामं तत्र संस्थित्वा तत्कुलायं विलोक्य च ।

पुनर्विनिर्गतःश्येनः साऽपि भीताऽब्रवीत्पुनः ॥ ४१ ॥

प्रियस्थानमिदत्याज्य दृष्टदृष्टिविदूषितम् । असौक्योऽतिनिकटमुपविष्टोऽतिहृष्टवत्
सावहा स पुनः प्राह किं करिष्यत्यसौ प्रिये ।

मृगाक्षीणा स्वभावोऽयं प्रायशो भीरुवृत्तयः ॥ ४२ ॥

इतरेद्युरपिप्रातः सचश्येनो महाबलः । तयोरभिमुखं तत्र स्थितो यामद्वयावधि ॥
पुनर्विलोक्य तद्दत्तमंशीघ्रयातोयथागतम् । गतेऽथ शुकुनौतिस्मिन्सावभषेविहङ्गुमी
नाथ! स्थानान्तरं यावो मृत्युर्नौनिकटोऽत्र यत् ।

पुनर्दुष्टे प्रपद्येऽस्मिन्नावा स्यावः सुखमिच्छ ॥ ४६ ॥

प्रिययस्य सपक्षस्य गतिःसर्वत्रसिद्धिदा ।

स किं स्वदेशरागेण नाशमप्राप्नोति बुद्धिमत् ॥ ४७ ॥

सोपसर्गनिर्जंदेश त्यक्त्वा योऽन्यत्र न व्रजेत् । सपङ्कनाशमाप्नोति कूलस्थितश्चदुःखः
प्रियोदितं निशम्येतिस्मृत्त्रित्री दशार्दितः । सङ्घट्टपुनरप्याहप्रिये ममैः खगात्ततः ॥
अथापरस्मिन्कण्डनिसमयेनः प्रातरेव हि । तद्वृद्धाद्देशमस्तद्यसायं क्वचित्स्थितो बलः
अस्ताचलस्य शिखरंयार्तैर्भवनैर्नतेस्वगे । कुलायाद्दुःखमममरुद्रेणैवैवरावतीपतिम्
नाथनिर्गमनस्यायं कालःकालोऽतिवृत्तः । नाथसाधुद्विनिर्गम्येऽप्यस्त्वामपिसन्मते

त्वथिजीवतिदुष्प्रस्यं नकिञ्चिज्जगतीतले । पुनर्दाराः पुनर्मित्रं पुनर्बन्धु पुनर्शृङ्गम् ॥
 यथात्मारक्षितः पुंसा दारैरपि धनैरपि । तदा सर्वं हरिश्चन्द्रभूपेनेवेह लन्यते ॥

अयमात्मा प्रियो बन्धुरयमात्मा महद्वनम् ।

धर्मार्थकाममोक्षाणामयमात्माजकः परः ॥ ५१ ॥

याचदात्मनि वै क्षेमंताचत्क्षेमं जगन्नये । सोऽपि क्षेमः सुमतिनायशासासहवाञ्छन्ते
 यशोहीनन्तु यत्क्षेमं तत्क्षेमाग्निधनंवरम् । तद्यशः प्राप्यते पुम्भिर्नोतिमार्गप्रवर्तने
 अतो नीतिपथं श्रुत्वा नाथं स्थानादितो व्रज ।

न गमिष्यसि चेत्प्रातस्ततो मे संस्मरिष्यसि ॥ ५८ ॥

इत्युक्तोऽपिसवैपत्न्यापारावत्यासुमेधया । ननिर्यथौप्रतिस्थानाद्भविष्याप्रतिवारितः
 अथोषसि समागत्य श्येनेन बलिना तदा । तन्निर्गमाध्वासंरुद्धकिञ्चिद्भक्ष्यघतामुने
 दिनानि कतिचित्तत्र स्थित्वा श्येनो महामतिः ।

पारावतमुवाचेदंधिबस्वाम्पौरषवर्जितम् ॥ ६१ ॥

किं वा युध्वस्व दुर्बद्धे! किं वा निर्याहि मे गिरा ।

क्षुधाक्षीणो मृतः पश्चान्निरयं यास्यसि ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

द्वौभवन्तावहञ्चैकश्चलौ जयपराजयौ । स्थानार्थं युध्यतःसस्वात्स्वर्गावाद्गुर्मेवषा
 पुरुषार्थं समालम्ब्यये यत्तन्ते महाधियः । विधिरेशहिसाहायंकुर्यात्तत्सस्वघोदितः
 इत्थं स श्येनेनैकैकः पत्न्याऽप्युत्साहितः खगः ।

अयुध्यत्तेन श्येनेन स्वदुर्गद्वारमाश्रितः ॥ ६५ ॥

क्षुधितस्तृपितः सोऽयश्येनेन बलिना धृतः । धरणेनदृढेनाशुषस्ववासापिधृताखगी
 तावादायोड्याञ्चके श्येनो व्योमनि सत्वरम् ।

चिन्तयन्भक्षणस्थानमन्यपक्षिविषजितम् ॥ ६७ ॥

[अथ पत्न्याकलरवः प्रोकस्तत्र सुमेधया । वचोऽवमानितंताथत्वयाऽंघ्रीतिबुद्धितः
 अतोऽवस्थामिमाम्नासः किं कुर्यामबला यतः ।

अधुनाऽपि वचञ्चैकं करोषि यदि मे प्रिय ! ॥ ६९ ॥

सदाहितैवेवैयामिकुरुवैवाविचारितम् । ममैकवाक्यकरणात्स्त्रीजितो न भविष्यति

यावदास्वगताऽस्म्यस्य यावत्स्वस्थो न भूमिगः ।

तावदात्मविमुक्त्यै त्वमरैः पादं दृढं दश ॥ ७१ ॥

इतिपर्त्नवचः श्रुत्वा तथा सकृतवान्खगः । सपीडितो दृढं पादे श्येनभीकृतवान्बहु
तेन स्त्रीत्करणेनाथमुकासामुखसम्पुटात् । पादांगुलिश्लथत्वेनसोपिपारावतोऽपतत्

विपद्यपि च न प्राह्वैः सन्त्याज्यः कञ्चिदुद्यमः ।

क च षड्चुपुटस्तस्य क च तत्पादपीडनम् ॥ ७४ ॥

क च द्वयोस्तथा भूतादरेर्मोक्षणमद्भुतम् । दुर्बलेऽप्युद्यमवति फलं भाग्यं यतोऽर्पयेत्
तस्माद्भाग्यानुसारेण फलत्येव स दोद्यमः । प्रशंसन्त्युद्यमं चातो विपद्यपिमनीषिणः
अथ तौ कालयोगेन विपन्नौ सरयूतटे । मुक्तिपुर्यामयोऽध्यायामेकोविद्याधरोऽभवत्
मृतानां यत्र जन्तूनां काशीप्राप्तिर्भवेद्दुद्यमम् । मन्दारदामतनयो नाम्ना परिमलालयः

अनेकविद्यानिलयः कलाकौशलभाजनम् । कौमारं चय आसाद्यशिवभक्तिपरोऽभवत्
नियमञ्जातिजग्राहच्चिजितेन्द्रियमानसः । एकपत्नीव्रतं नित्यञ्चरिष्यामीति निश्चितम्
परयोपित्समासकिरायुःकीर्तिम्बलं सुखम् ।

हरेत्स्वर्गगतिञ्चापिनस्मात्तां व्रज्येत्सुधीः ॥ ८१ ॥

अपरञ्चापि नियमं सशुचिप्रानसमाददे । गतजन्मान्तरान्यासात्त्रिलोचनसमाश्रयात्
समस्तपुण्यनिलयं समस्तार्थप्रकाशकम् । समस्तकामजनकं परानन्दैककारणम् ॥

यावच्छरीरमरुजं यावन्नेन्द्रियविप्लवः ।

तावत्त्रिलोचनं काश्यामनर्च्याऽश्नामि नाण्वपि ॥ ८४ ॥

इत्थं मान्दारवामिः स नित्यं परिमलालयः ।

काश्यां त्रिचिष्टपं द्रष्टुं समागच्छेत्प्रयत्नवान् ॥ ८५ ॥

पारावत्यपि सा जाता रत्नदीपस्य मन्दिरे । नागराजस्यपाताले नाम्नारत्नावलीति च
समस्तनागकन्यानां रूपशीलकलागुणैः । एकैव रत्नभूताऽऽसीद्भक्तदीपोरगात्मजा
सस्याः सखीद्वयं चासीदेकानाम्ना प्रभावती । कलावतीतथान्था च नित्यं तदनुगेऽभे

स्वदेहादनेपायिन्यौ छायाकान्तौ यथा तथा ।
 ते द्वे सख्याच्चमूतां हि रत्नार्थेन्या घटोद्भव ॥ ८६ ॥
 सातुबाल्ये व्यतिक्रान्ते किञ्चिद्बुद्धिज्ञयौवना । शिवभक्तंस्वपितरं दृष्ट्वानियममग्रहीत्
 पितस्त्रिलोचनं काश्यामर्चयित्वा दिने दिने ।
 आभ्या सखीभ्यां सहिता मौनं त्यक्ष्यामि नान्यथा ॥ ९१ ॥
 एवं नागकुमारी सा सखीद्वयसमन्विता । त्रिलोचनं समभ्यर्च्य गृहानहरहो व्रजेत्
 दिने दिने सा प्रत्यग्रैः कुसुमैरिष्टगन्धिभिः ।
 सुविचित्राणि माल्यानि परिगुम्फ्याऽर्चयेद्विभुम् ॥ ९३ ॥
 तिस्रोपि गीतनायन्तिलसद्गान्धारसुन्दरम् । रासमण्डलमेदेनलास्यं तिस्रोपि कुर्वते
 वीणावेणुमृदङ्गाश्च लयतालविचक्षणाः ।
 वादयन्ति मुदा युक्तास्तिस्रोऽपीश्वरमन्त्रिणौ ॥ ९५ ॥
 इत्थमाराधयन्तीशं तिस्रोनागकुमारिकाः । विचित्रगन्धमालाभिः सम्मार्जनविलेपनैः
 एकदा माधवे मासितृतीयायामुपोषिताः । रात्रौ जागरणं कृत्वा नृत्यगीतकथादिभिः
 प्रातश्चतुर्थीं स्नात्वाथ तीर्थे पैलिपिले शुभे । त्रिलोचनसमर्चयाथ प्रसुप्ता रङ्गमण्डपे
 सुतासु तासु बालासु त्रिनेत्रः शशिभूषणः । शुद्धकर्पूरगौराङ्गो जटामुकुटमण्डलः
 तमालनीलसुग्रीवः स्फुरत्फणिभूषणः । वामार्धविलसच्छक्तिर्नागयज्ञोपवीतवान्
 तस्मादेव विनिष्क्रम्य लिङ्गात्पन्नगमेखलात् ।
 उवाच च ततो बाला विभुरुत्तिष्ठतेति सः ॥ १०१ ॥
 उत्थाय ताविनिर्मांज्यं लोचने श्रतिसङ्गते । अङ्गमाटनवत्यञ्जजम्भामि कृणिताननाः
 यावत्पश्यन्तिपुरतः संस्रमापन्नमानसाः । अर्तकीतागमस्तावत्ताभिर्दृष्टस्त्रिलोचनः
 वन्दुरथ ता बाला ज्ञात्वा लक्ष्मभिरेश्वरम् ।
 तुष्टुबुधश्च प्रहृष्टास्याः सन्नकण्ठयोऽतिगद्गदम् ॥ १०४ ॥
 जय शम्भो! जगैशानि ! जयं सर्वग! सर्वद ! जय त्रिपुरसंहर्तजैयान्धकनिषूदन !
 जय-अल्लभ्यरहर ! जयस्कन्दैर्षदपहृत् ! जय-शैलोक्यजनक ! जयशैलोक्यवर्धन ! ॥ ३

जय त्रैलोक्यनिलय ! जयत्रैलोक्यवन्दित ! जयभक्तजनाधीन ! जयप्रमथनायक !
 जय त्रिपथगापाथ ! प्रक्षालितजटातट ! जयचन्द्रकलाज्योतिर्विद्योतितजगत्त्रय !
 जय सर्पकणारत्नप्रभाभामितविग्रह ! जयाद्विराजतनयानपःक्रीताधदेहक ! ॥ ६ ॥
 जय श्मशाननिलय ! जयवाराणसीप्रिय ! जयानन्दघनाध्यासिप्राणिनिर्वाणदायक !
 जय विश्वपते ! शर्व ! शर्वरीपरिर्वाजत ! जननृत्यप्रियेशोप्र ! जयगीतविशारद !
 जयप्रणवस्रद्वास ! जय धाममहानिधे ! जय शूलिन्विक्रूपाक्ष ! जयप्रणतसर्वद !

विधिः सर्वविधिज्ञोऽपि न त्वां स्तोतुं विचक्षणः ।

घाचो घाचम्पतेर्नाथ ! त्वत्स्तुतौ परिकुण्ठिताः ॥ ११३ ॥

विदन्ति वेदाः सर्वज्ञ नत्वानाथयथार्थतः । मनतीह मनो नत्वामनन्तं चादिवर्जितम्
 नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः । त्रिलोचननमस्तुभ्यं त्रिविष्टपनमोस्तुते
 इत्युक्त्वा दण्डवद्भूमौ प्रणिपेतुः कुमारिका ।

अथोत्थाप्य कुमारीमताः प्रोवाच शशिभूषणः ॥ ११६ ॥

सुतो मन्दारदाम्बुश्च नाम्नापरिमलालयः । पतिर्विद्याधरवरो भवतीनां भविष्यति
 चिरं विद्याधरे लोके भोगान्भुक्त्वा समन्ततः ।

ततो निर्वटमापन्नाः काशी सिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ११८ ॥

यूयं तिस्रोऽपि मे भक्ताः स च विद्याधरो युवा ।

चत्वारोऽप्येत एवाऽत्र प्रान्ते मौक्षमवाप्स्यथ ॥ ११९ ॥

जन्मान्तरेऽपिमेसेवा भवतीभिश्च तेन च । विहितातेनवोजन्म निर्मलंभक्तिभावितम्
 एतच्चभवतीस्तोत्रं यःपठिष्यतिमेपुरः । तस्यकामं प्रदास्यामि भवतीनामिषस्फुटम्
 त्यजेत्क्षपाकृतं पात शुचिःप्रानःपठन्नरः । दिवाकृतमलं हन्ति सायं पठनतः स्फुटम्
 इत्युक्त्वतिदेवेशे ततः कन्याहृष्टमानसाः । प्रणम्य प्रोचुरीशानं प्रचद्धकरसम्पुटाः ॥

नागकन्या ऊचुः . . .

पृच्छामो ब्रूहीनो नाथ ! करुणाकरशङ्कर ! । जन्मन्तरे कथं सेवाचतुर्भिर्मघतः कृता
 मद्यप्रभञ्जवृत्तान्तं तस्याः किंस्तु कृतममनः । अस्माकमपि चाख्याहिकर्षाकुरुकृपातिधे

इतिश्रुत्वाप्रणयतोबालोदीरितमीशिता । प्रोवाचतासांतस्याऽपिभवान्तरविषेष्टितम्

ईश्वर उवाच

शृणुध्वं नागतनयास्तिस्रोऽपि हि समाहिताः ।

प्राग्भवं भवतीनां च तस्याऽपि कथयाम्यहम् ॥ १२७ ॥

एषा रत्नावलीपूर्वमासीत्पारावती खगी । सचविद्याधरधरः पतिरस्याः खगोऽभवत्
प्रासादेऽत्रप्रमैताभ्यामुषितंसुचिरं सुखम् । रजः प्रासादसंलग्नं नुन्नं पक्षानिलैः पुनः

उपरिष्ठादधस्ताच्च कृता बह्व्यः प्रदक्षिणाः ।

व्योम्ना सञ्चरमाणाम्भ्यां सञ्चरद्वया ममाऽजिरे ॥ १३० ॥

स्नातं चतुर्नदेतीर्थं पीतंतत्राम्बुचासकृत् । आभ्यांकलरवाभ्यां च कृतः कलरवो मुदे
एताभ्यांस्थिरचेतोभ्यामुदिताभ्यामतीचहि । द्रष्टानिकौतुकान्यत्रममभक्तैःकृतानिचै
अमृभ्यां बहुशो द्रष्टामममङ्गलदीपिकाः । पीतं श्रुतिपुटाभ्यां च ममनामाक्षरामृतम्
तिर्यग्योनिप्रभावेण नमृतौममसन्निधौ । मृतंपुर्यामयोध्यायांकाशीप्राप्तिकृतिध्रुवम्
अयोध्यानिघनादेशा रत्नदीपसुताभवत् । पतिःपारावतोऽस्याःसजातोविद्याधराङ्गजः
एषा प्रभावती नागीनागराजस्य पद्मिनः । इहजन्मनिकन्यासीत्पूर्वं जन्मव्रवीमि वः
त्रिशिखस्योरगेन्द्रस्यसुताचेयं कलावती । एतस्याअपिवृत्तान्तंनिशामयतवचम्यहम्
भवान्तरेतृतीयेऽतः कन्येचाराधणस्य ह । आस्तांमहर्षेःशीलाढ्येप्रेमवत्यौपरस्परम्
पित्राचारायणेनापि ताभ्यां सम्प्रेरितेनते । आमुष्यायणपुत्राय दत्ते नारायणाय हि
अप्राप्तयौवनः सोऽथ समिदाहरणाय वै । गतो विधिघशाद्दृष्टो दन्दशूकेन कानने ॥
भवानीगैतमीनाभ्यां तेषुचारायणाङ्गजे । वैधव्यदुःखमापन्नं दैन्यप्रस्ते बभूवतुः
अतएव प्रयत्नेन परिणेता विवर्जयेत् । देवतासरिदाह्वानां कन्यां पाणिग्रहे सुधीः
अथर्वैः कस्यचिद्द्वैवादाश्रयेपरमाद्भुते । रम्भाफलान्यदत्तानि मोहाज्जगृहतुस्तदा ॥

कृत्वा मासोपवासादिव्रतानि ब्राह्मणाङ्गजे ।

अवाप्य निधनं कालाच्छास्त्रामृग्यौ बभूवतुः ॥ १४४ ॥

कलशौर्यविपाकेन वानरीत्वं तयोरभूत् । शीलरक्षणधर्मेण काश्यां जनिमवापतुः

सचनारायणो विप्रः पितृशुश्रूषणव्रतः । दष्टोऽपिदन्वशूकेन काश्याम्पारावतोऽभवत्
एवम्भवान्तरे चासीदेतयोः पतिरेवकः । तिसृणाम्भवतीनाञ्चभाषीभर्ताधुनापिहि
प्रासादस्यास्य पार्श्वे तु न्यग्रोधस्तु महानभूत् ।

तस्मिंश्शास्त्रिनिशास्त्राढ्ये शास्त्रामृग्यौ बभूवतुः ॥ १४८ ॥

चतुःस्रोतस्विनीतीर्थे क्रीडयाचममज्जतुः । पपतुश्चापिपानीयं तस्मिंस्तीर्थे तृषातुरे
जातिस्वभावचापल्यात्कीडन्त्यौ च प्रदक्षिणम् । चक्रतुर्बहुकृत्वश्च लिङ्गं दद्रुशतुर्बहु
विघ्नरन्त्याचित स्वैरं तत्रन्यग्रोधसन्निधौ । केनचिद्योगिवेषेण पाशेनचनियन्त्रिते
भिक्षार्थं शिक्षिते तेनतदुत्प्लुत्यादिनर्तनम् । अथ ते कापि मर्कट्यौकालधर्मवशंगते
काशीघासजपुण्येन त्रैलोक्याननुसेवया । प्रादक्षिण्यादिरूपिण्याजाते नागसुते इति
अधुना तम्पतिम्प्राप्य विद्याधरकुमारकम् ।

निर्विश्य स्वर्गभोगांश्च काश्यां निवृत्तिमेप्यथ ॥ १५४ ॥

यदल्पमपिवैकाश्यां कृतं कर्मशुभावहम् । तस्यमोक्षः परीपाकोनिश्चितं मदनुग्रहात्
त्रिलोक्या अपि सर्वस्याः श्रेष्ठा वाराणसीपुरी ।

ततोऽपि लिङ्गमोङ्कारं ततोऽप्यत्र त्रिलोचनम् ॥ १५६ ॥

तिष्ठमानोत्रलिङ्गेऽहंभकमुक्तिदिशाम्यहम् । ततःसर्वप्रयत्नेनकाश्यामपूज्यस्त्रिलोचनः
इत्युत्तवादेवद्वेषः प्रासादान्तरमाचिशत् । अवाच्यरूपमासाद्य स्थूलं त्रिभुवनादपि
ताश्चस्वस्वम्पदम्प्राप्यतद्बृत्तान्तमशेषतः । स्वमातुपुरतश्चोक्त्वाकृतकृत्याद्भाववन्
एकदा माधवे मासि महायात्रा समागता ।

विद्याधरास्तथा नागा मिलिताः सपरिच्छदाः ॥ १६० ॥

विरजस्के महाक्षेत्रे त्रिलोचनसमीपतः । देवस्य वरदानाञ्चपृष्ठाऽन्योन्यं कुलावलीम्
विद्याधराय ता नागैः कन्यास्तिस्रोऽपि कल्पिताः ॥

मन्दारदामा सन्तुष्टः प्राप्य तच्च स्तुषात्रयम् ॥ १६२ ॥

रत्नदीपश्च नागेन्द्रः पद्मी चभुजगोश्वरः । त्रिशिखोऽपिफणीन्द्रश्च हृष्टापतेत्रयोऽपिच
जामातरंसमासाद्य शुभम्परिमलालयम् । अन्योन्यंस्वजनास्तेनुमुदाधिकसितेक्षणाः

विवाहोत्सवमाकल्प्य स्वं स्वम्भुवनमाधिशन् ।

त्रिलोचनस्य लिङ्गस्य वर्णयन्तोऽतिगौरवम् ॥ १६५ ॥

स च विद्याधरः श्रीमान्नागीभिर्विपुलं सुखम् ।

भुक्त्वा क्षराणसीम्प्राप्य संसेव्याऽथ त्रिलोचनम् ॥ १६६ ॥

गायन्गीतंसुमधुरं नागीभिः सहितः कृती । आत्मानञ्चातिसंस्मृत्यमध्ये लिङ्गं लयंगतः

स्कन्द उवाच

त्रिलोचनस्य महिमाकलौदेवेन गोपितः । अतोऽल्पसत्त्वामनुजा न तल्लिङ्गमुपासते

त्रिलोचनकथामेता श्रुत्वा पापान्वितोऽप्यहो ॥

विपाप्मा जायते मर्त्यो लभते च परा गतिम् ॥ १६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यासहिताया चतुर्थे काशीखण्डे

उत्तरार्धे त्रिलोचनप्रभाववर्णनं नान पटसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

केदारमहिमाख्यानवर्णनम्

पार्वत्युवाच

नमस्ते देवदेवेश! प्रणमत्करुणानिधे !। वद केदारमाहात्म्यं भक्तानामनुकम्पया ॥ १

तस्मिंलिङ्गे महाप्रीतिस्तव काश्यामनुत्तमा ।

तद्वकाश्च जना नित्यं देवदेव ! महाधियः ॥ २ ॥

देवदेव उवाच

शृण्वपार्षेऽभिधास्यामि केदारेश्वरसकथाम् ।

समाकर्ष्याऽपि याम्पापोऽप्यपापो जायते क्षणात् ॥ ३ ॥

केदारं यानुक्तमस्य 'पु' लोनिश्चितत्वेन सः । माज्जमसञ्चितम्पाप्मन्तद्विनादेव नश्यति-

गृहाद्विनिर्गतं पुंसिकेदारमभिसिञ्चितम् । जन्मेन्द्रयार्जितम्पार्ष्णं शरीरादपिनिर्वजेत्
मध्येमार्गम्प्रपन्नस्यत्रिजन्मजर्निर्तन्त्वर्धम् । देहर्गेहाद्विनि सृत्यनिराशंयातिनिःश्वसत्
सायंकेदारकेदारकेदारंति त्रिरुच्चरन् । गृहेऽपि निवसन्नूनं यात्राफलमवाप्नुयात् ॥
दृष्ट्वा केदारशिखरं पीत्वा तत्रत्यमम्बुच । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नाऽत्रसंशयः
हरपापहृदे स्नात्वा केदारेशम्प्रपूज्यच । कोटिजन्मार्जितैनोभिर्मुच्यते नात्र संशयः
सकृत्प्रणम्य केदारं हरपापकृतीरकः । स्थाप्य लिङ्गं हृदम्भोजे प्रान्तैमोक्षंगमिष्यति
हरपापहृदे श्राद्धं श्रद्धया यः करिष्यति । उद्गृह्य सप्तपुरुषान्स मे लोकंगमिष्यति
पुरा रथन्तरे कल्पे यद्भूदत्रतच्छृणु । अपर्णे दत्तकर्णात्वं वर्णयामि तवाग्रतः
एको ब्राह्मणदायाद उज्जयिन्या इहागत । कृतोपनयनः पित्रा ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ॥

स्थलीम्पाशुपती काशी स विलोक्य समन्ततः ।

द्विजे. पाशुपतेः कीर्णं जटामुकुटभूपिते ॥ १४ ॥

कृतलिङ्गसमचश्च भूतिभूपितवर्धमि । भिक्षाहृतान्नसन्तुष्टे. पुष्टेर्गङ्गासृतोदकैः
बभूवाऽऽनन्दितमनाव्रतजग्राहचोत्तमम् । हिरण्ययगर्भादाचार्यान्महृत्पाशुपताभिधम्
सर्वशिष्योवशिष्टोऽभूत्सर्वपाशुपतोत्तमः । स्नात्वाहृदेहरपापेनित्यम्प्रातःसमुत्थितः
विभूत्याहरहः स्नातित्रिकालंलिङ्गमर्चयन् । नान्तरसविजानातिशिवलिङ्गेगुरौतथा
स द्वादशाब्ददेशीयो वशिष्टो गुरुणा सह । ययोकेदारयात्रार्थंगिरिगौरीगुरोर्गुरुम्

यत्र गत्वा न शोचन्ति किञ्चित्संसारिणः क्वचित् ।

प्राश्योदकं लिङ्गरूप लिङ्गरूपत्वमागताः ॥ २० ॥

असिधारंगिरिम्प्राप्य वशिष्टस्य तपस्त्रिनः । गुहहिरण्यगर्भाक्यः पञ्चत्वमगमत्तदा
पश्यतातापसानाञ्च विमाने सार्वकामिके । आरोप्यतम्पारिषदाः कैलासमन्यन्मुदा
यस्तु केदारमुद्दिश्यगेहादर्धपथेऽप्यहो । अकातरस्त्यजेत्प्राणान्कैलासेसर्वैश्च वसेत्
तदाश्चर्यं समालोक्य स वशिष्टस्तपोधनः । केदारमेव लिङ्गेषु बह्वमंस्तसुनिश्चितम्
अथ कृत्वा संकेदारी-यात्रांवारानसीमगात् । अत्रहीनिवमञ्जपिप्यंथार्थञ्चाकरोत्पुनः

प्रतिषेधं सुदो चैत्र्या योवर्जिषमंहं ध्रुवम् ।

खिलोकयिष्ये केदारं वसन्वाराणसीम्पुरीम् ॥ २६ ॥

तेन यात्राः कृताः सम्यक्पष्टिरेकाधिका मुदा ।

आनन्दकानने नित्यं वसता ब्रह्मचारिणा ॥ २७ ॥

पुनर्यात्रां सर्वै चक्रमधौ निकटवर्तिनि । परमोत्साहसन्तुष्टःपलिताकलितोऽप्यलम्
तपोधनैस्तन्निधनं शङ्कमानैर्निवारितः । कारुण्यपूर्णहृदयैरन्यैरपि च सङ्गिभिः ॥
ततोऽपि नतंदुत्साहभङ्गोऽभूद्ब्रह्मचेतसः । मध्येमागं मृतस्यापि गुरोरिष गतिर्मम
इति निश्चितचेतस्के वशिष्टे तापसे शुचौ । अशूद्राक्षपरीपुष्टे तुष्टोऽहंचण्डिकेऽभवम्

स्वप्ने मया स सम्प्रोक्तो वशिष्टस्तापसोत्तमः ।

दृढव्रत! प्रसन्नोऽस्मि केदारं विद्धि मामिह ॥ ३२ ॥

अभीष्टञ्च वरं मत्तः प्रार्थयस्वाऽचिचारितम् ।

इत्युक्तवत्यपि मयि स्वप्नोमिथ्येति सोऽब्रवीत् ॥ ३३ ॥

ततोऽपि स मया प्रोक्तः स्वप्नो मिथ्याऽशुचिष्मताम् ।

भवादृशाममिथ्यैव स्वाख्या सृष्टशवर्तिनाम् ॥ ३४ ॥

घरम्बूहि प्रसन्नोऽस्मिस्वप्न शंकान्त्यजद्विज । तघसत्त्वधतःकिञ्चिन्मयादेयंनकिञ्चिन
इत्युक्तं मे समाकर्ण्यं वरयामास मामिति । शिष्योहिरण्यगर्भस्यतपस्विजनसत्तमः
यदि प्रसन्नो देवेश तदा मे सानुगा इमे । सर्वे शूलिन्ननुग्राह्या एष एव वरोमम ॥
देवि! तस्येदमाकर्ण्यं परोपकृतिशालिनः । वध्नं नितरां प्रीतस्तथेति तमुवाचह ॥
पुनः परोपकरणात्तत्तपोद्विगुणीकृतम् । तेन पुण्येन स मया पुनः प्रोक्तो वरं वृणु
स वशिष्टो महाप्राज्ञो दृढपाशुपतव्रतः । देवि! मे प्रार्थयामासहिमशैलादिहस्थितिम्
ततस्तत्तपसा कृष्टः कलामात्रेण तत्रहि । हिमशैले ततश्चात्र सर्वभावेन संस्थितः

ततः प्रभाते संजाते सर्वेषां पश्यतामहम् ।

हिमाद्रेः प्रस्थितः प्राप्तः स्तूयमानः सुरर्षिभिः ॥ ४२ ॥

वशिष्टं पुरतः कृत्वा सर्वसार्थसमायुतम् । हरपापहृदे तीर्थे स्थितोऽहं तदनुब्रह्मात्
मत्परिग्रहतः सर्वे हरपापेकृतोदकाः । आराध्यमामनेनैव वपुषा सिद्धिमागताः ॥

तदाप्रभृति लिङ्गेऽस्मिन् स्थितः साधकसिद्धये ।

अविमुक्ते परेक्षेत्रे कलिकाले विशेषतः ॥ ४५ ॥

तुषाराद्रिं समाख्या केदारं वीक्ष्ययत्फलम् । तत्फलं सप्तगुणितं काश्यां केदारदक्षिणे
गौरीकुण्डं यथा तत्र हंसतीर्थं च निर्मलम् ।

यथा मधुसूवा गङ्गा काश्यां तदखिलं तथा ॥ ४७ ॥

इदं तीर्थं हरपापं सप्तजन्माघनाशनम् । गङ्गायां मिलितं पश्चाज्जन्मकोटिकृताघहम्
अत्र पूर्वं तु काकोलीं युध्यन्तीं क्षात्रिपेतुः ।

पश्यतां तत्र संस्थानां हंसौ भूत्वा चिनिर्गतौ ॥ ४९ ॥

गौरित्वया कृतं पूर्वं स्नानमात्रं महाहृदे । गौरीतीर्थं ततःख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्
अत्रामृतस्रवागङ्गा महामोहान्धकारहृत् । अनेकजन्मजनितजाड्यध्वंसविधायिनी
सरसामानसेनाऽत्र पूर्वं तत्रं महातपः । अतस्तु मानसं तीर्थं जने ख्यातिमिदंगतम्
अत्र पूर्वं जनः स्नानमात्रेणैव प्रमुच्यते । पश्चात्प्रसादितश्चाहं त्रिदशैर्मुक्तिदुर्दशैः ॥

सर्वे मुक्तिं गमिष्यन्ति यदि देवेह मानवाः ।

केदारकुण्डे सुस्नातास्तदोच्छित्तिर्भविष्यति ॥ ५४ ॥

सर्वेषामेव वर्णानामाश्रमाणां च धर्मिणाम् ।

तस्मात्तनुषिसर्गेऽत्र मोक्षं दास्यति नान्यथा ॥ ५५ ॥

ततस्तदुपरोधेन तथेति च मयोदितम् । तदारभ्य महादेशि! स्नानात्केदारकुण्डतः
समर्चनाच्च भक्त्या वै मम नामजपादपि ।

नैःश्रेयसीं श्रियं दद्यामन्यत्रापि तनुत्यजाम् ॥ ५७ ॥

केदारतीर्थे यः स्नात्वा पिण्डान्दास्यति चात्वरः ।

एकोत्तरशतं वंश्यास्तस्य तीर्णाभवाद्बुधिम् ॥ ५८ ॥

भौमवारे यदा दर्शस्तदायः श्राद्धदो नरः । केदारकुण्डमासाद्य गयाश्राद्धेन किं ततः
केदारं गन्तुकामस्य बुद्धिर्देयानरैरियम् ।

काश्यां स्पृशंस्त्वं केदारं कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ६० ॥

सैत्रकृष्णचतुर्दश्यामुपवासं विधाय च । त्रिगणदूषान्पिबन्प्रातर्हं लिङ्गमधितिष्ठति
केदारोदकपानेन यथा तन्न फल भवेत् । तथाऽत्र जायतेपुंसास्त्रीणाञ्चापिन संशयः
केदारभक्तं सम्पूज्य वासोन्नद्रविणादिभिः ।

आजन्मजनितं प्राप त्यक्त्वा ग्राति ममालयम् ॥ ६३ ॥

आषण्मासं त्रिकालयः केदारेशं नमस्यति । तन्नमस्यन्ति सतत लोकपालायमादयः
कलौ केदारमाहात्म्यं योऽपि कोऽपिनवेत्स्यति ।

यो वेत्स्यति सपुण्यात्मा सर्वं वेत्स्यति सध्रुवम् ॥ ६४ ॥

केदारेशं सकृद् दृष्ट्वा देविमेऽनुचरो भवेत् । तस्मात्काश्या प्रयत्नेनकेदारेशविलोकयेत्
चित्राङ्गदेश्वरं लिङ्गं केदारानुचरेशुभम् । तस्यार्चनाश्रया नित्यं स्वर्गभोगानुपाश्रुते
केदाराङ्गक्षिणेभागे नीलकण्ठविलोकनम् ।

ससारोगदष्टस्य तस्य नास्ति विषाद्वयम् ॥ ६८ ॥

तद्वायव्येऽम्बरीषेशो नरस्तद्वलोकनात् । गर्भवासं न चाप्नोति ससारे दुःखसङ्कुले
इन्द्रद्युम्नेश्वरं लिङ्गं तत्समीपे समन्वयं च । तेजोमयेन यानेन स स्वर्गभुवि मोदते
तदक्षिणे नरो दृष्ट्वा लिङ्गं कालञ्जरीश्वरम् । जरा काल विनिर्जित्यममलोकेवसेच्चिरम्
दृष्ट्वा क्षेमेश्वरं लिङ्गमुदक्चित्राङ्गदेश्वरात् । सर्वत्र क्षेममाप्नोति लोकेऽत्र च परत्र च

स्कन्द उवाच

देवदेवेन विन्ध्यारेकेदारमहिमामहान् । इत्याख्यायिपुराऽम्बायैमयातेऽपिनिरूपितः

केदारेश्वरलिङ्गस्य श्रुत्वोत्पत्तिं कृती नर ।

शिवलोकमवाप्नोति निष्पापो जायते क्षणात् ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसहस्रत्यासहिताया चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धकेदारमहिमख्यानं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

धर्मेशमहिमाख्यानवर्णनम्

पार्वत्युवाच

आनन्दकानने शम्भो! यल्लिङ्गं पुण्यवर्धनम् । यन्नामस्मरणादेव महापातकसंक्षयः ॥
यत्सेव्यं नाथकेर्नित्यं यत्रप्रीतिरनुत्तमा । यत्रदत्तं हुतं जप्तं ध्यातं भवति साक्षयम्

यस्य सस्मरणादेव यल्लिङ्गस्य विलोकनात् ।

यल्लिङ्गप्रणतेश्चाऽपि यस्य संस्पर्शनादपि ॥ ३ ॥

पञ्चामृतादिस्नपनपूर्वाद्यस्यार्चनादपि । तल्लिङ्गं कथयेशान भवेच्छ्रेयः परम्परा ॥

स्कन्द उवाच

इति देवीसमुदितं समाकर्ण्यघटोद्भव ! सर्वज्ञेन यदाख्यातं तदाख्यास्यामितेशृणु

देवदेव उवाच

उमेभवत्या यत्पृष्टंभवबन्धविमोक्षकृत् । ततोऽहं कथयिष्यामि लिङ्गस्थिरमनाभव
आनन्दकानने चात्र रहस्यं परमं मम । नमया कस्यचित्ख्यातं न प्रष्टुं वेत्ति कञ्चन
सन्तिलिङ्गान्यनेकानि ममानन्दवने प्रिये ! । परंत्वया यथापृष्टं यथावत्तदुब्रवीमि ते
यत्रमुक्तिस्वरूपात्व स्वयतिष्ठसिचिन्मये । यत्र तेनन्दनश्चास्तिक्षेत्रविघ्नविघातकृत्
ममापि येन त्रिपुरसमरे जयकाङ्क्षिणः । जयाशापूरितास्तुत्या बहुमोदकदानतः
यत्राऽस्ति तीर्थमबह्वृत्प्रीतिविषर्धनम् ।

यत्स्नानाद् वृत्रहा वृत्रवधपापाद्विमुक्तवान् ॥ ११ ॥

धर्माधिकरणं यत्र धर्मराजोऽप्यवसवान् । सुदुष्करं तपस्तप्त्वा परमेण समाधिना
पक्षिणोऽपिहियत्रापुद्गानं संसारमोचनम् । रम्यो हिरण्मयोयत्र बभूव बहुपाद्भुमः
यल्लिङ्गदर्शनादेव दुर्दमोनामपार्थिवः । उद्वेजकोऽपि लोकाना क्षणाद्धर्ममतिस्त्वभूत्
तस्य लिङ्गस्य माहात्म्यमाचिर्भावं च सुन्दरि !

निशामयाऽमिधास्यामि महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥

धर्मपीठं तदुद्विष्टमत्रानन्दवने मम । तत्पीठदर्शनादेव नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ १६ ॥
पुरा विवस्वतः पुत्रोयमः परमसंयमी । तपस्तताप चिपुलं विशालाक्षि ! तवाग्रतः
शिशिरैर्जलमध्यस्थोवर्षास्वभ्राघकाशकः । तपतीपञ्चवह्निस्थःकदाचिदितितप्तवान्
पादाग्राङ्गुष्ठभूस्पर्शां बहुकालं स तस्थिवान् ।

एकपादस्थितः सोऽपि कदाचिद् बहुनेहसम् ॥ १६ ॥

समीराभ्यघहर्तासीद्रुबहुद्विष्टं सदिष्टवान् । पपौ स तुविपासुः सन्कुशाग्रजलचिप्रुषः
दिव्यां चतुर्युगीमित्यं सनिनायतपश्चरन् । चतुर्युगं द्विद्भुमां परमेण समाधिना ॥
ततोऽहं तस्य तपसा सन्तुष्टः स्थितचेतसः । ययौतस्मैघरान्दानुं शमनायमहात्मने
वटःकाञ्चनशालाख्यो यस्तपस्तापसन्ततिम् ।

दूरीचकार सुच्छायो बहुद्विजसमाश्रयः ॥ २३ ॥

मन्दमन्दमरुल्लोलपल्लवैः करपल्लवैः । योऽध्वगानध्वसन्तप्तानाह्वयेदिवतापहृत् ॥
स्वानुरागैः सुरभिभिःस्वादुभिश्च पबेलिमैः । प्रीणयेदर्थिसार्थयो वृत्तैर्निजफलंरलम्
तदधस्तात्परंवीक्ष्यतमहंतपनाङ्गजम् । स्थाणुनिश्चलवर्ष्माणं नासाग्रन्यस्तलोचनम्
तपस्तेजोमिहद्यद्विःपरितः परिधीकृतम् । भानुमन्तमिवाकाशे सुनीलेस्वेनतेजसा
स्वाख्याङ्कितं महालिङ्गं प्रतिष्ठाप्याऽतिभक्तितः ।

स्वच्छसूर्योपलमयं तेजःपुञ्जैरिवाञ्चितम् ॥ २८ ॥

साक्षीकृत्येव तल्लिङ्गं तप्यमानंमहत्तपः । प्रत्यघोचं धर्मराजं घर्त्रूहीति भास्करे
अलंतप्त्वा महाभाग! प्रसन्नोऽस्मिंशुभव्रतः । निशम्यःशमनश्चेति दृष्ट्वा मां प्रणनाम ह
चकारस्तवनं चापि परिहृष्टेन्द्रियेश्वरः । निर्व्याजंससमाधिं च विसृज्य ब्रध्ननन्दनः

धर्म उवाच

नमो नमःकारणकारणानां नमो नमः कारणवर्जिताय ।

नमो नमः कार्यमयाय तुभ्यं नमो नमः कार्यविभिन्नरूप ॥ ३२ ॥

अरुपरूपाय समस्तरूपिणे पराणुरूपाय परापराय ।

अपारपाराय पराब्धिपारप्रदाय तुभ्यं शशिमौलये नमः ॥ ३३ ॥
 अनीश्वरस्त्वं जगदीश्वरस्त्वं गुणात्मकस्त्वं गुणवर्जितस्त्वम् ।
 कालात्परस्त्वं प्रकृतैः परस्त्वं कालाय कालात्प्रकृते नमस्ते ॥ ३४ ॥
 त्वमेव निर्वाणपदप्रदोऽसि त्वमेव निर्वाणमनन्तशक्ते !
 त्वमात्मरूपः परमात्मरूपस्त्वमन्तरात्माऽसि चराचरस्य ॥ ३५ ॥
 त्वत्तो जगत्त्वं जगदेवसाक्षाज्जगत्स्वदीयं जगदेकबन्धो !
 हर्ताऽविता त्वं प्रथमो विधाता विधातृविष्ण्वीश नमोनमः ॥ ३६ ॥
 सृष्टस्त्वमेव श्रुतिवर्त्मगेषु त्वमेव भीमोऽश्रुतिवर्त्मगेषु ।
 त्वं शङ्करःसोमसुभक्तिभाजामुग्रोऽसि रुद्रत्वमभक्तिभाजाम् ॥ ३७ ॥
 त्वमेव शूली द्विषतां त्वमेव चिनम्रचेतो घघसा शिवोऽसि ।
 श्रीकण्ठ एकः स्वपदश्रितानां दुरात्मना हालहलोप्रकण्ठः ॥ ३८ ॥
 नमोऽस्तु ते शङ्कर! शान्त! शम्भो! नमोऽस्तु ते चन्द्रकलावर्तस !
 नमोऽस्तु तुभ्यं फणिभूषणाय पिनाकपाणेऽन्धकवैरिणे नमः ॥ ३९ ॥
 स एव धन्यस्तव भक्तिभाग्यस्तवाऽर्चको यः सुकृती स एव ।
 तव स्तुतिं यः कुरुते सदैव स स्तूयते दुश्शयवनादिदेवैः ॥ ४० ॥
 कस्त्वामिह स्तोतुमनन्तशक्ते! शक्नोति मादृग्लघुषुद्विवैभवः ।
 प्राचां न थावामिहगोचरो यः स्तुतिस्त्वयीयं नतिरेव यावत् ॥ ४१ ॥

स्कन्द उवाच

उदीर्यसूर्यस्य सुतोऽतिभक्त्या नमः शिवायेति समुच्चरन्सः ।
 इलामिलन्मौलिरतीव हृष्टः सहस्रकृत्वः प्रणनाम शम्भुम् ॥ ४२ ॥
 ततः शिवस्तं तपसाऽतिखिलं निवार्य ताभ्यः प्रणतिभ्य ईश्वरः ।
 धरान्दी सप्त तुरङ्गसुनवे त्वं धर्मराजो भव नामतोऽपि ॥ ४३ ॥
 त्वमेव धर्माधिकृतौ समस्तशरीरिणां स्थावरजङ्गमानाम् ।
 मया^१ नियुक्तोऽद्येदिनादिकृत्यः प्रशाधिं सर्वान्मम शासनेन ॥ ४४ ॥

त्वं दक्षिणायाश्च दिशोऽधिनाथस्त्वं कर्मसाक्षी भवसर्वजन्तोः ।
 त्वद्दर्शिताध्वान इतो ब्रजन्तु स्वकर्मयोग्यां गतिमुत्तमाधमाः ॥ ४५ ॥
 त्वया यदेतन्ममभक्तिभाजा लिङ्गं समाराधितमत्र धर्मं !
 तद्दर्शनात्स्पर्शनतोऽर्चनाश्च सिद्धिर्भविष्यत्यचिरेण पुंसाम् ॥ ४६ ॥
 धर्मेश्वरं यः सकृदेवमर्त्यो विलोकयिष्यत्यथवातबुद्धिः ।
 स्नात्वा पुरस्तेऽत्र च धर्मतीर्थे न तस्य दूरे पुरुषार्थसिद्धिः ॥ ४७ ॥
 कृत्वाऽप्यघातामिहयः सहस्रं धर्मेश्वरं पश्यति दैवयोगात् ।
 सहेत नो जातु स नारकीं व्यथां कथां तदीयां दिवि कुर्वतेऽमराः ॥ ४८ ॥
 यो धर्मपाठं प्रतिलभ्य काश्यां स्वश्रेयसेनो यततेऽत्र मर्त्यः ।
 कथं स धर्मत्वमिवातितेजाः करिष्यति स्वं हृत्कृत्यमेव ॥ ४९ ॥
 त्वया यथाता इह धर्मराज मनोरथास्ते गुरुभिस्तपोभिः ।
 तथैवधर्मेश्वरभक्तिभाजां कामाः फलिष्यन्ति न संशयोऽत्र ॥ ५० ॥
 कृत्वाऽप्यघान्येषमहान्त्यपीह धर्मेश्वराद्यां सकृदेव कुर्वन् ।
 कुतोबिमेति प्रियबन्धुरेव तव त्वदीयार्चितलिङ्गभक्तः ॥ ५१ ॥
 पत्रेण पुष्पेण जलेन दूर्वया यो धर्म! धर्मेश्वरमर्चयिष्यति ।
 समर्चयिष्यन्त्यमृतान्धसस्तंमन्दारमालाभिरतिप्रहृष्टाः ॥ ५२ ॥
 त्वत्तो बिमेष्यन्ति कृतैनसो ये भयं न तेषां भविता कदाचित् ।
 धर्मेश्वरार्चार्चनानां करिष्यतां हरिष्यतां बन्धुतया मनस्ते ॥ ५३ ॥
 यदत्र दास्यन्ति हि धर्मपीठे नरा द्युनद्यां कृतमज्जनाश्च ।
 तदक्षयं भावि युगान्तरेऽपि कृतप्रणामास्तव धर्मलिङ्गे ॥ ५४ ॥
 ये कार्तिके मासि सिताष्टमीतिथौ यात्रां करिष्यन्ति नरा उपोषिताः ।
 रात्रौ च वै जागरणं महोत्सवैर्धर्मेश्वरे ते न पुनर्भवा भुवि ॥ ५५ ॥
 स्तुतिं च ये वै त्वदुदीरितामिमां नराः पठिष्यन्ति तथाऽप्रतः क्वचित् ।
 निरेनसस्ते मम लोकगामिनः प्राप्स्यन्ति ते वै भवतः सखित्वम् ॥ ५६ ॥

पुनर्वरं ब्रूहि यथेप्सितं ददे तेजोनिधेर्नन्दन ! धर्मराज ! ।
 अदेयमत्राऽस्ति न किञ्चिदेष ते विधेहि वागुद्यममात्रमेव ॥ ५७ ॥
 प्रसन्नमूर्ति स विलोक्य शङ्करं कारुण्यपूर्णं स्वमनोरथामिदम् ।
 आनन्दसन्दोहसरोनिमग्नो वक्तुं क्षणंनैव शशाक किञ्चित् ॥ ५८ ॥
 इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
 उत्तरार्धे धर्मशमहिमाख्यानंनामाऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

धर्मशाख्यानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

आनन्दवाष्पसलिलरुद्धकण्ठं विलोक्य तम् ।

मृडः पस्पर्शं पार्श्वभ्यां सौधाभ्यान्तु सुधाम्बुधिः ॥ १ ॥

अथ तत्स्पर्शसौख्येन धर्मराजो महातपाः । पुनरङ्कुरयामास तपोभिज्ज्वलितांतनुम्
 ततः प्रोवाच सब्राध्निरदेवदेवमुमापतिम् । प्रसन्नवदनं शान्तं शान्तपारिषदावृतम् ॥
 प्रसन्नोऽसि यदीशानसर्वज्ञकरुणानिधे ! । किमन्येन घरेणाऽत्रयस्त्वंसाक्षात्कृतो मया
 यन्नवेदाविदुः सम्यङ्मन्त्रोवेदपूरुषौ । ततोऽपिबरयोग्योऽस्मितन्नाथप्रार्थयाम्यहम्
 श्रीकण्ठाण्डजडिम्भानाममीषां मधुरब्रुवाम् ।

मत्तपश्चिरसाक्षीणां मत्पुरः प्राप्तजन्मनाम् ॥ ६ ॥

पितृभ्यांपरिहीनानामितिहासकथाविदाम् । त्यकाहारविहारानांकीराणांवरदोभव
 एतत्प्रसूतिसमये आमयेन प्रपीडिता । शुकी पञ्चत्वमापन्ना शुकः श्येनेन भक्षितः ॥
 रक्षितानामनाधानां सदाभन्मुखदर्शिनाम् । अनाथनाथभवता ह्यायुः शेषस्वरूपिणा
 इति धर्मवचः श्रुत्वा परोषकृतिनिर्मलम् । तानाहूय मुने शम्भुर्विनयतनतानान्

उवाच धर्मेतिर्प्रातः शुक्रशाबानिदं वचः । अयि पत्ररधाप्रतसाधवो धर्मसङ्गताः
कोचरो भवतां देयो धर्मेशपरिष्कारिणाम् । साधुसंसर्गसंक्षीणजन्मान्तरमहैनसाम्
इति श्रुत्वा महेशस्य वचनन्तेपतत्त्रिणः । प्रोचुः प्रणम्य देवेशं नमस्ते भवनाशनम् ॥

पक्षिण ऊचुः

अनाथनाथ सर्वज्ञ को चरो नः समीहितः ।

इतोऽपि त्र्यक्ष! यत्साक्षात्स्त्रियं क्वेऽपि समीक्षिताः ॥ १४ ॥

लाभाः सन्तुद्यमवतागिरिशेहपरःशताः । परम्परोऽयंलाभोऽत्र यस्त्वंदृग्गोचरीभवेः
यदेतद् दृश्यते नाथ! तत्सर्वं क्षणभङ्गुरम् । अभङ्गुरो भवानेकस्त्वत्सपर्याप्यभङ्गुराम् ॥
विचित्रजन्मकोटीनां स्मृतिर्नोऽत्रपरिस्फुरेत् ।

एतत्तपस्विरचितलिङ्गपूजाघिलोकनात् ॥ १७ ॥

देवयोनिरपिप्राप्ताचिरमस्माभिरिशीतः । दिव्याङ्गनाःसहस्राणितत्रभुक्ताःस्वलीलया
आसुरीदानवी नागिनैश्चृतीषापिकैन्नरी । विद्याधरीचगान्धर्वीयोनिरस्माभिरर्जिता
नरत्वे भूपतित्वञ्चपरिप्राप्तमनेकशः । जले जलचरत्वञ्च स्थले च स्थलचारिताम् ॥
घने वनौकसो जाताग्रामेषु ग्रामवासिनः । दातारो याचितारश्चरक्षितारश्च घातुकाः
सुखिनोऽपि वयञ्जाता दुःखिनोवयमास्मच्च । जेतारश्चवयञ्जाताः पराजेतार एवच्च ॥
अधीतिनोपि मूर्खाश्च स्वामिनः सेवकात्रपि । चतुषु भूतग्रामेषु उक्तमाधममध्यमाः
अभूमभूरिशःशम्भोनकापिस्वैर्यमागताः । इतोयोनेस्ततोयोनीततोयोनेस्ततोऽन्यतः
पिनाकिन्कापिनप्रापि सुखलेशो मनागपि । इदानीपुण्यसम्भारैर्धर्मेश्वरघिलोकनात्
तापनेःसुतपोवह्निज्वालाप्रज्वलितैःनसः । सम्वीक्ष्यत्र्यक्षसाक्षात्त्वांकृतकृत्यावभूविम
तथापि चेद्वरो देयस्तिर्यक्ष्वस्मासु धूर्जटे ! ।

रूपणेष्वपि शोच्येषु ज्ञानं सर्वज्ञ! देहि तत् ॥ २७ ॥

येनज्ञानेनमुक्ताःस्मोऽमुष्मात्संसारबन्धनात् । यन्त्रिताःप्राकृतैःपाशैरदुर्भेद्यैश्च मादृशैः
पेन्द्रं पदं न वाञ्छामो न चान्द्रश्चान्यदेवहि ।

वाञ्छामः केवलं मृत्युं काश्यां शम्भोऽपुनर्ममम् ॥ २९ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः] *काश्यांमोक्षलक्ष्मीविलासप्रासादमहस्ववर्णनम् * ५६५ *

त्वत्साभिधयाद्विजानीमः सर्वज्ञां सकलं वयम् ।

यथा खन्दनसंसर्गात्सर्वे सुरभयो द्रुमाः ॥ ३० ॥

एतदेव परं ज्ञानं संसरोच्छित्तिकारणम् । वपुर्विसर्जनं काले यस्तवानन्दकानने
निर्मध्यविष्वग्वाग्जालंसारभूतमिदं परम् । ब्रह्मणोदीरितपूर्वकाश्यामुक्तिस्तनुत्यजाम्
यद्वाक्यं बहुभिर्ग्रन्थैस्तदष्टाभिरिहाश्रयैः । हरिणोक्तंरविपुरःकैवल्यंकाशिसंस्थितौ
याज्ञवल्क्यो मुनिवरः प्रोक्तवान्मुनिसंसदि । रवेरधीत्यनिगमान्काश्यामन्तैपरम्पदम्
स्वामिनापि जगद्धात्री पुरतो मन्दराचले । इदमेव परा प्रोक्तं काशीनिर्वाणजन्मभूः
कृष्णद्वैपायनोऽप्येवं शम्भो! वक्ष्यति नान्यथा ।

यत्र विश्वेश्वरः साक्षान्मुक्तिस्तत्र पदे पदे ॥ ३६ ॥

वदन्त्यन्येऽपि मुनयस्तीर्थसंन्यासकारिणः ।

धिरन्तनालोमशाद्याः काशिका मुक्तिकाशिका ॥ ३७ ॥

द्यमप्येवं जानीमो यत्र स्वर्गतरङ्गिणी । आनन्दकानने शम्भोर्मोक्षस्तत्रैवनिश्चितम्
भूतं भावि भविष्यंयत्स्वर्गे मर्त्ये रत्नातले । तत्सर्वमेवजानामोधर्मेशानुग्रहात्परात्
अतोहिरण्यगर्भोक्तं हरिप्रोक्तं मुनीरितम् । भवतोक्तं च निखिलंशम्भोजानामहेवयम्
करामलकवत्सर्वमेतद्ब्रह्माण्डगोलकम् । अस्मद्भागोचरेऽस्त्यैव धर्मपीठनिषेवणात्
धर्मराजस्य तपसा तिर्यञ्चोऽपि वयं विमो !

जाताः स्म निर्विकल्पं हि सर्वज्ञानस्य भाजनम् ॥ ४२ ॥

मधुरमृदुलं सत्यं स्वप्रमाणं सुसंस्कृतम् । हितंमित्रं सदृष्टान्तंश्रुत्वापक्षिसुभाषितम्
देवोऽतिविस्मयापन्नोऽवर्णयत्पीठगौरवम् । त्रैलोक्यनगरे चात्र काशीराजगृहम्मम
तत्रापिभोगभवतमनर्घ्यमणिनिर्मितम् । मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यःप्रासादोमेतिशर्मभूः
पलत्रिणोपिमुच्यन्तेयंकुर्वाणाःप्रदक्षिणम् । स्वेच्छयाधिचरन्तःखेखेखराभपिदेवताः
मोक्षलक्ष्मीविलासख्यप्रासादस्य विलोकनात् ।

शरीराद् दूरतो याति ब्रह्महत्याऽपि नान्यथा ॥ ४७ ॥

मोक्षलक्ष्मीविलासस्य कलशो यैर्निरीक्षितः ।

विधानकलशास्तांस्तु न मुञ्चन्ति पदे पदे ॥ ४८ ॥

दुरतोऽपि पताकापि ममप्रासादमूर्धगा । नेत्रातिथीकृता येस्तुनित्यन्तेऽतिथयोमम
भूमिं भित्त्वा स्वयं जातस्तत्प्रासादमिवेण हि ।

आनन्दाख्यस्य कन्दस्य कोऽप्येष परमोऽङ्कुरः ॥ ५० ॥

ब्रह्मादिस्थावरान्तानि यत्र रूपाण्यनेकशः । मामेवोपासतेनित्यंचित्रंचित्रगतान्यपि
ससौधो मेऽखिलेलोकेस्थानम्परमनिर्वृतेः । रतिशालासमेरुयासमेविशवासभूमिका
मम सर्वगतस्यापि प्रासादोऽयम्परास्पदम् । परम्ब्रह्मयदाग्नात्परमोपनिषद्गिरा ॥

अमूर्तं तदहम्मूर्तो भूयां भक्तकृपावशात् ॥ ५३ ॥

नैःश्रेयस्याः श्रियो धाम तद्याम्यां मण्डपोऽस्ति मे ।

तत्राऽहं सततन्तिष्ठेत्तत्सदो मण्डपम्मम ॥ ५४ ॥

निमेषार्धप्रमाणञ्च कालंतिष्ठति निश्चलः । तत्र यस्तेनवैयोगःसमभ्यस्तःसमाःशतम्
निर्वाणमण्डपंनाम तत्स्थानज्जगतीतले । तत्रचं सञ्जपन्नेकां लभेत्सर्वश्रुतेः फलम्
प्राणायामन्तु यः कुर्यादप्येकम्मुक्तिमण्डपे ।

तेनाऽष्टाङ्गः समभ्यस्तो योगोऽन्यत्रायुतसमाः ॥ ५७ ॥

निर्वाणमण्डपे यस्तु जपेदेकं षडक्षरम् । कोटिरुद्रेण जप्तेन यत्फलं तस्य तद्ववेत्
शुचिर्गङ्गाम्मसि स्नातो यो जपेच्छतरुद्रियम् ।

निर्वाणमण्डपे ज्ञेयः सरुद्रो द्विजवेषभृत् ॥ ५९ ॥

ब्रह्मयज्ञं सकृत्कृत्वा मम दक्षिणमण्डपे । ब्रह्मलोकमवाऽप्याथ परं ब्रह्माऽधिगच्छति
धर्मशास्त्रं पुराणानि सेतिहासानि तत्र यः । पठेन्निरमिलाषुः सन्सवसेनममवेश्मनि
तिष्ठेद्विन्द्रियस्वापल्यं योनिवार्यक्षणकृती । निर्वाणमण्डपेऽन्यत्र तेन तप्तमहत्तपः
घायुभक्षणतोऽन्यत्र यत्पुण्यं शरदां शतम् । तत्पुण्यं घटिकार्धेनमौनं दक्षिणमण्डपे
मितं कृष्णलकेनापि यो दद्यान्मुक्तिमण्डपे । स्वर्णं सौवर्णयानेन स तुसञ्चरतेदिधि

तत्रैकं जागरं कुर्याद्यस्मिन्कस्मिन् दिनेऽपि यः ।

उपोषितोऽर्घ्येह्लिङ्गं स सर्वव्रतपुण्यभाक् ॥ ६५ ॥

तत्र दत्त्वा महादानन्तत्र कृत्वा महाव्रतम् । तत्राधीत्याखिलवेदंच्यवते न नरोदिवः
 प्रयाणं कुर्वते यस्य प्राणा मे मुक्तिमण्डपे । समामनुप्रविष्टोऽत्र तिष्ठेद्यावदहं खलु
 जलक्रीडां सदा कुर्यां ज्ञानधाप्यां सहोमया । यदम्बुपानमात्रेण ज्ञानंजायेतनिर्मलम्
 तज्जलक्रीडनस्थानं मम प्रीतिकरमहत् । अमुष्मिन्राजसदने जाड्यहज्जलपूरितम्
 तत्प्रासादपुरो भागे मम शृङ्गारमण्डपः । श्रीपीठं तद्विचित्रं निःश्रीकश्रीसमर्पणम्
 मदर्थं तत्रयो दद्याद्दुकूलानि शुचीन्यहो । माल्यानिस्तुविचित्राणियक्षकर्मवन्तिच
 नानानैपथ्यवस्तूनि पूजोपकरणान्यपि ।

स श्रियालङ्कृतस्तिष्ठेद्यत्र कुत्राऽपि सत्तमः ॥ ७२ ॥

निर्वाणलक्ष्मीवृणुते तन्निर्वाणपदाप्रये । यत्र कुत्रापि निधनं प्राप्नुयादपिसद्भुवम्
 मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यप्रासादस्योत्तरे मम । ऐश्वर्यमण्डपं रम्यं तत्रैश्वर्यददाम्यहम्
 मत्प्रासादैन्द्रदिग्भागे ज्ञानमण्डपमस्ति यत् ।

ज्ञानं दिशामि सततं तत्र मां ध्यायता सताम् ॥ ७५ ॥

भवानि राजसदने ममास्तिहिमहानसम् । यत्तत्रोपहृतम्पुण्यं निर्विशामि मुदैव तत्
 विशालाक्ष्या महासौधे मम विश्रामभूमिका ।

तत्र संसृतिखिन्नानां विश्रामं श्राणयाम्यहम् ॥ ७७ ॥

नियमस्नानतीर्थञ्च चक्रपुष्करिणी मम । तत्र स्नानवतांपुंसांतत्रैर्मलयं दिशाम्यहम्
 यदाहुः परमन्तत्त्वं यदाहुर्ब्रह्मसत्तमम् । स्वसंवेद्यं यदाहुश्चतत्रान्ते दिशाम्यहम्
 यदाहुस्तास्त्वं ज्ञानं यदाहुरतिनिर्मलम् । स्वात्मारामंयदाहुश्च तत्तत्रान्तेदिशाम्यहम्
 जगन्मङ्गलभूर्यात्र परमामणिकर्णिका । विपाशयामि तत्राहं कर्मभिः पाशितान्पशून्
 निर्वाणश्राणने यत्र पात्रापात्रं न चिन्तये ।

आनन्दकानने तन्मे दानस्थानं दिवानिशम् ॥ ८२ ॥

भवाम्बुधौ महागाधे प्राणिनः परिमज्जतः ।

भूत्वैव कर्णधारोऽन्ते यत्र सन्तारयाम्यहम् ॥ ८३ ॥

सौभाग्यभाग्यभूर्या वै विख्याता मणिकर्णिका ।

ददामि तस्यां सर्वस्वमग्रजायाऽन्त्यजाय वा ॥ ८४ ॥

महासमाधिः सम्पन्नैर्बेदान्तार्थनिषेधिमिः । दुष्प्रापो न्यत्र यो मोक्षः शोच्यैरपि सलभ्यते
वीक्षितो वा दिवाकीर्तिः पण्डितो वाऽप्यपण्डितः ।

तुल्यो मे मोक्षदीक्षाया सम्प्राप्य मणिकर्णिकाम् ॥ ८६ ॥

यस्यागोऽन्यत्र कृपणस्तत्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ।

ददामि जन्तुमात्राय सर्वस्वञ्चिरसञ्चितम् ॥ ८९ ॥

यदि देवादिह प्राप्तस्त्रियोगोऽतिदुर्बलः । अविचारन्तदा देयं सर्वस्वञ्चिरसञ्चितम्
शरीरमथ सम्पत्तिरथसा मणिकर्णिका । त्रिसंयोगोऽयमप्राप्यो देवैरिन्द्रादिकैरपि
पुनः पुनर्विचार्यैति जन्तुमात्रेभ्य एव च । निर्वाणलक्ष्मीयच्छामिसदोपमणिकर्णिकम्
मुक्तिदानमही सा मे धाराणस्या महीयसी ।

तन्महीरजसा साम्य त्रिलोक्यपि न चोद्वहेत् ॥ ९१ ॥

परं लिङ्गार्चनस्थानमविमुक्तेश्वरेश्वरम् । तत्र पूजा सकृत्कृत्वा कृतकृत्यो नरो भवेत्
सायम्पाशुपतीं सन्ध्या कुर्यां पशुपतीश्वरे ।

चिन्तितधारणात्तत्र पशुपाशर्न वध्यते ॥ ९३ ॥

प्रातः सन्ध्या करोम्येव सदोङ्कारनिकेतने । तत्रैकापिकृतासन्ध्यासर्वपातकहन्तनी
वसामि कृत्तिवासेऽहं सदा प्रतिचतुर्दश । अत्र जागरणं कृत्वा चतुर्दश्यानगर्भभाक्
रत्नेश्वरोऽर्चितो दद्यान्महारत्नानि भक्तितः ।

रत्नैः समर्च्यं तल्लिङ्गस्त्रीरत्नादिलभेन्नरः ॥ ९६ ॥

चिष्टपत्रितयान्तस्थोऽप्यहं लिङ्गे त्रिचिष्टपे । तिष्ठामि सततम्भक्तमनोरथसमुद्भये ॥
चिरजस्कं महापीठं तत्र ससेव्य मानवः । चिरजा जायते नूनं चतुर्नदकृतोदकः ॥
महादेवे महापीठं मम साधकस्तिद्धिदम् ।

तत्पीठदर्शनादेव महापापैः प्रमुच्यते ॥ ९९ ॥

पितृप्रीतिप्रदम्पीठं वृषभध्वजसङ्घकम् । पितृत्तर्पणकृत्स्त्रपितृस्तम्भयति क्षणात्
आदिकेशवपीठेऽहमादिकेशवरूपधुक् । श्वेतद्वीपं लयेभक्तान्मैश्वर्यवन्निबलुमान् ॥

तत्रैव मङ्गलापीठे सर्वमङ्गलदायिनि । उपपञ्चनदे तीर्थे भक्तान्सन्तारयाम्यहम् ॥
 बिन्दुमाधवरूपेण यत्राऽह वेषणबाञ्जनान् । नयेपञ्चनदस्नातास्तद्विष्णोःपरमम्पदम्
 पञ्चमुद्रे महापीठे ये वीरेश्वरसेवकाः । तेषां परमनिर्वाणकालेनाऽल्पेन जायते १०४
 तत्रसिद्धेश्वरीपीठे चन्द्रेश्वरसमीपतः । तत्रसन्निधिकर्तृणासिद्धिःषणमासतो भवेत्
 काश्याञ्च योगिनीपीठे योगसिद्धिविधायिनि ।

सिद्धीरुच्चाटनाद्याश्च कर्न लब्धाः सुसाधकैः ॥ १०६ ॥

अनेकानीह पीठानि सन्ति काश्याम्पदे पदे । परं धर्मेशपीठस्यकाचिच्छक्तिरनुत्तमा
 यत्राऽमी बालकीराश्च निर्मलज्ञानभाजनम् ।

आसुः सदुपदेशान्मे त्रातत्रातेतिभाषिणः ॥ १०८ ॥

एतद्धर्मेश्वरं पीठन्त्यजाभ्यद्य दिनावधि । न कदाचित्तरणिजं त्वत्तपोवनमुत्तमम् ॥
 ममानुग्रहतः कीरानेतान्पश्य रवेःसुत । दिव्यं विमानमारुह्य गन्तारो मत्पुरम्ग्रहत्
 तत्र भुक्त्वा चिरम्भोगाञ्ज्ञानमप्राप्य मयेरितम् ।

इह मुक्तिमवाप्स्यन्ति त्वत्संसगातिनिर्मलाः ॥ १०११ ॥

इत्युक्तवतिदेवेशे कलासशिखरोपमम् । दिव्यं विमानमापन्नं रुद्रकन्यापरिष्कृतम् ॥
 आरुह्य तेन यानेन दिव्यरूपधराः खगाः । कलासमभिसञ्जग्मुर्धर्ममापृच्छन्त्यतेऽमलाः

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्रया संहिताया चतुर्थे काशीखण्डे
 उत्तरार्धे धर्मेशारूयान नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

विश्वभुजाशाविनायकप्रशंसनेमनोरथतृतीयाव्रतारूयानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

कुम्भोद्भूत! तदाश्चर्यं विलोक्य जगदम्बिका ।

उवाच शम्भुं प्रणता प्रणतार्तिहरं परम् ॥ १ ॥

अम्बिकोवाच

अस्य पीठस्य माहात्म्यं महादेव महेश्वर !। तिरश्चामपि यज्जातंज्ञानं संसारमोचनम्
अतः प्रभावंचिज्ञाय धर्मपीठस्य धूर्जटे !। धर्मेश्वरसमीपेऽहं स्थास्याम्यद्यदितावधि
अत्रलिङ्गेतुयेभक्ताःस्त्रियोवापुरुषास्तुवा । तेषामभीष्टांलंसिद्धिसाधयिष्याम्यहंसदा

ईश्वर उवाच

साधुकृतंवया देवि! कृतवत्या परिग्रहम् । अस्येहधर्मपीठस्य मनोरथकृतः सताम्

त एव विश्वभोक्तारो विश्वमान्यास्त एव हि ।

ये त्वां विश्वभुजामत्र पूजयिष्यन्ति मानवाः ॥ ६ ॥

विश्वे विश्वभुजे विश्वस्थित्युत्पत्तिलयप्रदे ।

नरास्त्वदर्चकाश्चाऽत्र भविष्यन्त्यमलात्मकाः ॥ ७ ॥

मनोरथतृतीयायां यस्ते भक्तिं विधास्यति । तन्मनोरथसंसिद्धिर्भवित्रीमदनुग्रहात्
नारीषा पुरुषोवाऽथ त्वद्वृत्ताचरणात्प्रिये । मनोरथानिह प्राप्य ज्ञानमन्तेष्वलप्स्यते

देव्युवाच

मनोरथतृतीयायां व्रतं कीदृक्काकथम् । किंफलंकेः कृतंनाथ ! कथयैतत्कृपां कुरु ॥

ईश्वर उवाच

शृणुदेवि यथापृष्टं भवत्या भवतारिणि !। मनोरथव्रतं चैतद् गुह्याद्गुह्यातरम्परम् ॥

पुलोमतनया पूर्वं ततापपरमंतपः । किञ्चिन्मनोरथं प्राप्तुं नचाऽऽप तपसः फलम् ॥

अपूपुजत्ततो मां सा भक्त्या परमया मुदा ।

गीतेन सरहस्येन कलकण्ठीकलेनहि ॥ १३ ॥

तद्गानैनातिसन्तुष्टो मृदुना मधुरेण च । सुतालैः सुरङ्गेण धातुमात्रा कलावता ॥
प्रोवाच त्वं धरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि पुलोमजे । अनेन व सुगीतेन त्वनयालिङ्गपूजया
पुलोमजोवाच

यदि प्रसन्नो देवेश तदा यो मे मनोरथः । तंपूरय महादेव महादेवीमहाप्रिय ॥
सर्वदेवेषु यो मान्यः सर्वदेवेषु सुन्दरः । यायजूकेषु सर्वेषु यः श्रेष्ठः सोऽस्तुमेपतिः
यथाऽभिलषितं रूपं यथाऽभिलषितं सुखम् । यथाऽभिलषितंचायुःप्रसन्नोदेहिमेभव
यदा यदा च पत्या मे सङ्गः स्याद्दधृत्सुखेच्छया ।

तदा तदा च तं देहं त्यक्त्वाऽन्यं देहमाप्नुयाम् ॥ १६ ॥

सदा च लिङ्गपूजायां मम भक्तिरनुत्तमा । भव भूयाद्भवहर जरामरणहारिणी ॥
भर्तुर्व्ययेऽपि वैधव्यं क्षणमात्रमपीह न । मम भावि महादेव पातिव्रत्यं च यातु मा
स्कन्द उवाच

इमं मनोरथं तस्याः पौलोम्याः पुरसुदनः ।

समाकर्ण्य क्षणं स्मित्वा प्रादेशो चिरुमयान्वितः ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच

पुलोमकन्ये! यश्चैव त्वयाऽकारिमनोरथः । लप्स्यसेव्रतचर्यातस्तत्कुरुष्वजितेन्द्रिये
मनोरथतृतीयायाश्चरणेनभविष्यति । तत्प्राप्तये व्रतं वक्ष्ये तद्विधेहिद्यद्योदितम् ॥
तेन व्रतेन चीर्णेन महासौभाग्यदेन तु । अवश्यं भविता बाले तव चैवं मनोरथः ॥

पुलोमकन्योवाच

कारुण्यवारिधेः शम्भोप्रणतप्राणिसर्वद ! । किमात्मिकाथकाशक्तिः कापूज्यातत्रदेवताः
कदाचतद्विधातव्यमितिकतं व्यता च का । इत्याकर्ण्यशिवोवाक्यं तां तुप्रणिजगादह

ईश्वर उवाच

मनोरथतृतीयायां व्रतं पौलोमि! तच्छुभम् ।

पूज्या विश्वभुजा गौरी भुजविंशतिशालिनी ॥ २८ ॥

वरदोऽभयहस्तश्च साक्षसूत्रः समोदकः ।

देव्याः पुरस्ताद् व्रतिना पूज्य आशाचिनायकः ॥ २९ ॥

सैत्रशुक्लद्वितीयायांकृत्वावैदन्तधावनम् । सायन्तनीं च निर्वर्त्य नाति तृप्त्या भुजिक्रियाम्
नियमं चेति गृह्णीयाजितक्रोधो जितेन्द्रियः ।

सन्त्यक्तास्पृश्यसंस्पर्शः शुचिस्तद्गतमानसः ॥ ३१ ॥

प्रातर्व्रतं चरिष्यामि मातर्विश्वभुजेऽनघे । विधेहि तत्रसाग्निध्यं मन्मनोरथसिद्धये
नियमं चेति संगृह्य स्वपेट्रात्री शुभं स्मरन् । प्रातरुत्थाय मेघावीविधायावश्यकविधिम्
शौचमाचमनं कृत्वा दन्तकाष्ठं समाददे । अशोकवृक्षस्य शुभं सर्वशोकनिशातनम्
नित्यन्तनं च निष्पाद्य विधि विधिचिदाम्बरः ।

स्नात्वा शुद्धाम्बरः सायं गौरीपूजां समाचरेत् ॥ ३५ ॥

आदौ विनायकं पूज्य घृतपूरान्निवेद्य च । ततोऽर्घ्ये द्विश्वभुजामशोककुसुमैः शुभैः ३६
अशोकवर्तिनैवेद्यैर्धूपैश्चागुरुसम्भवं ।

कुङ्कुमेनानुलिप्यादावेकभक्तं ततश्चरेत् ॥ ३७ ॥

अशोकवर्तिसहितैर्घृतपूरैर्मनोहरैः । एवं सैत्रतृतीयाया व्यतीतायां पुलोमजे ॥
राधादिफालगुनान्तासु तृतीयासु व्रतं चरेत् ।

क्रमेण दन्तकाष्ठानि कथयामि तवाऽनघे ॥ ३९ ॥

अनुलेपनवस्तूनि कुसुमानि तथैव च । नैवेद्यानिगजास्यस्य देव्याश्चाऽपि शुभव्रते
अन्नानि चैकभक्तस्य शृणु तानि फलाप्तये । जम्बवपामार्गखदिरजातीघृतकदम्बकम्
प्लक्षोदुम्बरखजूरीबीजपूरीसदाडिमी । दन्तकाष्ठद्रुमा एते व्रतिनः समुदाहृताः
सिन्दूरागुरुकस्तूरीचन्दनं रक्तचन्दनम् । गोरोचनादेवदारुपद्माक्षं च निशाह्वयम्
प्रीत्यानुलेपनं बाले! यक्षकर्मसम्भयम् । सर्वेषामप्यलामेघ प्रशस्तो यक्षकर्मसः

कस्तूरिकाया द्वौभागौ द्वौ भागौ कुङ्कुमस्य च ।

चन्दनस्य त्रयो भागाः शशिनस्त्वैक एव हि ॥ ४५ ॥

यस्यकर्दम इत्येष समस्तसुरवल्लभः । अनुलिप्याथकुसुमैरर्चयेद्वक्षि तान्यपि ॥
पाटलामल्लिकापद्मकेतकीकरवीरकैः । उत्पलंराजसम्पैश्च नन्द्यावर्तैश्च जातिभिः ॥
कुमारीभिः कर्णिकारैरलाभेतच्छदैः सह । सुगन्धिभिःप्रसूतौघैःसर्वालामेपिपूजयेत्
करम्भोदधिभक्तं च सखूतरसमण्डकाः । फेणिका वटकाश्चैवपायसं च सशर्करम्

समुद्गं सघृतं भक्तं कार्तिके विनिवेदयेत् ।

इण्डेरिकाश्च लड्डूका माघे लम्पसिका शुभा ॥ ५० ॥

मुष्टिकाः शंकरागर्भाः सर्पिषापरिसाधिताः ।

निवेद्याः फाल्गुनेर्देव्यै सार्धं चिन्नजिता मुदा ॥ ५१ ॥

निवेदयेद्यद्वं हि एकभक्तेऽपि तत्स्मृतम् । अन्यनिवेद्य सम्पूढोभुञ्जानोऽन्यत्पतेदधः
प्रतिमासं तृतीयायामेवमाराध्यवत्सरम् । व्रतसम्पूतयेकुर्यात्स्थण्डिलेऽग्निसमर्चनम्
जातवेदसमन्त्रेण तिलाज्यद्रविणेनच । शतमष्टाधिकं होमं कारयेद्विधिना व्रती ॥
सदेव नक्ते पूजोक्ता सदा नक्ते तुभोजनम् । नक्त एव हिहोमोऽयं नक्त एवक्षमापनम्
गृहाण पूजा मे भक्त्या मातर्चिन्नजिता सह ।

नमोऽस्तु ते विश्वभुजे ! पूरयाऽऽशु मनोरथम् ॥ ५६ ॥

नमोचिन्नकृते तुभ्यं नम आशाविनायक ! । त्वं विश्वभुजया सार्धं ममदेहिमनोरथम्
एतौ मन्त्रौ समुच्चार्य पूज्यौ गौरीविनायकौ ।

व्रतक्षमापने देयः पर्यङ्कुस्तुलिकान्वितः ॥ ५८ ॥

उपधान्यासमायुक्तो दीपीदर्पणसंयुतः । आचार्यं च सपत्नीकं पर्यङ्कु उपवेश्य च ॥
व्रतीसमर्चयेद्वस्त्रैः करकर्णविभूषणैः । सुगन्धवन्दनैर्माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुद्वान्वितः ॥
दद्यात्पयस्विनीं गां च व्रतस्य परिपूर्तये ।

तथोपभोगवस्तूनि च्छत्रोपानत्कमण्डलुम् ॥ ६१ ॥

मनोरथवृत्तीयाया व्रतमेतन्मयाकृतम् । न्यूनातिरिक्तं सम्पूर्णमेतदस्तु भवद्गिरा ।
इत्याचार्यं समापृच्छन्व तथेत्युक्तश्च तै न वै ।

आसीमान्तमनुब्रज्य दत्त्वाऽन्येभ्योऽपि शक्तितः ॥ ६३ ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः] * वृत्रघ्नब्रह्महत्यापनोदनोपायवर्णनम् * ५७५

ततः पुलोमजा देवि! श्रुत्वैतद्व्रतमुत्तमम् । कृत्वामनोरथं प्रापयथाभिवाञ्छितंहृदि
अरुन्धत्या वसिष्ठोऽपि लब्धोऽत्रिरनसूयया ।

सुनीत्योत्तानपादाच्च ध्रुवः प्राप्तोऽङ्गजोत्तमः ॥ ८२ ॥

सुनीतेर्दुर्भगत्वञ्च पुनरस्माद्ब्रताद्गतम् । अतुर्भुजः पतिः प्राप्तः क्षीरनीरधिजन्मना
किं ब्रह्मकेन सुश्रोणि! कृतं येनव्रतं त्विदम् । व्रतानितेनसर्वाणिकृतानिव्रतिनाध्रुवम्
श्रुत्वा धीमान्कथाम्पुण्यां पुनस्तद्गतमानसः ।

शुभबुद्धिमवाप्नोति पापैरपि विमुच्यते ॥ ८५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे धर्मेश्वराख्यानेविश्वभुजाशाचिनायकप्रशंसने मनोरथतृतीयाव्रताख्यानं
नामाऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

धर्मेशाख्यानवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

धर्मतीर्थस्यमाहात्म्यं कीदृग्देवेनशम्भुना । स्कन्द!देव्यैसमाख्यातंतदाख्याहिरुपांकुरु

स्कन्द उवाच

दिन्ध्योन्नतिहृदाख्यामिधर्मतीर्थसमुद्भवम् । आकर्णय महाप्राज्ञ! यथादेवेनभाषितम्
चृत्रं निहत्यवृत्रारिर्ब्रह्महत्यामवाप्तवान् । अनुततोऽथ पप्रच्छ प्रायश्चित्तं पुरोहितम्

बृहस्पतिरुवाच

यदि त्वं देवराजैमां ब्रह्महत्यां सुदुस्त्यजाम् ।

अपानुत्सुस्तद्याहि कार्शीं विश्वेशपालिताम् ॥ ४ ॥

नान्यत्किञ्चित्कचिद् द्रष्टुं ब्रह्महत्या महौषधम् ।

राजधानीं परित्यज्य शक्र! विश्वेशितुःपराम् ॥ ५ ॥

भैरवस्यापिहस्ताप्रादपतद्वैधसंशिरः । यत्रानन्दवने तत्र वृत्रशत्रोव्रजद्रुतम् ॥
सीमानमपि सम्प्राप्य शक्रानन्दवनस्यहि । ब्रह्महत्या पलायेत वेपमाना निराश्रयाः
अन्येषामपिपापानां महापापजुषामपि । नाशयित्री पराकाशी विश्वेशसमधिष्ठिता
महापातकतोमुक्तिः काश्यामेव शतक्रतो ! महासंसारतोमुक्तिःकाश्यामेवनघान्यतः

निर्वाणनगरीकाशी काशीसर्वाघसङ्ग्रहत् ।

विश्वेशितुःप्रिया काशी द्यौः काशी सदृशी नहि ॥ १० ॥

ब्रह्महत्यामथं यस्य यस्य संसारतो भयम् ।

जातुचित्तेन न त्याज्या काशिका मुक्तिकाशिका ॥ ११ ॥

जन्तूनां कर्मबीजानां यत्रदेहविसर्जने । न जातुचित्प्ररोहोऽस्मिन्हरद्रूप्यातशुष्मणाम्
तां काशीं प्राप्यवृत्रारो! वृत्रहत्यापनुत्तये । समाराधय विश्वेशं विश्वमुक्तिप्रदायकम्
बृहस्पतेरिति वधो निशम्य ससहस्रद्रक् । आयाद् द्रुततरं काशीमहापातकघातुकाम्
स्नात्वोत्तरवहायां च धर्मेशं परितःस्थितः । आराधयन् महादेवं ब्रह्महत्यापनुत्तये
महारुद्रजपासक्तःसुत्रामाऽथत्रिलोचनम् । ददर्शल्लिङ्गमध्यस्थं स्वभासादीपिताम्बरम्
पुनस्तुष्टाव वेदोक्तै रुद्रसूक्तेरनेकधा । चिनिष्कम्य ततो लिङ्गादाविर्भूय भवोऽवदत्
शचीपते! प्रसन्नोऽस्मि वरं वरयसुव्रत । किं देयं द्रुतमाख्याहि धर्मपीठकृतास्पद ! ॥
श्रुत्वेति देवदेवस्य स प्रेमवचनं हरिः । सर्वज्ञकिन्तेऽविदितं तमुवाचेति वृत्रहा
ततस्तत्कृपया नुन्नो धर्मपीठनिषेवणात् ।

निष्पाद्य तीर्थं तत्रेशोऽत्र ज्वाहीन्द्रेतिचाऽब्रवीत् ॥ २० ॥

तत्रेन्द्रः स्नानमात्रेण दिव्यगन्धोऽभवत्क्षणात् ।

अघाप च रुचिञ्चारुं प्राकर्णीं शातयाज्ञिकीम् ॥ २१ ॥

तदाश्चर्यमथोद्गृष्ट्वा मुनयो नारदादयः । परिसस्नुमुदायुक्ता धर्मतीर्थेऽघहारिणि ॥
अतर्पयन्पितृन् दिव्यान्व्यधुःश्राद्धानिश्रद्धया । धर्मेशं स्नापयामासुस्तत्तीर्थांश्चुभृतेर्घटैः

एकाशीतितमोऽध्यायः] * धर्मेश्वराख्यानेनानालिङ्गमहिमवर्णनम् * ५७७

तदाप्रभृतितत्तीर्थं धर्मान्धुरिति विश्रुतम् । ब्रह्महत्यादि पापानामक्लेशं क्षालनं परम्
यत्फलं तीर्थराजस्य स्नानेन परिकीर्त्यते । सहस्रगुणितं तत्स्याद्दमन्धुस्नानमात्रतः
गङ्गाद्वारे कुक्षेत्रे गङ्गासागरसङ्गमे । यत्फलं लभते मर्त्यां धर्मतीर्थे तदाप्नुयात्
नर्मदायां सरस्वत्यांगौतम्यांसिहगेगुरौ । स्नात्वा यत्फलमाप्येत धर्मकूपेतदाप्नुयात्
मानसे पुष्करे चैव द्वारिकेसागरे तथा । तीर्थे स्नात्वा फलयत्स्यात्तत्स्याद्दर्मजलाशये
काञ्चिकायां सुकरक्षेत्रे चैत्र्यांगौरीमहाहदे । शङ्खोद्वारे हरिदिने यत्फलं तत्फलं त्विह
तीर्थद्वये प्रतीक्षन्ते सिस्नासून्पितरो नरान् । गङ्गायां धर्मकूपे च पिण्डनिर्बपणाशया
पितामहसमीपे वा धर्मेशस्याप्रतोऽथवा । फलगौ च धर्मकूपे च माद्यन्ति प्रपितामहाः
धर्मकूपे नरः स्नात्वा परितर्प्य पितामहान् । गयां गत्वा किमधिकं कर्ता पितृमुदावहम्

यथा गयायां तृप्ताः स्युः पिण्डदाने पितामहाः ।

धर्मतीर्थे तथैव स्युर्न न्यूनं नैव चाधिकम् ॥ ३३ ॥

ते धन्याः पितृमक्तास्तु प्रीणितास्तैः पितामहाः ।

पैत्राद्रूपाद्दर्मतीर्थे निष्कृतिर्यैः कृता सुतैः ॥ ३४ ॥

तत्तीर्थस्य प्रभावेण निष्पापोऽभूत्क्षणेन च । प्रणम्य देवदेवशमिन्द्रोऽगादमरावतीम्
अपारो महिमा तस्य धर्मतीर्थस्य कुम्भज ! । तत्कूपे स्वन्निर्रीक्ष्यापिश्राद्धदानफलं लभेत्
तत्रापि काकिणीमात्रं यच्छेत्पितृमुदेनरः । अक्षयफलमाप्नोति धर्मपीठप्रभावतः
तत्र यो भोजयेद्विप्रान्यतिनोऽथ तपस्विनः ।

सिक्थे सिक्थे लभेत्सोऽथ वाजपेयफलं स्फुटम् ॥ ३८ ॥

प्राप्यामरावतीं शक्रस्ततो दिविषदांपुरः । धर्मपीठस्य माहात्म्यं महत्काश्यामवर्णयत्
आगत्य पुनरप्यत्र शम्भोरानन्दकानने । मुनिवृन्दारकैः सार्द्धं लिङ्गमस्थापयद्द्वारिः
तारकेशात्पश्चिमत इन्द्रेश्वरमितीरितम् । तस्य सन्दर्शनात्पुंसामैन्द्रलोकान् दूरतः
तद्दक्षिणे शचीशब्ध स्वयं शच्या प्रतिष्ठितः ।

शचीशाचनतः स्त्रीणां सौभाग्यमतुलं भवेत् ॥ ४२ ॥

तत्समीपेऽस्ति रम्भेशो बहुसौख्यसमृद्धिदः । इन्द्रेश्वरस्य परितोलोकपालेश्वरोपरः

तदर्चनात्प्रसीदन्तिलोकपालाःसमृद्धिदाः । धर्मेशात्पञ्चिमाशायांघरिणीशःप्रकीर्तितः

तद्दर्शनेन धैर्यं स्याद्राज्ये राजकुलादिषु ॥ ४४ ॥

धर्मेशाद्दक्षिणे पूज्यं तस्त्वेशाख्यम्परंनरैः । तस्त्वज्ञानम्प्रवर्तेत तल्लिङ्गस्य समर्चनात्
धर्मेशात्पूर्वदिग्भागे वैराग्येशं समर्चयेत् । निवृत्तिश्चेतसस्तस्य लिङ्गस्यस्पर्शनादपि
ज्ञानेश्वरं तथैशान्या ज्ञानदंसर्वदेहिनाम् । ऐश्वर्येशमुदीच्याञ्चलिङ्गाद्धर्मेश्वराच्छुभात्
तद्दर्शनाद्भवेन्नृणामैश्वर्यं मनसेऽपिसतम् । पञ्चवक्त्रस्यरूपाणि लिङ्गान्येतानिकुम्भज!

एतान्यवश्यं संसेव्य नरः प्राप्नोति शाश्वतम् ।

अन्यं सत्रैव यद्ब्रुतं तदाख्यामि मुने! शृणु ॥ ४६ ॥

यच्छ्रुत्वापि नरो घोरे संसाराब्धौनमज्जति । कद्म्बशिखरोनामविन्ध्यपादोमहानिह
दमस्य पुत्रस्तत्रासीद्दुर्दमोनामपार्थिवः । पितर्युं परतेराज्यंसम्प्राप्याविजितेन्द्र्यः

हरेत्पुरन्ध्रीःप्रसभम्पौराणां काममोहितः ।

असाधवः प्रियास्तस्य साधवोऽप्रियतां ययुः ॥ ५२ ॥

अदण्ड्यान्दण्डयाञ्चके दण्ड्येष्वसीत्पराङ्मुखः ।

सदैव मृगयाशीलः सोऽभून्मृगयुसङ्गतः ॥ ५३ ॥

विवासिताः स्वधिषयात्तेन सन्मतिदायिनः ।

धर्माधिकारिणः शूद्रा ब्राह्मणाः करदीकृताः ॥ ५४ ॥

परदारेषु सन्तुष्टः स्वदारेषु पराङ्मुखः । आनर्चजातुचिञ्चैवदेवो दुःखान्तकारिणी
हारिणी सर्वपापानांसर्ववाञ्छितदायिनौ । सर्वेषांजगतीसारीश्रीकण्ठश्रीपतीपती
स्वप्रजास्वेक उदितो धूमकेतुरिवाऽपरः । दुर्दमोनामभूपालः क्षयायाकाण्ड एव हि
स कदाचिन्मृगयुभिः पापधिष्यसनातुरः ।

सार्धं विवेशारण्यानि गृष्टिपृष्ठानुगो हयी ॥ ५८ ॥

एकाकी दैवयोगेन दुर्दमः सोऽवनीपतिः । धन्वीतुरङ्गमाकडोऽचिशदानन्दकननम्
सचिलोकव्याय सर्वत्र पादपानवकेशिनः । सुच्छायांश्च सुविस्तारान्गतभ्रमरिवाभवत्
सुगन्धेन सुशीतेन सुमन्देन सुवायुना । क्षणसंवीजितो राजा पल्लवच्यजनैःकुञ्जैः

केवलम्भृगयाजातस्तत्त्वेदो न व्यपात्रजत् ।

आजन्म जनितः खेदो निरगात्तद्वनेक्षणात् ॥ ६२ ॥

मध्येवनं सचापश्यत्प्रासादं चुम्बिताम्बरम् । महारत्नशलाकानां रम्यमेकमिवाकरम्
अथावरुह्य तुरगात्सभूपालोऽतिविस्मितः । धर्मशमण्डपम्प्राप्यस्वात्मानं प्रशशंस ह
धन्योऽस्म्यहमप्रसन्नोऽस्मि धन्ये मेऽद्य विलोचने ।

धन्यमद्यतनञ्चाहर्षदपश्यमिमां भुवम् ॥ ६५ ॥

पुनर्निनिन्द चात्मानं धर्मपीठप्रभावतः । धिङ्मां दुर्जनसंसर्गैत्यक्तसज्जनसङ्गमम्
जन्तुद्वेगकरं मूढम्रजापीडनपण्डितम् । परदारपरद्रव्यापहृत्यासुखमानिनम् ॥
अथयावन्ममगतं वृथाजन्मालपमेधसः । धर्मस्थानानीदृशानि यदृष्टानिनिकुत्रचित्
एवं बहु विनिन्द्य स्वं नत्वा धर्मेश्वरं विभुम् ।

आरुह्याऽश्वं ययौ राजा दुर्दमो विषयं स्वकम् ॥ ६६ ॥

ततोऽमात्यान्समाहूय क्रमायातांश्चिरन्तनान् ।

नवीनान्परिनिर्वास्यपीरांश्चाऽपि समाह्वयत् ॥ ७० ॥

ब्राह्मणांश्च नमस्कृत्य तेभ्यो वृत्तिः प्रदाय च । पुत्रैराज्यंसमारोप्यप्रजाधर्मेनिवेश्य च
परिदण्ड्य च दण्डार्हान्साधुंश्चपरितोष्य च । दारानपिपरित्यज्यविषयेषुपराङ्मुखः
समागच्छदथेकाकी काशीं श्रेयोविकासिनीम् ।

धर्मेश्वरं समाराध्य कालान्निर्वाणमाप्तवान् ॥ ७३ ॥

धर्मेशदर्शनान्नित्यं तथाभूतः स दुर्दमः । बभूव दमिनां श्रेष्ठः प्रान्तेमोक्षञ्चल्लब्धवान्
इत्थं धर्मेशमाहात्म्यं मया स्वल्पं निरूपितम् ।

धर्मपीठस्य माहात्म्यं सम्यक्को वेद कुम्भज ! ॥ ७५ ॥

इदं धर्मेश्वराख्यानं यः श्रोष्यति नरोत्तमः ।

आजन्मसञ्चितात्पापात्स मुक्तो भवति क्षणात् ॥ ७६ ॥

श्राद्धकाले विशेषेण धर्मेशाख्यानमुत्तमम् ।

आचयेद्ब्राह्मणान्धीमान्पितृणां तृप्तिकारणम् ॥ ७९ ॥

धर्माख्यानमिदंश्रुष्वन्नपिदूरस्थित सुधी । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तोगन्तान्तेशिष्यमन्दिरम्
इति श्रीस्कन्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यासहिताया चतुर्थे कारीखण्डे
उत्तरार्धे धर्मेश्वराख्ये नन्नामैकाशीतितमोऽध्याय ॥ ८१ ॥

द्वितीयशीतितमोऽध्याय

वीरेश्वरप्रादुर्भावेऽमित्रजित्पराक्रमवर्णनम्

[पार्वत्युवाच]

वीरेशस्य महेशान् श्रूयते महिमा महान् । परासिद्धिं परापेतुस्तत्रसिद्धा परशता
कथमाविर्भवस्तस्य काश्या लिङ्गचरस्वतु । आशुसिद्धिप्रदस्येह तन्मेब्रूहि जगत्पते
महेश्वर उवाच

निशामय महादेवि वीरेशाचिभयम्परम् । यश्रुत्वापिनर पुण्यम्प्राप्नोतिविपुलशिवे
आसीदमित्रजिन्नामराजा परपुरञ्जय । धार्मिक सत्त्वसम्पन्न प्रजारजनतत्पर ॥ ४ ॥
यशोधनो वदान्यश्च सुधीर्ब्राह्मणदैवत । सदैवावभृद्यस्नानपरिक्लिन्नशिरोरुह ॥
विनीतो नीतिसम्पन्न कुशल सचकर्मसु । विद्याब्धिपारदृश्वान्गुणवान्गुणिवत्सल
कृतज्ञोमधुरालाप पापकर्मपराडमुख । सत्यवाकशौचनिलय स्वल्पवाग्विजितेन्द्रिय
रणाङ्गणे कृतान्ताम सख्यावाश्च सदोजिरे ।

कामिनीकामकेलिज्ञो युवापि स्थविरप्रिय ॥ ८ ॥

धर्मार्थेधितकोशश्च समृद्धबलवाहन । सुभगश्चसुररूपश्चसुमेधा सुप्रजाश्रय ॥ ६ ॥
स्थैर्यधैयसमापन्नोदेशकालविचक्षण । मान्यमानप्रदोनित्यसचदूषणवर्जित ॥ १० ॥
वासुदेवाङ्घ्रियुगलेधैतोवृत्तिनिधायस । चकारराज्यनिद्वन्द्वविष्वगीतिविचर्जितम्
अलङ्कृत्यशासन श्रीमान्विष्णुभक्तिपरायण ।

अभुनक्प्रचुरान्भोगान्समन्ताद्विष्णुसात्कृतान् ॥ १२ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः] * अमित्रजिद्राजस्यराज्येवैष्णवत्ववर्णनम् * ५८१

हरेरायतनान्युच्चैः प्रतिसौधम्पदेपदे । तस्य राज्येसमभवन्महाभाग्यनिधेः शिवे ॥
गोविन्द! गोपगोपल! गोपीजनमनोहर! । गदापाणे! गुणातीतगुणाढ्यगरुडध्वज!
केशिहृत्कैटभारते! कंसारे! कमलापते ॥ कृष्ण! केशव! कञ्जाक्ष! कीनाशमयनाशन!
पुरुषोत्तम ! पापारे ! पुण्डरीकविलोचन ! । पीतकौशेयवसन ! पद्मनाभ ! परात्पर!
जनार्दन! जगन्नाथ ! जाह्नवीजलजन्मभूः । जन्मिनां जन्महरणजञ्जुकावनाशन ॥

श्रीवत्सवक्षः! श्राकान्त! श्रीकरश्रेयसान्निधे !।

श्रीरङ्ग ! शार्ङ्गकोदण्ड ! शौरे! शीतांशुलोचन ॥ १८ ॥

दैत्यारै! दानवारान्ते! दामोदर! दुरन्तक !। देवकीहृदयानन्द! दन्दशूकेश्वरेशय ॥ १९
विष्णो! वैकुण्ठनिलय! वाणारेविष्टर! ध्रुवः !। विष्वक्सेनविराधारेवनमालिन्वनप्रिय
त्रिविक्रमत्रिलोकीशशक्रपाणेऽनुभुज । इत्यादीनिपवित्राणिनामानिप्रतिमन्दिरम्
स्त्रीवृद्धबालगोपालवदनोदीरितानितु । श्रूयन्तेयत्रकुत्रापिरम्याणिमधुविद्विषः ॥
सुरसाकाननान्येवविलोक्यन्तेगृहेगृहे । चरित्राणिविचित्राणिपवित्राप्यब्धिजापतेः
सौधमितिषुदृश्यन्तेचित्रकृन्निर्मितानितु । ऋतेहरिकथायास्तुनान्यावार्तानिशम्यते
हरिणानैव विध्यन्ते हरिनामांशधारिणः । तस्यराज्ञोभयाद्व्याधैररण्यसुखचारिणः
नमत्स्यानैव कमठानवराहाश्चकेनचित् । हन्यन्तेकापितद्वीत्यामत्स्यमांसाशिनापिचै
अप्युत्तानशयास्तस्यराष्ट्रे मित्रजितःकचित् । स्तनपानंनकुर्वन्तिसम्प्राप्यहरिवासरम्
पशवोऽपि तृणाहारम्परित्यज्यहरेर्दिने । उपोषणपराजाताभ्येषांकाकथानृषाम् !
महामहोत्सवः सर्वैः पुरौकोभिर्वितन्यते । तस्मिन्प्रशासतिभुवंसम्प्राप्तेहरिवासरे ॥

स एव दण्ड्योऽभूत्सस्य राज्ञो मित्रजितःक्षितौ ।

यो विष्णुभक्तिरहितः प्राणैरपि धनैरपि ॥ ३० ॥

अन्त्यजा अपि तद्राष्ट्रे शङ्खचक्राङ्गधारिणः ।

सम्प्राप्य वैष्णवीं दीक्षां दीक्षिता इव सम्बभूवुः ॥ ३१ ॥

शुभानियानिकर्माणि क्रियन्तेऽनुदिनजनैः । वासुदेवेसमर्प्यन्तेतानितैरफलेप्सुभिः
बिम्बा मुकुन्दगोविन्दं परमानन्दमच्युतम् । नान्योजप्येत मन्येतनमज्येतजनैःकचित्

कृष्ण एव परोदेषः कृष्णएव परागतिः । कृष्णएवपरोबन्धुस्तस्यासीदवनीपते
एवं तस्मिन्महीपाले राज्यं सम्यक्प्रशासति ।

एकदा नारदः श्रीमांस्तं दिदृभुः समाययौ ॥ ३५ ॥

राज्ञा समर्चितः सोऽथ मधुपर्कविधानतः ।

नारदो वर्णयामास तममित्रजितं नृपम् ॥ ३६ ॥

नारद उवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि मान्योऽप्यसि दिवोकसाम् ।

सर्वभूतेषु गोविन्दम्परिपश्यन्विशास्यते ॥ ३७ ॥

योवेदपुरुषोविष्णुर्योयज्ञपुरुषोहरिः । योऽन्तरात्माऽस्यजगतःकर्ताहर्ताऽविताधिभुः
तन्मयम्पश्यतोविश्वं तव भूपालसत्तम ॥ दर्शनम्प्राप्यशुभदं शुचित्वमगमम्परम् ॥

एक एव हि सारोऽत्र संसारेक्षणभङ्गुरे । कमलाकान्तपादाब्जभक्तिभावोऽखिलप्रदः
परित्यज्य हि यः सर्वं विष्णुमेकं सदाभजेत् । सुमेधसम्भजन्तेतंपदार्थाःसर्वएवहि

हृषीकेशेहृषीकाणियस्यस्थैर्यगतान्यहो । स एवस्थैर्यमाप्नोति ब्रह्माण्डेऽतीवचञ्चले
यौघनं धनमायुष्यं पद्मिनीजलविन्दुवत् । अतीवघ्नपलंज्ञात्वाऽच्युतमेकं समाश्रयेत्

वाचि चेतसिसर्वत्र यस्य देवो जनार्दनः । स एव सर्वदा वन्द्यो नररूपी जनार्दनः
निर्व्याजप्रणिधानेन शीलयित्वा श्रियःपतिम् । पुरुषोत्तमतांकोनप्राप्तवानिह भूतले

अनयाविष्णुभक्त्या ते सन्तुष्टेन्द्रियमानसः । उपकर्तुमना ब्रूयां तन्निशामय भूपते ॥
बालाधिद्याधरसुता नाम्ना मलयगन्धिनी । क्रीडन्तीपितुराक्रीडे हताकङ्कालकेतुना

कपालकेतुपुत्रेण दानवेन बलीयसा । आगामिन्यां तृतीयायां तस्याःपाणिग्रहःकिल
पाताले चम्पकावत्यां नगर्यां साऽस्ति साम्प्रतम् ।

हाटकेशात्समागच्छंस्तयाऽहं साश्रुनेत्रया ॥ ४६ ॥

दृष्टःप्रणम्यधिज्ञतो यथा तच्च निशामय । ब्रह्मचारिमुनिश्रेष्ठ! गन्धमादनशैलतः ॥

बालक्रीडनकासक्तां मोहयित्वा निनायसः । कङ्कालकेतुर्दुर्वृत्तोदुर्जयोऽन्यास्त्रघाततः
स्वस्थं त्रिशूलघातेन त्रियतेनान्यथारणे । जगत्पर्याकुलीकृत्य निद्रात्यत्रधिनिर्मथः

यदिकोपिकृतज्ञो मां हत्वेमं दुष्टदानवम् । मद्भूत्सेन त्रिशूलेन नयेद्भद्रं भवेन्नरः ॥
यदत्रोपधिकीर्षुस्त्वं रक्ष मां दुष्टदानवात् । ममापिहिषरोदसो भगवत्या महामुने

बिष्णुभक्तो युवा धीमान्पुत्रि! त्वां परिणेष्यति ।

आतृतीयातिथियया तद्वाक्यं तथ्यतां व्रजेत् ॥ ५५ ॥

तथानिमित्तमात्रं त्वं भव यत्नं समाचर । इति तद्वचनाद्राजन्विष्णुभक्तिपरायणम्
युवानञ्चापि धीमन्तं त्वामनुप्राप्तवाहनम् ॥ ५६ ॥

तद्गच्छ कार्यसिद्ध्यै त्वं हत्वा तं दुष्टदानवम् ।

आनयाऽऽशु महाबाहो ! शुभां मलयगन्धिनीम् ॥ ५७ ॥

सानुविधाधरी जीवेद्विलोक्य त्वानरेश्वर । पार्वतीवचनाद्दुष्टं घातयिष्यत्ययत्नतः
इतिनारदवाक्यंसनिशम्यामित्रजिन्तृपः । अनल्पोत्कलिकोजातोविधाधरसुतांप्रति
उपायञ्चापि पप्रच्छ गन्तुं तां सभ्यकावतीम् । नारदेनपुनःप्रोक्तः सराजागिरिराजजे
तूर्णमणवमासाद्यर्षिणमादिवसेनृप । भवान् द्रक्ष्यतिपोतस्थःकल्पवृक्षंरथस्थितम्
तत्रदिव्याङ्गना काचिद्विव्यपर्यङ्कसंस्थिता ।

वीणामादाय गायन्ती गाथां गास्यति सुस्वरम् ॥ ६२ ॥

यत्कर्म विहितंयेन शुभंवायशुभेतरन् । स एवभुङ्क्ते तत्तथ्यं विधिसूत्रनियन्त्रतः
गाथामिमां सा सङ्गीयसरथासमहीरुहा । सपर्यङ्काक्षणादेवमप्येसिन्धुं प्रवेक्ष्यति
भवानप्यविशङ्कञ्च ततः पोतान्महार्णवे । तामनुव्रजतु क्षिप्रं यज्ञवाराहमास्तुघ्न
ततोद्रक्ष्यसि पाताले नगरीं सभ्यकावतीम् । महामनोहरां राजन्सहितांबालयानया
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो देवि!सचतुर्मुखनन्दनः । राजाप्यर्णवमासाद्ययथोक्तंपरिलक्ष्यच्च
बिवेशाऽन्तःसमुद्रञ्च नगरीमाससादताम् । साऽथविधाधरीबाला नेत्रप्रावृणकीकृता
तेन राज्ञात्रिजगतीसौन्दर्यश्रीरिबैकिका । पातालदेवतेयं वा ममनेत्रोत्सवायकिम्
निरणायि मधुद्रेन्द्रास्त्रपुःसृष्टिबिलक्षणा । कुहूराहुभयादेवाकान्तिश्चान्द्रमसीकिमु
योषिद्वृषं समाश्रित्य तिष्ठतेऽत्राऽकुतोभया ।

इत्थंःक्षणं तां निर्घर्ष्यं स राजाऽगात्तदन्तिकम् ॥ ७१ ॥

सा बिलोक्नाऽथ तं बाला नितराम्मधुराकृतिम् ।

विशालोरस्थलतलं प्रलम्बतुलसीस्रजम् ॥ ७२ ॥

शङ्खक्राड्भुजभुजद्वयविराजितम् । हरिनामाक्षरसुधासुधौतरदनावलिम् ॥ ७३ ॥
भवानीभक्तिबीजोत्थं भूरुहम्पुरुषाकृतिम् । मनोरथफलैः पूर्णमासीद् धृष्टतनूरुहा ॥
दोलम्पर्यङ्कमुत्सृज्य होमरा नम्रकन्धरा । वेपथुञ्च परिष्टभ्य बाला प्रोवाच भूपतिम्
कस्त्वमत्रकृतान्तस्य भवनम्मधुराकृते । प्राप्तोमे मन्दभाग्यायाश्चेतोवृत्ति निरुन्धयन्
यावन्नायाति सुभग! सकठोरतराकृतिः । अतिपर्याकुलीकृत्यत्रिलोकींदानवो मुहुः
कङ्कालकेतुर्दुर्वृत्तस्त्वबधयःपरहेतिभिः । तावद्गुप्तं समातिष्ठ शस्त्रागारेऽतिगह्वरः
न मे कन्याव्रतं भङ्क्तुं स समर्थ उमावरात् ।

आगामिन्यां तृतीयायां परश्वः पाणिपीडनम् ॥ ७६ ॥

सञ्चिकीर्षति दुष्टात्मा गतायुर्ममशापतः । मातद्वीर्तिकुरुयुवस्तत्कार्यं भविताचिरम्
विद्याधर्येति श्लोकः सशस्त्रागारे निगूढवत् । स्थितोवोरोमहाबाहुर्दानवागमनेक्षणः
अथ सायं समायातोदानवोभीषणाकृतिः । त्रिशूलं कलयन्पाणौ मृत्योरपि भयावहम्
आगत्यदानवोरौघैः प्रलयाम्बुदनिःस्वनः । विद्याधरीं जगादेति मदायूर्णितलोचनः
गृहाणेमानि रत्नानि दिव्यानिवरवर्णिनि ! । कन्यात्वंच परश्वस्तेपाणित्राहादपैष्यति
दासीनामयुतं प्रातर्दास्यामितव सुन्दरि ! । आसुरीणासुरीणांचदानवीनां मनोहरम्

गन्धर्वीणां नरीणां च किन्नरीणां शतं शतम् ।

विद्याधरीणां नागीनां यक्षिणीनां शतानि षट् ॥ ८६ ॥

राक्षसीनां शतान्यष्टौ शतमप्सरसां वरम् ।

एतास्ते परिचारिण्यो भविष्यन्त्यमलाशये ॥ ८७ ॥

यावत्सम्पत्तिसम्भारो दिक्पालानां गृहेषु वै ।

मत्परिग्रहतां प्राप्य तावत्स्त्वमिहेश्वरी ॥ ८८ ॥

दिव्यान्भोगान्मया सार्धं भोक्ष्यसे मत्परिग्रहात् ।

कदा परश्वो भविता यस्मिन्वैवाहिको विधिः ॥ ८९ ॥

त्वदङ्गसङ्गसंस्पर्शसुखसन्दोहमेदुरः । परां निवृत्तिमाप्स्यामि परभ्यो निकटं यदि
मनोरथाश्चिरंयावद्येमे हृदिसमेधिताः । तान्कृतार्थी करिष्यामिपरभवस्तवसङ्गमात्

जित्वा देवान् रणे सर्वांनिन्द्रादीन्मृगलोचने ।

त्रैलोक्यैश्वर्यसम्पत्तेस्त्वां करिष्यामि चेश्वरीम् ॥ ६२ ॥

आधायाऽङ्के त्रिशूलं स्वे सुष्वापेति प्रलप्य सः ।

नरमांसवसास्वादप्रमत्तो वीतसाध्वसः ॥ ६३ ॥

घरं स्मरन्ती सा गौर्यां विद्याधरकुमारिका । विज्ञायतंप्रमत्तंघसुसुप्तंवातिनिर्भयम्
आह्वय तं नरवरं घरं सर्वाङ्गसुन्दरम् । विष्णुभक्तिकृतत्राणं प्राणनाथेतिजल्प्य च ॥
शूलं तदङ्कादादाय गृहाणेमंजहिद्रुतम् । इति त्रिशूलं बालातो बालार्कसदृशद्युतिः ॥
समादाय महाबाहुः सतदामित्रजिन्नृपः । जहर्ष च जगादोच्चैर्बालायाश्चाभयंदिशन्
घामपादप्रहारेण तमाताड्यसनिर्भयः । संस्मरंश्चक्रिणं चित्ते जगद्रक्षामर्णिहरिम् ॥
जगादोत्तिष्ठरेदुष्ट! कन्याधर्षणलालस !। युध्यस्वाऽत्रमया सार्धं नसुप्रंहन्म्यहंरिपुम्
इति सश्रुत्यसम्भ्रान्त उत्थायसदनोः सुतः । त्रिशूलं देहिमेकान्ते प्रोवाचेतिमुहुर्मुहुः

कोऽयं मृत्युगृहं प्रातः कस्य रुष्टोऽद्य चाऽन्तकः ।

क आयुवाऽद्य सन्त्यकोऽयः प्राप्तो मम गोचरम् ॥ १०१ ॥

मम प्रचण्डदोर्द्वण्डकण्डूकण्डूयनक्षमः । नालपो नरोऽयंभचिताकिं त्रिशूलेनसुन्दरि
माभेर्मे कौतुकम्पश्य रक्ष्योऽयं मम साम्प्रतम् ।

कालेन मत्तो भीतेन स्वयमेवोपढौकितः ॥ १०३ ॥

इत्युक्त्वा मुष्टिघातेन तेनोच्चैर्दनुस्नुना । हृदये निहतो राजा शिलातिकठिनेद्रुतम्
सचक्रिणा कृतत्राणः पीडामल्पीयसीमपि । नोवेदकठिनोरस्कस्तत्करंप्रत्युतानुदत्
अथ कोपवता राजा हतो वक्त्रेचपेटया । आघूर्णितशिरा भूमौपतित्वापुनरुत्थितः
उवाच च वक्त्रेचपेटयं महाबली ।

दानव उवाच

ज्ञातं न त्वं मनुष्योऽसि नृरूपेण चतुर्भुजः ॥ १०७ ॥

आयातश्छिद्रमासाद्य हन्तुं मां दानवान्तकः ॥ १०८ ॥

एकविधेहिमधुभिद्यदित्वंबलवानसि । विहायैतन्महच्छूलं युध्यस्व स्वायुधैर्मया
त्वया कपटरूपेण बलिनः कौटभादयः । नवलेनहताःसंख्ये हताएवच्छलेनहि ॥ ११०

बलिं पातालमनयस्त्वं नृवामनतां दधत् ।

नृमृगतवेन भवता हिरण्यकशिपुर्हृतः ॥ १११ ॥

त्वया जटिलरूपेण लङ्केशो विनिपातितः ।

गोपालवेषमासाद्य कंसाद्या घातितास्त्वया ॥ ११२ ॥

स्त्रीरूपेणाहरस्त्वन्तु विप्रलाप्याऽसुरान्सुधाम् । यादोरूपेणभवताशङ्काद्यानिहतावहु
मायावीनामप्रगण्यसर्वमर्म्मज्ञसाधक ! । न त्वत्तोऽहंविभेम्यद्य यदिशूलंविहास्यसि ॥

अथवा दैन्यवधनैः किमेभिः कातरोचितैः ।

न त्यक्ष्यसि त्रिशूलं त्वं नन्वां जेष्याम्यहं रणे ॥ ११५ ॥

अवश्यमेव मर्तव्यमद्य प्रातः शरीरिणा । त्वत्करेण वरं मृत्युर्वंलेनाऽपि च्छलेनवा
इयं विद्याधरी कन्या न मया दूषिता सती ।

साक्षाच्छीरेव मन्तव्या तवाऽर्थं रक्षिता मया ॥ ११७ ॥

इत्युक्त्वा वामदोर्दण्डप्रहारेणातिनिष्ठुरम् । निजवानदनोऽसुनुस्तंशिलोच्चयकम्पिना
नृपोवक्ष-प्रहारं तं विषह्य रणमूर्धनि । लक्ष्मीचकार तद्वक्षस्त्रिशूलं तोलयन्करे ॥११६

निजघान महाबाहुः स च प्राणाञ्जही क्षणात् । इत्थंकङ्कालकेतुं सनिहत्यसुरकम्पनम्
विद्याधरीं प्रपश्यन्तींप्राहहृष्टतनूरुहाम् । नारदस्यमुनेर्वाक्यात्तत्सुश्रोणिवाञ्छितम्

कृतं मया कृतज्ञे किं करवाण्यधुना वद । श्रुत्वेति तस्यसावाक्यं प्राहगम्भोरचेतसः
मलयगन्धिन्युवाच

अथोदारमते! वीर! निजप्राणैः पणीकृतान् ।

किं मामृच्छसि जीवातो! कुलकन्यामदूषिताम् ॥ १२३ ॥

इति ब्रुवत्यां कन्यायांपुनःस्वैरचरो मुनिः । अतर्कितागमःप्राप्तो नारदो देवलोक्तः
ततस्तुतुषतुस्तौतु हृष्टातम्मुनिसत्तमम् । कृतप्रणामौमुनिनापरिविश्राणिताशिषी

पाणिग्रहेणचिधिनाभिविक्रौ नारदेन तु । जग्मतुर्नारदादिष्टवर्त्मनाकृतमङ्गलौ ॥१२६॥
तयामलयगन्धिन्यायुतःसोऽमित्रजिन्तृपः । पुरींवारणसींप्राप्यपौरैर्विहितमङ्गलाम्
यद्वीक्षणादपि नरो नारकींनैव जातुचित् । गतिमाप्नोतिमेधावीताम्पुरीमविशन्तृपः
यस्यां पुर्यां प्रवेशं न लभन्तेवासवाद्यः । कैवल्यजनयिष्यां हि तांपुरीमविशन्तृपः

अपि स्मृत्वा पुरीं यां वै काशीं त्रैलोक्यकाङ्क्षिताम् ।

न नरो लिप्यते पापैस्तां विवेश स भूपतिः ॥ १३० ॥

यस्यांपुर्यांप्रविष्टोना महद्विरपिपातकैः । नाभिभूयेत तांकाशींप्राविशत्सविशांपतिः
सापि विद्याधरीकाशीसमृद्धिवीक्ष्यदूरतः । निनिन्दस्वर्गलोकञ्चपातालनगरीमपि
प्राप्याऽमित्रजितं कान्तंतथाहृष्टा न सावयूः । यथाद्वद्रूप्यहोकाशींपरमानन्दकेतनम्
साकृतार्थमिवात्मानं मन्यमानामनस्विनी । तेनपत्याच्चकाश्याचपरांनिवृत्तिमाययौ
सोऽप्यमित्रजिदासाद्य पद्मीमलयगन्धिनीम् । धर्मप्रधानंसंसेव्यकामंप्रापोत्तमंसुखम्
सैकदा तं पतिं राज्ञोविष्णुभक्तिपरायणम् । रहोविद्यापयाञ्चकेपतिभक्तासुतार्थिनी

राश्युवाच

भूपाभीष्टतृतीयायाश्चरिष्यामि महाव्रतम् । यद्यनुज्ञा भवेद्भर्तुः पुत्रकामार्थितप्रदम्

राज्ञोवाच

देव्यभीष्टतृतीयायां व्रतं कीदृग्भवेद्भद्र । कादेवता तत्र पूज्याविधानञ्चापिक्लिफलम्
नारीपत्यननुज्ञातायाव्रतादिसमाचरेत् । जीवन्तीदुःखिनीसास्यान्मृतानिरयमृच्छति
इति राज्ञोदिता राज्ञी प्रवक्तुमुपचक्रमे । इतिकर्तव्यतांतस्य व्रतस्य सरहस्यकाम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्रश्यांसंहितायां सतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे धीरेश्वराचिर्भावेऽमित्रजित्पराक्रमोनाम द्वयशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

अभीष्टतृतीयायाव्रतविधानपुरःसरंवीरेश्वराविर्भाववर्णनम्

राह्युवाच

अवधेहिधरानाथ! कथयामि यथातथम् । व्रतस्यास्यविधानञ्च फलञ्चाभीष्टदेवताम्

पुरा पुरः श्रीदपत्न्याः श्रीमुख्या ब्रह्मसूनुना ।

नारदेन सुतार्थिन्या व्रतमेतदुदीरितम् ॥ २ ॥

चीर्णञ्चाऽथतया देव्यापुत्रोऽभून्नलकूबरः । अन्याभिरपिबद्धीभिःपुत्राःप्राप्ताव्रतादितः

विधिनाऽप्यत्र सम्पूज्या गौरी सर्वविधानघित् ।

स्तनन्धयेन सहिता धयता स्तनमुन्मुखम् ॥ ४ ॥

मार्गशीर्षतृतीयायां शुक्लायांकलशोपरि । ताम्रपात्रंनिधायैकं तण्डुलैःपरिपूरितम्

अविच्छिन्नं नवीनञ्चरजनीरागरञ्जितम् । वासःपात्रोपरिन्यस्यसूक्ष्मात्सूक्ष्मतरंपरम्

तस्योपरि शुभं पद्मं रविरश्मिविकासितम् ।

तत्कर्णिकाया उपरि चतुःस्वर्णचिनिर्मितम् ॥ ७ ॥

विधिसम्पूजयेद्भक्त्या रत्नपट्टाम्बरादिभिः । पुष्पैर्नानाविधै रभ्यैःफलैर्नारङ्गमुख्यकैः

सुगन्धैश्चन्दनाद्यैश्चकर्पूरमृगनाभिभिः । परमात्रादिनैवेद्यैःपक्वाणैर्बहुमङ्गिभिः ॥ ९ ॥

धूपैरगुरुमुख्यैश्च रभ्ये कुसुममण्डपे । रात्रौ जागरणं कार्यं चिनिद्रैःपरमोत्सवैः ॥

हस्तमात्रमिते कुण्डे जातवेदस इत्यृचा ।

धृतेन मधुनाऽऽप्लुत्य जुहुयान्मन्त्रचिद्र द्विजः ॥ ११ ॥

सहस्रं कप्रलानाञ्च स्मेराणां स्वयमेवहि । नवप्रसृतांकपिलांसुशीलाञ्चपयस्विनीम्

दद्यादाचार्यवर्यायसालङ्कारांसलक्षणाम् । उपोष्यदम्पतीभक्त्यानवाम्बरचिभूषितौ

प्रातः स्नात्वा चतुर्ध्याञ्च सम्पूज्याऽऽचार्यमादृतः ।

बल्लराभरणैर्माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितौ ॥ १४ ॥

अथशीतितमोऽध्यायः] * मूलनक्षत्रजन्मगतस्यबालस्यत्यागवर्णनम् * ५८६

सोपस्कराञ्च ताम्मूर्तिमाचार्यायनिवेदयेत् । समुच्चरन्निमं मन्त्रं व्रतकृन्निथुनं मुदा
नमो विश्वविधानज्ञेविधेविधकारिणि । सुतंबंशकरदेहितुष्टामुष्मादुव्रताच्छ्रुमात्
सहस्रं भोजयित्वाथद्विजानां भक्तिपूर्वकम् । भुक्तशेषेणचाग्नेन कुर्याद्भ्रूंपारणं ततः
इत्यमेतदुव्रतं राजंश्चिकीर्षामि त्वयासह । कुरुष्वतत्प्रियंमह्यमभीष्टफललब्धये ॥
इति भूपालवर्येण श्रुत्वा संहृष्टचेतसा । मुने व्रतं समाचीर्णं सान्तवर्ली बभूव ह ॥

तयाऽथ प्रार्थिता गौरी गर्भिण्या भक्तितोषिता ।

पुत्रं देहि महामाये! साक्षाद्विष्णवंशसम्भवम् ॥ २० ॥

जातमात्रो व्रजेत्स्वर्गं पुनरायाति चात्रवै । भक्तः सदाशिवेऽत्यर्थप्रसिद्धःसर्वभूतले
विनैव स्तन्यपानेनरोडशाब्दाकृतिःक्षणात् । एवंभूतःसुनोगौरिरियथामेस्यात्तथाकुरु
मृडान्याऽपि तथेत्युक्ता राज्ञीभक्त्याऽतितुष्टया ।

अथ कालेन तनयं मूलर्क्षे साप्यजीजनत् ॥ २३ ॥

हितैरमात्यैरथ साचिञ्जमारिष्टसंस्थिता । देवि राजार्थिनीचेस्वन्त्यजदुष्टर्क्षजंसुतम् ॥
सामन्त्रिवाक्यमाकर्ण्य केवलं पतिदेवता । अत्याक्षीत्तं तथा प्राप्तंतनयंनयकोविदा
धात्रेयिकां समाकार्यं प्राहेदं सानृपाङ्गता । पञ्चमुद्रे महापीठे विकटानाममातुका
तदग्रे स्थापयित्वाऽमुम्बालं धात्रेयिकेवद् । गौर्यादत्तःशिशुरसोतवाग्रे विनिवेदितः

राज्ञ्या पत्युः प्रियैषिण्या मन्त्रिचिञ्जित्तुष्टया ।

साऽपिराङ्ग्युदितं श्रुत्वा शिशुं लास्यशशिप्रभम् ॥ २८ ॥

विकटायाः पुरः स्थाप्य गृहं धात्रेयिका गता ।

अथसाविकटा देवी समाहूय च योगिनीः ॥ २६ ॥

उवाच नयत क्षिप्रं शिशुं मातृगणाप्रतः । तासामाह्वां च कुरुत रक्षताऽमुं प्रयत्नतः
योगिन्यो विकटावाक्यात्स्वेचर्यस्ताः क्षणेन तम् ।

निन्युर्गंगतमार्गेण ब्राह्मण्याद्या यत्र मातरः ॥ ३१ ॥

प्रणम्य योगिनीवृन्दं तंशिशुं सूर्यवर्षसम् । पुरोनिधायमातृणांप्रोवाचविकटोदितम्
ब्रह्माणी वैष्णवी रौद्री वाराही नारसिंहिका ।

कौमारी चापि माहेन्द्री चामुण्डा चैव षण्डिका ॥ ३३ ॥

दृष्ट्वा तंबालकं रम्यं विकटाप्रेषितं ततः । पप्रच्छयुं गपड्ढिभं कस्तेतातः प्रसूक्ष्ण का ॥
मातृभिश्चेति पृष्टः स यदाकिञ्चिन्न वक्ति च ।

तदा तद्योगिनीषकं प्राह मातृगणस्त्विति ॥ ३५ ॥

राजयोग्यो भवत्येष महालक्षणलक्षितः । पुनस्तत्रैवनेतव्ययोगिन्यस्त्वविलम्बितम्
पञ्चमुद्रामहादेवी तिष्ठते यत्र काम्यदा । यस्याः संसेवनान्मृणा निर्वाणश्रीरदूरतः
सर्वत्र शुभजन्मिन्यां काश्यां मुक्तिः पदेपदे ।

तथापि सविशेषं हि तत्पीठं सर्वसिद्धिकृत् ॥ ३८ ॥

तत्पीठसेवनादस्य षोडशाब्दाकृतेः शिशोः । सिद्धिर्भवति त्रीपरमाविश्वेशानुग्रहात्परात्
एवं मातृगणाशीर्मर्यादगिनीभिः क्षणेन हि । प्रापितो मातृवाक्येन पञ्चमुद्राङ्कितं पुनः
सम्प्राप्य तन्महापीठं स्वर्गलोकादिहागतः । आनन्दकानने दिव्यं ततापघिपुलं तपः
तपसाऽतीवतीव्रेण निश्चलेन्द्रियचेतसः । तस्य राजकुमारस्य प्रसन्नोऽभूदुमाधवः ॥
आविर्बभूव पुरतो लिङ्गरूपेण शङ्करः । प्रोवाच च प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि नृपाङ्गज !

स्कन्द उवाच

सर्वज्योतिर्मयं लिङ्गं पुरतो वीक्ष्य बाङ्मयम् ।

सप्तपातालमुद्दिद्य स्थितं बृहदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥

प्रणम्य दण्डबद्धभूमौ परितुष्टाव धूर्जटिम् । सूक्तैर्जन्मान्तराभ्यस्तैः सुहृष्टोरुद्रदेवतैः
ततः प्रसन्नो भगवान्देवदेवो महेश्वरः । सन्तुष्टस्तपसा तस्य प्रोवाच वृषभध्वजः
देवदेव उवाच

घरं वरय संतप्ततपसाकलेशितं वपुः । न्वयेदं बालवपुषा वशीकृतं मनो मम ॥ ४७ ॥

शिबोकं च समाकर्ण्य वरदानं पुनः पुनः । घरं च प्रार्थयाञ्चक्रे परिहृष्टतनूरुहः ॥ ४८ ॥

कुमार उवाच

देवदेवमहादेव! यदि देवो वरो मम । तदत्र भवता स्थेयं भवतापहृता सदा ॥ ४९ ॥

अस्मिँल्लिङ्गे स्थितः शम्भो! कुरु भक्तसमीहितम् ।

विना मुद्रादिकरणं मन्त्रेणाऽपि विना विमो ॥ ५० ॥

दिश सिद्धिं परामत्र दर्शनात्स्पर्शान्नात्रतेः । अस्यलिङ्गस्यये भक्तामनोवाक्कायकर्मभिः
सदैवानुग्रहस्तेषु कर्तव्यो वरपप मे । इति तद्वरमाकर्ण्य लिङ्गरूपोऽवदत्प्रभुः ॥ ५२
एवमस्तु यदुक्तं ते वीरवैष्णवसूनुना । जनेतुर्विष्णुभक्ताश्च राज्ञो ऽमित्रजितोभवान्
विष्णवंश एवमुत्पन्नो मम भक्तिपराङ्मज्ज । वीर ! वीरेश्वरं नामलिङ्गमेतत्त्वदाख्यया
काश्यां दास्यत्यभीष्टानि भक्तानां चिन्तितान्यहो ।

अस्मिंलिङ्गे सदा वीर! स्थास्याम्यद्यदिनावधि ॥ ५५ ॥

दास्यामि च परां सिद्धिमाश्रितेभ्यो न संशयः ।

परं न महिमानं मे कलौ कश्चिच्च वेत्स्यति ॥ ५६ ॥

यस्तु वेत्स्यति भाग्येन सपरां सिद्धिमाप्स्यति । अत्रजम्रंहुतंदत्तंस्तुतमचित्तमेववा
जीर्णोद्धारदि करणमक्षयफलहेतुकम् । त्वंतुराज्यंपरंप्राप्य सर्वभूपालदुर्लभम् ॥

भुक्त्वा भोगांश्च विपुलानन्ते सिद्धिमवाप्स्यसि ।

पुरी वाराणसी रम्या सर्वस्मिज्जगतीतले ॥ ५६ ॥

पुण्यस्तत्रापि सम्भेदःसरितोरसिगङ्गयोः । ततोऽपिचहयग्रीवंतीर्थञ्चैवातिपुण्यदम्
यत्र विष्णुर्हयग्रीवो भक्तचिन्तितमर्पयेत् । हयग्रीवाच्चवंतीर्थाद्गजतीर्थंविशिष्यते
यत्र वै स्नानमात्रेण गजदानफलं लभेत् । कोकावराहतीर्थञ्च पुण्यदं गजतीर्थतः
कोकावराहमभ्यर्च्य तत्र नो जन्मभागजनः । अपिकोकावराहाच्चदिलीपेश्वरसन्निधौ
दिलीपतीर्थं सुश्रेष्ठं सद्यःपापहरंपरम् । ततः सगरतीर्थञ्च सगरेससमीपतः ॥ ६४
यत्र मज्जन्नरोमज्जेन्नभूयोदुःखसागरे । सप्तसागरतीर्थञ्चशुभंसगरतीर्थतः ॥ ६५ ॥

सप्ताब्धिस्नानजं पुण्यं यत्र स्नात्वा नरो लभेत् ।

महोदधीतिविरुयातं तीर्थं सप्ताब्धितीर्थता ॥ ६६ ॥

सकृद्यत्राऽऽप्लुतो धीमान्दहेदधमहोदधिम् । वीरतीर्थं ततःपुण्यंकपिलेश्वरसन्निधौ
पापं सुवर्णचौर्यादि यत्र स्नात्वाऽक्षयं व्रजेत् ।

हंसतीर्थं ततोपीडय' केदारेश्वरसन्निधौ ॥ ६८ ॥

हंसस्वरूपी यत्राऽहं नयामि ब्रह्मदेहिनः ॥ ६६ ॥

ततस्त्रिभुवनाख्यस्य केशवस्याऽतिपुण्यदम् ।

तीर्थं यत्राऽऽप्लुता मर्त्या मर्त्यलोकं विशन्ति न ॥ ७० ॥

गोव्याघ्रेभ्वरतीर्थं चततोऽप्यधिकमेव हि । स्वभावधैरमुत्सृज्ययत्रोभौसिद्धिमापतुः
ततोऽपि हिवरं वीरतीर्थं मान्धातुसञ्ज्ञितम् । चक्रवर्तिपदंयत्र प्राप्तंतेनमहीभुजा ॥
ततोऽपिमुकुकुन्दाख्यंतीर्थंचातीवपुण्यदम् । यत्रस्नातो नरो जातुरिपुभिर्नाऽभिभूयते
पृथुतीर्थं ततोऽप्युच्चैःश्रेयसांसाधनं परम् । पृथ्वीभ्वरंयत्रद्रूपानरः पृथ्वीपतिर्भवेत्
ततः परशुरामस्यतीर्थंचातीवसिद्धिदम् । यत्रक्षत्रवधात्पापाज्जामदग्न्योविमुक्तवान्
अद्याऽपि क्षत्रवधजं पापं तत्र प्रणश्यति । एकेन स्नानमात्रेण ज्ञानाज्ञानकृतेन च ॥

ततोऽपि श्रेयसां कर्तुं तीर्थं कृष्णाप्रजस्य हि ।

यत्र सूतवधात्पापाद्बलदेवो विमुक्तवान् ॥ ७१ ॥

दिबोदासस्य वै तीर्थं तत्र राहोऽतिमेधसः ।

तत्र स्नातो नरो जातु न ज्ञानाच्छयवतेऽन्ततः ॥ ७८ ॥

ततोपि हि महातीर्थं सर्वपापप्रणाशतम् । यत्रभागीरथीसाक्षान्मूर्तिरूपेण तिष्ठति ॥
स्नात्वा भागीरथीतीर्थे कृत्वा श्राद्धं विधानवित् ।

दत्त्वा दानं च पात्रेभ्यो न भूयो गर्भभागभवेत् ॥ ८० ॥

हरपापं च भोधीर तीर्थंभागीरथीतटे । तत्र स्नात्वाक्षयं यान्ति महापापकुलान्यपि
यो निष्पापेश्वरं लिङ्गं तत्र पश्यति मानवः ।

निष्पापो जायते वीर! स तल्लिङ्गैक्षणत्क्षणात् ॥ ८२ ॥

दशाश्वमेधतीर्थं च ततोऽपि प्रवरं मतम् । दशानामश्वमेधानांयत्रस्नात्वाफलंलभेत्
ततोऽपि शुभदं वीर! बन्दीतीर्थंप्रचक्षते । यत्रस्नातो नरो मुच्येदपि संसारबन्धनात्
हिरण्याक्षेण दैत्यैर्नबहुशोद्वेचताः पुरा । बन्दीकृतानिगडितास्तुष्टुधुर्जं गदम्बिकाम्

ततो विभ्रुङ्गुलीभूतैर्बन्दिता यज्जगज्जनिः ।

तदा प्रभृतिबन्दीति गीयतेऽद्यापि मानवैः ॥ ८६ ॥

बन्दीतीर्थं तु तत्रैव महानिगडखण्डनम् । यत्र स्नातो विमुच्येतसर्वस्मात्कर्मपाशतः
बन्दीतीर्थं महाश्रेष्ठं काशिपुर्यां विशाम्पते !।

तत्र स्नातो नरो यायाद्विमुक्तिं देव्यनुग्रहात् ॥ ८८ ॥

ततोऽपि हिश्रेष्ठतरं प्रयागमितिचिञ्चुतम् । प्रयागमाधवो यत्र सर्वयागफलप्रदः ॥
क्षोणीबराहतीर्थंचततोऽपिशुभदं परम् । तत्र स्नातो नरो जातुतिर्यग्योनिनगच्छति
ततः कालेश्वरं तीर्थं वीरश्रेष्ठतरं परम् । कलिकालौ नवाधेते यत्र स्नातं नरोत्तमम्
अशोकतीर्थं तत्रैव ततोऽप्यतितरं शुभम् । यत्रस्नातो नरो जातु नापतेच्छोकसागरे
ततोऽतिनिर्मलतरं शुक्रतीर्थं नृपाङ्गजम् । शुक्रद्वारा न जायेत यत्रस्नातो नरोत्तमः
ततोऽपिपुण्यदं राजन्भवानीतीर्थमुत्तमम् । यत्रस्नात्वा भवानीशौ दृष्ट्वा नैव पुनर्मवेत्
प्रभासतीर्थं विख्यातंततोऽपिशुभदं नृणाम् । सोमेश्वरस्यपुरतस्तत्रस्नातो नगर्भभाक्
ततोऽगुरुडतीर्थं च संसारविपनाशनम् । गरुडेशं समभ्यर्च्य तत्रस्नात्वा न शोचति
ब्रह्मतीर्थं ततः पुण्यं वीरब्रह्मेश्वरात्पुरः । ब्रह्मविद्यामवाप्नोति तत्र स्नानेन मानवः
ततो वृद्धाकंतीर्थं च विधितीर्थं ततः परम् । तत्राप्लुतो नरो यातिरविलोकंसुनिर्मलम्
ततोऽनृसिंहतीर्थं च महाभयनिवारणम् । कालादपि कुतस्तत्र स्नात्वापरिविभेतिष
ततोऽपि पुण्यदं नृणां तीर्थं चित्ररथेश्वरम् ।

यत्र स्नात्वा च दत्त्वा च चित्रगुप्तं न पश्यति ॥ १०० ॥

धर्मतीर्थं ततः पुण्यं धर्मेशपुरतःस्थितम् । तत्रश्राद्धादिकंकृत्वापितृणामनृणोभवेत्
विशालतीर्थंचिमलं विशालफलदं ततः । तत्रस्नात्वाविशालार्क्षीदृष्ट्वा गर्भे न जायते
जरासन्धेशतीर्थं च जरासन्धेशसन्निधौ । संसारज्वरपीडाभिस्तत्रस्नातो न मुह्यति
ततोऽपि ललितातीर्थं महासौभाग्यवर्धनम् ।

स्नात्वाऽर्चयित्वा ललितां न दरिद्रो न दुःखभाक् ॥ १०४ ॥

ततो गौतमतीर्थं च सर्वपापविशोधनम् ।

स्नात्वा पिण्डान्विनिर्वाप्य यत्र शोचति न क्वचित् ॥ १०५ ॥

गङ्गाकेशवतीर्थं च तीर्थं चाऽगस्त्यसङ्गकम् ।

ततस्तु योमिनीतीर्थं त्रिसन्ध्याख्यं ततः परम् ॥ १०६ ॥

ततस्तुनार्मदतीर्थं ततश्चारुन्धतेयकम् । घासिष्ठं च ततस्तीर्थं माकण्डेयमनुत्तमम्
ज्ञेयान्येतानि तीर्थानि पुण्यदान्युत्तरोत्तरम् । खुरकतरिसञ्ज्ञञ्च ततस्तीर्थमनुत्तमम्
तत्रश्राद्धादिकरणाश्रयो मुच्येत किल्बिषैः । ततोमगीरथतीर्थं राजर्षेरतिपुण्यदम्

तत्राऽल्पमपि यच्छेद्यत्कल्पान्तेऽप्यक्षयं हि तत् ।

एतेभ्योपि हि तीर्थेभ्यो लिङ्गकोटित्रयादपि ॥ ११० ॥

वीर! वीरेश्वरं लिङ्गमहाश्रेष्ठं भविष्यति । वीरतीर्थं नर स्नात्वावीरेशपरिपूज्यच
तीर्थेष्वेतेषु सर्वेषु स्नातो भवति नान्यथा । यस्तुवीरेश्वरं लिङ्गनक्तमभ्यर्चयिष्यति
तेन त्रिकोटिसङ्ख्यानि लिङ्गानीहार्चितानि वै ॥ ११२ ॥

यस्तु कामयते लक्ष्मीं मुक्तिं वा भुक्तिं वापि । तेनवीरेश्वरं लिङ्गं ससेव्यमतियत्नतः
विधायकं जागरणं नरो वीरेशमच्यन । भूताया नैव गृह्णाति शरीरपाञ्चभौतिकम्
इदं लिङ्गं सदाभ्यर्च्य सिद्धैः ससिद्धिकामुकैः ।

ऐहिकामुष्मिकान्यस्मात्सर्वान्कामान्समर्थयेत् ॥ ११५ ॥

पञ्चामृतेन स्नपनं यं करिष्यति मानव । पलेपलेफलतस्यवीरेशेवटकोटिजम् ॥
यदन्यत्रफलं लिङ्गे कोटिपुष्पप्रदानतः । तदेकेनैव पुष्पेण वीरेशे नाऽत्र सशय ॥
एकामप्याहुर्तिदंस्वावीरेश्वरसमीपतः । कोटिहोमफलसम्यङ्नात्र कार्याविचारणा
सिक्त्ये सिक्त्ये च नैवेद्ये कोटिसिक्त्यफलं भवेत् ।

अत्यल्पमपि वीरेशे कृतमक्षयतां व्रजेत् ॥ ११६ ॥

अप्येकं यो महारुद्रं जपेद्बीरेशसन्निधौ । जापयेद्वा भवेत्तस्य कोटिद्वयफलं ध्रुवम् ॥
व्रतोत्सगादिवीरेशे यत्कृतं व्रतिभिर्नृभिः । तत्कोटिगुणसख्याकं भवत्येवमसशयं
कृता अष्टौ नमस्काराद्येनवीरेश्वराग्रतः । अष्टकोटिनमस्कारफलं तस्य न सशयं ॥

सर्वासां सम्पदां स्थानमिदं लिङ्गं भविष्यति ।

वीरेश्वरं न सन्देहो वीर! मे वरदानतः ॥ १२३ ॥

ज्ञानमुत्पत्स्यते तु सां तारकाख्यं ममाऽऽज्ञया ।

जीवतामेव तत्सेव्यमेतल्लिङ्गं शुभार्थिभिः ॥ १२४ ॥

वतश्चूत्वा पुनः प्राह वीरो मिश्रजित- सुतः । प्रणम्य देवदेवेशपरिपूर्णमनोरथः
तीर्थान्येतानि देवेश! यान्युक्तानि ममाप्रतः । कृपया पुनरप्येव तदन्यानि वदः प्रभो
आदिकेशवमारभ्य तत्तीर्थाच्च भगीरथात् । येषां श्रवणमात्रेण निष्पापो जायते नरः
इति श्रुत्वा महेशानो महीपतनयोदितम् ।

पुनस्तीर्थानि गङ्गाया वक्तु समुपचक्रमे ॥ १२८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहिताया चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे वीरेश्वराविर्भावो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

वीरेश्वराख्यानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

आकर्णय क्षोणिसुर! यथास्यागुरचीकरत् ।

गङ्गावरणयोः पुण्यात्सम्भेदात्तीर्थभूमिकाम् ॥ १ ॥

सङ्गमे तत्र निष्णातः सङ्गमेश समर्च्य च । नरो न जातुजननीगर्भसङ्गमवाप्नुयात्
सत्र पादोदक तीर्थं यत्र देवेन शार्ङ्गिणा । आदौपादौ क्षालितौतुमन्द्राक्षागतेनयत्
विष्णुपादोदके तीर्थे चारिकार्यं करोति यः ।

व्यतीता तेन नियत भूय सासारिका गतिः ॥ ४ ॥

कृतपादोदकस्नानः कृतकेशवपूजनः । वीतसंसारवसतिः काश्यामासीन्नरोत्तमः

काश्या सा भूमिरुद्विष्टा श्वेतद्वीप इति द्विजैः ।

तत्र पुण्याङ्गमं कृत्वा श्वेतद्वीपाधिपो भवेत् ॥ ६ ॥

सतः पादोदकास्तीर्थास्तीर्थं क्षीरबिधिसङ्कमम् ।

तत्रार्जितमहापुण्यो वसेत्क्षीराब्धिरोधसि ॥ ७ ॥

क्षीरोदाहृक्षिणे भागे तीर्थंशङ्खाख्यमुत्तमम् । तत्रस्नातोभवेन्नृनंशङ्खादिनिधेःपतिः
अर्वाक्ष्ण शङ्खतीर्थाद्वै चक्रतीर्थमनुत्तमम् । संसारचक्रेन पतेत्ततीर्थंजलमज्जनात्
गदातीर्थं तदग्रे तु संसारगदनाशनम् । तत्र ध्राद्धादिकरणात्पश्येद्वेवंगदाधरम्
पद्माकृतपद्मतीर्थञ्च तदग्रे पितृवृत्तिकृत् । तत्र स्नानादिकरणात्प्राप्नुयादधसंक्षयम्
ततस्तीर्थं महालक्ष्म्या महापुण्यफलप्रदम् ।

तत्राऽभ्यर्च्य महालक्ष्मीं निर्वाणकमलां लभेत् ॥ १२ ॥

ततो गारुत्मतं तीर्थं संसारगरनाशनम् । कृतोदकक्रियस्तत्र वैकुण्ठे वसति लभेत्
ततो नारदतीर्थञ्च ब्रह्मविद्यैककारणम् । तत्र स्नानेन मुक्तः स्याद् दृष्टानारदकेशवम्
प्रह्लादतीर्थं तद्याग्ये महाभक्तिफलप्रदम् । तत्रवैस्नानमात्रेण विष्णोः प्रियतरोभवेत्
अम्बरीषं ततस्तीर्थं महापातकनाशनम् । तत्र वै शुभकर्माणो जनानोगर्भभाजनम्
आदित्यकेशवं नाम तदग्रे तीर्थमुत्तमम् । कृताभिषेकस्तत्रापि लभेत्स्वर्गाभिषेचनम्
दत्तात्रेयस्य तत्रास्ति तीर्थं त्रेलोक्यपावनम् ।

योगसिद्धिं लभेत्तत्र स्नानमात्रेण भावतः ॥ १८ ॥

तदग्रे भार्गवं तीर्थं महाज्ञानसमर्पकम् । तत्र स्नानविधानेन भवेद्भार्गवलोकभाक् ॥
ततोवामनतीर्थञ्च विष्णुमाश्लिष्यहेतुकम् । तत्रभ्राद्धविधानेन मुच्यतेपितृजाहूणात्
नरनारायणार्थं हि ततस्तीर्थंशुभप्रदम् । तत्तीर्थमज्जनात्पुंसां गर्भवासः सुदुर्लभः
यज्ञवाराहतीर्थञ्च ततोदक्षिणतः शुभम् । यत्र स्नातस्य वै पुंसां राजसूयफलंघृषम्
विदारनारसिंहाख्यं तीर्थं तत्रास्तिपावनम् । यत्रैकस्नानतो नश्येद्वंशजन्मशतार्जितम्
गोपीगोविन्दतीर्थञ्च ततो वैष्णवलोकदम् ।

यस्मिन्स्नातो नरो विद्वाञ्च विन्द्याद्भवेदनम् ॥ २४ ॥

लक्ष्मीनृसिंहतीर्थञ्चगोपीगोविन्ददक्षिणे । निर्वाणलक्ष्म्यायत्रत्योत्रियतेतुनरोत्तमः
सदृक्षिणायां काष्ठ्यायां शेषतीर्थमनुत्तमम् । महापापौघशेषोपिनतिष्ठेद्यन्निमज्जनात्
शङ्खमाधवतीर्थञ्च तद्याम्बांदिशिषोत्तमम् । तत्तीर्थसेवणान्नाणां कुतःपापभयम्महत्

ततोपिपावनतरंतीर्थं तत्क्षणसिद्धिदम् । नीलप्रीवाक्यमनुलंतत्स्नायीसर्षदाशुचिः
तत्रोद्वालकतीर्थञ्च सर्वाधौघविनाशनम् । ददाति महतीमृद्धिं स्नानमात्रेणतन्मृणाम्
ततः साङ्ख्याक्यतीर्थञ्च साङ्ख्येश्वरसमीपतः ।

तत्तीर्थसेवनात्पुंसा साङ्ख्ययोगः प्रसीदति ॥ ३० ॥

स्वर्लोकाद्यत्र संलीनःस्वयंदेव उमापतिः । अतःस्वर्लोनतीर्थञ्चस्वर्लोनेश्वरसन्निधौ
तत्र स्नानेन दानेन श्रद्धया द्विजभोजनैः ।

जपहोमार्चनैः पुंसामक्षयं सर्वमेव हि ॥ ३२ ॥

महिषासुरतीर्थञ्चतत्समीपेतिपावनम् । यत्रतप्त्वासदैत्येन्द्रोचिजिग्येसकलान्सुरान्
तत्तीर्थसेवकोऽद्यापि नारिभिः परिभूयते । न पातकैर्महद्विभ्रं प्रार्थितञ्च फलंलभेत्
वाणतीर्थञ्च तस्याऽऽरात्तत्सहस्रभुजप्रदम् ।

तत्र स्नातो नरो भक्तिं प्राप्नुयाच्छाम्भवीं स्थिराम् ॥ ३५ ॥

गोप्रतारेश्वरं नाम तदग्रे तीर्थमुत्तमम् । अत्रुत्रोऽपितरेद्यत्र स्नातोवैतरणीं सुखम्
तीर्थं हिरण्यगर्भाख्यं तद्याम्ये सर्वपापहृत् । तत्र स्नातो हिरण्येन मुच्यतेनकदाचन
ततः प्रणवतीर्थञ्च सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । जीवन्मुक्तोभवेत्तत्र स्नानमात्रेण मानवः
ततः पिशङ्गिलातीर्थं दर्शनादपिपापहृत् । मुने! ममाधिष्ठानंवैतदगस्तेऽतिसिद्धिदम्
स्नात्वापिशङ्गिलातीर्थेदस्वादानञ्चकिञ्चन । किंशोचतिकृतात्पापादन्यत्रापिमृतोयदि
योवैपिशङ्गिलातीर्थेस्नात्वामामर्षयिष्यति । भविष्यतिसमेमित्रंमित्रतेजःसमप्रभम्
ततश्चैचिष्टपी दृष्टिनिर्मलीकृतपुष्कलम् । तीर्थं पिलिपिलाख्यंवै मनोमलविनाशनम्
तत्रश्राद्धादिकरणार्थीनानाद्यप्रतर्पणात् । महतींश्रियमाप्नोतिमानवोतीर्षभिश्चलाम्
ततो नागेश्वरं तीर्थं महाघपरिशोधनम् । तत्तीर्थमज्जनादेव भवेत्सर्वाघसङ्ख्यः ॥

तद्वक्षिणे महापुण्यं कर्णादित्याख्यमुत्तमम् ।

तीर्थं यत्राप्लुतो मर्त्यो भास्करीं श्रियमावहेत् ॥ ४५ ॥

ततो भैरवतीर्थञ्च महाघौघक्षयप्रदम् । अतुरथोदयकरंसर्षविघ्ननिवारणम् ॥ ४६ ॥

भौमाष्टक्यान्तत्र नरः स्नात्वा सन्तर्पयेत्पितृन् ।

दृष्ट्वा च भैरवं कालं कलिं कालञ्च सञ्जयेत् ॥ ४७ ॥

तीर्थं कर्बवृत्सिहाक्यं तीर्थद्वै रवतः पुरः । तत्रस्नातस्यवैपुंसःकुतोद्यजनितम्भयम्
 सृकण्डस्य मुनेस्तीर्थतद्यांश्यामत्तिनिर्मलम् । तत्रस्नानेनमर्त्यानांनापायमरणंकञ्चित्
 ततः पञ्चनदाख्यं वै सर्वतीर्थनिषेचितम् । तीर्थंयत्र नरः स्नात्वा नसंसारी पुनर्भवेत्
 ब्रह्माण्डोदरवर्तीनि यानि तीर्थानि सर्वतः । ऊर्जे यत्रसमायान्तिस्वाधौघपरिनुत्तये
 सर्वदा यत्र सर्वाणि दशम्यादिदिनत्रयम् । तिष्ठन्तितीर्थंघर्याणि निजनैर्मल्यहेतवे
 भूरिशःसर्वतीर्थानि मध्ये काशिपदेपदे । परम्पाञ्चनदः कैश्चिन्महिमानापिकुत्रचित्
 अप्येकंकार्तिकस्याऽहस्तत्रवै सफलीकृतम् । जपहोमार्चनादानैः कृतकृत्यास्तपस्रहि
 सर्वाण्यपि च तीर्थानि युगपत्तुलितान्यपि ।

नाधिजग्मुः पञ्चनद्याः कला याअपि तुल्यताम् ॥ ५१ ॥

स्नात्वा पाञ्चनदेतीर्थे दृष्ट्वा वै बिन्दुमाधवम् । नजातुजायते धीमाञ्जननीजठराजिरो
 ततो ज्ञानहृदं तीर्थं जडानामपि जाड्यहृत् ।

तत्र स्नातो नरो जातु ज्ञानभ्रंशं न चाऽऽप्नुयात् ॥ ५७ ॥

तत्र ज्ञानहृदे स्नात्वा दृष्ट्वा ज्ञानेश्वरं नरः ।

ज्ञानं तदधिगच्छेद्वै येन नो बाध्यते पुनः ॥ ५८ ॥

ततोऽस्ति मङ्गलंतीर्थं सर्वांमङ्गलनाशनम् । तत्रावगाहनंकृत्वा भवेन्मङ्गलभाजनम्
 अमङ्गलानि नश्येयुर्भवेयुर्मङ्गलानिच । स्नातुर्वैमङ्गलेतीर्थेनमस्कृतुंभ्रमङ्गलम् ॥ ६० ॥
 मयूखमालिनस्तीर्थं तदग्रे मलनाशनम् । तत्राप्लुतोगमस्तीशचिलोक्यविमलोभवेत्
 मखतीर्थन्तु तत्रैव मखेश्वरसमीपतः । मखजम्पुण्यमाप्नोति तत्र स्नातो नरोत्तमः
 तत्पार्श्वे बिन्दुतीर्थञ्च परमज्ञानकारणम् । तत्र श्राद्धादिकं कृत्वालभेत्सुकृतमुत्तमम्

पिप्पलादस्य च मुनेस्तीर्थं तद्याम्यदिक्स्थितम् ।

स्नात्वा शनेर्दिने तत्र दृष्ट्वा वै पिप्पलेश्वरम् ॥ ६४ ॥

पिप्पलं तत्र सेचित्वा अश्वत्थ इति मन्त्रतः ।

शनिपीडां न लभते दुःस्वप्नञ्चापि नाशयेत् ॥ ६५ ॥

ततस्ताम्रवराहार्यं तीर्थञ्जैवातिपावनम् । यत्रस्नानेनदानेन नमज्जेइघसागरे ॥

तदग्रे कालगङ्गा च कलिकलमषनाशिनी ।

तस्यां स्नात्वा नरो धीमांस्तत्क्षणाभिरवो भवेत् ॥ ६७ ॥

इन्द्रद्युम्नं महातीर्थमिन्द्रद्युम्नेश्वराग्रतः । तोयकृत्यन्तत्र कृत्वा लोकमैन्द्रमघाप्नुयात्
ततस्तु रामतीर्थञ्च वीररामेश्वराग्रतः । तत्तीर्थस्नानमात्रेण वैष्णवं लोकमाप्नुयात्
तत ऐश्वर्याकं तीर्थं सर्वाधौवविनाशनम् । तत्रस्नानेन पूतात्मा जायतेमनुजोत्तमः
मरुत्ततीर्थं तत्प्रान्ते मरुत्तेश्वरसन्निधौ । तत्र स्नात्वा तमर्च्यंशं महदैश्वर्यमाप्नुयात्
मैत्रावरुणतीर्थञ्च ततः पातकनाशनम् । तत्र पिण्डप्रदानेन पितृणाम्भक्तिः प्रियः ॥
ततोऽग्नितीर्थं विमलमग्नीशपुरतोमहत् । अग्निलोकमवाप्नोति तत्तीर्थपरिमज्जनात्
अङ्गारतीर्थं तत्रैव अङ्गारेश्वरसन्निधौ । तत्राङ्गारचतुर्ध्यातुस्नात्वानिष्पापतामियात्
तनोवैकलतीर्थं च्चकलशेश्वरसन्निधौ । स्नात्वातल्लिङ्गमभ्यर्च्यकलिकालान्निभ्यति
चन्द्रतीर्थं च तत्रैवचन्द्रेश्वरसमीपतः । तत्र स्नात्वाचर्यचन्द्रेशं चन्द्रलोकमवाप्नुयात्
तदग्रे वीरतीर्थं च्च वीरेश्वरसमीपतः । यदुक्तमग्रे तव पुरस्तीर्थानामुत्तमं परम् ॥

विघ्नेशतीर्थं च ततः सर्वविघ्नविघातकृत् ।

जातुचित्तत्र संस्नातो नविघ्नैरभिमूयते ॥ ७८ ॥

हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेस्ततस्तीर्थमनुत्तमम् ।

यत्र स्नातो नरो जातु न सत्याच्यवते क्वचित् ॥ ७९ ॥

हरिश्चन्द्रस्य तीर्थं तु यच्छ्रेयः समुपाजितम् ।

तदक्षयफलं वीर! इहलोके परत्र च ॥ ८० ॥

ततः पर्वततीर्थञ्च पर्वतेशसमीपतः । सर्वपर्वफलं तस्य स्नात्वा पर्वण्यपर्वणि ॥
कम्बलाश्वतरं तीर्थं तत्र सर्वविषापहम् । तत्र स्नातोभवेन्मर्त्योऽंगीतविद्याविशारदः
ततः सारस्वतन्तीर्थं सर्वविद्योपपादकम् । तिष्ठेद्युः पितरस्तत्र सहदैवर्षिमानवैः ॥

उमातीर्थं तु तत्रैव सर्वशक्तिसमन्वितम् ।

अमीयेलोकप्राप्त्यै स्यात्स्नानमात्रेण निश्चितम् ॥ ८४ ॥

ततस्त्रिलोकीविख्यातं त्रिलोक्युद्धरणक्षमम् ।

तीर्थं श्रेष्ठतरं वीर! यदाख्या मणिकर्णिका ॥ ८५ ॥

चक्रपुष्करिणीतीर्थं तदादौ विष्णुनाकृतम् । तदाख्याकर्जनादेवसर्वेःपापैःप्रमुच्यते
स्वर्गोक्तसस्त्रिसन्ध्यवैजपन्तिमणिकर्णिकाम् । यन्नामग्रहणम्पुंसांश्रेयसेपरमायहि
बैःश्रुतायैः स्मृतावीर! यैर्द्रुष्टामणिकर्णिका । तएवकृतिनोलोकेकृतकृत्यास्त्वप्वहि
त्रिलोके ये जपन्तोहमानवामणिकर्णिकाम् । जपामितानंह्यावीरत्रिकालंपुण्यकर्मणः
इष्टंतेन महायज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः । पञ्चाक्षरीमहाविद्यायेनोक्तामणिकर्णिका ॥
महादानानि दत्तानि तेन वैपुण्यकर्मणा । येनाहमर्चितो वीरसम्प्राप्यमणिकर्णिकाम्
मणिकर्ण्यम्बुमिर्येन तर्पिताः प्रपितामहाः ।

तेन ध्राद्धानि दत्तानि गयायां मधुपायसैः ॥ ९२ ॥

मणिकर्णोजलं येन सम्पीतं शुद्धबुद्धिना । किन्तस्यसोमपानैस्तेःपुनरावृत्तिलक्षणैः
तेस्नाताः सर्वतीर्थेषुमहापर्वसुभूरिशः । तथा च सर्वावभृथैर्यैःस्नातामणिकर्णिका
तैः सुराः पूजिताः सर्वे ब्रह्मविष्णुमुखा मुखैः ।

यं स्वर्णकुसुमै रत्नैरर्चिता मणिकर्णिका ॥ ९५ ॥

अहं ते नो मया साङ्गं दीक्षां सम्प्राप्य शाम्भवीम् ।

अर्चितः प्रत्यहं येन पूजिता मणिकर्णिका ॥ ९६ ॥

तपांसिनेनतप्तानि शीर्षपर्णादिना चिरम् । सेविताभ्रद्धयायेनश्रीमतीमणिकर्णिका
दरवादानानिभूरीणिमखानिद्रातुभूरिशः । चिरन्तत्त्वाप्यरण्येषुस्वर्गोभ्वर्यान्महीःपुनः
विपुलेऽत्र महीपुष्टेपञ्चकोश्यां मनोहरा । संश्रितामणिकर्णोयैस्तेयाताश्चानिवर्तकाः
दानानाञ्च क्रतानाञ्च क्रतूनां तपसामपि । इदमेव फलं मन्ये यदाप्यामणिकर्णिका ॥

मोक्षलक्ष्मीरियं साक्षाच्छ्रीमती मणिकर्णिका ।

प्रायोऽस्या महिमानं वै न वेद्म्यहमपि स्फुटम् ॥ १०१ ॥

अवाच्यां मणिकर्ण्याश्च तीर्थैश्चाशुपतम्परम् ।

तीर्थं तु रुद्रवासाख्यं विश्वतीर्थमतः परम् ॥ १०२ ॥

मुक्तितीर्थं ततो रम्यमधिमुकमथोत्तमम् ।

तीर्थं च तारकं स्कान्दं दुण्डेस्तीर्थं ततोऽपि च ॥ १०३ ॥

भवानेयमथंशानं ज्ञानतीर्थमथोत्तमम् । नन्दितीर्थं विष्णुतीर्थं तीर्थं पैतामहंततः
नाभितीर्थमिदञ्चैव ब्रह्मनालमतःपरम् । ततोभागीरथन्तीर्थं यत्तवाग्रे पुराऽकथि
तीर्थान्युत्तरघाहिन्या स्वधुंन्या काशिसन्निधौ ।

सन्त्यनेकानि पुण्यानि मयोक्तान्यल्पशः पुनः ॥ १०६ ॥

तत्राऽपिनितराश्रेष्ठापञ्चतीर्थीनृपाङ्गज ! । यस्यास्नात्वानरोभूयोगर्मवासंनसंस्मरेत्
प्रथमञ्चासिसम्भेदं तीर्थानां प्रवरम्परम् । ततोदशाश्वमेधाख्यंसर्वतीर्थनिषेधितम्
ततः पादोदकं तीर्थमादिकेशवसन्निधौ । ततः पञ्चनदम्पुण्यं स्नानमात्रादघौघहृत्
पतेषामपि तीर्थानां चतुर्णामपि सत्तम ! । पञ्चमंमणिकर्ण्याख्यंमनोव्यवशुद्धिदम्
अहंस्नाम्यत्र सततमुमयासहपर्वसु । ब्रह्मणा चिन्मुना साद्धं सहेन्द्रादिसुरारिभिः ॥
अतएवाऽत्र गीयेतगाथेयश्रुतिसम्भता । नागलोककृताघासैः स्वर्गोकोभिश्चसन्ततम्
सत्यं सत्यंपुनःसत्यंसत्यपूर्वमिदंवच । मणिकर्णीसमन्तीर्थं नास्तिब्रह्माण्डगोलके
पञ्चतीर्थ्यां नरः स्नात्वा न देहम्पाञ्चभौतिकम् ।

शृणाति जातुचित्काश्या पञ्चास्यो वाऽथ जायते ॥ ११४ ॥

इति दत्तावराण्डेवो धीरेस्याऽन्तर्दधेहरः । सचवीरोपिवीरेशंप्राच्यप्राप्तःसमीहितम

स्कन्द उवाच

तीर्थाध्यायमिमं पुण्यमगस्ते! यो निशामयेत् ।

तस्याऽद्यं सङ्ख्यं यायादपि जन्मशतार्जितम् ॥ ११६ ॥

इति धीरेश्वराख्यानं तीर्थाख्यानप्रसङ्गतः । कथितं तेषुरागस्त्यकामेशंकथयाम्यतः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहिताया चतुर्थेकाशीखण्डे

उत्तरार्धेधीरेश्वराख्यानं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

कामेशतीर्थवर्णनपुरस्सरंदुर्वाससेवरप्रदानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

जगज्जनन्याः पार्वत्याःपुरोऽगस्ते! पुरारिणा ।

यथाऽऽख्यायि कथा पुण्या तथा ते कथयाम्यहम् ॥ १ ॥

पुरा महीमिमांसर्वाससमुद्राद्रिकानननाम् । ससरित्कांसार्षां चसग्रामपुरपत्तनाम्
परिभ्रम्य महातेजा महामर्षीमहातपाः । दुर्वासाः सम्परिप्राप्तः शम्भोरानन्दकाननम्
विलोक्याऽऽक्रीडमखिलं बहुप्रासादमण्डितम् ।

बहुकुण्डतडागञ्च शम्भोस्तोषमुपागमत् ॥ ४ ॥

पदेपदेमुनीनाञ्च जितकालमहाभियाम् । दृष्टोऽजानिरभ्याणिदुर्वासाधिस्मितोऽभवत्
सर्वर्तुकुसुमान्वृक्षान्सुच्छायस्निग्धपलवान् ।

सफलान्सुलताशिलष्टान्दृष्ट्वा प्रीतिमगान्मुनिः ॥ ६ ॥

दुर्वासाश्चातिहृष्टोऽभूद् दृष्ट्वा पाशुपतोत्तमान् ।

भूतिभूषितसर्वाङ्गां जटाजटितमौलिकान् ॥ ७ ॥

कौपीनमात्रवसनान्स्मरारिध्यानतत्परान् । कक्षीकृतमहालाबन्हुडुत्कारजिताम्बुदान्
करण्डदण्डपानीयपात्रमात्रपरिग्रहान् । क्वचित्त्रिदण्डिनोदृष्ट्वा निःसङ्गाभिष्परिग्रहान्
कालादपि निरातङ्गान्विश्वेशशरणं गतान् । क्वचिद्वेदरहस्यज्ञानाबाल्यब्रह्मचारिणः
नित्यंभागीरथीस्नानपरिपिङ्गलमूर्धजान् ।

अलोक्य काश्यां दुर्वासा ब्राह्मणान्मुमुदेतराम् ॥ ११ ॥

पशुष्वपि च या तुष्टिर्मुं गेष्वपि च या द्युतिः ।

तिर्यङ्श्वपि च या हृष्टिः काश्यां नान्यत्र सा स्फुटम् ॥ १२ ॥

इदं सुश्रेयसो व्युष्टिः कामरेषु त्रिविष्टपे । यत्र तेष्वपि तिर्यङ्क्षु परमानन्दवर्धिनी ॥

वरमेतेऽपि पशवामानन्द्वनचारिणः । सदानन्दाः पुनर्देवा न नन्दनचनाश्रिताः ॥ १४ ॥

वरं काशीपुरीवासीम्लेच्छोऽपि हि शुभायतिः ।

नान्यत्रत्यो दीक्षितोऽपि स हि मुक्तेरभाजनम् ॥ १५ ॥

वेश्वेश्वरी पुरीचैषा यथा मे चित्तहारिणी । सर्वापिनतथाक्षोणीनस्वर्गोन्वैवनागभूः
स्यैर्यम्बबन्ध न कापिभ्रमतो मे मनोगतिः । सर्वस्मिन्नपिभूमागेयथास्यैर्यमगादिह
रम्यापुरी भवेदेषा ब्रह्माण्डादखिलादपि । परिष्टुत्येति दुर्घासाश्चेतोवृत्तिमवापह
तप्यमानोऽपि हि तपः सुचिरं समहातपाः ।

यदा नाऽऽप फलं किञ्चिच्चुकोप च तदा भृशम् ॥ १६ ॥

धिकस्रमां तापसं दुष्टं धिक्चमेदुश्चरंतपः । धिक्चक्षेत्रमिदंशम्भोःसर्वेषाञ्चप्रतारकम्
यथा न मुक्तिरत्र स्यात्कस्यापिकरवै तथा । इतिशप्तुंयदोद्युक्तः सञ्जहासतदाशिव
तत्रल्लिङ्गमभूदेकं रुयातंप्रहसितेश्वरम् । तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसामानन्दःस्यात्पदे पदे ॥
उवाचविस्मयाचिष्टोमनस्येवमहेशिता । ईदृशेभ्यस्तपस्विभ्योनमोस्तिबतिपुनःपुनः
यत्रैव हि तपस्यन्तियत्रैवविहिताश्रमाः । लब्धप्रतिष्ठायत्रैव तत्रैवचामर्षिणोद्विजाः
मनाक् चिन्तितमात्रं तु चेल्लमन्ते न तापसाः ।

क्रुधा तदैव जीयन्ते हारिण्या तपसा श्रियः ॥ २५ ॥

तथापितापसामान्याः स्वश्रेयोवृद्धिकाङ्क्षिभिः ।

अक्रोधनाः क्रोधना वा का चिन्ता हि तपस्विनाम् ॥ २६ ॥

इतिवाचन्महेशानोमनस्येवविचिन्तयेत् । तावत्तक्रोधजोवह्निर्यानशोव्योममण्डलम्
तत्क्रोधानलधूमौघैर्व्यापितंयन्नभोऽङ्गणम् । तद्वधाति नभोऽद्यापिनीलिमानंमहत्तरम्
ततोगणाः परिभुञ्जाःप्रलयार्णवनीरवत् । आःकिमेतत्किमेतद्भ्रू भाषमाणाःपरस्परम्
गर्जन्तस्तर्जयन्तश्च प्रोद्यतायुधपाणयः । प्रमथाः परितस्थुस्ते परितोधामशाम्भवम्
को यमः कोऽथवा कालः को मृत्युः कस्तथान्तकः ।

• 'को वा विधाता के लेखाः क्रुद्धेष्वस्मासु कः परः ॥ ३१ ॥

अग्निं पिबामो जलवच्चूर्णोक्तुर्मोऽखिलात्गिरीन् ।

सप्ताऽपि खार्णवांस्तूर्णं करवाम महस्थलीम् ॥ ३२ ॥

पातालञ्जानयामोर्ध्वमधोदध्मोऽथवा दिवम् । एकमेव हि वा प्रासं गगनं करवामहे
ब्रह्माण्डभाण्डमथवा स्फोटयामः क्षणेन हि ।

आस्फालयामो वाऽन्योन्यं कालं मृत्युञ्ज तालवत् ॥ ३४ ॥

प्रसामो वाऽथभुवनं मुक्त्वावाराणसीपुरीम् । यत्रमुक्ताभवन्त्येवमृतमात्रेणजन्तवः
कुतोऽयम्भ्रमसम्भारो ज्वालाचलयः कुतस्त्वम् ।

को वा मृत्युञ्जयं रुद्रं नो विद्यान्मदमोहितः ॥ ३६ ॥

इतिपारिवदाः शम्भोर्महाभयभयप्रदाः । जल्पन्तः कल्पयामासुःप्राकारं गगनस्पृशाम्
शकलोकृत्यबहुशः शिलावत्प्रलयानलम् । नन्दी च नन्दिपेणश्च सोमनन्दी महोदरः
महाहनुर्महाप्रीवो महाकालोजितान्तकः । मृत्युप्रकम्पनोभीमोघण्टाकर्णो महाबलः

क्षोभणो द्रावणो जृम्भी पञ्चास्यः पञ्चलोचनः ।

द्विशिरास्त्रिशिराः सोमः पञ्चहस्तो दशाननः ॥ ४० ॥

चण्डो भृङ्गिरिटिस्तण्डी प्रचण्डस्ताण्डवप्रियः ।

पिचिण्डिलः स्थूलशिराः स्थूलकेशो गभस्तिमान् ॥ ४१ ॥

क्षेमकःक्षेमधन्वाचवीरभद्रोरणप्रियः । चण्डपाणिः शूलपाणिः पाशपाणिः कृशोदरः
दीर्घग्रीवोऽथपिङ्गाक्षः पिङ्गलः पिङ्गमूर्धजः । बहुनेत्रोलम्बकर्णः खर्वः पर्वतविप्रहः
गोकर्णोगजकर्णश्च कोकिलाख्यो गजाननः । अहंवैनैगमेयश्च विकटास्योऽट्टहासकः
सीरपाणिः शिवारावो वैणिको वेणुवादनः । दुराघर्षोदुःसहश्च गर्जनोरिपुतर्जनः
इत्यादयो गणेशानाः शतकोटिदुरासदाः ।

काश्यांनिवारयामासुरपि प्रामञ्जनीं गतिम् ॥ ४६ ॥

श्रुत्वेषु तेषुवीरेषु चकम्पेभुवनत्रयम् । दुर्वाससश्चकोपाग्निज्वालाभिर्व्याकुलीकृतम्
तदाविचिशतुः काश्यां सूर्याचन्द्रमसावपि । न गणैरकृतानुद्धौतत्तेजःशमितप्रभौ
निवार्यप्रमथानीकमतिभ्रुग्धमुमाधवः । मर्दंश एव हि मुनिरानसूयेय एव वै ॥ ४६

अथो दुर्वाससो लिङ्गादाचिरासीत्कृपानिधिः ।

महातेजोमय शम्भुर्मुनिशापात्पुरीमघ्न ॥ ५० ॥

माभूच्छापोमुने काश्यानिर्वाणप्रतिबन्धक । इत्यनुकोशतोदेवस्तस्यप्रत्यक्षतांगत
उवाच च प्रसन्नोऽस्मि महाक्रोधन! तापस! । धरयस्ववर कस्तेमयादेयोऽविशङ्कित
ततोचिलज्जितोऽगस्त्यशापोद्यतकरोमुनि । अपराद्धम्बहुमया क्रोधान्धेनेतिदुर्धिया
उवाच चेतिबहुशो विद्वाक्रोधवशगतम् । त्रैलोक्याभयदाकाशीशप्तमुद्यतचेतसम्
तु खार्णवनिमग्नाना यातायातेति खेदिनाम् ।

कमपाशितकण्ठाना काश्येका मुक्तिसाधनम् ॥ ५१ ॥

सर्वेषा जन्तुजाताना जनन्येकैवकाशिका । महामृतस्तन्यदात्रीनेत्री च परमम्पदम्
जनन्यासहनोकाशी लभेदुपमितिकच्चित् । धारयेज्जननीगर्भे काशीगर्भाद्विमोषयेत्
एवम्भूता तु य काशीमन्योऽपि हि शपिष्यति ।

तस्यैव शापो भविता न तु काश्या कथञ्चन ॥ ५२ ॥

इतिदुर्वाससोवाक्यश्रुत्वादेवस्त्रिलोचन । अतीवतुषितोजात काशीस्तघनलब्धमुत्
य काशीं स्तौति मेधावी य काशीं हृदि धारयेत् ।

तेन तप्त तपस्तीव्रं तेनेष्ट क्रतुकोटिमि ॥ ६० ॥

जिह्वाप्रे वतते यस्य काशीत्यक्षरयुग्मकम् । न तस्यगमवास स्यात्कचिदेवसुमेधस
योमन्त्रज्ञपतिप्रात काशीषण्डयात्मकम् । सतुलोकद्वयजित्वालोकातीतव्रजेत्पदम्
आनसूयेयतेज्ञान काशीस्तघनपुण्यत । यथेदानीं समुत्पन्न तथा न तपस पुरा ॥
मुनेन मे प्रियस्तद्वद्वीक्षितो मम पूजक । यादृकप्रियतर सत्य काशीस्तघनलालस-
तादृकतुष्टिन मे दानैस्तादृकतुष्टिनं मे मखै ।

न तुष्टिस्तपसा तादृग्यादृशी काशिसस्तवै ॥ ६५ ॥

आनन्दकाननं येन स्तुतमेतत्सुचेतसा । तेनाहसंस्तुत सम्यक् सर्वै सूक्तै श्रुतीरितै-
तवकामा समृद्धा स्युरानसूयेय तापस! । ज्ञानन्ते परम भाषि महामोहविनाशनम्
अपरञ्चवरम्ब्रह्मि किं दातव्यन्तवाऽनघ । त्वादृशाप्य मुनयः श्लाघनीयायत सताम्
यस्यास्त्यैव हि सामर्ष्यं तपस क्रुद्ध्यतीह स ।

कुपितोऽप्यसमर्थस्तु किं कर्ता क्षीणवृत्तिषत् ॥ ६६ ॥

इति श्रुत्वापरिष्टुत्य दुर्वासाः कृत्तिवाससम् । वरञ्चप्रार्थयामास परिहृष्टतनूढः
दुर्वासा उवाच

देवदेवजगन्नाथ! करुणाकर शङ्कर! । महापराधविध्वंसिन्नधकारेस्मरान्तक !
मृत्युञ्जयोभ्रभूतेश मृडानीश त्रिलोचन! । यदि प्रसन्नो मे नाथ यदि देवो वरो मम
तदिदं कामदं नाम लिङ्गमस्त्विह धूर्जटे! ।

इदं च पल्वलं मेऽत्र कामकुण्डाख्यमस्तु वै ॥ ७३ ॥

देवदेव उवाच

एवमस्तुमहातेजो मुने परमकोपन! । यस्वया स्थापितंलिङ्गं दुर्वासेश्वरसञ्ज्ञितम्
तदेव कामकृन्नृणां कामेश्वरमिहास्त्विति । यः प्रदोषेत्रयोद्दृश्यां शनिबासरसंयुजि
संस्नास्यति नरो धीमान्कामकुण्डे त्वदास्पदे ।

त्वत्स्थापितञ्च कामेशं लिङ्गं द्रक्ष्यति मानवः ॥ ७६ ॥

स वैकामकृताद्दोषाद्यामीं नाप्स्यति यातनाम् ।

बहवोऽपि हि पाप्मानो बहुभिर्जन्मभिः कृताः ॥ ७७ ॥

कामतीर्थाभ्युसंस्नानाद्यास्यन्ति विलयं क्षणात् ।

कामाः समृद्धिमाप्स्यन्ति कामेश्वरनिषेवणात् ॥ ७८ ॥

इति त्वा वराञ्छम्भुस्तल्लिङ्गे लयमाययौ ।

स्कन्द उवाच

तल्लिङ्गाराधनात्कामाः प्राप्ता दुर्वाससा भृशम् ॥ ७९ ॥

सस्मात्सर्वप्रयत्नेन काश्यां कामेश्वरः सदा । पूजनीयःप्रयत्नेन महाकामामिलापुकैः
कामकुण्डकृतस्नानैर्महापातकशान्तये । इदं कामेश्वराख्यानं यःपठिष्यतिपुण्यवान्
यः श्रोष्यति च मेधावी तौ निष्पापौ भविष्यतः ॥ ८१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां सतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धेदुर्वाससे वरप्रदानवर्णननाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः

सत्वाष्टोपाख्यानविश्वकर्मेंश्वरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनम्

पावत्युवाच

विश्वकर्मेंश्वरलिङ्गं यत्काश्यामप्रथितम्परम् । तस्यलिङ्गस्यकथय देवदेव समुद्भवम्
देवदेव उवाच

शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथाम्पातकनाशिनीम् । विश्वकर्मेंशल्लिङ्गस्यप्रादुर्भावमनोहरम्
विश्वकर्माभवत्पूर्वं ब्रह्मणस्त्वपरातनु । त्वष्टु प्रजापते पुत्रो निपुण सर्वकर्मसु
कृतोपनयन सोऽथ बालोगुरुकुलेवसन् । चकार गुरुशुश्रूषा मिश्रान्नकृतभोजन
एकदा तद्गुरु प्राह प्रावृटकाले समागते । कुरुतज मदर्थं त्व यथाप्रावृणनवाधते
यत्कदाचिन्नभज्येत न पुरातनताव्रजेत् । गुरुपत्न्यात्वभिहितोरेत्वाष्ट्रकुरुकञ्चुकम्
ममाङ्गयोग्य नोगाढ न श्लथञ्च प्रयत्नत । विनैववाससाधारवाकलञ्चसदोज्ज्वलम्
गुरुपुत्रणचाक्षतो ममाथम्पादुकेकुरु । यदारूढस्य मे पादौ न पङ्क सस्पृशेत्कचित्
चर्मादिबन्धनिमुक्त धावतो मे सुखप्रदे । याभ्याञ्चसञ्चरेवारिस्थलभूमाविषद्रुतम्
गुरुकन्याऽपितम्प्राहत्वाष्ट्रं मे श्रवणोचिते । भूषणे स्वेनहस्तेन कुरुकाञ्चननिर्मिते
कुमारीक्रीडनीयानि कौतुकानि च देहि मे । दन्तिदन्तमयान्येस्वहस्तरचितानि च
गृहोपकरण द्रव्य मुसलोत्खलादिकम् । तथावटयमेधाचिन्यथा व्रुटयति न क्वचित्
अक्षालितान्यपि यथा नित्य पीठानि सत्तम ।

उज्ज्वलानि भवन्त्येव स्थालिकाश्च तथा कुरु ॥ १३ ॥

सूपकमण्यपि च मा प्रशाधि त्वष्टनन्दन ।

यथाऽङ्गुल्यो न दहन्ते पाक स्याच्च यथा शुभ ॥ १४ ॥

एकस्तम्भमयगेहमेकदारुचिनिर्मितम् । तथा कुरु चरन्त्वाष्ट्रं यत्रेच्छा तत्र धारये
येसहाध्यायिनोऽप्यस्यद्योज्यैष्ट्याश्चतेऽपिहि । सर्वेसर्वं समीहन्तेकमतकृतमेवहि

तथेतिसप्रतिहाय सर्वेषाम्पुरतोऽद्रिजे !। मध्येवनम्प्राविशश्च महाचिन्ताभयार्दितः

किञ्चित्कतुं न जानाति प्रतिक्वातञ्च तेन वै ।

सर्वेषाम्पुरतः सघं करिष्यामीतिनिश्चितम् ॥ १८ ॥

किंकरोमि क्व गच्छामि कोमेसाहाप्यमर्षयेत् । बुद्धेरपिवनस्थस्य शरणंकंजामिच्च
अङ्गीकृत्य गुरोर्वाक्यं गुरुपत्न्या गुरोः शिशोः ।

यो न निष्पादयेन्मूढः सभवेन्निरयी नरः ॥ २० ॥

गुरुशुश्रूषणं धर्म एको हिव्रह्मचारिणाम् । अनिष्पाद्यतुतद्वाक्यंकथम्मेनिष्कृतिर्भवेत्
गुरुणां वाक्यकरणात्सर्वं एव मनोरथाः । सिद्ध्यन्तीतरथा नैव तस्मात्कार्यं हितद्वेषः

कथं तद्वचसः सिद्धिं प्राप्स्याम्यत्र घने स्थितः ।

कश्च मेऽत्र सहायी स्याद्विषया दुर्बलस्य वै ॥ २३ ॥

आस्तां गुरुकथा दूरं योऽन्यस्यापि लघोरपि ।

ओमित्युक्त्वा न कुरुते कार्यं सोऽथ ब्रजत्यधः ॥ २४ ॥

कथमेतानि कर्माणि करिष्येऽज्ञोऽसहायवान् ।

अङ्गीकृतानि तद्वीत्या नमस्ते भवितव्यते ! ॥ २५ ॥

यावदित्थं चिन्तयति सत्वाष्ट्रोवनमध्यगः । तावत्तदेवसम्प्राप्तस्तेनैकोऽदर्शितापसः
अथनत्वा स तम्प्राहवने द्रष्टुं तपस्विनम् । कोभवान्मानसं मे योनितरां सुखयत्यहो

त्वद्दर्शनेन मेगात्रं चिन्तासन्तापतापितम् । हिमानीगाहनेनेव शीतलम्भवतिक्षणम्
किञ्च मेप्राक्तनं कर्म प्राप्तं तापसरूपधृक् । अथवाकरुणावाधिं राविभूतः शिषो भवान्

योऽसि सोऽसि नमस्तुभ्यमुपदेशेन युङ्क्ष्व माम् ।

गुरुकं गुरुपत्न्युक्तं गुर्घपत्योक्तमेव च ॥ ३० ॥

कथं कर्तुमहं शक्तः कर्मतत्रादिशाद्भुतम् । कुरुमेबुद्धिसाधार्यनिर्जनेबन्धुतांगतः ॥
इत्युक्तस्तेन सवने तापसो ब्रह्मचारिणा । कारुण्यपूर्णहृदयो यथोक्तमुपदिष्टवान् ॥

यथास्त्वेनसम्पृष्टो दुबुद्धिसम्प्रयच्छति ।

सयाति नरकंघोरं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ३३ ॥

तापस उवाच

ब्रह्मचारिन् ! शृणु ब्रूयां किमद्भुततरन्त्विषदम् ।

विश्वेशानुग्रहाद् ब्रह्माऽप्यभवत्सृष्टिकोविदः ॥ ३५ ॥

यदित्वन्त्वाद्गुणसर्वहं काश्यामाराधयिष्यसि । ततस्तेविश्वकर्मेतिनामसत्यम्भविष्यति
विश्वेशानुग्रहात्काश्याममिलाषा न दुर्लभाः ।

सुलभो दुर्लभोऽप्यत्र यत्र मोक्षस्तनुत्यजाम् ॥ ३६ ॥

सृष्टेःकरणसामर्थ्यं सृष्टिरक्षाप्रवीणता । चिधिनाविष्णुनाप्रापि विश्वेशानुग्रहात्परात्
याहि वैश्वेश्वरं सद्य पश्या समधिष्ठितम् ।

निर्वाणसञ्ज्ञया बाल ! यदीच्छेः स्वान्मनोरथान् ॥ ३८ ॥

सहिसर्वप्रदः शम्भुर्याचितश्चोपमन्युना । पयोमात्रं ददौ तस्मै सर्वं क्षीराब्धिमेव च
आनन्दकानने शम्भोः किंकिंकेन न लभ्यते । यत्रवासकृताम्पुंसां धर्मराशिः पदेपदे
स्वर्धुनीस्पर्शमात्रेणमहापातकसन्ततिः । यत्रसंक्षयति क्षिप्रं तांकाशींकोनसंश्रयेत्
न ताद्गुणमसम्मारो लभ्यते क्रतुकोटिभिः । याद्गुणाराणसीवीथीसञ्चारेण पदेपदे
धर्मार्थकाममोक्षाणांयद्यत्रास्तिमनोरथः । तदावाराणसीयाहियाहित्रैलोक्यपावनीम्
सर्वकामफलप्राप्तिस्तदैवस्याद्भुवंचतृणाम् । यदैवसर्वदःसर्वः काम्यांविश्वेश्वरःश्रितः
सतापसोक्तमाकर्ण्य त्वाद्गृह्यत्यं सुहृष्टवान् । काशीसम्प्राप्त्युपायंघतमेव समपृच्छत

त्वाद्गुण उवाच

तदानन्दघनं शम्भोः कास्ति तापससत्तम !

यत्र नो दुर्लभं किञ्चित्साधकानां त्रयीस्थितम् ॥ ४६ ॥

स्वर्गो वा मर्त्यलोके वा बलिसद्गनि वामुने । क तदानन्दगहनं यत्रानन्दपयोविध्यजा
यत्र विश्वेश्वरो देवोविश्वेषांकर्णधारकः । व्याघ्रच्छे तारकं ज्ञानं येन तन्मयतां ययुः
सुलभा यत्र नियतमानन्दघनचारिणः । अपिर्नःश्रेयसीलक्ष्मीःकिमन्येऽल्पमनोरथाः

कस्तां मां प्रापयेच्छम्भोः कथं यामि तथा वद ।

स तपस्वीति तद्वाक्यमाकर्ण्य श्रद्धयान्वितम् ॥ ५० ॥

प्राहागच्छ नयामित्वांयियासुरहमप्यहो । दुर्लभमप्राप्यमानुष्यं यदि काशीनसेषिता
 पुनः कर्तृत्व श्रेयोभू ककाशीकर्मबन्धहृत् । वृथागतेहिमानुष्येकाशीप्राप्तिविषजनात्
 आयुष्यञ्चभविष्यञ्च सधमेववृथागतम् । अतोऽह सफलीकर्तुं मानुष्यञ्चातिचञ्चलम्
 यास्यामि काशीमायाहि माया हित्वा त्वमप्यहो ।

इति तेन सह त्वाष्ट्रो मुनिनाऽतिकृपालुना ॥ ५४ ॥

पुरीं वैश्वेश्वरीमप्राप्तो मन स्वास्थ्यमवाप च ।

तत प्राप्य ताकाशीं तापस काप्यतर्कितम् ॥ ५५ ॥

जगाम कुम्भसम्भूतसत्त्वाष्ट्रोऽपीत्यमन्यत । अवश्यसहिबिश्वेश सर्वेषाचिन्तितप्रद
 सत्पथस्थिरवृत्तीना दूरस्थोऽपि समीपग ।

यस्मिन्प्रसन्नदूक त्र्यक्षस्त द्विष्टमपि ध्रुवम् ।

सुनेदिष्ट करोत्येव स्वय वत्सर्पोपदेशयन् ॥ ५७ ॥

काह तत्र वनेबालश्चिन्ताकुलितमानस । क तापस सयो मा वै सुपदिश्येहघानयत्
 खेलोयमस्यत्र्यक्षस्ययस्यभक्तस्यकुत्रचित् । नदुलभतरकिञ्चिदहो काहककाशिका
 नाऽऽराधितो मयाशम्भु प्राक्तनेजन्मनिक्वचित् । शरीरित्वाणुमानेन हातमेतदसशयम्
 अस्मिञ्जन्मनि बालत्वाञ्जैवाराधित स्फुटम् । प्रत्यक्षमेवमेवैतत्कुतोऽनुग्रहधीमयि
 आहात गुरुमक्तिर्मेहेतु शम्भुप्रसादने । ययेहाऽनुगृहीतोऽस्मि विश्वेशेन कृपालुना
 अथवा कारणापेक्षस्यक्षस्त्वितरदेववत् । रदुमप्यनुगृह्णाति केवलकारण कृपा ॥
 यदि नो मय्यनुकोश कथ तापससङ्गति । तद्रूपेण स्वय शम्भुरानिनायेहमा ध्रुवम्
 नदानानिनवै यक्ष न तपासि व्रतानि च । शम्भो प्रसादहेतुनि कारण तत्कृपवहि ॥
 दयामपितदाकुर्यादसौविश्वेश्वर पराम् । यदाश्रत्युक्तमध्वानसद्वि क्षुण्णनसन्त्यजेत्

अनुकोश समर्थ्येति स त्वाष्ट्र शम्भव शुचि ।

सस्थाप्य लिङ्गमीशस्याराधयत्स्वस्थमानसः ॥ ६७ ॥

आनीय पुष्पसम्भारमार्तव काननाद् बहु । स्नात्वाभ्यर्चयतीशानकन्दमूलफलाशन-
 इत्थ त्वष्टृतनूजस्य लिङ्गाराधनचेतसः । त्रिहायनात्प्रसन्नोऽभूत्स्येश करुणानिधि-

तस्मादेवहि लिङ्गाच्चप्रादुर्भूय भवोऽब्रवीत् । धरं धरय रैत्वाष्ट्रं दृढमभक्त्यानया तद्य
मसन्नोऽस्मि भृशम्बालगुर्धर्यंकृतचेतसः । गुरुणा गुरुपत्न्या च गुर्धपत्यद्वयेन च ॥

यथार्थितन्तथा कर्तुं ते सामर्थ्यंभविष्यति ॥ ७२ ॥

अन्यान्वरांश्च ते दद्यां त्वाष्ट्रतुष्टस्त्वदर्षया ।

ताञ्छृणुष्व महाभाग! लिङ्गस्यास्याऽद्भुतश्रियः ॥ ७३ ॥

त्वं सुवर्णादिधातूनां दारूणां द्रवदामपि ।

मणीनामपि रत्नानां पुष्पाणामपि वाससाम् ॥ ७४ ॥

कपूरं रादिसुगन्धीनां द्रव्याणामप्यपामपि । कन्दमूलफलानाञ्चद्रव्याणामपिषत्वन्वाम्
सर्वेषां वस्तुजातानां कर्तुं कर्म प्रवेत्स्यसि । यस्ययस्यरुचिर्यत्रसन्नदेवालयदिषु
तस्यतस्येहेतुष्टयं त्वंतथा कर्तुं प्रवेत्स्यसि । सर्वनेपथ्यरचनाः सर्वाः सूपस्यसंस्कृतीः
सर्वाणि शिल्पिकार्याणि तैर्यत्रिकमथादिषु । सर्वं ज्ञास्यसि कर्तुं त्वद्वितीयइवपन्नभूः
नानाविधानि यन्त्राणि नानायुधविधानकम् । जलाशयानां रचनाः सुदुर्गरचनास्तथा
तादृक्कर्तुं पुरा वेत्सि यादृङ्गान्योऽधिवास्यसि ।

कलाजातं हिसर्वन्त्वमवयास्यसि मे वरात् ॥ ८० ॥

सर्वेन्द्रजालिकी चिद्यात्वदधीनाभविष्यति । सर्वकर्मसुकौशल्यं सर्वबुद्धिचरिष्ठताम्
सर्वेषाञ्च मनोवृत्तिं त्वं ज्ञास्यसि वरान्मम । किम्बहूक्तेन यत्स्वर्गं यत्पातालेयदत्रच
अतिलोकोत्तरं कर्म तत्सर्वं वेत्स्यसि स्वयम् ॥ ८३ ॥

विश्वेषां विश्वकर्माणि विश्वेषु भुवनेषु च । यतो ज्ञास्यसि तन्नाम विश्वकर्मेतितेऽनघ
अपरः को वरो देयस्तव तमप्रार्थयाश्वहो । तवाऽदेयनमो किञ्चिद्विङ्गाचं नरतस्य हि
अन्यत्राऽपि हि यो लिङ्गं समर्चयति सन्मतिः ।

तस्यापि वाञ्छितं देयं किम्पुनर्यो चिकाशिकम् ॥ ८६ ॥

येन काश्यांसमभ्यर्चयित्वा येन काश्यां प्रतिष्ठितम् । येन काश्यां स्तुतं लिङ्गं समेरूपायवर्षणः
तरुवंस्वच्छोऽसि मुकुरो ममनेत्रत्रयस्य हि । काश्यां लिङ्गार्चनात्वाष्ट्रधरं धरय सुव्रत
काश्यां यो राजधान्यां मे हित्वा मामभ्यमर्चयेत् ।

स वराकोऽल्पधीमुंष्टोऽल्पतुष्टिमुंक्लिबर्जितः ॥ ८६ ॥

तदानन्दवने ह्यत्रसमर्च्योऽहं मुमुक्षुभिः । द्रुहिणोपेन्द्रचन्द्रेन्द्रैरिहान्योनसमर्च्यते
यथानन्दवनप्राप्य त्वं मामर्चितवानसि । नथान्येषुप्यकर्माणोमामभ्यर्च्यैवमामितः

अनुग्राह्योऽसि नितरां ततो वरय दुर्लभम् ।

श्राणितं तदवै हि त्वं वद मा चिरयस्व भो ! ॥ ९२ ॥

विश्वकर्मावाच

इदं यत्स्थापितं लिङ्गं मयाऽह्नेनापि शङ्कर ! ।

तल्लिङ्गमन्येऽप्याराध्य सन्तु सद्बुद्धिमाजनाः ॥ ९३ ॥

अन्यच्च नाथ! प्रार्थ्योऽसि तच्च विश्राणयिष्यसि ।

भवान्मया विनिर्मापयिता स्वप्नासादं कदा भव ॥ ९४ ॥

देवदेव उवाच

एषमस्तुयदुकन्तेतत्तल्लिङ्गसमर्चकाः । सद्बुद्धिमाजनावैस्युःस्युश्चनिर्वाणदीक्षिताः
यदा चराजाभविताद्विबोदासोविधेर्धरात् । तदामेवचनात्तातप्रासादम्मेविधास्यति

नवीकृत्य पुनःकाशीनिर्विष्टा तेनभूभुजा । गणेशमायया राज्यात्परिनिर्विण्णचेतसा
विष्णोः सदुपदेशाच्च मामेव शरणं गतः ।

निर्वाणलक्ष्मीः प्राप्तेह हित्वा राज्यश्रियञ्चलाम् ॥ ९८ ॥

विश्वकर्मन्व्रजगुरोः शश्वनायथतस्वच । गुरुभक्तिकृतो यस्मान्मद्भक्ता नात्र संशयः
येगुरुंवावमन्यन्तेतेऽवमान्या मयाप्यहो । नस्माद्गुरुरूपदिष्टंहिकुरुशिष्यसमीहितम्

तत आगत्य मे पाश्वं यावन्निर्वाणमेध्यसि ।

तावत्स्थास्यसि शुद्धात्मा देवानां हितमाचरन् ॥ १०१ ॥

तथाऽत्रलिङ्गैः सततंस्थास्याग्यहमभीष्टदः । अस्यलिङ्गस्यभक्तानानिर्वाणश्रीरदूरतः
अङ्गारेशादुदीच्यां ये त्वल्लिङ्गस्य समर्चकाः । तेषामनोरथावाप्तिर्भविष्यति पदे पदे
इत्युक्तवान्तर्धेदेवस्त्वाष्ट्रोपिगुरुमासवान् । गुरोःसमीहितभूरिबिधायसगृहान्ययी
गृहेऽपिमातापितरौसन्तोप्यनिजकर्मणा । तदुक्ताङ्गां समाधाय पुनःकाशींसमाययी

स्वलिङ्गाराधनासकोनाद्यापि त्वष्टृनन्दनः । कार्शीं त्यजस्मिधावीसर्बदेवप्रियञ्जरन्
ईश्वर उवाच

पृष्ठानि यानि लिङ्गानि त्वया देवि! गिरीन्द्रजे !।

काशीमुक्तौ समर्थानि तान्युक्तानि मया तव ॥ १०७ ॥

लिङ्गमोङ्कारसञ्ज्ञञ्च तथादेवं त्रिविष्टपम् । महादेवः कृत्तिवासा रत्नेशश्चन्द्रसञ्ज्ञकः
केदारश्चापि धर्मेशस्तथावीरेश्वरामिधः । कामेशचिभ्वकर्मेशौ मणिकर्णेश्वरस्तथा
ममार्च्यमविमुक्ताख्य ततो देवि! ममाख्यकम् ।

विश्वनाथेति विश्वस्मिन्प्रथितं विश्वसौख्यदम् ॥ ११० ॥

अविमुक्तसमासाद्ययेनविश्वेश्वरोऽर्चितः । नतस्याऽस्तिपुनर्जन्मकल्पकोटिशतेष्वपि
अष्टौ मासान्विहारःस्वाद्यतीनासंयतात्मनाम् । एकत्रचतुरोमासानब्दनावालइष्यते
अविमुक्तेप्रविष्टाना विहारो नैव युज्यते ।

मोक्षोऽप्यसशयश्चाऽत्र तस्मास्याज्या न काशिका ॥ ३ ॥

आनन्दकाननं हित्वानान्यद्गच्छेत्तपोवनम् । तपोयोगश्चमोक्षश्च
रूपया सर्वजन्तूना क्षेत्रमेतन्मया कृतम् ।

अवश्यमेव सिद्धयन्ति क्षेत्रेऽस्मिन्सिद्धिकाङ्क्षिण्.

अतीतं वर्तमानं च ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् । यदेनस्तल्लय याव
अत्युग्रैश्च तपोभिर्यन्महादानैर्महाव्रतैः । नियमैश्च यमैः सम्यक्स्वयोगेन .
वेदान्तशास्त्राभ्यसनैः सर्वोपनिषदाश्रयात् । एभिर्वैयदवाप्येत तत्काश्याहेलयाप्यते
कर्मवृत्तेण बद्धावै भ्राम्यन्ते तावदेव हि । यावद्वैश्वेश्वरे धाम्नि मम नैव तनुत्यजः
काश्या स्वलीलया देवि! तिर्यग्योनिजुषामपि ।

ददामि चान्ते तत्स्थानं यत्र यान्ति न याञ्जिकाः ॥ १२० ॥

भूतग्रामोऽखिलोप्यत्र मुक्तिक्षेत्रेकृतालयः । कालेननिधनं यातोयात्यैव परमांगतिम्
दिषयासकश्चित्तोऽपि त्यक्धर्मरतिस्त्वपि ।

कालेनोञ्जितवेदोऽत्र न संसारं पुनर्विद्योत् ॥ १२२ ॥

प्रयागे बत्फलं देविमाघेशोषसिमज्जनात् । तत्फलं कोटिशुणितं वाराणस्यांक्षणेक्षणे
अस्यक्षेत्रस्यमहिमाकोऽपिषाषामगोचर । उद्देशमात्रमाख्यायिमयातेप्रीतिकाम्यया
चतुर्दशानां लिङ्गानां श्रुत्वाऽऽख्यानानि सप्तम* ।

चतुर्दशसु लोकेषु पूजांप्राप्स्यत्यनुत्तमाम् ॥ १२५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण पकाशीतिसाहस्रयासहिताया चतुर्थे काशीखण्ड
उत्तरार्धे विंशकर्मेशप्रादुर्भावो नाम पञ्चशीतितमोऽध्याय ॥ ८६ ॥

सप्तशीतितमोऽध्याय

दक्षयज्ञप्रादुर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

सर्वज्ञसूनो! षड्बक्त्रसर्वार्थकुशलप्रभो । प्रादुर्भावनिशम्यैवाल्लिङ्गानामुक्तिदायिनाम्
नितराम्परितृतोऽस्मि सुधाम्पीत्वेवनिजर । उँकारप्रमुखैर्लिङ्गैरिदमानन्दकाननम्
आनन्दमेव जनयेदपि पापजुषामिह । परानन्दमह प्राप्त श्रुत्वाँतल्लिङ्गकीर्तनम् ॥ ३ ॥
जीघन्मुक्त इवाऽऽसं हिक्षेत्रतस्वश्रुतेरहम् । स्कन्द! दक्षेश्वरादीनिलिङ्गानीह चतुर्दश
यान्युक्तानि समाचक्ष्व तत्प्रभावमशेषत ॥ ४ ॥

योदक्षोर्गर्हयामास मध्येदेवसभविभुम् । सकथं लिङ्गमीशस्यप्रत्यस्थापयददभुतम्
इति श्रुत्वा शिखिरय*कुम्भयोनेरुदीरितम् । सूत! सकथयामास दक्षेश्वरसमुद्भवम् ॥

स्कन्द उवाच

आकर्ण्य मुनेवचिमकथा कल्मषहारिणीम् । पुरश्चरणकामोसौदक्ष काशीसमाययी
छागषक्त्रो बिरूपास्यो दधीचिपरिधिक्कृत ।

प्रायश्चित्तविधानार्थं सुपदिष्ट स्वयम्भुवा ॥ ८ ॥

एकदादेवदेवस्य सेवार्थं शशिमीलिन* । कैलासमगमद्विष्णु* पद्मयोनिपुरस्कृतः

इन्द्रादयो लोकपाला विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।

आदित्या वसवो रुद्राः साध्याविद्याधरोरगाः ॥ १० ॥

ऋषयोऽप्सरसो यक्षागन्धर्वाः सिद्धचारणाः । तेनतो देवदेवेशः पच्छिष्टतनूरुहैः ॥

स्तुतश्च नानास्तुतिभिश्शम्भुनाऽपि कृतादराः ।

विचिशुभ्रासनश्रेण्या तन्मुखासक्तदृष्टयः ॥ १२ ॥

अथ तेषूपविष्टेषु शम्भुना विष्टरधवाः । कृतहस्तपरिरुपर्शमानः पृष्टो महादरम् ॥

श्रीवत्सलाञ्छन! हरे! वैत्यवंशदधानल !।

कच्चिन्पालयितुं शक्तिखिलोकीमस्त्यकुण्ठिता ॥ १४ ॥

दितिजान्दनुजान्दुष्टान्कच्चिन्च्छास्सि रणाङ्गणे ।

अपिक्रुद्धान्महीदेवान्मामिष प्रतिमन्यसे ॥ १५ ॥

बाधया रहिता गावः कच्चिन्सन्ति महीतले ।

स्त्रियः सन्ति हि सुश्रीकाः पतिव्रतपरायणाः ॥ १६ ॥

विधियज्ञाः प्रवर्तन्ते पृथिव्या बहुदक्षिणाः ।

निराबाधं तपः कच्चिदस्ति शश्वत्पस्विनाम् ॥ १७ ॥

निष्प्रत्यूहं पठन्त्येष साङ्गान्वेदान्द्विजोत्तमा ।

महीपालाः प्रजाः कच्चिन्तपान्ति त्वमिष केशव !।

स्वेषुस्वेषुबन्धर्मेषुकच्चिद्दर्शाश्रमासन्था । निष्ठावन्तोहितिष्ठन्तिप्रहृष्टः ।

धूर्जटिःपरिपृच्छत्येतिहृष्टवैकुण्ठनायकम् । ब्रह्माणञ्चापिपप्रच्छ ब्राह्मतेजः समन्तम् ।

सत्यमस्खलितं कच्चिदस्ति त्रैलोक्यमण्डपे ।

तीर्थावरोधो न क्वाऽपि केनचित्क्रियते विधे ! ॥ २१ ॥

इन्द्रादयः सुराः कच्चिदस्वेषु स्वेषु पुरेष्वहो ।

राज्यं प्रशासति स्वस्थाः कृष्णदोर्दण्डपालिताः ॥ २२ ॥

प्रत्येकम्परिपृच्छत्येतिहृष्टः सर्धानित्यं कृतादरान् ।

पृष्ट्वा समन्तकार्यञ्च तेषां कृत्वा मनोरथान् ॥ २३ ॥

विससर्जायतान्सर्वान्देवःसौधंसमाविशात् । गतेष्वयच्चदेवेषुस्वस्वधिष्ण्येषुहृष्टवत्
मध्यैमार्गसचिन्तोऽभूद्भक्षःसत्याःपितातदा । अन्यदेवसमानं समानंप्रापनचाधिकम्
अतीवधुब्धधित्तोभून्मन्दरावाततोऽब्धिवत् । उषाचघमनस्येतन्महाक्रोधरयान्धट्टक

अतीव गर्वितो जातः सर्तीं मे प्राप्य कन्यकाम् ।

कस्यचिन्नाऽप्यसौ प्रायो न कोऽस्यापि क्वचित्पुनः ॥ २७ ॥

किं वंश्यस्त्वेष किंगोत्रः किं देशीयः किमात्मकः ।

किंवृत्तिः किसमाचारो विषादी वृषबाहनः ॥ २८ ॥

न प्रायशस्तपस्व्येष क तपः काऽह्नधारणम् ।

न गृहस्थेषु गण्योऽसौ श्मशाननिलयो यतः ॥ २९ ॥

असौनब्रह्मचारीस्यात्कृतपाणिग्रहस्थितिः । वानप्रस्थ्यंकुतश्चास्मिन्नेश्वर्यमदमोहिते
नब्राह्मणोभवत्येषयतोवेदोनवेस्यमुम् । शस्त्रास्त्रधारणात्प्रायःक्षत्रियःस्यान्नसोप्ययम्
क्षतात्सन्त्राणनात्क्षत्रन्तत्कास्मिन्प्रलयप्रिये । वैश्योपिनभवेदेवसदानिर्धनचेष्टनः ॥
शूद्रोऽपि नभवेत्प्रायोनागयज्ञोपवीतवान् । एवंवर्णाश्रमातीतःकोसौसम्यङ्गनकीर्त्यते
सर्वः प्रकृत्याज्ञायेत स्थाणुः प्रकृतिवर्जितः । प्रायशःपुरुषोनासावर्धनारीवपुर्यतः ॥
योषाऽपि न भवेदेवयतोऽसौश्मश्रुलाननः । नपुंसकोऽपिनभवेद्विद्वान्मस्ययतोऽर्च्यते
बालोऽपि न भवत्येष यतोऽयं बहुवार्धिकः । अनादिवृद्धोलोकेषु गीयतेचोत्प्रप्रयत्
अतोयुवत्वं संभाष्यं नात्र नूनं चिरन्तने । वृद्धोऽपि न भवत्येष जरामरणवर्जितः ॥

श्रद्धादीन्संहरेत्प्रान्ते तथापि च न पातकी ।

पुण्यलेशोऽपि नास्त्यस्मिन्श्रद्धामौलिच्छिदि क्रुधा ॥ ३० ॥

अस्थितेपच्यवति च कशुचित्वं विधाससि ।

किं बहूक्तेन नोकिञ्चिज्ज्ञायतेऽस्य विचेष्टितम् ॥ ३१ ॥

अहो धाष्ट्यं महद्दृष्टं जटिलस्याऽद्य चाऽद्भुतम् ।

यदासनाज्ञोत्थितौऽसौ दृष्ट्वा मां श्वशुरं गुरुम् ॥ ४० ॥

एवमभूता भवत्येव मातापितृविबर्जिताः । निगुणाप्रकुलीनाश्चकर्मस्रष्टानिरकुशाः

स्वच्छन्दचारिणोऽनाथाः सर्वत्र स्वाभिमानिनः ।

अकिञ्चना अपि प्रायस्तथापीश्वरमानिनः ॥ ४२ ॥

जामातृणां स्वभावोऽयंप्रायशोगर्वभाजनम् । किञ्चिदैश्वर्यमासाद्यभवत्येवमसंशयः
द्विजराजः सगर्विष्ठो रोहिणीप्रेमनिर्भरः । कृत्तिकादिषु चास्नेहीमयाशसः क्षयीकृतः
अस्याहंगर्वसर्वस्वंहरिष्याम्येवशूलिनः । यथावमानितश्चाहमनेनास्य गृहं गतः ॥
तथास्याहंकरिष्यामिमानहानिञ्च सर्वतः । सम्प्रधार्येति बहुशः सतुदक्षःप्रजापतिः
प्राप्य स्वभवनं देवानाञ्जुहाव सवासवान् । अहं यियञ्जुयूयं मेयज्ञसाहाय्यकारिणः
भवन्तु यज्ञसम्भारानानयन्तु त्वरान्विताः ।

श्वेतद्वीपमथो गत्वा षक्ते षक्रिणमच्युतम् ॥ ४८ ॥

महाकृतपद्मशरं यज्ञपूरुषमेव च । तस्यर्त्विजोऽभवन्सर्वे ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ४६
प्रावर्तत ततस्तस्य दक्षस्य च महाध्वरः । दृष्ट्वा देवनिकायांश्च तस्मिन्दक्षमहाध्वरे
अनीश्वरांस्ततो वेषा व्याजं कृत्वा गृहं ययौ ।

दधीचिरथ सम्वीक्ष्य सर्वास्त्रैलोक्यवासिनः ॥ ५१ ॥

दक्षयज्ञेसमायातानसतीश्वरबिबर्जितान् । प्रातसंमानसम्भारान्वासोलङ्कृतिपूर्वकम्
दक्षस्य हि दशुभोदकमिच्छन्प्रोवाच चेति वं ।

दधीचिरुवाच

दक्षप्रजापते! दक्ष! साक्षाद्भातृस्वरूपधृक् ॥ ५३ ॥

न चाऽस्ति तव सामर्थ्यं कापि कस्यापि निश्चितम् ।

यादृशः क्रतुसम्भारस्तव चेह समीक्ष्यते ॥ ५४ ॥

न तादृङ्नेदसि प्रायः कापिज्ञातोमहामते । क्रतुस्तुनैवकर्तव्योनास्तिक्रतुसमोरिपुः
कर्तव्यश्चेत्तदा कर्तव्यः स्याच्चेत्सम्पत्तिरीदृशी ।

साक्षादग्निः स्वयं कुण्डे साक्षादिन्द्रादिदेवताः ॥ ५६ ॥

साक्षाच्च सर्वे मन्त्रा वै साक्षाद्यज्ञपुमानसौ । आचार्यपदधीमेव देवाचार्यःस्वयञ्चरेत्
साक्षाद् ब्रह्मा स्वयञ्चैव भृगुश्च कर्मकाण्डचित् ॥ ५७ ॥

अयम्पूषा भगस्त्वेष इयं देवी सरस्वती । एते च सर्वदिकपालाय ह्यरक्षाकृतः स्वयम्
 त्वं च दीक्षां शुभाम् प्राप्सो देव्या च शतरूपया । जामाता त्वेषते धर्मः पत्नीभिर्दशभिः सह
 स्वयमेव हि कुर्वीत धर्मकार्यं प्रयत्नतः । ओषधीनामयं नाथस्तव जामातृषूत्तमः ॥
 सप्तविंशतिभिः सार्धं पत्नीभिस्तव कार्यकृत् । औषधीः पूर्येत्सर्वा द्विजराजो महासुधीः
 दीक्षितो राजसूयस्य दत्तत्रैलोक्यदक्षिणः । मारीचः कश्यपश्चासौ प्रजापतिषु सत्तमः
 त्रयोदशमितामिश्च भार्याभिस्तव कार्यकृत् ॥ ६२ ॥

हविः कामदुघा सूने कल्पवृक्षः समित्कुशान् ।

दारुपात्राणि सर्वाणि शकटं मण्डपादिकम् ॥ ६३ ॥

विश्वकर्माऽप्यलङ्कारान्कुरुतेऽभ्यागतर्विजाम् ।

वसुनि चाऽपि घासांसि वसवोऽष्टौ ददत्यपि ॥ ६४ ॥

स्वयं लक्ष्मीरलङ्कुर्याद्या वै चाऽत्र सुवासिनीः ॥ ६५ ॥

सर्वे सुखाय मे दक्ष! वीक्षमाणस्य सर्वतः । एकंदुःखाकरोत्येव यस्त्वं विस्मृतवानसि
 जीवहीनो यथा देहो भूपितोऽपिनशोभते । तथेभ्वरं विना यज्ञः प्रमशानमिव लक्ष्यते
 इत्थं दधीचिवचनं श्रुत्वा दक्षः प्रदापतिः । भृशं जज्वालकोपेन हविषा कृष्णवर्त्मवत्
 पूर्वं स्तुत्याऽतिसंहृष्टो दृष्टो योऽसौ दधीचिना ।

स एव चापि कोपाग्निमुद्गमन्वीक्षितो मुखात् ॥ ६६ ॥

प्रत्युवाचाथ तं विप्रं वेपमानाङ्गयष्टिकः । दक्षः प्रजापती रोषाज्जिघांसुरिचतं द्विजम् ॥

दक्ष उवाच

ब्राह्मणोऽसि दधीचे त्वं किं करोमि तवात्र वै । दीक्षामहमहो प्रापः कर्तुं नायाति किञ्चन
 भवान्केन समाहृतो यद्वागान्महाजडः । आगतोऽपि हि केन त्वंपृष्ट इत्थं ब्रवीषियत्
 सर्वमङ्गलमाङ्गल्यो यत्र श्रीमानयं हरिः । स्वयं वै यज्ञपुरुषः समखः किंमशानवत्
 यत्र वज्रधरः शकः शतयज्ञैकदीक्षितः । त्रयस्त्रिंशतिकोटीनाममराणां पतिः स्वयम्
 तं त्वञ्चोपमिमीषे मुंश्मशानेन महामखम् । धर्मराट् च स्वयं यत्र धर्माधर्मैककोविदः

श्रीदोऽस्ति यत्र श्रीदाता साक्षाद्यत्राऽऽशुशुक्षणिः ।

तं यक्षमुपमासि त्वममङ्गलभुवा तथा ॥ ७६ ॥

देवाचार्यः स्वयं यत्र क्रतुराचार्यतां गतः ।

अभिमानवशात्तन्वमालयासि पितृकाननम् ॥ ७७ ॥

यत्रार्त्विज्यम्भजन्तेऽमीवसिष्ठप्रमुखर्षयः । तमध्वरं तमाचक्षे मङ्गलेतरभूमिवत् ॥

निशम्येति मुनिः प्राह दधीचिर्ज्ञानिनांवरः । सर्वमङ्गलमाङ्गल्यो भवेद्यज्ञपुमान्हरिः

तथाऽपि शाम्भवी शक्तिर्वेदे विष्णुः प्रपठ्यते ।

वामाङ्गं स्रष्टुराद्यस्य हरिस्तदितरद्विधिः ॥ ८० ॥

दीक्षितो योऽश्वमेधानां शतस्य कुलिशायुधः ।

दुर्घाससा क्षणेनाऽपि नीतो निःश्रीकतां हि सः ॥ ८१ ॥

पुनराराध्य भूतेशं प्रायैकाममरावतीम् । यस्त्वया धर्मराजोऽत्रकथितः क्रतुरक्षकः ॥

बलं तस्याऽखिलैर्ज्ञातं श्वेतम्पाशयतः पुरा ।

धनदस्त्र्यम्बकसखस्तच्चभुञ्ज्याऽऽशुशुक्षणिः ॥ ८३ ॥

पार्ष्णिप्राह्यभवद्द्रो देवाचार्यस्यवैतदा । यदातारामधार्षित्सद्विजराजोऽतिसुन्दरीम्

तं विदन्ति वसिष्ठाद्यास्तवात्विज्यम्भजन्ति ये ।

एको रुद्रो न द्वितीयः सम्बिदाना अपीति हि ॥ ८५ ॥

प्रावर्तन्तर्षयोन्वेऽपि गौरवात्तवते क्रतौ । यदिमेब्राह्मणस्यैकं शृणोषि वचनंहितम्

तदा क्रतुफलाधीशं विश्वेशं त्वं समाह्वय । विना तेन क्रतुरसौ कृतोऽप्यकृतपवहि

सति तस्मिन्महादेवे विश्वकर्मेकसाक्षिणि ।

तवापि धैवां सर्वेषां फलिष्यन्ति मनोरथाः ॥ ८८ ॥

यथा जडानिबीजानिनफलन्तिस्वयं तथा । जडानिसर्वकर्माणिनफलन्तीश्वरं धिना

अर्थहीना यथावाणी धर्महीनायथातनुः । पतिहीनायथानारीशिवहीनातथाक्रिया

गङ्गाहीना यथादेशाः पुत्रहीना यथागृहाः । दानहीना यथासम्पच्छिवहीनातथाक्रिया

मन्त्रहीनं यथा राज्यं श्रुतिहीना यथा द्विजाः ।

योवाहीनं यथा सौख्यं शिवहीना तथाक्रिया ॥ ९२ ॥

दर्महीना यथासन्ध्यातिलहीनञ्चतर्पणम् । इविर्हीनोयथा होमःशिष्यहीनातथाक्रिया
इत्थं दधीचिनाऽऽख्यातं जग्राह वचनं न तत् ।

दक्षो दक्षोऽपि तत्रैव शम्भोर्मायाचिमोहितः ॥ १४ ॥

प्रोवाच सभृशंकृद्दःकाचिन्तातवमेकतोः । क्रतुमुख्यानि सर्वाणियानिकर्माणिसर्घतः
तानि सिद्ध्यन्ति नियतं यथार्थकरणादिह ।

अयथार्थविधानेनसिद्ध्येत्कर्माऽपि नेशितुः ॥ १६ ॥

स्वकर्मसिद्ध्यैवाऽथ सर्वं एवहिचेश्वरः । ईश्वरःकर्मणांसाक्षीयस्वयापीतिभाषितम्
तत्तथाऽस्तु परं साक्षी नार्थं दद्याच्च कुत्रचित् ॥ १८ ॥

जडानिसर्वकर्माणि नफलन्तीश्वरं चिना । यदुक्तंभवतातत्राऽप्यहोदृष्टान्तयाम्यहम्
जडान्यपि च बीजानि कालं सम्प्राप्य चात्मनः ।

अङ्कूरयन्ति कालाच्च पुष्प्यन्ति च फलन्ति च ॥ १०० ॥

विनापीशं तथाकर्मस्वयंकालात्फलत्यहो । किमीश्वरेणतेनात्रमहामङ्गलमूर्तिना ॥
दधीचिरुवाच

यथार्थकरणात्सिद्धमपि कार्यं कदाचन । ईश्वरप्रातिकूल्याच्चसिद्धमेवाशुनश्यति ॥
ईश्वरेच्छा बलात्कर्म कृतमप्यविधानतः । संसिद्ध्यं तदधीनाश्चकथंसर्वइहेश्वराः ॥

सामान्यसाक्षिवन्नेशः सर्वेषांसर्वकर्मणाम् । साक्षीभवेदसन्दिग्धःफलस्यप्रतिभूरपि
भूजलादिस्वरूपेण बीजमाविश्यसर्वकृत् । स्वयंकालस्वरूपेणविदध्यादङ्कुरोदयम्

यस्वयोक्तं विनापीशंकाले कर्मफलेत्स्वयम् । सएवकालोभगवान्सर्वकर्तामहेशिता
अन्यच्च भवता प्रोक्तं तदेकं तथ्यमेव तत् । किमीश्वरेण तेनाऽत्र महामङ्गलमूर्तिना

ये महान्तो भवन्त्येवये स मङ्गलमूर्तयः । ईश्वराख्यास येष्वस्ति किन्तैरत्रतवान्तिके
उत्तरादुत्तरञ्चेति प्रत्युत्तरयति द्विजे । दधीचौचुकुधेऽत्यन्तन्दक्षोर्गर्वातिसुश्रिया ॥

आदिदेश समीपस्थानालोक्य परितस्त्विति ।

ब्राह्मणापसदञ्जामुम्परिदूरयताऽऽशु वै ॥ ११० ॥

अमुष्मादश्वरश्रेष्ठाद्वरिष्ठमनोगतम् । इत्थं दधीचिराकर्ण्यं प्रोवाच प्रहसन्निव ॥

किमां दूरयसे मूढ! दूरीभूतो भवानपि । सर्वेभ्योमङ्गलेभ्यश्च सर्वैरेभिः समं ध्रुवम्

अकाण्डे क्रोधजो दण्डस्तव मूर्ध्नि पतिष्यति ।

महेशितुल्लिजगतीपरिशास्तुः प्रजापते !॥ ११३ ॥

इत्युक्त्वा निर्जंगामाऽऽशु यज्ञवाटात्ततो द्विजः ।

तस्मिन्निर्यातिनिर्यातो दुर्वासाश्च्यवनो भवान् ॥ ११४ ॥

उत्तङ्क उपमन्युश्च ऋचीकोट्टालकावपि । माण्डव्योचामदेवश्चगालबोगर्गगौतमी ॥

शिषतस्वचिदोऽन्येऽपि दक्षयज्ञाद्विनिर्ययुः । गतेदधीर्चासानन्दं प्राचर्तत महामखः

ये स्थिता ब्राह्मणास्तत्र तेभ्यो द्विगुणदक्षिणाम् ।

प्रादात्प्रजापतिर्दक्षस्त्वन्येभ्योऽप्यधिकं वसु ॥ ११७ ॥

सर्वेजामातरस्तेनतोषिताभूरिशोधनैः । कन्याश्चालङ्कृतास्सर्वामहाविभवविस्तरैः

ऋषिपत्न्योऽपि बहुशो देवपत्न्योऽप्यनेकशः ।

तथा पुराङ्गनाः सर्वास्तेन मानभुवः कृताः ॥ ११६ ॥

ब्रह्मघोषेण तारेण व्योमशब्दगुणं स्फुटम् । कारितं तेनदक्षेणचिप्राणां हृष्टचेतसाम्

अग्निर्मन्दाग्निर्भवत्तस्मिन् जुह्वति दीक्षिते । हविः परिमलेनैवपरितृप्तादिगङ्गनाः॥

स्वाहाकारैर्वषट्कारैः सुराजातापिचण्डिलाः । रचितागिरयस्तेन सद्ब्रानाम्पदेपदे

घृतकुल्याः कृतास्तेन मधुकुल्याःसहस्रशः । महासरांसिपयसांद्रप्सस्यापिमहाहदाः

राशयश्च दुकूलानां रत्नानां शिखराणि च । यज्ञवाटस्य वसुधास्वर्णरूप्यमयीकृता

न लभ्यन्ते क्रतौ तस्य मार्गिता अपि मार्गणाः ।

हृष्टाः पुष्टाः समभवन्नपि तत्परिचारकाः ॥ १२५ ॥

ध्वनिर्मङ्गलगीतानां व्यानशे गगनाङ्गणम् । जह्वेच्चाऽप्सरोवृन्दैर्गन्धर्वैर्मुमुदेतराम्

विद्याधरैर्नन्दे च वसुधा ववृषे भृशम् । महाविभवसम्भारे तस्मिन्दाक्षेमहाक्रतौ

इत्थम्प्रवृत्तेऽथ मुनिः कैलासं नारदो ययौ ।

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्ड

उत्तरार्धेदक्षयज्ञप्रादुर्भावो नामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

दक्षयज्ञे सतीदेहविसर्जनवर्णनम्

भगस्त्य उवाच

शिवलोकंसमासाद्यमुनिनाब्रह्मसुनुना । किञ्चक्रेब्रूहिषड्वक्त्रकथाकौतुकशालिनीम्
स्कन्द उवाच

शृणु कुम्भजं वक्ष्यामि नारदेनमहात्मना । यत्कृतं तत्र गत्वाशुकेलासंशङ्करालयम्
सुनिर्गमनमार्गेण प्राप्यतद्भामशाम्भवम् । द्रष्टुं शिवौप्रणम्याथ शिवेनविहितादरः ॥
तदुद्विष्टासनं भेजेपश्यंस्तत्क्रीडनं परम् । क्रीडन्तौतौतुष्वाक्षाभ्यायदानचचिरेमतुः
तदौत्सुक्येन स मुनिः प्रेर्यमाण उवाच ह ।

नारद उवाच

देवदेव! तव क्रीडाखिलं ब्रह्माण्डगोलकम् । मासाद्वादशयेनाथतेसारिफलकेगृहाः
कृष्णाः कृष्णेतरा या वै तिथयस्ताश्च सारिकाः ।

द्विपञ्चदशमासेयास्त्वक्षयुग्मन्तथायने ॥ ६ ॥

सृष्टिप्रलयसञ्ज्ञौ द्वौ ग्लहौ जयपराजयौ । देवीजयेभवेत्सृष्टिरसृष्टिर्जटैर्जये ॥
भवतोः खेलसमयोयः सास्थितिरुदाहृता । इत्थं क्रीडेवसकलमेतद्ब्रह्माण्डमीशयोः
नदेवीजेऽप्यतिपतिनेशःशक्तिविजेऽप्यति । किञ्चिद्विष्णुत्कामोऽस्मितन्मातरवधार्यताम्
देवः सर्वज्ञनाथोऽपि न किञ्चिदवबुध्यति ।

मानापमानयोर्थस्मादसौ दूरे व्यवस्थितः ॥ १० ॥

स्त्रीलात्मा गुणवानेष विचारादतिनिर्गुणः । कुर्वन्नपिहिकर्माणि बाध्यतेनेवकर्मभिः
मध्यस्थोपिहिसर्वस्य माध्यस्थ्यमवलम्बते । सर्वत्रार्यमहेशानोमित्रामित्रसमानदूक्
त्वंशक्तिरस्यदेवस्यसर्वेषामान्यभूःपरा । दक्षस्यापित्वयामानो दत्तोपत्यनिमित्तकः
परंत्वं सर्वजगतां जनयित्र्यैकिका ध्रुवम् । त्वत्त आधिर्भवन्त्येव धातुकेशववासवाः

त्वमात्मानं न जानासि त्र्यक्षमायाधिभोहिता । अतएव हि मे चित्तं दुनोत्यतितरांसति !

अन्या अपि हि याः सत्यः पातिव्रत्यपरायणाः ।

ता भर्तुं चरणौ हित्वा किञ्चिदन्यन्न मन्वते ॥ १६ ॥

अथवास्तामियं वार्ताप्रस्तुतं प्रब्रवोम्यहम् । अद्यनीलगिरेस्तस्माद्दरिद्रारसमीपतः

अपूर्वमिव सम्बीक्ष्य परिप्राप्तस्यवान्तिकम् ।

अत्याश्चर्यविपादाभ्यां किञ्चिद्वक्तुमिहोत्सुकः ॥ १८ ॥

आश्चर्यहेतुरेवायं यत्पुञ्जातं त्रयीतले । तद्द्रष्टुं सकलवञ्चदक्षस्याध्वरमण्डपे ॥

सालङ्कारं समानञ्च सानन्दमुखपङ्कजम् । विस्मृताखिलकार्यञ्च दक्षयज्ञप्रवर्तकम् ॥

विपादे कारणञ्चैतद्यतोजातमिदं जगत् । यस्मिन्प्रवर्तते यत्र लयमेध्यति च ध्रुवम्

तदेव तत्र नोद्द्रष्टुं भवद्द्रन्द्मभवापहम् । प्रायो विपादजनकं भवतोर्धददर्शनम् ॥

तदेव नाभवत्तत्र समभूदन्यदेवहि । तच्च वक्तुं न शक्येत तद्वक्ता दक्ष एव सः ॥

तानि वाक्यानिचाकर्ण्यद्रुहिणेन यथेततः । महर्षिणादधीचेन धिक्कृतो नितरांहिसः

शतश्च वीक्षमाणानां देवर्षीणांप्रजापतिः । मयाचकर्णोपिहितौ श्रुत्वा तद्गर्हणागिरः

दधीचिना समं केचिद्दुर्वासः प्रमुखा द्विजाः ।

भग्ननिन्दां समाकर्ण्य कियन्तोऽपि विनिर्ययुः ॥ २६ ॥

प्रावर्तत महायागो हृष्टपुष्टमहाजनः । तथा द्रष्टुं न शक्नोमि तत आगतघानिह ॥

भगिन्योऽपि च यादेविः तव तत्र स भर्तुं काः । तासां गौरवमालोक्य न किञ्चिद्वक्तुमुत्सहे

इति देवी समाकर्ण्य सनीदक्षकुमारिका । करादक्षौ समुत्सृज्य दध्यौ किञ्चित्क्षणं हृदि

उवाच च भवत्वेव शरणम्भव एव मे । सम्प्रवर्त्येति मनसि सतीदाक्षायणी ततः ॥

द्रुतमेव समुत्सृज्यौ प्रणनाम च शङ्करम् । मौलावज्जलिमाधाय देवी देवं व्यजिह्वपत्

देव्युवाच

विजयस्वाऽन्धकध्वंसिऽऽयम्बक! त्रिपुरान्तक ! !

चरणौ शरणं ते मे देह्युक्तां सदाशिव ! ॥ ३२ ॥

मा निषेधीः प्रार्थयामि यास्यामि पितुरन्तिकम् ।

उक्त्वेति मीलिमदधादन्धकारिपदाम्बुजे ॥ ३३ ॥

अधोकाशम्भुनादेवीमृडान्युत्तिष्ठभामिनि !। किमपूर्णतवास्त्यत्रवदसौभाग्यसुन्दरि

लक्ष्म्या अपि च सौभाग्यं ब्रह्माण्यैकान्तिरुत्तमा ।

शक्यं नित्यनवीनत्वं भवत्या दत्तमीश्वरि !॥ ३५ ॥

त्वया च शक्तिमानस्मिन्महदैश्वर्यरक्षणे ।

त्वाञ्च शक्तिं समासाद्य स्वलीलारूपधारिणीम् ॥ ३६ ॥

एतत्सृजामि पाम्यस्मि त्वलीलाप्रेरितोऽङ्गुने !।

कुतो मां हातुमिच्छेस्त्वं मम वामार्धधारिणि !॥ ३७ ॥

शिवा शिवोदितश्चेति श्रुत्वाप्याह महेश्वरम् ।

जीवितेश! विहाय त्वां न काऽपि परियाम्यहम् ॥ ३८ ॥

मनोमेघरणद्वन्द्वेतवस्यास्यतिनिश्चलम् । क्रतुं द्रष्टुं पितुर्यामिनैक्षि यज्ञोमयाकचिम्

शम्भुः कात्यायनीवाक्यमिति श्रुत्वा तदाऽब्रवीत् ।

क्रतुस्त्वया नैक्षितश्चेदाहरामि ततः क्रतुम् ॥ ४० ॥

मच्छक्तिधारिणी त्वं वा स्रजैवान्यां क्रतुक्रियाम् ।

अन्यो यज्ञपुमानस्तु सन्त्वन्ये लोकपालकाः ॥ ४१ ॥

अन्यानाशुविधेहित्वमृषीनां विज्यकर्मणि । पुनर्जगाददेवीतिश्रत्वाशम्भोरुदीरितम्

पितुर्यज्ञोत्सवोनाथद्रष्टव्योऽत्रमयाध्रुवम् । देहानुज्ञांगमिष्यामिमामेकार्थैर्वचोऽन्यथा

कः प्रतीपयितुं शक्तश्चेतो वा जलमेव वा । निम्नायाम्युद्यतं नाथ माद्यमप्रतिषेधय

निशम्येति पुनः प्राहसर्वज्ञो भूतनायकः । मायाहिदेविमां हि त्वागताचनमिलिष्यसि

अद्य प्रार्थीं यियासुं त्वा वारयेत्पङ्कबासरः । नक्षत्रञ्च तथाज्येष्ठातिथिश्चनवमीप्रिये

अद्य सप्तदशोयोगोचियोगोऽद्यतनोऽशुभः । धनिष्ठार्धसमुत्पन्ने! तव ताराऽद्य पञ्चमी

मागादेवि गताऽद्य त्वं नहि द्रक्षसिमां पुनः । पुनर्देवी बभापे सायदिनाज्ञाऽप्यहं सती

तदा तन्वन्तरेणापि करिष्येतव दासताम् । ततोभवः पुनः प्राह कोवा वारयितुं प्रभुः

परिश्रुग्धमनोवृत्तिं स्त्रियं वा पुरुषन्तु वा । पुनर्नदर्शनं देवि! मया सत्यमब्रवींम्यहम्

परंनदेधि! मन्तव्यं महामानधनेच्छुभिः । अनाहृततया कान्ते! मातापितृगृहानपि ॥
यथा सिन्धुगता सिन्धुर्न पुनः परिवर्तते । तथाद्य गन्ध्या नोजातु तवागमनमिष्यते
देव्युवाच

अवश्यं यद्यहं रक्ता तव पादाम्बु ऋद्वये । तथा त्वमेव मेनाथो भविष्यसि भवान्तरे
इत्युक्त्वा निर्ययौ देवी कोपान्धीकृतलोचना ।

यियासुमिश्च कार्यार्थं यत्कर्तव्यं न तत्कृतम् ॥ ५४ ॥

न ननाम महादेवं न च चक्रे प्रदक्षिणम् । अत एव हि सादेवी नगता पुनरागता ॥
अप्रणम्य महेशानमकृत्वापि प्रदक्षिणम् ।

अद्यापि ननिवर्तन्ते गताः प्राग्वासरा इव ॥ ५६ ॥

तयाचरणचारिण्या राक्ष्या त्रिभुवनेशितुः । अपितत्पावनं घर्ममनेऽतिकठिनम्बहु
देवोऽपि तां सतीं यान्तीं दृष्ट्वा चरणचारिणीम् ।

अतीव चिव्यथे चित्ते गणांश्चाथ समाह्वयत् ॥ ५८ ॥

गणाचिमानं नयत मनःपवनचक्रिणम् । पञ्चास्यायुतसंयुक्तं रत्नसानुध्वजोच्छ्रितम्
महावातपताकञ्च महानुद्धयक्षलक्षितम् । नर्मदाऽलकनन्दा च यत्रेया दण्डतां गते ॥
छत्रोभूतौष नत्रस्तः सूर्याचन्द्रमसावपि । यस्मिन्मकरतुण्डञ्च वाराही शक्तिरुत्तमा
धुः स्वयञ्चापि गायत्रीरज्जवस्तक्षकादयः । सारथिः प्रणवो यत्रक्रेङ्कारःप्रणवध्वनिः
अङ्गानि रक्षका यत्र वरुथश्छन्दसांगणः । इत्याह्वता गणास्तूर्णं रथं निन्युहंराह्वया

देव्यासनाथं तं कृत्वा विमानम्पार्षदा दिवि ।

अनुजग्मुर्महादेवीं दिव्यां तेजोविजृम्भिणीम् ॥ ६४ ॥

सा क्षणन्त्यक्षरमणी वीक्ष्य दक्षसभाङ्गणम् ।

नभोऽङ्गणाद्विमानस्था ततो वेगादघातरत् ॥ ६५ ॥

अविश यद्दवाटञ्च षक्तिरक्षिवीक्षिता । कृतमङ्गलनेपथ्यां प्रसूं दृष्ट्वा किरीटिनीम् ॥
समर्तुं काश्च भगिनीर्न वाऽलङ्कृतिशालिनीः ।

साश्चर्याश्च सगर्वाश्च सानन्दाश्च ससाध्वसाः ॥ ६७ ॥

अचिन्तिता त्वनाहृता विमानाद्वरचल्लभा । कथमेवापरिप्राप्ता क्षणमित्यम्प्रपश्यतीः ।
 असम्भाष्यापि ताः सर्वा गता दक्षान्तिकं सती ।
 पित्रा पृष्टा तु मात्रापि भद्रज्ञातन्त्वदागमे ॥ ६६ ॥

सत्युवाच

यदि भद्रं जनेतर्मे समागमनतो भवेत् । कथं नाहं समाहृता यथैता मे सहोदराः ॥

दक्ष उवाच

अपि कन्ये! महाधन्ये! ह्यनन्ये सर्वमङ्गले !। अयं ते नमनाक् दोषो दोषेण्य ममैव हि
 तादृग्विधाय यत्पत्यैमयादत्ताञ्जनुद्धिना । यदहं तं समाह्लास्यमीश्वरोसौ निरीश्वरः
 कदा कथमदास्यस्त्वां तस्मै मायास्वरूपिणे ।

अहं शिवाख्यया तुष्टो न जाने शिवरूपिणम् ॥ ७३ ॥

पितामहेन बहुधा वर्णितोऽसौ ममाग्रतः । शङ्करो यमयं शम्भुरसौ पशुपतिः शिवः
 श्रीकण्ठोऽसौ महेशोऽसौ सर्वज्ञोऽसौ वृषध्वजः ।

अस्मै कन्याम्प्रयच्छ त्वं महादेवाय धन्विने ॥ ७५ ॥

वाक्पयाच्छतधृतेस्तस्मात्तस्मैदत्तामयाऽनघे । नजानेतं विरूपाक्षमुक्षुगं विषमक्षणम्
 पितृकाननसंवासं शूलिनञ्च कपालिनम् । द्विजिह्वसङ्गसुभगं जलाधारं कपर्दिनम् ॥
 कलङ्किकृतमौलिञ्च धूलिधूसरवर्चितम् । कश्चित्कौपीनवसनं नम्रं चातुलवत्कचित्
 कच्चिच्चर्मवसनं क्वचिद्विक्षाटनप्रियम् । विटङ्कभूतानुचरं स्थाणुमुग्रंतमोगुणम् ॥
 रुद्रं रौद्रपरीवारं महाकालवपुर्धरम् । नृकरोटीपरिकरं जातिगोत्रविचर्जितम् ॥ ८०
 नसम्पद्येत्तितं कश्चिज्जानानोऽपि प्रतारितः । किम्बहूकेन तनये! समस्तनयशालिनि
 क पासुलपटच्छन्नो महाशङ्खविभूषणः । प्रबद्धसर्पकेयूरः प्रलम्बितजटासटः ॥ ८२ ॥
 डमड्डुमहकव्यग्रहस्ताम्रः खण्डखन्दभृत् । ताण्डवाडम्बरहचिः सर्वामङ्गलचेष्टितः
 मृडानिसहरः काऽयमध्वरो मङ्गलालयः । अत एव समाहृता नेह त्वं सर्वमङ्गले ॥
 दुकूलान्यनुकूलानिरत्नालङ्कृतयः शुभाः । प्रागेव धारितास्तेऽत्र पश्यातात्यमृहाण च
 इह मङ्गलवेशेषु देवेन्द्रेषु सगूलधृक् । कथमर्हो भवेच्चेति मङ्गले विषमेक्षणः ॥ ८६ ॥

इत्याकर्ण्य सती साध्वी जनेतुरुदितं तदा । अत्यन्तदूनहृदया वक्तुं समुपचक्रमे ॥

सत्युवाच

नाकर्णितं मया किञ्चिद्वयिप्रब्रुवति प्रभो ! पदद्वयीं समाकर्ण्य तांश्चतेकयाम्यहम्
न सम्यग्वेत्ति तं कश्चिज्जानानोऽपि प्रतारितः ।

एतत्सम्यक् त्वयाऽऽख्यायि कसूतं वेत्ति सदाशिवम् ॥ ८६ ॥

त्वं तु प्रतारितः पूर्वमधुनापिप्रतारितः । कृत्वा तेन च सम्बन्धमसम्बद्धप्रलापभाक
याद्दृशं चक्षित शम्भुं ताद्दृशं यद्यमन्यथाः । कुतो मामदवास्तस्मै यञ्च कश्चन वेदन
अथवातेन सम्बन्धेन हेतुर्भवतो मतिः । तत्र हेतुरभूत्तात मम पुण्यैकगौरवम् ॥ ६२
अथोक्तत्वेवं बहुतरंत्वंजनेताऽस्य वर्ध्मणः । श्रुतानेन चदेहेन पत्युः परिविगर्हणा ॥
पुरश्चरणमेवैतद्यदस्यैव विसर्जनम् । सुश्लाघ्यजन्मया तावत्प्राणितव्यं सुयोषिता
यावज्जीवितनाथस्याऽश्रवणीया विगर्हणा ॥ ६४ ॥

इत्युक्त्वा क्रोधदीप्तान्गौ महादेवस्वरूपिणि । जुहाव देहसमिधम्प्राणरोधविधानतः
ततो विवर्णता प्रप्ताः सर्वे देवाः सवासवाः ।

नाग्निर्जञ्जाल च तथा यथाऽऽज्याहुतिभिः पुरा ॥ ६६ ॥

मन्त्रा कुण्ठितसामर्थ्यास्तत्क्षणादेव चाऽभवन् ।

अहो महानिष्टतरं किमेतत्समुपस्थितम् ॥ ६७ ॥

केचिद्बुद्धिज्वरा मिथः परियियासवः । महाभ्रुङ्गानिलः प्राप्तः पर्वतान्दोलनक्षमः
मखमण्डपभूस्तेनक्षणतःस्थपुटोऽकृता । अकाण्डं तडिदापातोजातोऽभूद् भूषकम्पनः
दिवश्चोलकाःप्रपतिताः पिशाचानृत्यमादधुः । आतापिगृध्ररुपरिगगनेमण्डलायितम्
रवेरधस्तादशिवं शिवास्तत्राप्यरारिषुः । मेघारुधिरविप्रुड्भिस्तत्रवृष्टिर्व्यधुः पराम्
निर्घातनिःस्वनो भूमेरुत्थितो हृत्प्रकम्पनः ।

दिव्यायुधानि च मिथोयुध्यन्ति स्मातिभीषणम् ॥ १०२ ॥

हवनीयं महाद्रव्यं दूषितं क्रोष्टुभिः श्वभिः । चकोराः करटास्तत्र विचेर्युङ्गमण्डपे
शमरानवाटवज्जातो यज्ञवाटःसर्वैक्षणात् । यद्यत्रावस्थितं सर्वं तत्रैव परितिष्ठितम्

षेत्रन्यस्तमिधासीच्च वस्तुजातमशोभिच । स्थगिता इषसंवृत्तास्तत्रचक्रधरादयः
 क्षोपि घदनमलानिमघाप्यसपरिच्छदः । पुनर्यथाकथञ्चिच्च यक्षं प्रावर्तयन्दिजाः ॥
 इति धीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीकाण्डे
 उत्तरार्धे सतीदेहविसर्जनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

एकोनवतितमोऽध्यायः

दक्षेश्वरप्रादुर्भाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

पुनः सनारदोऽगस्त्यदेव्याःप्राक्समुपागतः । तद्रवृत्तान्तमशेषञ्च हरायावेदितुंययौ
 द्रुष्ट्वा सनारदःशम्भुं नन्दिना सहसङ्कुधाम् । काञ्चित्तर्जनिविन्यासपूर्वं कुर्वन्तमानमत्
 उपाविशच्च शैलादिचिस्त्रासनमुत्तमम् ।

बैलक्ष्यं नाटयन्किञ्चित्क्षणं ज्योषन्समास्थितः ॥ ३ ॥

आकारेणैव सर्वज्ञस्तद्रवृत्तान्तं चिचेदह । अवादीच्च मुनिशम्भुःकुतो मौनावलम्बनम्
 शरीरिणां स्थितिरियमुत्पत्तिप्रलयात्मिका ।

दिव्यान्यपि शरीराणि कालाद्यान्त्येवमेव हि ॥ ५ ॥

द्रुश्यं चित्तधरं सर्वं विशेषाद्यदनीश्वरम् । ततोऽत्र चित्रंकि ब्रह्मन्कालःकालयैश्वर्यं
 अभाचिनो हि भावस्य भावः कापि न संभवेत् ।

भाचिनोपि हि नाभाषस्ततो मुह्यन्ति नोबुधाः ॥ ७ ॥

शम्भुदीरितसमाकर्ण्यसदृश्यं मुनिपुङ्गवः । प्रोक्तवानस्त्यमेवैतद्यद्देवेन प्रभाषितम्
 अवश्यमेव यद्वाच्यं तद्भूभूतनात्रमंशयः । परं माम्बाधतेऽत्यन्तञ्चिन्तैकाचित्तमाथिनी
 नापस्वीयेततेकिञ्चिन्नोपस्वीयेततश्चतः । अन्ययत्त्वाञ्चपूर्णत्वाद्दानिवृद्धीकुतस्त्वयि

अहोबराकः संसारः क्व भविष्यत्यनीश्वरः ।

आरभ्याद्य दिनं न त्वामर्षयिष्यन्ति केऽपि यत् ॥ ११ ॥

यतः प्रजापतिर्दक्षो न त्वामाहूतवान् कृतौ । तेनाद्य रीढितं दृष्ट्वा देवर्षिभ्योऽपि
तवरीढांकरिष्यन्ति किमैश्वर्येण रीढिनाम् । प्राप्तावहेडनालोकैजितकालभयाऽपि
अथैश्वर्येण सम्पन्नाः प्रतिष्ठाभाजनं किमु ॥ १३ ॥

महीयसायुषातेषां वसुभिर्भूरिभिश्चक्रिम् । येऽभिमानधनानेह लब्धरीढाः पदे पदे
अचेतनाश्च सावज्ञा जीवन्तोऽपिनकीर्तये । अभिमानधनाधन्या वरं योषित्सुसासती
यात्वद्विनिन्दाश्रघणान्तृणीचक्रे स्वजीवितम् ।

इत्याकर्ण्य महाकालः सम्यग्ज्ञात्वा सतोच्ययम् ॥ १६ ॥

सत्यं मुने! सतीदेवी तृणीचक्रे स्वजीवितम् ।

जोषं स्थितेमुनौ तत्र तन्महाकालसाध्वसात् ॥ १७ ॥

रुद्रश्चातीव रुद्रोऽभद्रबहुकोपाग्निदीपितः । ततस्तत्कोपजाह्नूनेराचिरासीन्महाद्युतिः
प्रत्यक्षः प्रतिमाकारः कालमृत्युप्रकम्पनः । उवाच च प्र णम्येशंभुशुण्डीम्महतीं दधत्
आज्ञा देहि पितः ! किन्ते करवै दास्यमुत्तमम् ।

ब्रह्माण्डमेककवलं करवाणि त्वदाज्ञया ॥ २० ॥

पिबामि घार्णवान्सप्ताप्येकेन चुलुकेन वै ।

रसातलं वा पातालं पातालं वा रसातलम् ॥ २१ ॥

त्वदाज्ञया नयामीश चिनिमग्न्यस्वहेलया । सलोकपालमिन्द्रं वा धृत्वाकेशैरिहानये
अपिवैकुण्ठनाथश्चेत्साहाय्यं करिष्यति । तदातंकुण्ठितास्त्रञ्चकरिष्यामित्त्वदाज्ञया
दनुजा दितिजाः केवैचराकारणदुर्बलाः । तेषुषोत्कटतांकोपिधत्तेतम्प्रणिहन्म्यहम्
कालम्बध्नामि वा सङ्ख्ये मृत्योर्चामृत्युमर्थये ।

स्थावरेषु चरेष्वत्र मयि क्रुद्धे रणाङ्गणे ॥ २५ ॥

त्वदुबलेन महेशान! नकोपि स्थैर्यमेष्यति । ममपादतलाघातादेतद्वै क्षोणिमण्डलम्
कदलीदलघद्वाताद्वेपते सरसातलम् । धूर्णीकरोमिदोर्दण्डघाताच्चैतान्कुलाघलान्
किम्बहूकेन्देष्टाहामसाध्वान्कञ्चन । त्वत्पादघलमासाधकृतविद्वेषाद्यध्वित्तम्

इति प्रतिज्ञां तस्येशः श्रुत्वा कृतममन्यत । कृतकृत्यमिवात्यन्तंतमुदाप्रत्युवाच च
 महावीरोसिरेभद्रममसर्वगणेष्विह । वीरभद्राख्ययात्वं हिप्रथितिम्परमां व्रज ॥
 कुरु मे सत्वरंकार्यं दक्षयज्ञं क्षयं नय । ये त्वा तत्रावमन्यन्ते तत्साहाय्यविधायिनः
 ते त्वयाप्यवमन्तव्या व्रज पुत्रशुभोदय । इत्याज्ञा मूर्ध्नि चाधायसतत.पारमेश्वरीम्
 हरम्प्रदक्षिणीकृत्य जग्मिषानतिरंहसा ।

ततस्तदनुगाञ्छम्भुः स्वनिःश्वाससमुद्गतान् ॥ ३३ ॥

शतकोटिमितानुग्रान्गणानन्यानवासुजत् ।

ते गणा वीरभद्रं तं यान्तं केचित्पुरोगताः ॥ ३४ ॥

केचित्तदनुगा जाताः केचित्तत्पार्श्वगा ययुः ।

अम्बरं तैः समाक्रान्तं तेजोविजितभास्करैः ॥ ३५ ॥

शृङ्गाग्राणि निरीणाञ्च कैश्चिदुत्पाटितानि वै ।

आषूडमूलाः कैश्चिच्च विद्रता च शिलोच्चयाः ॥ ३६ ॥

उत्पाट्य महतो वृक्षान्केचित्प्राप्ता मखाङ्गणम् ।

कैश्चिदुत्पाटिता यूपाः केचित्कुण्डान्यपूपुरम् ॥ ३७ ॥

मण्डपं ध्वंसयामासुः केचित्कोधोद्गुरागणाः । अर्षीस्वनन्वैवेदीश्चकेचिद्वैशूलपाणयः

अमक्षयन्हर्षीष्यन्त्ये पृषदाज्यं पपुः परे ॥ ३८ ॥

दध्वंसुरन्नराशीश्च केचित्पर्वतसन्निभान् । केचिद्वैपायसाहाराः केचिद्वैक्षीरपायिनः

केचित्पक्वान्पुष्टान्नायज्ञपात्राप्यधूर्णयन् । अमोटयन्स्त्वान्दण्डान्केचिद्वोर्दण्डशालिनः

व्यभञ्जच्छकटान्केचित्पशून्केचिदजीगिलन् ।

अग्निं निर्वापयामासुः केचिदत्यग्नितेजसः ॥ ४१ ॥

स्वयम्परिदधुधान्ये दुकूलानि मुदायुताः । जगृहुःकेचन पुरारत्नाना पर्वतं कृतम् ॥

एकेन च भगोदेवः पश्यश्चक्रेविलोचनः । पूष्णोदन्तावलीमन्यःपातयामासकोपितः

यज्ञः पलायितो द्रष्टुः केनचिन्मृगरूपधृक् । शिरोविरहितश्चक्रेतेन चक्रेण दूरतः ॥

एकः सरस्वतीं यान्तीं द्रष्टुं निर्वासिकां व्यधात् ।

अदिते रोष्ट्रपुटकौ छिन्नान्वयेन कोपिना ॥ ४५ ॥

अर्यम्णो बाहुयुगलं तथोत्पाटितवान्परः । अग्नेरुत्पाटयामासकश्चिज्जिह्वाप्रसह्यच्चिच्छेदवायोवृषणम्पार्षदोऽन्यः प्रतापवान् ।

पाशयित्वा यमं कश्चित्को धर्म इति पृष्टवान् ॥ ४७ ॥

यत्र धर्ममहेशोनप्रथमम्परिगूज्यते । नैऋतसंगृहीत्वान्यः केशिष्वातोत्यन्वासकृत् ॥
अनाश्वरंहविर्भुक्तंत्वयेत्याताडयत्पदा । कुबेरमपरो धृत्वा पादयोरधुनोदुबलात् ॥
वामयामास बटुरोभक्षिना ह्यध्वराहुनीः । एकादशाऽपिये रुद्रालोकपालैकपङ्क्तयः
रुद्रारूपा धारणवशात्प्रमथैस्तेऽवहेलिताः ।

वरुणोदरमापीड्य प्रमथोन्यो बलेनहि ॥ ५१ ॥

बहिरुद्गिर्यामाम यद्दत्तञ्जेशवर्जितम् । मायूरीं तनुमासाद्य सहस्राक्षो महामतिः ॥
उड्डीयगिरिमाश्रित्य छन्नः कौतुकमैक्षत । ब्राह्मणान्प्रमथा नत्वायातयातेतिषाद्भवन्
प्रमथाः कालयामासुरन्यानपि क्षयाचकान् । इत्थमप्रमथिने यागेप्रमथैःप्रथमागतैः ॥

वीरभद्रः स्वतः प्राप्तः प्रमथानीकिनीवृतः ॥ ५४ ॥

यज्ञवाटं श्मशानाभद्रुष्टातैः प्रमथैः पुरा । अतिशोच्यां दशानीतं वीरभद्रस्ततो जगौ
गणाः पश्यत दुर्वृत्तेः प्रारब्धानाञ्च कर्मणाम् ।

अनीश्वरैरवस्थेयं कुतो द्वेषो महेश्वरं ॥ ५६ ॥

ये द्विपन्तिमहादेवं सर्वकर्मैकसाक्षिणम् ।

धर्मकार्ये प्रवृत्तास्तु ते प्राप्स्यन्तीदृशीं दशाम् ॥ ५७ ॥

ऋ सदक्षो दुराचारः ऋ च यज्ञभुजः सुराः । धृत्वासर्वानानयतयात द्रुततरंगणाः ॥
इत्याह्ना वीरभद्रस्य प्राप्यते प्रमथाद्रुतम् । याचयान्त्यप्रतस्तावद्द्रुष्टः क्रुद्धो गदाधरः
तेनतेप्रमथाः सर्वमहाबलपराक्रमाः । शुष्कपर्णतृणावस्थां प्रापितावात्ययेवहि ॥
अघनष्टेषु सर्वेषु प्रमथेषुहरेर्मयात् । चुकोप वीरभद्रः स प्रलयानलसन्निभः ॥ ६१ ॥
ददर्श शार्ङ्गिण्वाप्रे स्वगणैश्च परिद्रुतम् । चतुर्भुजैरसङ्ख्यातैर्जितदैत्यमहाधरैः
बन्धिभिर्गन्दिभिर्जुष्टं बन्धिभिश्चापि शार्ङ्गिभिः ।

वीरभद्रस्ततः प्राह दृष्ट्वा तं दैत्यसूदनम् ॥ ६३ ॥

त्वं तु यक्षपुमानत्रमहायज्ञप्रवर्तकः । रक्षिता निजवीर्येणदक्षस्यऽयक्षवैरिणः ॥ ६४ ॥
किंवादक्षं समानीयदेहियुध्यस्ववामया । नदास्यसि च चेद्वक्षं ततस्तरक्षयन्नतः ॥

प्रायशः शम्भुमक्तेषु यतस्त्वम्प्रोच्यसेऽप्रणीः ।

एकोनेऽब्जसहस्रे प्राग्ददौ नेत्राम्बुजम्भवान् ॥ ६६ ॥

तुष्टेनशम्भुनादत्तं तुभ्यं चक्रं सुदर्शनम् । यत्साहाय्यमवाप्याजीन्वजयेदनुजाधिपान् ॥
इत्या रूप्यवचस्तस्यवीरभद्रस्यघोर्जितम् । जिह्वासुस्तद्बलं विष्णुर्वीरभद्रमुवाच ह
त्वंशम्भोः सुतदेशीयोगणानाम्प्रवरोऽस्यहो । राजादेशमनुप्राप्यततोप्यतिबलोमहान्
योसिसोऽस्यहमप्यत्र दक्षरक्षणदक्षधीः । पश्यामितवसामर्थ्यं कथं दक्षं हरिष्यसि
इत्युक्तो वीरभद्रः सनेन वै शार्ङ्गधन्वना । प्रमथान्दृष्टिमङ्गलैश्च प्रेरयामास सङ्गरे ॥
अथतैः प्रमथैर्विष्णोरेनुगागदिनारणे । आददानास्तृणवक्त्रेणापिताः पाशवीं दशाम्
ततस्ताक्षर्यथः क्रुद्धस्त्वैकैकं रणमूर्धनि । सहस्रेणमहस्रेण बाणानां ह्यतटाडयत्
तेभिन्नवक्षसः सर्वे गणारुधिरवर्षिणः । वासन्तीकैशुकीं शोभां परिप्राप् रणाजिरे ॥
क्षरन्त इव मातङ्गाः स्रवन्त इव पर्वताः । मद्देनघातुरागेण मिश्रैः शुशुभिरे गणाः ॥
ततः प्रहस्यगणपोऽब्रवीद्वैकुण्ठनायकम् । हे शार्ङ्गधन्वञ्जाने त्वां त्वरणाङ्गणपण्डितः
परं युध्यसि दैत्येन्द्रैर्दानवेन्द्रैर्नपार्थदैः । इत्युक्त्वा वीरभद्रेण भुशुण्डीकलिताकरे ॥
गदिनाऽथ गदातूर्णं दैत्येन्द्रगिरिरेणुकृत् । ततः प्रहतवाञ्चीरोभुशुण्ड्यातंगदाधरम्
तदङ्गसङ्गमासाद्य विदद्रे शतधातया । कौमोदकीप्रहारेण वीरभद्रम्प्रतापिनम् ॥
जघान वासुदेवोपि तरसाऽज्ञातवेदनम् । ततः खट्वाङ्गमादाय गदाहस्तं गदाधरम्
आताड्य सव्ययोर्दण्डे गदाभ्रमावपातयत् । कुपितोर्यमधुद्वेषी चक्रेणाताडयञ्च तम्
स च चक्रं समागच्छद् दृष्ट्वा सस्मार शङ्करम् । शङ्करस्मरणाच्चक्रं मनाक् चक्रत्वमाप्यच
कण्ठमासाद्य वीरस्य सम्यग्जातं सुदर्शनम् ॥ ८२ ॥

तेन चक्रेण शुशुभे नितरां स गणेश्वरः । वीरलक्ष्म्यावृत इव समरे बिजयस्रज्जा ॥
ततः सुदर्शनं दृष्ट्वा तत्कण्ठाभरणं हरिः । मनाक्स चकितंस्मिन्त्वाततोऽजग्राह नन्दकम्

सनन्दकंकरंतस्यप्रोद्यतम्मधुविद्विषः । पश्यतां दिविसिद्धानां स्तम्भयामासहुंकृता
अभ्यधावच्च वेगेन गृहीत्वा शूलमुज्ज्वलम् । यावज्जिवांसतिहरितावदाकाशवाचया
चारितो गणराजः समाकार्षीः साहसंत्विति । तनस्तमपहायाशुवीरभद्रो गणोत्तमः

प्राप्य दक्षं विनयोच्चैर्धिक्त्वामीश्वरनिन्दकम् ।

यस्यैदृगस्ति सम्पत्तिर्यत्र देवाः सहायिनः ।

स कथं सेश्वरं कर्म न कुर्याद्वक्षतां दधत् ॥ ८८ ॥

येनास्येनाऽपवित्रेणभवतानिन्दितःशिवः । चूर्णयामितदास्यन्तेष्वपेटाभिःसमन्ततः
इत्युत्त्वातस्यदक्षस्य हरपारुष्यभाषिणः । चिच्छेद् वदनं वीरश्चपेटशतघातनैः ॥

ततस्त्वदिति मुख्यानां मिलितानां महोत्सवे ।

त्रोटयामासकर्णादीन्यङ्गप्रत्यङ्गकानि च ॥ ९१ ॥

वेणीदण्डाश्च कासाञ्चित्तेन च्छिन्ना महारुषा ।

कासाञ्चिच्च कराश्छिन्नाः कासाञ्चित्कर्तिताः स्तनाः ॥ ९२ ॥

नासापुटांस्तथाऽन्यासां पाटयामास पार्षदः ।

चिच्छेद् घाङ्गुलीश्चापि तथाऽन्यासां शिवप्रियः ॥ ९३ ॥

येयेनिन्दुर्द्वेशयेयेचशुश्रुवुस्तदा । तेषांजिह्वाः श्रुतीःकोपादच्छिनच्चाकरोद्विधा
केचिदुल्लम्बितायूपे पाशयित्वा दृढंगले । अधोमुखायैर्द्वेशं विहायात्तम्महाहविः
द्विजराजश्च धर्मश्च भृगुमारीचमुख्यकाः । अत्यन्तमपमानस्य भाजनं तेन कारिताः
एतेजामातरस्तस्ययतोदक्षस्यदुर्धियः । हित्वामहेश्वरममून्सोपश्यदधिकाञ्छिच्चात्
तानि कुण्डानि ते यूपास्ते स्तम्भास्स च मण्डपः ।

ता वेद्यस्तानि पात्राणि तानि हव्यान्यनेकधा ॥ ९८ ॥

ते च वैयज्ञसम्भारास्ते ते यज्ञप्रवर्तकाः । ते रक्षपालास्तेमन्त्राधिनेशुर्हेलयाऽखिलाः
स्तोकेनैव हि कालेन यथार्धिः परचञ्चनात् । अर्जितानश्वतिक्षिप्रंदक्षसम्पन्नताऽशिवा
नीतेमहाकतौ तेन सगणेनेदृशीं दशाम् । विधिर्विधिविलोपाच्चहरंविज्ञाप्य चानयत्
सत्र यत्र मन्त्रः सोऽभूदीदृक्षःशिववर्जितः । आयातेऽथमहादेवेषीरभद्रोऽतिलजितः

नत्वा नकिञ्चिदवदद्देवः सर्वमवैत्स्वयम् । प्रसाद्य देवदेवेशं सुरज्येष्ठोऽब्रवीत्पुनः
अपराध्यप्ययं दक्षः सम्प्रसाद्यः रूपानिधे । यथापूर्वं पुनरमूनसर्वाङ्कारयशङ्कर
यथाविधिः प्रवर्तेन वैदिकः पुनरेवहि ।

तथाऽऽज्ञा दीयतां शम्भो कर्म सिञ्चयति सेश्वरम् ॥ १०५ ॥

अनीश्वरासु सर्वासु क्रियासु परमेश्वर । एवमेव भवन्त्येव विघ्नजाताः सहस्रशः ॥
विचारतो वराकोयं दक्षो भक्ततरस्तव । कुर्वन्योऽनीश्वरं कर्म परद्रष्टान्ततां गतः
अन्योपि यो महेशानं हित्वा कर्म करिष्यति । तस्य तत्कर्मसं सिद्धिर्दक्षस्यैव भविष्यति
अतो न कश्चित्किञ्चिच्च कश्चित्कर्मविना शिवम् ।

विधास्यति निशभ्यास्य दक्षस्यैद्दक्षचेष्टितम् ॥ १०६ ॥

विधीरितमिति श्रत्वा स्मित्वा देवो महेश्वरः । वीरमाज्ञापयामास यथापूर्वम्प्रकल्पय
वीरमद्रोषितत्सर्वं सर्वाज्ञां प्रतिपद्य च । विनादक्षस्य वदनं यथा पूर्वमकल्पेयत् ॥
ईश्वरं ये विनिन्दन्ति ते मूकाः पशवो ध्रुवम् । ततो मेव मुखं दक्षं वीरमद्रोगणो व्यवधात्
देवो ब्रह्माणमापृच्छथ धर्माद्गार्हस्थ्यतश्च्युतः । स पापं देो हिमप्रस्थं जगाम तपसेततः
अनाश्रमवता पुंसां यतः कालो मनागपि । मुधा कलयितव्यो न तस्माच्छ्रेयः सदाश्रमः
अतः स सर्वतपसां फलदाता महेश्वरः । तपश्च चार सगणो ब्रह्मादक्षन्त्वशिक्षयत्
हरनिन्दासमुद्भूतपापपङ्कं सुदुस्त्यजम् । यदि क्षालयितुं काङ्क्षा तदा वाराणसीं व्रज
प्राप्य वाराणसीं पुण्यां महापापौघहारिणीम् ।

कुरु लिङ्गप्रतिष्ठां त्वं तेन शम्भुः स तुष्यति ॥ ११७ ॥

तुष्टे महेश्वरे तुष्टं जगदेतच्चराचरम् । नान्यत्र पापं ते गन्तुं विना वाराणसीं पुरीम्
ब्रह्महत्यादिपापानाम्प्रायश्चित्तं मनीषिभिः । प्रोक्तं हरनिन्दायास्तत्र काश्येव केवलम्
काश्यां लिङ्गप्रतिष्ठा यैः कृताऽत्र सुकृतात्मभिः ।

सर्वे धर्माः कृतास्तैस्तु तपश्च पुरुषार्थिनः ॥ १२० ॥

इत्याकर्ण्य विधेर्वाक्यं दक्षः प्राप्याथ सत्व्वरम् । अचिमुक्तं महाक्षेत्रं तताप परमं तपः
संस्थाप्य लिङ्गं विधिवल्लिङ्गाराधनतत्परः । न वेत्ति लिङ्गादपरं स किञ्चिज्जगतीतले

विधानिशं महेशानम्परिष्टीति समर्चति । नमति ध्यायती क्षेतदक्षो दक्षप्रजापतिः
एकचित्तस्य दक्षस्य ध्यायतोलिङ्गमैश्वरम् । समासहस्रमगमन्मिहं द्वादशसङ्ख्या
मेनां यावत्सतीऽप्राप्य हिमाचलपतिव्रताम् ।

उमाकृपाऽतितपसा पतिं प्राप पिनाकिनम् ॥ १२५ ॥

तावत्स दक्षस्तपसि निश्चलो लिङ्गमार्चयत् ।

ततः काशी समासाद्य सह भर्त्रा गीरीन्द्रजा ॥ १२६ ॥

दृष्ट्वा तं निश्चलददं शिवलिङ्गार्चने रतम् । हरंव्यजिज्ञपद्देवी क्षीणोऽयं तपसा विभो
प्रसादय कृपासिन्धो वरेणंनं प्रजापतिम् । इत्युक्तोऽपर्णयाशम्भुः प्राहतं दक्षमीशिता
वरं ब्रूहि महाभाग! दास्यामि मनसेप्सितम् ।

इतीशोदितमाकर्ण्य प्रणम्य बहुशो हरम् ॥ १२६ ॥

स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रसन्नं वीक्ष्य शङ्करम् ।

प्रोवाच देवदेवेशं यदि देवो वरो मम ॥ १३० ॥

तत्स्वदीयपदद्वन्द्वे निर्द्वन्द्वामभक्तिरस्तु मे । इदं च ते महालिङ्गं यन्मयाऽत्र प्रतिष्ठितम्
अस्मिँल्लिङ्गे त्वया नाथ! स्थातव्यं सर्वदैव हि ॥ १३१ ॥

मयापराङ्मयद्देव तत्क्षन्तव्यं कृपानिधे । एत एववराः सन्तु किमन्यैरुत्तमैर्वरैः ॥ १३२

इति श्रुत्वा महादेवः प्रसन्नोऽतितराम्भवः । प्रोवाचचयदुक्तं ते तत्तथास्तु न चान्यथा
अन्यच्च ते वरं दद्या तच्छृणुष्व प्रजापते ! यत्स्वयास्थापितं लिङ्गमेतद्दक्षेभ्यस्वराभिधम्

अस्य संसेवनात्पुंसामपराधसहस्रकम् ।

क्षमिष्येऽहं न सन्देहस्तस्मात्पूज्यमिदं जनैः ॥ ३५ ॥

त्वन्तु लिङ्गार्चनादस्मात्सर्वमान्यो भविष्यसि ।

पारार्धद्वितयप्रान्ते ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ १३६ ॥

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गे लयं ययौ । दक्षोऽपि गतवान्गोहं परिप्राप्त मनोरथः

स्कन्द उवाच

इत्थमस्त्य! समाख्यातो दक्षेभ्यस्समुद्भवः । यं श्रुत्वा मुच्यते जन्तुरपराधशतैरपि ॥

श्रुत्वाऽऽख्यानमिदम्पुण्यं दक्षेश्वरसमुद्भवम् । नरो न लिप्यतेपापैरपराधालयोपिहि
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थ्यं काशीखण्ड
दक्षेश्वरप्रादुर्भावो नामैकोनचतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

नवतितमोऽध्यायः

पार्वतीशवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

पार्वतीहृदयानन्द! पार्वतीशसमुद्भवम् । कथयेह यदुद्दिष्टं भवता प्रागघापहम् ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच

शृण्वगस्ते यदा मेनाहिमाचलपतिव्रता । गिरीन्द्रजां सुतामाहपुत्रितेऽस्यमहेशितुः
किंस्थानंवसतिर्वाकाकोबन्धुर्वेत्सिकिञ्चन । प्रायोगृहंनजामातुरस्यकोपिचकुत्रचित्
निशम्यैतिष्वोमातुरतिह्रीणागिरीन्द्रजा । आसाद्यावसरंशम्भुं नत्वागौरीव्यजिह्वपत्
मयाश्वश्रूगृहं कान्तगम्यमद्यविनिश्चितम् । नाथात्रनैव वस्तव्यं नयमांस्त्वनिकेतनम्
गिरीन्द्रजागिरं श्रुत्वा गिरीश इति तस्त्वचित् ।

हित्वा हिमगिरिप्रान्तो निजमानन्दकाननम् ॥ ६ ॥

प्राप्याऽऽनन्दवनं देवीपरमानन्दकारणम् । विस्मृत्यपितृसम्भासंजाताचानन्दरूपिणी
अथ विश्वापयाञ्चके गौरी गिरिशमेकदा । अच्छिन्नानन्दसन्दोहः कुतःक्षेत्रेऽत्रतद्बद्ध
इतिगौरीरितंश्रुत्वाप्रत्युवाचपिनाकभृक् । पञ्चक्रोशपरीमाणेक्षेत्रेस्मिन्मुक्तिसद्यनि
तिलान्तरं न देव्यस्ति चिना लिङ्गं हि कुत्रचित् ।

एकैकम्परितो लिङ्गं क्रोशं क्रोशञ्च याऽवनिः ॥ १० ॥

अन्यत्रापि हि सादेवि भवेदानन्दकारणम् । अत्रानन्दघने देवि परमानन्दजन्मनि ॥
परमानन्दरूपाणि सन्ति लिङ्गान्यनेकशः । चतुर्दशसु लोकेषु कृतिनो येषसन्ति हि

तैःस्वनाग्नेहलिङ्गानिकृत्वाऽपिकृतकृत्यता !। अत्र येनमहादेवि लिङ्गसंस्थापितम्मम
वेत्ति तच्छ्रेयसः संख्यां शोकोऽपि न विशोषयित् ॥ १४ ॥

परिच्छेदव्यतीतस्यानन्दस्यपरकारणम् । अतस्त्वदम्परं क्षेत्रं लिङ्गैर्भूयोभिरद्विजे
निशम्येति महादेवि! पुनः पादौ प्रणम्यच । देहानुष्णमहादेव! लिङ्गसंस्थापनाय मे
पत्युराज्ञां समासाद्यच्छेच्छ्रेयः पतिव्रता । नतस्याःश्रेयसोहानिःसंघर्तेऽपिकदाचन
इति प्रसाद्य देवेशमाज्ञामप्राप्य महेशितुः । लिङ्गं संस्थापितंगौर्यां महादेवसमीपतः
तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसां ब्रह्महत्यादिपातकम् । विलीयेत नसन्देहो देहबन्धोपि नो पुनः
तत्र लिङ्गे षरो दत्तो देवदेवेन यः पुनः । निशामयमुने तं तु भक्तानां हितकाम्यया
लिङ्गं यः पार्वतीशाख्यं काश्यां सम्पूजयिष्यति ।

तद्देहावसितिम्प्राप्य काशीलिङ्गं भविष्यति ॥ २१ ॥

काशिलिङ्गत्वमासाद्य मामेवानुप्रवेक्ष्यति । क्षेत्रशुक्लतृतीयायां पार्वतीशसमर्चनात्
इह सौभाग्यमाप्नोतिपरत्रचशुभांगतिम् । पार्वतीश्वरमाराध्य योषिद्वापुरुषोऽपिषा
न गर्भमाविशेद् भूयो भवेत्सौभाग्यभाजनम् ।

पार्वतीशस्य लिङ्गस्य नामाऽपि परिगृह्यतः ॥ २४ ॥

अपि जन्मसहस्रस्य पापं क्षयति तत्क्षणात् ।

पार्वतीशस्य माहात्म्यं यः श्रोष्यति नरोत्तमः ॥

ऐहिकामुष्मिकान्कामान्सप्राप्स्यति महामतिः ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां षतुर्थे काशीखण्ड
उत्तरार्धे पार्वतीशवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

गङ्गेश्वरमहिमवर्णनम्

स्कन्द उवाच

चार्वतीशस्य महिमा कथितस्ते मयाऽनघ । मुने निशामयेदानीं गङ्गेश्वरसमुद्भवम् ॥
यं श्रुत्वा यत्र कुत्रापि गङ्गास्नानफलं लभेत् । चक्रपुष्करिणीतीर्थं यदा गङ्गासमागता
तेन दैलीपिना सार्धं मस्मिन्नानन्दकानने । क्षेत्रप्रभावमतुलं ज्ञात्वा शम्भुपरिग्रहात्
स्मृत्वा लिङ्गप्रतिष्ठायाः काश्यां लोकोत्तरं फलम् ।

गङ्गया स्थापितं लिङ्गं विश्वेशात्पूर्वतः शुभम् ॥ ४ ॥

गङ्गेश्वरस्य लिङ्गस्य काश्यां दृष्टिः सुदुर्लभा । तिथौ दशहरायाञ्च योगङ्गे शंसमर्षयेत्
तस्य जन्मसहस्रस्य पापसंक्षीयते क्षणात् । कलौ गङ्गेश्वरं लिङ्गं गुप्तप्रायं भविष्यति
तस्य संदर्शनं पुंसां जायते पुण्यहेतवे । दृष्टं गङ्गेश्वरं लिङ्गं येन काश्यां सुदुर्लभम्
प्रत्यक्षरूपिणी गङ्गा तेन दृष्टा न संशयः । कलौ सुदुर्लभा गङ्गा सर्वकल्मषहारिणी
भविष्यति न सन्देहो मित्रावरुणनन्दन ! ततोपि तिष्ये संप्राप्ते काश्यत्यन्तं सुदुर्लभा
ततोऽपि दुर्लभं काश्यालिङ्गं गङ्गेश्वराभिधम् । यस्य संदर्शनं पुंसां भवेत्पापक्षयाय वै
श्रुत्वा गङ्गे शमाहात्म्यं न नरो निरयी भवेत् ।

लभेच्च पुण्यसंभारं चिन्तितं वाधिगच्छति ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां घतुर्यैकाशील्लण्ड
उत्तरार्धे गङ्गेश्वरमहिमाख्यानां नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ११ ॥

— — — — —

द्विनवतितमोऽध्यायः

नर्मदेश्वराख्यानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

नर्मदेशस्य माहात्म्यं कथयामि मुने! तव । यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसंक्षयः
अस्य वाराहकल्पस्य प्रवेशेमुनिपुङ्गवैः । आपृच्छिकास्वरिच्छ्रेष्ठा वदतात्वंमृकण्डज

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्व मुनयः सर्वे सन्ति नद्यःपरंशतम् । सर्वा अप्यवहारिण्यः सर्वा अपिवृषप्रदाः
सर्वाभ्योपि नदीभ्यश्च श्रेष्ठा सर्वा समुद्रगाः ।

ततोऽपि हि महाश्रेष्ठा सरित्सुसरिदुत्तमाः ॥ ४ ॥

गङ्गा च यमुना चाथ नर्मदा च सरस्वती । चतुष्टयमिदं पुण्यधुनीषु मुनिपुङ्गवाः ॥
ऋग्वेदमूर्तिर्गङ्गा स्याद्यमुना च यजुर्ध्रुवम् । नर्मदा साममूर्तिस्तु स्यादथर्वासरस्वती
गङ्गा सर्वसरिद्योनिः समुद्रस्यापिप्रणी । गङ्गाया नलभेत्साम्य काचिदत्र सरिद्वरा
किन्तु पूर्वतपस्तप्त्वा रेवया बह्वनेहसम् । यद्वानोन्मुखो धाताप्रार्थितश्चेति सत्तम
गङ्गासाम्य विधे देहि प्रसन्नोसि यदिप्रभो । ब्रह्मणाथततःप्रोक्तानर्मदास्मितपूर्वकम्
यदिऽयक्षसमत्वं तुलभ्यतेऽन्येनकेनचित् । तदागङ्गासमत्वं चलभ्यतेसरिताऽन्यया
पुरुषोत्तमतुल्यः स्यात्पुरुषोऽन्यो यदि कश्चित् ।

स्रोतस्विनी तदा साम्य लभते गङ्गायाऽपरा ॥ ११ ॥

यदि गौरीसमा नारी कश्चिदन्या भवेदिह ।

अन्या धुनीह स्वधुन्यास्तदा साम्यमुपैष्यति ॥ १२ ॥

यदिकशीपुरीतुल्याभवेदन्याकश्चित्पुरी । तदा स्वर्गतर्ङ्गिण्याःसाम्यमन्यानदीलभेत्
निशम्येति विधेर्वाक्यं नर्मदासरिदुत्तमा । धातुर्वरं परित्यज्य प्राप्तावाराणसीपुरीम्
सर्वेभ्योऽपि हि पुण्येभ्यः काश्या लिङ्गप्रतिष्ठितेः ।

अपरा न समुद्दिष्टा कैश्चिच्छ्रेयस्करी क्रिया ॥ १५ ॥

अथ सा नर्मदा पुण्या विधिपूर्वा प्रतिष्ठितिम् ।

व्याघात्पलिपिलातीर्थे त्रिविष्टपसमीपतः ॥ १६ ॥

ततः शम्भुः प्रसन्नोऽमृतस्यैव नद्यै शुभात्मने । वरं वृणीष्व सुमरो यत्सुन्यं रोचतेऽनघे
सरिद्धरा निशम्येतिरेवाप्राह महेश्वरम् । किं वरणेह देवेश! भृशं तुच्छेन धूर्जटे ! ॥ १८
निर्द्वन्द्वत्वात्पदद्वन्द्वे भक्तिरस्तु महेश्वर ! श्रुत्वेति नितरां तुष्टोरेवागिरमनुत्तमाम् ॥

प्रोवाच च सरिच्छेष्टे ! त्वयोक्तं यत्तथाऽस्तु तत् ।

गृहाण पुण्यनिलये वितरामि वरान्तरम् ॥ २० ॥

यावन्त्योद्दृषदः सन्तितवरोधसिनर्मदे । तावन्त्योलिङ्गरूपिण्यो भविष्यन्ति वरान्तरम्
अन्यं च ते वरं दद्या तमप्याकर्णयोत्तमम् । दुष्प्रापयञ्च तपसां राशिभिः परमार्थतः ॥
सद्यः पापहरा गङ्गा सप्तार्हेण कलिन्दजा । त्र्यहात्सरस्वतीरेवे त्वं तु दर्शनमात्रतः ॥
अपरं च वरं दद्यां नर्मदे! दर्शनावहे ! भवत्या स्थापितं लिङ्गं नर्मदेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥

यत्तलिङ्गं महापुण्यं मुक्तिं दास्यति शाश्वतीम् ।

अस्य लिङ्गस्य ये भक्तास्तान्दृष्ट्वा सूर्यनन्दनः ॥ २५ ॥

प्रणमिष्यति यत्नेन महेश्रेयोऽभिवृद्धये । सन्तिलिङ्गान्यनेकानि काश्यादेविपदेपदे
परं हिनर्मदेशस्य महिमाकोपि चाद्भुतः । इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तस्मिंलिङ्गे लयं ययौ
नर्मदाऽपि प्रहृष्टाऽऽसीत्पावित्र्यं प्राप्य चाद्भुतम् ।

स्वदेशं च परिप्राप्ता दृष्टमात्राऽघहारिणी ॥ २८ ॥

वाक्यं मृकण्डजमुनेस्तेपिश्रुत्वा मुनीश्वराः । प्रहृष्टचेतसो जाताश्चक्रुः स्वं स्वं ततोहितम्

स्कन्द उवाच

नर्मदेशस्य माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तियुतो नरः । पापकञ्चुकमुत्सृज्य प्राप्स्यति शानमुत्तमम्

इति श्रीस्काण्डे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यासंहिताया चतुर्थे काशीखण्डे

उत्तरार्धे नर्मदेश्वराख्यानं नाम द्विषत्तितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

सतीश्वरप्रादुर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

नर्मदेशस्य माहात्म्यं श्रुतं कल्मषनाशनम् । इदानीं कथयस्कन्दसतीश्वरसमुद्भवम् ॥

स्कन्द उवाच

मित्रावहनसम्भूत कथयामि कथां शृणु । यथासतीश्वरं लिङ्गं काश्यामाविर्बभूव ह
पुरा तताप सुमहत्तपः शतधृतिमुने ! । तपसा तेन देवेशः सन्तुष्टो वरदोऽभवत् ॥
उवाच चाऽपि ब्रह्माणं नितरा ब्राह्मणप्रियः । सर्वज्ञनाथोलोकात्मावरं वरयलोककृत्

ब्रह्मोवाच

यदिप्रसन्नो देवेशवरं दास्यसि वाञ्छितम् । तदा त्वं मे भव सुतो देवीदक्षसुताऽस्तु च
इति श्रुत्वा महादेवः सर्वदो ब्रह्मणो वरम् । स्मिन्त्वादेवीमुखं वीक्ष्य प्रोवाच वतुराननम्
ब्रह्मस्त्वद्वाञ्छितं भूयात्किमदेयं पितामह ! ।

इत्युक्त्वा ब्रह्मणो भालादाविरासीच्छशाङ्कभृत् ॥ ७ ॥

रुद्रसउत्तातशयो ब्रह्मणो मुखमैक्षत । ततो ब्रह्माऽपि त बालं रुद्रन्तं प्रचिलोक्य च ॥
किमां जनकमाप्यापि त्वं रोदिषि मुहुर्मुहुः । श्रुन्वेति पृथुकः प्राहयथोक्तं परमेष्ठिना ॥
नाम्नेरोदिमिमेच्छर्त्तानामदेहि पितामह ! । रोदनाद्रुद्र इत्याख्यां समायाडिम्भकोऽलमत्

अगस्त्य उवाच

अभक्तत्वं गतोऽपीशः किं करोद् यडानन ! । यदिचेतिसतश्चाचक्ष्वमहत्कौतूहलं हि मे ॥

स्कन्द उवाच

सर्वज्ञस्य कुमारत्वात्किञ्चित्किञ्चिद्वैभ्यहम् । रोदनेकारणं वच्मि शृणुकुम्भसमुद्भव !
मनसीतिविचारोऽभूद्देवस्य परमात्मनः । बुद्धिषे भवमस्याऽहो वीक्षितुं परमेष्ठिनः
सत्यलोकाधिनाथस्य वतुराल्यस्य वेधसः । इत्यानन्दात्समुद्भूतो बाष्पपूरो महेशितुः

अगस्त्य उवाच

किं बुद्धिवैभवंधातुःशम्भुनामनसीक्षितम् । येनानन्दाश्रुसम्भारोबाल्येप्यभवदीशितुः
एतत्कथयमेप्राञ्च सर्वज्ञानन्दवर्धन ! । श्रुत्वागस्त्युदितं वाक्यं तारकारिरुवाचह ॥
देवेन मनसिध्यातमिति कुम्भजनेमुने ! । विनाऽपत्यं जनेतारं क उदरुमिहप्रभुः ॥

एको मनोरथश्चाऽयं द्वितीयोऽयं सुनिश्चितम् ।

अपत्यत्वं गते चास्मिन्स्मर्तुरुत्पत्तिहारिणि ॥ १८ ॥

क्षणक्षणं समालोक्यमङ्गस्पर्शेक्षणक्षणम् । एकशय्यासनाहारं लप्स्येऽनेनक्षणेक्षणे
योऽयं न गोचरः कापि बाणीमनसयोरपि ।

स मेऽपत्यत्वमासाद्य किं न दास्यति चिन्तितम् ॥ २० ॥

योऽमुं सकृन् पृशेऽजन्तुर्योऽमुं पश्येत्सकृन्मुदा । न सभूयोभिजायेतभवेच्चानन्दमेदुरः
गृहक्रीडनकं मेऽसौ यदि भूयात्कथञ्चन ।

तदा परस्यसौख्यस्य निधानं स्यामसंशयम् ॥ २२ ॥

विधेः समीहितंचेतिनूनं ज्ञात्वा ससर्ववित् । आनन्दबाष्पकलितंघश्रुत्त्रयमदीधरत्
श्रुत्वेत्यगस्तिः स्कन्दस्यभाषितं पर्यमूमुदत् । ननामचाङ्घ्रीप्रोवाचजयसर्वज्ञनन्दन!
विधेरपिमनोज्ञातंशम्भोरपिमनोगतम् । सम्यक्चित्तंत्वयाज्ञातंनमस्तुभ्यंचिदात्मने
स्कन्दोऽपि नितरां तुष्टः श्रोतुरानन्ददर्शनात् ।

धन्योऽस्यगस्त्य! धन्योऽसि श्रोतुं जानासि तस्वतः ॥ २६ ॥

नमेश्रमोवृथा जातो ब्रुवतस्तेपुरः कथाम् । इत्यगस्तिं समाभाष्य पुनः प्राहवडाननः
देवेरुद्रत्वमापन्ने देवीदक्षसुताभवत् । सापि तप्त्वा तपस्तीव्रं सतीकाश्यांचरार्थिनी
ददर्श लिङ्गरूपेण प्रादुर्भूतं हरं पुरः । अलं तप्त्वा महादेवि! प्रोक्तवन्तमितिस्फुटम्
इदं सतीश्वरं लिङ्गतव नाम्ना भविष्यति । यथा मनोरथस्तेऽत्र फलितोदक्षकन्यके
तथैतल्लिङ्गमाराध्याऽन्यस्याऽपि हि फलिष्यति ।

कुमारी प्राप्स्यति पतिमनसोपि समुच्छितम् ॥ ३१ ॥

एतल्लिङ्गं समाराध्य कुमारोऽपि वराङ्गनाम् ।

यस्य यस्य हि यः कामस्तस्य तस्य हि स भ्रुषम् ॥ ३२ ॥

भविष्यति न संदेहः सतीश्वरसमर्घनात् । सतीश्वरं समभ्यर्च्ययोयो यं यंसमीहते
तस्यतस्य स सक्षिप्रं भविष्यति मनोरथः । इतोऽष्टमेचदिवसे त्वज्जनेताप्रजापतिः
मह्यंदास्यति कन्यां त्वां सफलस्ते मनोरथः ।

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवाऽन्तर्हितोऽभवत् ॥ ३५ ॥

सापि स्वभवनंयातासतीदाक्षायणीमुदा । पिताऽपितस्मैप्रादात्तां रुद्रायदिवसेऽष्टमे
स्कन्द उवाच

इत्थं सतीश्वरं लिङ्गं काश्यांप्रादुरभून्मुने ! । स्मरणादपिलिङ्गञ्चदद्यात्सस्वगुणं परम्
रत्नेशात्पूर्वतोभागे दृष्ट्वाल्लिङ्गं सतीश्वरम् । मुच्यतेपातकैः सद्यःक्रमाज्ज्ञानञ्चिन्दति
इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्ड
उत्तरार्धेसतीश्वरप्रादुर्भावो नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

अमृतेशादिलिङ्गप्रादुर्भाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

अन्यान्यपि च लिङ्गानिकथयामि महामुने ! । अमृतेशमुखादीनि यन्नामाप्यमृतप्रदम्
पुरासनारुनामासीन्मुनिरत्र गृहाश्रमी । ब्रह्मयज्ञरतो नित्यं नित्यञ्चातिथिदैवतः ॥
लिङ्गपूजारतो नित्यं नित्यं तीर्थाप्रतिग्रही । तस्यर्षेरभवत्पुत्रः सनारोरुपजङ्घनिः ॥
सकदाचिद्गतोऽरण्यं तत्रदष्टःपृदाकुना । अथतत्सद्योमिश्रसवानीतः स्वमाश्रमम्
सनारुणासमुच्छ्वस्य नीतः स उपजङ्घनिः । महाश्मशानभूभागं स्वर्गद्वारसमीपतः
त्रासीच्छ्रीफलाकारंलिङ्गमेकं सुगुप्तवत् । निधायतत्रतंयावच्छवंसञ्चिन्तयेत्सुधीः
सर्पदष्टस्यसंस्कारः कथं भवति चेति वै । तावत्सजीवन्नुत्स्यौ सुप्तबन्धोपजङ्घनिः

अथ तंधीक्ष्यस मुनिः स नारुपजङ्घनिम् । पुनः प्राणितसंपन्नं चिसम्यं प्राप्तवान्परम्
प्राणितव्येऽत्र कोहेतुर्मच्छशोरुपजङ्घनेः । क्षेत्राद्बहिरिहिर्यंहि दृष्टानैवीत्परासुताम्
इति यावत्स सन्धत्ते धियं तज्जीवितैकिकाम् ।

तावत्पिपीलिका त्वेका मृतं काऽपि पिपीलिकम् ॥ १० ॥

आनिनायत्तत्रैवसोऽप्यनन्निर्गतस्ततः । अथ विश्वासमुनिस्तत्त्वजीवितसूचितम्
मृदुहस्ततलेनैव तावत्स्ननति वै मुनिः । तावच्छ्रीफलमात्रं हिलिङ्गं तेन समीक्षितम्
सनारुपाथ तल्लिङ्गं तेन तत्रसमर्चितम् । शिरकालीनलिङ्गस्यकृतं नामापिसान्धयम्
अमृतेश्वरनामेदं लिङ्गमानन्दकानने । एतल्लिङ्गस्यसस्पर्शादमृतत्वत्वं लभेद् ध्रुवम् ॥
अमृतेशं समभ्यर्च्य जीवत्पुत्रः सवै मुनिः । स्वाल्पदं समनुप्राप्तो दृष्ट्वाश्चर्यवज्जनै
तदा प्रभृतितल्लिङ्गममृतेश मुनीश्वरः । काश्या सिद्धिप्रदं नृणाकलौ गुप्तं भवेत्पुनः
अमृतेश्वरसस्पर्शान्मृता जीवन्ति तत्क्षणात् ।

अमृतत्वम्भजन्तेऽत्र जीवन्त स्पर्शमात्रतः ॥ ११ ॥

अमृतेशसमं लिङ्गं नास्ति कापिमहीतले । तल्लिङ्गं शम्भुना तिष्ये कृतं गुप्तं प्रयत्नतः
अमृतेश्वरनामापि ये काश्या परिगृह्यते । न तेषामुपसर्गोत्थम्भयं कापि भविष्यति
मुनेऽन्यच्चमहालिङ्गं करुणेश्वरसञ्चितम् । मोक्षद्वारसमीपे तु मोक्षद्वारेश्वराग्रतः ॥
दशनात्तस्य लिङ्गस्य महाकारुणिकस्य वै ।

न क्षेत्रान्निर्गमो जातु बहिर्भवति कस्यचित् ॥ २१ ॥

स्नातव्यं मणिकर्प्याञ्चद्रष्टव्यं करुणेश्वर । क्षेत्रोपसगजाभोतिर्हातव्यापरया मुदा
सोमवासरमासाद्य एकमक्तव्रतञ्चरेत् । यष्टव्यं करुणापुष्पैर्ब्रतिना करुणेश्वरः ॥
तेन व्रतेन सतुष्टं करुणेशः कदाचन । नतं क्षेत्राद् बहिष्कुर्यात्तस्मात्कार्यव्रतत्विदम्
तत्पत्रैस्तत्फलैर्वापिसम्पूज्यं करुणेश्वर । योनजानाति तल्लिङ्गस्यग्ग्यानविचर्जित-
तेनार्च्यं करुणावृक्षो देवेशः प्रीयतामिति । योवर्षं सोमवारस्पर्शव्रतकुर्यादितिद्विजः
प्रसन्नं करुणेशोऽत्र तस्य दास्यति वाञ्छितम् ।

द्रष्टव्यं करुणेशोऽत्र काश्या यत्नेन मानवैः ॥ २७ ॥

इतितेकरुणेशस्यमहिमोको महत्तरः । यं श्रुत्वानोपसर्गोत्थम्भयंकाश्याम्भविष्यति
मोक्षद्वारेभ्वरञ्चैव स्वर्गद्वारेभ्वरं तथा । उभौ काश्यांनरोद्भूता स्वर्गम्मोक्षञ्चिन्दति
ज्योतीरूपेभ्वरंलिङ्गं काश्यामन्यत्प्रकाशते । तस्यसंपूजनाद्भक्ताज्योतीरूपाभवन्तिहि
चक्रपुष्करिणीतीरे ज्योतीरूपेभ्वरम्परम् ।

समभ्यर्च्याप्नुयान्मर्त्यो ज्योतीरूप न संशयः ॥ ३१ ॥

यदाभागीरथी गङ्गातत्र प्राप्ता सरिद्वरा । तदारभ्यार्चयेन्नित्यं तल्लिङ्गं स्वधुं नीमुदा
पुराविष्णो तपत्यत्र तल्लिङ्गं स्वयमेव हि । तत्राचिरासीत्तेजस्वितेनक्षेत्रमिदं शुभम्
चक्रपुष्करिणीतीरे ज्योतीरूपेभ्वरं तदा । दूरस्थोऽपीहयोध्यायेत्सस्यसिद्धिरदूरतः
पतेष्वपि च लिङ्गेषु चतुर्दशसु सत्तम । लिङ्गाष्टकं महावीर्यं कर्मबीजद्वानलम् ॥
उङ्कारादीनिलिङ्गानियान्युक्तानिचतुर्दश । तथादक्षेभ्वरादीनिलिङ्गान्यष्टौमहान्तिष्व
शैलेशादीनि लिङ्गानि तथा यानि चतुर्दश । पुनः षट्त्रिंशदेतानि क्षेत्रसंसिद्धिहेतवे
षट्त्रिंशत्स्वरूपोऽसौ लिङ्गेष्वेषु सदाशिवः ।

अस्मिन्क्षेत्रे षसन्नित्यं तारकं ज्ञानमादिशेत् ॥ ३८ ॥

क्षेत्रस्यतश्चमेतद्धि षट्त्रिंशल्लिङ्गरूप्यहो । एतेषाम्भजनानुत्पुंसांनभवेद्दुर्गतिःकचित्
मुनेरहस्यभूतानिलिङ्गान्येतानिनिश्चितम् । एतल्लिङ्गप्रभाषाच्च मुक्तिरत्रसुनिश्चिता
मोक्षक्षेत्रमिदंकाशीलिङ्गैरेतैर्महामते ! । एतान्यन्यानि सिद्धानिसम्भवन्ति युगे युगे
आनन्दकाननं शम्भोः क्षेत्रमेतदनादिमत् । अत्र संस्थितिमापन्नामुक्ताएव न संशयः
योगसिद्धिरिहाऽस्त्यैव तपः सिद्धिरिहैव हि ।

व्रतसिद्धिर्मन्त्रसिद्धिस्तीर्थसिद्धिः सुनिश्चितम् ॥४३॥

सिद्धचष्टकं तु यत्प्रोक्तमणिमादिमहत्तरम् । तज्जन्मभूमिरेपैवशम्भोरानन्दवाटिका
निर्वाणलक्ष्म्याः सदनमेतदानन्दकाननम् । एतत्प्राप्यनमोकव्यंपुण्यैः संसारभीरुणा
अयमेव महालाभ इदमेव परन्तपः । एतदेव महत्पुण्यं लब्धा वाराणसीहयत् ॥

अवश्यं जन्मिनो मृत्युर्यत्र कुत्र भविष्यति ।

कर्मानुसारिणी लभ्या गतिः पश्चाच्छुभाशुभा ॥ ४७ ॥

मृत्युं विज्ञाय नियतं गतिं कर्मानुसारिणीम् ।

अवश्यं काशिका सेव्या सर्वकर्मनिवारिणी ॥ ४८ ॥

मानुष्यम्प्राप्य ये मूढानिमेषमितजीवितम् । नसेवन्तेपुरीकाशीं ते मुष्टामन्दबुद्धयः
दुर्लभंजन्म मानुष्यं दुर्लभाकाशिका पुरी । उभयोः सङ्गमासाद्य मुक्ताएव न संशयः ॥

क च तादृक् तपांसीह क तादृग्योग उत्तमः ।

यादृग्भिः प्राप्यते मुक्तिः काश्या मोक्षात्तमोत्तमः ॥ ५१ ॥

सत्यं सत्यं पुनःसत्यं सत्यपूर्वम्पुनः पुनः । नकाशीसदृशी मुक्त्यै भूमिरन्यामहीतले
विश्वेशो मुक्तिदो नित्यं मुक्त्यै चोत्तरवाहिनी ।

आनन्दकानने मुक्तिमुक्तिर्नाऽन्यत्र कुत्रचित् ॥ ५३ ॥

एक एव हि विश्वेशो मुक्तिदो नान्य एव हि । स एव काशीम्प्रापय मुक्तियच्छति नान्यतः
सायुज्यमुक्तिरत्रैव सान्निध्यादिरथान्यतः ।

सुलभा साऽपि नो नूनं काश्या मोक्षोऽस्ति हेलया ॥ ५५ ॥ १

स्कन्द उवाच

शृण्वगस्त्यमहाभाग भविष्यं कथयाम्यहम् । कृष्णद्वैपायनो व्यासोऽकथयद्यन्महद्वचः
निश्चिकेतुमनाः पश्चाद्यत्करिष्यति तच्छृणु ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कन्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे

उत्तरार्धेऽमृतेशादिलिङ्गप्रादुर्भावो नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

व्यासभुजस्तम्भवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणु सूत! महाबुद्धे! यथा स्कन्देन भाषितम् ।

भविष्यं मम तरुयाग्रे कुम्भयोनेर्महामतेः ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच

निशामय महाभाग! त्वं मैत्रावरुणे! मुने !। पाराशर्यो मुनिवरो यथा मोहमुपेक्ष्यति
व्यस्य वेदान्महाबुद्धिर्नाशास्त्राप्रभेदतः । अष्टादशपुराणानि सूतादीन्परिपाठ्य ख
श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यंयस्त्वचीकरत् । महाभारतसञ्ज्ञञ्च सर्वलोकमनोहरम्
सर्वपापप्रशमनं सर्वशान्तिकरम्परम् । यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्याविनश्यति ॥
एकदा समुनिःश्रीमान्पर्यटन्पृथिवीतले । सम्प्राप्तो नैमिषारण्यंयत्रसन्तिमुनीश्वराः
अष्टाशीतिसहस्राणिशौनकाद्यास्तपोधनाः । त्रिपुण्ड्रतमहाभालालसद्रुद्राक्षमालिनः
विभूतिधारिणोमक्त्यारुद्रसूक्तज्ञप्रियान् । लिङ्गाराधनसंस्काञ्छिवनामकृतादरान्
एकएवहिविश्वेशो मुक्तिदो नान्य एवहि । इतिब्रुवाणान्सततंपरिनिश्चितमानसान्

विलोक्य सन्मुनिर्व्यासस्तान्सर्वान् गिरिशात्मनः ।

उत्क्षिप्य तर्जनीमुच्छ्वैः प्रोवाचेर्दं वचः पुनः ॥ १० ॥

परिनिर्मथ्य घाम्जालंसुनिश्चित्यासरुद्रबहु । इदमेकंपरिज्ञातंसेव्यः सर्वेश्वरोहरिः
वेदेरामायणे खैव पुराणेषु ख भारते । आदिमध्यावसानेषु हरिरिकोऽत्र नापरः ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यंत्रिसत्यं न मृथापुनः । नवेदादपरंशास्त्रंनदेवोऽच्युततः परः
लक्ष्मीशःसर्वदानान्योलक्ष्मीशोऽप्यपधर्मदः । एकएवहिलक्ष्मीशस्ततोध्येयोनचापरः
भुक्तेमुक्तेरिहान्यत्रनान्योदाताजनार्दनात् । तस्माच्चतुर्भुजेनित्यंसेवनायःसुखेप्सुमिः
विहायःकेशवादन्यथे सेवन्तेऽल्पमेधसः । संसारखक्रोगहने तैविशन्ति पुनः पुनः ॥

एक एवहि सर्वेशो हृषीकेशा परात्पर । त सेवमान सतत सेव्यस्त्रिजगता भवेत्
एको धर्मप्रदोविष्णुस्त्वेकोबह्व्यदोहरि । एक कामप्रदश्चक्रीत्वेकोमोक्षप्रदोऽच्युत
शार्ङ्गिणये परित्यज्य देवमन्यमुपासते । तेसद्विश्चबहिष्कार्या वेदहीना यथा द्विजा
श्रुत्वेतित्राकथं व्यासस्य नैमिशारण्यवासिन । प्रवेपमानहृदया परिमोक्षुरिदं वच

ऋषय ऊचु

पाराशर्यमुने! मान्यस्त्वमस्माक महामते ।

यतो वेदास्त्वया व्यस्ता पुराणान्यपि वेत्सि यत् ॥ २१ ॥

यतश्च कर्ता त्वमसि महतोभारतस्य वै । धर्माथकाममोक्षणाधिनिश्चयकृतोद्भवम्
तरवञ्च कोपरश्चात्रत्वत्त सत्यवतीसुत । भवतायत्प्रतिज्ञातनिश्चिन्थोत्क्षिप्यतजनीम्
अस्मिन्माणवकास्तत्र परिश्रद्धधते नहि । प्रतिज्ञातस्यवत्तस्तवश्रद्धाभवेत्तदा ॥

यदाऽऽनन्दवने शम्भो प्रतिजानासि वै वच ॥ २५ ॥

गच्छ चाराणसीं व्यास! यत्र विश्वेश्वर स्वयम् ।

न तत्र युगधर्मोऽस्ति न च लग्ना वसुन्धरा ॥ २६ ॥

इति श्रुत्वा मुनिर्व्यास किञ्चित्कुपितवद्बुध्दि ।

जगाम तूर्णं स हित स्वशिष्यैरयुतोन्मितै ॥ २७ ॥

प्राप्य चाराणसीं व्यास स्नात्वापञ्चनदेहदे । श्रीमन्माधवम्यच्यययीपादोदक तत
यत्र स्नानादिकं कृत्वाद्दृष्ट्वा शैवादिकेशवम् । पञ्चरात्रतत कृत्वावैष्णवैरभिनन्दित
अप्रत पृष्ठन शङ्खैर्बाद्यमानै प्रमोदित । जयविष्णो हृषीकेश गोविन्दमधुसूदन! ॥
अच्युतानन्तवैकुण्ठमाधवोपेन्द्र! केशव । त्रिविक्रम गदापाणे शाङ्गपाणे जनादन ॥
श्रीवत्सवक्ष श्रीकान्तपीताम्बरमुरान्तक । कण्ठभारेबलिध्वसिन्कसारैकेशिसूदन ॥
नारायणाऽसुररिपो कृष्ण शौरे । चतुर्भुज । देवकीहृदयानन्द! यशोदानन्दवधन
पुण्डरीकाक्ष! वैत्यारे! दामोदरबलप्रिय । बलारातिस्तुत हरे! वासुदेव! वसुप्रद ॥
विष्वक्वधुःस्त्राहर्ष्यथ घनमालिङ्गरोत्तम । अधोक्षज क्षमाधार पद्मनाभमजलेश्य ॥
शुसिंह यज्ञवाराह! गोपगोपालबल्लभ । गोपीपते गुणातीत गरुडध्वज गोत्रभृत् ॥

जय चाणूरमधन! जयत्रैलोक्यरक्षण !। जयानाथ जयानन्द जयनीलोत्पलद्युते ॥
 कौस्तुभोद्भूषितोरस्कतूतनाचातुशोषण । रक्ष रक्षजगद्रक्षामणे!नरकहारक ॥ ३८॥
 सहस्रशीर्षपुरुष पुरुहूतसुखप्रद । यद्भूतं यच्च भाव्यं चैतत्रैकःपुरुषो भवान् ॥ ३९ ॥
 इत्यादिनाममालाभिःसंस्तुवन्वनमालिनम् । स्वच्छन्दलीलयागायन्त्यंभपरयामुदा
 व्यासो विश्वेशभवनं समायातः सहृष्टवत् । ज्ञानवापीपुरोभागे महाभागवतैः सह
 विराजमानसत्कण्ठस्तुलसीघरदामभिः । स्वयं तालधरो जातःस्वयं जातःसुनर्तकः
 वेणुवादनतस्वह्नः स्वयं श्रुतिधरोऽभवत् । नृत्यंपरिसमाप्येत्यंव्यासःसत्यवतीसुतः
 पुनरूर्ध्वंभुजं कृत्वा दक्षिणांशिष्यमध्यगः । पुनः पपाठ तानेवश्लोकान्गायन्निबोधकैः
 परिनिर्मथ्य वाग्जालं सुनिश्चित्याऽसकृद्बहु । इदमेकंपरिज्ञातं सेव्यः सर्वेश्वरो हरिः

इत्यादिऽश्लोकसङ्घातं स्वप्रतिज्ञाप्रबोधकम् ।

यावत्पठति स व्यासः सव्यमुत्तिक्षप्य वै भुजम् ॥ ४६ ॥

तस्तम्भ तावत्तद्बाहुं सशैलादिः स्वलीलया ।

वाक्स्तम्भश्चाऽपि यस्यासीन्मुनेर्व्यासस्य सन्मुने !॥ ४७ ॥

यतोगुप्तं समागम्यविष्णुर्व्यासमभाषत । अपराद्धं महश्चाऽत्रभवता व्यासनिश्चितम्
 तवैतदपराधेन भीतिर्मेऽपि महत्तरा । एक एव हि विश्वेशो द्वितीयो नास्ति कश्चन
 तत्प्रसादादहञ्चकी लक्ष्मीशस्तत्प्रभावतः । त्रैलोक्यरक्षासामर्थ्यं दत्तंतेनैव शम्भुना
 तद्भक्त्यापरमैश्वर्यं मया लब्धं वरात्ततः । इदानींस्तुहि तंशम्भुं यदिमेशुभमिच्छसि
 अन्यदापि नवै कार्याभवताशेमुषीदृशी । पाराशर्यं इति श्रुत्वा सञ्ज्ञयाव्याजहारह ॥
 भुजस्तम्भः कृतस्नेन नन्दिना दृष्टिमाव्रतः ।

वाक्स्तम्भस्तद्व्याज्जातः स्पृश मे कण्ठकन्दलीम् ॥ ५३ ॥

यथास्तोतुम्भवानीशं प्रभवामिभवान्तकम् । संस्पृश्यविष्णुस्तत्कण्ठं गुप्तमेघजगामह
 ततः सत्यवतीसुनुस्तथा स्तम्भितदोर्लतः । प्रारब्धधानमहेशानं परिष्टोतु मुदारधीः

व्यास उवाच

एको रुद्रो न द्वितीयो यतस्तद्रुद्राद्यैकं नैह नानास्ति किञ्चित् ।

यद्यप्यन्यः कोऽपि वा कुत्रचिद्बुधा व्याचष्टान्तद्यस्य शक्तिर्मदमे ॥ ५६ ॥
 यः क्षीराब्धेमन्दराघातजातो ज्वालामाली कालकूटोऽतिभीमः ।
 तं सोढुं वा कोऽपरोऽभूमहेशाद्यत्कीलाभिः कृष्णतामाप विष्णुः ॥ ५७ ॥
 यद्बुधाणोऽभूच्छ्रीपतिर्यस्य यन्ता लोकेशो यत्स्यन्दनभूमःसमस्ता ।
 बाहा वेदा यस्य येनेषुपाताद्दग्धा ग्रामास्त्रैपुरास्तत्समः कः ॥ ५८ ॥
 यं कन्दर्पो वीक्षमाणः समानं देवैरन्यैर्भस्मजातः स्वयं हि ।
 पीष्पैर्बाणैः सर्वविश्वैकजेता को वा स्तुत्यः कामजेतुस्ततोऽन्यः ॥ ५९ ॥
 यं वै वेदो वेद नो नैव विष्णुर्नोवा वेधा नो मनो नैव वाणी ।
 तं देवेशं माद्रुशः कोऽल्पमेधा याथात्म्याद् वै वेस्यहो विश्वनाथम् ॥ ६० ॥
 यस्मिन्सर्वं यस्तु सर्वत्र सर्वो यो वै कर्ता योऽचिता योऽपहर्ता ।
 नोयस्यादिर्यः समस्तादिरैको नोयस्याऽन्तो योऽन्तकृत्सं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥
 यस्यैकाख्या वाजिमेधेन तुल्या यस्या नत्या वैकयाल्पेन्द्रलक्ष्मीः ।
 यस्य स्तुत्या लभ्यते सत्यलोकायस्यार्घातो मोक्षलक्ष्मीरदूरा ॥ ६२ ॥
 नान्यं देवं वेदम्यहं श्रीमहेशान्नान्यं देवं स्तौमि शम्भोऽर्चतेऽहम् ।
 नान्यं देवं वा नमामि त्रिनेत्रात्सत्यं सत्यं सत्यमेतन्मृषा न ॥ ६३ ॥
 इत्थं यावत्स्तौति शम्भुं महर्षिस्तावन्नन्दी शाम्भवाद्द्रुक्प्रसादात् ।
 तद्दोःस्तम्भं त्यक्त्वांश्चाऽऽवभाषे स्मायं स्मायं ब्राह्मणेभ्यो नमो वः ॥ ६४ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इदं स्तवमहापुण्यं व्यासते परिकीर्तितम् । यः पठिष्यति मेधावी तस्य तुष्यति शङ्करः
 व्यासाष्टकमिदम्प्रातः पठितव्यं प्रयत्नतः । दुःस्वप्नपापशमनं शिवसन्निध्यकारकम्
 मातृहा पितृहा वाऽपि गोघ्नो बालघ्न एव वा ।
 सुरापी स्वर्णहृद् वाऽपि निष्पापोऽस्याः स्तुतेर्जपात् ॥ ६५ ॥

स्कन्द उवाच

पाराशर्यस्तदारभ्य शम्भुभक्तिपरोऽभवत् । लिङ्गव्यासेश्वरं स्याप्यव्यष्टाकर्णहृदां प्रतः

विभूतिभूषणो नित्यंनित्यं रुद्राक्षभूषणः । रुद्रसूक्तपरोनित्यंनित्यंलिङ्गार्चकोऽमघत्
सकृत्वाक्षेत्रसंन्यासंत्यजेन्नाद्यापिकाशिकाम् । तत्त्वक्षेत्रस्यविज्ञायनिर्वाणपद्दायिनः
घण्टाकर्णहृद् स्नात्वाद्रुद्रव्यासेश्वरं नरः । यत्रकुत्रमृतोषापिवाराणस्यांमृतोऽमघत्
काश्यांव्यासेश्वरंलिङ्गंपूजयित्वानरोत्तमः । नजानादुभ्रश्यते कापिपातकैर्नाभिभूयते
व्यासेश्वरस्यये भक्तानतेषांकलिकालतः । न पापतो भयं कापि न खक्षेत्रोपसर्गतः
व्यासेश्वरःप्रयत्नेन द्रष्टव्यःकाशिवासिमिः । घण्टाकर्णकृतस्नानैःक्षेत्रपातकभीरुभिः
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धेव्यासभुजस्तम्भो नामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

व्यासशापविमोक्षणम्

अगस्त्य उवाच

कृष्णद्वैपायनः स्कन्द! शम्भुभक्तिपरो यदि । यदि क्षेत्ररहस्यज्ञः क्षेत्रसंन्यासकृद्यदि
तथाद्रुष्टप्रभावश्चेत्तथा चेज्जानिनांवरः । पुरीं वाराणसीं श्रेष्ठां कथं किल शपिष्यति

स्कन्ध उवाच

सत्यमेतत्त्वयाऽऽपृच्छि कथयामि मुने! शृणु ।

तस्य व्यासस्य चरितं भविष्यं त्वयि पृच्छति ॥ ३ ॥

यदारभ्यमुनेस्तस्य नग्दीस्तस्मितवान्भुजम् । तदारभ्यमहेशानंसंस्तौतिपरमाद्गतः

काश्यान्तीर्थान्यनेकानि काश्यां लिङ्गान्यनेकशः ।

तथापि सेव्यो विश्वेशः स्नातव्या मणिकर्णिका ॥ ५ ॥

लिङ्गे प्वेको हि विश्वेशस्तीर्थेषु मणिकर्णिका ।

इति संन्याहरणव्यासस्तदुद्घयम्बहु मन्यते ॥ ६ ॥

त्यस्य त्वत्सवहुबाग्जालं प्रातः स्नात्वा दिने दिने । निर्वाणमण्डपे वक्तिमहिमानं महेशितुः
शिष्याणां पुरतो नित्यं क्षेत्रस्य महिमामहान् । व्याख्यायते मुदा तेन व्यासेन परमविद्या
अत्र यत्किञ्च ते क्षेत्रेशु भवं वाऽशुभमेव वा । संवर्तेऽपि न तस्यान्तस्तस्माच्छ्रेयःसमाचरेत्

क्षेत्रसिद्धिं समीहन्ते ये चाऽत्र कृतिनो जनाः ।

यावज्जीवं न तैस्त्याज्या सुधीभिर्मणिर्कणिका ॥ १० ॥

अक्षपुष्करिणीतीर्थे स्नातव्यं प्रतिवासरम् ।

पुष्पैः पत्रैः फलैस्तोयैरर्च्यो विश्वेश्वरः सदा ॥ ११ ॥

स्ववर्णाश्रमधर्मश्च त्यक्तव्यो न मनागपि । प्रत्यहं क्षेत्रमहिमाश्रोतव्यः भद्रयाऽसकृत्
यथाशक्ति च देयानिदानान्यत्र सुगुप्तवत् । अन्नान्यपि च देयानि विघ्नान्परिजिहीर्षुणा
परोपकारेण च्छात्र कर्तव्यं सुधिया सदा । पर्वस्वपि विशेषेण स्नानदानादिकाः क्रियाः
विशेषपूजाकर्तव्या सुमहौत्सवपूर्वकम् । कार्यास्तथाधिकायात्राः समर्च्यः क्षेत्रदेवताः
अत्र मर्म न वक्तव्यं सुधिया कस्यचित्कचित् । परदारपरद्रव्यपरापकरणान्त्यजेत्
परापवादो नो वाच्यः परेष्यां न च कारयेत् । असत्यं नैव वक्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि
अत्र त्यजन्तु रक्षार्थं मसत्यमपि भाषयेत् । येन केन प्रकारेण शुभेनाप्यशुभेन वा ॥

अत्रत्यः प्राणिमात्रोऽपि रक्षणीयः प्रयत्नतः । एकस्मिन्नरक्षिते जन्तावत्र काश्यां प्रयत्नतः

त्रैलोक्यरक्षणात्पुण्यं यत्स्यात्तत्स्यान्न संशयः ।

ये वसन्ति सदा काश्यां क्षेत्रसंन्यासकारिणः ॥ २० ॥

त एव रुद्रा मन्तव्या जीवन्मुक्ता न संशयः ।

ते पूज्यास्ते नमस्कार्यास्ते सन्तोष्याः प्रयत्नतः ।

तेषु वै परितुष्टेषु तुष्येद्विश्वेश्वरः स्वयम् ॥ २१ ॥

काश्यां वसन्ति ये मर्त्या दूरस्थैरपि सन्नरैः । योगक्षेमो विधातव्यस्तेषां विश्वेशितुर्मुदे

प्रसरस्त्विन्द्रियाणां च निवार्योऽत्र निवासिभिः ।

मनसोऽपि हि चाञ्चल्यमिह वार्यं प्रयत्नतः ॥ २३ ॥

मरणं नाभिकाङ्क्षेद्धि काङ्क्ष्यो मोक्षोऽपि नो पुनः ।

शरीरशोषणोपायः कर्तव्यः सुखिष्या न हि ॥ २४ ॥

शरीरसौष्ठवं काङ्क्ष्यं व्रतस्नानादिसिद्धये । आयुर्बद्धञ्चैखिन्त्यं महाफलसमुद्भये ॥
आत्मरक्षाऽत्रकर्तव्या महाश्रेयोभिवृद्धये । अत्रात्मत्यजनोपायं मनसापि न खिन्तयेत्
एकस्मिन्नपि यथाहि काश्यां श्रेयोऽभिलभ्यते ।

न तु वर्षशतेनापि तदन्यत्राऽऽप्यते क्वचित् ॥ २७ ॥

अन्यत्र योगाभ्यसनाद्यावज्जन्मयदर्ज्यते । धाराणस्यां तदेकेन प्राणायामेन लभ्यते
सर्वतीर्थावगाहाच्च यावज्जन्मयदर्ज्यते । तदानन्दवने प्राप्यं मणिकर्ण्येकमज्जनात्
सर्वलिङ्गार्चनात्पुण्यं यावज्जन्म यदर्ज्यते । सकृद्विश्वेशमभ्यर्च्यं श्रद्धया तदवाप्यते
यजन्मनां सहस्रेण निर्मलभुग्धमर्जितम् । तन्पुण्यपरिवर्तेन भवेद्विश्वेशदर्शनम् ॥
गवांकोटिप्रदानेन सम्यग्दत्तेन यत्फलम् । तत्फलं सम्यगाप्येत विश्वेश्वरचिलोकनात्
यत्षोडशमहादानः पुण्यम्रोक्तमहर्षिभिः । तत्पुण्यं जायते पुंसां विश्वेशोपुण्यदानतः
अभवेद्वादिभिर्यज्ञैर्यत्फलमप्राप्यतेऽखिलैः । पञ्चामृतानां स्नपनाद्विश्वेशे तदवाप्यते
वाजपेयसहस्रेण सम्यगिष्टेन यत्फलम् । सकृन्महाहर्षेणैर्विश्वेशे तच्छताधिकम्
ध्वजातपत्रं च मरुविश्वेशे यः समपयेत् । एकच्छत्रं सचै राज्यप्राप्तुयाद्ब्रह्मुधातले ॥
महापूजोपकरणं योऽप्येद्विभ्रवर्तारि । न तं सम्पत्सम्भाराविमुञ्चन्तीह कुत्रचित्

सर्वतंकुसुमाढ्याश्च यः कुर्यात्पुष्पघाटिकाम् ।

तदङ्गणे कल्पवृक्षाश्लयां कुर्वन्ति शीतलाम् ॥ ३८ ॥

य. क्षीरस्नपनार्थं वै विश्वेशे धेतुमर्पयेत् । क्षीरार्णवतटे तस्य निवसेयुः पितामहः
विश्वेशराजसदनेयः सुधांचित्रमेव वा । कारयेत्सस्य भवनं कैलासे चित्रितम्भवेत्
ग्राह्यगान्धितिनो वापितयैव शिष्ययोगिनः । भोजयेद्योत्रधौ काश्यामेकैकगणनाक्रमात्
कोटिमोक्षफलन्तस्य श्रद्धयानात्र संशयः । तपस्त्वत्र प्रकर्तव्यं दानमत्र प्रदापयेत्
विश्वेशस्तोषणीयो व्रस्नानहोमजपादिभिः । अन्यत्रकोटिजप्येन यत्फलमप्राप्यते नरैः

अष्टोत्तरशतं तप्त्वा तदत्र समवाप्यते ॥ ४३ ॥

कोटिहोमेन यत्प्रोक्तं फलमन्यत्र सूरिभिः । अष्टोत्तराहुतिशतान्दानानन्दकानने ॥

यो जपेद्ब्रह्मसूक्तानि काश्यां चिश्वेशसञ्चिधौ ।

पारायणेन वेदानां सर्वेषां फलमाप्नोते ॥ ४५ ॥

तस्मै पुण्यं ज्ञानामिचिन्तितेवाक्षरेपरे । काश्यानित्यं प्रवस्तव्यं सेव्योत्तरवहासदा

आपद्यपि हि घोराया काशी त्याज्या न कुत्रचित् ।

यतः सर्वापदा हर्ता त्राता विश्वपतिः प्रभुः ॥ ४७ ॥

अवन्ध्यं दिवसं कुर्यात्स्नानदानजपादिभिः ।

यतः काश्या कृतं कर्म महत्त्वाय प्रकल्पते ॥ ४८ ॥

कृच्छ्रवान्द्रायणादीनि कर्तव्यानि प्रयत्नतः । तथेन्द्रियविकाराश्च न बाधन्तेऽत्र कर्हि चित्

यदीन्द्रियाणि कुर्वन्ति विक्रियामिह देहिनाम् ।

तदाऽत्र वाससंसिद्धिर्घिघ्नेभ्यो नैव लभ्यते ॥ ५० ॥

अगस्त्य उवाच

कृच्छ्रवान्द्रायणादीनि व्यासो वक्ष्यति यानि वै ।

तेषां स्वरूपमाख्याहि स्कन्देन्द्रियविशुद्धये ॥ ५१ ॥

स्कन्द उवाच

कथयामि महाबुद्धे! कृच्छ्रादीनि तवाग्रतः । यानि कृत्वा त्रमनुजो देहशुद्धिलभेत्परां

एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन चक्रेण पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः ॥

घटोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुचोदकम् । प्रत्येकं प्रत्यहम्पीतं पर्णकृच्छ्रः प्रकीर्तितः

पिण्याकघृतकाम्बुसकूनाभ्रप्रतिघासरम् । एकैकमुपवासश्चकृच्छ्रः सौम्यः प्रकीर्तितः

हविषा प्रातरश्नीतहविषासायमेव च । हविषा याचितं त्रीस्तु सोपवासस्य हंघवसेत्

एकेकं प्रासमश्नीयाद्दहानि त्रीणि पूर्वघत् ।

त्र्यहञ्जोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रश्चरन्दिजः ॥ ५७ ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रमप्यसा दिवसानेकविंशतिः । द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः

त्र्यहम्प्रातस्त्र्यहंसायं त्र्यहमध्यादयाचितम् । त्र्यहञ्जोपवसेदन्त्यं प्राजापत्यश्चरन्दिजः

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्रः सान्तपनः स्यूतः

पृथक्साम्तपनद्रव्यैः पडहः सोपवासकः । सप्ताहेनतुकृच्छ्रोऽयं महासम्पन्नपनःस्मृतः

ततकृच्छ्रश्चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ।

पतांस्त्र्यहम्पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥ ६२ ॥

त्र्यहमुष्णाः पिबेदापस्त्र्यहमुष्णम्पयः पिबेत् ।

त्र्यहमुष्णं घृतमप्राश्य वायुमक्षो दिनत्रयम् ॥ ६३ ॥

पलमेकम्पयः पीत्वा सर्पिषश्च पलद्वयम् । पलमेकं तु तोयस्य ततकृच्छ्र उदाहृतः ॥

गोमूत्रेण समायुक्तं यावकंयःप्रयोजयेत् । कृच्छ्रमेकाहिकमप्रोक्तंशरीरस्य विशोधनम्

हस्तावुत्तानतः कृत्वा दिवसम्मारास्ताशनः ।

रात्रौ जले स्थितोव्युष्टः प्राजापत्येन तत्समम् ॥ ६६ ॥

एकैकं हासयेद्प्रासं कृष्णे शुक् देववर्धयेत् । उपस्पृशंस्त्रिवचनमेतच्चान्द्रायणंस्मृतम्

एकैकवर्धयेद् प्रासंशुक्लेकृष्णेचहासयेत् । भुञ्जीतदर्शनोकिञ्चिदेवचान्द्रायणोविधिः

चतुरःप्रातरश्रीयात्पिण्डान्विप्रःसमाहितः । चतुरोस्तमितेसूर्येशिशुचान्द्रायणंस्मृतम्

अष्टावष्टौ समश्रीयात्पिण्डान्मध्यन्दिने स्थिते ।

नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ७० ॥

यथा कथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः ।

मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥ ७१ ॥

अद्विर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।

विद्यातपोभ्याम्भूतात्मा बुद्धिर्हानेन शुद्ध्यति ॥ ७२ ॥

तच्चज्ञानम्भवेत्पुंसांसम्यक्काशीनिषेवणात् । काशीनिषेवणेनस्याद्द्विश्वेशकरुणोदयः

ततोमहोदयावाप्तिः कर्मनिर्मूलनक्षमा । अतः कश्यामप्रयत्नेन स्नानं दानं तपो जपः

व्रतं पुराणश्रवणं स्मृत्युकाध्वनिषेवणम् ।

प्रतिक्षणं प्रतिदिनं विश्वेशपद्विन्तनम् ॥ ७५ ॥

लिङ्गार्चनं त्रिकालं च लिङ्गस्यापि प्रतिष्ठितिः ।

साधुभिः सहसँल्लापो जल्पः शिवशिवेति च ॥ ७६ ॥

अतिथेभ्यापि सत्कारो मैत्रीतीर्थनिवासिभिः ।

आस्तिक्यबुद्धिर्विनयो मानामानसमानधीः ॥ ७७ ॥

अकामितात्वनौद्धत्यमरागित्वमर्हिसनम् । अप्रतिग्रहवृत्तिश्च मतिभ्रानुग्रहात्मिका
अदम्बिता त्वमात्सर्यमप्रार्थितधनागमः । अलोमित्वमनालस्यमपारुष्यमदीनता ॥
इत्यादि सत्प्रवृत्तिश्च कर्तव्याक्षेत्रवासिना । प्रत्यहं चेतिशिष्येभ्यःसधर्ममुपदेक्ष्यति
नित्यं त्रिषवणस्नायी नित्यं भिक्षाकृताशनः ।

लङ्कपूजाखंको नित्यमित्यं व्यासोऽवसत्पुरा ॥ ८१ ॥

एकदातस्य जिज्ञासां कर्तुं देवीं हरोऽवदत् । अद्यभिक्षाटनं प्राप्ते व्यासे परमधार्मिके
अपिसर्वगतेकापिभिक्षां मायच्छसुन्दरि ! । तथेत्युक्त्वाभवानीसा भवंभवनिवारणम्
नमस्कृत्यप्रतिगृहंतस्यभिक्षान्यषेधयत् । समुनिःसहितः शिष्यैर्भिक्षामप्राप्यदूनघत्
वेलातिक्रममालोक्य पुनर्वन्नामतांपुरीम् । गृहेगृहे परिप्राप्ता भिक्षान्यैः सर्वभिभुक्तैः
तद्वह्निनालभद्विज्ञांसशिष्यःसमुनिःकचित् । अथसायंतनकर्म कृत्वाछात्रैःसमन्वितः
उपोषणपरो भूत्वा तथैवासीदहर्निशम् ।

तथान्येद्युर्मुनिर्व्यासः कृत्वा माध्याह्निकं विधिम् ॥ ८७ ॥

ययौ भिक्षाटनं कर्तुं सशिष्यःपरितःपुरीम् । सर्वत्र सपरिभ्रान्तः प्रतिसौधंमुहुमुहुः
न कापि लब्धवान्भिक्षाम्भाग्यहीनो धनं यथा ।

अथ चिन्तितवान्व्यासः परिभ्रान्तः परिभ्रमन् ॥ ८९ ॥

कोहेतुर्यत्नलभ्येतभिक्षायत्नेनरक्षिता । अन्तेवासिन आहूयव्यासःपप्रच्छञ्चाखिलान्
भवद्विरपि नोभिक्षा परिप्राप्तेति गम्यते । किमत्र पुरि सम्वृत्तं द्वित्रायातममाज्ञया
द्वितीयेऽह्णपियद्विज्ञानलभ्येतातियत्नतः । अनिष्टं किञ्चिदज्ञासीन्महागुरुनिपातजम्
अन्नक्षयोवासर्वस्यांतगर्थात्मभवत्क्षणात् । राजदण्डोऽथयुगपज्जातःसर्वपुरौकसाम्
अथवावारिताभिक्षाकेनाप्यस्मासुत्प्रेष्यथा । पुरौऽसोभवन्दुस्थास्तूपसर्गेणकेनचित्
किमेतदखिलं ज्ञात्वासमागच्छतसत्वरम् । द्वित्राः पवित्रव्रणात्प्राप्यानुष्ठां गुरोरथ
समाचरुयुः समागम्य दृष्ट्वाधि तत्पुरौकसाम् ।

शिष्या उचुः

शृण्वन्त्वात्तारोध्यस्वर्णाधोपसर्गोऽत्रकश्चन । नात्रक्षयोवासर्वस्यांनगर्यामिहकुत्रचित्
यत्र विश्वेश्वरः साक्षाद्यत्राऽमरधुनीस्वयम् । त्वादृशायत्रमुनयःकमीस्तत्रोपसर्गजा
समृद्धिर्या गृहस्थानामिह विश्वेशितुः पुरि ।

न सर्धिरस्ति वैकुण्ठे त्वल्पास्ता ब्रलकादयः ॥ ६८ ॥

रत्नाकरेषु रत्नानि मतावन्ति महामुने !। यावन्ति सन्तिविश्वेशनिर्मात्योपभुजांगृहे
गृहेगृहेऽत्र धान्यानां राशयोयादृशःपुनः । नतादृशः कल्पवृक्ष दत्ता ऐन्द्रे पुरेकचित्
यत्रसाक्षाद्विशालाक्षी सुविस्तारफलप्रदा । नतत्रपुरिसर्वस्यां नरो वैनिर्धनः कचित्
निर्वाणलक्ष्म्याः सद्नेत्वस्मिन्नानन्दकानने । मोक्षोपियत्रसुलभःकिमन्यत्तत्रदुर्लभम्
सीमन्तिन्यः स्त्रियः सर्धाः पतिव्रतपरायणाः ।

सर्वा भवानीरूपिण्यो विश्वेशार्पितसत्क्रियाः ॥ १०३ ॥

यावन्तः पुरुषाः काश्यासर्वएव गणाधिपाः । सर्वएव कुमारा वै सर्वे तारकदृष्टयः ॥
त्रिपुण्ड्राङ्कितमाला येते सर्वेचन्द्रमौलयः । उपसर्गसहस्रैश्च पीड्यमाना अर्पाह ये
नत्यजन्ति सदाकाशीं सर्वज्ञा एव ते स्त्रियाः । गृहे गृहेऽपिघटवोब्रह्मवादविवादिनः
स्वर्धुनीधूतकलुषाः सन्तीहश्चतुराननः । निर्वाणलक्ष्मीपतयः क्षेत्रसंन्यासकारिणः
सर्वएव हृषीकेशाः सर्वेवै पुरुषोत्तमाः । अच्युता एव विज्ञेया एतल्लेखपरिग्रहाः ॥
स्त्रियो वा पुरुषा वापि सर्व एव न संशयः । सर्व एव त्रिनयनाः सर्व एव चतुर्भुजा
श्रीकण्ठाःसर्वएवात्र सर्वेभ्युज्जयाधुवम् । मोक्षश्रीध्रितवर्ष्माणस्त्वर्धनारीश्वरायतः
धर्मराशिःपरश्चात्र महान्तोऽत्रार्थराशयः । सर्वेकामाः फलन्त्यत्रकैवल्यञ्चात्रनिर्मलम्
नगर्भवाससंसर्गः काशीसंस्थितिकारिणाम् । नकलिश्चात्रबाधेतकालो नैव प्रबाधते

एतांसि नाऽत्र बाधन्ते विश्वेशशरणार्थिनः ।

यत्र विश्वेश्वरः साक्षान्नादचिन्दुकलात्मकः ॥ ११३ ॥

ध्वनिरूपी हि तत्रास्ति प्रणवो मन्त्रविग्रहः ।

अतो विग्रहवन्तोऽत्र सन्ति वेदा विनिश्चिनम् ॥ ११४ ॥

सरस्वती सरिद्रूपा ह्यतः शास्त्रनिकेतनम् । आनन्दकाननं सर्वं धर्मशास्त्रकृतालयम्
 यावन्तोदिविवेधास्तावन्तोऽत्रमृषानहि । नीराजयन्तिविश्वेशंरात्रौरात्रौसदाऽहयः
 स्वफणामणिदीपैश्च प्राप्यकाशीरसातलात् । समुद्राःसर्वेऽत्र कामधेनुव्रजान्विताः
 पञ्चपीयूषधाराभिर्विश्वेशं स्नपयन्तिहि । मन्दारःपारिजातश्च सन्तानो हरिचन्दनः
 कल्पद्रुमश्च पञ्चैते तरुभिः सह सर्वदा ॥ ११६ ॥

सर्वेसुरनिकायाश्च सर्वे एव महर्षयः । योगिनः सर्वेऽत्र काशीनाथमुपासते ॥

विद्यानां सदनं काशी काशी लक्ष्म्याः परालयः ।

मुक्तिक्षेत्रमिदं काशी काशी सर्वा त्रयीमयी ॥ १२१ ॥

इति श्रुत्वा मुनिवरः पाराशर्यो महातपाः ।

एवम्बभाषे ताञ्छिष्यान्पुनः श्लोकम्पठन्त्वमुम् ॥ १२२ ॥

शिष्या ऊचुः

विद्यानां चाश्रयः काशी काशीलक्ष्म्याः परालयः ।

मुक्तिक्षेत्रमिदं काशी काशी सर्वा त्रयीमयी ॥ १२३ ॥

स्कन्द उवाच

निशम्येति तदा व्यासः क्रोधान्धीकृतलोचनः ।

क्षुत्कृशानुज्वलन्मूर्तिः काशीं शप्स्यति कुम्भजः ॥ १२४ ॥

व्यास उवाच

माभूत्त्रैपुरुषीविद्यामाभूत्त्रैपुरुषंधनम् । माभूत्त्रैपुरुषीमुक्तिःकाशींव्यासःशपन्निति
 गर्भः परोऽत्रविद्यानांधनगर्भोऽत्रचैमहान् । मुक्तिगर्वेणनोभिक्षांप्रयच्छन्त्यत्रवासिनः

इति कृत्वा मतिं व्यासः काश्यां शापमदात्तदा ।

दत्त्वाऽपि शापं स मुनिर्मिक्षितुं क्रोधवान्ययौ ॥ १२७ ॥

प्रतिगोहं त्वरायुक्तः प्रविशन्व्योमदत्तदृक् । बभ्राम नगरींसर्वाक्कापिमैत्रं न लब्धवान्
 अंशुमालिनमावीक्ष्य मनाग्लोहितमण्डलम् ।

भिक्षापात्रम्परिक्षिप्य निर्ययावाभ्रमम्प्रति ॥ १२६ ॥

अथ गच्छन्महादेव्या गृहद्वारि निवर्णय ।

प्राकृतस्त्रीस्वरूपिण्या मिश्रायै प्रार्थितोऽतिथिः ॥ १३० ॥

गृहिण्युवाच

भगवन्भिभुकास्तावदद्य दृष्टा न कुत्रचित् ।

असत्कृत्यातिथिं नाथो न मे भोक्ष्यति कर्हिचित् ॥ १३१ ॥

वैश्वदेवादिकं कर्म कृत्वा गृहपतिर्मम । प्रतीक्षेताऽतिथिपथं तस्मात्स्वमतिथिर्भवं
चिनाऽतिथिं गृहस्थोयस्त्वनमोकोनिषेवते । निषेवतेऽघंसपरंसहितः स्वपितामहैः

तस्मात्स्वरितमायाहि कुरु मे पत्युरीहितम् ।

गार्हस्थ्यं सफलं कर्तुमिच्छतोऽतिथिपूजनात् ॥ १३४ ॥

इति श्रुत्वा गतामर्षो व्यासस्तप्तामाह विस्मितः ।

व्यास उवाच

भद्रे! का त्वं कुत प्राप्ता पूर्वं दृष्टा न कुत्रचित् ॥ १३१ ॥

मन्ये धर्ममयीमूर्तः कापित्वंशुचिमानसा । त्वद्दर्शनं त्वपराप्रीतिसंप्राप्तानीन्द्रियाण्यपि मे

त्वं सुधैव भवेत्प्रायः सर्वावयवसुन्दरि । मन्द्राघातसंत्रासास्यकक्षीरार्णवस्थितिः

कलासुभ्राकरस्याथ कुहूराहुभयार्दिता । सीमन्तिनीस्वरूपेण तिष्ठेः काश्यामनिर्भया

अथवा कमलाऽसि त्वं विहाय कमलालयम् ।

निशि संकोचिनं काश्या विकाशिन्या वसेः सदा ॥ १३६ ॥

किं वा नु करणामूर्तिरिह काशिनिवासिनाम् ।

सर्वदुःखौघहरिणी परानन्दप्रदायिनी ॥ १४० ॥

षाराणस्याः किमथवाऽधिष्ठात्री देवतात्वमु ।

किं वा निर्वाणलक्ष्मीस्त्वं या काश्या परिगीयते ॥ १४१ ॥

श्रवणं यायजूकं बाप्रान्तेऽलंकुर्वतीसमम् । मद्भाग्यं वापरिणतमेतद्योषित्स्वरूपतः

अथवा सामवेन्नूनं याक्षेत्रे परिगीयते । भक्तपोतप्रदा भक्त्याभबानी भवनाशिनी ॥

सर्वथैव न नारीत्वं नास्तुरी नैवकिञ्चरी । विद्याधरीननो नागी नोगन्धर्वीनयक्षिणी

त्वमिष्टदेवतैवासिकाखिन्मेमोहहारिणी । केयंखिन्ताथवामेऽत्र काखिस्वंमघसुन्दरि
परवानस्म्यहं जातस्तव दर्शनतो धुना । अवश्यमेव कर्ताऽस्मितवादेश्यं तदादिश
एकं तपोव्ययं हित्वा कारयिष्यसि यत्पुनः ।

तदेवाऽहं करिष्यामि विधेयः शुमलोचने ॥ १४७ ॥

नवचस्त्वाद्दृशीनां हिमहृश्वं हापयेत्सताम् । परंत्वं कासिसुभगेसत्यं ब्रूहिममाप्रतः
अथवा तव देहैस्मिन्कासत्यं निर्मलेक्षणे । इति पृष्टाहमुनिना साविध्वायुर्घटोद्भव ॥
अत्रत्यस्यैव हिमुनेगृहिणीगृहमेधिनः । नित्यंवीक्ष्येचरन्तंत्वांभिक्षांशिष्यगणैर्वृतम्
त्वमेव मां नो जानीषे जानेत्वामहमेवहि । तपस्विन्किञ्चद्दृक्तेनयावप्रास्तं व्रजेद्रविः
प्राणनाथस्यमे तावदातिथ्यं सफलीकुरु । तच्छ्रुत्वा समुनिःप्राहविनयानतकन्धरः
व्यास उवाच

अस्ति मे नियमः कश्चिन्ससिद्धिं चेद् व्रजेच्छुभे ।

एकभिक्षां तदाऽहं तु करिष्ये नान्यथा पुनः ॥ १५३ ॥

तपस्व्युदीरितंश्रुत्वासाप्रोवाचवचस्ततः । अधिशङ्कवदमुनेकस्तेऽस्तिनियमःसुधीः
ममभर्तुः प्रसादेन किञ्चिन्पूतं यतोऽत्र न । इतिश्रुत्वाप्रहृष्टात्मासतामाह तपोधनः
अयुतं ममशिष्यायैतैः संप्रक्तिमहंब्रूणे । अस्तंयावन्नयात्यर्कस्तावद्भोक्ष्येऽन्यथा नहि
निशम्येति प्रहृष्टास्या सा प्रोवाच मुनिं ततः ।

किंचिलम्बेन तद्याहि सर्वाञ्छिष्यान्समाह्वय ॥ १५७ ॥

पुनः प्राह सता साध्वि! त्वेतावत्सिद्धिरस्ति ते ।

येन तृप्तिं गमिष्यन्ति मच्छिष्याः सर्वं एव ते ॥ १५८ ॥

स्मित्वाऽप्य साऽब्रवीत्तन्तु मुनेभर्तुरनुप्रहात् । सिद्धमेवसदैवास्तेसर्वं तावन्ममालये
षावतार्थिजनस्तुस्मितेसिर्षोऽपिसर्षशः । वयं न ताद्भङ्महिलाभर्तुं सन्देहकारिकाः ॥
आयातोऽर्थी यदागेहे सिद्धंकार्यं तदैव हि । परिपूर्णादिशः सर्वाः परिपूर्णांमनोरथाः
परिपूर्णं गृहं सर्वं पत्युः पादप्रसादतः । याहितूर्णं समायाहियावदन्नार्थिभिः सह ॥
पतिर्मेबहुकालीनः कालं न सहने चिरम् । प्रियातिथिः प्रियतमस्तदातिथ्यसमृद्धये ॥

आशु गत्वा समागच्छ यावन्नास्तमितो रविः ।
 इति प्रहृष्टस्त्वरितः शिष्यानाद्द्वय सर्वतः ॥ १६४ ॥
 आगत्य ताम्पुनःप्राह दृष्ट्वा तन्मार्गलोचनाम् ।
 मातः ! सर्वसमायानास्त्वरितं देहि भोजनम् ॥ १६५ ॥
 अस्तावलं हि समया समियादेश भास्करः ।
 इत्युक्त्वा मन्दिरस्याऽन्तर्विचिशुस्ते तपोधनाः ॥ १६६ ॥
 तन्मण्डपमणिज्योतिस्तत्याहितदिनश्रियः ।
 यावद्गच्छन्ति तत्सौधमध्यमाशु तपस्विनः ॥ १६७ ॥
 पादौ प्रक्षाल्य तावत्ते कैश्चित्कैश्चिन्समर्च्य च ।
 कतिचित्परिचिष्टान्ना भोक्तुमेवोपवेशिताः ॥ १६८ ॥
 तद्विव्यपाकसम्भारान् दृष्ट्वा तद्दृष्टयः क्षणात् ।
 परां तृप्तिमुपागच्छन्प्राणन्यामोदराजिभिः ॥ १६९ ॥
 अतितृप्ति समापन्नास्ते तद्भ्रानिषेवणात् ।
 आचान्ताश्चन्दनैः स्रग्भिररुशरैः परिभूषिताः ॥ १७० ॥

अथ सान्ध्यविधिं कृत्वा प्रोपविश्य त इप्रतः । अभिनन्द्य महाशीर्भियां वदन्तु' प्रथकमुः
 तावद्दृष्ट्वा गृहस्थेन गृहिणासाकटाक्षिता । पप्रच्छतीर्थे वसताकोधर्मो मुख्य एष हि
 तथा तदनुसारेण तीर्थे वर्तामहे वयम् । सर्वधर्मविदां श्रेष्ठः श्रुत्वा तद्गृहिणीवचः
 तदादरसुधाबिलम्नमहान्नस्वादतर्पितः ।

प्रत्युवाच मुनिर्व्यासः स्मित्वा तां सर्ववित्तमाम् ॥ १७४ ॥

व्यास उवाच

स्वच्छान्तःकरणे मातर्महामिष्टान्नमानदे ! । स एष धर्मो नान्योऽस्ति यस्त्वया परिचर्यते
 त्ववेष धर्मज्ञानासिपतिशुभ्रूषणे रता । यदि पृच्छसि मां सत्यं तदा किञ्चन वचि मत्तै
 चकव्यमेव पृष्टेन मनागपि विजानता । स एष धर्मः सुभगो ! नाऽन्यो धर्मोऽस्ति कश्चन
 येनैव तोषमायाति तव भर्ता चिरन्तनः ।

गृहिण्युषाञ्च

अयं धर्मो भवेन्नूनं क्रियते च स्वशक्तिः ॥ १७८ ॥
साधारणानि धर्माणि सम्पृच्छे तानि मे वद ।

व्यास उवाच

अनुद्वेगकरं वाक्यं परोत्कर्षसहिष्णुता ॥ १७९ ॥
विचार्य कारिता नित्यं स्वधिष्योदयचिन्तनम् ।

गृहस्थ उवाच

एषु धर्मेषु भो चिद्वंस्त्वयि कोऽस्तीह तद्वद ॥ १८० ॥
ततः स्थगितवद्भ्यासस्तस्थौ किञ्चिन्न चोक्तवान् ।
ततः पुनर्गृहस्थे न स हि प्रोक्तस्तपोधनः ॥ १८१ ॥
यद्येत एववैधर्मास्त्वया ये प्रतिपादिताः । तद्दान्तता तवैवैक्षि दानं शापस्यचोत्तमम्
त्वय्येष हि दया सम्यग्धैर्यं त्वय्येष चोत्तमम् ।
त्वयि सम्भावनाऽस्त्येष कामक्रोधविनिग्रहे ॥ १८२ ॥
त्वमेव सम्यग्जानीषे वक्तुञ्चोद्भवे गवर्जितम् । त्वय्येषसम्यग्दृश्येतपरोत्कर्षसहिष्णुता
विचार्य कारितायाश्च त्वमेव निलयो महान् ।
स्वस्थ्य धिष्यस्य च भवांश्चिन्तयेदुदयं ध्रुवम् ॥ १८५ ॥

ममैकम्ब्रूहिभोचिद्रञ्छापद्वयाश्चयः क्रुधा । अलभन्स्वार्थसंसिद्धिमभाग्यात्तस्यकस्यसः

व्यास उवाच

यःस्वार्थसिद्धिमलभन्नभाग्याच्छपति क्रुधा । सशापःप्रत्युत भवेच्छसुरैवाचिवैकिनः

गृहस्थ उवाच

भवताभ्रमता चिप्रानाताभिक्षा यदाप्यहो । तदापराद्वंकिमिह वराकैः क्षेत्रचासिभिः
तपस्विञ्छृणुमे वाक्यं राजधान्यांममेहयः । ऋद्धिं द्रष्टुं नशक्नोति परिशक्तःसएवहि
अद्य प्रभृति न क्षेत्रे मदीये शापवर्जिते । आचसक्रोधनमुने न वासे योग्यताऽत्रते
इदानीमेव निर्गच्छवहिः क्षेत्रादितोभव । त्वद्विधानाननयोग्यं मेक्षेत्रं मोक्षैकसाधनम्

अत्राल्पमपियद्वौष्ट्यं कृतमत्क्षेत्रवासिनाम् । तद्वौष्ट्यस्यपरीपाकोरुद्रपेशाच्यमेवहि
 तच्छ्रुत्वावेपमानः सपरिशुष्कौष्ठतालुकः । जगाम शरणंगौरीं लुटंस्तच्चरणाग्रतः ॥
 उवाचचवचोमातस्त्राहि त्राहिभृशंरुदन् । अनाथस्त्वत्सनाथोऽहं बालिशस्तवबालकः
 शरणागतञ्च सन्त्राहिरक्षमां शरणागतम् । बहूनामागसांगेहमस्माकं दुष्टमानसम्
 शम्भुशापोऽन्यथाकर्तुं भवत्यापिनशक्यते । अहञ्चशरणायातस्तदेकं क्रियतां शिवे
 प्रत्यष्टमि सदा क्षेत्रे प्रतिभूतञ्च पार्वति । दिशप्रवेशनादेशं नेशस्त्वद्वाक्यलङ्घकः ॥
 इत्युक्तातेन मुनिनाभवानी करुणाजनिः । मुखम्महेशितुर्वीक्ष्य तथेत्याहृतदाह्वया
 अधान्तर्हितवन्तौतौ शिवौ क्षेत्रशिवङ्कुरौ । व्यासोपनिर्णयौ क्षेत्रात्स्वापराधवशंवदन्
 अहोरात्रं सपश्यन्वै क्षेत्रं दृष्टेरदूरगम् । प्राप्याष्टमीञ्च भूताञ्च मध्ये क्षेत्रं सदाविशेत्
 लोलाकार्दग्निदिग्भागे स्वधुनीपूर्वरोधसि ।

स्थितो ह्यद्याऽपि पश्येत्स काशीप्रासादराजिकाम् ॥ २०१ ॥

स्कन्द उवाच

इत्थं कुम्भजसव्यासः क्षेत्रेशापंप्रदास्यति । क्षेत्रशापप्रदानाच्च बहिर्यास्यतितत्क्षणात्
 अतएवाचिमुक्तस्य क्षेत्रस्य शुभशंसिनः । भविष्यति शुभं नित्यमन्यथात्वन्यदैवहि
 श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं व्यासशापविमोक्षणम् ।

महादुर्गोपसर्गभ्यो भयं तस्य न कुत्रचित् ॥ २०४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां षतुर्थे काशीखण्ड-
 उत्तरार्धे व्यासशापविमोक्षणं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तमवतितमोऽध्यायः

क्षेत्रतीर्थवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

एतद्विष्यं श्रुत्वाहं व्यासस्य शिवनन्दन । आश्चर्यं भाजनं जातस्तीर्थानि कथयाधुना
आनन्दकानने यानियत्र सन्ति पठानन ॥ तानि लिङ्गस्वरूपाणि समाचक्ष्व ममाग्रतः

स्कन्द उवाच

अयमेव हि वै प्रश्नो देव्यै देवेन भोस्तदा । यादृशः कथितो वच्मि तादृशं शृणु कुम्भज

देव्युवाच

यानियानीह तीर्थानि यत्र यत्र महेश्वर ॥ तानि तानीह मे काश्यां तत्र तत्र घट प्रभो

देवदेव उवाच

शृणु देवि! विशालाक्षि! तीर्थं लिङ्गमुदाहृतम् ।

जलाशयेऽपि तीर्थाख्या जाता मूर्तिपरिग्रहात् ॥ ५ ॥

मूर्तयो ब्रह्मविष्णवर्कशिवविघ्नेश्वरादिकाः । लिङ्गं शैवमिति ख्यातं यत्रैतस्तीर्थमेव तत्

घाराणस्यां महादेवः प्रथमं तीर्थमुच्यते । तदुत्तरे महाकूपः सारस्वनपदप्रदः ॥ ७

क्षेत्रपूर्वोत्तरेभान्ने तद्दृष्टं पशुपाशहत् । तत्पश्चाद्विग्रहवती पूज्या घाराणसी नरैः

सा पूजिता प्रयत्नेन सुखवस्तिप्रदा सदा । महादेवस्य पूर्वेण गोप्रेक्षं लिङ्गमुत्तमम्

तद्दर्शनाद्देवत्सम्यग्गोदानजनितं फलम् ।

गोलोकात्प्रेषिता गावः पूर्वं यच्छम्भुना स्वयम् ॥ १० ॥

घाराणसीसमायातागोप्रेक्षंतत्ततः स्मृतम् । गोप्रेक्षाद्दक्षिणेभागेदधीचीश्वरसंस्थितम्

तद्दर्शनाद्देवेषु सां फलं यज्ञसमुद्भवम् । अत्रीश्वरं तु तत्प्राच्यां मधुकैटभपूजितम् ॥

लिङ्गं दृष्ट्वा प्रयत्नेन कैष्णवंपदमृच्छति । गोप्रेक्षात्पूर्वदिग्भागे लिङ्गं वैश्वज्वरं स्मृतम्

तस्य सम्पूजनान्मर्त्यो विज्वरो जायते क्षणात् । प्राच्यां वै देवेश्वरस्तस्य स्रुतुर्वेदफलप्रदः

वेदेभ्यरातुदीच्यान्तु क्षेत्रह्रस्वादिकेशवः । दृष्टं त्रिभुवनं सर्वं तस्य सन्दर्शनाद्दृष्टवम्
सङ्गमेभ्यरमालोक्य तत्प्राच्याञ्जायतेऽनघः । अतुमुंखेन विधिना तत्पूर्वेण अतुमुंखम्
प्रयागसञ्चकं लिङ्गमर्जितम्ब्रह्मलोकदम् । तत्र शान्तिकरीगौरीपूजिताशान्तिकृद्भवेत्
घरणायास्तटे पूर्वं पूज्यं कुन्तीश्वरं नृभिः । तत्पूजनात्प्रजायन्ते पुत्रानि जकुलोऽञ्जलाः
कुन्तीश्वरादुत्तरतस्तीर्थं वै कापिलोहदः । तत्र वैस्नानमात्रेण वृषभध्वजपूजनात् ॥

राजसूयस्य यज्ञस्य फलं तत्त्वचिकलम्भवेत् ।

रौरवादिषु ये केचित्पितरः कोटिसम्मिताः ॥ २० ॥

तत्र ध्राद्धे कृते पुत्रैः पितृलोकं प्रयान्ति ते । आनुसूयेश्वरं लिङ्गंगोप्रेक्षादुत्तरेमुने ! ॥

तद्दर्शनाद्भवेत्स्त्रीणाभ्यातिव्रत्यफलं स्फुटम् ।

तल्लिङ्गपूर्वदिग्भागे पूज्यः सिद्धिचिनायकः ॥ २२ ॥

यांसिद्धियः समीहेतसतामाप्नोति तन्नतेः । हिरण्यकशिपोलिंगंगणेशात्पश्चिमेततः

हिरण्यकूपस्तत्रास्ति हिरण्याश्वसमृद्धिकृत् ॥ २४ ॥

मुण्डासुरेश्वरं लिङ्गन्तत्प्रतीच्याञ्च सिद्धिदम् ।

अभीष्टवन्तु नैर्ऋत्यांगोप्रेक्षाद् वृषभेश्वरम् ॥ २५ ॥

मुनेस्कन्देश्वरं लिङ्गं महादेवस्य पश्चिमे । तल्लिङ्गपूजनाञ्जुणाभमवेन्ममसलोकता ॥

तत्पार्श्वतोहि शाखेशो विशाखेशश्च तत्र वै । नैगमेयेश्वरस्तत्र येन्येनन्द्यादयो गणाः

तेषामपि हिलिङ्गानितत्र सन्तिसहस्रशः । तद्दर्शनाद्भवेत्पुं सा तत्तद्गणसलोकता ॥

नन्दीश्वरात्प्रतीच्याञ्च शिलादेश-कुधीहरः । महाबलप्रदस्तत्र हिरण्याक्षेश्वरः शुभः

तद्दक्षिणेऽट्टहासाख्यं लिङ्गं सर्वसुखप्रदम् । प्रसन्नवदनेशाख्यं लिङ्गन्तस्योत्तरे शुभम्

प्रसन्नवदनस्तिष्टेद्भ्रुकस्तद्दर्शनाच्छभात् । तदुत्तरेप्रसन्नोदं कुण्डं नैर्मल्यदं नृणाम् ॥

प्रतीच्यामद्रहासस्य मित्रावरुणनामनी । लिङ्गे तल्लोकदे पूज्ये महापातकहारिणी

नैर्ऋत्याञ्चाट्टहासस्यवृद्धवासिष्ठसञ्चकम् । लिङ्गं तत्पूजनात्पुंसांश्चानमुत्पद्यतेमहत्

वसिष्ठेशसमीपस्यः कृष्णेशो विष्णुलोकदः ।

तद्याम्यां याज्ञवल्क्येशो ब्रह्मतेजोविधर्धनः ॥ ३४ ॥

प्रह्लादेश्वरमभ्यर्च्य तत्पश्चाद्भक्तिवर्धनम् । स्वयंलीनः शिषो यत्र भक्तानुग्रहकाम्यया
 अतःस्वलीनं तत्पूर्वं लिङ्गं पूज्यप्रयत्नतः । सदैवज्ञाननिष्ठानामपरमानन्दमिच्छताम्
 या गतिर्विहिता तेषां स्वलीने सा तनुत्थंजाम् ॥ ३६ ॥

वीरोचनेश्वरं लिङ्गं स्वलीनात्पुरतःस्थितम् । तदुत्तरे बलीशञ्च महाबलविवर्धनम् ॥
 तत्रैवलिङ्गं बाणेशम्पूजितं सचकामदम् । चन्द्रेश्वरस्य पूर्वेणलिङ्गं विद्येश्वराभिधम्
 सर्वाविद्याः प्रसन्नाः स्युस्तस्य लिङ्गस्य सेवनात् ।
 तद्दक्षिणे तु वीरेशो महासिद्धिविधायकः ॥ ३६ ॥

तत्रैव विकटा देवी सर्वदुःखौघमोचनी । पञ्चमुदमहापीठं तज्ज्येयं सर्वसिद्धिदम्
 तत्र जप्ता महामन्त्राः क्षिप्रं सिद्ध्यन्ति नान्यथा ।
 तत्पीठे घायुकोणे तु सम्पूज्यः सगरेश्वरः ॥ ४१ ॥

तदर्चनादश्वमेधफलंत्वविकलं भवेत् । तदीशाने च बालीशस्तित्यग्योनिनिवारकः
 महापापौघविध्वंसी सुग्रीवेशस्तदुत्तरे । हनूमदीश्वरस्तत्र ब्रह्मचर्यफलप्रदः ॥
 महाबुद्धिप्रदस्तत्र पूज्योजाम्भवतीश्वरः । आश्विनेयेश्वरौपूज्यौ गङ्गायाःपश्चिमे तटे
 तदुत्तरे भद्रहृदो गवांक्षीरेण पूरितः । कपिलानां सहस्रेण सम्यग् दत्तेन यत्फलम्
 तत्फलं लभते मर्त्यः स्नातोभद्रहृदे ध्रुवम् । पूर्वामाद्रपदायुका पौर्णमासीयदाभवेत्
 तदापुण्यतमः कालो वाजिमेषफलप्रदः । हृदपश्चिमतीरे तु भद्रेश्वरविलोकनात्
 गोलोकं प्राप्नुयात्स्मात्पुण्यान्नैवात्रसंशयः ।

भद्रे श्वराद्यानुधान्वामुपशान्तशिषो मुने ॥ ४८ ॥

तस्यलिङ्गस्यसंस्पर्शात्परां शान्तिं स मृच्छति ।

उपशान्तशिबंलिङ्गं दृष्ट्वा जन्मशतार्जितम् ॥ ४९ ॥

त्यजेद्श्रेयसोराशिं श्रेयोरशिं च चिन्दति । तदुत्तरे च चक्रेशो योनिचक्रनिवारकः
 तदुत्तरे चक्रहृदो महापुण्यविवर्धनः । स्नात्वा चक्रहृदे मर्त्यश्चक्रेशम्परिपूज्य च ॥
 शिवलोकमवाप्नोति भाषितेनान्तरात्मना । तं नैश्वर्यं ते च शूलेशो द्रष्टव्यञ्च प्रयत्नतः
 शूलं तत्र पुरान्यस्तं स्नानार्थं वर्वरिणि । हृदस्तत्र समुत्पन्नः शूलेशस्याग्रतोमहान्

स्नानं कृत्वा हृदेतत्र दृष्टाशूलेभ्वरं विभुम् । रुद्रलोकंनरायान्तित्यक्त्यासंसारगङ्गाम्
 तत्पूर्वतो नारदेन तपस्विसं महत्तरम् । लिङ्गञ्च स्थापितं श्रेष्ठं कुण्डञ्चापिशुभंकृतम्
 तत्रकुण्डे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा वै नारदेभ्वरम् । संसाराब्धिम्महाघोरं सन्तरेन्नात्रसंशयः
 नारदेभ्वरपूर्वेण दृष्ट्वावभ्रातकेभ्वरम् । निर्मलांगतिमाप्नोति पापीघं च विभुञ्चति ॥
 तदग्रे तान्नकुण्डंचतत्रस्नातो न गर्भभाक् । विघ्नहर्तागणाध्यक्षस्तद्वायव्येसुचिघ्नहृत्
 तत्र चिघ्नहरंकुण्डं तत्रस्नातो न विघ्नभाक् । अनारकेभ्वरंलिङ्गं तदुदग्दिशिचोत्तमम्
 कुण्डंचानारकाख्यं वै तत्रस्नातो नारकी । घरणायास्तटे रम्ये घरणेशस्तदुत्तरे
 तत्रपाशुपतः सिद्धस्त्वक्षपादो महामुने ! । अनेनैव शरीरेण शाश्वतीं सिद्धिमागतः
 तत्पश्चिमे च शैलेशःपरनिर्वाणकामदः । कोटीभ्वरंतुतद्याभ्यांलिङ्गंशाश्वतसिद्धिदम्

कोटितीर्थं हृदे स्नात्वा कोटीशम्परिपूज्य च ।

गवां कोटिप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ ६३ ॥

महाशमशानस्तम्भोऽस्ति कोटीशाद्वह्निदिकस्थितः ।

तस्मिन्स्तम्भे महारद्रस्तिष्ठते चोमया सह ॥ ६४ ॥

तं स्तम्भं समलङ्कृत्य नरस्तत्पदमाप्नुयात् । तत्रैव तीर्थं परमं कपालेशसमीपतः
 कपालमोचनं नाम तत्रस्नातोऽश्वमेधभाक् । ऋणमोचनतीर्थं तु तदुदग्दिशि शोभनम्
 तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा मुक्तो भवति वर्णतः । तत्रैवाङ्गारकतीर्थं कुण्डञ्चाङ्गारनिर्मलम्
 स्नात्वाङ्गारकतीर्थं तु भवेद्बभूयो न गर्भभाक् । अङ्गारवारयुक्तायांचतुर्ध्यांस्नातियो नरः

व्याधिभिर्नाभिभूयेत न च दुःखी कदाचन ॥ ६८ ॥

चिभ्वकर्मभ्वरं लिङ्गं ज्ञानदं च तदुत्तरे । महामुण्डेभ्वरं लिङ्गं तस्य दक्षिणतः शुभम्
 कूपः शुभोदनामाऽपि स्नातव्यं तत्र निश्चितम् ।

तत्र मुण्डमयी माला मया क्षिताऽतिशोभना ॥ ७० ॥

महामुण्डाततो देवी समुत्पन्ना घहारिणी ।

खट्वाङ्गञ्च धृतं तत्र खट्वाङ्गे शस्ततोऽभवत् ॥ ७१ ॥

निष्पापो जायते मर्त्यः खट्वाङ्गे शघिलोकनात् ।

भुवनेशस्ततो याम्यां कुण्डञ्च भुवनेश्वरम् ॥ ७२ ॥

तत्र कुण्डे नरः स्नातो भुवनेशोभवेशरः । तद्याम्यां विमलेशश्चकुण्डञ्चविमलोदकम्
तत्र स्नात्वा चिलोक्येशंविमलोजायतेनरः । तत्रपाशुपतःसिद्धस्त्र्यम्बकोनामनामतः
अनेनैव शरीरेण रुद्रलोकमवाप्तवान् । भृगोरायतनं तस्य पश्चिमेऽतीवपुण्यदम् ॥
विधिपूर्वं तदभ्यर्च्य प्राप्नुयाच्छिवमन्दिरम् । शुभेश्वरश्च तद्याम्यांमहाशुभफलप्रदः
तत्रसिद्धिः पाशुपतः कपिलिर्महातपाः । तत्रास्तिहि गुहारम्याकपिलेश्वरसन्निधौ
तां गुहाम्प्रविशेद्यो वै न स गर्भे चिशोक्तचित् ।

तत्र यज्ञोदकूपोऽस्ति वाजिमेघफलप्रदः ॥ ७८ ॥

ॐकार एषत्वासावादिबर्णमयात्मकः । मत्स्योद्युत्तरे कूले नादेशस्त्वहमेव च
नादेशः परमम्ब्रह्म नादेशः परमागतिः । नादेशः परमंस्थानं दुःखसंसारमोचनम् ॥
कदाचित्तस्य देवस्यदर्शनेयातिजाह्नवी । मत्स्योद्रीसाकथितास्नानम्पुण्यैरवाप्यते
मत्स्योद्री यदा गङ्गा पश्चिमे कपिलेश्वरम् ।

समायाति महादेवि! तदा योगः सुदुर्लभः ॥ ८२ ॥

उद्दालकेश्वरं लिङ्गमुदीच्यां कपिलेश्वरात् । तद्दर्शनेन संसिद्धिः परा सर्वैरवाप्यते ॥
तदुत्तरे वाष्कुलीशं लिङ्गं सर्वार्थसिद्धिदम् ।

वाष्कुलीशाद्दक्षिणतो लिङ्गं वै कौस्तुभेश्वरम् ॥ ८४ ॥

तस्याऽर्चनेन रत्नौघंनं वियुज्येत कर्हिचित् । शङ्कुकर्णेश्वरंलिङ्गं कौस्तुभेश्वरदक्षिणे
संसेव्य परमं ज्ञानं लभेदद्यापि साधकः । अघोरेशोगुहाद्वारि कूपस्तस्योत्तरे शुभः
अघोरोद् इतिख्यातो वाजिमेघफलप्रदः । गर्गेशो दमनेशश्च तत्र लिङ्गद्वयं शुभम्
अनेनैवेहेहेहेन यत्र तौ सिद्धिमापतुः । तल्लिङ्गयो समर्चातः सिद्धिर्भवतिचाञ्छिता
तद्दक्षिणे महाकुण्डं रुद्रावास इति स्मृतम् ।

तत्र रुद्रेशमभ्यर्च्य कौटिकरुद्रफलंभेत् ॥ ८६ ॥

चतुर्दशी यदापर्णे रुद्रनक्षत्रसंयुता । तदा पुण्यतमः कालस्तस्मिन्कुण्डे महाफलः
रुद्रकुण्डे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा रुद्रेश्वरं विभुम् । यत्रतत्रमृतोवाऽपिरुद्रलोकमवाप्नुयात्

खँदस्य नैऋते भागे लिङ्गं तत्र महालयम् । तद्रूपे पितृकूपोऽस्ति पितृणामालयः परः
तत्र श्राद्धं नरः कृत्वा पिण्डान्कूपे परिक्षिपेत् । पकर्षिशकुलोपेतः श्राद्धकृद्द्रुद्रलोकमाक्
तत्र वैतरणी नामदीर्घिका पश्चिमानना । तस्यां स्नातो नरो देवि नरकं नैव गच्छति
बृहस्पतीश्वरं लिङ्गं रुद्रकुण्डाच्च पश्चिमे । गुरुपुण्यसमायोगे दृष्ट्वा दिव्यालभेन्द्रिणम्
रुद्रावासाद्दक्षिणतः कामेशं लिङ्गमुत्तमम् ।

तद्दक्षिणे महाकुण्डं स्नानाच्चिन्तितकामदम् ॥ ६६ ॥

चैत्रशुक्लत्रयोदश्या तत्र यात्रा च कामदा । नलकूबरलिङ्गं च प्राच्याकामेश्वराच्छुभम्
तद्रूपे पावनः कूपो धनधान्यसमृद्धिदः । नलकूबरपूर्वेण सूर्याचन्द्रमसेश्वरौ ॥
अज्ञानध्वान्तपटलीं हरतस्तौ समञ्चिती । तद्दक्षिणे ध्ववेशश्च दृष्टो मोहविनाशनः
तत्रसिद्धीश्वरं लिङ्गं महासिद्धिसमर्पकम् । तत्रैव मण्डलेशश्च मण्डलेशपदप्रदः ॥
कामकुण्डस्य पूर्वेण च्यवनेशः समृद्धिदः । तत्रैव सनकेशश्च राजसूयफलप्रदः ॥
सनत्कुमारलिङ्गञ्च तत्पश्चाद्योगसिद्धिकृत् । तदुत्तरे सनन्देशो महाज्ञानसमर्थकः
तद्याभ्यामाहुतीशश्च दृष्टो होमफलप्रदः । तद्याभ्याम्पुण्यजनकं लिङ्गं पञ्चशिल्वेश्वरम्
मार्कण्डेयहृदस्तस्य पश्चिमे पुण्यवर्धनः । तस्मिन्हृदेनरः स्नात्वा किम्भूयः परिशोचति
तत्र ज्ञानञ्च दानञ्च भवेदक्षयपुण्यदम् । तदुत्तरे च कुण्डेशः सर्वसिद्धैर्नमस्कृतः

दीक्षाम्पाशुपतीं लब्ध्वा द्वादशाब्देन यत्फलम् ।

तत्फलं लभते विप्र! मर्त्यः कुण्डेशशदर्शनात् ॥ ६७ ॥

मार्कण्डेयहृदात्पूर्वं शाण्डिल्येशः सुपुण्यदः ।

तत्पश्चिमे च षण्डेशश्चण्डाशुग्रहणाघहृत् ॥ ६८ ॥

दक्षिणे च कपालेशात्कुण्डं श्रीकण्ठसिद्धितम् ।

तत्रकुण्डेनरः ज्ञात्वा दाता स्याच्छ्रीप्रभाषतः ॥ ६९ ॥

महालक्ष्मीश्वरं लिङ्गं तस्य कुण्डस्य सन्निधौ ।

महालक्ष्मीं समभ्यर्च्य ज्ञातस्तत्कुण्डधारिणु ॥ ७० ॥

धामरासक्तहस्तामिर्दिभ्यस्त्रीभिश्च धीज्यते ।

यदा मत्स्योदरीं यान्ति स्वर्गलोकाद् विधौकसः ।

तदा ते नैव मार्गेण यान्तिस्त्राभिर्वृताः सुखम् ॥ ११० ॥

स्वर्गद्वारमतः ख्यातं तत्स्थानं मुनिसत्तम ! तत्कुण्डदक्षिणे भागे लिङ्गं ब्रह्मपदप्रदम्
गायत्रीस्वरसावित्रीश्वरीपूज्यौ प्रयत्नतः । मत्स्योदर्यास्तटे रभ्ये लिङ्गं सत्यवतीश्वरम्
तयोः पूर्वेण संपूज्यं तपःश्रीपरिवर्धनम् । उग्रेश्वरं महालिङ्गं लक्ष्मीशात्पूर्वदिक्स्थितम्
जातिस्मरो भवेन्मर्त्यस्तलिङ्गस्य समर्चनात् ।

तद्दक्षिणे चोपकुण्डं स्नानात्कनखलाधिकम् ॥ ११४ ॥

करवीरेश्वरं लिङ्गं तस्य कुण्डस्य पश्चिमे । तस्य दर्शनतः पुंसां जायते रोगसङ्क्षयः
तद्वायव्यमरीचीशं कुण्डं श्चाबोधनाशनम् । तत्पश्चाच्चन्द्रकुण्डं च लिङ्गं चेन्द्रेश्वरं मुने
इन्द्रे शाद्दक्षिणे भागे शुभाकर्कोटवापिका । तत्रवापीजले स्नात्वा द्रष्टुं कर्कोटकेश्वरम्
नागानामाधिपत्यं तु जायते नात्र संशयः । तत्पश्चाद्द्रुमिषण्डेशो ब्रह्महत्याहरो हरः
तद्दक्षिणे महाकुण्डं रुद्रलोकफलप्रदम् । तत्पश्चिमे महालिङ्गमग्रीश इति विश्रुतम्
आग्नेयं नाम कुण्डं च तत्पूर्वेऽग्निसलोकदम् ।

आग्नेयेश्वरतः प्राच्यां कुण्डं तद्दक्षिणे शुभम् ॥ १२० ॥

तत्र कुण्डे नरः स्नात्वा स्वर्गं वसति पूर्वजैः ।

तत्प्राच्याम्बालचन्द्रेशश्चन्द्रलोकगतिप्रदः ॥ १२१ ॥

परितो बालचन्द्रेशं गणलिङ्गान्यनेकशः । विलोक्य तानि लिङ्गानि गणपत्यं पदं लभेत्
बालचन्द्रसमीपे तु कूपः पितृगणप्रियः । तत्र श्राद्धप्रदः स्नात्वा त्वापितृन्सताऽप्रतारयेत्
तदन्धोः पूर्वतो लिङ्गं पुण्यं विश्वेश्वराद्धयम् । विश्वेश्वरस्य पूर्वेण वृद्धकालेश्वरो हरः
कालोदो नाम कूपोऽस्ति तद्ग्रे सर्वरोगहृत् ।

येस्तु तत्रोदकं पीतं स्त्रीभिः पुग्भिः स्वकर्मभिः ॥ १२५ ॥

न तेषां पत्विर्तोऽत्र कल्पकोटिशतैरपि ।

तत्पीत्वा जन्मबन्धोत्पाद्वाह्यान्मुच्येत मानवः ॥ १२६ ॥

तत्रकूपे तु बद्धं दानं शिखरतात्मनाम् । सम्बर्तेऽपि न तस्यास्ति नाशः कलशसम्भवः ।

खण्डस्फुटितसंस्कारं तत्र कुर्वन्ति ये नराः । तेरुद्रलोकमासाद्यमोदन्तेसुखिनःसदा
कालेशाद्दक्षिणे भागे मृत्प्वीशस्त्वपमृत्युहृत् ।

लिङ्गं दक्षेश्वराद्दक्ष ततः कूपादुविग्दिशि ॥ १२६ ॥

अपराधसहस्रं तु नश्येत्तस्य समर्चनात् ॥ १३० ॥

महाकालेशलिङ्गं च दक्षेशात्पूर्वतोमहत् । महाकुण्डेनरःस्नात्त्वामहाकालंतुयोऽर्चयेत्
अर्चितं तेन वै तत्र जगदेतच्चराचरम् । अन्तकेश्वरमालोक्यतद्यान्यां नान्तकस्य भीः
हस्तिपालेश्वरं लिङ्गं तस्यदक्षिणतोमुने । तस्यपूजनतोयातिपुण्यं वैहस्तिदानजम्
तत्रैरावतकुण्डञ्च लिङ्गमैरावतेश्वरम् । तल्लिङ्गमर्चयन्मर्त्या धनधान्यसमृद्धिभाक् ॥
तद्दक्षिणे श्रेयसे च लिङ्गं स्यान्मालतीश्वरम् । हस्तीश्वरादुत्तरेतुजयन्तेशोजयप्रदः
वन्दीश्वरो महाकालकुण्डादुत्तरतःशुभः ।

वन्दिकुण्डं च विख्यातं वाराणस्यां महाग्रहत् ॥ १३६ ॥

तत्रस्नानेनदानेन श्राद्धेनाक्षयमश्नुते । धन्वन्तरीश्वरं लिङ्गं कुण्डं तन्नाम वैच हि ॥
तस्यलिङ्गस्यनामान्यत्कुण्डनामान्यदेवहि । तुङ्गेश्वरंलिङ्गनामकुण्डं वैद्येश्वरामिधम्
सुधामप्यो महोपध्यः क्षिप्तास्तत्र महाधियः ।

तत्कुण्डस्नानतस्तस्मात्तल्लिङ्गपरिधीक्षणात् ।

नश्यन्ति व्याधयः सर्वे सह पापैः सुदारुणैः ॥ १३९ ॥

तदुत्तरेहलीशेशः सर्वव्याधिनिषूदनः । शिवेश्वरः शिवकरस्तुङ्गनामश्च दक्षिणे ॥
जमदग्नीश्वरं लिङ्गं शिवेशाद्दक्षिणे शुभम् । तत्पश्चिमैरवेशः कूपस्तस्योत्तरे शुभः
तदुदस्पृशंमात्रेण सर्वयज्ञफललभेत् । तत्कूपपश्चिमे भागे सुकेशो योगसिद्धिदः ॥
तं नैर्ऋत्यां च व्यासेशः कूपश्च चिमलोदकः ।

व्यासकूपे नरा स्नात्वा तर्पयित्वा सुरान्पितृन् ॥ १४३ ॥

अक्षयं लभते लोकं यत्र कुत्रामिकाङ्क्षितम् ।

व्यासतीर्थात्पश्चिमतो घण्टाकर्णोद्भवो महान् ॥ १४४ ॥

घण्टाकर्णोद्भवेस्नात्वा व्यासेशपरिदर्शनात् । यत्रतत्रमृतोपापिवाराणस्यांमृतोभवेत्

घण्टाकर्णसमीपे तु पञ्चषूडाप्सरःसरः । पञ्चषूडाजलेस्नात्वा दृष्ट्वा देवं तमीजरम्
स्वगलोकं नरो याति पञ्चषूडाप्रियोऽभवेत् ।

गौरीकूपस्ततो वाच्यां सर्वजाड्यविनाशनः ॥ १४७ ॥

पञ्चषूडोत्तरेभागे तीर्थं चाशोकसङ्घितम् । मन्दाकिनीमहातीर्थतदुदीच्यांमहाघहृत्
स्वर्गलोकेऽपिसापुण्याकिं पुनर्मानवेमुने! । तदुत्तरेमध्येशो मध्ये क्षेत्रं स्वपित्यहो
तत्र जागरणं कृन्वाऽशोकाष्टम्या मधौ नरः । नज्जातुशोकंलभतेसदानन्दमयोभवेत्
मुक्तिक्षेत्रप्रमाणञ्च क्रोशंक्रोशञ्च सर्वतः । आरभ्यलिङ्गादस्माच्चपुण्यदांमध्येभ्वरात्
पतदैव सदा प्राहुःसर्वैर्वप्रपितामहाः । कश्चिदस्मत्कुलेजातोमन्दाकिन्याजलाप्लुतः
भोजयेत् प्रयतो विप्रान्यतीन् पाशुपतानपि ।

मन्दाकिन्या नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै मध्यमेश्वरम् ॥ १५३ ॥

एकविंशत्कुलोपेतो रुद्रलोके वसेच्चिरम् । मध्यमेशादवाच्याञ्च विश्वेदेवेश्वरः शुभः
तदर्चनादर्चिताः स्युर्विश्वेदेवास्त्रयोदश । तत्पूर्वं वीरभद्रेशो महावीरपदप्रदः ॥
भद्रदाम्भ्रकाली च तस्पर्दक्षिणतः शुभा । भद्रकालहृदोनाम तत्राऽतीवशुभप्रदः ॥
आपस्तम्बेश्वरं लिङ्गं तत्प्राच्यां ज्ञानदम्परम् ।

तदुत्तरे पुण्यकूपस्तत्पश्चाच्छौनको हृदः ॥ १५७ ॥

हृदपश्चिमतोलिङ्गं शौनकेशं सुधीप्रदम् । हृदेतन्नरःस्नात्वा दृष्ट्वा वै शौनकेश्वरम्
ज्ञानं तत्संलुभेद्विव्यं येनमृत्सुं तरत्यसौ । तद्दक्षिणेजम्बुकेशस्तिर्यग्योनिनिवारकः
तदुत्तरे मतङ्गेशो गानविद्याप्रबोधकः । मतङ्गेशस्यवायव्ये नानालिङ्गानि सर्वतः ॥
मुनिभिः स्थापितानीह सर्वसिद्धिप्रदानि च । ब्रह्मरातेश्वरंलिङ्गं मतङ्गेशाच्च दक्षिणे
तल्लिङ्गदर्शनादायुर्नान्तराच्छ्रयतेकचित् । तत्राज्यपेश्वरंलिङ्गं पितृलिङ्गान्यनेकशः
तल्लिङ्गसेवया सर्वे तुष्यन्ति प्रपितामहाः ॥ १६२ ॥

तद्दक्षिणे सिद्धकूपः सिद्धाः सन्ति सहस्रशः ।

वायुरूपास्तु ये सिद्धा ये सिद्धा भानुरश्मिगाः ॥ १६३ ॥

तैः स्थापितं तु यल्लिङ्गं तत्सिद्धेश्वरमीरितम् ।

तस्य सन्दर्शनादेव सर्वाः स्युः सिद्धयोऽमलाः ॥ १६४ ॥

तत्पश्चिमे सिद्धवापी पीता स्नाता च सिद्धिदा ।

प्राच्यां च सिद्धकूपार्द्धे लिङ्गं व्याघ्रेश्वरामिधम् ॥ १६५ ॥

तल्लिङ्गदर्शनाभ्रूणां नभयं व्याघ्रचोरजम् । ज्येष्ठेश्वरं च तद्याभ्यां ज्येष्ठस्थाने तिसिद्धिदम्

तद्वक्षिणे मुदां धामलिङ्गं प्रहसितेश्वरम् । तदुत्तरे निवासेशः काशीवासफलप्रदः ॥

चतुःसमुद्रकूपोऽस्तितत्राग्निस्नानपुण्यदः । ज्येष्ठादेवी तु तत्रास्तितनाज्येष्ठपदप्रदा

अवाच्यां व्याघ्रलिङ्गाच्च लिङ्गं चण्डीश्वरामिधम् ।

तदुत्तरे दण्डखातं सरः पितृमुदावहम् ॥ १६६ ॥

प्रहणानन्तरे स्नानं दण्डखातेतिपुण्यदम् । जैगीगव्यगुहातत्र तत्रलिङ्गं तदाह्वयम् ॥

त्रिरात्रोपोपितस्तत्र ज्ञानं लभ्येत निर्मलम् । महापुण्यप्रदं लिङ्गं तत्पश्चाद्देवलेश्वरम्

शनकालस्तत्समीपे शतं कालानुमापतिः ।

तल्लिङ्गाधिर्भवे काश्यां कालयामास कुम्भज ! ॥ १७२ ॥

तल्लिङ्गदर्शनादायुः शतवर्षाण्यखण्डितम् । शातातपेशस्तद्याभ्यां महाजपफलप्रदः ॥

तत्पश्चिमे हेतुकेशो हेतुभूतो महाफले । तद्वक्षिणे क्षपादेशो महाज्ञानप्रवर्तकः ॥ १७४

तदग्रे च कणादेशस्तत्रपुण्योदकः प्रहिः । स्नात्वाकाणादकुर्यः कणादेशं समर्चयेत्

नघनेन नधान्येन त्यज्यते सकदाचन । तस्य दक्षिणतो दृश्यो भूतीशो भूतिकृत्सताम्

तत्पश्चिमेऽघसंहर्तुं आषाढीश्वरसञ्ज्ञितम् । दुर्वासेशश्च तत्पूर्वं सर्वकामसमृद्धिकृत्

तद्याभ्यां भारभूतेशः पापभारापहारकः । व्यासेश्वरस्य पूर्वेण द्वौ शङ्खलिखितेश्वरी

तौ दृश्यौ यत्नतः काश्यां महाज्ञानप्रवर्तकौ ॥ १७८ ॥

यत्समाप्याऽऽप्यते पुण्यं निष्ठापाशुपतव्रतम् ।

तदाऽऽप्यतेऽत्र विश्वेशसकृदीक्षणतः क्षणात् ॥ १७९ ॥

तदीशाने च धूतेशो योगज्ञानप्रवर्तकः । तीर्थं चैवाचभूतेशं सर्वकलमपनाशकम् ॥ १८०

अचभूतेश्वरतत्पूर्वं लिङ्गं पशुपतीश्वरम् । तल्लिङ्गसेवयापुंसां पशुपाशविमोक्षणम् ॥

तद्वक्षिणे गोभिलेशो महामिलचितप्रदः । जीमूतबाहनेशश्च तत्पश्चात्लिङ्गमुत्तमम्

विद्याधरपदप्राप्तिस्तल्लिङ्गपरिसेवनात् । मयूखार्कः पञ्चनदेगभस्तीशश्च तत्र वै ॥
दधिकल्पहृदोनाम तदुदीच्यां महाप्रहिः । दुर्लभं तत्प्रहिस्नानंदुर्लभं च तदीक्षणम्
गभस्तीशोत्तरे भागेदधिकल्पेश्वरोहरः । नरस्तमाशु संवीक्ष्य कल्पं त्र्यक्षपुरेवसेत्
गभस्तीशादक्षिणे तु मङ्गलां मङ्गलालयाम् ।

उद्दिश्य मङ्गलांगीरीं भोजयेद् द्विजदम्पती ॥ १८६ ॥

अलं हृत्य यथाशक्ति तत्पुण्यान्तो न कर्हि चित् । क्षितिप्रदक्षिणफलामङ्गलैकाप्रदक्षिणा
वदनप्रेक्षणादेवी मुखप्रेक्षेश्वरोत्तरे । मङ्गलायाः समीपे तु सर्वसिद्धिकरी शिवा ॥
लिङ्गे त्वर्ध्रं शिवृत्तेशीं मुखप्रेक्षोत्तरे शुभे । सहैमभूमिदानस्य फलदंशनतस्नयोः ॥
तदुत्तरे चर्चिकाया देव्याः संदर्शनं शुभम् । रेवतेश्वरलिङ्गं च चर्चिकाप्रेण शान्तिहृत्
महाशुभाय तस्याग्रे लिङ्गं पञ्चनदेश्वरम् । मङ्गलोदो महाकूपो मङ्गलापश्चिमेशुभः ॥

उपमन्योर्महालिङ्गं मङ्गलापश्चिमे शुभम् ।

व्याघ्रपादेश्वरं लिङ्गं तत्पश्चाद् व्याघ्रभीतिहृत् ॥ १८७ ॥

नैर्ऋत्याश्च गभस्तीशाच्छशाङ्केशोऽवसङ्गहृत् ।

तत्पश्चिमे शैत्ररथं लिङ्गं दिव्यगतिप्रदम् ॥ १८८ ॥

रेवतेशात्पश्चिमतो जैमिनीशो महाघहृत् । तत्रलिङ्गान्यनेकानि ऋषीणामृचिसत्तम
जैमिनेशाच्च वायव्ये लिङ्गं वै रावणेश्वरम् । न तद्दर्शनतः पुंसां राक्षसानां महाभयम्
तदक्षिणे चराहेशो माण्डव्यैशस्ततोयमे । तदक्षिणे प्रचण्डेशो योगेशो दक्षिणे ततः
तदक्षिणे च धातेशः सोमेशश्च तदग्रतः । तत्रैर्ऋत्यां कनकेशो महाकनकदः सताम् ॥
तदुत्तरे पाण्डवानां पञ्चलिङ्गानि सन्मुदे । संवर्तेशस्तदग्रे च श्वेतेशस्तस्य पश्चिमे ॥

तत्पश्चात्कलशेशश्च लिङ्गं कालाभयप्रदम् ।

कालेन पाशिते श्वेते मुने! कुम्भात्समुत्थितम् ॥ १८९ ॥

चित्रगुप्तेश्वरं लिङ्गं तदुदीच्यामथापहम् । चित्रगुप्तेश्वरात्पश्चाद्यो द्वादशो महाफलः
कलशेशाद्वाच्यां चग्रहेशो लिङ्गमुत्तमम् । ग्रहबाधां शमयति तल्लिङ्गपरिलोकनम्
चित्रगुप्तेश्वरात्पश्चाद्यद्वादशो महाफलः । उत्पद्यचामदेवेशं लिङ्गं याम्यां ग्रहेश्वरात्

कम्बलाश्वतरेणौ चतस्यदक्षिणतः शुभे । तत्रैव निर्मलं लिङ्गं नल्लक्ष्मणपूजितम् ॥
तद्याम्यां मणिकर्णेशं तदुदकपलितेश्वरम् । जराहरं च तत्रैव तत्पश्चात्पापनाशनम्
तत्पश्चिमेनिर्जरे शस्तत्रैश्वर्यां पितामहः । पितामहस्रोतिकाचतत्र श्राद्धं महाफलम्
तद्याम्यां वरुणेशश्च वाणेशस्तस्य दक्षिणे ।

पितामहस्रोतिकायां कूष्माण्डेशस्तु सिद्धिकृत् ॥ २०६ ॥

तत्पूर्वतो राक्षसेशो गङ्गे शस्तस्यदक्षिणे । तदुत्तरेनिम्नगेशाः सन्तिलिङ्गान्यनेकशः
चैवस्वतेश्वरस्तत्र यमलोकनिवारकः । तत्पश्चाददितीशश्च चक्रेशस्तस्यश्वाप्रतः ॥
तदग्रे कालकेशाख्यो दृष्टप्रत्ययकृत्परः । छायासद्भृश्यते तत्रनिष्पापस्तदवेक्षणात् ॥
तदग्रे तारकेशश्च तदग्रेस्वर्णभारदः । तदुत्तरे मरुतेशः शक्रेशश्च तदग्रतः ॥ २१० ॥
तद्दक्षिणे चरमेशस्तत्रैव च शशीश्वरः । तदुत्तरे लोकपेशास्तत्र लिङ्गान्यनेकशः ॥
नागगन्धर्वयक्षणां किन्नराप्सरसामपि । देवर्षिगणवृन्दानां नानासिद्धिकराण्यपि
शक्रेशादक्षिणे भागे फालगुनेशो महावहृत् । महापाशुपतेशश्च तद्याम्यां शुभकृत्परः ॥
तत्पश्चिमे समुद्रे श ईशानेशस्तदुत्तरे । तत्पूर्वं लाङ्गलीशश्च सर्वसिद्धिसमर्पकः ॥
रागद्वेषविनिर्मुक्ताः सिद्धियान्तिचपूजकाः । तेषांमोक्षोमयाख्यातो ननुते देविमानवाः
मधुपिङ्गश्वेतकेतू लाङ्गलीशे तपस्विनौ । अनेनैव शरीरेण जगमतुः सिद्धिमुत्तमाम्
तत्रैव नकुलीशश्च कपिलेशश्च तत्र वै । रहस्यस्परमञ्जोभौ मम व्रतनिषेविणौ ॥

तत्सन्निधौ प्रीतिकेशस्तत्र प्रीतिर्मम प्रिये !।

तत्रोपवासादेकस्मात्फलमब्दशताधिकम् ॥ २१८ ॥

एकं जागरणं कृत्वा प्रीतिकेशउपोषितः । गणत्वपदवी तस्य निश्चिता मम पर्वणि
देवस्य दक्षिणे भागे तत्र वापी शुभोदका । तदम्बुप्राशनं नृणामपुनर्भवहेतवे ॥ १२०
तज्जलात्पश्चिमे भागे दण्डपाणिः सदावति ।

तत्प्राच्यवाच्युत्तरस्यां तारः कालः शिलादजः ॥ २२१ ॥

लिङ्गत्रयं हृदये यच्छ्रद्धयापीतमर्पयत् । यैस्तत्र तज्जलं पीतं कृतार्थास्ते नरोत्तमाः
अधिमुकसमीपेऽर्च्योमोक्षेशोमोक्षबुद्धिदः । करुणेशोदयाधाम तदुदीच्यांसमर्षयेत्

स्वर्णाक्षेशस्तु तत्प्राच्या ज्ञानदस्तस्य षोत्तरे ।

सौभाग्यगौरी सम्पूज्या बहुसौभाग्यसम्पदे ॥ २२४ ॥

विश्वेशादक्षिणे भागे निकुम्भेश प्रयत्नत । क्षेत्रक्षेमकर पूज्यस्तत्पश्चाद्विघ्ननायकः
सर्वविघ्ननिउदभ्यच्यश्चतुर्ध्यां तु विशोपत ।

विरूपाक्षो निकुम्भेशाद्वह्नी पूज्य सुसिद्धिद ॥ २२६ ॥

तद्वक्षिणे च शुक्रेशः पुत्रपौत्रप्रवर्धन । तदुदीच्या महालिङ्ग देवयानीश्वरामिधम् ॥
शुक्रेशादग्रत पूज्य कवेश इतिसिद्धित । शुक्रकूपमुपस्पृश्य हयमेधफल लभेत् ॥
भवानीशौ नमस्यौ च शुक्रेशात्पश्चिमेशुभौ । भक्तिपोतप्रदौतौ तुनिजभक्तस्य सर्वदा
अलर्केश समभ्यर्च्य शुक्रेशात्पूर्वदिकस्थित । मद्रालसेश्वरस्तत्र तत्पूर्वसर्वविघ्नहृत्
गणेश्वरेश्वर लिङ्गं सवसिद्धिकर परम् । इत्वा लङ्केश्वर विघ्न रघुनाथप्रतिष्ठितम्
तलिङ्गस्वपशनादाशु ब्रह्माहापि विशुध्यति । महापुण्यप्रद चान्यत्तत्रान्यत्रिपुरान्तकम्
दत्तात्रेयेश्वरं लिङ्गं तस्य पश्चिमत शुभम् । तद्याम्याहरिकेशेशोगोर्कणेशस्तत परम्
स्वरस्तदग्रे पापघ्न तत्पश्चाच्च ध्रुवेश्वर । तग्रे ध्रुवकुण्डञ्च पितृप्रीतिकर परम् ॥
तदुत्तरे पिशाचेश पशान्यपदहारक । पित्रीशान्तद्यमदिशि पितृकुण्ड तदग्रत ॥
तत्र श्राद्धकृता पु सा तुष्येयु प्रपितामहा । अग्रेध्रुवेशात्त रेशो वैद्यनाथ स एव हि
तन्नैर्ऋत्या मनोर्लिङ्गं घशवृद्धिकरपरम् । प्रियव्रतेश्वर लिङ्गं वैद्यनाथपुरोगतम् ॥
तद्याम्या मुबुकुन्देशस्तत्पार्श्वे गौतमेश्वर ।

तत्पश्चिमेन भद्रशस्तद्याम्यामृष्यशृङ्गिण ॥ २३८ ॥

ब्रह्मेशस्तत्पुरस्ताच्च पर्जन्येशस्तदीशग । तत्प्राच्या नहुः शश्च विशालाक्षीचतत्पुर
विशालाक्षीश्वरलिङ्गतत्रैव क्षेत्रवस्तिदम् । जरासन्देश्वरलिङ्गं तद्याम्याज्वरनाशनम्
तत्पुरस्ताद्विरण्याक्षलिङ्गं पूज्य हिरण्यम् ।

तत्पश्चिमे गयाधीशस्तत्तृतीया भगीरथ ॥ २४१ ॥

तदग्रे च दिलीपेशो ब्रह्मेशात्पश्चिमे मुने । तत्र लिङ्गं सकुण्डञ्चस्तानुरिष्टफलप्रदम्
तत्र विश्वावसोर्लिङ्गं मुण्डेशस्तत्र पूर्वत । तद्वक्षिणे विधीशश्च तद्याम्याघाजिमेधकः

दशाश्वमेधिके स्नात्वा दृष्ट्वा तल्लिङ्गमुत्तमम् । दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्नोतिमानवः
तदुत्तरे मातृतीर्थं स्नातुर्जन्ममयापहृत् । तत्र स्नानं तु यः कुर्यान्मारीषापुरुषोपिवा
ईप्सितं फलमाप्नोति मातृणाञ्चप्रसादतः । दक्षिणेतव कुण्डाच्च पुष्पदन्तेश्वरः परः
तदग्निदिशिदेवर्षिगणलिङ्गान्यनेकशः । पुष्पदन्ताद्दक्षिणतः सिद्धीशः परसिद्धिदः
पञ्चोपचारपूजातःस्वप्ने सिद्धिपरांदिशेत् । राज्यप्राप्तिर्भवेत्पुंसांहरिश्चन्द्रेशसेवया
तत्पश्चिमे नैऋतेशोऽङ्गिरसेशस्ततोयमे । तद्दक्षिणे च क्षेमेशश्चित्राङ्गेशस्ततो यमे
तद्दक्षिणेच केदारो रुद्रानुचरताप्रदः । चन्द्रसूर्यान्वयैर्भूपैः केदाराद्दक्षिणापथे ॥

प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि शतशोऽथ सहस्रशः ।

लोलाकाराद्दक्षिणाशाया सर्वाशापूरकोऽर्चितः ॥ २५१ ॥

करन्धमेश्वरं लिङ्गं तत्प्रतीच्यां महाफलम् । तत्पश्चिमे महादुर्गा महादुर्गप्रभञ्जनी ॥
शुक्लेश्वरश्चनद्याभ्यांशुक्लयासरितार्चितम् । जनकेशस्तत्प्रतीच्यां शङ्कुकर्णस्तदुत्तरे
महासिद्धीश्वरं लिङ्गं तत्प्राच्यां सर्वसिद्धिदम् ।

सिद्धकुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा सिद्धेश्वरं महत् ॥ २५४ ॥

सर्वासामेषसिद्धीनां पारंगच्छतिमानवः । शङ्कुकर्णेशवायव्ये लिङ्गं घाडव्यसञ्चितम्
तदग्रे च विभाण्डेशः कहोलेशस्तदुत्तरे । तत्र द्वारेश्वरं लिङ्गं देवीद्वारेश्वरी शुभा ॥
तत्पूजनाद्भवेत्सिद्धिरानन्दारण्यवस्तिदा । रक्षकाश्च गणास्तत्र नानारूपायुधा मुने
तत्रैव हरिदीशश्च लिङ्गं कात्यायनं ततः । तत्पार्श्वे जाङ्गलेशश्च तत्पश्चान्मुकुटेश्वरः
तत्रैव कुण्डं विमलं सर्वयात्राफलप्रदम् । स्नान्वामुकुटकुण्डे च दृष्ट्वा वै मुकुटेश्वरम्
यात्रया सर्वलिङ्गानांयत्फलं तदेषाप्यते । तपसश्चापियोगस्यसिद्धिदासाऽवनीपरा
मुनेःशतं सहस्राणि तत्रलिङ्गानि सिद्धये । एकादिगुत्तरादेवि धाराणस्यांप्रियामम
तत्रापि पञ्चायतने रतिर्मेनितरांप्रिये । उत्पत्तिस्थितिकालेऽपि तत्राहंसर्वदास्थितः
एवं यस्तुषिजानाति नसपापैःप्रलिप्यते । सत्यंसत्यं पुनः सत्यंविस्वत्यंनान्यतःप्रिये
शीघ्रं तत्रैव गन्तव्यं यदिक्लेन्मामकंपदम् । उद्देशमात्रंलिङ्गानि कथितानि मयामुने
द्विस्त्रिःशतैः स्थापितानि भक्त्या लिङ्गानि कानिचित् ।

न तानि पुनरुक्तानि श्रद्धयाऽर्चयानि सर्वतः ॥ २६५ ॥

एतानि यानि लिङ्गानि यानि कुण्डानि येऽन्धवः ।

या बाप्यस्तानि सर्वाणि श्रद्धेयानि मनीषिभिः ॥ २६६ ॥

एतेषां दर्शनात्स्नानात्फलमत्रोत्तरोत्तरम् । अत्रत्यानाञ्चलिङ्गानां कूपानां सरसामपि
वापीनाञ्चापि मूर्त्तीनां कः सङ्ख्यातुं प्रभुर्भवेत् ।

आनन्दकाननस्थानि तृणान्यपि परं वरम् ॥ २६८ ॥

दिषीकसोपि नान्यत्र यन्पुनर्जन्मभाजनम् । सर्वलिङ्गमयीकाशी सर्वतीर्थैकजन्मभूः
स्वर्गापवर्गयोर्दात्री दृष्टा देहान्तसेविता । मम प्रियतमा देवि त्वमेव तपसोबलात्
स्वभावतस्त्वयं काशी सुखविध्रामभर्मम । येकाश्यानामगृह्णन्ति येनुमोदन्तएवहि
ते मे शास्त्रविशाखाभाः स्कन्दनन्दिगजास्यवत् ।

त एव भक्ता मे देवि! तएव मम सेवकाः ॥ २७२ ॥

मुमुक्षवस्त एवाऽत्रये चानन्दवनौकसः । तपस्तप्तं महत्तैस्तु कृतं तैस्तुमहाव्रतम् ॥
तैश्च दत्तं महादानये चानन्दवनौकसः । तेस्नातसर्वतीर्थावै तेऽखिलाध्वरदीक्षिताः
तेत्वीर्षसर्वधर्माहि ये चानन्दवनौकसः । सुरासुरोरगनरा भूमिभारय तेऽखिलाः ॥
वयस्यपीह चरमे येनानन्दवनौकसः । अन्त्यजोऽपि वरः काश्यानाम्यत्रश्रुतिपारगः
संसारपारगः पूर्वस्वन्त्यश्चान्त्यजनोऽप्यधः ॥

स एव नूनं वरुणः परवद्यधिकेक्षण । य पार्थिवीं ननु हित्वाकाश्यांधत्तेसुधामयीम्
श्रुत्वाऽध्यायमिदं पुण्यं सर्वतीर्थरहस्यवत् । काशीदर्शनं पुण्यंप्राप्नोतिनियतं नरः
यः पठेतिमध्यायं प्रातः प्रातर्दिनेदिने । दृष्टानितेनसर्वाणितीर्थान्येतानिनान्यथा
सर्वलिङ्गमयाध्यायं योऽमुं नित्यं जपेत्सुधीः । न तं यमो न तं कृतानैर्नहोऽपि बाधते
ब्रह्मयज्ञफलं तस्य जायते सुकृतात्मनः । यो जपेदमुमध्यायं शुचिस्तद्रतमानसः ॥

स स्नातः सर्वकुण्डेषु सर्ववाप्यम्बुपः स च ।

सर्वलिङ्गार्चकः सोऽत्र योऽमुमध्यायमाजपेत् ॥

किमन्यैर्बहुभिःस्तोत्रैरतिस्तोत्रफलप्रदैः । मत्प्रो मषद्विरध्यायोऽस्तद्योऽयं महाफलः

महादानेषु दत्तेषु यत्फलं प्राप्यतेऽत्रै । सकृज्जपान्महाध्यायादमुष्मात्तत्समाप्यते
स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि दृष्ट्वा लिङ्गान्यनेकशः ।

यत्फलं लभ्यते मर्त्यैस्तदेतज्जपनाद्ब्रुवम् ॥ २८५ ॥

इदमेव तपोऽत्युग्रमयमेवजपो महान् । काशीलिङ्गावलीनामाध्यायो जप्येतयन्मुने
ममद्गुहेनास्तिकायवेदनिन्दारताय च । नदातव्यो न दातव्यो नदातव्योजपस्त्वयम्
अध्यापस्यास्यजपनात्पापं ब्रह्मवधोद्वयम् । अगम्यागमनञ्चापितथामध्यस्यमक्षणम्
गुरुदाराभिचारोत्थं हेमस्तेयसमुद्वयम् । मातापितृवधाज्जातं गोभ्रणहननोद्वयम् ॥
महापापानि पापानि ज्ञाताज्ञातानि भूरिशः । उपपापानिपापानिमनोवाक्कायजान्यपि
विलययान्त्यशेषाणिनिःसन्देहं ममाऽऽज्ञया । पुत्रान्पौत्रान्धनंधान्यंकलत्रंक्षेत्रमेवच
मनः समीहितं सर्वं स्वर्गं मोक्षं सुखान्यपि ।

जप्त्वाऽध्यायमिमं विद्वान्प्राप्त्यत्येव न संशयः ॥ २६२ ॥

इत्याद्यत्समाख्यातिदेवोदेवोपुरुःकथाम् । तावन्नन्दीसमागत्यप्रणम्येतिव्यजिज्ञपत्
जाता परिसमाप्तिश्चमहाप्रासादनिर्मितेः । सज्जीकृतोरथश्चायं ब्रह्माद्यामिलिताःसुराः
ताक्ष्यंग.पुण्डरीकाक्षोद्धारितिष्ठतिसानुगः । प्रतीक्षमाणोऽवसरंपुरस्कृत्यमुनीश्वरान्
चतुर्दशसुलोकेषु ये ये तिष्ठन्तिमुव्रताः । तेनिशम्यायमिलिता.प्रावेशिकमहोत्सवम्

स्कन्द उवाच

इति नन्दिवचः श्रुत्वा देवो देवीसमायुतः । दिव्यंरथंसमारूढनिजंगामत्रिविष्टपात्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां चतुर्थे काशीखण्ड-

उत्तरार्धेक्षेत्रतीर्थवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

मुक्तिमण्डपगमनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणु सूत महाभागयथास्कन्देनभाषितः । महामहोत्सवःशम्भोःपृच्छतेकुम्भसम्भवे

स्कन्द उवाच

निशामयमहाप्राज्ञशम्भुप्रावेशिकीं कथाम् । त्रैलोक्यानन्दजननीं महापातकतङ्किनीम्

मन्दरादागतः शम्भुक्षेत्रे दमनपर्वणि । प्राप्याप्यानन्दगहनमितश्चेतश्चचार ह ॥ ३ ॥

मोक्षलक्ष्मीविलासेऽथ प्रास्तादेसिद्धिमागते । देवोच्चिरजसः पीठादन्तर्गेहं चिवेश ह

ऊर्जगुक्लुप्रतिपदि बुधराधासमायुजि । चन्द्रे सप्तमराशिस्ये शेषेषूच्चग्रहेषु च ॥ ५ ॥

वाद्यमानेषु वाद्येषु प्रसन्नासु हरित्सु च । ब्राह्मणानां श्रुतिरवन्त्यक्कृतान्यरवान्तरे ॥

प्रतिशब्दितभूर्लोकभुवर्लोकान्तराध्वनि । सर्वप्रमुदितं चासीच्छम्भोःप्रावेशिकोत्सवे

जगुर्गन्धवनिकरा ननृतुश्चाप्सरो गणाः । चारणास्तु स्तुतिं कुर्युर्जह्णुर्देवतागणाः

ववुर्गन्धवहा वाता ववृषुः कुसुमैर्घनाः । सर्वे मङ्गलनैपथ्याः सर्वे मङ्गलभाषिणः ॥

स्थावराजङ्गमाः सर्वे जाता आनन्दमेदुराः । सुरासुरेषु सर्वेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ॥

विद्याधरेषु साध्येषु किन्नरेषु नरेषु च । स्त्रीपुञ्जातेषु सर्वेषु रेजुश्चत्वार एव च ॥

निष्प्रत्यूहं चनितरां पुरुषार्थाः पदे पदे । धूपद्रुमभरैर्घ्योम यद्रक्नुत तदा मुने ॥१२॥

नाद्यापि नीलिमानं तं परित्यजति कर्हिचित् ।

नीराजनाय ये दीपास्तदा सर्वे प्रबोधिताः ॥ १३ ॥

तेषां ज्योतीषि खेऽद्यापि राजन्ते तारकाच्छलात् ।

प्रतिसौधं पताकाश्च नानाकाराचिचित्रिताः ॥ १४ ॥

रम्यध्वजप्रभाधौतारेजुःप्रतिशिवालयम् । क्वचिद्गायन्तिगीतज्ञाःक्वचिन्नृत्यन्तिनर्तकाः

स्वतुर्विधानि वाद्यानि वाद्यन्ते च क्वचित्कचित् ।

प्रत्यध्वं चन्दनरसच्छटापिच्छिलभूमयः ॥ १६ ॥

हरितश्वेतमाञ्जिष्ठनीलपीतबहुप्रभाः । प्रत्यङ्गुणं शुभाकारा रङ्गमालाश्चकाशिरै ॥
रत्नकुट्टिमभूमागा गोपुराग्रेषु रेजिरे । सुधोज्ज्वलाहर्म्यमालाः सौधनामप्रपेदिरे
अचेतनान्यपि तदा चेतनानीव सम्बभुः । यानिकानीहकीर्त्यन्ते मङ्गलानि घटोद्भव
तेषामेव हिसर्वेषान्तत्तु जन्मदिवाभवत् । आगत्य देवदेवोऽधमुक्तिमण्डपमाचिशत्

अथाभिषिक्तश्चतुराननेन महर्षिवृन्दैःसह देवदेवः ।

शुभासनस्थः सहितो भवान्या कुमारवृन्दैः परितो वृतश्च ॥ २२ ॥

रत्नैरसङ्ख्यै बंधुभिर्दुःकूलैर्माल्यैर्विचित्रैर्लसदिष्टगन्धैः ।

अपूपुजन्देवगणा महेशं तदा मुदा ते च महोरगेन्द्राः ॥ २२ ॥

रत्नाकरैश्चापि गिरीन्द्रवर्यैर्यथा स्वमन्यैरपि पुण्यधीभिः ।

सम्पूजितः कुम्भज! तत्र शम्भुर्नौराजितो मातृगणैरधेशः ॥ २३ ॥

सन्तोष्य सर्वान्प्रथमं मुनीन्द्रान्स्वैः स्वैर्हृदिस्थैश्च खिराभिलाषैः ।

ब्रह्माणमाभाष्य शिवोऽथ विष्णुं जगाद सर्वामरवृन्दवन्यः ॥ २४ ॥

इतो निर्धीदेति समानपूर्वन्त्वं मे समस्तप्रभुतकहेतुः ।

दूरेऽपि तिष्ठन्निकटस्त्वमेव त्वत्तो न कश्चिन्मम कार्यकर्ता ॥ २५ ॥

त्वया दिवोदासनरेन्द्रवर्यः सदूपदेशैश्च तथोपदिष्टः ।

यथा स सिद्धिं परमामवाप समीहितं मेनिखिलञ्च सिद्धम् ॥ २६ ॥

विष्णो! वर ब्रूहि य ईप्सितस्तेनादेयमत्रास्ति किमप्यहो ते ।

इदं मयाऽऽनन्दवनं यदाप्तं हेतुस्तु तत्र त्वमसौ गणेशः ॥ २७ ॥

न मे प्रियं किञ्चन विष्टपत्रये तथा यथेयं परसौख्यभूमिः ।

वाराणसीब्रह्मरसायनस्य खनिज्जनियंत्रनवीर्घशाधिनाम् ॥ २८ ॥

श्रुत्वेति वाक्यं जगदीशितुश्च प्रोवाच विष्णुर्वरदं महेशम् ।

यदि प्रसन्नोऽसि पिनाकपाणे! तदा पदाद्दूरमहं न ते स्याम् ॥ २९ ॥

श्रुत्वेति वाक्यं मधुसूदनस्य जगाद् तुष्टो नितरां पुरारिः ।

सदा मुरारे! मम सन्निधौ त्वं तिष्ठस्व निर्वाणरमाश्रयेऽत्र ॥ ३० ॥
 अदाधनाराध्य भवन्तमत्र यो मां भजिष्यत्यपि भक्तियुक्तः ।
 समीहितं तस्य न सेत्स्यति ध्रुवं परात्परान्मेऽम्बुजचक्रपाणे ! ॥ ३१ ॥
 सर्वत्र सौख्यं मम मुक्तिमण्डपे सन्तिष्ठ मानस्यभवेदिहाच्युत ।
 न तत् कैलासगिरौ सुनिर्मले न भक्तचेतस्यपि निश्चलश्रियि ॥ ३२ ॥
 निमेषमात्रं स्थिरचित्तवृत्तयस्तिष्ठन्ति ये दक्षिणमण्डपेऽत्र मे ।
 अनन्यभावा अपि गाढमानसा न ते पुनर्गर्भदशामुपासते ॥ ३३ ॥
 संस्नाय ये चक्रसरस्यगाधे समस्ततीर्थैकशिरोविभूषणे ।
 क्षणं विशन्तीह निरीहमानसानिरेनसस्ते मम पार्षदा हि ॥ ३४ ॥
 स्मरन्ति ये मामपवर्गमण्डपे किञ्चिद्यथाशक्ति ददत्यपि स्वयम् ।
 शृण्वन्ति पुण्याश्च कथाः क्षणं स्थिरास्ने कौटिगोदानफलं भजन्ति ॥ ३५ ॥
 उपेन्द्रतमानि तपांसि तैश्चिरं स्नाता हि ते चाऽखिलतीर्थसार्थकैः ।
 स्नात्वेह ये वै मणिकर्णिकाहदे समासते मुक्तिजनाश्रयेक्षणम् ॥ ३६ ॥
 तीर्थानि सन्तीह पदे पदे हरे! तुला क तेषां मणिकर्णिकायाः ।
 कतीह नो सन्ति शुभाश्च मण्डपाः परं परोमुक्तिरमाश्रयोऽयम् ॥ ३७ ॥
 कैवल्यमण्डपस्याऽस्य भविष्ये द्वापरे हरे !
 लोके ऋयतिर्भवित्रीयमेव कुक्कुटमण्डपः ॥ ३८ ॥

हरिरुवाच

भालनेत्रसमाख्याहिकथंनिर्वाणमण्डपः । तथाख्यातिमसौगन्तायथादेवेनभाषितम्

देषदेव उवाच

महानन्दो द्विजोनाम भविष्योऽत्रचतुर्भुज । अश्रवेदी समाचारस्त्यक्ततीर्थप्रतिग्रहः
 अदाग्निमकोऽक्रूरमनाः सदैवातिथिवल्लभः । अथ यौवनमासाद्य पितयुं परते स हि
 विषमेषु शरैस्तीक्ष्णैः कारितस्त्वपदेपदम् । जहारकस्यचिद्द्वार्या मैत्रीं कृत्वातुतेन वै
 तथा च प्रेरितोऽपेयं पपौचापि विमोहितः । अमश्वभक्षणरुचिरभून्मदनमोहितः

वेष्णवान् धनिनोद्ग्राक्षणं वेष्णवेषभृत् । शैवाग्निन्दतिमूढात्मानरकत्राणकारणम्
 शिष्यमकामसमालोक्य किञ्चिच्च परितुल्लसकान् ।
 गर्हयैत्रैष्णवान्सर्वांश्छैवलिङ्गोपजीवकः ॥ ४७ ॥
 इति पाखण्डधर्मज्ञः सन्ध्यास्नानपराङ्मुखः ।
 विशालतिलकः क्षत्री शुद्धधौताम्बरोज्ज्वलः ॥ ४८ ॥

शखीचोपग्रहकरः सर्वेभ्योऽसत्प्रतिग्रही । तस्यापत्यद्वयं जातमुन्मत्तपधवर्तिनः ॥
 एषं तस्य प्रवृत्तस्य कश्चित्पर्वतदेशतः । समागमिष्यति धनी तीर्थयात्रार्थसिद्धये
 स्नात्वा न चक्रसरसि कथयिष्यति चेति वै ।

अहमस्मि धनोदितसुर्जात्या चाण्डालसत्तमः ॥ ४९ ॥

अस्ति कश्चित्प्रतिग्राही यस्मै दद्यामहं धनम् ।

इति तस्य वचः श्रुत्वा कैश्चिच्छाङ्गुलिसञ्ज्ञया ॥ ५० ॥

उद्विष्ट उपविष्टोऽसौ यो जपेद्ध्यानमुद्रया । एषप्रतिग्रहंत्वत्तो ग्रहीष्यति न चेतरेः
 इति तेषां वचः श्रुत्वा न गत्वा तत्समीपतः ।

दण्डवत्प्रणिपत्याह तम्बभाषे तदाऽन्त्यजः ॥ ५१ ॥

मामुद्धरमहाविप्र! तीर्थं मे सफलीकुरु । किञ्चिद्वस्त्वस्ति मे तत्त्वंगृहाणानुग्रहं कुरु
 अथाक्षमालिकां कर्णेकृत्वाध्यानं विसृज्य च । कियद्वनंतवास्ताहपप्रच्छकरसञ्ज्ञया
 तच्च सञ्ज्ञां स वै बुद्ध्वा प्रोवाचाऽतिग्रहृष्टवान् ।

संतृप्तिर्यावता ते स्यात्तावदास्यामि नान्यथा ॥ ५२ ॥

इतितद्वचनं श्रुत्वात्यक्त्वामौनमुवाच ह । सानन्दः समहानन्दो निःस्पृहोऽस्मिप्रतिग्रहे
 परं तेऽनुग्रहार्थं तु करिष्यामिप्रतिग्रहम् । किञ्चमे वचनं त्वञ्चेत्करिष्यस्युत्तमोत्तम
 यावदस्त्यखिलं विस्रं तन्मध्येऽन्यस्य कस्यचित् ।

न स्तोत्रमपि दातव्यं तदाऽऽदास्यामि नाऽन्यथा ॥ ५३ ॥

चाण्डाल उवाच

यावदस्ति मयानीतं विश्वेशप्रीतयेषु । तावत्सुभ्यं प्रदास्यामि विश्वेशत्वंयतो मम

ये वसन्तीह विश्वेशराजधान्यां द्विजोत्तम! ।

क्षुद्रा क्षुद्रा जन्तुमात्रा विश्वेशांशास्त एव हि ॥ ६०

परोद्धरणशीला ये ये परेच्छाप्रपूरकाः । परोपकृतिशीला ये विश्वेशांशास्त एव हि
इतितद्वचनं ध्रुत्वा प्रहृष्टेन्द्रियमानसः । उवाच पार्श्वतीयन्तं सोऽप्रजन्मान्यजंतदा
आयाहि दर्भानादेहि कुरूतसर्गत्वरान्वितः । तथेतिस चकाराशु पार्श्वतीयो महामनाः

विश्वेशः प्रीयताञ्चेति प्रोच्य यातो यथागतः ।

स च द्विजोद्विजैरन्यैर्धिककृतोऽपि वसन्निह ॥ ६४ ॥

बहिर्निर्गतमात्रस्तु बहुभिः परिभूयते । चाण्डालप्राह्मणश्चैव चाण्डालात्तधनस्त्वसौ
असावेवहिचाण्डालःसर्वलोकबहिष्कृतः । इत्थंतमनुधावन्ति थूत्कुर्धन्तःपरितोहरे
सचतद्भयतो गेहात्काकमीतदिवान्धवत् । ननिःसरैत्कचिदपि लज्जाकृति नतास्यकः

स एकदा सम्प्रधार्य गृहिण्या लोकादूषितः ।

जगाम कीकटान्देशांस्त्यक्त्वा वाराणसीं पुरीम् ॥ ६८ ॥

मध्येमार्गं सगच्छन्वै लक्षितस्तु सकाञ्चनः ।

अपि कार्पाटिकान्तस्थः सरुद्धो मार्गरोधिभिः ॥ ६९ ॥

नीत्वा ते तमरण्यानीं तस्कराः सपरिच्छदम् ।

उल्लुण्ठ्य धनमादाय समालोच्य परस्परम् ॥ ७० ॥

प्रोचुर्भूरिधनं चेतज्जीर्यत्यस्मिन्न जीवति । असौधनी प्रयत्नेन बध्यः सपरिस्वारकः
संप्रवार्येति ते प्राहुः स्मर्तव्यं स्मरपान्थिक !।

त्वां वयं घातयिष्यामो निश्चितं सपरिच्छदम् ॥ ७२ ॥

निशम्येति मनस्येव कथयामास सद्विजः । अहो प्रतिगृहीतं मे यदर्थं वसुभूरिशः ॥
कुटुम्बमपि तन्नष्टं नष्टञ्चापि प्रतिग्रहः । जीवितञ्चापि मे नष्टंनष्टा काशीपुरीस्थितिः
युगपत्सर्वमेवाऽऽशु नष्टं दुर्बुद्धिचेष्टया । नकाश्याम्भरणम्प्राप्तं तस्माद्दुष्टप्रतिग्रहात्
प्रान्ते कुटुम्बस्मरणात्तथा काशीस्मृतेरपि ।

चौरैर्हृतोऽपि स तदा कीकटे कुक्कुटोऽभवत् ॥ ७६ ॥

सा कुक्कुटीसुतौ तौ तु ताम्रषूडत्वमापतुः ।

प्रान्ते काशीस्मरणतो जाता जातिस्मृतिः परा ॥ ७७ ॥

इत्थम्बहुतिये काले गते कार्पटिकोत्तमाः ।

तस्मिन्नेषाऽध्वनि प्राप्ताश्चत्वारोयऽत्र कुक्कुटाः ॥ ७८ ॥

वाराणस्याः कथाम्प्रोच्यैः कुर्वन्तोऽन्योन्यमेव हि ।

काशीकथां समाकर्ण्य तदा ते चरणायुधाः ॥ ७९ ॥

जातिस्मृतिप्रभावेण तत्सङ्गे नतुनिर्गताः । तैश्च कार्पटिकश्रेष्ठैः पथि दृष्ट्वा कृपालुभिः

तन्दुलादिपरिक्षेपैः प्रापिताः क्षेत्रमुत्तमम् । तेषु क्षेत्रं समासाद्य चत्वारश्चरणायुधाः

चरिष्यन्तोऽत्र परितो मुक्तिमण्डपमुत्तमम् ।

जिताहारानसनियमान्कामक्रोधपराङ्मुखान् ॥ ८२ ॥

प्रहासान्मत्कथालापान्लोभमोहविवर्जितान् ।

स्वर्धुनीस्नानसंक्लिन्नसुनिर्मलशिरोरुहान् ॥ ८३ ॥

मन्नामोश्चारणपरान्मत्कथार्पितसुश्रुतीन् । मद्दत्तचित्तसद्वृत्तीन् दृष्ट्वा क्षेत्रनिवासिनः

मानयामासुरथ तान्कुक्कुटान्साधुवर्त्मनः ।

प्राक्तनाद्वासमायोगात्सम्प्रधार्य परस्परम् ॥

क्रमेणाऽऽहारमाकुञ्च्य प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति चाऽत्र वै ॥ ८५ ॥

पश्यतां सर्वलोकानां विष्णोतेमदनुग्रहात् । विमानमधिरुहाशु कैलासम्प्राप्यमत्पदम्

निर्विश्य सुचिरं कालं दिव्यान्भोगाननुत्तमान् ।

ततोऽत्र ज्ञानिनो भूत्वा मुक्तिम्प्राप्स्यन्ति शाश्वतीम् ॥ ८७ ॥

ततो लोकास्तदारभ्य कथयिष्यन्ति सर्वतः । मुक्तिमण्डपनामैतदेश कुक्कुटमण्डपः

चरित्रमपिचैतेषां येस्मरिष्यन्तिमानवाः । मुक्तिमण्डपमासाद्यश्रेयःप्राप्स्यन्ति तेऽपि हि

इति यावत्कथां शम्भुर्भविष्यामग्रतोहरेः । अकरोत्सुमुलोनादो घण्टानां तावदुद्गतः

अथ नन्दिनामहूय देवदेव उमाश्रवः । प्रोवाच नन्दिन्विज्ञायागत्य ब्रूहि कुतोरवः ॥

अथ नन्दीसमागत्य प्रोवाचवृषभध्वजम् । नमस्कृत्य प्रहृष्टास्यः प्रबद्धकरसम्पुटः ॥

नन्दुवाच

देवदेवत्रिनयन! किमपूर्वम्ब्रवीमिते । मोक्षलक्ष्मीविलासोऽत्रकैश्चित्कैश्चित्समर्च्यते
अथस्मित्वाब्रवीच्छम्भुःसिद्धंनस्तुसमीहितम् । उत्थायदेवदेवेशःसहदेव्यासुमङ्गलः
ब्रह्मणा हरिणा साधं ततोऽगाद्रङ्गमण्डपम् ।

स्कन्द उवाच

श्रुत्वाऽध्यायंमिमम्पुण्यं परमानन्दकारणम् ।

नरः पराम्मुदम्प्राप्य कैलासम्प्राप्स्यति ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्रब्राह्मणसंहितायां षतुर्थे काशीखण्ड-
उत्तरार्धेमुक्तिमण्डपगमनं नामाऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

नवनवतितमोऽध्यायः

विश्वेश्वरलिङ्गमहिमाख्यानवर्णनम्

व्यास उवाच

ऋणु सूत! यथा प्रोक्तं कुम्भजे शरज्जन्मना । देवदेवस्य चरितं विश्वेशस्य परात्मनः

अगस्त्य उवाच

सेनानीः कथयत्वम्मे ततोनिर्वाणमण्डपात् । निर्गत्यदेवोदेवेन्द्रैःसहितःकिञ्चकारह

स्कन्द उवाच

मुक्तिमण्डपतः शम्भुर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमः । ऋङ्गारमण्डपम्प्राप्य यच्चकारवदामितत्

प्राङ्मुखस्तूपदिशेशः सहाऽस्माभिः सहैशया ।

ब्रह्मणाधिष्ठितः सद्ये वामपार्श्वेऽथ शार्ङ्गिणा ॥ ४ ॥

धीज्यमानो महेन्द्रेण ऋषिभिःपरितोवृतः । गणैःपृष्ठप्रदेशस्थैर्जोषंतिष्ठद्विरादरात्

उदायुधैःसेव्यमानश्चावसन्मानभूरिभिः । ब्रह्मणेविष्णवेशशम्भुःपाणिमुत्क्षिप्यदक्षिणम्

दर्शयामास देवेशो लिङ्गमपश्यत पश्यत । इदमेव परञ्ज्योतिरिदमेव परात्परम् ॥
इदमेव हि मे रूपं स्थावरञ्चातिसिद्धिदम् । एते पाशुपताः सिद्धाभ्राबालब्रह्मचारिणः
जितेन्द्रियास्तपोनिष्ठाः पञ्चार्थज्ञाननिर्मलाः ।

भस्मकूटशया दान्ताः सुशीला ऊर्ध्वरेतसः ॥ ६ ॥

लिङ्गाखनरता नित्यमनन्येन्द्रियमानसाः । सदैव धारणाग्नेयस्नानद्वयसुनिर्मलाः ॥
कन्दमूलफलाहाराः परतत्त्वापितेक्षणाः । सत्यवन्तो जितक्रोधानिर्मोहानिष्परिग्रहाः
निरीहानिष्प्रपञ्चाश्च निरातङ्का निरामयाः ।

निर्भगा निरुपायाश्च निःसङ्गा निर्मलाशयाः ॥ १२ ॥

निसतीर्णोद्ग्रसंसारानिर्विकल्पानिरेनसः । निर्वन्द्वानिश्चितार्थाश्चनिरहङ्कारवृत्तयः
सदैव मे महाप्रीतामन्पुत्रामत्स्वरूपिणः । एतेपूज्यानमस्याश्चमद्बुद्ध्यामत्परायणैः
अचितेष्वेष्वहमप्रीतो भविष्यामि न संशयः ।

अस्मिन्वैश्वेश्वरे क्षेत्रे सम्भोज्याः शिवयोगिनः ॥ १५ ॥

कोटिभोज्यफलं सम्यगेकं कपरिसङ्ख्यया ।

अयं विश्वेश्वरः साक्षात्स्थावरात्मा जगत्प्रभुः ॥ १६ ॥

सर्वेषां सर्वसिद्धीनां कर्ता भक्तिजुषामिह । अहङ्कृदाचिद्वृश्यः स्यामदृश्यः स्यांकदाचन
आनन्दकानने चात्र स्वैरन्तिष्ठामि देवताः । अनुग्रहाय सर्वेषां भक्तानामिह सर्वदा ॥
स्थास्यामि लिङ्गरूपेण चिन्तितार्थफलप्रदः ।

स्वयम्भून्यस्वयम्भूनि यानि लिङ्गानि सर्वतः ॥

तानि सर्वाणि चाऽऽयान्ति द्रष्टुं लिङ्गमिदं सदा ॥ १६ ॥

अहंसर्वेषु लिङ्गेषु तिष्ठाम्येव न संशयः । परन्त्वियमपरा मूर्तिर्मम लिङ्गस्वरूपिणी ॥
येन लिङ्गमिदं दृष्टं श्रद्धया शुद्धचक्षुषा । साक्षात्कारेण तेनाऽहं दृष्ट एव दिवौकसः
श्रवणादस्य लिङ्गस्य पातकं जन्मसञ्चितम् । क्षणात्क्षयति शृण्वन्तु देवाः ऋषिगणैः सह
स्मरणादस्य लिङ्गस्य पापं जन्मद्वयार्जितम् । अवश्यं नश्यति क्षिप्रं मम वाक्यान्न संशयः
यत्तलिङ्गं समुद्दिश्य गृहान्निष्क्रमणक्षणात् । बिलीयते महापापमपि जन्मत्रयार्जितम्

दर्शनादस्य लिङ्गस्य ह्यमेधशतोद्भवम् । पुण्यं लभेत नियतं ममानुग्रहताऽमराः
स्वम्भुवोऽस्य लिङ्गस्य मम विश्वेशितुः सुराः ।
राजसूयसहस्रस्य फलं स्यात्स्पर्शमात्रतः ॥ २६ ॥

पुष्पमात्रप्रदानाच्चसुलोकोदकपूर्वकम् । शतसौवर्णिकम्पुण्यं लभते भक्तियोगतः ॥
पूजामात्रं विधायाऽस्य लिङ्गराजस्य भक्तिः । सहस्रहेमकमलपूजाफलमवाप्यते
विधाय महतीम्पूजां पञ्चामृतपुरःसराम् । अस्य लिङ्गस्य लभते पुरुषार्थचतुष्टयम्
षष्ठं रूतजलैर्लिङ्गं स्नापयित्वा ममामराः ! । लक्षाश्वमेधजनितं पुण्यमाप्नोति सत्तमः ॥
सुगन्धघन्दनरसैर्लिङ्गमालिप्य भक्तिः । आलिप्यते सुरस्त्रीभिः सुगन्धैरक्षकदमैः
सामोद्भूतानैश्च दिव्यगन्धाश्रयो भवेत् । घृतदीपप्रबोधैश्च ज्योतीरूपविमानगः ॥
कर्पूरवर्तिदीपेन सकृद्भस्तेन भक्तिः । कर्पूरदेहगौरश्रीर्भवेद्बालविलोचनः ॥ ३३ ॥

दत्त्वा नैवेद्यमात्रं तु सिक्थे सिक्थे युगं युगम् ।

कैलासाद्रौ वसेद्धीमान्महाभोगसमन्वितः ॥ ३४ ॥

विश्वेशे परमांत्रयो दद्यात्साज्यं सशर्करम् । त्रैलोक्यन्तर्पितन्तेन सदेवपितृमानवम्
मुखवासन्तुयो दद्याद्दर्पणञ्चारुचामरम् । उल्लोचं सुखपर्यङ्कन्तस्यपुण्यफलम्महत् ॥
संख्यासागररत्नानां कथंचिन्कर्तुमिष्यते । मुखवासादिदानस्यकः संख्यामात्रकारयेत्
पूजोपकरणद्रव्यं योघण्टागडुकादिकम् । भक्त्या मे भवने दद्यात्सवसेदत्रमेऽन्तिके

यो गीतवाद्यनृत्यानामेकं मत्प्रीतये व्यधात् ।

तस्याग्रतो दिवारात्रम्भवेत्तौर्यत्रिकं महत् ॥ ३६ ॥

चित्रलेखनकर्मादि प्रासादे मेऽत्र कारयेत् ।

यः सचित्रान्महाभोगान्मुङ्क्ते मत्पुरतः स्थितः ॥ ४० ॥

सकृद्विश्वेश्वरं नत्वा मध्येजन्मसुधीनरः । त्रैलोक्यचन्द्रितपदो जायतेवसुधापतिः
यस्तु विश्वेश्वरं द्रष्टुं ह्यन्यत्रापिचिपद्यते । तस्य जन्मान्तरे मोक्षोभवत्येव नसंशयः

विश्वेशाख्या तु जिह्वाग्रे विश्वनाथकथा श्रुतौ ।

विश्वेशशीलनं चित्ते यस्य तस्य जनिः कुतः ॥ ४३ ॥

लिङ्गं मे विश्वनाथस्य दृष्ट्वा यद्भानुमोदते । स मे गणेषु गण्वेत महापुण्यबलाश्रितः
नित्यं विश्वेशविश्वेशविश्वनाथेति यो जपेत् ।

त्रिसन्ध्यं तं सुकृतिर्न जपाम्यहमपि ध्रुवम् ॥ ४५ ॥

ममापीदं महालिङ्गं लदा पूज्यतमं सुराः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यं देवर्षिमानवैः ॥
यैर्न विश्वेश्वरो दृष्टोयैर्न विश्वेश्वरः स्मृतः । कृतान्तदूतैस्ते दृष्टास्तैः स्मृतागर्भवेदना
यैरिदम्प्रणतं लिङ्गं प्रणतास्ते सुरासुरैः । यस्यैकेन प्रणामेन दिक्पालपदमल्पकम्

दिक्पालपदतः पातः पातः शिघ्रनतेर्न हि ॥ ४८ ॥

शृण्वन्तु देवर्षिगणाः समस्तास्तथ्यं ब्रुवे तच्च परोपकृत्यै ।

न भूर्भुवःस्वर्गमहर्जनान्तर्विश्वेशतुल्यं कश्चिदस्ति लिङ्गम् ॥ ४९ ॥

न सत्यलोकेन तपस्यहो सुरा ! वैकुण्ठकैलासरसातलेषु ।

तीर्थं कचिद्वै मणिकर्णिकालमं लिङ्गं च विश्वेश्वरतुल्यमन्यतः ॥ ५० ॥

न विश्वनाथस्य समं हि लिङ्गं न तीर्थमन्यन्मणिकर्णिकातः ।

तपोवनं कुत्रचिदस्ति नान्यच्छुभं ममाऽऽनन्दवनेनतुल्यम् ॥ ५१ ॥

वाराणसीतीर्थमयी रुमस्ता यस्यास्तु नामाऽपि हि तीर्थतीर्थम् ।

तत्रापि काञ्चिन्मम सौख्यभूमिर्महापर्वत्रा मणिकर्णिकाऽसौ ॥ ५२ ॥

स्थानादमुष्मान्मम राजसौधात्प्राच्या मनागीशसमाश्रितायाम् ।

सव्येपसव्ये च कराःक्रमेण शत्रत्रयी चाऽपि शतद्वयी च ॥ ५३ ॥

हस्ताः शतम्पञ्च सुरापगायामुदीच्यबाचयोर्मणिकर्णिकेयम् ।

सारस्त्रिलोफ्याः परकोशभूमिर्भैः सेचिता ते मम हृच्छया हि ॥ ५४ ॥

अस्मिन्ममाऽऽनन्दवने यदेतल्लिङ्गं सुधाधाम सुधाधामम् ।

आसप्तपातालतलात्स्वयम्भुसमुत्थितम्भक्तकृपावशेन ॥ ५५ ॥

येऽस्मिञ्जनाः कृत्रिमभाषबुद्ध्या लिङ्गं भजिष्यन्ति च हेतुबादैः ।

तेषां हि दण्डः पर एव एव न गर्भंघासाङ्घिरमन्ति ते ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

यद्यद्वितं स्वस्य सदैव तत्तल्लिङ्गेऽत्र देवं मम भक्तिमङ्घिः ।

इहाऽप्यमुत्रापि न तस्य सङ्ख्यो यथेह पापस्य कृतस्य पापिभिः ॥ ५७ ॥
 दूरस्थितं रज्यधिबुद्धिमिर्यैर्लिङ्गं लमाराधि ममेदमत्र ।
 मयैव दत्तैः शुभवस्तुजातैर्निःश्रेयसः श्रीर्चसयेत्सतस्तान् ॥ ५८ ॥
 शृणुष्व चिष्णो! शृणु सृष्टिकर्तः! शृण्वन्तु देवर्षिगणाः !समस्ताः ।
 इदं हि लिङ्गं परसिद्धिदं सताम्भेदो मनागत्र न मत्सकाशतः ॥ ५९ ॥
 अस्मिन्ह लिङ्गे ऽखिलसिद्धिसाधने समर्पितं यैः सुकृतार्जितं वसु ।
 तेभ्योऽतिमात्राखिलसौख्यसाधनं दवामि निर्वाणपदं सुनिर्भयम् ॥ ६० ॥
 उतिक्षप्य बाहुं त्वसकृद् ब्रवीमि त्रयीमयेऽस्मिन्लयमेव सारम् ।
 विश्वेशलिङ्गं मणिकर्णिकाम्बुकाशीपुरी सत्यमिदन्त्रिसत्यम् ॥ ६१ ॥
 उत्थाय देवोऽथ सशक्तिरीशस्तस्मिन्ह लिङ्गे कृतधारुपूजः ।
 यथौ लयं ते च सुराजयेति जयेति चोत्त्वा नुनुवुस्तमीशम् ॥ ६२ ॥

स्कन्द उवाच

क्षेत्रस्य मैत्रावरुणे! विमुक्तस्य महामते !। प्रभावस्यैकदेशोऽयंकथितः कल्मषापहः
 तवाप्रे तु यथाबुद्धि काशीचिश्लेषतापिनः ।
 अचिरेणैव कालेन काशीम्प्राप्त्यस्यनुत्तमा ॥ ६३ ॥
 अस्ताबलस्य शिखरम्प्राप्तवानेषमानुमान् । तवापिहिममाप्येषमौनस्यसमयोऽभवत्

व्यास उवाच

श्रुत्वेति स मुनिः सूत ! सन्ध्योपास्थ्यै विनिर्गतः ।
 प्रणम्यौमेयमसकृल्लोपामुद्रासमन्वितः ॥ ६६ ॥
 रहस्यम्परिचिन्नाय क्षेत्रस्य शक्तिमौलिनः ।
 अगस्त्यो निश्चितमनाः शिष्यध्यानपरोऽभवत् ॥ ६७ ॥
 आनन्दकाननस्येह महिमानम्महत्तरम् । कोऽत्र वर्णयितुं शक्तः सूत! वर्णयतैरपि ॥
 यथा देव्यै समाख्यायि शिवेन परमात्मना ।
 तथा स्कन्देन कथितं माहात्म्यं कुम्भसम्भवे ॥ ६६ ॥

तवाग्रे खसमाख्यातंशुकादीनाञ्चसप्तमम् । इदानीमप्रष्टुष्यामोसिक्वित्तपृच्छवदामिते
 श्रुत्वाध्यायमिमम्पुण्यंसर्वकल्मषनाशनम् । समस्तविन्तितफलप्रदमर्त्योमवेत्कृती
 इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्ड-
 उत्तरार्धेविश्वेश्वरलिङ्गमहिमाख्यानांमनघनवतितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

शततमोऽध्यायः

समनुक्रमणिकाध्यायवर्णनम्

सूत उवाच

इदं स्कान्दमहं श्रुत्वा काशीखण्डमनुत्तमम् ।
 नितराम्परितुप्तोऽस्मि हृदि चाऽपि विधारितम् ॥ १ ॥
 अनुक्रमणिकाध्यायं तथा माहात्म्यमुत्तमम् ।
 पाराशर्यं समाचक्ष्व यथा पूर्वमिदम्भवेत् ॥ २ ॥

व्यास उवाच

सूतावधेहिघर्मात्मज्ञातूकर्ण्यनिशामय । शुकवेशम्पायनाद्याः शृण्वन्त्वपि खबालकाः
 अनुक्रमणिकाध्यायं माहात्म्यञ्चाऽपि खण्डजम् ।
 प्रवक्ष्यम्यघनाशाय महापुण्यप्रवर्धनम् ।
 विन्ध्यनारदसम्वाद्ः प्रथमे परिकीर्तितः ॥ ४ ॥
 सत्यलोकप्रभावश्च द्वितीयः समुदाहृतः ॥ ५ ॥
 अगस्तेराश्रमपदे देवानामागमस्ततः । पतिप्रतापरित्रञ्च प्रस्थानं कुम्भसम्भुजः ॥
 तीर्थप्रशंसा चततःसप्तपुर्यस्ततःस्मृताः । संयमिन्याःस्वरूपञ्चब्रह्मलोकस्ततःपरम्
 इन्द्राग्न्योर्लोकसम्प्राप्तिस्ततश्च शिवशर्मणः ।
 अग्नेः समुद्भवस्तस्मात्कव्याद्वरुणसम्भवः ॥ ८ ॥

गन्धवत्यलकापुर्योरीशयोस्तु समुद्रवः । चन्द्रलोकपरिप्राप्तिः शिवशर्मद्विजन्मनः
उड्ढलोककथा तस्मात्ततः शुक्रसमुद्रवः । माह्वयगुरुसौरीणांलोकानां वर्णनस्ततः ॥
सप्तर्षीणां ततोलोका ध्रुवस्यचतुष्पततः । ततोध्रुवपदप्राप्तिर्ध्रुवलोकस्थितिस्ततः
दर्शनं सत्यलोकस्य तस्य वै शिवशर्मणः । चतुर्भुजाभिषेकश्चनिर्वाणं शिवशर्मणः

स्कन्दागस्त्योश्च सम्वादो मणिकर्ण्याः समुद्रवः ।

ततस्तु गङ्गामाहात्म्यं ततो दशहरास्तवः ॥ १३ ॥

प्रभाषश्चापि गङ्गायागङ्गानामसहस्रकम् । वाराणस्याः प्रशंसाऽथ भैरवाधिर्मवस्ततः
दण्डपाणेः समुद्रभूतिर्ज्ञानवाप्युद्भवस्ततः ।

आख्यानञ्च कलाचत्याः मदाचारस्ततः परम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मचारिप्रकरणं ततः स्त्रीलक्षणानि च । कृत्याकृत्यप्रकरणमधिमुक्तेशवर्णनम् ॥
ततो गृहस्थधर्माश्च ततोयोगिनिरूपणम् । कालज्ञानंततःप्रोक्तं दिवोदासस्यवर्णनम्
काश्याश्चवर्णनस्तस्माद्योगिनीवर्णनस्ततः । लोलार्कस्यसमाख्यानमुत्तरार्ककथाततः
साम्बादित्यस्य महिमाद्रुपदादित्यशंसनम् । ततस्तुगण्डाख्यानमरुणार्काद्यस्ततः
दशाश्वमेधिकं तीर्थं मन्दराश्च गणागमः । पिशाचमोचनाख्यानं गणेशप्रेषणस्ततः ॥
मायागणपतेश्चाऽथदुण्डिप्रादुर्भवस्ततः । विष्णुमायाप्रपञ्चोऽथदिवोदासविसर्जनम्
ततः पञ्चनदोत्पत्तिर्बिन्दुमाश्रयस्मभवः । ततोवैष्णवतीर्थानां माहात्म्यपरिवर्णनम्
प्रयाणम्मन्दरात्कार्शीं वृषभध्वजशूलिनः ।

जैगीषव्येन सम्वादो ज्येष्ठस्थाने ब्रह्मेशितुः ॥ २३ ॥

ततः क्षेत्रहस्यस्य कथनम्पापनाशनम् । अघातः कन्दुकेशहय व्याघ्रेशस्य समुद्रवः
ततः शैलेश्वरकथारत्नेशस्य च दर्शनम् । कृत्तिवासः समुत्पत्तिस्ततश्चायतनागमः ॥
देवतानामधिष्ठानं दुर्गासुरपराकमः । दुर्गायाचिजयश्चातथततर्द्धङ्कारवर्णनम् ॥२६॥
पुनरोङ्कारमाहात्म्यं त्रिलोचनसमुद्रवः । त्रिलोचनप्रभाषोऽथ केदाराख्यानमेव च ॥
ततो धर्मेशमहिमा ततः पक्षिकथाशुभा । तनोविश्वभुजाख्यानं दुर्दमस्य कथा ततः
ततो वीरेश्वराख्यानं वीरेशमहिमा पुनः । गङ्गातीर्थैश्च संयुक्ता कामेशमहिमाततः ।

विश्वकर्मेक्षमहिमा दक्षयज्ञसमुद्भवः ।

सत्या देहविसर्गश्च ततो दक्षेश्वरोद्भवः ॥ ३० ॥

ततो वै पार्वतीशस्यमहिम्नः परिकीर्तनम् । गङ्गेशस्याथ महिमानमदेशसमुद्भवः ॥

सतीश्वरसमुत्पत्तिरमृतेशादिवर्णनम् ।

व्यासस्य हि भुजस्तम्भो व्यासशापविमोक्षणम् ॥ ३२ ॥

क्षेत्रतीर्थकदम्बञ्जमुक्तिमण्डपसङ्कथा । विश्वेशाविर्मवञ्चाऽथ ततो यात्रापरिक्रमः
एतदाख्यानशतकं क्रमेणपरिकीर्तितम् । यस्य श्रवणमात्रेण सर्वखण्डध्रुतेः फलम् ॥

अनुक्रमणिकाध्यायेऽप्यस्ति यात्रापरिक्रमः ।

सूत उवाच

यात्रापरिक्रमम्ब्रूहिजनानांहितकाम्यया । यथावत्सिद्धिकामानांसत्यवत्याःसुतोत्तम
ध्यास उवाच

निशामय महाप्राज्ञ लोमहर्षण वचिमि ते । यथा प्रथमतो यात्रा कर्तव्यायात्रिकैर्मुंदा
सर्षलमादौ संस्नायचक्रपुष्करिणाजले । सन्तप्यं देवान्सपितृन्ब्राह्मणांश्चतयार्थिनः

आदित्यं द्रौपदीं विष्णुं दण्डपाणिमश्वरम् ।

नमस्कृत्य ततो गच्छेद्द्रष्टुं दुण्डविनायकम् ॥ ३८ ॥

ज्ञानवापीमुपस्पृश्यनन्दिकेशं ततोऽर्घयेत् । तारकेशंततोऽभ्यर्च्य महाकालेश्वरं ततः

ततः पुनर्दण्डपाणिमित्येषा पञ्चतीर्थिका ॥ ४० ॥

दैनन्दिनी विधातव्या महाफलमभीप्सुभिः ।

ततो वैश्वेश्वरी यात्रा कार्या सर्वार्थसिद्धिदा ॥ ४२ ॥

द्विसप्तायतनानाञ्चकार्या यात्रा प्रयत्नतः । कृष्णाम्प्रतिपदम्प्राप्यभूतावधियथाविधि
अथवाप्रतिभूतञ्च क्षेत्रसिद्धिमभीप्सुभिः । तत्ततीर्थकृतस्नानस्तत्तल्लिङ्गकृतार्चनः

मौनेन यात्रां कुर्वाणः फलम्प्राप्नोति यात्रिकः ।

ॐङ्कारम्प्रथमम्पश्येन्मत्स्योदर्यां कृतोदकः ॥ ४४ ॥

त्रिविष्टपं महादेवंततो वै कृत्तिवाससम् । रत्नेशञ्चाऽथ चन्द्रेशंकेदारञ्चततो व्रजेत्

धर्मेश्वरञ्च धीरेशं गच्छेत्कामेश्वरं ततः ।

विश्वकर्मेश्वरं चाऽथ मणिकर्णेश्वरं ततः ॥ ४६ ॥

अविमुक्तेश्वरं दृष्ट्वा ततो विश्वेशमर्चयेत् । एषा यात्रा प्रयत्नेन कर्तव्याक्षेत्रवासिना

यस्तु क्षेत्रमुषित्वा तु नैतां यात्रां समाचरेत् ।

विघ्नास्तस्योपतिष्ठन्ते क्षेत्रोच्चाटनसूचकाः ॥ ४८ ॥

अष्टायतनयात्रान्या कर्तव्या विघ्नशान्तये । दक्षेशः पार्वतीशश्च तथा पशुपतीश्वरः ॥

गङ्गेशो नर्मदेशश्च गमस्तीशः सतीश्वरः । अष्टमस्तारकेशश्च प्रत्यष्टमिचिशेषतः ॥

दृश्यान्येतानि लिङ्गानि महापापोपशान्तये । अपरापि शुभायात्रा योगक्षेमकरीसदा

सर्वविघ्नोपहन्त्री चकर्तव्या क्षेत्रवासिभिः । शैलेशं प्रथमं धीक्ष्य घरणास्नानपूर्वकम्

स्नानंतुसङ्गमे कृत्वाद्रष्टव्यःसङ्गमेश्वरः । स्वलीनतीर्थेसुस्नातः पश्येत्स्वलीनमीश्वरम्

स्नात्वा मन्दाकिनीतीर्थे द्रष्टव्योमध्यमेश्वरः । पश्येद्विरण्यगर्भेशंतत्र तीर्थेऽकृतोदकः

मणिकर्णयां ततः स्नात्वा पश्येदीशानमीश्वरम् ।

ततः कूपमुपस्पृश्य गोप्रेक्षमबलोकयेत् ॥ ५५ ॥

कापिलेयहृदे स्नात्वा धीक्षेत वृषभश्वजम् । उपशान्तशिवं पश्येत्तत्कूपविहितोदकः

पञ्चषडाहृदे स्नात्वाऽप्येष्टस्थानं ततोऽर्चयेत् । चतुःसमुद्रकूपे तु स्नात्वादेवंसमर्चयेत्

देवस्याग्रे तु या घापी तत्रोपस्पृशने कृते । शुक्रेश्वरं ततः पश्येत्तत्कूपविहितोदकः ॥

दण्डखातेततःस्नात्वाव्याघ्रेशम्पूजयेत्ततः । शौनकेश्वरकुण्डे तु स्नानं कृत्वा ततोऽर्चयेत्

जम्बुकेशं महालिङ्गं कृत्वा यात्रामिमां नरः । क्वचिन्न जायते भूयः संसारं दुःखसागरे

समारभ्य प्रतिपद्याबलकृष्णा चतुर्दशी । पतत्क्रमेण कर्तव्यान्येतदायतनानि वै ॥

इमां यात्रानरः कृत्वानभूयोऽप्यभिजायते । अन्या यात्रा प्रकर्तव्यैकादशायतनोद्भवा

आग्नीध्रकुण्डे सुस्नातः पश्येदाग्नीध्रमीश्वरम् ।

उर्वशीशं ततो गच्छेत्ततस्तु नकुलीश्वरम् ॥ ६३ ॥

आषाढीशं ततो दृष्ट्वा भारभूतेश्वरं ततः । लाङ्गलीशमथालोक्य ततस्तु त्रिपुरान्तकम्

ततोमनः प्रकामेशं प्रीतिकेशमथो ब्रजेत् । मदालसेश्वरं तस्मात्तिलपर्णेश्वरं ततः ॥

यात्रैकादशलङ्कानामेषा कार्या प्रयत्नतः । इमां यात्रां प्रकुर्वाणो रुद्रत्वं प्राप्नुयान्नरः
अतः परं प्रवक्ष्यामि गौरीयात्रामनुत्तमाम् । शुक्लपक्षेऽतृतीयायांयायात्राविष्वगृद्धिदा
गोप्रेक्षतीर्थं सुस्नाय मुखनिर्मालिकां व्रजेत् ।

ज्येष्ठावाप्यां नरः स्नात्वा ज्येष्ठां गौरीं समर्चयेत् ॥ ६८ ॥

सौभाग्यगौरी सम्पूज्यान्नानवाप्यांकृतोदकैः । ततः शृङ्गारगौरीञ्चतत्रैव च कृतोदकः
स्नात्वा विशालगङ्गायां विशालार्क्षीं ततो व्रजेत् ।

सुस्नातो ललितातीर्थं ललितामर्चयेत्ततः ॥ ७० ॥

स्नात्वाभवानीतीर्थं भवानीं परिपूजयेत् । मङ्गला चततोभ्यर्च्यांबिन्दुतीर्थंकृतोदकैः
ततो गच्छेन्महालक्ष्मीं स्थिरलक्ष्मीसमृद्धये ।

इमां यात्रां नरः कृत्वा क्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिजन्मनि ॥ ७२ ॥

नदुःखैरभिभूयेत इहामुत्रापि कुत्रचित् । कुर्यात्प्रतिचतुर्थोह यात्रां चिघ्नेशितुःसदा
ब्राह्मणेभ्यस्तदुद्देशाद्देया वै मोदका मुदे । भौमे भैरवयात्रा च कार्या पातकहारिणी
रविवारे रवेर्यात्रा पष्ठ्यां वा रविसंयुजि । तथैव रविसप्तम्यां सर्वविप्रोपशान्तये ॥
नवम्यामथवाष्टम्यांचण्डीयात्राशुभामता । अन्तर्गृहस्यवै यात्राकर्तव्याप्रतिवासरम्

प्रातःस्नानं विधायाऽऽदौ नत्वा पञ्चविनायकान् ।

नमस्कृत्वाऽथ विश्वेशं स्थित्वा निर्वाणमण्डपे ॥ ७७ ॥

अन्तर्गृहस्य यात्रां वै करिष्येऽधौघशान्तये ।

शृष्ट्वा नियमं चेति गत्वाऽथ मणिकर्णिकाम् ॥ ७८ ॥

स्नात्वामौनेन चागत्यमणिकर्णीशमर्चयेत् । कम्बलाश्वतरौनत्वा घासुक्षीशंप्रणम्य च
पर्षतेशं ततो दृष्ट्वा गङ्गाकेशवमभ्यथ । ततस्तु ललितां दृष्ट्वा जरसन्येभ्वरं ततः ॥
ततो वै सोमनाथञ्च वाराहञ्च ततो व्रजेत् । ब्रह्मेभ्वरं ततो नत्वा नत्वाऽगस्तीश्वरं ततः
कश्यपेशं नमस्कृत्य हरिकेशवतं ततः । वैद्यनाथं ततो दृष्ट्वा ध्रुवेशमथ वीक्ष्य च ॥
गोकर्णेभ्वरमभ्यर्च्य हाटकेशमथो व्रजेत् । अस्थिक्षेपतडागे च दृष्ट्वा वै कीकसेभ्वरम्
आरभूतं ततो नत्वा चित्रगुप्तेश्वरं ततः । चित्रघण्टां प्रणम्याऽथ ततः पशुपतीश्वरम्

पितामहेश्वरं गत्वा ततस्तु कलशेश्वरम् । चन्द्रेशस्त्वथ वीरेशोविद्येशोऽग्नीशयक्य
नागेश्वरो हरिश्चन्द्रश्चिन्तामणिविनायकः । सेनाविनायकश्चाथ द्रष्टव्यःसर्वविग्रहत्
वसिष्ठवामदेवौ च मूर्तिरूपधराभुमी । द्रष्टव्यौ यत्नतः काश्यां महाधिप्रविनाशिनी
सीमाशिनायकश्चाऽथ करुणेशं ततो व्रजेत् ।

त्रिसन्ध्येशो विशालाक्षी धर्मेशो विम्बबाहुका ॥

आशाविनायकश्चाऽथ वृद्धादित्यस्ततः पुनः ॥ ८८ ॥

चतुर्वक्त्रेश्वरं लिङ्गं ब्राह्मीशस्तु ततः परः । ततो मनःप्रकामेशर्शानेशस्ततःपरम्
चण्डीचण्डीश्वरौ दृश्यौ भवानीशङ्करी ततः । दुर्ण्डिप्रणम्यक्ततोरजराजेशमर्चयेत्
लाङ्गलीशस्ततोभ्यर्च्यस्ततस्तु नकुलीश्वरः । पराभेशमथो नत्वा परद्रव्येश्वरं ततः
प्रतिग्रहेश्वरं घापि निष्कलङ्केशमेव च । मार्कण्डेयेशमभ्यर्च्यतत अप्सरसेश्वरम् ॥

गङ्गेशोऽर्च्यस्ततो ज्ञानवाप्या स्नानं समाचरेत् ।

नन्दिकेशं तारकेशं महाकालेश्वरं ततः ॥ ९३ ॥

दण्डपार्ष्णि महेशं रु मोक्षेशं प्रणमेत्ततः । वीरभद्रेश्वरं नत्वा अविमुक्तेश्वरं ततः ॥
विनायकांस्ततःपञ्च विश्वनाथं ततो व्रजेत् । ततोमौनंविस्तृज्याथमन्त्रमेतमुदीरयेत्
अन्तर्गृहस्य यात्रेय यथावद्यामया कृता । न्यूनातिरिक्तया शम्भुःप्रीयतामनयाविभुः
इति मन्त्रं समुच्चार्य क्षणं वै मुक्तिमण्डपे । विश्रम्य यायाद्भवन्ननिष्पापःपुण्यवान्नरः
सम्प्राप्य वासरं विष्णोर्विष्णुतीर्थेषु सर्वतः । कार्यायात्राप्रयत्नेनमहापुण्यसमृद्धये
नभस्यपञ्चदश्याञ्च कुलस्तम्भसमर्चयेत् । दुःखंरुद्रपिशाक्तत्वं न भवेद्यस्यपूजनात्

श्रद्धापूर्वमिमा यात्राः कर्तव्याः क्षेत्रवासिभिः ।

पर्वस्वपि विशेषेण कार्या यात्राश्च सर्वतः ॥ १०० ॥

न बन्ध्यं दिवसं कुर्याद्विना यात्रां कश्चित्कृती ।

यात्रा द्वयं प्रयत्नेन कर्तव्यं प्रतिवासरम् ॥ १०१ ॥

आदौ स्वर्गतरङ्गिण्यास्ततो विश्वेशितुर्ध्रुवम् ।

यस्य बन्ध्यंदिनं यातं काश्यां निवसतः सतः ॥ १०२ ॥

निराशाः पितरस्तस्य तस्मिन्नेव दिनेऽभवन् ।

सदष्टः कालसर्पेण स दृष्टो मृत्युना स्फुटम् ॥ १०३ ॥

समुष्टस्तत्र दिवसे विश्वेशो यत्रनेक्षितः । सर्वतीर्थेषुसस्नौससर्वयात्राप्यधात्सख

मणिकर्ण्यं तु यः स्नातो यो विश्वेशं निरैक्षत ।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ।

दृश्यो विश्वेश्वरो नित्यं स्नातव्या मणिकर्णिका ॥ १०५ ॥

व्यास उवाच

सूत! स्कान्दमिदं श्रुत्वा काशीमाहात्म्यमुत्तमम् ।

नरो न निरयं याति कृत्वाऽप्यघसहस्रकम् ॥ १०६ ॥

स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि यच्छ्रेयः समुपाज्यते ।

काशीखण्डस्य श्रवणात्तस्यात्सूत! न संशयः ॥ १०७ ॥

दत्त्वा दानानि सर्वाणि कृत्वा यज्ञानैकशः ।

यत्पुण्यं लभ्यते मर्त्यैस्तदेतच्छ्रवणाद् भुवम् ॥ १०८ ॥

तप्त्वा तपासि चोप्राणि प्राप्यते यन्महत्फलम् ।

श्रवणादस्य खण्डस्य लभते तन्न संशयः ॥ १०९ ॥

अधीत्यचतुरोवेदान्साङ्गान्यत्फलमाप्यते । काशीखण्डसमाकर्ण्यतत्फलंलभ्यतेनरैः

गयायांश्राद्धदानाच्चयथातृप्यन्तिपूर्वजाः । तथैतच्छ्रवणाङ्गणां तृप्नुवन्तिपितामहाः

तैश्चसर्वपुराणानिश्रुतानिस्थिरबुद्धिभिः । काशीखण्डंश्रुतयैश्चसर्वेषांश्रेयसांपदम्

श्रुताश्च सर्वधर्मास्तैर्महापुण्यैकराशिभिः ।

श्रुतं यैः स्थिरचेतोभिः काशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥

इदमेव हि देवेज्या परमा परिकीर्तिता । जपेत्तत्खण्डमखिलं श्रोतव्यंश्रद्धया द्विजाः

शृणुयादेकमपि य आख्यानं काशिखण्डजम् ।

श्रुतानि तेन सर्वाणि धर्मशास्त्राप्यसंशयम् ॥ १५ ॥

महाधर्मैकजननंमहार्थमतिपादकम् । कारणं सर्वकामाप्तेः काशीखण्डमिदं स्मृतम् ॥

एतच्छ्रवणतः पुंसां कैवल्यं नैव दूरतः । तुष्यन्ति सर्वेपितरः श्रुत्वैतत्खण्डमुत्तमम्
प्रीणन्त्यमर्त्याः सर्वेऽपि ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।

मुनयः परिमोदन्ते माद्यन्ति सनकादयः ॥ ११८ ॥

हृष्टः सर्वो भवेदेव भूतप्रांमश्चतुर्विधः । महिमश्रवणादस्माद्वाराणस्या न संशयः ॥
य इदं श्रावयेद्विद्वान्समस्तं त्वर्धमेव वा । पादमात्रं तदधं वात्वेकं व्याख्यानमुत्तमम्
स नमस्यः प्रयत्नेन सम्पूज्यस्त्वष्टदेववत् । तस्मैदेयंप्रयत्नेन विश्वेशप्रीतये सदा
तस्मिंस्तुष्टेहिसन्तुष्टोविश्वेशोनात्रसंशयः । यत्रैतत्पठ्यतेखण्डंपरानन्दसमाश्रयम्
न तत्र प्रभवेत्कश्चिदमङ्गलसमुद्भवः । य इदं शृणुयाद्विद्वान्यश्चेदं श्रावयेत्सुधीः ॥
यः पठेदपि पुण्यात्मा ते सर्वे रुद्रमूर्तयः । य एतत्पुस्तकं रम्यं लेखयित्वासमर्पयेत्

अखिलानि पुराणानि तेन दत्तानि नान्यथा ।

अत्राऽऽख्यानानि यावन्ति श्लोका यावन्त एव हि ॥ १२५ ॥

तथा पदानि यावन्ति वर्णा यावन्त एव हि ।

यावन्त्यपि च मात्राणि यावत्यः पदपङ्क्तयः ॥ १२६ ॥

गुणे सूत्राणि यावन्ति यावन्तः पटतन्तवः ।

चित्ररूपाणि यावन्ति रम्यपुस्तकसञ्चके ॥ १२७ ॥

तावद्यगस्मृत्साणि दाता स्वर्गमहीयते । एतद्ब्रह्मादशकृत्वोयः शृणुयात्खण्डमुत्तमम्
ब्रह्महत्याऽपि तस्याऽऽशु नश्येच्छम्भोरनुग्रहात् ।

अपुत्रः शृणुयाद्यस्तु सुस्नातः श्रद्धयान्वितः ॥ १२८ ॥

तस्यपुत्रो भवत्येव शम्भोराज्ञाप्रभावतः । किम्बहूक्तेन सूतेह यस्य यस्य मनोरथः ॥
यो यस्तं तं स सदा श्रुत्वैतत्प्राप्नुयात्कृती ।

शृणुयाद् दूरदेशेऽपि यः काशीखण्डमुत्तमम् ॥ १३१ ॥

स काशीवासपुण्यस्य भाजनं स्याच्छिवाज्ञया ।

एतच्छ्रवणतः पुंसां सर्वत्र चिजयो भवेत् ॥

सौभाग्यञ्चाऽपि सर्वत्र प्राप्नुयात्त्रिमलाशयः ॥ १३२ ॥

यस्य विश्वेश्वरस्तुष्टस्तस्यैतच्छ्रवणे मतिः । जायते पुण्ययुक्तस्य महानिर्मलचेतसः
 सर्वेषां मङ्गलानाञ्च महामङ्गलमुत्तमम् । गुह्येऽपि लिखितम्पूज्यं सर्वमङ्गलसिद्धये ॥
 इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्ड-
 उत्तरार्धे प्रस्तुतप्रणयानुक्रमणिकानाम् शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

ॐ समाप्तञ्चेदंकाशीखण्डम्

सरस्वतीश्रुतमहतां महीयताम् ।

शम्भूयात्

—:—:—



सा मा पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

—.*:—

वीर सेवा मन्दिर
पुस्तकालय

काल न० _____
लेखक _____
शीर्षक स्मरपुराण
क्रम संख्या 3649